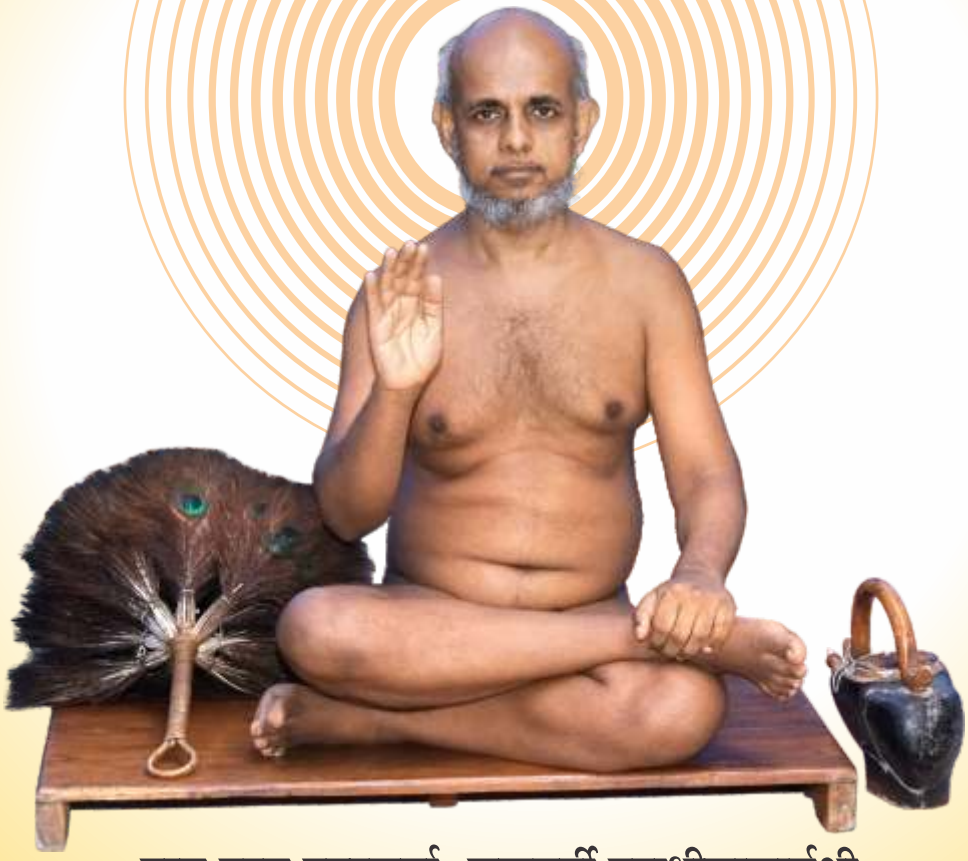


परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)



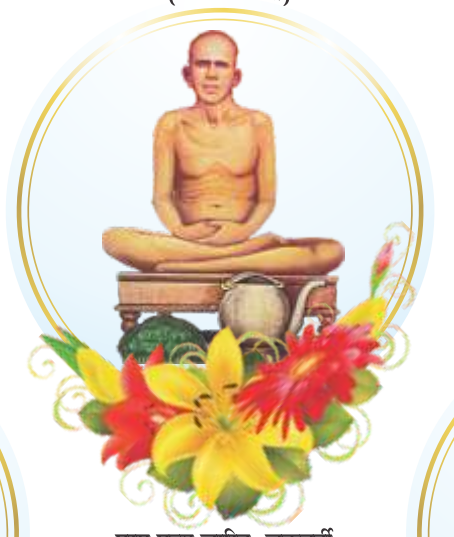
वर्धा शतक



ग्रन्थकर्त्ता
स्वर्गीय पं. चंपालालजी

प्रकाशक
भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

(परम्परानायक)



परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)



परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

स्वर्गीय पंडित चंपालालजी विरचित

चर्चासागर

सौजन्य से

श्रीमती मंजुदेवी बड़जात्या W/O अजितकुमारजी बड़जात्या, बम्बई

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

चर्चासागर ग्रंथमें प्रमाणरूपसे दिये हुए ग्रंथोंके नाम

जिनके श्लोक लिखे हैं ।

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
१	आदिपुराण, लब्ध्यादिपुराण, त्रिलोकसार
२	पद्मपुराण (रविषेणाचार्य विरचित)
३	षट्पाहुडकी टीका
४	चारित्रसार । इन्द्रनंदि कृत नीतिसार
५	स्फुट गाथा तथा श्लोक ।
६	लघु पद्मपुराण ।
७	चारित्रसार, नीतिसार ।
८	इन्द्रनंदिविरचित्त प्रायश्चित्त ग्रन्थ ।
९	पद्मपुराण, लघुपद्मपुराण
१०	पद्मपुराण लघुपद्मपुराण
११	पद्मनंदिपंचविंशतिका
१२	पद्मनंदिपंचविंशतिका
१३	फुटकर गाथा
१४	सुदर्शन चरित्र
१५	सुदर्शन चरित्र
१६	सुदर्शन चरित्र
१७	सुदर्शन चरित्र
१८	पद्मपुराण
१९	पद्मनंदिपंचविंशतिका, नीतिसार
२०	पद्मनंदिपंचविंशतिका
२१	फुटकर श्लोक, मोक्षशास्त्र, धर्मरसिक
२२	धर्मरसिक, फुटकर, क्रियाकोष, फुटकर
२३	धर्मरसिक
२४	फुटकर (जिनसेनाचार्यके वचन)
२५	धर्मरसिक, हरिवंशपुराण, आदिपुराण
२६	धर्मरसिक, फुटकर
२७	धर्मरसिक
२८	मोक्षशास्त्र, मूलाचार प्रदीपक
२९	मोक्षशास्त्र, मूलाचार प्रदीपक
३०	मूलाचार प्रदीपक । मोक्षशास्त्र
३१	मूलाचार प्रदीपक ।
३२	"
३३	रत्नकरण्डश्रावकाचार
३४	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा । उसकी टीका
३५	प्रश्नोत्तरोपासकाचार
३६	पूजाके मंत्र ।
३७	यशस्तिलकचंपू
३८	पंचमंगल
३९	मोक्षशास्त्र
४०	मोक्षशास्त्र
४१	प्रश्नोत्तरश्रावकाचार । धर्मरसिक । धर्मामृतश्रावकाचार । स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा उसकी टीका ।
४२	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका । धर्मरसिक, यशस्तिलक ।
४३	वसुनंदिश्रावकाचार
४४	त्रिलोकसार । फुटकर श्लोक ।
४५	मोक्षशास्त्र फुटकर गाथा
४६	सिद्धांतसार दीपक । त्रिलोकप्रज्ञप्ति

चर्चा संख्या	ग्रंथोंके नाम
४७	त्रिलोकसार सिद्धांतसारदीपक, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, बृहद्हरिवंश पुराण आदि।
४८	फुटकर श्लोक
४९	,,
५०	धर्मरसिक। धर्मरसिक
५१	फुटकरगाथा
५२	फुटकरगाथा
५३	मोक्षशास्त्र। श्रुतसागरी टीका।
५४	महापुराण। सिद्धांतसार दीपक।
५५	महापुराण
५६	महापुराण
५७	महापुराण
५८	त्रिवर्णाचार
५९	सिद्धांतसार
६०	सिद्धांतसार
६१	सिद्धांतसार
६२	सिद्धांतसार त्रिलोकसार
६३	सिद्धांतसार दीपक, त्रिलोकसार
६४	जंबूचरित्र
६५	फुटकर श्लोक
६६	,,
६७	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
४८	मूलाचार। मूलाचार प्रदीपक
६९	सिद्धांतसार
७०	गोम्मटसार
७१	बृहद्हरिवंशपुराण
७२	फुटकर श्लोक

चर्चा संख्या	ग्रंथोंके नाम
७३	फुटकर श्लोक भावप्रकाश
७४	भावप्रकाश
७५	लघुपद्मपुराण (सोमसेन कृत)
७६	पद्मपुराण, मूलाचार, मूलाचारकी टीका, मूलाचार प्रदीपक
७७	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
७८	मोक्षशास्त्र
७९	मोक्षशास्त्र
८०	जैनरत्नाकर
८१	मोक्षशास्त्र। पंचमंगल
८२	रत्नाकर
८३	वसुनंदिश्रावकाचार
८४	पुरुषार्थसिद्धयुपाय
८५	पुरुषार्थसिद्धयुपाय
८६	पुरुषार्थसिद्धयुपाय, बृहद्हरिवंशपुराण
८७	रत्नाकर। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
८८	रत्नाकर
८९	मोक्षशास्त्र
९०	धर्मोपदेश पीयूषरत्नाकर अन्य श्रावकाचार
९१	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा। त्रिलोकसार। मूलाचार
९२	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ; गोम्मटसार
९३	फुटकर श्लोक, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा।
९४	त्रिलोकसार। मूलाचार। सिद्धांतसारप्रदीपक
९५	सिद्धांतसार दीपक। लघुपद्मपुराण
९६	उत्तरपुराण
९७	रयणसार
९८	षट्पाहुड
९९	मोक्षपाहुड

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
१००	मोक्षपाहुड
१०१	मोक्षपाहुड
१०२	लघुआदिपुराण (सकलकीर्ति कृत) पार्श्वपुराण
१०३	सिद्धांतसार, गोम्मटसार
१०४	आदिपुराण, लक्ष्यादिपुराण, पार्श्वपुराण
१०५	प्रतिष्ठाशास्त्र, नरेन्द्रसेनकृत प्रतिष्ठापाठ
१०६	पद्मनंदिपंचविंशतिका
१०७	आदिपुराण, सिद्धांतसार
१०८	प्रश्नोत्तरोपासकाचार
१०९	दीक्षाकल्प
११०	गोम्मटसार।
१११	सिद्धांतसार दीपक
११२	मूलाचार प्रदीपक। मूलाचार।
११३	गोम्मटसारकी टीका। वेद, भारत, मार्कण्डेयपुराण, अरण्यक, प्रभासखंड, शिवपुराण, वाल्मीकि रामायण, अद्भुत रामायण, गीता, वेद, पुराण, वेदांत
११४	पुराण
११५	गोम्मटसार
११६	गोम्मटसार
११६	गोम्मटसार
११८	गोम्मटसार
११९	गोम्मटसार
१२०	गोम्मटसार
१२१	मोक्षशास्त्र, गोम्मटसार
१२२	गोम्मटसार
१२३	गोम्मटसार
१२४	गोम्मटसार

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
१२५	गोम्मटसार
१२६	गोम्मटसार
१२७	गोम्मटसार
१२८	गोम्मटसार
१२९	गोम्मटसार
१३०	गोम्मटसार
१३१	गोम्मटसार
१३२	अनंतव्रतकी उद्यापन विधि (पद्मनन्दि कृत) वसुनन्दि-श्रावकाचार। तथा उसकी टीका। मोक्षशास्त्र।
१३३	वसुनंदिश्रावकाचार। व्रतकथा कोश
१३४	वसुनंदिश्रावकाचार। लघु आदिपुराण
१३५	वसुनंदिश्रावकाचार
१३६	उमास्वामिश्रावकाचार
१३७	उमास्वामिश्रावकाचार
१३८	उमास्वामिश्रावकाचार, भावसंग्रह, यशस्तिलक चंपू। पूजा-ग्रन्थ, पूजासार, जिनसंहिता प्रतिष्ठापाठ। त्रिवर्णाचार। सूक्तिमुक्तावली।
१३९	उमास्वामिश्रावकाचार
१४०	उमास्वामिश्रावकाचार
१४१	फुटकर श्लोक
१४२	उमास्वामिश्रावकाचार। धर्मरसिक
१४३	उमास्वामिश्रावकाचार
१४४	उमास्वामिश्रावकाचार
१४५	उमास्वामिश्रावकाचार। फुटकर श्लोक
१४६	उमास्वामिश्रावकाचार
१४७	उमास्वामिश्रावकाचार
१४८	„ „

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
१४९	पूजाके मन्त्र ईर्यापथशुद्धिपाठ दर्शनपाठ भंग एक संधिकृत जिनसंहिता, पूजासार, धर्मरसिक पूजाविधि जिनयज्ञकल्प प्रतिष्ठापाठ महाभिषेक, शान्तिचक्रपूजा
१५०	फुटकर श्लोक प्रतिष्ठापाठके हैं
१५१	पूजासार
१५२	शांतिचक्रपूजा लघुस्नपन
१५३	,, ,,
१४४	पूजासार
१५५	पूजासार, वृहत्स्नपन
१५६	,, ,,
१५७	सिद्धपूजा
१५८	,,
१५९	फुटकर श्लोक
१६०	,,
१६१	फुटकर श्लोक
१६२	पूजासार
१६३	(ये सब पंच एक संधि कृत जिनसंहिता पूजासार जिनयज्ञ-
१६४	कल्पविद्यानुवाद, णमोकार कल्प, वसुनंदि प्रतिष्ठापाठ
१६५	त्रिवर्णाचार, शांतिचक्र, रत्नाकर आदि शास्त्रोंसे लिखे हैं।
१६६	विश्वैकाक्षरीवर्णकोश, एकाक्षरीकोश, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका। कातंत्र आदि व्याकरणके सूत्रश्लोक, परमतके श्लोक, पद्मावती कल्प, त्रिवर्णाचार, ज्ञानार्णव, जिनसंहिता, पूजासार जिनयज्ञकल्प, जिन प्रतिष्ठापाठ, शांतिचक्र महाभिषेक। माया-बीज कल्प।
१६७	अमरकोश, बालबोधपंचांग, व्याकरणके सूत्र, दर्शनपाठ।
१६८	त्रिवर्णाचार, प्रतिष्ठापाठ, आदिपुराण, जिनयज्ञकल्पकी वृत्ति। अजितपुराण, फुटकर श्लोक, जिनयज्ञकल्प। पूजासार, आरा-

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
	धनाकथाकोश, श्रीपालचरित्र उत्तरपुराण, यशस्तिलक चंपू। धर्मरसिक। देवपूजा व्रतकथाकोश निर्वाणकांड प्राकृत। पूजाके पाठ। नित्यपूजा, सिद्धपूजा, भक्तामर स्तोत्र। फुटकर श्लोक। शुभचंद्र विरचित सहस्रगुणी पूजा, सकलकीर्ति विरचित शांतिपुराण। प्रतिष्ठासार, वसुनंदिकृत प्रतिष्ठापाठ। भाव-संग्रह, पद्मनंदिपंचविंशतिका। धर्मकीर्तिकृत नंदीश्वरपूजा। मुक्तावली पूजा, अभयनंदिकृत श्रेयोविधान, प्रभाकरसेन प्रति-ष्ठापाठ। आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प त्रिकाल चतुर्वि-शतिका पूजा। योगींद्रदेवकृत प्राकृत श्रावकाचार आदिपुराण। पूजासार एक संधिकृत जिनसंहिता शांतिचक्रविधान। अकृ-त्रिम चैत्यालयकी भाषापूजा, सुपार्श्वनाथकी पूजा, चंद्रप्रभकी पूजा, शीतलनाथकी पूजा, श्रेयांसनाथकी पूजा, वासुपूज्यकी पूजा। विमलनाथकी पूजा, अनन्तनाथकी पूजा, शांतिनाथकी पूजा, अरहनाथकी पूजा, अरिष्ट नेमिनाथकी पूजा, महावीरकी पूजा। शांतिचक्र ऋषिमंडल पंचकल्याण कर्मदहन षोडश-कारण दशलक्षण रत्नत्रय सार्द्धद्वितयद्वीप, इन्द्रध्वज पंचमेरु नन्दीश्वर आदि सबकी पूजाओं में है। वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती कृत जिनसंहिता, व्रतकथाकोश, वसुनंदिश्रावकाचार, सिद्धांत-सार दीपक, षट्कर्मोपदेश रत्नमाला। वसुपालकी कथा, मदना-वलीकी कथा, उमास्वामीश्रावकाचार सारसंग्रह, षट्पाहुड। योगीन्द्रदेव श्रावकाचार, महापुराण, तत्त्वार्थसार, चैत्यभक्ति-पाठ, श्रीपालकी कथा, विद्याधरकी कथा, ब्राह्मणी शेठकी पुत्री कुम्हारकी कथा। पुरंदर विधानव्रतकी कथा, सुभाषित ग्रन्थ। फुटकर श्लोक कथायें।
१६९	वसुनंदिश्रावकाचार। धर्मरसिक।
१७०	जिन प्रतिष्ठापाठ, इन्द्रध्वज, सार्द्धद्वितय द्वीपक्षेत्रपूजा, शांति-चक्र, लघुस्नपन, मध्यस्नपन, वृहत्स्नपन, पंचकल्याण, चतुर्विंशति-

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
	पूजा, जिनयज्ञकल्प, जिनसंहिता, पूजासार, त्रिवर्णाचार, हवन-पाठ, आदिपुराण, पार्श्वपुराण (प्रभाचंद्र कृत) हरिवंशपुराण पद्मपुराण लघुपद्मपुराण यशस्तिलक चंपू उत्तरपुराण श्रीपालचरित्र पांडवपुराण (भट्टारकृत) नवग्रह स्तोत्र। त्रिलोकसार। गोमट्टसार।
१७१	फुटकर श्लोक
१७२	पूजासार जिनसंहिता
१७३	पूजासार जिन संहिता
१७४	पूजासार जिनसंहिता
१७५	जिन संहिता
१७६	जिन संहिता
१७७	पूजासार
१७८	जिनसंहिता
१७९	जिनसंहिता
१८०	जिनसंहिता
१८१	जिनसंहिता
१८२	जिनसंहिता लंघनपथ्यनिर्णय शास्त्र
१८३	फुटकर
१८४	त्रिवर्णाचार ९वाँ अध्याय, यशस्तिलक चंपू, चर्चासमाधान आदिपुराण, पद्मनंदिपंचविंशतिका, पद्मपुराण, अकलंक प्रायश्चित्त
१८५	प्रायश्चित्त चूलिका प्राकृत
१८६	प्रायश्चित्त चूलिका प्राकृत
१८७	प्रायश्चित्त चूलिका प्राकृत
१८८	मूलाचारकी टीका
१८९	मूलाचारकी टीका
१९०	त्रिवर्णाचार, भावप्रकाश

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
१९१	त्रिवर्णाचार
१९२	त्रिवर्णाचार
१९३	त्रिलोकसार
१९४	मूलाचार
१९५	मूलाचार, त्रिलोकसार
१९६	मूलाचार भाषा चौपाई
१९७	मूलाचार
१९८	मूलाचार स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
१९९	मूलाचार, शारीरिक शास्त्र
२००	वसुनंदिश्रावकाचार, अन्यमतके शास्त्र शार्ङ्गधर संहिता, भाव-प्रकाश, वैद्यरत्नभाषा
२०१	आदिपुराण, सिद्धांतसार दीपक
२०२	सिद्धांतसार दीपक
२०३	अमरकोष, धन्वंतरी निघंटु
२०४	कलापव्याकरण, ज्ञानसमुद्र, ज्ञानार्णव, एकाक्षरी वर्णमात्राकोष विष्णुपंजर मार्कंडेय पुराण, मातृका निघंटु। एकाक्षरीकोष, मूलाचार, सामायिक पाठ। महाभारत, विष्णुपुराण, नीतिसार
२०५	फुटकर श्लोक
२०६	त्रिलोकप्रज्ञप्ति
२०७	फुटकर श्लोक, भारत, मनुस्मृति, मार्कण्डेयपुराण, शिवधर्म, श्राद्धकल्प, परमतके धर्मशास्त्र भागवत। शार्ङ्गधर संहिता। शार्ङ्गधर कथित सुभाषित संहिता। वसुनंदिश्रावकाचार, भावप्रकाश
२०८	,,
२०९	,,
२१०	धर्मप्रश्नोत्तर, नीतिसार
२११	एकचर्चाकी पुस्तक

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
२१२	भगवती आराधना रत्नमाला
२१३	सिद्धांतसारदीपक
२१४	सिद्धांतसारदीपक
२१५	सिद्धांतसारदीपक
२१६	सिद्धांतसारदीपक, त्रिलोकसार
२१७	सिद्धांतसारदीपक
२१८	सिद्धांतसारदीपक
२१९	सिद्धांतसारदीपक
२२०	सिद्धांतसारदीपक
२२१	सिद्धांतसारदीपक
२२२	सिद्धांतसारदीपक
२२३	मोक्षशास्त्र, सिद्धांतसारदीपक
२२४	सिद्धांतसारदीपक
२२५	सिद्धांतसारदीपक
२२६	फुटकर श्लोक
२२७	सिद्धांतसारदीपक
२२८	सिद्धांतसारदीपक। माघनंदि मुनिकृत जयमाला, सिद्धांतसार संग्रह, कथाकोश आराधना। बनारसीविलास
२२९	वसुनंदिश्रावकाचार, भद्रबाहुचरित्र, प्रश्नोत्तरोपासकाचार फुटकर गाथायें, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, आराधना कथाकोश पार्श्वनाथ पुराण, षट्पाहुड भद्रबाहुचरित्र, नीतिशतक, हरिवंशपुराण, लघु हरिवंशपुराण
२३०	त्रिलोकसार। मोक्षशास्त्र
२३१	फुटकर श्लोक
२३२	आदिपुराण लघुआदिपुराण सिद्धांतसारदीपक, पार्श्वपुराण हरिवंशपुराण, शांतिपाठ
२३३	नीतिसार
२३४	नीतिसार धर्मरसिक

चर्चा संख्या	ग्रन्थोंके नाम
२३५	धर्मरसिक, नीतिशतक, सप्तव्यसनचरित्र, फुटकर श्लोक
२३६	नीतिसार, षटपाहुड
२३७	नीतिशतक
२३८	त्रिलोकसार
२३९	त्रिलोकसार
२४०	षट्पाहुड
२४१	मोक्षशास्त्र
२४२	मोक्षशास्त्र
२४३	श्रुतसागरी टीका, पुरुषार्थसिद्धयुपाय
२४४	आत्मानुशासन
२४५	आत्मानुशासन
२४६	सारचतुर्विंशतिका, ज्ञानार्णव, हरिवंशपुराण
२४७	ज्ञानार्णवकी टीका
२४८	सार चतुर्विंशतिका
२४९	वसुनंदिश्रावकाचार, अन्य श्रावकाचार, धर्मामृत श्रावकाचार धर्मोपदेश, पीयूषवर्षाकर, श्रावकचार, नीतिसार, कुन्दकुन्द०
२५०	पद्मनंदिपंचविंशतिका ज्ञानार्णव, आत्मानुशासन, ज्ञानतरंगिणी स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका, तत्त्वज्ञानतरंगिणी
२५१	बोध पाहुड, यागसार, चाणिक्य जैनगीता, श्वेतांबरोंका गाथा भाषाछंद श्वेताम्बर सूत्र महान् सीतसूत्र, भक्तपत्तसूत्र, ज्ञातृधर्मकथासूत्र, प्रश्नव्याकरणसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, सुदर्शन चरित्र, महावीर चरित्र, उपासकाध्ययनसूत्र, णमोथुणं ज्ञातृस्वरूप, आवश्यक सूत्र, रायपसेणीसूत्र, समवायसूत्र, सामायिकको पाटी जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, लघु चाणिक्य।
२५२	शिवपुराण, प्रभासपुराण, भर्तृहरि काव्य दक्षिणमूर्ति, सहस्रनाम महिम्नस्तोत्र (दुर्वासा कृत) भागवत नगरखंड
२५३	महापुराण
२५४	कालज्ञान, नीतिशास्त्र।

विषय सूची

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
१	अष्टमंगल द्रव्य कौन कौन हैं।	४
२	श्री महावीर स्वामीने जन्मकल्याणकके समय इन्द्रका संदेह दूर करनेके लिये अपने पैरका अंगूठा दबाकर मेरु पर्वतको कंपायमान किया या नहीं ?	५
३	भगवान के माता पिताके नीहार है या नहीं ?	६
४	केशलोंचमें कहाँके केशलोंच होते हैं और कहाँके नहीं	६
५	तीर्थंकर पंचमुष्टि लोच कहाँका करते हैं	७
६	कोटिशिला कहाँ है ?	८
७	मुनिराज बिना पीछीके चलें या नहीं ?	९
८	मुनिराज जलमें प्रवेश करें या नहीं, नावमें बैठें या नहीं	१०
९	खरदूषणके पास चौदह हजार विद्यायें थीं या नहीं	११
१०	लंका लवणोदधिमें है या उपसमुद्रमें	१२
११	अरहंत देवकी पूजा न करनेवाला और पात्रदान न देनेवाला किस योग्य है।	१३
१२	श्रावकोंको प्रातःकाल सबसे पहिले क्या करना चाहिये	१४
१३	जो देवदर्शन किये बिना ही भोजन कर लेते हैं वे कैसे हैं ?	१५
१४	केवलीके ९ लब्धियाँ हैं परन्तु उनके दान भोग आदि हैं या नहीं ?	१५
१५	सामान्य केवलीको नमस्कार किस प्रकार करना चाहिये।	१६
१६	सामान्यकेवलीकी गंधकुटीमें गणधर होते हैं या नहीं	१७
१७	सामान्य केवलीकी गंधकुटीमें मानस्तंभ होता है या नहीं	१७
१८	तीर्थंकरके समवशरणमें जो गणधर केवली ऋद्धिधारी आदि की संख्या बतलाई है वह समवसरणकी है या उनके समयकी	१८
१९	इस पंचमकालके मुनि कहाँ ठहरें	१८
२०	मुनि भोजनके समय हाथ क्यों मिला लेते हैं।	१९
२१	मालामें १०८ ही दाने क्यों होते हैं	२०
२२	जपमें मालाको किस प्रकार जपना चाहिये	२३
२३	जपमें णमोकार मंत्रका जप किस प्रकार करना चाहिये।	२५
२४	जपके वाचिक उपांशु और मानस भेदोंका स्वरूप क्या है। ये जप किसके लिये किये जाते हैं और इनका क्या फल है	२५
२५	जप किस आसन पर बैठकर करना चाहिये	२७
२६	जप कहाँ करना चाहिये।	२९
२७	जप करते समय विघ्न आ जाय तो उसका प्रायश्चित्त क्या है।	३०
२८	बाईस परीषह किस किस कर्मके उदयसे होती हैं	३१
२९	मुनिराजके एक समयमें अधिकसे अधिक कितनी परीषह होती हैं	३२
३०	बाईस परीषह किस गुणस्थानमें होती हैं	३२
३१	चारों गतियोंमें रहनेवाले जीवोंके किस किस परीषहका उदय है	३४
३२	जीवोंके निकलनेपर भी निगोदराशि घटती क्यों नहीं तथा जीवोंके जानेपर भी सिद्धराशि बढ़ती क्यों नहीं	३५
३३	यम नियमका स्वरूप क्या है	३७
३४	उपवासका लक्षण क्या है।	३७
३५	यदि उपवासमें जल पी ले तो उसका फल क्या है	३८
३६	पंचोपचारी पूजाका स्वरूप क्या है	३८
३७	देवपूजाकी छह क्रियाएँ कौनसी हैं	४०
३८	सिद्धालय कहाँ है, वात वलयमें या वात वलयके ऊपर	४०
३९	सिद्ध जीव वात वलयसे आगे क्यों नहीं जाते	४१
४०	ध्यानकी स्थिति कितनी है	४१

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
४१	चारों आश्रम कौन हैं उनका क्या स्वरूप है	४२
४२	ब्रह्मचारी किस रंगके वस्त्र या लंगोट रक्खें।	४४
४३	केवलिसमुद्घात किस गुणस्थानमें होता है	४५
४४	जिन प्रतिमाके अगल बगल लक्ष्मी सरस्वतीकी मूर्ति रहती है सो ठीक है या नहीं	४६
४५	पाँचों ज्ञानोंमेंसे प्रत्यक्ष कौन है और परोक्ष कौन हैं	४९
४६	सिद्धपरमेष्ठीकी अवगाहना अंतिम शरीरसे कितनी कम है	४९
४७	पैंतालीस लाख योजनके पाँच स्थान कौन कौन हैं	५०
४८	एक एक लाख योजनके तीन स्थान कौन कौन हैं	५०
४९	अनंतानंत सिद्धोंसे भी सिद्धशिला भरती क्यों नहीं	५०
५०	मुनिराज आहारके समय कौनसी मुद्रा धारण करते हैं मुनिराज आहारके लिए श्रावकके घर जाकर बिना पडगाहन किये कितनी देर तक ठहर सकते हैं	५२
५१	भगवानके जन्म समयसे पहिले पन्द्रह महीने तक जो रत्नोंकी वर्षा होती है सो प्रतिदिन कितनी बार और किस किस समय। तथा कितने रत्नोंकी	५३
५२	केवली भगवानकी दिव्यध्वनि प्रति दिन कितनी बार खिरती हैं	५३
५३	स्वयंभूरमण समुद्रका शालिसिक्थ मत्स्य बिना हिंसा किये सातवें नरकमें क्यों जाता है	५४
५४	नाभिरायकी रानी मरुदेवीका विवाह हुआ था या नहीं। किस युगलियाकी स्त्रीसे विवाह हुआ था	५५
५५	युगके प्रारम्भमें अयोध्याकी रचना किसने की	५६
५६	क्या भरत चक्रवर्तीके तीन करोड गायें थीं	५६
५७	क्या भरत चक्रवर्तीके एक करोड थालियाँ थीं	५७
८	स्नानके कौन कौन भेद हैं	५७

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
५९	अवसर्पिणी कालमें मनुष्योंकी आयु किस हिसाबसे घटती है	५७
६०	पंचम कालके उत्पन्न हुए जीव मरकर विदेशमें उत्पन्न होकर मोक्ष जा सकते या नहीं। ऐसे १ भवावतारी जीव हैं या नहीं	५८
६१	ढाई द्वीपमें चक्रवर्तियोंकी संख्या कितनी होती है	५९
६२	स्वर्गलोकमें सम्यग्दृष्टी और मिथ्यादृष्टी जीव उत्पन्न होते हैं दोनोंकी आयु समान होती है या हीनाधिक बारहवें स्वर्ग तक आयु क्यों बढ़ती है	५९
	आयुके दो भेद हैं निश्चित निःकांचित सो इनमेंसे किस आयु वालेकी स्थिति घटती बढ़ती है	६०
६३	भवनत्रिककी आयु किस प्रकार घटती बढ़ती है।	६०
६४	मरनेके समय सम्यग्दृष्टी देवोंकी माला मुरझाती है या नहीं	६१
६५	जूता या खडाम पहिनकर मन्दिरमें जानेसे कैसा पाप लगता है	६२
६६	देव शास्त्र गुरुकी समुच्चय पूजामें सरस्वती और गुरुकी पूजा किस किस दिशामें करनी चाहिये	६३
६७	मुनिराज उपशमश्रेणी कितनी बार चढ़ते हैं ऐसे मुनि कितने समय तक संयम धारण करते हैं और कब मोक्ष जाते हैं।	६३
६८	मुनिराजके आहारके समयका प्रमाण क्या है	६४
६९	पुलाकादि मुनियोंके कौन कौन गुणस्थान होते हैं।	६५
७०	एक दिनमें एक महीनेमें एक वर्षमें मनुष्योंके कितने श्वासोच्छ्वास होते हैं।	६५
७१	एक सौ सत्तर विजयार्द्धों पर रहनेवाले विद्याधरोंकी आयु काय समान होता है या हीनाधिक	६६
७२	गर्भज जीवोंमें मनुष्यकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है	६७

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
७३	एकही गर्भमें स्त्री पुरुष नपुंसक कैसे होते हैं, एक स्त्रीके दो बालक किस प्रकार होते हैं	१८
७४	इस मनुष्यके शरीरमें क्या-क्या पदार्थ हैं	६९
७५	तीर्थंकर गृहस्थावस्थामें अवधिज्ञानको विचारें या नहीं	७०
७६	क्या देवोंमें भी दुर्गति जातिके देव होते हैं।	७१
७७	आत्माके तीन भेद कौनसे हैं	७२
७८	जीवोंके भाव कौन कौन हैं और उनका स्वरूप क्या है।	७६
७९	नारकी और सम्मूर्च्छन जीवोंके कौनसा लिंग होता है।	७७
८०	शिशुपालने कृष्णको कौनसी सौ गालियाँ दीं	७७
८१	ढाई द्वीपके विद्याधर और चारणऋद्धिधारी मानुषोत्तर पर्वतसे आगे क्यों नहीं जा सकते जब ये लोग मेरु पर्वतके शिखर तक निन्यानबे हजार योजन तक चढ़ जाते हैं परन्तु सत्रहसौ इकईस योजन ऊँचा मानुषोत्तर क्यों नहीं पार किया जाता। मुक्त जीव धर्मद्रव्यके अभाव से लोकके ऊपर नहीं जाते परन्तु मानुषोत्तरके बाहर न जानेमें क्या कारण है।	७९ ८० ८०
८२	पुण्यका विशेष स्वरूप क्या है	८१
८३	दिग्व्रत और देशव्रतमें क्या अन्तर है।	८३
८४	हिंसाका त्याग और उसका ज्ञान किस प्रकार है	८४
८५	हिंसाका फल हीनाधिक क्यों होता है	८४
८६	असत्य भाषणके त्यागीको कौन-कौन वचन नहीं कहने चाहिये।	८७
८७	ब्रह्मचर्यकी नौ बाड़ और अठारह हजार भेद कौन कौन हैं।	९०
८८	भाँग पीनेमें क्या दोष है	९६
८९	संसारी जीव मरकर कितनी देर बाद नया शरीर वा आहार ग्रहण कर लेते हैं	९९
९०	ऐलक श्रावकको किस प्रकार भोजन करना चाहिये।	१००
९१	असंख्यात समुद्रोंमेंसे किन किन समुद्रोंमें जलचर जीव है और किनमें नहीं।	१००
९२	संसारी जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट जन्म मरण कितने करता है।	१०१
९३	चौबीस तीर्थंकरोंमेंसे बालब्रह्मचारी तीर्थंकर कौन कौन हैं	१०२
९४	लवणोदधि, कालोदधि और स्वयंभूरमण समुद्रका जल खारा है बाकीके समुद्रोंका जल कैसा है। घृतोदधि क्षीरोदधिका स्वाद घी व दूधके समान है या ईखके समान	१०३
९५	भवनत्रिक देव ऊपर कहाँ तक जाते हैं	१०४
९६	वासुपूज्य स्वामी चंपापुरसे मोक्ष पधारे या मंदारगिरि पर्वतसे।	१०५
९७	पात्रदान कुपात्रदानका फल तो सुना है परन्तु लोभी को दिया हुआ दान कैसा।	१०५
९८	दर्शन ज्ञान जीवका लक्षण है चारित्र किसका लक्षण है।	१०६
९९	इस पंचम कालमें मुनि कौनसे स्वर्ग तक जा सकते हैं)	१०७
१००	मिथ्यादृष्टियोंके बाह्य चिन्ह कौन कौन हैं	१०७
१०१	सम्यग्दृष्टियोंके विशेष चिन्ह क्या हैं	१०८
१०२	समवशरणके मानस्तंभादिककी ऊँचाईका प्रमाण क्या है।	१०८
१०३	नित्यनिगोद और इतर निगोदमें क्या अन्तर है	१०९
१०३	क्या गंधोदक लगाकर हाथ धो डालना चाहिए	११०
१०५	कैसी प्रतिमा प्रतिष्ठा योग्य है कैसी नहीं है यदि प्रतिमा खंडित हो जाय तो उसकी पूजा स्तुतिका विधान किस प्रकार है	११२
१०६	इस पंचम कालमें साक्षात् केवली नहीं हैं फिर उनकी पूजा भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए	१११

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
१०७	भरतने कितने ब्राह्मण बनाये	११४
१०८	पाँचों महाविद्वानों में ब्राह्मण हैं या नहीं। सामायिकके छह भेद कौन-कौन हैं	११४
१०९	घरमें जो बारह अंगुल तककी प्रतिमा रहती है उनको ऊँचाईका क्या फल है	११६
११०	तीसरे गुणस्थानमें न मरण है न आयुबंध है फिर तीसरे गुणस्थानवाला मरकर अन्यगतिमें किस प्रकार जाता है	११७
१११	क्षपकश्रेणी चढ़ने वाले योगीश्वरोंके श्रेणी चढ़ते समय कौनसा संहनन होता है।	११७
११२	अर्जिका आचार्य, साधुओंको वंदना किस प्रकार करती है। कितनी दूरसे करती है	११८
१२३	सदाशिव आदि अन्य मत वाले जीवका स्वरूप किस प्रकार मानते हैं। ये सब वेदको मानते हैं फिर सबका मत विरुद्ध क्यों है इनमें विरोध कहाँ कहाँ है।	११९
११४	श्री सम्मेदशिखरकी यात्राका सबसे उत्कृष्ट फल क्या है अभव्यको यात्रा क्यों नहीं होती। जिस भव्यने नरकायुका बंध कर लिया है उसको यात्रा होती है या नहीं। कैसे वस्त्र पहिनकर यात्रा करनी चाहिये रावणने नरकायुका बंध कर लिया था फिर भी वह वंदनाके लिए गया था।	१२४ १२८ १२८ १२९ १२९
११५	निवृत्यपर्याप्तक, लब्ध्यपर्याप्तक किस कर्मके उदयसे होते हैं	१२९
११६	निवृत्यपर्याप्तक लब्ध्यपर्याप्तकके कौनसा गुणस्थान होता है।	१३१
११७	चौदह मार्गणा और चौदह गुणस्थानों में सांतराके आठ भेद कौन हैं उनका स्वरूप संख्या विधान क्या है।	१३१
११८	चक्रवर्ती अर्द्धचक्री आदिके अनेक रानियाँ होती हैं और वे पटरानीके महलोंमें रहते हैं फिर अन्य रानियोंके पुत्रादिक किस प्रकार होते हैं	१३३
११९	आहारक शरीरकी उत्कृष्ट जघन्य स्थिति कितनी है	१३४
१२०	आहारक शरीरके समय मुनि गमनागमन करें या नहीं, विक्रिया ऋद्धिसे विक्रिया करें या नहीं	१३४
१२१	औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मणकी उत्कृष्ट जघन्य स्थिति कितनी है।	१३५
१२२	एक एक देवके कमसे कम और अधिकसे अधिक कितनी देवांगनायें होती हैं।	१३५
१२३	नरक और देवगतिमें कषायोंके उदयकालकी जघन्य उत्कृष्ट स्थिति कितनी है।	१३६
१२४	परिहारविशुद्धि संयमका स्वरूप निरुक्ति उत्पत्ति आदि क्या है। वर्षाऋतुमें जघन्य साधु भी गमन नहीं करते फिर परिहार विशुद्धि वाला क्यों करता है।	१३६ १३६
१२५	इन्द्रियोंके विषय कहीं तेईस और कहीं सत्ताईस लिखे हैं सो इनमें विशेषता क्या है।	१३८
१२६	नारकियोंके शरीरका रंग कैसा है	१३९
१२७	पृथ्वीकायादिक जीवोंके शरीरका रंग कैसा है	१३९
१२८	विग्रहगतिमें रहने वाले अनाहारक जीवोंके कार्मण योग के शरीरका वर्ण कैसा है	१३९
१२९	मिश्रयोग वाले जीवके शरीरका वर्ण कैसा है	१३९
१३०	कृष्णादि छहों लेश्यावालोंके लक्षण क्या क्या हैं	१४०

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
१३१	चारों ही गतिवाले जीवोंके वर्तमानकी अपनी आयुमें अन्यगतिका आयुबंध किस कालमें होता है और किस किस आयुका होता है।	१४२
१३२	दशलाक्षणिक आदि व्रतोंके पूर्ण होनेपर प्रतिष्ठा पूर्वक उद्यापन करनेकी आज्ञा है यदि किसीसे प्रतिष्ठा न हो सके तो वह व्रतोंको किस प्रकार करे	१४३
१३३	यदि कोई व्रत कुछ दिन करनेके बाद छूट जाय तो उसका क्या प्रायश्चित्त है। दुबारा पालन करनेकी विधि क्या है।	१४४
	व्रत भंग करनेसे कौनसा पाप लगता है।	१४५
१३४	भगवानकी पूजा निक्षेप विधियोंसे किस प्रकार की जाती है।	१४६
१३५	इस पंचम कालमें अतदाकार स्थापना करनी चाहिये या नहीं।	१५१
१३६	भगवानकी पूजाके समय स्नानादि किस विधि से करने चाहिये।	१५२
१३७	दक्षिण, पश्चिम वा विदिशाओंकी ओर मुँह करके भगवानकी पूजा क्यों नहीं करनी चाहिये।	१५३
१३८	भगवान्‌की पूजा बैठकर करनी चाहिये या खड़े होकर।	१५५
	खड़े होकर पूजा करनेमें क्या दोष है।	१५७
१३९	बैठकर पूजा करनेमें पूजा करने वालेकी दृष्टि भगवानके ऊपर नहीं रह सकती क्योंकि भगवान ऊँचे विराजमान रहते हैं और बैठकर पूजा करने वाला नीचा रहेगा। इसलिये बैठकर पूजा करना ठीक नहीं।	१५९
१४०	यदि प्रतिमाजी डेढ़ हाथकी ऊँचाई पर न हो नीची हों तो क्या करना चाहिये।	१६०
	यदि वेदी तीन चार हाथ ऊँची बना ली जाय और फिर खड़े होकर पूजा की जाय तो क्या दोष है।	१६०
	पूजाका फल तो भावोंसे लगता है फिर इतना विवाद क्यों करना चाहिये।	१६०
१४१	पूजा करनेवाला पूजनके लिये वस्त्र किस प्रकार धारण करता है।	१६१
१४२	वस्त्रोंमें ऐसा कौनसा दोष है जिसके कारण उसे छोड़ देना चाहिये।	१६१
१४३	त्रिकाल पूजाकी विधि क्या है।	१६२
१४४	सायंकालको जो दीप धूपसे पूजा की जाती है उसकी विधि क्या है।	१६३
१४५	भगवानकी पूजामें कैसे पुष्प चढ़ाने चाहिये और कैसे नहीं।	१६३
	पुष्प किस प्रकार चढ़ाने चाहिये।	१६३
१४६	प्रातःकालकी पूजायें जल चंदनसे हो पूजाका विधान बतलाया परन्तु पूजा अष्ट द्रव्यसे करनी चाहिये। जब विधान जल चंदनसे है फिर अष्ट द्रव्यसे कौन करेगा।	१६४
१४७	भगवानका ध्यान और वंदना किस विधिसे करनी चाहिये।	१६५
१४८	स्त्रियोंके लिये ध्यान वंदना करनेकी विधि क्या है।	१६५
१४९	गृहस्थोंको जो पहले पूजा करनेकी विधि बतलाई है वह संक्षिप्त विधि है इसकी विशेष विधि क्या है।	१६६
	ईर्यापथ शुद्धि पाठ	१६९
	दर्शनपाठ	१७०
	शांतिचक्र पूजा	१७२
	सकलीकरण विधान	१७३

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
	अग्निमंडल यंत्र	१७४
	जलमंडल यंत्र	१७५
	अंग न्यास	१७६
	दिशाबंधन	१७७
	कवच	१७७
	आह्वान मुद्रासहित	१७७
	स्थापना मुद्रासहित	१७७
	सन्निधिकरण मुद्रासहित	१७७
	पूजा	१७८
	सरस्वती पूजा	१७९
	गुरुपूजा	१७९
	सिद्धार्चन	१७९
	तिलक लगानेकी विधि	१७९
	किसको किस प्रकार तिलक लगाना चाहिये	१८०
	वस्त्राभरण धारण	१८२
	अभिषेक विधि	१८२
	गुरुमुद्राका स्वरूप	१८३
	शांतिचक्र स्थित देवताओंका पूजन	१८६
	मूल विद्याका जप	१९१
	जयमाला	१९१
	शांतिपाठ	१९२
	विसर्जन	१९३
	जिनालयमें जाकर पूजा करना	१९३
	जिनालयके कर्तव्य	१९४
१५०	अष्टांग पंचांग और पद्यवद्धशायि नमस्कारका स्वरूप क्या है	१९४
१५१	अर्घ्य और पाद्य किसको कहते हैं	१९६
१५२	मंगलार्घ्य किसको कहते हैं	१९६
१५३	नंद्यावर्तक स्वस्तिक किसको कहते हैं	१९७
१५४	आचमनकी विधि क्या है	१९८
१५५	नीराजन द्रव्यकी विधि क्या है।	१९८
१५६	सर्वौषधिमें कौन कौन औषधियां हैं	२००
१५७	सिद्धचक्रके यन्त्रका स्वरूप क्या है	२००
१५८	शान्तिचक्र यन्त्रका स्वरूप क्या है	२०१
२५९	कलिकुंड दंडे स्वामीका यन्त्र और उनकी विधि	२०५
१६०	ऋषिमंडलका स्वरूप क्या है और उसका आराधन किस प्रकार है	२०८
१६१	चिन्तामणि चक्रका क्या स्वरूप है	२११
१६२	गणधरवलय यन्त्रका स्वरूप तथा आराधन किस प्रकार है।	२१२
१६३	षोडसकारण यन्त्रकी विधि तथा पूजाकी विधि क्या है	२१५
१६४	दशलाक्षणिक धर्मके यन्त्रकी विधि तथा अर्चनादिकका क्या स्वरूप है	२१९
१६५	रत्नत्रय यन्त्रकी विधि तथा उसकी पूजाकी विधि क्या है	२२२
१६६	पूजा यन्त्रोंमें मन्त्रोंमें ओं और ह्रीं सब जगह आते हैं सो इनका स्वरूप क्या है, इनमें कौनसे परमेष्ठी हैं, कौनसे देव हैं, ये मन्त्र मुख्य क्यों हैं ओंकार पर अनुस्वार होना चाहिए अर्द्ध चन्द्राकार कला कैसी बीजाक्षरोंका नाम	२२४
१६७	'दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्' इसमें दर्शन शब्द दो बार लिखा है इसलिए एक बारका दर्शन शब्द व्यर्थ है। यदि दर्शन शब्द निकाल दिया जाय तो अक्षर कम हो जाते हैं इससे मालूम होता है कि यह किसी साधारण विद्वानका बनाया है	२२७

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
१६८	पहले पूजामें लिखा है कि पूजा करने वालेको भगवान-के चरण स्पर्शित पुष्पमाला कंठमें धारण करनी चाहिए, प्रभुके चरण स्पर्शित चंदनका तिलक लगाना चाहिए वा सब शरीरमें आभूषणोंकी रचना करनी चाहिए तथा जिनपादार्चनके अक्षत ललाटमें लगाना चाहिए ऐसा लिखा है सो यह लिखना अत्यन्त विपरीत है इसमें प्रत्यक्ष निर्माल्यका दोष आता है। निर्माल्यके समान और कोई पाप नहीं इसलिए ऐसा कहना भी पाप है। भगवानके चरणोंमें चन्दन लगाना चरणस्पर्शित पुष्पमाला पह-नाना अत्यन्त विपरीत है इसलिए नहीं मानना चाहिए	२३४
	यदि कोई तिलक न करे तो क्या दोष है	२४२
	भगवानके चरणोंपर गंध लगाना सरागताका कारण अनेक दोष उत्पन्न करने वाला है	२४३
	भगवानके चरणों पर गन्ध लगाना कहाँ कहा है	२४३
	हमारे भाव भगवानके चरणों पर चंदन लगानेके नहीं हैं तो वैसे ही पूजा करनेमें क्या हानि है	२५०
	भगवानके चरणों पर चन्दन लगाने और पुष्प चढ़ानेका कथन महापापरूप है इसी प्रकार कोई-कोई रात्रिमें पूजन करना कहते हैं सो महापापका कारण है इसे नहीं मानना चाहिए।	२५३
	मुनि वनमें ही रहते हैं मन्दिरोंमें नहीं इसका समाधान	२५५
	सचित्त पूजाका साधन	२५६
	अभिषेकादिमें महारम्भ होता है इसका समाधान	२५७
	अचित्त द्रव्योंमें निरवद्य पूजा हो सकती है फिर क्यों नहीं करनी चाहिये।	२६७
	अभिषेकका वर्णन शास्त्रोंमें कहाँ लिखा है	२६८
	यदि हम कोई महारम्भोंको छोड़कर थोड़ेसे आरम्भ वाले कार्य कर लेते हैं तो क्या हानि है	२७२
	क्षीरकदंबकी कथा	२७६
	इस पंचम कालमें जैन शास्त्रोंमें अनेक श्लोक मिला दिये हैं ऐसे कहनेवालेका समाधान	२७९
	हम लोग जल थोड़ा खरचते हैं तथा चढ़ाते नहीं, दीपक जलाते नहीं, रात्रिपूजन करते नहीं, अच्छी बातें करते हैं, बुरी छोड़ देते हैं इसका समाधान	२८१
	हमलोग जिनबिंबके चरणोंसे गन्धपुष्प हटाकर उसे निर्दोषकर पूजा करते हैं इसका समाधान	२८२
	अभिषेक करना जन्मकल्याणका कार्य है इसका समाधान	२८५
१६९	पूजामें दर्भ डाभ दूध गोमय भस्मपिंड सरसों आदि पदार्थ लिखे हैं सो ये पदार्थ तो अपवित्र हैं हिंसा आदि अनेक दोषों से भरे हैं इसलिये इनको पूजामें क्यों लेना चाहिये। तथा पूजाके अष्ट द्रव्य कौन कौन हैं	३०२
	डाभके भेद	३०३
१७०	पूजाकी विधिमें यक्ष, यक्षिणी, असुरेंद्र, इन्द्र, दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल आदिका स्थापन पूजन लिखा है सो यह तो जैनियोंके करने योग्य नहीं है यह तो मिथ्या-दृष्टियोंका काम है। यह तो मिथ्यादृष्टियोंने मिला दिया है सम्यग्दृष्टि तो प्राणान्त होनेपर भी इनको पूजादिक नहीं करता इसका समाधान	३०३
	शास्त्रोंमें लिखा है तो हम क्या करें हम कुदेवोंको नहीं मानते।	३१०
१७१	मंत्र शब्दका अर्थ क्या है	३१२
१७२	पूजा करनेवाला कैसा होना चाहिये	३१२

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
१७३	कैसे पुरुषको पूजा नहीं करनी चाहिये	३१४
	जिनसंहिताके मार्गको न जाननेके लिये पूजा करने का निषेध लिखा सो इसका क्या कारण है	३१६
	जिनसंहिताका अर्थ क्या है	३१६
१७४	यदि पूजा करनेके योग्य मनुष्य न मिले और अयोग्य मनुष्य पूजा कर ले तो क्या हानि है	३१७
	नित्यपूजा और प्रतिष्ठादि करनेवालोंमें भेद	३१७
१७५	पूजा करते समय यदि किसीके हाथसे प्रतिमा पृथिवी-पर गिर जाय तो उसका प्रायश्चित्त क्या है	३१८
१७६	यदि पूजा करते समय मंत्रपूर्वक नैवेद्यादिक चढ़ानेमें किसीसे वह नैवेद्यादिक पृथिवी पर गिर जाय, नियत स्थानपर न चढ़ाया जा सके तो उसका क्या प्राय-श्चित्त है।	३१८
१७७	यदि कोई हीन जातिका अस्पृश्य मनुष्य जिनबिंब का स्पर्श कर लेवे तो उस मूर्तिका क्या करना चाहिये	३१९
१७८	यदि स्पृश्य मनुष्य बिना स्नान किये जिनप्रतिमा का स्नान कर लेवे तो क्या करना चाहिये	३१९
१७९	यदि किसीके हाथसे प्रतिमाका भंग हो जाय तो क्या करना चाहिये	३२०
१८०	यदि क्षेत्रपालादिक यक्षोंको पूजाका द्रव्य गिर जाय तो क्या करना चाहिये	३२०
१८१	यदि जिनमंदिरमें हड्डी, मांस आदिके गिर जानेसे वह दूषित हो जाय अथवा उसमें चांडाल आदि अस्पृश्य मनुष्य घुस जांय तो क्या करना चाहिये	३२०
१८२	भगवानकी पूजा तीनों समय की जाती है यदि किसी समय वा दो समय वा एक दो चार आठ पंद्रह दिन एक महीने आदि तक प्रतिमाजीकी पूजन न हो तो क्या करना चाहिये।	३२१
	जो लोग इसके सिवाय और प्रायश्चित्त लेते हैं उसमें क्या हानि है	३२२
१८३	यदि कोई मनुष्य प्रायश्चित्तकी विधि न करें तो क्या हो	३२३
१८४	यदि किसी श्रावक-श्राविकासे अनाचार व हीनाचार बन जाय तो उसको क्या करना चाहिये।	३२४
	इस प्रायश्चित्तमें गोदान और ब्राह्मणोंको देना बत-लाया है सो यह तो जैनधर्मसे बाह्य है ऐसा श्रद्धान मिथ्या है	३३०
	यदि सम्यग्दृष्टी ब्राह्मण न मिलें तो क्या करना चाहिये	३३१
	जिनमंदिरोंमें गोदान करना कहाँ लिखा है	३३१
	प्रायश्चित्त ग्रन्थोंमें शिर मुंडन क्यों लिखा है यह तो अन्य मतियोंके यहाँ है।	३४१
१८५	मुनियोंके प्रायश्चित्तकी विधि क्या है	३४१
१८६	अर्जिकाओंके व्रताचरणमें कोई दोष लगे तो उसके प्रायश्चित्तकी विधि क्या है	३५८
१८७	अर्जिका रजस्वला समयमें क्या करे	३५८
१८८	जैनमतमें गृहस्थोंके सूतक पातकके विचारकी विधि क्या है	३६०
१८९	गोत्र वालेको सूतक किस प्रकार पालना चाहिये	३६२
	मुनिको अपने गुरु आदिके मरनेका सूतक किस प्रकार है तथा राजाके घर मृत्यु आदिका सूतक किस प्रकार है	३६२
१९०	गृहस्थोंके घर स्त्रियाँ रजस्वला होती हैं उनके योग्य अयोग्य अम्बरणकी विधि किस प्रकार है	३६३

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
१९१	यदि रजस्वला स्त्रीके पास बालक हो तो उसके स्पर्शा-स्पर्शकी शुद्धि किस प्रकार है	३६८
१९२	यदि रजस्वला रोगिणी हो, अशक्त हो तो उसको स्नानादिक किस प्रकार करना चाहिये	३६९
१९३	नव अनुदिशोंके नाम क्या हैं	३६०
१९४	जिन देवोंकी आयु सागरोंकी है उनका आहार उतने हजार वर्ष बाद और श्वासोच्छ्वास उतने ही पक्ष बाद होता है परन्तु जिनकी आयु पल्योंकी है उनके आहार और श्वासोच्छ्वासका क्या नियम है	३७०
१९५	क्या तीसरे नरकसे निकले हुए जीव तीर्थंकर हो सकते हैं	३७१
१९६	मनुष्य किस किस गतिसे आकर हो सकता है तथा किस किस गतिसे नहीं होता	३७३
१९७	अन्यमतके तपसी परिव्राजक आदि जो कुतप करते हैं वे मरकर ऊपर स्वर्गमें कहाँ तक जा सकते हैं।	३७३
१९८	क्या एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके सब जीव तीनों लोकमें भरे हैं	३७४
	पहले लिखा है कि देवोंके केश उत्पन्न नहीं होते सो केशों में ऐसा क्या दोष है	३७५
	क्या बिना केशोंके देवोंका मुँह बुरा मालूम होता है	३७६
२००	आश्रमोंमें रहने वाले त्यागी गृहस्थोंके बालकोंको पाँच उदंबर और मद्य, मांस, शहदका त्याग करा देते हैं परन्तु कितने ही अनाचारी किसी रोगमें वैद्योंके कहनेसे औषधि में शहद खा लेते हैं सो क्या ठीक है।	३७६
	शहदके बदले क्या लेना चाहिये।	३७७
२०१	कोई कोई लोग ऋषभदेव तीर्थंकरको तथा भरत चक्रवर्तीको भी कुलकर कहते हैं सो क्या यह ठीक है	३७८
	कुलकरोंको मनु कहते हैं सो कुलकर और मनुको निरुक्ति क्या है	३७९
२०२	मिथ्यात्व आदि चौदहों गुणस्थानोंमें कौन कौन संहनन होते हैं।	३७९
२०३	समवशरणमें जो अशोक, चंपक, आम्र, सप्तच्छद जातिके वृक्ष हैं सो सप्तच्छद कौनसा वृक्ष है।	३८०
२०४	पंच नमस्कार मन्त्र अनेक महिमाओंसे भरा है सो इसके अक्षरोंकी रचनाका स्वरूप क्या है इसमें कौन-कौन देव हैं किस धातुसे बना है उनका क्या अर्थ है क्या फल है।	३८१
२०५	तीर्थंकर आदि पदवीधर पुरुषों पर जो चमर ढुलाये जाते हैं उनका प्रमाण क्या है	४०८
२०६	स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्रके पशुपक्षियोंकी आयु उत्कृष्ट होती है परन्तु यहाँके पशुपक्षियोंकी कितनी है	४०९
२०७	कोई कोई लोग कहते हैं कि मांस भक्षणमें कोई पाप नहीं है क्योंकि जिस प्रकार अन्न प्राणियों का शरीर है उसी प्रकार मांस भी प्राणियोंका शरीर है, मांस खानेमें एक जीवकी हिंसासे अनेक जीवोंका पेट भर जाता है और अन्न खानेसे अनेक जीवोंसे एक मनुष्यका पेट भरता है इसलिए मांस भक्षणका निषेध करना ठीक नहीं है।	
	इसका समाधान	४०९
	वेद आदि शास्त्रोंमें लिखी हुई हिंसाका निषेध	४१२
	श्राद्धके लिये की हुई हिंसाका निषेध	४१७
	क्षत्रियोंका धर्म मांस खाना शिकार खेलना नहीं है	४१७
	परमतके ग्रन्थोंसे मांसका निषेध	४१९
	आयु पूर्ण हुए बिना जीव मरता ही नहीं इसका समाधान	४३५
	यह जीव पंच तत्वोंसे बना है इससे हिंसा अहिंसा कोई चीज नहीं है इसका समाधान	४३७

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
	शक्तिके लिये जीव मरनेका समाधान	४४०
	दूध, दही आदि मांसके समान नहीं है	४४०
	अपने आप मरे हुए जीवके मांस खानेमें पाप है मारकर खानेमें पाप नहीं इसका समाधान	४४१
२०८	कोई कोई कहते हैं कि ज्ञान दर्शन दोनों एक हैं भिन्न-भिन्न नहीं है इसलिए केवली भगवानके अनन्तचतुष्टय नहीं बन सकते।	४४३
	यदि केवली भगवान त्रिकालवर्ती पदार्थोंको देखते जानते हैं और फिर भी नरकादिके जीवोंका उद्धार नहीं करते, उनका दुख दूर करनेके लिए अवतार नहीं लेते तो कहना चाहिए कि वे बड़े निर्दयी हैं उन्हें हमारे ईश्वरके समान अवतार धारणकर सबकी रक्षा करनी चाहिये	४४४
२०९	कोई कहते हैं कि तुम्हारे निर्ग्रंथ गुरु प्रत्यक्ष रागी द्वेषी हैं जो नवधा भक्ति करता है उसके यहाँ आहार लेते हैं जो 'नमोस्तु' नहीं करता उसके घर आहार नहीं लेते हैं यह उनका अभिमान या रागद्वेष है इसका समाधान	४४५
२१०	मुनिराज अपने पास सदा पीछी रखते हैं उसके वियोगमें वे प्रायश्चित लेते हैं सो पीछीमें ऐसा क्या गुण है	४४६
२११	सिद्धक्षेत्रमें सबसे पहले कैलाश बतलाया है जहाँसे ऋषभदेव मोक्ष गये हैं तथा उसपर भरत चक्रवर्तीने बहत्तर चैत्यालय बनाये हैं तथा अन्यमती भी कैलाशको मानते हैं सो यह कहाँ है	४४७
२१२	शास्त्रोंमें पुरुषोंका उत्कृष्ट आहार बत्तीस ग्रास तक बतलाया है इसी प्रकार स्त्रियोंके आहारका प्रमाण क्या है	४४८
	एक ग्रासका प्रमाण क्या है	४४८
२१३	कोई कोई कहते हैं कि विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकरोंके पंच-कल्याणकोंका नियम नहीं है ज्ञानकल्याणक और मोक्ष-कल्याणक दो ही कल्याणकोंसे तीर्थंकर कहलाते हैं सो क्या ठीक है	४४८
	पांडुक शिलाएँ किस रंग की हैं	४४९
	किसी तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद किसी मुनिके सोलह कारण भावनाएँ पूर्वक केवलज्ञान हो जाता है और वह तीर्थङ्कर कहलाता है उसका नाम पहिले तीर्थङ्कर रख लिया जाता है इस प्रकार तीर्थङ्कर परंपरा बराबर बनी रहती है इसका समाधान	४५०
२१४	भगवान तीर्थङ्करके जन्माभिषेकके समय इन्द्रकी सवारी-के आगे जो सात प्रकारकी सेना गुणानुवाद करती चलती है वह किसके गुण गाती है	४५१
	वे देव किस-किस स्वरसे गुणानुवाद करते हैं	४५२
२१५	सातों ही नरकोंमें कोई महापापी जीव अलग-अलग नरकोंमें उत्कृष्टता कर कितनी-कितनी बार जन्म धारण करता है।	४५२
	नरकसे निकलकर किन-किन गतियोंमें जन्म लेता है	४५३
२१६	सातों नरकोंमें चौरासीलाख बिले कभी खाली रहते हैं या नहीं या उनमें नारकी सदा उत्पन्न होते रहते हैं	४५३
२१७	स्वर्गमें देवोंके उत्पन्न होनेमें कितना अन्तर रहता है	४५४
२१८	नरक और स्वर्गोंमें कौन-कौनसे सालकी प्रवृत्ति रहती है	४५५
२१९	स्वर्गके विमान आकाशमें किसके आधार पर स्थिर हैं	४५६
	यह लोक किसके आधार पर है	४५६
२२०	पंचमकालके अन्तमें जो एक मुनि, एक अर्जिका, एक श्रावक, एक श्राविका रहेंगी तो उनका क्या नाम होगा	४५७

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
	इनका मरण किस महीनेको किस तिथिमें होगा	४५७
२२१	असुरकुमारोंके इन्द्र, चमरेन्द्र और वैरोचन, सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्रसे युद्ध करने गये थे तब उन्होंने वज्र-प्रहार किया था और फिर वे दोनों भागकर पातालमें छिपे थे सो क्या यह कहावत सत्य है	४५८
	यह कहावत दिगम्बर आम्नायमें प्रसिद्ध क्यों है	४५८
२२२	भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव किस तपसे होते हैं	४५८
२२३	चतुर्णिकाय देवोंमें महा ऋद्धियोंको धारण करनेवाले इन्द्रादिक देव अपने आयु पूरीकर किस गतिको प्राप्त होते हैं	४५९
२२४	इस मध्यलोकमें जंबूद्वीपसे लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक कालचक्रका वर्ताव किस प्रकार है अर्थात् सुखमासुखमा आदि छहों कालोंमेंसे कौन-कौन काल कहाँ वर्तता है	४६०
२२५	यह जीव पात्रदानसे तो उत्कृष्ट वा मध्यमादिक भोग-भूमियोंमें जन्म लेता है परन्तु कुभोगभूमियोंमें किस कारणसे उत्पन्न होता है	४६२
२२६	मौनव्रतसे भोजन न करना सदोष बतलाया सो मौन कहाँ-कहाँ धारण करना चाहिये	४६३
२२७	छठे कालमें मनुष्य कैसे होंगे तथा उनका व्यवहार कैसा होगा	४६४
२२८	श्री महावीर स्वामीको तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामीको तपश्चरण करते समय उपसर्ग हुआ था परन्तु उस समय तीनों लोकोंके इन्द्रोंको व चतुर्णिकायके देवोंको मालूम नहीं हुआ था क्योंकि श्री पार्श्वनाथ पर सात दिन तक बराबर उपसर्ग होता रहा सात दिनके बाद धरणेंद्र पद्मावती आये और उपसर्ग दूर हुआ सो धरणेंद्र पद्मावती पहले क्यों नहीं आये। इसका कारण क्या है	४६४
	श्री पार्श्वनाथके तपश्चरण करते समय उपसर्ग हुआ था और उपसर्गके समय धरणेंद्र पद्मावतीने उनके मस्तक पर उस उपसर्गको दूर करनेके लिये सर्पका फण बनाया था तदनंतर भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल-ज्ञानके समय फणा नहीं रहा था तथा मूर्ति केवलज्ञानके समयको बताई जाती है और उस समय उनके मस्तक पर फणा था नहीं फिर अब उनकी मूर्तिपर फणा क्यों बनाया जाता है।	४६६
	हम तो परीक्षाप्रधानी हैं आज्ञाप्रधानी नहीं हैं इसका समाधान	४६७
२२९	पहिले हुंडावसर्पिणी कालदोषसे विपरीत आदि पाँच प्रकारके मिथ्यात्व बतलाये सो इन पाँचों मिथ्यात्वोंका स्वरूप क्या है।	४६९
	मिथ्यात्वोंकी उत्पत्ति	४७१
	सूर्यपूजाकी उत्पत्ति	४७४
	जैनमतमें उत्पन्न हुआ विपरीत मिथ्यात्व	४७५
२३०	ज्योतिषी देव मेरु पर्वतकी दक्षिणा देते हैं सो कितने अन्तरसे देते हैं	५१४
२३१	तीसरे वर्षमें एक अधिक मास होता है इसको ज्योतिषी आदि सब मानते हैं सो जैनमतके अनुसार मानना ठीक है या नहीं।	५१५
	हीनमास किस प्रकार होता है	५१५
	अधिकमासमें कार्य अकार्यकी विधि किस प्रकार है	५१५
२३२	तीर्थंकरोंके कल्याणकोंमें जो ऐरावत हाथी आता है वह एक लाख योजन ऊँचा है या एक लाख योजन उसका विस्तार है।	५१६

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
	भाषा मंगलमें उस हाथीके सौ मुँह बतलाए हैं सो क्या ठीक है	५१६
	भाषामंगलोंको काष्ठ संघका किस प्रमाणसे कहते हो	५१७
	सिंहासन पर कमलका वर्णन और जगह भी आया है	५१८
२३३	एक दिनके दीक्षित मुनिको सौ वर्षकी दीक्षित आर्यिका नमस्कार करे या नहीं	५१९
२३४	गृहस्थ वा मिथ्यादृष्टी वा स्पृश्य शूद्र वा अस्पृश्य शूद्र मुनिराजको वंदना करते हैं सो मुनिराज सबको एकसी धर्मवृद्धि देते हैं अथवा और भी कुछ कहते हैं।	५१९
२३५	श्रावक पुरुषोंको मुनियोंसे वा आर्यिकाओंसे नमोस्तु किस प्रकार करना चाहिये	५२०
	श्रावकोंको इच्छाकार बतलाया सो चौथे कालमें किसने किसकी किया है।	५२१
	परस्पर जो जुहार किया जाता है उसकी कथा क्या है	५२१
२३६	श्वेतांबरी साधु मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे जीवन पर्यंत छहों कायकी हिंसाके त्यागी होते हैं। यदि वे मुँहपर पट्टी न लगावें तो पाठ करते समय वा बोलते समय वायु कायके जीव मर जायँ तो फिर उनके अहिंसा महाव्रत पल नहीं सकता इसलिये क्या मुँहपट्टी लगाना दयाके लिये समझना चाहिये	५२२
२३७	श्वेतांबरी महाव्रती साधुओंको अठारह कुलोंका आहार लेना निर्दोष बताया है यदि किसी दातारका कुल शूद्र हो तो क्या दोष है?	५२३
२३८	इस चतुर्थकालमें जो धर्मका विच्छेद रहा था। मुनि-आर्जिका, श्रावक-श्राविका नहीं रहे थे सो कौनसे समयमें किन तीर्थंकरोंके समयमें और कितने काल तक विच्छेद रहा था	५२४
२३९	तीर्थंकर भगवान गृहस्थाश्रममें जन्म दिनसे लेकर दीक्षा-समयतक जो वस्त्राभरण पहनते हैं सो देवोंके यहाँसे आये हुये पहनते हैं सो वे वस्त्राभरण पहनते आते हैं और उन्हें कौन लाता है	५२५
२४०	इस समयके जिनाश्रमी भोजनके समय वस्त्रोंको उतार-कर नग्न होकर भोजन पात्र करते हैं सो इसका क्या अभिप्राय है।	५२६
२४१	पाँचों ज्ञानोंमेंसे किसी एक जीवके एक ही समयमें अधिक-से अधिक कितने ज्ञान हो सकते हैं सब हो सकते हैं या नहीं।	५२७
२४२	चतुर्णिकाय देवोंके मैथुन किस प्रकार होता है किसके समान होता है। सबके समान होता है। या अलग अलग रूपसे।	५२७
२४३	यदि किसी मुनिके घाव या फोड़ा हो जाय तो भक्त श्रावकजन उसको अच्छा करनेके लिये किसी शस्त्रके द्वारा उसकी चीरफाड़ कर सकते हैं या नहीं, चीरफाड़ करनेसे उनको अधिक वेदना होगी सो करनी चाहिये या नहीं	५२८
	यदि उपाय करते हुये उसकी वेदनासे मुनिका मरण हो जाय तो पापका बंध होगा या नहीं	५२९
२४४	चार्वाकमतवाला आत्माको कोई अलग पदार्थ नहीं मानता और सांख्यमतवाला उसे सदा मुक्त मानता है इसलिये ये दोनों ही मोक्षके उपायको व्यर्थ मानते हैं सो क्या ठीक है	५२९
२४५	तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्दर्शन बतलाया तथा उसकी उत्पत्ति निसर्ग और अधिगमसे बतलाई सो क्या उसकी उत्पत्तिके ये ही दो कारण हैं या और भी हैं	५३१

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
२४६	धर्मध्यानके चार भेद हैं आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय और संस्थान विचय। इनके सिवाय धर्मध्यानके और भेद कौन-कौन हैं	५३२
२४७	पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ये चार भेद कौन-कौन-से ध्यानके हैं।	५३४
२४८	ऊपर जो धर्मध्यानोंके भेद लिखे हैं सो किसकिस गुण-स्थानमें होते हैं	५३४
२४९	जो शुद्ध आत्मध्यानके वा शुद्धोपयोगके कारण हैं ऐसे अध्यात्मरूप जैन सिद्धान्तोंके पढ़ने वा सुननेका अधिकार गृहस्थको है या नहीं।	५३५
	गृहस्थोंको सिद्धांत ग्रन्थोंके अध्ययन करनेका निषेध है सुनने-वाचनेका निषेध नहीं है।	५३६
	श्रावकोंको सिद्धांत ग्रन्थोंके पठन-पाठनका तथा वीरचर्या प्रतिमा योग आदिका निषेध किया तो फिर श्रावकोंको करना क्या चाहिये	५३६
	इस समय जो सिद्धांत ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनका निषेध नहीं है। गृहस्थोंके न बाचने योग्य ग्रन्थ तो और ही हैं जो इस समय उपलब्ध नहीं हैं। जो मुनियोंके ही पढ़ने योग्य हैं जैसे एक अक्षर संयोगी दो अक्षर संयोगी तीन वा चार अक्षर संयोगी इस प्रकार चौसठ अक्षरके संयोगी अक्षरोंके पढ़नेका निषेध किया है इसका समाधान	५३७
२५०	यदि गृहस्थ सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन न करे तो उसको शुद्ध आत्मज्ञान किस प्रकार हो। आत्मज्ञान के बिना शुद्ध-ध्यान नहीं हो सकता। शुद्ध ध्यान ही मोक्षका कारण है इसलिये अध्यात्म ज्ञानियोंको व्यवहार धर्म न मान-कर शुद्धोपयोगमय ग्रन्थ मानने चाहिये, पुराणादिक गौण मानने चाहिये इसमें क्या हानि है।	५३८
	वर्तमान समयके शास्त्रोंमें जो कथन है सो कहीं-कहीं संदेह सहित है इसलिये वे पूर्ण प्रमाण नहीं कहे जा सकते।	५३९
	निश्चयधर्मको माने बिना सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति किस प्रकार होगी।	५४५
	इस समय जो लाखों जैनी हैं सो क्या बिना सम्यग्दर्शनके धर्म पालन करते हैं।	५४५
२५१	जिन प्रतिमाके जंगम और स्थावर ऐसे दो भेद सुने हैं सो इसका क्या अभिप्राय है।	५४६
	ऊपर जो कथन किया है सो मूल गाथाओंका नहीं है टीकाका है इसलिये प्रमाण नहीं है। इसलिये हम अरहंत, सिद्धोंको तो मानते हैं परन्तु उनकी प्रतिमाओंको नहीं मानते। धातु पाषाणकी प्रतिमा मोक्षका कारण नहीं है केवल असमझ लोगोंके लिये है। आत्मज्ञानियोंके लिये नहीं। सो ही योगसारमें लिखा है, चाणिक्यमें लिखा है इसलिये प्रतिमा मानना, उसकी पूजा करना व्यर्थ है प्रतिमाकी पूजा करनेमें अनेक प्रकारकी हिंसा होती है। धर्म अहिंसारूप है इसलिये प्रतिमापूजन धर्म नहीं है पाप है इसका समाधान	५४७
	नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि पूजाओंके भेद—	५५०
	लुंकामत वा ढूंढिया कहते हैं कि हमारे सूत्रमें प्रतिमा तथा मंदिर पूजाका निषेध किया है प्रतिमा पूजनमें हिंसादिक महापाप होता है जो प्रतिमा पूजन करते हैं वे कोयलेके लिये चंदन जलाते हैं मूर्ख हैं इसलिये प्रतिमा-की पूजन करना भारी भूल है इसका समाधान	५५४

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या
२५२	कोई कहते हैं कि जैनधर्म नास्तिक मत है इसलिये प्रशंसनीय नहीं है। चाहे हाथीसे दबकर मर जाना चाहिये पर जैन मन्दिरमें नहीं जाना चाहिये। इसका समाधान	५६१
२५३	जैन शास्त्रोंमें सात नरकस्थान बतलाये हैं सो कौन कौन हैं	५६६
२५४	नमस्कार मंत्रमें पंच परमेष्ठीको स्मरण किया परंतु चत्तारि मंगलं आदि पाठमें अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्मका स्मरण किया सो इसमें आचार्य, उपाध्यायोंको क्यों छोड़ दिया इसका क्या कारण है।	५६७
	चर्चासागर किन-किन ग्रन्थोंसे लेकर बनाया है इसमें अनेक ग्रन्थोंके श्लोक देकर शास्त्रको क्यों बढ़ाया, क्यों परिश्रम किया नाम ही कह देते थे	५७१
	यदि किसीके हृदयमें प्रमाणरूप शास्त्रोंके वचनोंको देखकर भी संदेह दूर न हो तो क्या करना चाहिये अपनी लघुता	५७२
	शास्त्र बनानेका कारण	५७४

शास्त्रजी बाँचनेसे पहिले बोलनेका मङ्गलाचरण

ओं नमः सिद्धेभ्यः

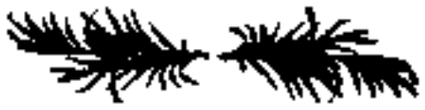
ओंकरं विंदुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितं ॥ २ ॥

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसः परिवर्द्धकं
धर्मसंदेहकं भव्यजीवप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्रीचर्चासागरनामधेयं ।
अस्य मूलग्रंथकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तत्प्रत्युत्तरग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां
वचोऽनुसारतामासाद्य श्रीपंडितचंपालालेन विरचितं । श्रोतारः सावधानतया शृण्वंतु ।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्या, जैनधर्मोऽस्तु मंगलं ॥



नमः सिद्धेभ्यः

स्वर्गीय पंडित चंपालालजी विरचित

चर्चासागर

मंगलाचरण

चौपाई

श्रीजिनवासुपूज्य शिवदाय । श्रीचंम्पा[1] कल्यान लहाय ।
विघ्नविदारन मंगलदाय । सो बंदो शरणाय सहाय ॥ १ ॥
बंदूँ श्रीवृषभेष जिनेश । वर्द्धमान लगं पाय हमेश ।
श्रीसीमंधरादि जिन बीस । विनऊँ क्षिति धर कर पुनि शीस ॥ २ ॥
तीस चोइसी पद शिरनाय । नमूँ केवली शिवसुखदाय ।
सिद्धालयवासी श्रीसिद्ध । नमूँ नमूँ मुझ द्यो निज ऋद्ध ॥ ३ ॥
आचारज युत पंचाचार । पाठक सकल साधु गुणकार ।
ताके पदपंकज शिरनाय । नमूँ शारदा शिव सुखदाय ॥ ४ ॥

१. ग्रन्थकर्तानि अपना नाम 'चंपा' अर्थात् चंपालाल दिया है । तथा दूसरा अर्थ—चंपापुरमें श्रीवासुपूज्य स्वामी के पाँचों कल्याणक हुए हैं । २. तक ।

शिवसुखदायक है जिनधर्म। रत्नत्रयमय नठ अठकर्म।
हैं त्रिलोकमें श्रीजिनरूप। जिनमंदिर पुनि विविध स्वरूप ॥ ५ ॥
कृत्रिम और अकृत्रिम सार। नमूँ नमूँ भुवि कर शिर धार।
चर्चासागर नाम सुग्रंथ। संशयनाशक सुर शिवपंथ ॥ ६ ॥
विरचूँ देखि सिद्धांत अनेक। अवर पुराणादिक संविवेक।
पंचमकालविषैं जिनपंथ। संशयरूप लखे विन मंथ ॥ ७ ॥
रूंमझे विनसमझे बहु लरैं। ह्वै एकांत पक्षकूँ धरैं।
झगडतही सब जन्म गमाय। जिनश्रुतमर्म न रंच लहाय ॥ ८ ॥
यातैं केतेइक जो भर्म। दूर करनकूँ रचूँ सुमर्म।
पंडित अवर इतरजन सँहू। हँसियो मति यह लखि श्रुत कहूँ ॥ ९ ॥
व्याकरणादिक कोष सु छंद। अलंकार आदिक श्रुतवृंद।
सो मैं पढ्यो न, मानों बात। यातैं भूलि देखि क्षमि भ्रात ॥ १० ॥
रागी द्वेषी परमें सुनी। उद्धत परमादी अर गुनी।
हमपर क्षमियो सब मम मित। द्वेषभाव हरि रहो निचित ॥ ११ ॥
हम परसंशय मेटनकाज। करें वचनिकारूप समाज।
पंडित मूरख सबही पढैं। यातैं जैनपंथ नित बढैं ॥ १२ ॥

दोहा

यह विचार इस ग्रंथकूँ, रचूँ स्वपर हित काज।
शारदको पुनि बंदिकैं, लहूँ श्रुतार्णव पाज ॥ १३ ॥

१. देखकर। २. विचार। ३. ज्ञानी तथा अज्ञानी। ४. सब। ५. पाज–किनारा वा पार।

सज्जन जनतैं वीनती, करूँ सुनहु मम भ्रात।
अल्पबुद्धि परमादतैं, लिखूँ चूकि अकुलात ॥ १४ ॥
तो श्रुतधारी वीर तुम, दयाभाव उर लाय।
पढहु शुद्धकरि ग्रंथकूँ, यह मम वच सुखदाय ॥ १५ ॥

इस प्रकार अपने इष्ट देवको अच्छी तरह नमस्कार करके वा मंगलाचरण करके चर्चासागर ग्रन्थ लिखता हूँ। इस ग्रन्थके लिखनेका खास कारण यह है कि इस समय इस कलिकालमें मिथ्यात्व और तीव्र कषायके उदयसे तथा किन्हीं-किन्हीं सत्पुरुषोंकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो जानेसे और पक्षपात बढ़ जानेसे जीवोंके हृदयमें इस पवित्र जैनधर्ममें भी अनेक प्रकारके संशय उत्पन्न हो गये हैं। जिससे वे पदार्थोंके स्वरूपका श्रद्धान और ही प्रकार करने लग गये हैं। तथा जो अज्ञानी जन हैं, वे अपनी प्रवृत्ति अन्यथा रूप (वा शास्त्राज्ञाके विपरीत) करने लग गये हैं और ऐसे लोग अपना हठ किसी प्रकार नहीं छोड़ रहे हैं उन लोगोंको समझानेके लिये अनेक जैन शास्त्रोंको देखकर यह निसंदेह चर्चा लिखता हूँ। इस चर्चा ग्रन्थके लिखनेमें मेरा और कोई खास कारण (प्रयोजन) नहीं है।

जिस प्रकार पहले चर्चाशतक, चर्चासमाधान और चर्चा कोश आदि ग्रन्थ बने हैं उसी प्रकार यह चर्चासागर लिखा है। इसलिये हे सज्जन पुरुषो ! तुम इसे पढ़ो, सुनो। यह शास्त्र अपने और दूसरोंको समझनेके लिये सबका हित करनेवाला समझ कर लिखा है।

इस शास्त्रको समुद्रकी उपमा दी है सो जिस प्रकार समुद्र अगाध है उसी प्रकार इस शास्त्रमें जिनवाणीका रहस्य अगाध है। जिस प्रकार समुद्रके दो तट वा किनारे हैं, उसी प्रकार इस शास्त्रके भी आदि अन्त दो तट हैं। जिस प्रकार समुद्र मर्यादासहित है उसी प्रकार यह ग्रन्थ भी आचार्योंके वचनोंकी आम्नायरूपी मर्यादा कर सहित है। जिस प्रकार समुद्रमें अनेक पर्वत और द्वीप हैं उसी प्रकार इस शास्त्ररूपी समुद्रमें भी अनेक प्रश्न रूपी ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं तथा उनके उत्तररूपी अनेक द्वीप हैं। जिस प्रकार समुद्रके द्वीपादिकोंमें अनेक रत्न आदि पदार्थ भरे हुए हैं उसी प्रकार इस ग्रंथमें भी भगवान् जिनेन्द्रके गुणोंको प्रकाशित करनेवाले अनेक रत्न हैं। जिसप्रकार समुद्रमें अनेक तरंगें उठती हैं उसी प्रकार ग्रन्थमें भी अनेक शंका समाधानरूपी तरंग हैं।

समुद्रमें जिस प्रकार अनेक नदियोंका समागम होता है उसी प्रकार इस ग्रंथमें भी अनेक शास्त्रोंके प्रमाणरूप गाथा, श्लोक आदि नदियोंका समागम हुआ है। जिस प्रकार समुद्रमें बडवानल है उसी प्रकार इस शास्त्रमें भी ज्ञान-रूपी बडवानल है। जिस प्रकार समुद्रमें अनेक मगरमच्छ आदि दुष्ट जीव संचार करते हैं उसी प्रकार इस शास्त्रमें भी अनेक प्रकारके पक्षपाती, एकांत विपरीत आदि मिथ्यात्वको धारण करने वाले, दूसरोंकी निन्दा करनेवाले, रागी, द्वेषी आदि जीवोंके हृदय (विचार) रूपी मगरमच्छोंका संचार हुआ है। जिस प्रकार समुद्रमें अनेक जहाज गमन करते हैं उसी प्रकार इस ग्रन्थमें भी गुरुके वचनरूपी जहाज गमन करते हैं। जिस प्रकार समुद्रका जल बहुत खारा है उसी प्रकार इस ग्रंथका शास्त्रोक्त वचनरूपी शास्त्रोंकी बातोंका न माननेवाले हठ-ग्राही लोगोंको बहुत खराब लगता है। तथा जिस प्रकार समुद्रमें भ्रमर पड़ते हैं उसी प्रकार इस शास्त्ररूपी समुद्रमें शास्त्रोंके मर्मको न जाननेवाले जीवोंके प्रवेश करते ही अनेक प्रकारके भ्रमरूपी भ्रमर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार समुद्रमें अनेक गुणोंसे सुशोभित यह चर्चासागर शास्त्र है।

यहाँपर किसीने पूछा कि शास्त्र शब्दका क्या अर्थ है इसके उत्तरमें ग्रंथकार कहते हैं कि शास्त्र शब्द शास् धातुसे बना है। शास् धातुका अर्थ अनुशासन करना अथवा शिक्षा देना है। जिसकी आज्ञाको सब लोग मानें अथवा जिससे अपने आत्मकल्याणकी शिक्षा प्राप्त हो, उसको शास्त्र कहते हैं, इससे भी आत्मकल्याणकी शिक्षा मिलती है। अथवा भगवान् अरहंत देवकी आज्ञानुसार कथन करनेसे इसको आज्ञा भी समस्त भव्य जीव मानते हैं इसलिये इसको शास्त्र कहते हैं। आगे अनुक्रमसे चर्चाओंका आरंभ करते हैं।

१-चर्चा पहली

प्रश्न—श्रीअरहंत भगवान्के समवशरणकी गंधकुटीके प्रथम द्वारपर जिनराजके सामने तथा शाश्वत अकृत्रिम जिनालयोंकी गंधकुटीमें जिनप्रतिमाके आगे अष्टमंगल द्रव्य रक्खे रहते हैं सो वे कौन-कौन हैं।

समाधान—भगवान्के सामने रक्खे हुए ये अष्टमंगल द्रव्य बड़ी शोभासे सुशोभित हैं उनके नाम ये हैं—झारी, कलश, ठोना, (स्थापना) सुप्रतिष्ठ, तालव्यजन (पंखा), दर्पण, चमर, छत्र, ध्वजा। ये आठ मंगलद्रव्य हैं इनमें कहीं-कहीं स्वस्तिक भी आता है परन्तु वहाँपर स्वस्तिकका अर्थ ठोना ही करना चाहिये। देखो श्री जिनसेनाचार्यविरचित आदिपुराण पर्व बाईसवां श्लोक २९१—

"सतालमंगलच्छत्रचामरध्वजदर्पणः ।
सुप्रतिष्ठं च भृंगारः कलशः प्रतिगोपुरम् ॥

इसी प्रकार लब्धिविधानमें भी लिखा है ।

"छत्रचामरभृंगारकलशध्वजदर्पणः । सुप्रतिष्ठकतालाश्च शोभंते गोपुरं प्रति ॥ १३६ ॥"

इसी प्रकार श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित त्रिलोकसार में लिखा है—

"भिंगारकलशदप्पणवीयणधयचामरादवत्तमहा ।
सुवइट्ठ मंगलाणि य अट्ठुत्तियसयाणि पत्तेयं ॥ ९८९ ॥"

इस प्रकार अष्टमंगल द्रव्य कहे हैं । कोई-कोई लोग इनमें कांस्यताल और सिंहासन बतलाते हैं सो मिथ्या है । शास्त्रोंमें तो ऊपर लिखे ही बतलाये हैं । तथा मंगलद्रव्य आठ ही हैं इनके सिवाय जो लोग कहते हैं वे शास्त्रोंसे अनभिज्ञ हैं ।

२–चर्चा दूसरी

प्रश्न—"श्रीमहावीर स्वामीने जन्मकल्याणके समय अभिषेकके लिये पांडुकशिलापर विराजमान होते हुए इंद्रका संदेह दूर करनेके लिये अपने पैरका अँगूठा दबाकर सुदर्शनमेरुको कंपायमान किया" । ऐसा श्वेतांबरी कहते हैं सो जैनमतमें इसका समाधान किस प्रकार है ?

समाधान—दिगंबरमतमें भी काष्ठासंघ संप्रदायमें भी इसी प्रकार कहा है, देखो श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण पर्व दूसरा ।

पादांगुष्ठेन यो मेरुमनायासेन कंपयत् ।
लेभे नाम महावीर इति नाकालयाधिपात् ॥ ७६ ॥

इस प्रकार कहा है तथा इन्द्रके द्वारा महावीर नाम भी इसी कारण पाया है । इसके सिवाय भगवान-

१. जिसने अपने पैरके अँगूठेको दबाकर विना किसी परिश्रमके मेरुपर्वतको कंपायमान कर दिया और इसीके लिये इन्द्रसे महावीर नाम पाया ।

के वश अतिशय जन्मसे ही होते हैं उनमें एक अतुलबल नामका अतिशय है इसलिये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अतएव मेरुपर्वतको कंपित किया मानना सत्य है। रावणने भी बालिमुनिसे बैर विचार कर कैलाश पर्वतको उठाया था। उस समय श्रीबालिमुनिने वहाँके जिनबिंब तथा जिनमंदिरोंकी रक्षाके लिये अनेक जीवोंकी रक्षाके लिये अपने पैरका अँगूठा दबाकर कैलाशको स्थिर रखना चाहा था। उस समय रावण कैलाशके नीचे दब गया था इत्यादि वर्णन पद्मपुराणमें लिखा है। फिर भला श्रीमहावीर स्वामीके द्वारा मेरु पर्वतके कंपित होनेमें क्या संदेह है। हाँ, यह कथन मूलसंघमें नहीं है।

३–चर्चा तीसरी

प्रश्न—भगवान्के माता-पिताके नीहार है या नहीं ?

समाधान—छद्मस्थ* तीर्थंकर प्रभुके, तीर्थंकरके माता-पिताके, बलभद्र, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और समस्त भोग-भूमियाँ जीवोंके आहार तो है परन्तु मलमूत्ररूप नीहार नहीं है। ऐसा नियम है, सो ही षट्पाहुड टीकामें लिखा है।

"तित्थयरा तप्पियरा हलहरचक्कीइवासुदेवा हि।
पडिवासु भोगभूमिय आहारो णत्थि णीहारो"॥

४–चर्चा चौथी

प्रश्न—मुनिराज जो केशलोंच करते हैं सो कहाँ-कहाँके केश उखाड़ते हैं और कहाँ-कहाँके नहीं उखाड़ते हैं।

समाधान—मुनिराज शिरके और दाढ़ी मूँछके केश उखाड़ते हैं काँख और नीचके लिंग वृषणके केश नहीं उखाड़ते। काँख और लिंग वृषणके केशोंकी रक्षा करते हैं, ऐसी आम्नाय है। मुनियोंको लोच करना इसी प्रकार कहा है। चारित्रसार में लिखा है—"शिरःमुखस्मश्रुलोचोऽयःकेशरक्षणमिति"। इसी प्रकार इन्द्रनंदि सिद्धांतचक्रवर्तीने नीतिसारमें लिखा है—"अचेलत्वं शीर्षकूर्चलोचोऽयःकेशधारणमिति। इस प्रकार जानना।

५–चर्चा पाँचवीं

प्रश्न—मुनिराजके लोचकी विधि तो जानी परंतु तीर्थंकर भगवान् दीक्षासमय जो पांचमुष्टी लोंच करते हैं सो किस प्रकार करते हैं ?

समाधान—तीर्थंकर भगवान् मुनियोंके समान लोच नहीं करते क्योंकि उनके दाढी मूँछ होते ही नहीं हैं। तीर्थंकर भगवान् तो सदा सोलह वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके समान (विना दाढी मूँछके) अपने रूपसे सुशोभित रहते हैं। इसलिये भगवान् जो पंचमुष्टि लोच करते हैं सो केवल शिरका ही पंच मूठियोंसे लोच करते हैं। यदि ऐसा नहीं माना जायगा तो मुनिराजके समान तीर्थंकरोंका केशलोच बन नहीं सकेगा, क्योंकि उनके दाढी मूँछके केश लोच करने योग्य होते ही नहीं हैं फिर भला उनके लोचकी संभावना हो ही कैसे सकती है। लिखा भी है—

"देवावि णारया वि य भोगभुवा चक्किजिणवरिंदाणं।
सव्वे केसव रामा कामा विणिकुंचिया हुंति" ॥

अर्थात् चतुर्णिकायके देव, नारकी जीव, भोगभूमिया, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, नारायण, बलभद्र और कामदेवोंके मुखपर दाढी मूँछोंके बाल नहीं होते हैं। भावार्थ—इन सबके हमेशा नवयौवन अवस्था बनी रहती है। नारकी जीवोंको छोड़कर बाकीके ऊपर लिखे सब जीवोंके केवल शिरके बाल होते हैं सो भी सोलह वर्षकी अवस्थावाले पुण्यपुरुषके समान सुशोभित रहते हैं। अन्य साधारण पुरुषोंके समान न तो विशेष उत्पन्न होते हैं और न विशेष बढ़ते हैं। केवल शोभारूप उत्पन्न होते हैं और शोभारूप ही बढ़ते हैं। इसीलिये ऊपर लिखे जीवोंके क्षौर-कर्म (बाल बनवाना) नहीं होता है। अर्थात् तीर्थंकरादिक कभी बाल नहीं बनवाते। क्योंकि वे इतने बढ़ते ही नहीं हैं। इसके सिवाय एक और बात यह भी है कि यदि तीर्थंकरोंके मुखपर दाढी मूँछके बाल माने जायें तो उनकी प्रतिमामें भी दाढी मूँछके बाल मानने पड़ेंगे, परंतु ऐसा है नहीं। इसलिये तीर्थंकरोंके दाढी मूँछ का अभाव ही है। जिनप्रतिमामें दाढी मूँछोंके बालोंके सिवाय भौंहके बालोंका भी निषेध है। लिखा भी है—

"कर्णादिरोमहीनांगं श्मश्रुरेखाविवर्जितम् ।
स्थितं प्रलंबितहस्तं श्रीवत्साढ्यं दिगम्बरम्" ॥

६–चर्चा छठी

प्रश्न—कोटिशिलासे एक करोड़ मुनिराज मोक्ष पधारे हैं । उस कोटिशिलाको नारायण उठाते हैं सो वह कोटिशिला किस जगह है ?

समाधान—वह कोटिशिला नाभिगिरि पर्वतके मस्तक पर है । वह एक योजन ऊँची और आठ योजन चौड़ी है । तथा अनेक मुनिराजोंका वह सिद्धस्थान है। ऐसी कोटिशिलाको हमारा नमस्कार हो । यही बात सोमसेनकृत पद्मपुराणमें बाईसवें अधिकारमें लिखी है—

"रावणेन पुरा पृष्टोऽनंतवीर्यो मुनीश्वरः ।
आत्मनो मरणं कस्य हस्ते देव ! भविष्यति ॥ १८ ॥
तेनोक्तं सिद्धशिलां यः उद्धरेत्स्वपराक्रमात् ।
स एव हन्यते त्वां हि चक्रेण चामुना दृढम् ॥ १९ ॥
एतच्छ्रुत्वाह लक्ष्मीश उद्धरिष्यति नान्यथा ।
ततस्तेऽथ विमानस्थास्तां शिलां प्रति निर्गताः ॥ २० ॥
जांबूनदश्च सुग्रीवो नलनीलौ विराधितः ।
इत्यादि बहवो वीरा रात्रौ प्राप्ताश्च गह्वरम् ॥ २१ ॥
नाभिगिरिशिरोदेशे शिला योजनमुत्थिता ।
अष्टयोजनविस्तीर्णा सिद्धस्थानं मुनीशिनाम् ॥ २२ ॥

१. प्रतिमा ऐसी होनी चाहिये जिसपर भौंह दाढी, मूंछके बाल न हों, खड्गासन हो, हाथ लटकते हों, श्रीवत्सका चिह्न हो और दिगम्बर हो ।

तत्रावतीर्य तै सर्वैः सा शिला पूजिता परम्।
गंधाक्षतादिभिः पुष्पैः सुरासुरैश्च सेविता*" ॥ २३ ॥

इत्यादि और भी वर्णन है। जांबूनद आदि विद्याधर उसी रातको लक्ष्मणको विमानमें बिठाकर कोटिशिलाके समीप ले गये थे। इससे सिद्ध होता है कि—कोटिशिला नाभिगिरि नामक पर्वतके मस्तक पर ही है। कितने ही लोग कोटिशिलाको तारंगा आदि अन्य क्षेत्रस्थानोंमें मानते हैं सो भ्रम है।

७-चर्चा सातवीं

प्रश्न—मुनिराज बिना पीछीके चलें या नहीं ?

समाधान—यदि मुनिराज किसी जगह परवश होकर बिना मयूरपीछीके गमन करें तो फिर वे उसका प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करते हैं। बिना पीछीके गमन करनेपर बिना प्रायश्चित्त लिये मुनिराज कभी नहीं रहते। बिना पीछीके गमन करनेका प्रायश्चित इस प्रकार है—यदि मुनिराज बिना पीछीके सात पैंड गमन करें तो एक कायोत्सर्ग धारण कर शुद्ध होवें। यदि एक कोस चलें तो एक उपवास कर शुद्ध होवें। यही बात चारित्रसारमें लिखी है—

"सप्तपादेषु निःपिच्छः कायोत्सर्गाद्विशुद्धयति। गव्यूतिगमने शुद्धिमुपवासं समश्नुते* ॥"

कितने ही लोग मुनीश्वरोंका स्वरूप पीछी कमंडलुसे रहित मानते हैं परन्तु उनका यह मानना मिथ्या है। जो मुनीश्वरोंका स्वरूप पीछी रहित मानते हैं वे जिनमतसे बाह्य हैं। ऐसे ही लोग जिनमार्गमें भेद उत्पन्न करनेवाले हैं। यही बात नीतिसारमें लिखी है—

---

* इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है कि रावणने स्वामी अनंतवीर्यसे पूछा था कि मेरी मृत्यु किसके हाथसे होगी तब भगवान्‌ने कहा था कि जो कोटिशिलाको उठावेगा वही तुझे इसी चक्रसे मारेगा। यही बात जांबूनद आदि विद्याधरोंने लक्ष्मणसे कही थी तथा वे विद्याधर लक्ष्मणको विमानमें बिठाकर नाभिगिरि पर्वतपर कोटिशिला उठवानेको ले गये थे। वह शिला आठ योजन चौड़ी एक योजन ऊँची थी। उन विद्याधरोंने तथा लक्ष्मणने उस शिलाकी पूजा की थी।

* अभिप्राय यह है अत्यन्त आवश्यकता पड़नेपर मुनिराज बिना पीछेके चल सकते हैं परन्तु उन्हें उसका प्रायश्चित्त अवश्य लेना पड़ता है। देखो 'प्रायश्चितसमुच्चय चूलिका' पृष्ठ १६८।

"कियत्स्यपि ततोऽतीते काले श्वेताम्बरोऽभवत्। द्राविड़ो यापनीयश्च केकीसंघश्च मानतः ॥
केकीपिच्छः श्वेतवासो द्राविडो यापनीयकः। निःपिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥"

इससे सिद्ध होता है कि जो मुनियोंको पीछी रहित मानते हैं वे जैनाभास हैं, साक्षात् जैनी नहीं हैं इसलिये पीछी कमंडलुके बिना मुनिका स्वरूप बन ही नहीं सकता।

८–चर्चा आठवीं

प्रश्न—श्रीमुनिराज कारण मिलनेपर जलमें प्रवेश करें या नहीं ? तथा नाव आदि पानीकी सवारी में बैठें या नहीं ?

समाधान—जो महाव्रती मुनि अपने वा परके लिए जलमें प्रवेश करें अथवा नावमें बैठकर पार उतरें तो वे उसका प्रायश्चित्त लेते हैं। वह प्रायश्चित्त इस प्रकार है—यदि मुनि चार अंगुल जलमें प्रवेश करें तो एक कायोत्सर्ग धारण करें। यदि घुटनेतक जलमें प्रवेश करें तो एक उपवास धारण करें। यदि घुटनेसे चार-चार अंगुल अधिक जलमें प्रवेश करें तो दूना-दूना उपवास करें। यदि सोलह धनुष पर्यन्त जलमें प्रवेश करें तो कायोत्सर्ग उपवास आदि उससे भी अधिक-अधिक करें। यदि अपने वा दूसरेके लिये नावमें बैठकर पार उतरें तो ज्ञानी और अनेक कलाओंके जानकार वा समयके जानकार आचार्य यथायोग्य थोड़ा वा बहुत प्रायश्चित्त देवें। यही बात श्रीइन्द्रनंदि विरचित प्रायश्चित्त ग्रंथमें लिखी है—

"जानुदघ्ने तनूत्सर्गः क्षमणं चतुरंगुले। द्विगुणाः द्विगुणास्तस्मादुपवासाः स्युरम्भसि ॥३९॥

---

१. कितना ही काल बीत जानेपर श्वेतांबर हुए फिर द्राविड यापनीय और केकीसंघ हुआ परन्तु केकीसंघ, श्वेतांबर, द्राविड, यापनीय और पीछी रहित (निःपिच्छ) ये सब जैनाभास हैं।

१. इसका अर्थ संस्कृत टीकाके अनुसार यह होता है—घुटनेपर्यन्त पानीमें होकर जावे तो एक कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त है। घुटनेसे चार अंगुल ऊपर पानीमें होकर जानेका एक उपवास प्रायश्चित्त है। इससे चार-चार अंगुल ऊपर पानीमें होकर जानेका दूने दूने उपवास प्रायश्चित्त है ॥ ३९ ॥ ये जो अर्थ कायोत्सर्ग और उपवास कहे गये हैं वे सोलह धनुष (चौसठ हाथ) पर्यन्त लंबे फैले हुए जल-जन्तुओंसे रहित जलमें होकर जानेके हैं। न्यूनके नहीं। तथा जलजन्तुसे भरे हुए पानीमें होकर जानेका प्रायश्चित्त पहले कहे हुये कायोत्सर्ग और उपवाससे अधिक कायोत्सर्ग और उपवास हैं ॥ ४० ॥ अपने निमित्त या परके निमित्त प्रयुक्त

दंडैः षोडशभिर्मेये भवन्त्येते जलेऽजसा। कायोत्सर्गोपवासाः स्युर्जंतुकीर्णे ततोऽधिकाः ॥४०॥
स्वपदार्थं प्रयुक्तैश्च नावाद्यैः सरणे सति।
स्वल्पं वा बहु वा दद्यात् ज्ञातकालादिको गणी" ॥४१॥

९–चर्चा नौवीं

प्रश्न—बहुतसे लोग रावणके बहनेऊ विद्याधरोंके राजा खरदूषण विद्याधरको चौदह हजार विद्याओं-का स्वामी बतलाते हैं सो ठीक है या नहीं ?

समाधान—यह कहना मिथ्या है। क्योंकि रावणके अठारह हजार विद्याओंकी सिद्धि थी। यदि खर-दूषणके चौदह हजार विद्याएँ मान ली जायँ तो फिर इससे रावणमें क्या अधिकता हुई। खरदूषण भी रावणके समान हो गया इसलिये ऐसा कहना अज्ञान है। खरदूषणके चौदह हजार विद्याओंकी सिद्धि नहीं थी। हाँ; उसके चौदह हजार विद्याधर सेवक थे। चौदह हजार विद्याधरोंका वह स्वामी था और उसे हजार विद्याएँ सिद्ध थीं, चौदह हजार नहीं। यही बात श्रीरविषेणाचार्यविरचित पद्मपुराणके नौवें पर्वमें लिखी है। जब कि चंद्रनखा हरी गई थी उसी समय मंदोदरीने रावणसे कहा है—

खेचराणां सहस्राणि संति तस्य चतुर्दश। ये वीर्यकृतसन्नाहाः समरादनिवर्त्तिनः ॥ ३२ ॥
बहून्यस्य सहस्राणि विद्यानां दर्पशालिनः।
सिद्धानीति न किं लोकात् भवता श्रवणे कृतम्" ॥ ३३ ॥

यही बात श्री सोमसेन विरचित लघु पद्मपुराणमें छठें अधिकारमें खरदूषणकी विद्याएँ बतलाते समय लिखी है—

"चतुर्दशसहस्राणां विद्याभृतां प्रभुस्त्वयम्।
निष्पन्नो बहुविद्याभिर्भोगी रूपी सुखी बली ॥ १७ ॥

नाव आदिके द्वारा नदी आदि पार करनेपर काल आदिको जाननेवाला आचार्य थोड़ा या बहुत (कालको जानकर) प्रायश्चित्त दे ॥ ४१ ॥ (देखो–भारतीय जैनसिद्धांत प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ताका छपा प्रायश्चित्तसमुच्चय चूलिका पृष्ठ १६६-६७)

तव तस्यात्र वै युद्धे संशयोपि भविष्यति।
कन्याहरणदोषेण नान्यः कोपि वरिष्यति" ॥ १८ ॥

जिस समय चन्द्रनखा हरी गई थी उस समय मंदोदरीने रावणसे खरदूषणके लिये यह बात कही थी, इसलिये खरदूषण चौदह हजार विद्याओंका स्वामी नहीं था।

१०-चर्चा दशवीं

प्रश्न—लंका नामकी नगरी कौनसे समुद्रमें है लवणोदधिमें है या उपसमुद्रमें है ?

समाधान—लंका लवणोदधि समुद्रमें है। वहाँपर सातसौ योजन लंबा चौड़ा एक राक्षसनामका द्वीप है। उस द्वीपमें मेरु पर्वतके समान त्रिकूटनामका पर्वत है वह नौ योजन ऊँचा है, पचास योजन लंबा है। उसपर शत्रु प्रवेश नहीं कर सकते परन्तु जो वहाँ पहुँच जाय उसे वहाँपर अच्छी शरण मिल जाती है। वह पर्वत अनेक वनोंकी शोभासे सुशोभित है। उस पर्वतपर तीस योजनके प्रमाणमें लंका नामकी नगरी है जो कि बहुत ही सुन्दर है। यही बात श्रीअजितनाथके समवशरणमें भीम, महाभीम नामके यक्षोंने मेघनाद नामके विद्याधरोंके राजासे कही थी। "हम तुम्हें ऐसी लंकापुरी देते हैं वहाँ तुम सुखसे रहना" ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है। देखो श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण पर्व पाँचवेंमें—

खेचराभ्रंक धन्योसि यस्त्वं शरणमागतः। सर्वज्ञमजितं नाथं तुष्टावावामतस्तव ॥४६॥
शृणु संप्रति ते स्वास्थ्यं यथा भवति सर्वतः। तं प्रकारं प्रवक्ष्यावः पालनीयस्त्वमावयोः ॥४७॥

(मुद्रितमें १५० वां)

सन्त्यत्र लवणाम्भोधावत्युग्रग्राहसंकटे। अत्यंतदुर्गमारम्या महाद्वीपाः सहस्रशः ॥४८॥
क्वचित्क्रीडंति गंधर्वाः किन्नराणां क्वचिद्गणाः।
क्वचिच्च यक्षसंघाताः क्वचित्किंपुरुषामराः ॥ ४९ ॥
तत्र मध्येऽस्ति सद्द्वीपो राक्षसां क्रीडनक्षमः।
योजनानां शतान्येष सर्वतः सप्त कीर्तितः ॥ ५० ॥

तन्मध्ये मेरुवद्भाति त्रिकूटाख्यो महागिरिः।
अत्यंतदुःप्रवेशोऽयं शरण्यः सद्गुहागृहैः ॥ ५१ ॥

शिखरं तस्य शैलेंद्रचूडाकारं मनोहरम्। योजनानि नवोत्तुंगं पंचाशद्भिपलस्वतः ॥५२॥
नानारत्नप्रभाजालछन्नहेममहातटम्। चित्रवल्लीपरिष्वक्तकल्पद्रुमसमाकुलम् ॥५३॥
त्रिंशद्योजनमानाभः सर्वतस्तस्य राक्षसी। लंकेति नगरी भाति रत्नजांबूनदालया ॥५४॥
मनोहारिभिरुद्यानैः सरोभिश्च सवारिजैः। महद्भिश्चैत्यगेहैश्च सा महेंद्रपुरीसमा* ॥५५॥

यही बात श्री सोमसेनविरचित द्वितीय पद्मपुराणमें तीसरे अधिकारमें लिखी है।

तत्र भीमसुभीमाख्यौ स्थितौ तौ राक्षसाधिपौ। संतुष्टौ मेघवाहाख्यं वदतो धर्मवत्सलौ॥६६॥
द्वीपोस्ति लवणाम्भोधौ राक्षसं नामतो वरं। योजनानां शतसप्त विस्तीर्णः स मनोहरः ॥७०॥

तन्मध्ये त्रिकूटाभिख्यः पर्वतोस्ति निधानभृत्।
योजनानां नवोत्तुंगः पंचाशद्विस्तमो मतः ॥ ७१ ॥
तत्र लंकापुरी भाति त्रिंशद्योजनविस्तरात्।
त्वां दास्यामः पुरीं तां त्वं स्थित्वा तत्र सुखी भव ॥ ७२ ॥

इस प्रकार कथन किया है। इससे लंका लवणोदधिमें ही जाननी चाहिये। उपसमुद्रमें नहीं है।

११–चर्चा ग्यारहवीं

प्रश्न—जो गृहस्थ न तो अरहन्त देवकी पूजा करता है और न पात्रदान देता है वह किस योग्य है?

समाधान—जो गृहस्थ न तो भगवान् अरहन्तदेवके चरणकमलोंकी पूजा करता है और न मुनिराजोंके लिये भक्तिपूर्वक दान देता है उस गृहस्थपदके लिये किसी गहरे जलमें प्रवेश कर बहुत शीघ्र जलांजलि

* इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है कि लवणसमुद्रमें राक्षस द्वीप है उसमें चित्रकूटाचल पर्वत है उसपर मनोहर लंका बसी है।
१. इन श्लोकों का अर्थ वही है जो ऊपर लिखा है।

दे देना चाहिये। वह गृहस्थ इसी योग्य है। यही बात श्रीपद्मनन्दि स्वामीने पद्मनन्दिपंचविंशतिकामें दूसरे अधिकारमें कही है।

पूजां न चेज्जिनपतेः पदपंकजेषु, दानं न संयतजनाय च भक्तिपूर्वम्।
नो दीयते किमु ततः सदनस्थिताय, शीघ्रं जलांजलिरगाधजलं प्रविश्य ॥२४॥

१२-चर्चा बारहवीं

प्रश्न—श्रावकोंको सदा प्रातःकाल उठकर सबसे पहले क्या करना चाहिये ?

समाधान—श्रावकोंको प्रातःकाल उठकर शौच आदि क्रियाओंसे निवृत्त होकर प्रथम ही अरहंत देव और निर्ग्रन्थ गुरुका दर्शन करना चाहिये। फिर भक्तिपूर्वक वंदना वा उपासनाकर धर्मशास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये। पीछे गृहस्थ सम्बन्धी अन्य कार्य करना चाहिये। भावार्थ—जिनदर्शनादि कार्य कर फिर अन्य कार्य करना यह नियम परम्परासे इसी प्रकार चला आया है। यही बात श्री पद्मनन्दिपंचविंशतिकाके छठें अधिकारमें लिखी है।

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं देवतागुरुदर्शनम्। भवद्भया तद्वंदना कार्या धर्मश्रुतिरुपासकैः ॥१६॥
पश्चादन्यानि कार्याणि कर्तव्यानि यतो बुधैः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामादौ धर्मः प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमें सबसे पहले धर्म ही कहा है इसलिये सबसे पहले देव-गुरुका दर्शन कर पीछे अन्य कार्य करना चाहिये।

---

१. इसका अर्थ भी ऊपर लिखे अनुसार है।

२. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंसे गृहस्थके लिये मुख्यता कर पहले तीन पुरुषार्थ कहे हैं। मोक्ष पुरुषार्थका साधन गृहस्थके लिये परम्परासे है और मुनिके लिये साक्षात् है। गृहस्थके लिये धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थमें भी धर्म पुरुषार्थ मुख्य है क्योंकि धर्म से अर्थकी सिद्धि होती है इसीलिये गृहस्थके लिये सबसे पहले देवपूजा करनेका विधान बताया है। तथा इसका भी कारण यह है कि गृहस्थधर्ममें देवपूजा ही सबसे मुख्य है। परिणामोंकी शुद्धि और मन लगनेके लिये देवपूजा मुख्य कारण है।

१३–चर्चा तेरहवीं

प्रश्न––ऊपर यह बताया जा चुका है कि प्रतिदिन सबसे पहले देवदर्शन करना चाहिये। देवदर्शन करनेके पहले अन्य कार्य नहीं करना चाहिये। परन्तु देवदर्शन किये बिना ही जो भोजनादि कर लेते हैं उनके लिये शास्त्रोंमें क्या कहा है तथा उन्हें कैसा समझना चाहिये।

समाधान––जिस गांव वा शहरमें भगवान् अरहन्तदेवका जिनालय हो और वहाँ पर रहनेवाला श्रावक श्रावक होकर भी यदि बिना भगवान्के दर्शन किये भोजन करे तो उसको जैनशास्त्रोंमें मिथ्यादृष्टी बतलाया है। उसको जैनधर्मका श्रद्धान करनेवाला कभी नहीं कहना चाहिये। जैनशास्त्रोंमें उसको धर्मभ्रष्ट बतलाया है। लिखा भी है––

चेयाले जिहठाणे सावय अदिट्ठ भोयणं कुणई।
सो सुठु मिच्छाइट्ठी भट्ठो जिनसासणे समये ॥ १३ ॥

१४–चर्चा चौदहवीं

प्रश्न––केवली भगवान्के नौ परम केवललब्धियां होती हैं उनमें दर्शनावरण कर्मके क्षयसे अनंत-दर्शन प्राप्त होता है, ज्ञानावरणके क्षयसे अनंत ज्ञान प्रगट होता है, दानांतरायके क्षयसे क्षायिक दान होता है, लाभांतरायके क्षयसे क्षायिकलाभ, भोगांतरायके क्षयसे क्षायिक भोग, उपभोगांतरायके क्षयसे क्षायिक उपभोग, वीर्यांतरायके क्षयसे क्षायिक वीर्य प्रगट होता है, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व, चारित्र मोह-नीय कर्मके क्षयसे क्षायिक चारित्र प्राप्त होता है। इसप्रकार केवली भगवान्के नव क्षायिक परम केवल-लब्धियां प्रगट होती हैं। अब इनमें प्रश्न यह है कि केवली भगवान् दान क्या करें और भोगोपभोगके सेवनमें

---

१. धर्मकी नौ शास्त्रोंके आधारपर है। अब शास्त्रोंमें सबसे पहले देवदर्शन करना बतलाया है और फिर भी जो देवदर्शन नहीं करता वा उसकी आवश्यकता नहीं समझता तो समझना चाहिये कि वह जैनशास्त्रोंको मानता ही नहीं। यदि वह जैन-शास्त्रोंको मानता और उनका श्रद्धान करताहोतो वह देवदर्शन अवश्य करता। परन्तु वह देवदर्शन नहीं करता और न उसकी आवश्यकता समझता है तो यह निश्चित है कि उसके उन शास्त्रोंका श्रद्धान नहीं है तथा श्रद्धान न होनेसे ही वह मिथ्यादृष्टी और धर्मभ्रष्ट बतलाया गया है।

किसका सेवन करें क्योंकि भोगोपभोगका त्याग तो इनके पहलेसे ही हो जाता है तथा केवली भगवान्‌के कवलाहार आदिकी संभावना ही नहीं है अतएव उनके लब्धियोंका कार्य क्या होता है ?

समाधान—केवली भगवान् जो धर्मोपदेश देते हैं वह उनका क्षायिकदान है। शरीरकी स्थितिके लिये जो परम शुभ कार्माण वर्गणायें प्रतिसमय आती रहती हैं वह उनका क्षायिक लाभ है। देवगण जो सदा पुष्पवृष्टि करते रहते हैं वह उनका भोग है तथा समवशरणकी बारह सभा छत्र-सिंहासन आदि क्षायिक उपभोग हैं ऐसा सुदर्शनचरित्रके आठवें परिच्छेदमें लिखा है—

प्रादुरासीज्जगत्पूज्यं लोकालोकप्रदीपकम्। परमं केवलज्ञानं मुक्ति श्रीमुखदर्पणम् ॥४३॥
प्रादुरासंस्तथास्येमा नवकेवललब्धयः। विश्वभव्यहिताः सर्वाः साधारणबुधार्चिताः ॥४४॥

अनंतदर्शनं ज्ञानं दानं धर्मोपदेशकृत्।
लाभः पुण्याणुलाभोऽथ भोगः पुष्पादिवृष्टिजः ॥ ४५ ॥
उपभोगः सभास्थानसिंहासनादिको महान्।
अन्तातीतमहद्वीर्यं सम्यक्त्वं क्षायिकं परम् ॥ ४६ ॥
यथाख्याताह्वयं सारं चारित्रं शशिनिर्मलम्।
नवेमाः परमास्तस्य जाताः केवललब्धयः ॥ ४७ ॥

१५–चर्चा पन्द्रहवीं

प्रश्न—सामान्य केवलीके लिए नमस्कार किस प्रकार करना चाहिये ?

समाधान—सामान्यकेवली के लिये इन्द्र पंचांग नमस्कार करते हैं। यही बात सुदर्शनश्रेष्ठिचारित्र के आठवें परिच्छेदमें लिखी है—

१. इनका अर्थ इनके ऊपर लिखे हुए समाधानके अनुसार है।

त्रिःपरीत्य तदा स्थानं प्रविश्य देवनायकाः।
भूमौ संस्थाप्य पञ्चांगान् प्रणेमुः शिरसा जिनम् ॥ ५८ ॥

१६–चर्चा सोलहवीं

प्रश्न––सामान्यकेवलीके गंधकुटीमें गणधर होते हैं या नहीं ?

समाधान––सामान्यकेवलीके भी गणधर होते हैं। यह बात सुदर्शनचरित्रके आठवें परिच्छेदमें लिखी है––

दिव्येन ध्वनिना देवस्तदा सन्मार्गवृत्तये। धर्मतत्त्वादिविश्वार्थानुवाचेति गणान्प्रति ॥७७॥

बिना गणधरोंके दिव्यध्वनि नहीं खिरती है, इसलिये जिस प्रकार श्रीमहावीर स्वामीके गौतम गणधर थे उसी प्रकार सामान्य केवलीके भी गणधर होते हैं।

१७–चर्चा सत्रहवीं

प्रश्न––सामान्यकेवली भगवान्‌को गंधकुटीमें मानस्तंभ होता है या नहीं ? तीर्थंकर केवली भगवान् के समवशरणमें होता ही है।

समाधान––सामान्यकेवली भगवान्‌की गंधकुटीमें भी मानस्तम्भ होता है। यह बात सुदर्शनचरित्रमें लिखी है––

आदौ शक्रोपदेशेन हेमरत्नादिराशिभिः। रेदे गंधकुटीरूपं केवल्यास्थानमंडनम् ॥५२॥

---

१. सेठ सुदर्शनको जब केवलज्ञान हुआ और गंधकुटी रची गई तब इन्द्रोंने उस स्थानको तीन प्रदक्षिणा देकर अपने शरीरके पाँचों अंग भूमिसे लगाकर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। २. भगवान् सुदर्शन केवलीने मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति बढ़ानेके लिये गणधरोंके प्रति दिव्यध्वनिके द्वारा धर्मका तथा समस्त तत्त्वोंका स्वरूप बतलाया।

३. श्री ऋषभदेवकी दिव्यध्वनि सबसे पहले बिना गणधरोंके खिरी है परन्तु यह हुण्डावसर्पिणीका दोष समझना चाहिये।

४. सेठ सुदर्शनको केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर कुबेरने इन्द्रकी आज्ञासे सुवर्ण रत्न आदिके द्वारा गंधकुटीरूप केवली भगवान्‌का सभा स्थान बनाया जिसमें ध्वजा, सिंहासन, छत्र, चमर आदि सब शास्त्रोक्त रचना थी तथा वह मानस्तंभसे सुशोभित था, इसप्रकार कुबेरने संसारके प्राणियोंका उपकार करनेके लिये केवली भगवान्‌का सभा स्थान बनाया।

ध्वजसिंहासनच्छत्रचामरादिविभूषितम् । शास्त्रोक्तवर्णनोपेतं मानस्तंभाद्यलंकृतम् ॥५३॥
जगज्जन्तूपकाराय केवलज्ञानभागिनः । परं निर्मापयामास यक्षराट् धर्मसिद्धये ॥५४॥

१८–चर्चा अठारहवीं

प्रश्न—तीर्थंकर केवली भगवान्के केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद गणधरोंकी, केवलियोंकी, अवधिज्ञानियोंकी, विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवालोंकी गणना जो शास्त्रोंमें बतलाई है वह समवशरणमें रहनेवालों की है अथवा उनके समय की है अर्थात् अनन्तर होनेवाले तीर्थंकरके उत्पन्न होने तक की है ।

समाधान—यह गणना समवशरणमें रहनेवालों की है । श्री ऋषभदेवके समवशरणमें जितने मुनि आदि वर्तमान थे उन्हींकी संख्या बतलाई है । वे मुनिराज आदि सब विहार समयमें भी साथ ही रहते हैं । सो ही श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें चौथे पर्वमें लिखी है—

तस्यासीद्गणपालानामशीतिश्चतुरुत्तरा ।
सहस्राणि च तावन्ति साधूनां सुतपोभृताम् ॥ ५८ ॥
अत्यन्तशुद्धचित्तास्ते रविचन्द्रसमप्रभाः ।
एभिः परिवृताः सर्वैर्जिना विहरते महीम् ॥ ५९ ॥

इससे सिद्ध होता है कि गणधर आदि सब मुनियोंकी गणना समवशरणमें रहनेवालोंकी ही समझना चाहिये । समवशरणकी स्थितिसे आगे पीछेके मुनि इस संख्यासे बाहर हैं, वे इस संख्यामें शामिल नहीं हैं । जिस प्रकार श्रीऋषभदेवके समवशरणमें रहनेवालोंकी संख्या बतलाई उसी प्रकार श्रीअजितनाथसे लेकर श्रीमहावीर पर्यंत समस्त तीर्थंकरोंकी समझ लेना चाहिये ।

१९–चर्चा उन्नीसवीं

प्रश्न—इस पंचमकालके इस वर्तमान समयमें होनेवाले मुनिराज किस क्षेत्रमें ठहरें ? वन, उपवन, पर्वत, गुफा, नदीके किनारे, श्मशान आदिमें ही निवास करें अथवा किसी और जगह भी अपनी स्थिति रक्खें ।

समाधान—इस पंचमकालमें वर्तमान समयमें होनेवाले मुनियोंकी स्थिति श्रीमंदिरजीमें बतलाई है। यह बात श्रीपद्मनंदी पंचविंशतिकाके छठे अधिकारमें लिखी है।

संप्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः।
धर्मस्य दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम्॥ ६०॥

धर्मका दान देनेके लिए एक श्रावक ही मूल कारण है।

भावार्थ—इस वर्तमान समयमें श्रावक ही धर्म सुननेके पात्र हैं इसलिये मुनिराजोंकी स्थिति जिनालयमें होनेसे ही श्रावकको लाभ पहुँच सकता है। श्रीइन्द्रनंदिने नीतिसारमें भी लिखा है।

कौले[1]कलौ वने वासो वर्जनीयो मुनीश्वरैः। स्थीयेत च जिनागारग्रामादिषु विशेषतः॥१६॥[2]

२०-चर्चा बीसवीं

प्रश्न—मुनिराज आहारके समय दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें आंट देकर दोनों हाथ मिला लेते हैं तब अन्न-जल आदिका ग्रहण करते हैं। यदि वह दोनों मिले हुए हाथ छूट जायँ तो वे अन्तराय मान कर आहारका त्याग कर देते हैं सो इसका क्या कारण है?

समाधान—मुनिराज सदा यम नियम पालन करते रहते हैं अत एव आहारके समय जो अन्न-जल ग्रहण करते हैं वह भी नियम पूर्वक ही ग्रहण करते हैं।

भावार्थ—उस समय भी उनके यह नियम रहता है कि जबतक दोनों हाथोंका संयोग है तबतक आहार ग्रहण करेंगे। हाथोंके छूट जानेपर आहारका त्याग कर देंगे। पद्मनन्दिपंचविंशतिकाके पहले अधिकारमें लिखा भी है।

---

१. कलिकालमें मुनियोंकी स्थिति जिनालयमें ही है। २. कलिकालमें मुनियोंको वनमें निवास नहीं करना चाहिए किन्तु जिनालयमें वा गाँवमें रहना चाहिये। आजकल बहुतसे लोग मुनियोंके जिनालयमें निवास करनेपर नुकताचीनी करते हैं परंतु यह उनकी भूल है जब शास्त्रोंमें स्पष्ट आज्ञा है तब इसमें शंका करना व्यर्थ है।

यावन्मे स्थितिभोजनेस्ति दृढ़ता पाण्योश्च संयोजने,
भुंजे तावदहं रहाम्यथ विधावेषा प्रतिज्ञा यतेः।
कायेप्यस्पृहचेतसोऽन्यविधिषु प्रोल्लासिनः सम्मते-
र्न ह्येतेन दिविस्थितिर्न नरके सम्पद्यते तद्विना ॥ ४३ ॥

इससे सिद्ध होता है कि मुनिराज जो आहार ग्रहण करते हैं वह भी प्रतिज्ञापूर्वक ही ग्रहण करते हैं। जैसे कोई गृहस्थ अपने हाथकी उँगलीमें किसी धातुकी अँगूठी पहिन कर यह नियम कर ले कि यह अँगूठी जबतक इस उँगलीमें है तबतक मेरे अन्न-जलका त्याग है। जब उसे भोजन करनेकी आवश्यकता होती है तब उसे वह उस उँगलीमेंसे निकाल कर दूसरी उँगलीमें पहन लेता है या उतार कर रख देता है और फिर भोजन कर लेता है। उसी प्रकार मुनियों के भी आहार करते समय दोनों हाथोंके संयोग होनेका नियम समझ लेना चाहिये।

२१-चर्चा इकईसवीं

प्रश्न—जैनमतमें जप करनेकी मालाके मणियोंकी गिनती एक सौ आठ है सो इसमें क्या कारण है ?

समाधान—संसारी जीव हमेशा प्रमाद और कषायके आधीन रहते हैं तथा त्रस स्थावरोंके भेदसे बारह प्रकारके जीवोंकी मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनाके द्वारा एक सौ आठ भेदरूप पाँचों पापों-का आस्रव और बंध करते रहते हैं उन सबकी निवृत्तिके लिये एक सौ आठ मणियोंकी माला बनाई गई है। आस्रव बंधके वे एक सौ आठ भेद इस प्रकार समझना चाहिये। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असैनी पचेंन्द्रिय, सैनी पंचेंन्द्रिय इस प्रकार बारह भेद होते हैं। इन बारह प्रकारके जीवोंके मनसे, वचनसे तथा कायसे हिंसादिक पाप होते हैं जो छत्तीस प्रकारके हो जाते हैं। तथा ये छत्तीसों प्रकारके पाप स्वयं करने, दूसरोंसे कराने और

१. जबतक मुझमें खड़े होनेकी शक्ति है तथा दोनों हाथ मिलानेकी शक्ति है तबतक ही मैं भोजन करूँगा अन्यथा सर्वथा त्याग कर दूंगा। इस प्रकार शरीरसे निस्पृह रहनेवाले मुनियोंके प्रतिज्ञा होती है।

करते हुओंको भला माननेके भेदोंसे एक सौ आठ प्रकारके हो जाते हैं। १२×३×३=१०८। ये एक सौ आठ पाप सदा लगते रहते हैं उनका नाश करनेके लिये एक सौ आठ मणियोंकी माला है। एक-एक मणिपर एक-एक णमोकार मंत्रका जाप कर एक-एक पापका नाश करना चाहिये और इस प्रकार सब पापोंका नाश कर डालना चाहिये यही इसका अभिप्राय है। सो ही लिखा है।

[1]पृथ्वीपानीयतेजःपवनसुतरवः स्थावराः पंचकायाः,
नित्यानित्यौ निगोदौ युगलशिखिचतुःसइयसंज्ञित्रसाः स्युः।
एते प्रोक्ता जिनैर्द्वादश परिगुणिता वाङ्मनःकायभेदै-
र्यैश्चान्यैः कारिताद्यैस्त्रिभिरपि गुणिताश्चाष्टशून्यैकसंख्या॥

इस प्रकार मालामें एक सौ आठ मणियोंके होनेका कारण है। इसके सिवाय इसका एक कारण और भी है और वह इस प्रकार है—कोई भी पापरूप कार्य किया जाता है उसमें संरंभ, समारंभ और आरम्भ ऐसे तीन भेद पड़ते हैं। किसी भी हिंसा आदि पापकार्य के संकल्प करनेको उसके प्रयत्नके आवेश करनेको संरंभ कहते हैं। उसी पापकार्यके कारणोंका संग्रह करना, साधनकी सब सामग्री इकट्ठी करना समारंभ है और उस कार्यको प्रारंभ कर देना आरम्भ है। इनका उदाहरण इस प्रकार है। किसीने एक मकान बनानेका विचार किया, उसमें संकल्प किया कि इस तरहका मकान बनवाऊँगा, उसमें इस प्रकारके घर कमरे आदि बनवाऊँगा इस प्रकारके संकल्पको संरंभ कहते हैं। संरंभमें किसी कामका बाह्य आरंभ नहीं होता केवल विचार या उस कामको करनेका आवेश होता है। संरंभके बाद उस मकानको बनवानेके लिये कारीगर, ईंटें, चूना, पत्थर, कुदाली, फावड़ा आदि साधनोंका संग्रह करना समारंभ है। समारम्भमें भी कामका प्रारम्भ नहीं होता है, केवल

---

१. इन भेदोंको यों समझ लेना चाहिये। क्रोधकृतकायसंरंभ, मानकृतकायसंरंभ, मायाकृतकायसंरंभ, लोभकृतकायसंरंभ, क्रोधकारितकायसंरंभ, मानकारितकायसंरंभ, मायाकारितकायसंरंभ, लोभकारितकायसंरंभ, क्रोधानुमतकायसंरंभ, मानानुमतकायसंरंभ, मायानुमतकायसंरंभ, लोभानुमतकायसंरंभ। इस प्रकार बारह प्रकारका काय संरंभ, बारह प्रकारका वचनसंरंभ और बारह प्रकारका मनसंरंभ होता है तथा इस प्रकार छत्तीस प्रकारका संरंभ, छत्तीस प्रकारका समारंभ, छत्तीस प्रकारका आरंभ होता है। ऐसे १०८ भेद हो जाते हैं।

कारण सामग्री इकट्ठी होती है। तदनन्तर उस विचारे हुए कामको प्रारम्भ कर देना जैसे जिस मकानके बनाने-का संकल्प किया था उसके लिये नींव भरना, दीवाल खड़ी करना आदि कार्योंका प्रारम्भ कर देना आरम्भ है। इसी प्रकार सब कामोंके दृष्टांत समझ लेना चाहिये। ये संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ तीनों ही मनसे किये जाते हैं, तीनों ही वचनसे किये जाते हैं और तीनों ही कायसे किये जाते हैं इस प्रकार ये तीनों तीनों योगोंसे होते हैं और उनके ये नौ भेद हो जाते हैं। नौ प्रकारके संरंभादिक स्वयं किये जाते हैं, दूसरोंसे कराये जाते हैं और उनकी अनुमोदना की जाती है इस प्रकार कृत, कारित, अनुमोदनाके भेदसे सत्ताईस भेद हो जाते हैं। ये सत्ताईसों भेद क्रोधसे होते हैं, मानसे होते हैं, मायासे होते हैं और लोभ से होते हैं इस प्रकार चारों कषायोंसे गुणा करनेसे एक सौ आठ भेद हो जाते हैं। इन एक सौ आठ भेदोंसे जीवहिंसा आदि पाप लगते हैं सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः।

इन एक सौ आठ पापोंकी निवृत्तिके लिये मालाकी एक सौ आठ मणियोंसे णमोकार मंत्रकी अथवा पंच परमेष्ठीके वाचक अन्य मंत्रोंकी जाप तीनों समय करना चाहिये।

इनके सिवाय पापोंके एक सौ आठ भेद और प्रकारसे भी हैं। यथा—हिंसादिक सब पाप क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायोंसे होते हैं; कृत, कारित, अनुमोदनासे होते हैं; मन, वचन, काय इन तीनों योगोंसे होते हैं, तथा भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यत काल इन तीनों काल संबंधी होते हैं। इन सबसे गुणा कर देनेसे भी एक सौ आठ भेद हो जाते हैं।

भावार्थ—क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायोंसे काययोगके द्वारा स्वयं किये हुए भूतकाल-सम्बन्धी पाप। इन्हीं चारों कषायोंसे काययोगके द्वारा दूसरोंसे कराये हुए भूतकाल संबंधी पाप तथा इन्हीं कषायोंसे काययोगके द्वारा अनुमोदना किये हुए भूतकाल संबंधी पाप, इसी प्रकार भूतकाल संबंधी पाप बारह प्रकारके हुए, इसी प्रकार भूतकाल सम्बन्धी पाप बारह प्रकारके वचन योग द्वारा तथा बारह प्रकार मनोयोग द्वारा होते हैं इस प्रकार छत्तीस प्रकारके भूतकाल सम्बन्धी पाप, छत्तीस प्रकार वर्तमान काल सम्बन्धी पाप

और छत्तीस प्रकार भविष्यत्काल सम्बन्धी पाप होते हैं, इस प्रकार एक सौ आठ भेद हो जाते हैं, सो ही धर्म-रसिक शास्त्रमें लिखा है ।

हिंसा तत्र कृता पूर्वं करोति च करिष्यति । मनोवचनकायैश्च ते तु त्रिगुणिता नव ॥
पुनः कृतं स्वयं करितानुमोदैर्गुणाहताः । सप्तविंशति ते भेदाः कषायैर्गुणितांश्च तान् ॥
अष्टोत्तरशतं ज्ञेयं असत्यादिषु तादृशम् ।

इन एक सौ आठ पापोंको दूर करनेके लिये एकसौ आठ मणियोंकी माला कही गई है । एक-एक पाप के आस्रव वा बंधको नाश करनेके लिये एक-एक मंत्रका जाप करना कहा है, इस प्रकार प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल तीनों समय तीन सौ चौबीस जाप कर पापोंको दूर करना चाहिये । तीनों समय जाप करने वालोंके लिये तो पाप और धर्मको समानता रहती है । यदि तीन बारसे भी अधिक जप करै या तीन मालासे अधिक जप करै तो उसका फल अधिक होता है । यदि तीनों समय की तीन मालाओंसे कम जाप करे तो पापबंध अधिक रहता है । इसलिये प्रति दिन तीन सौ चौबीस जप करनेसे पूर्व संचित पाप भी नष्ट हो जाते हैं । ऐसा समझ कर णमोकार मंत्रका जप प्रतिदिन तीनों बार एक-एक माला जप कर अवश्य करना चाहिये ।

२२–चर्चा बाईसवीं

प्रश्न—जाप करते समय मालाको किस प्रकार जपना चाहिये ?

समाधान—जप करते समय मनको तो श्रीअरहन्त देवके ध्यानमें लगाना चाहिये । अपने बायें हाथको अपनी गोदीमें रखना चाहिये । ज्ञानमुद्रा धारण करना चाहिये । अपने बायें हाथके अँगूठेपर माला रखनी चाहिये तदनंतर उस ज्ञानी पुरुषको अँगूठे और अँगूठेकी पासवाली उँगलीसे निर्मल जपकी मालाको लेकर जप करना चाहिये । सो ही धर्मरसिक ग्रंथमें लिखा है ।

१. "तर्जन्यंगुष्ठयोगेन ज्ञानमुद्रेति भाषिता"
तर्जिनी उँगलीको नवाकर अँगूठेकी जड़से लगा देना, तीनों उँगलियाँ खड़ी रखना ज्ञानमुद्रा है ।

समं ध्याने मनः कृत्वा मध्यदेशेषु निश्चलम् ।
ज्ञानमुद्रांकितो भूत्वा स्वांके तु वामहस्तकम् ॥ १९ ॥
अंगुष्ठतर्जनीभ्यां तु सव्यहस्तेन निर्मलाम् ।
जपमालां समादाय जपं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २० ॥

यह जप करनेकी विधि लिखी, इसके सिवाय जो कोई मनुष्य अपने हृदयमें उद्वेग वा चंचलता रखता हुआ जप करता है अथवा मालाके मेरुदंडको उल्लंघन कर जप करता है अथवा जो उँगलीके नखके अग्रभागसे जप करता है वह जप सब निष्फल होता है । लिखा भी है—

व्यग्रचित्तेन यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलंघने । नखाग्रेण च यज्जप्तं तज्जप्तं निष्फलं भवेत् ॥

इस प्रकरणमें मालाके भेद इस प्रकार समझने चाहिये । क्रियाकोशमें लिखा है ।

प्रथम फटिकमणि मोती माल । सोना रूपा सुरंग प्रवाल ॥
जी पोत रेशम जान । कमलबीज फुनि सूत बखान ॥
यह नव भाँति जापके भेद । भजिये जिनवर तजि मनखेद* ॥

दूसरी जगह लिखा है—

सूत्रस्य जाप्यमालायाः सदा जापः सुखावहः ।
दग्धमृदस्थिकाष्ठानामक्षमालाऽफलप्रदा ॥ १ ॥
सुवर्णरौप्यविद्रुमोक्तिका जपमालिकाः ।
उपवाससहस्राणां फलं यच्छन्ति जापतः ॥ २ ॥

अर्थात् सूतकी माला सदा सुख देनेवाली है । अग्निके द्वारा पकी हुई मिट्टी, हड्डी, लकड़ी और रुद्राक्ष आदिकी मालाएँ कुछ फल देनेवाली नहीं हैं, ये मालाएँ अयोग्य हैं, ग्रहण करने योग्य नहीं हैं अर्थात्

* स्फटिक, मोती, सोना, चाँदी, अच्छे रंगका मूँगा, पोत, रेशम, कमलबीज, सूत ।

इनसे जप कभी नहीं करना चाहिये तथा सोना, चांदी, मूँगा और मोतीकी माला हजारों उपवासोंका फल देनेवाली हैं। इनको मालाओंके द्वारा जप करनेसे हजारों उपवासोंका फल मिलता है। इस प्रकार मालाओंका फल बतलाया।

२३–चर्चा तेईसवीं

प्रश्न––जप करते समय णमोकार मंत्रका उच्चारण किस प्रकार करना चाहिये ?

समाधान––एक णमोकार मंत्रका उच्चारण तीन श्वासोच्छ्वासमें करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है—श्वासको खींचते समय 'णमो अरहंताणं' यह पद पढ़ना चाहिये। फिर श्वासको छोड़ते समय 'णमो सिद्धाणं' यह पद पढ़ना चाहिये। फिर श्वासको खींचते समय 'णमो आइरिआणं' पढ़ना चाहिये। फिर श्वास छोड़ते समय 'णमो उवज्झायाणं' पढ़ना चाहिये। श्वासको खींचते समय 'णमो लोए' पढ़ना चाहिये। फिर छोड़ते समय 'सव्व साहूणं' पढ़ना चाहिये। इस प्रकार तीन श्वासोच्छ्वासमें एक बार णमोकार मंत्रका जाप हुआ। जप करते समय इसी प्रकार शुद्ध उच्चारण करना चाहिये। धर्मरसिकमें लिखा भी है।

नमस्कारपदान् पंच जपेद्यथावकाशकम्। अष्टोत्तरशतं चार्द्धमष्टाविंशतिकं तथा ॥२१॥
द्विद्व्येकपदविश्रामा उश्वासा सप्तविंशतिः। सर्व पापै क्षयं याति जप्ते पंचनमस्कृते ॥२२॥

(अर्थात् समय मिलने पर णमोकार मंत्रको एकसौ आठ बार जपै अर्थात् चौअन बार जप करै अथवा अट्ठाईस बार जप करै एक-एक श्वासमें श्वास और उच्छ्वास दोनोंमें दो-दो पद विश्राम देकर जपै। इस प्रकार सत्ताईस श्वासोच्छ्वास द्वारा नौ बार नमस्कार मंत्रका जाप करै। इस प्रकार जप करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं) यहाँ पर जो सत्ताईस श्वास बतलाये हैं सो एक कायोत्सर्गमें नौ बार नमस्कार मंत्र जपनेकी अपेक्षासे बतलाये हैं। इस प्रकार नमस्कार मंत्रको वाचिक, उपांशु और मानस इन तीन प्रकारसे अपनी शक्तिके अनुसार पढ़ना चाहिये, जपना चाहिये।

२४–चर्चा चौबीसवीं

प्रश्न—नमस्कार मंत्र पढ़नेके जो वाचिक उपांशु और मानस ये तीन भेद बतलाये सो इनका स्वरूप क्या है ?

समाधान—स्वरके तीन भेद हैं उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। जिसमें इन तीनों प्रकारके स्वरोंका उच्चारण स्पष्ट हो ऐसे मंत्रोंके अक्षर पद और शब्दोंको स्पष्ट और शुद्ध रीतिसे उच्चारण करना और इस प्रकार उच्चारण करना जिसको सब सुन लें उसको वाचिक कहते हैं तथा जिसमें उदात्त, अनुदात्त, स्वरितके भेदसे अक्षर, पद, शब्दोंका उच्चारण शुद्ध तथा स्पष्ट हो परन्तु उस उच्चारणको कोई दूसरा सुन न सके उसको उपांशु कहते हैं। वाचिक और उपांशुमें सुनने न सुननेका ही अंतर है। वाचिक जपको सब सुन सकते हैं और उपांशु जपको पास बैठनेवाला भी नहीं सुन सकता तथा अपने मनको एकाग्र कर अपने ही मनके द्वारा चिंतवन करना और वह चिंतवन इस प्रकार करना जिसमें मंत्रोंकी जो अक्षरमाला है मंत्रोंमें जो अक्षरोंका समुदाय है उसके अक्षर, पद और शब्द सब शुद्ध तथा स्पष्ट चिंतवन करनेमें आ जायें ऐसे जपको मानसिक जप कहते हैं।

इनका फल इस प्रकार है। मानसिक जप समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये किया जाता है, उपांशु जप पुत्रप्राप्तिके लिये किया जाता है और वाचिक धनलाभके लिये किया जाता है तथा वाचिकका फल एक गुना है, उपांशुका फल सौ गुना है और मानसिक जपका फल हजार गुना है। ऐसा श्रीजिनसेनाचार्यने कहा है।

वाचिकाख्य उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः।
त्रयाणां जपमालानां स्याच्छ्रेष्ठो ह्युत्तरोत्तरः॥ २३॥

यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा जपो रोयः स वाचिकः॥ २४॥

शनैरुच्चारयेन्मंत्रं मन्दंमोष्ठौ प्रचालयेत्।
अपरैरश्रुतः किंचित्स उपांशुर्जपः स्मृतः॥ २५॥

१. उपांशु मंत्रमें धीरे-धीरे ओठ चलते हैं पर सुनाई नहीं पड़ता।

[1]विधाय चाक्षरश्रेण्यावर्णाप्तर्गं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिंत्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥ २६ ॥
मानसः सिद्धिकाम्यानां पुत्रकाम उपांशुकः ।
वाचिको धनलाभाय प्रशस्तो जप ईरितः ॥ २७ ॥
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशु शत उच्यते ।
सहस्रं मानसं प्रोक्तं जिनसेनादिसूरिभिः ॥ २८ ॥

आचार्योंने णमोकार मंत्र आदि मंत्रोंके जपनेकी विधि इस प्रकार बतलाई है ।

२५–चर्चा पच्चीसवीं

प्रश्न—ऊपरके जो जपके भेद बतलाये हैं वे किस आसनपर बैठकर करना चाहिये ?

समाधान—सफेद वस्त्रके आसनपर, तथा हल्दीके रंगे हुये वस्त्रके आसनपर व सबसे उत्तम लाल वस्त्रके आसनपर वा डाभके आसनपर बैठकर जप करना चाहिये । णमोकार मंत्रका वा अन्य मंत्रोंका जप करनेके लिये अथवा भगवान अरहन्तदेवकी पूजा करनेके लिये ऊपर लिखे चार प्रकारके आसनोंमेंसे किसी एक आसनपर बैठकर जप वा पूजन करनेका विधान आचार्योंने बतलाया है ।

इनके सिवाय और भी अनेक प्रकारके आसन हैं परंतु उनपर बैठकर कभी भी जप वा पूजा नहीं करनी चाहिये । जो मनुष्य इन ऊपर लिखे चार आसनोंके सिवाय अन्य आसनोंपर बैठ कर पूजा वा जप करता है उसका फल उसके लिये बहुत बुरा होता है जैसे—जो बांसके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसके दरिद्रता बनी रहती है । जो पाषाणकी शिला आदिपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसके रोगकी पीडा बनी रहती है । जो पुस्तोपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसके सदा दुर्भाग्य (भाग्यहीनता वा बदनसीबी) बना रहता है । उसका सौभाग्य कभी नहीं रहता । जो तृण वा घासके आसनपर बैठकर पूजा

१. मानसिक जपमें मंत्रके जो अक्षर हैं वे एक अक्षरके बाद दूसरा अक्षर । एक पदके बाद दूसरा पद और एक शब्दके बाद दूसरा शब्द मय अर्थके चिंतवन किया जाता है ।

वा जप करता है उसके यशकी हानि होती है अर्थात् उसकी सदा अपकीर्त्ति बनी रहती है। जो पत्तोंके बने हुए आसनपर बैठकर जप करते हैं उनका चित्त सदा विभ्रमरूप अथवा डाँवाडोल रहता है। अर्थात् उनका चित्त इधर-उधर फिरता ही रहता है स्थिर नहीं रहता। जो अजिन अर्थात् हिरणके चमड़े मृगछाला बाघके चमड़े आदि आसनोंपर बैठकर जप करते हैं उनके ज्ञानका नाश हो जाता है। जो कंबल बनात, चकमा आदि ऊनके बने हुए आसनोंपर बैठकर जप वा पूजा करता है उसका पाप सदा बढ़ता ही रहता है। जो नीले रंगके वस्त्रके आसन पर बैठकर पूजा वा जप करता है वह अधिक दुःख भोगता है, हरे वस्त्रके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसका सदा मानभंग होता रहता है। इस प्रकार दोषवाले आसन बतलाये। इन दोषवाले आसनोंको छोड़कर पहले लिखे हुए चार आसन ही ग्रहण करना चाहिये। इन चार आसनोंपर बैठकर पूजा वा जप करनेसे शुभ फल होता है, और वह इस प्रकार होता है। सफेद वस्त्रके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करनेसे यशकी वृद्धि होती है। हल्दीके रंगे वस्त्रके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करनेसे हर्षकी वृद्धि होती है। लाल वस्त्रका आसन सबसे श्रेष्ठ है तथा डाभका आसन सब कार्योंकी सिद्धि करनेवाला और सबसे उत्तम है। कहनेका अभिप्राय यह है कि सब आसनोंमें डाभका आसन सबसे श्रेष्ठ है सो ही धर्मरसिक नामक ग्रन्थमें लिखा है—

वंशासने दरिद्रः स्यात्पाषाणे व्याधिपीडितः। धरण्यां दुःखसंभूतिर्दौर्भाग्यं दारुकासने ॥१५॥
तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः। अजिने ज्ञाननाशः स्यात्कंबले पापवर्द्धनम् ॥१६॥
नीले वस्त्रे परं दुःखं हरिते मानभंगता। श्वेतवस्त्रे यशोवृद्धिः हरिद्रे हर्षवर्द्धनम् ॥१७॥
रक्तवस्त्रं परं श्रेष्ठं प्राणायामविधौ ततः। सर्वेषां धर्मसिद्ध्यर्थं दर्भासनं तु चोत्तमम् ॥१८॥

इसके सिवाय हरिवंशपुराणमें लिखा है कि श्रीकृष्णने समुद्रके किनारे तेला स्थापन कर डाभके आसनपर बैठकर अपने कार्यकी सिद्धि की। तथा आदिपुराणमें जो गर्भान्वय आदि क्रियाएँ लिखी हैं उनमें भी डाभके आसनका ही विशेष वर्णन लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि डाभका आसन ही सबसे उत्तम है।

१. आजकल चटाई पाटा आदिपर जो जप करते हैं, वे भूलते हैं, आगे लिखे श्लोक देखने चाहिये।

२६–चर्चा छब्बीसवीं

प्रश्न—ऊपर लिखे मंत्रोंका जप किस जगह करना चाहिये ?

समाधान—अपने घरमें जप करनेका फल एक गुना है, वनमें जप करनेका फल सौगुना है। यदि पवित्र बागमें वा किसी वनमें जप करे तो उसका फल हजार गुना है। यदि जिनमंदिरमें जप करे तो उसका फल करोड़गुना है। यदि भगवान जिनेन्द्रदेवके समीप जप करे तो अनंतगुना फल है। यही बात धर्मरसिक नामके ग्रन्थमें लिखी है।

गृहे जपफलं प्रोक्तं वने शतगुणं भवेत्। पुण्यारामे तथारण्ये सहस्रगुणितं मतम् ॥ ३१ ॥
पर्वते दशसहस्रं नद्यां लक्षमुदाहृतम्। कोटि देवालये प्राहुरनन्तं जिनसन्निधौ ॥ ३२ ॥

इससे सिद्ध होता है कि घर, वन, बाग आदि जगहोंसे भगवान जिनराजके निकट जप करनेसे अनंतगुना फल प्राप्त होता है।

जप करनेका विधान इस प्रकार है—मोक्षकी प्राप्तिके लिये अँगूठेसे जपना चाहिये औपचारिक कार्योंमें तर्जनी उँगलीसे (अँगूठेकी पासवाली उँगलीसे) जपना चाहिये। धन और सुखकी प्राप्तिके लिये मध्यमा वा बीचकी उँगलीसे जप करना चाहिये। शान्तिक कार्योंमें (शान्ति कर्ममें किसी ग्रह वा उपद्रवको शांत करनेके लिये) अनामिका उँगलीसे (बीचकी उँगलीके पासवाली उँगलीसे) जपना चाहिये। तथा आह्वानन करनेके लिये कनिष्ठा उँगलीसे (सबसे छोटी उँगलीसे) जपना चाहिये। शत्रुको नाश करनेके लिये तर्जनी उँगलीसे, धनसंपदाके लिये मध्यमासे, शांतिके लिये अनामिकासे और सर्वकार्योंकी सिद्धिके लिये कनिष्ठासे जपना चाहिये। इस प्रकार अलग-अलग उँगलियोंसे जप करनेका फल बतलाया है। लिखा भी है—

अंगुष्ठजापो मोक्षाय उपचारे तु तर्जनी। मध्यमा धनसौख्याय शान्त्यर्थं तु अनामिका।
*.....कनिष्ठा सर्वसिद्धिदा।

---

१. पर्वतपर जपना दसहजारगुना फल देता है और नदीके किनारे जपना लाखगुना फल देता है।
* 'तर्जनी शत्रुनाशाय' ऐसा पाठ होना चाहिये।

इस प्रकार यह जप करनेकी विधि बतलाई है सो समयानुसार इस विधिके अनुसार जप करना चाहिये।

२७–चर्चा सत्ताइसवीं

यदि जप करते समय किसी कारणसे विघ्न आ जाय तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार करना चाहिए ?

समाधान—स्नान कर धोती पट्टा दो वस्त्र पहनकर सदाचारपूर्वक जप करनेके लिये बैठना चाहिये और उस समय इतनी बातोंका त्याग कर देना चाहिये। जो अपने व्रतोंसे भ्रष्ट हो गया है उसका तथा शूद्र-का देखना, इन दोनोंके साथ बात चीत करना इन दोनोंके वचन सुनना, छींक लेना। यदि जप करते समय ये ऊपर लिखी बातें हो जायें तो उसी समय जप छोड़ देना चाहिये और फिर आचमन और षडंग-छह अंगोंसे सुशोभित प्राणायाम कर बाकी बचे हुए जपको अच्छी तरह करना चाहिये। यदि आचमन और प्राणायाम न हो सके सो भगवान् जिनेन्द्र देवके दर्शन कर पीछे जप करना चाहिये। भावार्थ—जपके ऐसे विघ्नोंकी शुद्धि आचमन वा प्राणायामसे होती है। यदि आचमन व प्राणायाम न बन सके तो भगवान्के दर्शन कर शुद्धि कर लेनी चाहिये। विघ्न आ जाने पर बिना शुद्धि किये जप नहीं करना चाहिये। सो ही धर्मरसिक ग्रन्थमें लिखा है।

व्रतच्युतान्त्यजातीनां दर्शने भाषणे श्रुते। क्षुतेऽधोवातगमने जृंभने जपमुत्सृजेत् ॥३३॥
प्राप्तावाचम्यते तेषां प्राणायामं षडंगकम्।
कृत्वा सम्यक् जपेच्छेषं यद्वा जिनादिदर्शनम् ॥ ३४ ॥

इससे सिद्ध होता है कि छींक अधोवात आदि विघ्न आ जाने पर प्राणायाम आचमन वा जिनदर्शन कर फिर बाकीका जप पूर्ण करना चाहिये।

जो श्रावक जप करते समय प्रमादी होकर ऊँघते हैं नींदका झोका लेते हैं अथवा बार-बार उवासी लेते हैं अथवा और किसी प्रकारका प्रमाद करते हैं उनका जप करना न करनेके समान है।

२८-चर्चा अठाईसवीं

कर्मोंके आस्रवको रोकनेके लिये और कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिये मुनिराज बाईस परिषहोंको जीतते हैं उन परिषहोंके नाम ये हैं—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, आसन, शय्या, आक्रोश, बध, याञ्चा, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन। ये बाईस परिषह बतलाई हैं सो इन परिषहोंमेंसे कौन-कौन परिषह किस-किस कर्मके उदयसे होती है?

समाधान—प्रज्ञा और अज्ञान ये दो परिषह ज्ञानावरण कर्मके उदयसे होती हैं, अदर्शन परिषह दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे होती है। अलाभ परिषह अन्तराय कर्मके उदयसे होती है। नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याञ्चा, सत्कार, पुरस्कार ये सात परिषह चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे होती हैं। तथा बाकीकी क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल ये ग्यारह परिषह वेदनीय कर्मके उदयसे होती हैं। सो ही मोक्षशास्त्र वा तत्त्वार्थसूत्रमें लिखा है—

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने। दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ। चारित्रमोहे नाग्न्यारति स्त्रीनिषद्याक्रोशयाञ्चासत्कारपुरस्काराः। वेदनीये शेषाः॥—अध्याय ९ सूत्रसंख्या १६।

यही बात मूलाचारप्रदीपककी बारहवीं संधिमें लिखी है।

ज्ञानावरणपाकेन प्रज्ञाज्ञानपरीषहौ। दर्शनाभिधमोहोदयेनादर्शनसंज्ञकः॥१६२॥
लाभान्तरायपाकेन स्यादलाभपरीषहः। नाग्न्यभिधानिषद्या चाक्रोशो याञ्चापरीषहः॥१६३॥
स्यात्सत्कारपुरस्कारो मानाह्वयकषायतः। अरत्यारतिनामा वेदोदयात्स्त्रीपरीषहः॥१६४॥
वेदनीयोदयेनात्र क्षुत्पिपासापरीषहाः। शीतोष्णाख्यौ तथा दंशमशको हि परीषहः॥१६५॥
शय्या चर्या बधो रोगः तृणस्पर्शो मलाह्वयः। एकादश इमे पुंसां प्रजायंते परीषहः॥१६६॥

इस प्रकार और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है।

१. नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याचा, सत्कार, पुरस्कार ये मान कषायके उदयसे होती हैं। अरति परिषह अरति कषायके उदयसे होती है और स्त्री परिषह वेद कर्मके उदयसे होती है। इस प्रकार सात परिषह चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे होती हैं।

२९–चर्चा उनतीसवीं

ऊपर जो बाईस परिषह बतलाई हैं वे मुनिराजके एक समयमें सब उदयमें आती हैं या कुछ कम भी उदयमें आती हैं।

समाधान—मुनिराजके एक समयमें इन बाईस परिषहोंमेंसे उनईस परिषह उदयमें आ सकती हैं। तीन परिषह उदयमें न आनेका कारण यह है कि शीत, उष्ण इन परिषहोंमेंसे किसी एकका ही उदय रहता है। दोनोंका उदय एक साथ नहीं हो सकता। जहाँ उष्णता है वहाँ शीत परिषह नहीं होती है और जहाँ शीत है वहाँ उष्ण परिषहका अभाव रहता है। इस प्रकार इन दोनों परिषहोंमेंसे कोई एक परिषह होती है। तथा चर्या आसन शय्या इन तीनोंमेंसे कोई सी एक परिषह हो सकती है। जब मुनिराज चलते हैं तब आसन और शय्याका अभाव है। जब आसन परिषह है अर्थात् वे विराजमान हैं तब शय्या और चर्याका अभाव है और जब शय्या है अर्थात् वे सो रहे हैं तब चर्या और आसनका अभाव है इस प्रकार एक मुनिराजके एक समयमें इन तीनों परीषहोंमेंसे कोई एक परिषह हो सकती है। इस प्रकार एक समयमें एक मुनिराजके उनईस परिषह ही हो सकती हैं सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है--

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतेः।

यही बात मूलाचार प्रदीपकमें लिखी है--

एकस्मिन् समये ह्येकजीवस्य युगपद्भुवि। परीषहाः प्रजायन्तेऽगिनां चैकोनविंशतिः ॥१६७॥
मध्ये शीतोष्णयोर्नूनमेक एव परीषहः। शय्याचर्यानिषद्यानां तथैकः स्यान्नचान्यथा ॥१६८॥

इस प्रकार एक समयमें एक मुनिराजके अधिकसे अधिक उनईस परिषह ही उदयमें आती हैं।

३० चर्चा–तीसवीं

ये ऊपर लिखी परिषहें कौन-कौनसे गुणस्थानमें होती हैं ?

समाधान—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत, देशव्रत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन सातों गुणस्थानोंमें पहले कही हुई बाईसों परिषहोंका उदय होता है। अपूर्वकरण नामके आठवें गुणस्थानमें अदर्शन परिषहको छोड़कर

बाकी इकईस परिषहोंका उदय है। नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अदर्शन और अरति परिषहको छोड़कर बाकी बीस परिषहोंका उदय है। उसी अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें जब शुक्लध्यानके द्वारा वेद कर्मका नाश हो जाता है तब स्त्रीपरिषह भी नष्ट हो जाती है उस समय स्त्री परिषहके बिना बाकी उनईस परिषहोंका उदय रहता है। तदनंतर उसी अनिवृत्तिकरण नामके नौवें गुणस्थानमें जब मान कषायका नाश हो जाता है वा उपशम हो जाता है तब नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याञ्चा, सत्कार-पुरस्कार इन पाँच परिषहोंका अभाव हो जाता है इसलिये उस समयसे लेकर बाकीके नौवें गुणस्थानमें तथा दशवें ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानमें वीतराग छद्मस्थके ऊपर लिखी नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याञ्चा और सत्कारपुरस्कार इन पाँच परिषहोंको छोड़कर बाकीकी चौवह परिषह हो सकती हैं। इन चारों गुणस्थानोंमें जो ये चौवह परिषह होती हैं वे बहुत ही थोड़ी असाता उत्पन्न कर सकती हैं। तथा घातिया कर्मोंके नाश होनेपर तेरहवें गुणस्थानवर्ती सर्वज्ञ वीतरागके इन चौवह परिषहोंमेंसे प्रज्ञा अज्ञान और अलाभ परिषहको छोड़कर बाकीकी ग्यारह परिषहोंका उदय रहता है। ये ग्यारह परिषह वेदनीय[1] कर्मके उदय होनेसे नाममात्रके लिये कही गई हैं परन्तु हैं उपचारमात्र क्योंकि घातिया कर्मोंके नाश होनेसे वे अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकतीं अतएव वे किंचित्मात्र भी पीड़ा नहीं दे सकतीं। वे अत्यन्त निर्बल केवल कहने मात्रकी हैं। इस प्रकार अलग-अलग गुणस्थानोंमें परिषहोंका उदय बतलाया। सो ही मूलाचार प्रदीपकमें लिखा है।

मिथ्यात्वाद्यप्रमत्तांतगुणस्थानेषु सप्तसु। सर्वे परीषहाः संति ह्यपूर्वकरणे सताम् ॥१६६॥

---

१. वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मके उदय होने पर ही अपना काम करता है। मोहनीय कर्मके नाश हो जाने पर वेदनीय कर्म कुछ काम नहीं कर सकता इसीलिये तेरहवें गुणस्थानमें सब परिषहोंका अभाव है। तत्त्वार्थसूत्रमें जो 'एकादश जिने' सूत्र लिखा है उसका भी यही अर्थ है कि भगवान् जिनेन्द्रदेवके बाकीकी ग्यारह परिषह भी नहीं हैं। यह अर्थ इस प्रकार निकलता है 'न दश अदश'। अर्थात् दशके अभावको अदश कहते हैं। 'एकेन सह न दश एकादश' अर्थात् एकके साथ दशका अभाव अर्थात् ग्यारहके अभावको एकादश कहते हैं। जिनेन्द्र भगवान्के ग्यारह परिषहोंका अभाव है। भगवान् जिनेन्द्रदेवके घातिया कर्मोंके नाश होनेसे ग्यारह परिषह तो अपने आप नष्ट हो जाती हैं। वेदनीय कर्मके उदयसे होने वाली ग्यारह परिषहोंका निषेध इस सूत्रने कर दिया। इस प्रकार भगवान् अरहंतदेवके समस्त परिषहोंका अभाव सिद्ध हो जाता है।

अदर्शनं विना ह्येकविंशतिः स्युः परिषहाः।
विंशतिश्चानिवृत्तौ हि विनारतिपरीषहान् ॥ १७० ॥
शुक्लध्यानेन तत्रैव प्रनष्टे वेदकर्मणि। स्त्र्याख्ये परीषहे नष्टे तस्य रेकोनविंशतिः ॥१७१॥
ततो मानकषायस्य क्षयात्तत्रैव वा शमात्।
नाग्न्यनाम निषद्याख्याक्रोशयाचाश्रिहाः ॥ १७२ ॥
सत्कारादिपुरस्कारश्चामीभिः पंचभिर्विना।
अनिवृत्त्यादिषु क्षीणकषायांतेषु निश्चितम् ॥ १७३ ॥
गुणस्थानचतुष्केषु चतुर्दशः परिषहाः। छद्मस्थवीतरागाणां भवन्त्यल्पासुखप्रदाः ॥१७४॥
नष्टे घातिविधौ क्षीणकषाये च परिषहाः। प्रज्ञाज्ञानाह्वयालाभा नश्यंति घातिघातिनः॥१७५॥
केवलज्ञानिनां वेदनीयाख्यविद्यमानतः। उपचारेण कथ्यंतेऽत्रैकादशपरिषहाः ॥१७६॥
घातिकर्ममलापायात्स्वकार्यकरणेऽक्षमाः। दातुं दुःखमशक्ताश्च विगतांतसुखाश्रयात् ॥

मोक्षशास्त्रमें भी यही बात लिखी है—

सूक्ष्म साम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश। एकादश जिने। बादसांपराये सर्वे।

अध्याय ९ सूत्र सं० १०-११-१२

२१–चर्चा इकत्तीसवीं

चारों गतियोंमें रहने वाले जीवोंके किस-किस परिषहका उदय है अर्थात् चारों गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिमें किस-किस परिषहका उदय है।

समाधान—चारों गतियोंमेंसे नरकमें रहनेवाले नारकी जीवोंके तथा तिर्यंच गतिमें रहने वाले तिर्यंचोंके समस्त परिषहोंका उदय है और वह भी अत्यन्त तीव्र, अत्यन्त घोर और सबसे अधिक है। तथा देव गतिके

१. बारहवें गुणस्थानमें [illegible]दनीय कर्मका अभाव हो जाता है इसलिये वहाँ भी उपचार मात्रसे ही परिषहोंका उदय है।

सब देवोंके प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन, अलाभ, अरति, नाग्न्य, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याञ्चा, सत्कारपुरस्कार, क्षुधा, तृषा, बध इन चौदह परिषहोंका उदय है, सो भी बहुत थोड़ा है। मनुष्य गतिके जीवोंके लिये गुणस्थानोंके अनुसार पहले लिख ही चुके हैं उसीके अनुसार समझ लेना चाहिये। इस प्रकार चारों गतियोंमें रहनेवाले जीवोंके पृथक्-पृथक् परिषहोंका उदय बतलाया है। सो ही मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है—

सर्वे तीव्रतराः संति सर्वोत्कृष्टाः परिषहाः। नारकाणां गतौ घोरास्तथा तिर्यग्गतावपि॥१७८॥
प्रज्ञाज्ञानाभिधादर्शनालाभनाग्न्यसंज्ञकाः। अरतिस्त्रीनिषद्याख्याक्रोशयांचापरीषहाः॥१७९॥
सत्कारादिपुरस्कारः क्षुत्पिपासाबधोप्यमी। संति देवगतौ स्वल्पाश्चतुर्दशपरिषहाः॥१८०॥

३२-चर्चा बत्तीसवीं

मोक्षमार्ग अनादिकालसे है। संसारराशिके जीव अनादिकालसे संसारका नाश कर मोक्ष प्राप्त करते आ रहे हैं। वर्तमानमें भी विदेहक्षेत्रसे जाते हैं तथा आगे भी अनन्तकाल तक जाते रहेंगे परन्तु फिर भी सिद्धराशि बढ़ती नहीं और निगोदराशि घटती नहीं। सिद्धराशि और निगोदराशि वैसीकी वैसी ही अनन्तानंत रूप बनी रहती है सो यह कहना किस प्रकार सिद्ध हो सकता है। क्योंकि जो पदार्थ जहांसे निकलता है वहां घटना चाहिये और जहां जाता है वहां बढ़ना चाहिये। इस हिसाबसे सिद्धराशि बढ़नी चाहिये और निगोदराशि घटनी चाहिये ?

समाधान—इस संसारमें निगोदराशि [२]असंख्यात लोक प्रमाण है और एक एक निगोदराशिमें अनंतानंत निगोदिया जीव निवास करते हैं। उन अनंतानंत जीवोंमेंसे यदि किसी जीवके स्थावर नाम कर्मका उपशमा-

१. स्वर्गोंमें शीत, उष्ण, दंशमशककी बाधा होती ही नहीं वैक्रियिक शरीर होनेसे रोग, तृणस्पर्श, मल और शय्याकी बाधा नहीं है तथा विमान बनानेकी शक्ति होनेसे अथवा वैक्रियिक शरीर होनेसे ही चर्याकी भी परिषह नहीं है।

२. इस लोकाकाशमें स्कंधोंकी संख्या असंख्यात लोकप्रमाण है, प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवोंके शरीरोंको स्कंध कहते हैं। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उनको असंख्यातसे गुणा कर देने पर जो लब्धि आवे उतनी संख्या उन स्कंधोंकी है। तथा एक एक स्कंधमें असंख्यात लोकप्रमाण अंडर हैं। एक एक अंडरमें असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक एक आवासमें असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि हैं तथा एक एक पुलविमें असंख्यात लोकप्रमाण निगोदशरीर हैं और एक एक निगोद शरीरमें अनंतानंत जीव हैं।

विक हो जाय तो वह जीव वहांसे निकलकर दो इंद्रिय आदि त्रस पर्यायमें आकर उत्पन्न होता है। उस निगोद-राशिमेंसे जितने जीव निकलकर त्रस पर्याय धारण कर संसारको व्यवहार राशिमें आते हैं उतने ही जीव व्यवहार राशिसे निकलकर समस्त कर्मोंका नाशकर मोक्ष चले जाते हैं। इस प्रकार व्यवहार राशि उतनीकी उतनी ही बनी रहती है। इस प्रकार जैनशास्त्रोंमें भगवान् जिनेन्द्रदेवने कहा है सो सर्वथा निसंदेह है। इसको उदाहरण देकर समझाते हैं। जैसे पद्मद्रह आदि छहों द्रहोंमेंसे गंगा सिंधु आदि चौदह नदियाँ निकलती हैं तथा अनादि-कालसे उन द्रहोंमेंसे पानी निकलता रहता है और समुद्रमें पड़ता रहता है तो भी द्रहोंका पानी घटता नहीं। वश

---

१. इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि नित्यनिगोद राशिमेंसे जो जीव निकलते हैं वे कम अवश्य हो जाते हैं परन्तु वे अक्षय अनंतानंत हैं कम होनेपर भी उनकी अक्षय अनंतानंत संख्या कभी कम नहीं होती। जैसे आकाश अनंत है और वह चारों ओर अनंत है यदि हम किसी एक ओर किसी तेज सवारीसे चलें तो उस ओरका जो आकाश है वह जितना हम चलते हैं उतना कम तो अवश्य होता जाता है परन्तु वह बाकी भी हमेशा अनंत ही रहता है। इस प्रकार यदि हम अनंत कालतक चलते रहें तो उतना अनंत आकाश कम हो जायगा परन्तु फिर भी बाकी आकाश अनंत ही रहेगा। अनंतमेंसे अनंत निकाल लेनेपर भी अनंत ही बाकी रहते हैं जैसे करोड़ संख्यात हैं और दस भी संख्यात हैं करोड़मेंसे दस निकल जाने पर अथवा सौ वा हजार निकल जाने पर भी संख्यात ही बाकी रहते हैं इसी प्रकार अनन्तमेंसे अनंत निकल जानेपर भी अनंत ही बाकी रहते हैं। जब आकाश अनन्त है और उसमेंसे अनन्तकाल तक चलते चलते अनन्त आकाश घट जाता है परन्तु फिर भी बाकी आकाश अनन्त ही रहता है। यदि बाकी आकाश अनन्त न माना जाय तो फिर आकाशका अन्त आ जाना चाहिये, सो है नहीं क्योंकि आकाश सर्वत्र व्यापक है। यदि आकाशका अन्त मान लिया जायगा तो फिर उसके व्यापकपनेका अभाव मानना पड़ेगा परन्तु आकाशको व्यापक सबने माना है इसलिए जिस प्रकार आकाश अनन्त होकर भी तथा उसमेंसे अनन्त आकाश घट जानेपर भी सर्वत्र व्यापक होनेसे बाकी आकाश अनन्त ही रहता है उसी प्रकार अक्षयानन्तानन्त निगोदराशिमेंसे निकलनेवालोंकी संख्या घट जानेपर भी वह निगोदराशि सदा अक्षय अनन्तानन्त ही बनी रहती है। इसमें कोई किसी प्रकारका संदेह नहीं है।

इसी प्रकार सिद्धराशि अनन्तानन्त है उसमें अनादिकालसे जीव बढ़ते आ रहे हैं तथा बढ़ते जायेंगे फिर भी वह सदा अनंतानंत ही रहेगी। जैसे आकाश अनन्त है यदि हम पूर्वको चलें तो पूर्वकी ओरका आकाश तो घटता जाता है और पश्चिमकी ओरका आकाश बढ़ता जाता है। यदि हम इस प्रकार अनन्त कालतक चलते रहें और इस प्रकार पश्चिमकी ओरका आकाश अनन्तरूपसे ही बढ़ता रहे तो भी अनन्त ही रहता है। न तो पूर्वका आकाश अनन्तसे घटता है और न पश्चिमका आकाश अनन्तरूपसे बढ़ता है। इसी प्रकार निगोद राशिमेंसे जीवोंके निकलते रहने पर भी निगोद राशिका अक्षय अनन्तानन्तपन कभी नहीं घटता तथा सिद्ध-राशिमें अनादिकाल से जीव बढ़ते जा रहे हैं और अनंत कालतक बढ़ते जायंगे तब भी उनकी संख्या अनंतानंतसे कभी नहीं बढ़ेगी। इस प्रकार न तो संसारकी जीवराशि कभी घटती है और न सिद्धराशि कभी बढ़ती है।

बीस चालीस योजन गहरा बना ही रहता है, भूत भविष्यत् वर्तमान किसी भी कालमें उन द्रहोंका पानी नहीं घटता तथा समुद्रका जल कभी बढ़ता नहीं समुद्रकी मर्यादा भी अनादि कालसे अनंतकाल तक जैसेकी तैसे ही बनी रहती है। अथवा आकाशसे जलकी वर्षा होती है और वह सब समुद्रमें जाती है तो भी आकाशमें जल घटता नहीं और समुद्रमें बढ़ता नहीं इस प्रकार और भी उदाहरण हैं।

३३–चर्चा तेतीसवीं

प्रश्न—यम नियमका अर्थ क्या है ?

समाधान—अपने जीवन पर्यंत पापोंका त्याग करना यम है और एक मुहूर्त एक दिन महीना दो महीना वर्ष दो वर्ष आदि कालकी मर्यादा लेकर पापोंका त्याग करना सो नियम है। सो ही रत्नकरंडश्राव-काचारमें लिखा है।

"नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते"

इसका भी अभिप्राय यह है कि महामुनियोंके यम रूप त्यागको मुख्यता है नियमरूप त्यागकी गौणता है तथा श्रावकोंके नियमरूप त्यागको मुख्यता है और यमरूप गौणता है।

३४–चर्चा चौंतीसवीं

प्रश्न—उपवासका लक्षण क्या है ?

समाधान—उपवास धारण करनेवाले भव्यजीव उपवास धारण करनेके समयसे लेकर आठ पहर तक, बारह पहर तक अथवा सोलह पहर तक क्रोध मान माया लोभ इन चारों कषायोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं, स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र इन पाँचों इन्द्रियों के स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द इन विषयोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं और [1]खाद्य स्वाद्य अवलेह पान इन चारों प्रकारके आहारोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं। इन सबके त्याग करनेको उपवास कहते हैं। जो लोग क्रोधादिक कषायोंका त्याग किए बिना ही केवल भोजन पान आदिका

१. दाल, रोटी, भात आदि भोजनके पदार्थोंको खाद्य कहते हैं। पेड़ा, बरफी लौंग, इलायची आदि स्वाद लेने योग्य पदार्थोंको स्वाद्य करते हैं। चाटने योग्य रबड़ी, चटनी आदिको अवलेह कहते हैं और दूध, पानी आदि पीने योग्य पदार्थोंको पान कहते हैं।

त्याग कर बैठे हैं और उसको उपवास कहते हैं सो मिथ्या है। जैनधर्मके अनुसार यह उपवास नहीं किंतु लंघन कहलाता है। सो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

उववासं कुव्वंतो आरंभं जो करेदि मोहादो।
सो णियदेहं सोसदि ण झाणए कम्मसेसंपि ॥ ३७७ ॥

इसकी टीकामें भी लिखा है—

कषायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते। उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥

प्रश्न—इससे सिद्ध होता है कि कषाय इंद्रियोंके विषय सब तरहके आरंभ और चारों प्रकारके आहारोंका त्याग करना ही उपवास है।

३५–चर्चा पैंतीसवीं

यदि किसीके ऊपर लिखे अनुसार उपवास करनेकी शक्ति न हो और वह बीचमें जल पी लेवे तो उसको कैसा फल लगता है।

समाधान—पहली बात तो यह है कि उपवास ऊपर लिखे अनुसार ही करना चाहिये। यदि कोई हीनशक्तिवाला उपवासके दिन जल पी ले तो उसके आठवाँ भाग फल नष्ट होजाता है। यह बात प्रश्नोत्तरोपासकाचार नामके ग्रंथमें प्रोषधोपवासके कथन करते समय लिखी है—

नीरादानेन हीयेत भागश्चवाष्टमो नृणाम्। उष्णेनैवोपवासस्य तस्मान्नीरं त्यजेत्सुधीः ॥

३६–चर्चा छत्तीसवीं

प्रश्न—पंचोपचारी पूजाका स्वरूप क्या है?

समाधान—आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजा और विसर्जन ये पाँच पूजाके उपचार वा अंग

१. जो उपवास करता हुआ भी मोहके वश होकर आरंभ करता है वह केवल अपना शरीर सोखता है। उससे उसके कर्म कुछ भी नष्ट नहीं होते।
२. जिसमें कषाय विषय और आहारका त्याग किया जाता है उसीको उपवास कहते हैं बाकी सब लंघन हैं।

कहलाते हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है—जो अरहंत देव आदिकी पूजाके समय मंत्र पढ़कर उनका आह्वानन करना उसके लिए पुष्प अक्षत आदि स्थापन करना सो पहला आह्वानन नामका उपचार है। आह्वाननके बाद मंत्र पढ़कर तथा पुष्प अक्षत आदि स्थापन कर उन पूज्य अरहंत आदिका स्थापन करना सो स्थापना नामका दूसरा उपचार है। स्थापना करनेके बाद पुष्प अक्षत आदिके द्वारा उन पूज्य अरहंतादिकोंको अपने समीप करना सो सन्निधिकरण नामका तीसरा उपचार है। तदनंतर जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल अर्घादिसे मंत्र पूर्वक उन पूज्य अरहंत आदिकी पूजा करना सो चौथा पूजा नामका उपचार है तथा पूजा करनेके बाद स्तुति जप वंदना आदि करके मंत्र पढ़कर और पुष्प अक्षत आदि क्षेपण कर उनका विसर्जन करना सो विसर्जन नामका पांचवां उपचार है। इस प्रकार पंचोपचारी पूजाका स्वरूप जानना। सो ही लिखा है—

ओं ह्रीं अर्हन् श्रीपरमब्रह्मन् अत्रावतरावतर संवौषट्। इति आह्वाननम्।
ओं ह्रीं अर्हन् श्रीपरमब्रह्मन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ओं ह्रीं अर्हन् श्रीपरमब्रह्मन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधापनम्।
ओं ह्रीं परमब्रह्मणे अनंतानंतज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणविराजमानाय अर्हत्परमेष्ठिने जलं निर्वपामीति स्वाहा।

इसी प्रकार चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, अर्घ आदि द्रव्य चढ़ाते समय बोला जाता है। तथा विसर्जन करते समय यह पढ़ा जाता है "ओं ह्रीं अर्हन् श्रीपरमब्रह्मन् स्वस्थानं गच्छ गच्छ जः जः जः" इस प्रकार पंचोपचारी पूजाका स्वरूप 'पूजासार' तथा प्रतिष्ठापाठ और जिनसंहिता आदि समस्त पूजाओंके पाठोंमें लिखा है। इसलिए शास्त्र गुरु आदिकी पूजा भी इसी रीतिसे समझनी चाहिए अर्थात् इनकी पूजा भी पंचोपचारी करनी चाहिये।

कदाचित् यहांपर कोई यह पूछे कि पंचोपचारके शब्द किस किस धातुसे बने हैं तो इसका उत्तर यह है कि आह्वान शब्द ह्वेञ् धातुसे बना है। ह्वेञ् धातुका अर्थ आह्वान वा बुलाना है। स्थापन शब्द स्था धातुसे

१. इन पाँचों उपचारोंमें जो संवौषट्, ठः ठः, वषट् आदि शब्द हैं वे बीजाक्षर हैं। आह्वाननमें संवौषट्, स्थापनमें ठः ठः, सन्निधिकरणमें वषट् और विसर्जनमें जः जः आता है।

बना है। स्था धातुका अर्थ गतिनिवृत्ति वा ठहरना है उसका पंचमी वा लोटका मध्यम पुरुषका एकवचन तिष्ठ बनता है। सम् पूर्वक नि पूर्वक धि धातुका अर्थ निकट होता है। यज् धातु का अर्थ पूजा करना है इसीसे याग वा इज्या बनता है। जिसका अर्थ पूजा करना है। तथा जः इस बीजाक्षरका अर्थ गमन करना है। अथवा गच्छ शब्द गम धातुसे बना है और उसका अर्थ भी जाना है इस प्रकार इन पाँचों उपचारोंके वाचक शब्दोंका धात्वर्थ—धातुसे बना हुआ अर्थ बतलाया।

३७-चर्चा सैंतीसवीं

प्रश्न—गृहस्थके द्वारा होनेवाली भगवान् अरहन्त देवकी पूजामें छह क्रियाएँ सुनी जाती हैं सो कौन कौन हैं ?

समाधान—सबसे पहले जलादिक पंचामृतसे भगवान् अरहन्तदेवका स्नपन वा अभिषेक करना सो पहली क्रिया है। अभिषेकके बाद पहले कही हुई विधिके अनुसार पंचोपचारी पूजा करना सो दूसरी क्रिया है। पूजाके बाद उनका स्तोत्र पाठ करना सो तीसरी क्रिया है। स्तुतिके बाद उनके वाचक मंत्रोंके द्वारा एक सौ आठ बार जप करना सो चौथी क्रिया है। तदनन्तर कायोत्सर्ग धारण कर उनका ध्यान करना सो पाँचवीं क्रिया है। फिर शास्त्रोंके द्वारा पाँच प्रकारका स्वाध्याय करना सो छठी क्रिया है। इस प्रकार पूर्वाचार्योंने देवसेवा (देवपूजा) करनेके लिये गृहस्थोंको छह क्रियाओंके करनेका उपदेश दिया है। सो ही यशस्तिलक नामके महाकाव्यमें लिखा है—

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं जपं ध्यानं श्रुतिश्रवम्। क्रियाः षडुदिताः सद्भिः देवसेवासु गेहिनाम्॥

३८-चर्चा अड़तीसवीं

प्रश्न—आठों कर्मोंको नाश कर सिद्ध भगवान् निरन्तर सिद्धालयमें विराजमान रहते हैं सो वह सिद्धालय लोकके अग्रभाग पर है या वातवलय के भीतर है या वातवलयके ऊपर है।

---

१. दूध, दही, घी, इक्षुरस और सर्वौषधि ये पाँच अमृत कहलाते हैं। इनसे विधिपूर्वक अभिषेक करना पंचामृताभिषेक कहलाता है।
२. अभिषेक, पूजा, स्तोत्र, जप, ध्यान, स्वाध्याय ये पूजामें छह क्रियाएँ बतलाई हैं।
३. द्रव्यसंग्रहमें भी लिखा है "सिद्धो झाएह लोअसिहरत्थो" अर्थात् सिद्धभगवान् लोक शिखर विराजमान हैं उनका ध्यान करना चाहिये।

समाधान—यह तीनों लोक घनोदधिवात और तनुवात ऐसे तीन वातवलयोंसे घिरा हुआ है। इन तीनों वातवलयोंमेंसे तीसरे तनुवातवलयमें पैंतालीस लाख योजन प्रमाण सिद्धालय सुशोभित है वहाँ पर सिद्ध परमेष्ठी विराजमान रहते हैं। पंचमंगल भाषामें भी लिखा है। "लोक शिखर तनुवातवलयमें संठया।" इस प्रकार और भी जैनशास्त्रोंमें लिखा है।

३९–चर्चा उनतालीसवीं

प्रश्न—इस जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है परन्तु मुक्तजीव वातवलयमें लोकके अन्त तक जाते हैं आगे नहीं जाते सो इसका क्या कारण है, वे वहीं तक क्यों रह जाते हैं ?

समाधान—इस लोककी मर्यादा वातवलयके अन्त तक ही है आगे अलोकाकाश है। अलोकाकाशमें केवल शून्यरूप आकाशके सिवाय और कोई पदार्थ नहीं है। जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल इन पाँचों द्रव्योंका अभाव जिस आकाशमें हो उसको अलोकाकाश कहते हैं। तथा गमन करनेमें सहायक होनेकी शक्ति धर्मास्तिकायमें है और अलोकाकाशमें धर्मास्तिकाय है नहीं। इसलिये धर्मास्तिकायके अभाव होनेसे आगे अलोकाकाशमें ऊर्ध्वगमन नहीं होता। अतएव मुक्त जीवकी स्थिति लोकके अन्त पर्यंत ही रहती है सो ही तत्त्वार्थसूत्रमें लिखा है—"धर्मास्तिकायाभावात्" अर्थात् धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे आगे सिद्धोंका गमन नहीं होता।

४०–चर्चा चालीसवीं

प्रश्न—मुनिराज एकाग्रचित्त होकर ध्यान करते हैं सो उस ध्यानकी स्थिति कितनी है।

समाधान—शारीरिक बाह्य पर पदार्थोंके चिंतवनका निरोध कर अपनी आत्माके स्वरूपोंमें एकाग्रताका चिंतवन शुद्धध्यान है। वह धर्मध्यान शुक्लध्यानके भेदसे दो प्रकार है वह वज्रवृषभनाराच; वज्रनाराच और नाराच इन तीनों उत्तम संहननोंको धारण करनेवाले जीवोंके होता है। इनमें भी वज्रवृषभनाराच नामके

१. धम्माधम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति जावदिए। आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो।
अर्थ—धर्म, अधर्म काल, पुद्गल, जीव ये पाँच पदार्थ जितने आकाशमें रहते हैं उसको लोक कहते हैं और जिस आकाशमें कोई द्रव्य न हो उसको अलोकाकाश कहते हैं।

प्रथम संहननको धारण करनेवाले जीवोंके वह ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक रहता है इससे अधिक नहीं ठहर सकता। सो ही तत्त्वार्थसूत्रमें लिखा है।

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ अध्याय ९ सूत्र सं० २७

४१-चर्चा इकतालीसवीं

प्रश्न—जैनधर्ममें चार आश्रम स्थापन किये हैं सो वे कौन-कौन हैं और उनका स्वरूप क्या है ?

समाधान—उपासकाध्ययन नामके सातवें अंगमें आश्रम चार प्रकारके बतलाये हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक। आश्रमोंके ये भेद क्रियाओंके भेदसे होते हैं सो ही प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें लिखा है—

ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुकसत्तमः। चत्वारो ये क्रियाभेदादुक्ता वर्णवदाश्रमाः ॥

इन चार प्रकारके वर्णाश्रमोंमेंसे पहले ब्रह्मचारीके पांच भेद हैं—उपनय ब्रह्मचारी, अवलंब ब्रह्मचारी, अदीक्षित ब्रह्मचारी, गूढ ब्रह्मचारी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी। इनके अन्तमें ब्रह्मचारी शब्द सबके साथ लगा हुआ है। इनका विशेष स्वरूप इस प्रकार है—जो श्रावकाचार सूत्रका विचार करे, विद्याभ्यास करनेमें सदा तत्पर रहे और गृहस्थधर्ममें (गृहस्थोंके द्वारा करने योग्य धार्मिक क्रियाओंमें) निपुण हो उसको उपनय ब्रह्मचारी कहते हैं। जो जबतक विवाह न करे तबतक क्षुल्लक अवस्था धारण करे सदा जैनशास्त्रोंका अध्ययन करता रहे। अध्ययन समाप्तकर पीछे पाणिग्रहण करे उसको अवलम्ब ब्रह्मचारी कहते हैं। जो बिना दीक्षा लिये ही व्रताचरण करनेमें लीन हो, जैनशास्त्रोंके अभ्यास करनेमें तत्पर हो और समस्त शास्त्रोंको पढ़कर फिर पाणिग्रहण करे। अर्थात् "शास्त्रोंका अभ्यास पूर्ण हुए विना विवाह नहीं करूँगा" ऐसा नियम लेकर विना दीक्षा लिये ही जो व्रतोंके आचरण करनेमें प्रवृत्ति करे उसको अदीक्षित ब्रह्मचारी कहते हैं। बालक अवस्थासे ही जैनशास्त्रोंके अभ्यास करनेमें जिसका प्रेम हो और जो शास्त्रोंको पढ़ चुकनेके बाद माता-पिताके हठसे विवाह करे। भावार्थ—जो स्वयं विवाह न करे किन्तु दूसरेके हठसे जिसको विवाह करना पड़े उसको गूढ ब्रह्मचारी कहते हैं। तथा जो जीवनपर्यंत समस्त स्त्रीमात्रका त्याग कर देवे और एक वस्त्रमात्र परिग्रहके विना बाकी सबका त्याग कर देवे सो नैष्ठिक ब्रह्मचारी है। इस प्रकार इनका स्वरूप है। यह ब्रह्म-

चर्य अवस्था सातवीं प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक समझना चाहिये। आगे गृहस्थका दूसरा वर्णाश्रम लिखते हैं।

जो त्रिकाल वंदना तथा पूजा[1] आदि छह कर्मोंके करनेमें तत्पर हो, जो विषय कषाय और हिंसादिक पापोंका त्यागी हो, जो स्वात्मरसका (अपने शुद्ध आत्माके आनंदरसका) भोगी हो, जो दयालु हो उसको गृहस्थ कहते हैं, अभिप्राय यह है कि अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंको पालन करनेवाला हो उसको गृहस्थ कहते हैं। जो ग्यारह प्रतिमाओंको पालन करता हो, जो ध्यान और अध्ययन करनेमें सदा तत्पर हो, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायोंसे रहित हो उनको वानप्रस्थ कहते हैं। तथा जो हिंसा आदि समस्त पापोंका जीवन पर्यंतके लिये त्यागी हो, पंच महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुणोंको धारण करनेवाला हो, धर्मध्यानमें लीन हो, ध्यानी हो, मौन धारण करनेवाला हो और तपस्वी हो उसको भिक्षुक कहते हैं।

भावार्थ---महा मुनियोंको भिक्षुक कहते हैं। इस प्रकार चारों वर्णाश्रमोंका स्वरूप जानना। सो ही धर्मरसिक नामके शास्त्रमें लिखा है।

उपनयावलंबो चादीक्षितो गूढनैष्ठिकाः। श्रावकाध्ययने प्रोक्ताः पंचधा ब्रह्मचारिणः ॥२२॥
श्रावकाचारसूत्राणां विचाराभ्यासतत्परः। गृहस्थधर्मशक्तश्चोपनयब्रह्मचारिकः ॥२३॥
स्थित्वा क्षुल्लकरूपेण कृत्वाभ्यासं सदागमे। कुर्याद्विवाहकं सोत्रावलंबब्रह्मचारिकः ॥२४॥
विना दीक्षां व्रताशक्तः शास्त्राध्ययनतत्परः। पठित्वोद्वाहं यः कुर्यात्सोऽदीक्षाब्रह्मचारिकः॥२५॥

आबाल्याच्छास्त्रसम्प्राप्तिः पित्रादीनां हठात्पुनः।
पठित्वोद्वाहं यः कुर्यात्स गूढब्रह्मचारिकः ॥२६॥

---

१. देवपूजा, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये गृहस्थोंके छह कर्म हैं।
२. वानप्रस्थ अवस्थामें अप्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी चारों कषायोंका भी अभाव रहता है।

१.....॥२७॥

संध्याध्ययनपूजादिकर्मसु तत्परो महान्। त्यागी भोगी दयालुश्च स गृहस्थः प्रकीर्तितः॥२८॥
प्रतिमैकादशधारी ध्यानाध्ययनतत्परः। प्राक्कषायविदूरस्थो वानप्रस्थः प्रशस्यते॥२९॥
सर्वसंगपरित्यक्तो धर्मध्यानपरायणः। ध्यानी मौनी तपोनिष्ठः संज्ञानी भिक्षुरुच्यते॥३०॥

इसके सिवाय इन चारों आश्रमोंका इसी प्रकारका कथन धर्मामृतश्रावकाचारमें, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें श्रीशुभचंद्राचार्य कृत उसकी संस्कृत टीकामें तथा और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है उनमेंसे इनका विशेष स्वरूप समझ लेना चाहिये।

४२-चर्चा बियालीसवीं

प्रश्न--पहले कहे हुए नैष्ठिक तथा वानप्रस्थ आश्रमवाले ब्रह्मचारी जो लंगोट आदि वस्त्र पहिनते हैं वह किस रंगका पहिनते हैं ?

समाधान--ऊपर लिखे हुये दोनों प्रकारके ब्रह्मचारी सफेद अथवा कषायले लाल वस्त्रकी लंगोटी आदि रखते हैं। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें लिखा है।

नैष्ठिकब्रह्मचारिणः समधिगतशिखालक्षितशिरोलिंगः, गणधरसूत्रोपलक्षितोरोलिंगाः, शुक्लरक्तवसनखंडकोपीनलक्षितकटिलिंगः स्नातकाः भिक्षावृत्तयो भवंति। देवार्चनपरा भवंति।

कदाचित् यहांपर कोई यह प्रश्न करे कि इनके लिये शुक्ल वस्त्र तो ठीक है परन्तु रक्त वस्त्रोंका (गेरुआ वस्त्रोंका) धारण करना तो भेषियोंका रूप समझा जाता है। परंतु इसका समाधान यह है कि पहले कही हुई लाल रंगकी लंगोटी पहिनना भी नग्नताके लिये हैं। शास्त्रोंमें दस प्रकारके नग्न बतलाये हैं। जैसे--

१. इसमें नैष्ठिक ब्रह्मचारीका स्वरूप कहने वाला २७वां श्लोक छूट गया है।
२. साक्षात् नग्नके सिवाय नौ प्रकारके नग्न भावीनैगमकी अपेक्षासे कहे हैं। साक्षात् नग्नताकी लालसा करते हुए ही रंगे वस्त्र वा कोपीन आदि धारण की जाती है।

जो अपवित्र वस्त्र पहिने सो भी नग्न है, जो खंडवस्त्र पहिने सो भी नग्न है, जो मैले वस्त्र पहिने सो भी नग्न है, जो कोपीन पहने वह भी नग्न है, जो कषायले रंगके रँगे वस्त्र पहिने सो भी नग्न है जो दूसरोंके उतरे हुए वस्त्र पहिने वह भी नग्न है। जो भीतर काछ लगावे बाहरसे न लगावे वह भी नग्न है, जो बाहर काछ लगावे भीतरी काछ न हो वह भी नग्न है, जिसकी काछ छूटी रहे वह भी नग्न है, तथा जो साक्षात् नग्न है वह नग्न है ही। इस प्रकार दश प्रकारके जो नग्न बतलाये हैं उनमें रँगे वस्त्रोंका पहिनना भी नग्नताके लिये कहा है। इसीलिये गेरुआ वस्त्रको भी कोपीन आदि बतलाई है। यह बात श्रीसिद्धसेन दिवाकर विरचित दशाध्याय सूत्रकी बाईस हजार परिमित टीकामें लिखी है तथा धर्मरसिक ग्रंथमें भी लिखी है।

अपवित्रपटो नग्नो नग्नश्चार्द्धपटः स्मृतः। नग्नश्च मलिनोद्वासी नग्नः कोपीनवानपि ॥२१॥
कषायवासस नग्नो नग्नश्चोत्तीर्यवानपि। अन्तःकच्छो बहिःकच्छो मुक्तकच्छस्तथैव च ॥२२॥

यह प्रकरण और जगह भी लिखा है—

[1]सुखानुभवने नग्नो नग्नो जन्मसमागमे। बाल्ये नग्नः शिवो नग्नः नग्नः छिन्नशिखो यतिः॥
नग्नत्वं सहजं लोके विकारो वस्त्रवेष्टनम्। नग्ना चेयं कथं वंद्या सौरभेयी दिने दिने।
यशस्तिलकचंपू ॥

इस प्रकार वर्णन समझना चाहिये।

४३–चर्चा तेतालीसवीं

प्रश्न—सात समुद्घातोंमेंसे केवलीसमुद्घात केवली भगवान्के होता है सो वह किस गुणस्थानमें होता है।

समाधान—जिसकी आयु छह महीने बाकी हो और बाकीके वेदनीय नाम गोत्र इन तीनों कर्मोंकी स्थिति छह महीनेसे अधिक हो, ऐसे मनुष्यको केवलज्ञान उत्पन्न हो तो वह केवलिसमुद्घात करता है। ऐसे

१. इनमें नग्नताकी प्रशंसा करते हुए नग्नता कहाँ-कहाँ होती है सो दिखलाया है। जैसे संयोगमें बालकपनमें, जन्ममें, यति अवस्थामें नग्नता है। नग्नता स्वाभाविक है वस्त्र पहिनना विकार है। नग्न रहनेवाली गाय तुम्हारे यहाँ प्रतिदिन वंदनीय क्यों समझी जाती है।

केवलियोंके सिवाय और केवली केवलिसमुद्घात करें भी तथा न भी करें। भावार्थ—जिनको आयु छह महीने-की बाकी रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे केवली तो नियमसे समुद्घात करते ही हैं। ऐसे केवलियोंके सिवाय अन्य केवलियोंका समुद्घात करनेका नियम नहीं है।

जब तेरहवें सयोगिकेवली नामके गुणस्थानकी स्थिति अंतर्मुहूर्त बाकी रह जाती है तब दंड, कवाट, प्रतर, पूर्ण, प्रतर, कवाट, दंड, निज देह मात्र ऐसे आठ समयमें समुद्घात कर तेरहवें गुणस्थानके अंतिम समय-में अघातिया कर्मोंकी स्थितिको योग निरोधकर आयुके बराबर करते हैं फिर कर्मोंका नाश करते हुए चौदहवें गुणस्थानके अंतमें मोक्ष प्राप्त करते हैं। सो ही वसुनंदि श्रावकाचारमें लिखा है—

छम्मासाउगसेसे उप्पण्णं जस्स केवलं णाणं।
सो कुणइ समुग्घायं इदरो पुण होय वा भणिज्जो ॥ ५३१ ॥
अंतोमुहुत्तसेसा उगम्मि दंडं कवाड पयरं च।
जइय पूरणमथ कवाड दंडं णियतसुयमाणं च ॥ ५३२ ॥
एवं पयेसपसरणं संवरणं कुणइ अट्ठ समयेहिं।
होहिंति जोइ चरिमे अघाइ कम्माणि सरिसाणि ॥

इस प्रकार और भी वर्णन है इससे कहना पड़ता है कि जो जीव चौदहवें गुणस्थानमें समुद्घात मानते हैं और आठवें समयमें मुक्ति जाना बतलाते हैं वे मूर्ख हैं वे शास्त्री नहीं हैं।

४४–चर्चा चवालीसवीं

प्रश्न—श्रीजिनबिंबोंमें चौबीसी प्रतिमाओंमें अगल-बगल दोनों ओर श्रीदेवी अर्थात् लक्ष्मी और सर-

१. केवली भगवान् चाहे पूर्व दिशाकी ओर मुँह कर विराजमान हों चाहे उत्तर दिशाकी ओर मुँहकर विराजमान हों। चाहे वे बैठे हों चाहे खड़े हों सबके आत्माके प्रदेश दंडाकार होते हैं ऊपर नीचे दोनों ओर वातवलयके आरंभ तक लग जाते हैं दूसरे समयमें कवाट रूप होकर अर्थात् अगल-बगल की ओर फैल कर वातवलय तक लग जाते हैं तीसरे समयमें आगे-पीछेकी ओर फैल कर वातवलय तक लग जाते हैं चौथे समयमें वातवलयों में जाकर लोकपूर्ण हो जाते हैं पाँचवें समयमें प्रतररूप, छठे समयमें कवाट रूप, सातवें समयमें दंड रूप और आठवें समयमें शरीरके बराबर हो जाते हैं।

स्वतीकी मूर्ति रहती है तथा जिनमूर्तिके पास यक्ष यक्षिणीकी मूर्ति रहती है सो यह क्या बात है। जिन अरहंतदेवकी प्रतिमाओंके पास यक्षादिक की व सरस्वती आदिकी मूर्ति हो उनको नमस्कार करना चाहिये या नहीं, उनकी पूजा करनी चाहिये या नहीं। तथा जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके अगल-बगल यक्षादिकोंकी मूर्ति होना शास्त्रोक्त है या किसीने मनसे कल्पना कर बनवा दी है ?

समाधान—भगवान् अरहंतदेवकी प्रतिमाके साथ-साथ यक्षादिककी मूर्तियाँ अनादिकालसे चली आ रही हैं और अनंतकाल तक रहेंगी। यह कोई मनकी कल्पना नहीं है किन्तु शास्त्रोक्त हैं। शाश्वत वा अनादि-कालसे अनन्त कालतक रहनेवाली अकृत्रिम जिन प्रतिमाओंमें भी इन चिह्नोंके रहनेका वर्णन है। तथा अकृत्रिम प्रतिमाओंकी आम्नायके अनुसार ही कृत्रिम प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं। इसलिये कृत्रिम प्रतिमाओंमें भी ये चिह्न अवश्य होने चाहिये। किसी-किसी जिन मन्दिरमें अब भी यक्षादिकोंकी मूर्ति सहित लगभग दो दो हजार वर्ष पहलेकी जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं वे भला अपूज्य कैसे हो सकती हैं।

अकृत्रिम जिन प्रतिमाओंके साथ-साथ यक्षादिक वा लक्ष्मी सरस्वतीकी प्रतिमाओंका निर्णय श्रीनेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित त्रिलोकसारमें है। तथा जिनबिंबका कथन करते समय लिखा है। यथा—

दसतालमाणलक्खण भरिया पेक्खंत इव वदंता वा।
पुरु जिण तुंगापढिमा रमणमया अट्ठ अहियसया ॥ ९८६ ॥
चमर करणाग जक्खग वत्तीसं मिहुणगेहि पुहजुत्ता।
सरिसीए पंत्तीए गब्भगिहे सुट्ठु सोहंति ॥ ७८७ ॥
सिरिदेवी सुददेवी सव्वाण्हसणकुमार जक्खाणं।
रुवाणियजिणपासे मंगल मट्ठविहमवि होदी ॥ ९७८ ॥

इस प्रकार लिखा है। इसका भावार्थ यह है कि उस गर्भगृहमें (श्रीमंडपमें) एक सौ आठ प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ये प्रतिमाएँ दस ताल (धनुष) ऊँची हैं एक-एक प्रतिमाके दोनों ओर बत्तीस-बत्तीस यक्ष चमर लिये खड़े हैं। तथा उन जिन प्रतिमाओंके दोनों ओर श्रीदेवी और सरस्वती देवी ये दोनों देवियाँ स्त्रीका

रूप धारण कर खड़ी हैं सर्वाल्हाद और सनत्कुमार नामके यक्षदेव अपने स्वरूपके अनुसार खड़े हैं । उन प्रतिमाओंके आगे आठगुने अष्टमंगल द्रव्य रक्खे हैं । ये अष्ट मंगलद्रव्य प्रत्येक प्रतिमाके सामने अलग-अलग हैं । इन सब विभूतियोंसे शोभायमान उन प्रतिमाओंको इन्द्रादिक सम्यग्दृष्टी जीव पूजा करते हैं और वंदना करते हैं । ऐसा त्रिलोकसारमें लिखा है ।

इसके सिवाय और भी जैन शास्त्रोंमें कृत्रिम प्रतिमाके वर्णन करते समय लिखा है । यथा—

सुमूहूर्ते सुनक्षत्रे वाद्यवैभवसंयुतः । प्रसिद्धपुण्यदेशेषु नदीनगवनेषु च ॥ १ ॥
सुस्निग्धां कठिनां शीतां सुस्पर्शां सुस्वरां शिलाम् ।
समानीय जिनेन्द्रस्य बिंबं कार्यं सुशिल्पिभिः ॥
कषादिरोमहीनांगं स्मश्रुरेखाविवर्जितम् । स्थितं प्रलंबितं हस्तं श्रीवत्साढ्यं दिगम्बरं ॥
पल्यंकासनं वा कुर्याच्छिल्पिशास्त्रानुसारतः । निरायुधं राजतं वा पैत्तलं कांस्यजं तथा ॥४॥
प्रवालं मौक्तिकं चैव वैडूर्यादिसुरत्नजम् । चित्रजं तथा लेप्यं क्वचिच्चंदनजं मतम् ॥५॥
प्रातिहार्याष्टकोपेतं संपूर्णावयवं शुभम् । भावरूपानुविद्धांगं कारयेद् बिंबमर्हतः ॥६॥
प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं सिद्धबिम्बमपीदृशम् । सूरीणां पाठकानां च साधूनां यथागमम् ॥७॥
वामे च यक्षीं बिभ्राणं दक्षिणे यक्षमुत्तमम् । नवग्रहानधोभागे मध्ये च क्षेत्रपालकम् ॥८॥
यक्षाणां देवतानां सर्वालंकारभूषितम् । स्ववाहनावलोपेतं कुर्यात्सर्वांगसुंदरम् ॥९॥

इस प्रकार लिखा है । यह रीति अकृत्रिम प्रतिमाओंकी अपेक्षा अनादिनिधन है तथा परम्परा करके भी योग्य है ।

जो लोग धरणेन्द्र पद्मावतीसहित (फणा सहित) श्री पार्श्वनाथकी प्रतिमासे अरुचि करते हैं वे अधो-

१. अच्छे मुहूर्तमें सुन्दर चिकना पत्थर लाकर जिन प्रतिमा करनी चाहिये । जो आठों प्रातिहार्योंसे सुशोभित हो । प्रातिहार्योंके बिना वही प्रतिमा सिद्धोंकी कहलाती है । प्रतिमाके बाईं ओर यक्षी दांईं ओर यक्ष नीचे नवग्रह मध्यमें क्षेत्रपाल हो । यक्षादिकोंकी मूर्ति सब अलंकारोंसे सुशोभित वाहन और वधू सहित होनी चाहिये ।

गतिके पात्र हैं। जो रीति शास्त्रोक्त है और परंपरासे चली आ रही है उसमें संदेह नहीं करना चाहिये। जो रीति केवल मनकी कल्पनासे चलाई गई हो उसमें अरुचि करना ठीक है।

४५–चर्चा पैंतालीसवीं

प्रश्न—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं। इनमें प्रत्यक्ष-ज्ञान कौन-कौन हैं और परोक्षज्ञान कौन-कौन हैं ?

समाधान—इन पाँचों ज्ञानोंमेंसे पहलेके मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान परोक्ष हैं और बाकीके तीन ज्ञान उत्तरोत्तर गुणोंके बढ़ते हुए प्रत्यक्ष हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

आद्ये परोक्षम्[1]। प्रत्यक्षमन्यत्। अध्याय १ सूत्र संख्या ११-१२।

अन्यत्र भी लिखा है।

मंइ सुइ परोक्खणाणं ओही मणहोइ विलयपच्चक्खं।
केवलणाणं च तहा अणोवमं होइ सयलपच्चक्खं॥

४६–चर्चा छयालीसवीं

प्रश्न—सिद्धपरमेष्ठीकी अवगाहना अंतिम शरीरसे कुछ कम बतलाई है सो कितनी कम होती है ?

समाधान—जिस शरीरसे केवली भगवान् मुक्त होते हैं उसका तीसरा भाग कम हो जाता है। दो भाग प्रमाण सिद्धोंकी अवगाहना रहती है। जैसे तीन धनुषके शरीर वाले मनुष्यकी अवगाहना सिद्ध अवस्थामें जाकर दो धनुषकी अवगाहनाके समान रह जाती है।* सो ही सिद्धांतसारप्रदीपकमें लिखा है।

गतसिक्थायमूषायां आकाशाकारधारिणः। प्राक्कायायामविस्तारत्रिभागोनप्रदेशकाः ॥८॥
लोकोत्तमशरण्याश्च विश्वमंगलकारकाः। अनंतकालमात्मानो तिष्ठन्त्यंतातिगाः सदा ॥९॥

१. मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष हैं अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

* यह दो भागका रह जाना घन फलकी अपेक्षासे है अन्तिम शरीरका जो घनफल है उससे सिद्ध अवस्थाका घनफल एक भाग कम है क्योंकि पेट आदी शरीरके भीतरका पोला भाग भी उस घनफलमेंसे निकल जाता है।

इमे सिद्धा मया ध्येया वंद्या विश्वमुनीश्वरैः।
स्तुताश्च मम कर्वन्तु स्वगतिं स्वगुणैः समम् ॥ १० ॥

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें भी लिखा है—

देहे भावा हुल्ल चरमभवे जस्स जारि संठाणं। तस्सो तिभागहीणं नुग्गहणा सव्वसिद्धाणं ॥

इस प्रकार जिनागममें लिखा गया है।

जो जीव केवल नखकेशरहित सिद्धोंकी अवगाहना मानते हैं सो भ्रम है। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार श्रद्धान करना योग्य है।

४७–चर्चा सैंतालीसवीं

प्रश्न—इन तीनों लोकोंमें पैंतालीस लाख योजनके पाँच स्थान बतलाये हैं सो कौन-कौन हैं?

समाधान—सिद्धक्षेत्र, सिद्धशिला, पहले स्वर्गका ऋजुविमान, ढाई द्वीप, प्रथम नरकका पहला पाथरा ये पाँच क्षेत्र अलग-अलग पैंतालीस-पैंतालीस लाख योजनके हैं। यह कथन त्रिलोकसार, सिद्धांतसार दीपक, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, बृहद्हरिवंशपुराण आदि अनेक जैन शास्त्रोंमें हैं।

४८–चर्चा अड़तालीसवीं

प्रश्न—एक-एक लाख योजनके तीन स्थान बतलाये हैं वे इस लोकमें कहाँ-कहाँ हैं।

समाधान—जंबूद्वीप, सातवें नरकका पहला इन्द्रक नरक और सर्वार्थसिद्धि नामका विमान। ये अलग अलग एक-एक लाख योजनके हैं। लिखा भी है—

सर्वार्थसिद्धिर्ज्ञातव्या जंबूद्वीपस्तथैव च। माघवी अप्रतिष्ठानं त्रिस्थानं लक्षयोजनम् ॥४८॥

४९–चर्चा उनचासवीं

प्रश्न—सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र दोनों ही अलग-अलग पैंतालीस लाख योजनके बतलाये हैं। वहाँपर अनादिकालसे कर्मोंको नाशकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होनेवाले अनंत जीव विराजमान हैं जो वर्तमानकालमें

सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होते हैं वे भी वहीं जाकर विराजमान होते हैं और आगामी अनंतकाल तक जो सिद्ध होते जायेंगे वे सब वहीं जाकर विराजमान होंगे। वहांपर परिमित (नपे हुए पैंतालीस लाख योजन) क्षेत्रमें सब ही एक ज्योतिस्वरूप अवगाहनामें विराजमान हैं सो वहांपर संकीर्णता क्यों नहीं होती क्योंकि उस थोड़ेसे क्षेत्रमें अनंतानंत सिद्ध विराजमान हैं।

समाधान—उस क्षेत्रमें ऐसी अवगाहना शक्ति है कि उस अवगाहना शक्तिसे वहांपर किसी कालमें भी संकीर्णता नहीं होती। इसी बातको उदाहरण देकर स्पष्ट रीतिसे दिखलाते हैं। जैसे—जम्बूद्वीप एक लाख योजनका है तथा तीर्थंकरोंकी जन्मस्थानकी अयोध्या आदि नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी है। उसमें तीर्थंकरोंके पंच कल्याणकोंमें इन्द्रादिक समस्त देव एक लाख योजन प्रमाण हाथीको साथ लेकर आते हैं सो वहाँ भी संकीर्णता नहीं होती सब समा जाते हैं। तथा एक बर्तनमें ऊपर तक जल भर देवें फिर उसमें जलके बराबर ही शक्कर वा बूरा भर देवें तो वह जल शक्कर वा बूराके मिलानेसे उस बर्तनके बाहर नहीं निकलता। उतना ही बूरा मिल जानेपर भी उस जलमें संकीर्णता नहीं होती। तीसरा उदाहरण—अक्षीण महानस ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि जहां आहार ले लेते हैं उस क्षेत्रमें तथा उसी रसोईमें चक्रवर्ती-की सब सेना भोजन कर सकती है तथा उसी थोड़ेसे क्षेत्रमें चक्रवर्तीकी सब सेना बैठ सकती है, न तो वह रसोई ही घटती है और न उस क्षेत्रमें ही संकीर्णता आती है। इसी प्रकार और भी युक्तियोंके उदाहरण समझ-कर उस थोड़ेसे सिद्धक्षेत्रमें अनंत सिद्धोंकी अवगाहना सिद्ध कर लेना चाहिये।

---

१. वास्तवमें देखा जाय तो सिद्धोंका शुद्ध आत्मा अमूर्त है तथा अमूर्त पदार्थ जगह नहीं रोक सकता यही कारण है कि एक-एक सिद्धकी अवगाहनामें अनंतसिद्धोंकी अवगाहना विराजमान है। जब अमूर्त आत्मा जगह रोकता ही नहीं है तब एक ही सिद्ध-की सबसे बड़ी अवगाहनामें समस्त भूतकालके और भविष्यतकालके सिद्ध समा सकते हैं फिर भला वह क्षेत्र तो पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है उसमें संकीर्णता किस प्रकार आ सकती है।

जगह रोकना स्थूल पुद्गलका काम है। स्थूल पुद्गलके सिवाय और कोई पदार्थ जगह नहीं रोकता। आकाश धर्म अधर्म काल और शुद्ध आत्मा कभी जगह नहीं रोकता। केवल स्थूल पुद्गल और स्थूल पुद्गलमय शरीरको धारण करनेवाला संसारी आत्मा जगह रोकता है।

पुद्गल उनको कहते हैं जिनमें रूप रस गंध स्पर्श ये चार गुण हों। पुद्गलोंमें भी जो स्थूल सूक्ष्म हैं वे जगह नहीं रोकते जैसे धूप प्रकाश अंधकार आदि सूक्ष्म पुद्गल भी जगह नहीं रोकते। फिर भला सूक्ष्म और सूक्ष्मसूक्ष्म तो रोक ही नहीं सकते।

प्रश्न—मुनिराज आहारके लिये गांव वा नगरमें जाते हैं सो कौनसी मुद्रा धारण कर जाते हैं ?

समाधान—महा तपोधन मुनिराज दोपहरके समय सामायिक करनेके बादें आहारके लिये निकलते हैं उस समय सबसे पहले पूर्व दिशाकी ओर मुँहकर श्री जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करते हैं फिर ईर्या समितिको धारण करते हुए धीरे-धीरे आहारके लिये गमन करते हैं। उस समय वे मुनिराज अपने बायें हाथमें कमंडलु और पीछी इन दोनों उपकरणोंको रखते हैं और अपने दायें हाथको बायें कंधेपर रखते हैं। फिर अच्छी दृष्टिसे (ईर्यासमिति) श्रावकोंके घर जाते हैं। सो ही धर्मरसिक नामके ग्रन्थमें लिखा है—

मध्याह्नसमये योगी कृत्वा सामायिकं मुदा। पूर्वस्यां तु जिनं नत्वा ह्याहारार्थं व्रजेच्छनैः॥६९॥
पिच्छं कमंडलुं वामहस्ते स्कंधे तु दक्षिणम्। हस्तं निधाय संदृष्ट्या स व्रजेच्छ्रावकालयम्॥७०॥

प्रश्न—यहां कोई प्रश्न करे कि मुनिराज श्रावकके घर जाते हैं सो वहांपर बिना पडगाहे कितनी देर तक ठहर सकते हैं ?

समाधान—मुनिराज श्रावकके घर जाकर कायोत्सर्ग धारण कर (नौवार नमस्कार मंत्रका जप करते हुए) खड़े होते हैं यदि इतनी ही देरमें श्रावक उनका पडगाहन कर लेवे तो वे सब दोषोंको टालकर निरन्तराय भोजनपानको ग्रहण करते हैं यदि एक कायोत्सर्ग धारण करते समय तक कोई श्रावक उनका पडगाहन न करे तो फिर वे वहांसे चले जाते हैं जितनी देरमें एक कायोत्सर्ग धारण किया जाता है उतनी

कोई-कोई स्थूल पदार्थ भी दूसरे को जगह दे देते हैं जैसे जल उतने ही बूरेको उतनी ही राखको और उतनी ही लोहेकी कीलों-को उतने ही पात्रमें जगह दे देता है।

सिद्ध भगवान कर्म और शरीर रहित हैं इसलिये उनका शुद्ध आत्मा जगहको रोक नहीं सकता।

१. मुनिराज सामायिकके बाद भी आहारको जाते हैं और दोपहरके सामायिकके पहले भी जाते हैं। अक्सर गृहस्थोंके भोजनका समय दोपहरके सामायिकके पहले है इसलिये मुनिराज भी दोपहरकी सामायिकके पहले ही आहारको जाते हैं। कोई विशेष कारण उपस्थित होनेपर दोपहरकी सामायिकके बाद भी जाते हैं।

२. पाँचों उँगलियोंको मिलाकर उन मिली हुई उँगलियोंको कन्धेपर रख लेते हैं। यह उनकी आहारमुद्रा कहलाती है।

बेर तक खड़े रहते हैं। कायोत्सर्ग पूरा होनेपर फिर बिना बुलाये खड़े नहीं रह सकते। सो ही धर्मसंग्रह ग्रन्थमें लिखा है।

गत्वा पृहांगणे तस्य तिष्ठेच्च मुनिरुत्तमः। नमस्कारान् पदान् पंच नववारं जपेच्छुचिः ॥७१॥
तं दृष्ट्वा शीघ्रतो भक्त्या प्रतिग्राहेत भक्तिकैः।

इस प्रकार और भी बहुत सा वर्णन है।

५१–चर्चा इक्यावनवीं

प्रश्न––भगवान् तीर्थंकर जब गर्भमें आते हैं तब उस दिनसे छह महीने पहलेसे ही जन्म होने तक अर्थात् पन्द्रह महीने तक कुबेर इन्द्रकी आज्ञासे रत्नोंकी वर्षा करता है। सो प्रतिदिन कितनी बार करता है और कौन-कौनसे समय करता है ?

समाधान––वह रत्नोंकी वर्षा भगवान्के माता-पिताके घर चार बार होती है सबेरे, दोपहरको, सायंकालको और आधी रातके समय। तथा एक एकबारमें साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा होती है। इस प्रकार पंद्रह महीने तक बराबर होती रहती है। सो ही लिखा है––

पुव्वण्हे मज्झण्हे अवरण्हे मज्झिमायरयणीये। आहुट्ठयकोडीओ रयणाणं वरिसेऊ ॥

इस प्रकार प्रतिदिन चारों समयमें चौवह करोड़ रत्न बरसते हैं।

५२–चर्चा बावनवीं

प्रश्न––केवली भगवान्की दिव्यध्वनि नियमसे तीन बार खिरती है ऐसा सुनते हैं सो क्या ये बात ठीक है ?

समाधान––केवली भगवान्की दिव्यध्वनि प्रतिदिन चार बार खिरती है। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल और अर्द्धरात्रि इन चारों समयमें छह-छह घड़ी तक दिव्यध्वनि खिरती है। इन चार समयके सिवा चक्रवर्ती और महापुण्यवान पुरुषोंके प्रश्न करनेपर दूसरे समय भी खिरती है। इससे सिद्ध होता है कि चार समय तो नियमसे खिरती है तथा इनके सिवाय भी यथेष्ट कारण मिलने पर खिरती है सो ही लिखा है––

पुव्वण्हे मज्झण्हे अवरण्हे मज्झमाय रयणीये ।
छ च्छ घडीये णिग्गइ दिव्यधुणी जिणवरिंदाणं ॥

५३–चर्चा त्रेपनवीं

प्रश्न—स्वयंभूरमण समुद्रमें रहनेवाला सालिसित्थ नामका मत्स्य अपने शरीरसे तो कुछ हिंसा आदि पाप करता ही नहीं है। केवल हिंसा करनेके पापको मनसे चिंतवन करता रहता है और उसी मानसिक पापसे (हिंसा किये बिना ही) वह सातवें नरक जाता है सो उसको बाह्य हिंसा करनेके बिना ही पाप किस प्रकार लग जाता है ?

समाधान—तुम्हारा कहना तब सत्य हो सकता है जब कि पाप केवल शरीरसे ही लगते हों परन्तु पाप तो मन, वचन, काय तीनों योगोंसे बराबर लगते हैं मोक्षशास्त्रमें लिखा है "प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा" अर्थात् कषायोंके उत्पन्न होनेपर प्राणोंका व्यपरोपण व घात होना हिंसा है। इसी वचनके अनुसार उसे सातवें नरकमें जाना पड़ा। इसी सूत्रकी श्रुतसागरी टीकामें एक श्लोक भी लिखा है।

स्वमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा कषायवान्। पूर्वं प्राण्यन्तराणां तु पश्चात्स्याद्वा नवा वधः॥

अर्थात्—कषाय करनेवाला आत्मा अपने कषायसे पहले तो अपने आत्माकी हिंसा करता है क्रोधादिक कषायके द्वारा अपने आत्माके गुणोंका घात करता है। उस अपनी हिंसाके बाद जिसको हिंसा बंद करना चाहता है उसकी हिंसा हो भी जाय अथवा उसके तीव्र पुण्यसे न भी हो तथापि अपने आत्माकी हिंसा करनेके पापसे जो कर्मबन्ध होता है उसके फलसे नरक जाना पड़ता है। यही कारण है कि शालिसित्थ नामका मत्स्य

१. सबसे बड़ा तन्दुल मत्स्य होता है उसके मुँह तथा नाकमें साँसके साथ हजारों मछलियाँ पेटमें चली जाती हैं और वे साँसके निकालते समय उल्टी वापिस आ जाती हैं उसी तंदुल मत्स्यकी आँखके पलक पर एक छोटा सा शालिसित्थ नामका मत्स्य रहता है। वह उन मछलियोंके बाहर निकलते समय सोचता है कि यह मत्स्य कैसा मूर्ख है जो पेटमें पहुँची हुई मछलियोंको भी बाहर आ जाने देता है यदि मैं होता तो एक भी मछलीको बाहर नहीं आने देता। यद्यपि वह उन मछलियोंको जरा सी चोट भी नहीं पहुँचा सकता तथापि केवल इसी मानसिक पापके कारण वह सातवें नरकमें जाता है तथा बड़ा तंदुल मत्स्य पहले ही नरक जाता है।

दूसरेकी हिंसा किये बिना ही केवल मानसिक पापके फलसे नरक जाता है। मानसिक पापका ऐसा ही माहात्म्य है इसलिये भव्य जीवोंको चाहिये कि वे मनके संकल्प विकल्पोंसे उत्पन्न होनेवाले व्यर्थके पापोंसे सदा बचते रहें। उसी श्रुतसागरी टीकामें और भी लिखा है।

अघ्नन्नपि भवेत्पापी नघ्नन्नपि न पापभाक्। परिणामविशेषेण यथा धीवरकर्षकौ ॥

इससे सिद्ध होता है कि कर्मबंधका मुख्य कारण जीवोंके परिणाम ही हैं।

५४–चर्चा चौअनवीं

प्रश्न––चौदहवें कुलकर राजा नाभिरायकी रानी मरुदेवीका विवाह हुआ था कि नहीं?

समाधान––राजा नाभिराय और रानी मरुदेवीका विवाह इन्द्रने किया है सो ही महापुराणके बारहवें अधिकारमें लिखा है।

तस्याः किल समुद्वाहे सुरराजेन नोदिताः।
सुरोत्तमा महाभूत्या चक्रुः कल्याणकौतुकम् ॥ ४६ ॥

इससे सिद्ध होता है कि वे युगलिया नहीं थे किन्तु उनका विवाह हुआ था।

प्रश्न––यहां कोई प्रश्न करे किस युगलियाकी स्त्रीसे विवाह हुआ था?

समाधान––किसीकी स्त्रीसे विवाह नहीं हुआ था किन्तु कन्यासे हुआ था। इसका भी कारण यह है कि तेरहवें कुलकरके ही समयसे युगलिया होना बन्द हो गया था। अर्थात् तेरहवें कुलकरके सामने ही जुदे-जुदे पुत्र पुत्री होने लगे थे। तब उसके पिता अमितगतिने विवाह करनेकी रीति चलाई थी। इससे सिद्ध होता है कि नाभिराजा और मरुदेवी अलग अलग जन्मे थे और उनका विवाह हुआ था। सिद्धान्तसारदीपकमें लिखा है––

१. पापका लगना और न लगना केवल परिणामोंसे होता है जैसे मछलियोंको पकड़नेवाला धीवर पानीमें जाल डालता है यदि उसके जालमें एक भी मछली न आवे तो भी मारनेके परिणाम होनेसे वह महापापी होता है तथा हल जोतनेवाला किसान अनेक जीवोंकी हिंसा करता है परन्तु उसका संकल्प उन जीवोंके मारनेका नहीं है केवल खेत जोतनेका है इसलिये वह पापी नहीं होता।

कल्पाष्टलक्षकोट्यैकभागे वर्तेऽक्रमे ततः । प्रियंगुकांतिमरुकायो जज्ञे मनुः प्रसेनजित् ॥
.....स्तस्यामितगतिः पिता । वर कन्यकया सार्द्धं विवाहो विधिना व्यधात् ॥
कुलवृद्धिकरावात्रोत्पन्नः स युगलं विना । तदा प्रभृतिः युग्मानामुत्पन्नो नियमः गतः ॥

इससे सिद्ध होता है कि तेरहवें कुलकरके समयमें ही पुत्री पुत्र अलग-अलग होने लगे थे और इन्द्रने उनका विवाह किया था उस समय कुलकरोंके सिवाय सबका नाम आर्य था। इसीलिये मरुदेवीके पिताका नाम नहीं लिखा है।

५५-चर्चा पचपनवीं

प्रश्न—युगके प्रारम्भमें अर्थात् कर्मभूमि वा चतुर्थकालके प्रारंभमें अयोध्याकी रचना किसने की थी ?

समाधान—श्री ऋषभदेवके गर्भमें आनेके पहले अयोध्या नगरीकी रचना इन्द्रने की थी तथा और-और जगहके रहनेवाले पुरुषोंको बुला-बुलाकर वहाँ बसाया था। सो ही महापुराणमें लिखा है।

इतस्ततश्च विक्षिप्तान् आनीयानीय मानवान् ।
पुरीं निवेषयामासुर्विन्यासैर्विविधैः सुराः ॥ ७३ ॥

इससे सिद्ध होता है अयोध्यापुरीकी रचना युगकी आदिमें इन्द्रने की है।

५६-चर्चा छप्पनवीं

प्रश्न—भरत चक्रवर्तीकी विभूतिमें तीन करोड़ गायें बतलाई हैं सो किस प्रकार है ?

समाधान—भरत आदि समस्त चक्रवर्तियोंकी विभूतिमें तीन करोड़ गायोंके रहनेका स्थान बतलाये हैं। इससे मालूम होता है कि गायें तो तीन करोड़से भी अधिक हैं। सो ही आदिपुराणके सेतीसवें पर्वमें लिखा है।

तिस्रोस्य व्रजकोट्यः स्युः गोकुलैः शश्वदाकुलाः। यत्र मंथरवाक्रुष्टास्तिष्ठंतिस्माध्वगाःक्षणम् ॥

इससे सिद्ध होता है—गायोंके निवासस्थान तीन करोड़ थे।

५७–चर्चा सत्तावनवीं

प्रश्न—भरत महाराजके एक करोड़ थालियां सुनी जाती हैं सो वे किस प्रकार हैं ?

समाधान—एक करोड़ थालियां नहीं हैं किन्तु एक करोड़ दाल चावल आदि बनानेके बर्तन हैं। आदिपुराणमें जो इनको कहनेवाला श्लोक है उसमें स्थाली शब्द है सो स्थाली शब्दका अर्थ बटलोई अथवा हंडी होता है। इसका अर्थ यह है कि भात पकानेके बर्तन एक करोड़ थे। सो ही आदिपुराण पर्व ३७ में लिखा है।

स्थालीनां कोटिरेकोक्ता रंधने या नियोजिताः।
चक्रीस्थालीविलीयानां तंडुलानां महानसे ॥ ६७ ॥

इससे सिद्ध होता है कि एक करोड़ थालियां नहीं थीं किन्तु एक करोड़ भात पकानेके हंडे थे।

५८–चर्चा अट्ठावनवीं

प्रश्न—स्नानके कौन-कौन भेद हैं ?

समाधान—स्नानके पांच भेद हैं–पादस्नान (पैर धोना) जानुस्नान (घुटनेसे नीचेका भाग धोना) कटिस्नान (कमरसे नीचेका भाग धोना) ग्रीवास्नान (गलेसे नीचेका भाग धोना) शिरस्नान (मस्तकसे स्नान करना) इन पांच स्नानोंमेंसे जैसा दोष हो वैसा ही स्नान करना चाहिये। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है।

पादजानुकटिग्रीवाशिरःपर्यंत संश्रयम्। स्नान पंचविधं ज्ञेयं यथा दोषं शरीरिणाम् ॥

इस प्रकार पांच प्रकारका स्नान जानना।

५९–चर्चा उनसठवीं

प्रश्न—इस अवसर्पिणी कालमें मनुष्योंकी आयु घटती जाती है सो किस प्रकार घटती है ?

समाधान—श्रीमहावीरस्वामीके मुक्त होते समय मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्षकी थी। इसमेंसे एक-एक हजार वर्ष पीछे पांच-पांच वर्षकी घटती होती जाती है सो ही सिद्धांतसारमें लिखा है–

वत्साराणां सहस्रेषु गतेषु न्यूनतां व्रजेत्। पंचवर्षाणि शतं चार्द्धं वेदितव्यं जिनागमे ॥

इससे सिद्ध होता है कि एक-एक हजार वर्षमें पाँच-पाँच वर्ष कम होते जाते हैं। यह पंचम काल इकईस हजार वर्षका है इसलिये छठे कालके प्रारम्भमें मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु पंद्रह वर्षकी रहेगी। शेष एकसौ पाँच वर्ष घट जायेंगी। इसका भी खुलासा यह है कि एक हजार वर्षमें पाँच वर्ष घटते हैं। इसलिये दो सौ वर्षमें एक वर्ष घटता है। सौ वर्षमें छह महीनेकी आयु घटती है। छह महीनेके एक सौ अस्सी दिन हुए और १०८०० घड़ियाँ हुईं। इनमें सौका भाग देनेसे एक वर्षमें १०८ घड़ियाँ अथवा एक दिन ४८ घड़ियाँ घटीं। एक महीनेमें ९ घड़ियाँ घटीं। ६० पलकी एक घड़ी होती है सो ९ घड़ियोंकी ५४० पल हुए। इनमें तीसका भाग देनेसे एक दिनमें १८ पलकी घटती होती है। इस प्रकार आयुके घटनेका खुलासा समझ लेना चाहिये।

६०–चर्चा साठवीं

प्रश्न––इस पंचम कालमें उत्पन्न हुए जीव मरकर विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर मोक्ष जा सकते हैं या नहीं अर्थात् ऐसे एक भवावतारी जीव हैं या नहीं ?

समाधान––इकईस हजार वर्षका यह पंचमकाल है। इसमें एक सौ तेईस भद्रपरिणामी भव्यजीव यहाँकी आयु पूर्णकर विदेह क्षेत्रमें जन्म लेंगे तथा नौ वर्षकी आयुमें जिनदीक्षा लेकर केवलज्ञान उत्पन्न कर नौ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व काल पर्यंत विहार कर मुक्त जायेंगे ऐसा सिद्धांतसारमें वर्णन किया है। यथा–

[1]जीवा सय तेईसा पंचमकाले य भद्दपरिणामा।
उप्पाइपुव्वविदेहे नवमइवरसे दु केवली होदि॥

इसका भी अलग-अलग खुलासा इस प्रकार है। पंचमकालके इकईस हजार वर्ष हैं। उनके सात भाग करना सो एक-एक भाग तीन-तीन हजार वर्षका हुआ। प्रथमके तीन हजार वर्षके पहले भागमें यहाँके ६४ जीव आयु पूर्णकर विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर केवली होंगे। दूसरे भागमें बत्तीस जीव, तीसरे भागमें बारह जीव, चौथे भागमें आठ जीव, पाँचवें भागमें चार जीव, छठे भागमें दो जीव और सातवें भागमें एक जीव अपनी आयु पूर्णकर विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर केवली होंगे। इन सब जीवोंकी संख्या एक सौ तेईस होती है अर्थात् एक सौ तेईस जीव इस पंचमकालमें उत्पन्न हुए एक भवावतारी समझना चाहिये।

१. भद्रपरिणामी एक सौ तेईस जीव पूर्व विदेहमें उत्पन्न होकर नौवें वर्षमें केवली होंगे।

६१–चर्चा इकसठवीं

प्रश्न—इस ढाई द्वीपमें तीर्थंकरोंकी अधिकसे अधिक संख्या एक सौ सत्तर होती है। तथा जघन्य बीस होती है ऐसा सुनते हैं परन्तु चक्रवर्तियोंकी उत्कृष्ट जघन्य संख्या कितनी है ?

समाधान––चक्रवर्तियोंके होनेका सब जगहका कोई खास नियम नहीं है। सो ही सिद्धांतसारमें लिखा है।

जघन्येन जिनाधीशा भवंति विंशतिप्रमाः। चक्राधिपाश्च सर्वत्र नृदेवखचरार्चिताः ॥ ६१ ॥

६२–चर्चा बासठवीं

प्रश्न—स्वर्गलोकमें सम्यग्दृष्टी जीव तथा मिथ्यादृष्टी जीव उत्पन्न होते हैं सो वहाँपर दोनोंकी आयु समान है अथवा होनाधिक है ?

समाधान—जिस जीवके स्वर्गमें ही मिथ्यात्वरूपी शत्रुके नाश होनेसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है उसको सम्यग्दृष्टी देव कहते हैं। उसके आयु कर्मकी जितनी स्थिति है उसमें सम्यग्दर्शनके प्रभावसे घातायुष्क-की अपेक्षा आधासागर आयुकी स्थिति बढ़ जाती है। यह वृद्धि भी सहस्रार स्वर्गतक (बारहवें स्वर्गतक) होती है। इसी प्रकार जिस जीवके सम्यग्दर्शनका घात हो जाय और मिथ्यात्वका उदय हो जाय तो उस देवकी आयु कर्मकी स्थितिमेंसे आधे सागरकी आयु घट जाती है। यही बात सिद्धांतसारमें पन्द्रहवी सन्धिमें लिखी है।

सम्यक्त्वस्य देवस्य सागरार्द्धं हि वर्द्धते।
आयुः यावत्सहस्रारं मिथ्यात्वारिविघातनात् ॥ ३२ ॥

---

१. तीर्थंकरोंकी जघन्य संख्या २० है इनके सिवाय देव मनुष्य विद्याधरोंसे पूज्य चक्रवर्ती भी होते हैं। भावार्थ—विदेह क्षेत्रमें चक्रवर्तियोंकी संख्याका कोई नियम नहीं है वे प्रायः सर्वत्र होते ही रहते हैं।

२. मिथ्यात्वके नाश होनेसे सम्यक्त्वी देवकी आयु सहस्रार स्वर्ग तक आधासागर बढ़ जाती है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शनके नाश होनेसे मिथ्यात्वी देवकी आयु आधासागर घट जाती है।

मिथ्यात्वागतदेवस्य सम्यक्त्वरत्ननाशनात् ।
हीयते सागरार्द्धायुरिति स्थितिश्च नाकिनाम् ॥ ३३ ॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है।

संम्मे घादेऊणं सायरदलमहियमा सहस्सारा ।
जलहिदलमूडुवराऊ पडलं पडि जाणि हाणिचयं ॥ ५३३ ॥

प्रश्न—यहाँपर फिर कोई यह प्रश्न करे कि बारहवें स्वर्गसे ऊपरके देवोंके क्यों नहीं घटती बढ़ती ?

समाधान—बारहवें स्वर्गसे ऊपरके स्वर्गोंमें जिनलिंगके सिवाय अन्य लिंगको धारण करनेवाले मिथ्यादृष्टियोंका गमन नहीं होता अर्थात् अन्यलिंगी मरकर बारहवें स्वर्गसे ऊपर उत्पन्न नहीं होते। बारहवें स्वर्गसे ऊपर जिनलिंगको धारण करनेवाले ही उत्पन्न होते हैं। तथा बारहवें स्वर्गसे ऊपर न तो सम्यक्त्वका नाश होता है और न मिथ्यात्वकी उत्पत्ति होती है। इसीलिये बारहवें स्वर्गसे ऊपर आयुके घटने बढ़नेका नियम नहीं है।

फिर प्रश्न—आयुके दो भेद हैं निधित और निःकांक्षित। सो इनमेंसे किस आयुवालेकी स्थिति घटती बढ़ती है ?

समाधान—निधित आयुवालेकी स्थिति ही घटती बढ़ती है। जैसे खदिरशाल नामके भीलकी आयु बढ़ गई थी और राजा श्रेणिककी घट गई थी।

६२-चर्चा त्रेसठवीं

प्रश्न—स्वर्गके देवोंकी हीनाधिक आयुका स्वरूप तो ऊपर लिखे अनुसार समझा परन्तु भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क देवोंकी आयुके घटने बढ़नेकी विधि किस प्रकार है ?

---

१. सम्यक्त्वका घात होनेपर सहस्रार स्वर्गतक आधेसागर आयु घट जाती है और मिथ्यात्वका घात होनेपर आधासागर बढ़ जाती है। यह कथन घातायुष्ककी अपेक्षा है।

२. जो कर्म उदीरणाको भी प्राप्त न हो सकें और संक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त न हो सकें उसे निधत्तिकरण कहते हैं तथा जिस कर्मकी उदीरणा संक्रमण उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारों ही अवस्थायें न हो सकें उसे निःकाचितकरण कहते हैं।

समाधान--भवनवासी व्यंतर और ज्योतिष्क इन तीनों प्रकारके देवोंमें जो जीव उत्पन्न होते हैं वे सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके बिना थोड़ासा व्रत तप करनेके पुण्यसे उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे भवनवासी देवोंके तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेसे आधेसागरकी आयु बढ़ जाती है तथा मिथ्यात्वके उदय होनेसे आधेसागर आयु घट जाती है। इसी प्रकार ज्योतिषी और व्यंतर देवोंके सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेसे आधे पल्यकी आयु बढ़ जाती है और मिथ्यात्वका उदय होनेसे आधे पल्यकी आयु घट जाती है। तथा सब जगह सब देवोंके मिथ्यात्व-रूपी विषके वमन करनेसे तथा सम्यग्दर्शनरूपी अमृतके पीनेके अतिशयसे आयु बढ़ती है सो ही सिद्धांतसार दीपककी पन्द्रहवीं संधिमें लिखा है।

ज्योतिर्भवनभौमेषु सम्यक्त्वप्राप्तितोंगिनाम्। किंचिद्व्रततपःपुण्यादुत्पद्यंते भवाध्वगाः॥३४॥
सम्यक्त्वप्राप्तिधर्माणां स्वायुर्भवनवासिनाम्।सागरार्द्धं च वर्द्धेत मिथ्यात्वशत्रुघातनात्॥३५॥
ज्योतिष्कव्यंतराणां चायुः पल्यार्द्धं प्रवर्द्धते।
मिथ्यात्वारिविनाशेन सम्यक्त्वमणिलाभतः॥ ३६॥
सर्वत्र विश्वदेवानां मिथ्यात्वदुर्विषोज्झनात्। सम्यक्त्वामृतपानेन स्वायुः संवर्द्धतेतराम्॥३७॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है।

उवहिदलं पलद्ध भवणे वितरदुगे कमेणहियं। सम्मे मिच्छे घादे पल्लासंखं तु सव्वत्थं॥५४१॥

इस प्रकार चतुर्णिकायके देवोंकी आयुकी वृद्धि हानिका स्वरूप सम्यग्दर्शन तथा मिथ्यात्वके माहात्म्यसे समझ लेना चाहिये, अर्थात् सम्यग्दर्शनके माहात्म्यसे आयु बढ़ जाती है और मिथ्यात्वके प्रभावसे घट जाती है।

६४-चर्चा चौंसठवीं

प्रश्न--चतुर्णिकाय देवोंकी आयु जब छह महीनेकी बाकी रह जाती है तब उनका तेज घट जाता है

१. देवोंकी आयु बढ़नेका अभिप्राय यह है कि दूसरे सागरमें उत्कृष्ट आयु दो सागरसे कुछ अधिक है। इसका अभिप्राय यह है कि साधारण जीवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर है परन्तु जिस घातायुष्क जीवका मिथ्यात्व छूट जाता है उसकी उत्कृष्ट आयु दो सागरके बजाय ढाई सागरकी हो जाती है क्योंकि दूसरे स्वर्गमें कुछ अधिकका अभिप्राय आधा सागर है। जिसने पहले भवमें अधिक आयुका बंध किया हो और फिर कारणवश आयु घट गई हो उसको घातायुष्क कहते हैं।

तथा उनके कंठकी माला मुरझा जाती है जिससे वे अपनी निकट आनेवाली मृत्युको समझ लेते हैं ऐसा कहते हैं सो सम्यग्दृष्टीकी माला मुरझाती है या नहीं ?

समाधान—माला आदिके मुर्झानेका चिह्न मिथ्यादृष्टियोंके ही होता है। सम्यग्दृष्टियोंके नहीं होता। मिथ्यादृष्टि देव अपनी मृत्युके चिह्नोंको देखकर रोते हैं तथा अत्यन्त दुःखी होते हैं सम्यग्दृष्टीके यह दुःख नहीं होता है सो ही जंबूचारित्रकी तीसरी संधिमें लिखा है।

विद्वन्माली सुरस्यादौ कथ्यते कथिताधुना।
प्रत्यक्षं पश्य भार्याभिश्चतुर्भिः सहितं हितम् ॥ २३ ॥
सम्यक्त्वसहितास्यास्य तेजस्तुच्छं न जायते।
माला न म्लग्यते कंठे स्थिरचित्तस्य कर्हिचित् ॥ २४ ॥
सप्तमे दिवसेऽथासौ श्रुत्वा भूत्वा च मानुषः।
चरमांगी तपो घोरं ग्रहीष्यति जिनोदितम् ॥ २५ ॥

६५–चर्चा पैंसठवीं

प्रश्न—जो लोग पैरोंमें जूता पहने हुए भगवान्के मंदिरमें प्रवेश करते हैं अथवा लकड़ीकी खड़ाऊँ पहिनकर जिनमंदिरमें जाते हैं उनको कैसा पाप लगता है ?

समाधान—जो लोग पैरोंमें जूता पहिनकर भगवान्के मन्दिरमें प्रवेश करते हैं वे सात जन्म तक कोढ़ी होते हैं तथा चमारके घर जन्म लेते हैं और जो लोग खड़ाऊँ पहिनकर जिनमन्दिरमें जाते हैं वे बढ़ईके घर जन्म लेकर सात जन्म तक कोढ रोगसे पीड़ित होते हैं। सो ही लिखा है–

पादचर्मस्य रूढा ये चढंति श्रीजिनालये। सप्त जन्म भवेत्कुष्ठी चर्मारीगर्भसम्भवः ॥
पादुकाभ्यां समागत्य ये चढंति जिनालये। सप्त जन्म भवेत्कुष्ठी बाढीकागर्भसम्भवः ॥

ऐसा जानकर ऊपर लिखे कार्य कभी नहीं करने चाहिये।

६६-चर्चा छयासठवीं

पूजाके समय जो नित्य पूजा की जाती है उसमें देव शास्त्र गुरुकी पूजा समुच्चय वा एक साथ की जाती है सो ही लिखा है–

देवेंद्रनागेंद्रनरेंद्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान् ।
दुग्धाब्धिसंस्पर्द्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

प्रश्न—इत्यादि अर्घ पर्यन्त ऐसा ही समुच्चय पाठ है । सो इसमें देव पूजा तो मध्यमें करनी चाहिये तथा सरस्वती और गुरुपादुकाकी पूजा किस-किस दिशामें करनी चाहिये ?

समाधान—भगवान् अरहंत देवकी पूजा तो मध्यमें करनी ही चाहिये तथा सरस्वतीकी पूजा जिन-प्रतिमाके दाहिनी ओर और गुरुकी पूजा बाँई ओर करनी चाहिये । ऐसी आम्नाय है क्योंकि जिनप्रतिमाके बाँई ओर सरस्वतीकी मूर्ति है और बाँई ओर गुरुपादुका विराजमान हैं इसलिये पूजा भी इसी प्रकार करनी चाहिये ।

६७-चर्चा सडसठवीं

प्रश्न—सातिशय अप्रमत्त नामके सातवें गुणस्थानके अन्तिम भागसे महामुनिराज उपशम श्रेणी तथा क्षपक श्रेणी मांडते हैं । इनमेंसे उपशम श्रेणीवाला वहाँसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक जाता है तथा फिर ग्यारहवें गुणस्थानसे नीचे गिरता है । सो इसमें प्रश्न यह है कि वे मुनिराज इसप्रकार अधिकसे अधिक कितनी बार उपशमश्रेणी चढ़ते हैं कितने जन्म तक संयम धारण करते हैं और कितने समयमें मोक्ष प्राप्त करते हैं अथवा उन्हें मोक्ष प्राप्त होती ही नहीं ?

समाधान—अधिकसे अधिक चार बार उपशम श्रेणी चढ़ते हैं । जो मुनिराज क्षपकश्रेणी चढ़ते हैं वे केवलज्ञानपर्यंत चढ़ते ही चले जाते हैं, क्षपकश्रेणीवाले मुनि कभी नीचले गुणस्थानमें नहीं गिरते तथा उप-शमश्रेणीवाले जीव अधिकसे अधिक बत्तीस बार संयमको पालकर पीछे नियमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं । सो ही स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें लिखा है ।

चत्तारिवारमुवसमसेणी समारुहदि रपविदकम्मं ।
सो वत्तीसं वाराई संजममुवलहिय णिव्वाणादि ॥

यहाँपर बत्तीस ही जन्म समझना चाहिये इनमें भी देवगतिमें तो संयम है ही नहीं इसलिये मनुष्य-पर्यायमें ही संयम समझ लेना चाहिये ।

६८-चर्चा अडसठवीं

प्रश्न—मुनिराजके आहारके समयका प्रमाण क्या है ?

समाधान—तीन मुहूर्त दिन चढ़ जानेके बादसे लेकर जब तक तीन मुहूर्त दिन बाकी रहे तब तकके मध्यके समयमें मुनिराज अपने नित्य कार्योंसे निवृत्त होकर अन्तराय और दोषोंको टालकर एक बार योग्य आहार लेते हैं । भावार्थ—प्रातःकाल तीन मुहूर्त तक आहार नहीं लेते । शामको तीन मुहूर्त दिन बाकी रहने तक लेते हैं आगे नहीं लेते । मध्यके समयमें सामायिकके समयको टालकर आहार लेते हैं । सो ही श्रीवट्टकेरस्वामी विरचित मूलाचारके प्रथम अधिकारमें लिखा है—

उदयत्थमणे काले णालीतियवज्जियम्हि मज्झम्हि ।
एकम्हि दुअ तिए वा मुहुत्तकालेयभत्तं तु ॥ ३५ ॥

सं० छाया-उदयास्तमनयोः कालयोः नालीत्रिकवर्जिते मध्ये ।
एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु वा मुहूर्तकाले एकभक्तं तु ॥

मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है—

विज्ञेयोशनकालोत्र संत्यज्य घटिकात्रयम् । मध्ये च योगिनां भानूदयास्तमनकालयोः ।

यह जो तीन मुहूर्त काल सुबह शाम छोड़नेका बतलाया है वह भी उत्कृष्टकाल है मध्यमकाल दो मुहूर्त और जघन्यकाल एक मुहूर्त सुबह शाम छोड़नेका समझना चाहिये । सो ही मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है—

१. गाथामें नाली शब्द है नाली शब्दका अर्थ मुहूर्त नहीं होता किंतु घड़ी होता है । मूलाचारप्रदीपके श्लोकमें भी घड़ी शब्द ही लिखा है । इसलिये सबेरे शामका तीन घड़ी समय छोड़कर आहार लेते हैं यह अर्थ हुआ ।—सम्पादक

तस्यैवाशनकालस्य मध्ये प्रोत्कृष्टतो जिनः।
भिक्षाकाले मतो योग्यो मुहूर्तैकप्रमाणकः ॥ ३७ ॥
योगिनां द्विमुहूर्तप्रमाणो मध्यमो बुधैः। जघन्यस्त्रिमुहूर्तप्रमो भिक्षाकालः उदाहृतः ॥

६९–चर्चा उनहत्तरवीं

प्रश्न—पुलाक आदि मुनिराजके पाँच भेद हैं उनके कौन-कौनसा गुणस्थान है ?

समाधान—पुलाक और वकुश इन दो मुनियोंके छठा और सातवाँ गुणस्थान होता है। कुशील नामके मुनिके आठवें अपूर्वकरण नामके गुणस्थानसे लेकर उपशांतमोह नामके गुणस्थानतक चार गुणस्थान होते हैं। निर्ग्रन्थ नामके मुनिके बारहवाँ क्षीणमोह नामका गुणस्थान होता है तथा स्नातकके तेरहवाँ सयोगिकेवली और चौदहवाँ अयोगिकेवली गुणस्थान होता है। इस प्रकार पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रन्थ और स्नातक इन पाँचों प्रकारके मुनियोंके गुणस्थान छठेसे लेकर चौदहवें तक हैं। इन सब मुनियोंकी संख्या ढाई द्वीपभरमें अधिकसे अधिक तीन कम नौ करोड़ अर्थात् ८९९९९९७ रहती है। उन सबको हमारा नमस्कार हो। सो ही आचार्य सकलकीर्तिविरचित सिद्धांतसारमें लिखा है।

षष्ठसप्तमयोर्यौस्ते गुणस्थानद्वयोर्मुनी। विज्ञेयौ शास्त्ररीत्या च पुलाकवकुशाविह ॥
अपूर्वाद्युपशान्तेषु गुणस्थानेषु ये स्थिताः। प्रोक्तास्ते मुनिभिर्नित्यं कुशीलाह्वयधारिणः ॥
क्षीणमोहगुणस्थाने यस्तिष्ठेन्मुनिसत्तमः। ज्ञातोयमवभिः सर्वैर्निर्ग्रंथो हि प्रशांतधीः ॥
योगायोगगुणस्थाने वसन्ति यतयः खलु। ये मताः स्नातकास्ते च लोकालोकप्रकाशकाः ॥
सर्वेषां यतिनां संख्यास्त्रिऊना नवकोटयः। कथिताः श्रीजिनैः सर्वैस्तेषां नित्यं नमोस्तु ते ॥

७०–चर्चा सत्तरवीं

प्रश्न—एक दिन रातमें तथा एक महीनेमें वा एक वर्षमें पुरुषके कितने श्वासोच्छ्वास आते जाते हैं ?

१. इसमें सुबह शाम छोड़नेका जघन्य मध्यम उत्कृष्टकाल एक दो तीन मुहूर्त लिखा है।

समाधान---एक मुहूर्तके तीन हजार सात सौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा एक दिन रातके तीस मुहूर्त होते हैं। इस हिसाबसे एक दिन रातके एक लाख तेरह हजार एक सौ नव्वे श्वासोच्छ्वास हुए। सो ही लिखा है।

एकं च सयसहस्सं उस्सासमाणं तु तेरससहस्साणं।
ऊण दसएण अहिया दिवसणिसोहंति विण्णेया॥

इसी हिसाबसे एक महीनेके तेतीस लाख पिचानवे हजार सात सौ श्वासोच्छ्वास होते हैं। सो ही लिखा है।

मासे वि य उस्सासा लक्खा तेतीस सय सहस्साणं।
सत्त सपाइ जाणिउ कहिया हं पुव्वसास्साहिं॥

इनको बारहसे गुणा कर देनेसे एक वर्षके श्वासोच्छ्वासोंकी संख्या चार करोड़ सात लाख अड़तालीस हजार चार सौ होती है सो ही लिखा है।

चत्तारी कोडीओ लक्खा सत्तेव होंति णायव्वा।
अडतालीससहस्सा चारिसया होंति वरिसेण॥

इनको सौसे गुणा कर देनेसे सौ वर्षके चार अरब सात करोड़ अड़तालीस लाख श्वासोच्छ्वास होते हैं। सो ही लिखा है।

चत्तोरिय कोडिसया कोडिय सत लक्ख अडियाला।
चत्तारीस सहस्सा सासा सत होंति वरिसेण॥

इस प्रकार श्वासोच्छ्वासका प्रमाण गोमट्टसार आदि जैनसिद्धांतमें लिखा है।

७१-चर्चा इकहत्तरिवीं

प्रश्न—ढाई द्वीपमें एक सौ सत्तर विजयार्द्ध पर्वत हैं उनमें रहनेवाले विद्याधरोंकी आयु काय सबकी समान होती है वा हीनाधिक होती है।

समाधान—विदेह क्षेत्रोंमें जो एक सौ साठ क्षेत्र हैं तथा तत्संबंधी जो एक सौ साठ विजयार्द्ध पर्वत हैं उनके जीवोंकी आयु काय तो सबकी समान है। वहाँपर उत्कृष्ट आयु तो एक करोड़ पूर्व है तथा शरीरका प्रमाण पाँच सौ धनुष है। वहाँपर सदा चौथे कालके प्रारम्भकीसी रीति बनी रहती है। तथा पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी दस विजयार्द्धों पर रहनेवाले जीवोंकी आयु काय घटती बढ़ती रहती है उत्सर्पिणी कालमें बढ़ती रहती है और अवसर्पिणीकालमें घटती रहती है। उत्कृष्ट आयु एक करोड़ पूर्वकी होती है और शरीर पाँच सौ धनुष ऊँचा होता है। यह अवस्था श्री ऋषभदेवके समयमें होती है। तथा उत्सर्पिणी कालके अंतिम तीर्थंकर श्री शांतके समयमें भी यही अवस्था रहती है। तथा श्रीमहावीरस्वामीके समयमें दो धनुषका शरीर और एक सौ बीस वर्षकी उत्कृष्ट आयु होती है। तथा मध्यवर्ती समयमें आयु काय भी हीनाधिक समझ लेना चाहिये। ऐसा श्री बृहत् हरिवंशपुराणकी पाँचवीं संधिमें श्लोक नं० ५१-५२-५३-५४-५५ में लिखा है। वहाँसे विचार लेना चाहिये।

७२–चर्चा बहत्तरवीं

प्रश्न—गर्भज जीवोंमें मनुष्यकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है?

समाधान—पुरुष स्त्रीके संयोग होनेपर स्त्रीके गर्भ रहता है सो पिताके वीर्य और माताके रुधिरके मिलनेसे माताके गर्भाशयमें जीव आकर उत्पन्न होता है। वह अनुक्रमसे बढ़ता है और फिर जन्म लेता है। इसका भी विशेष वर्णन इस प्रकार है–योनिके भीतर गर्भाशयमें माता पिताके रजोवीर्यके इकट्ठे होनेपर जीव आकर उत्पन्न होता है। तदनन्तर एक रात्रिमें उसका कलल बनता है। फिर पाँच रातमें वह कलल बुद्बुदाके आकारमें परिणत हो जाता है। फिर पन्द्रह दिनमें वह बुद्बुदा अण्डेके रूपमें बन जाता है, एक महीने बाद उस अंडेमें मस्तक बननेका अंकूरा उत्पन्न हो जाता है। दो महीने बाद हृदय बनता है। तीसरे महीनेमें पेट बनता है, चौथे महीनेमें हाथ पैर बनते हैं, पाँचवें महीनेमें हाथ पैरकी उँगलियाँ और नख निकलते हैं छठे

१. एक मेरु संबंधी बत्तीस विदेह होते हैं तथा पाँचों मेरु संबंधी एक सौ साठ विदेह होते हैं इनमें प्रत्येकमें एक एक विजयार्द्ध पर्वत है सो एक सौ साठ विजयार्द्ध तो ये हुए। तथा पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें दस विजयार्द्ध होते हैं इस प्रकार एक सौ सत्तर विजयार्द्ध होते हैं।

महीनेमें बाल और नेत्रोंकी वृष्टि प्रगट होती है। सातवें महीनेमें शरीरका सब आकार तैयार हो जाता है। आठवें महीनेमें ज्योंका त्यों बना रहकर बढ़ता है। नौवें वा दशवें महीनेमें उस माताके गर्भाशयसे वायुके द्वारा बाहर निकलता है, इसीको जन्म कहते हैं सो ही लिखा है—

कल्वलं चैकरात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदाः। पक्षकेणांडकं चैव मासेन शिरांकुरः॥
उरो मासद्वयं यावत् त्रिभिश्चैव तथोदरम्। शाखाश्चतुर्भिर्मासैश्च नखांगुलिश्च पंचमे॥
रोमदृष्टी च षष्ठे च सर्वेऽवयवाः सप्तमे। नवमे दशमे वापि वायुनाऽसौ बहिर्भवेत्॥

इस प्रकार मनुष्यकी उत्पत्ति समझना चाहिये।

७३–चर्चा तिहत्तरवीं

प्रश्न—ऊपर मनुष्योंकी उत्पत्ति कही है परन्तु मनुष्योंमें तीन भेद होते हैं पुरुष, स्त्री और नपुंसक। सो एक ही गर्भमें तीन अवस्थाएँ कैसे हो जाती हैं।

समाधान—जिस समय पिताका वीर्य अधिक होता है और माताका रज उस वीर्यसे कम होता है तथा उस जीवके पुरुषवेद नामकर्मका उदय होता है उस समय पुरुष उत्पन्न होता है। तथा जिस समय माताका रज अधिक हो पिताका वीर्य उस रजसे कम हो और उस जीवके स्त्रीवेद नामकर्मका उदय हो उस समय स्त्री वा कन्या उत्पन्न होती है। तथा माता पिताका रजो वीर्य समान हो और उस जीवके नपुंसक नामकर्मका उदय हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है। सो ही लिखा है।

शुक्रस्याधिकतो बालः कन्या शोणितगौरवात्।
शुक्रशोणितयोः साम्ये षंडत्वं तस्य जायते॥
पितुः शुक्राच्च मातुश्च शोणितादृगर्भसम्भवः। स्वकर्मपरिणामेन जीवोत्पत्तिरिष्यते॥

इस प्रकार पुरुष स्त्री और नपुंसककी उत्पत्ति होती है।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि एक स्त्रीके वो बालक किस प्रकार होते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि यदि

चतुर्थ स्नानको रात्रिमें वह स्त्री पुरुषसे दो बार संभोग करे तो उसके दो बालक उत्पन्न होते हैं। सो ही भाव-प्रकाश नामके आयुर्वेद शास्त्रमें लिखा है।

"युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु॥"

तथा अन्य शास्त्रोंमें अन्य प्रकार भी इसका वर्णन किया है। वह इस प्रकार है—जो रात्रिमें संभोग समय परस्परकी हवाके घातसे रजोवीर्यका पिंड अलग-अलग दो जगह हो जाय और उसमें दो जीव आ जायें तथा वे दोनों ही वृद्धिको प्राप्त होते रहें तो दो बालक उत्पन्न होते हैं। सो ही चिकित्सिकमें लिखा है।

परस्परानिलाघातात् प्रभिन्ने कलिले द्विधा। तनुप्रवृद्धे तद्युग्मे युग्मं तस्माप्रजायते॥

ऐसा वैद्यकशास्त्रमें लिखा है।

७४-चर्चा चौहत्तरवीं

प्रश्न—मनुष्यकी उत्पत्ति तो समझमें आ गई परन्तु इस मनुष्यके शरीरमें क्या-क्या पदार्थ है?

समाधान—मनुष्यके शरीरमें जो जो पदार्थ हैं उन्हें संक्षेपसे लिखते हैं। माता-पिताके संयोग होनेके बाद वह रजोवीर्यका पिंड दश दिनमें तो कलिल रूप होता है। उसके बाद दश दिनमें कलुषीरूप आकार होता है फिर दश दिनमें वह कलुषीरूप आकार स्थिर होता है। यहाँ तक एक महीना हुआ। इसके बाद दश दिनमें बुद्बुदा होता है। फिर दश दिनमें घनाकार होता है। फिर दश दिन बाद मांसकी पेशी बनने लगती है। इस क्रमसे दूसरे महीनेमें पुद्गल पूर्ण करता है। तदनंतर चर्म नख रोम अंग उपांग आदि अनुक्रमसे आठ महीने तक पहले कहे अनुसार उत्पन्न होते रहते हैं और फिर नौवें दशवें महीनेमें वह जन्म लेता है।

इस शरीरमें शिर, मुख, दाढ़ी, सब शरीरके केश, बीस नख, बत्तीस दाँत, धमनी, नाडी आदि सिरा नसें शुक्र ये सब पिताके गुणोंसे उत्पन्न होते हैं सो ही लिखा है—

केशाः स्मश्रु च लोमानि नखा दंता शिरस्तथा।
धमन्यः स्नावयः शुक्रमेतानि पितृजानि हि॥

तथा मांस, रुधिर, मज्जा, मेदा, कलेजा, प्लीहा, अंतड़ी, नाभि, हृदय, गुदा ये सब माताके गुणोंसे उत्पन्न होते हैं सो लिखा है।

मांसासृक्मज्जमेदांसि यकृत्प्लीहांत्रनाभयः। हृदयं च गुदं चापि भवंत्येतानि मातृतः॥

ऐसा चिकित्सिक भावप्रकाशमें शारीरिक सम्बन्धमें लिखा है

अब आगे शरीरका विशेष स्वरूप कहते हैं पहले कहे हुए इस औदारिक शरीरमें ३०० हड्डियां हैं, ३०० संधियां हैं, ९०० स्नायु हैं जो कि तंतुके आकार हैं। ७०० सिरा हैं, ५०० मांसकी पेशियां हैं, ४ शिराजाल हैं, १६ कंडरा हैं, ६ कंडमूल हैं, ७ त्वचा हैं, ७ कलेजा हैं, साढ़े तीन करोड़ रोमोंकी संख्या है, आमाशयमें रहनेवाली आंतोंकी षष्ठी १६, कुथिताश्रय ७, स्थूल ३, मर्मस्थान १०७ हैं जहांपर चोट लगनेसे यह जीव जीवित नहीं रह सकता। तथा ९ व्रणमुख हैं जो नित्य कुथित वस्तुओंसे बहते रहते हैं।

इस शरीरमें मस्तक तो अपनी अंजुली प्रमाण है, मेदा नामकी धातु बंडांजलि प्रमाण है, मज्जा नामकी धातु अपनी स्वांजलि प्रमाण है, वीर्य स्वांजलि प्रमाण है, वसा धातु तीन निजांजलि मात्र है, पित्त भी तीन स्वांजलि प्रमाण है, श्लेष्मा भी तीन स्वांजलि प्रमाण है, आठ सेर रुधिर है, सूत्र नामका उपधातु सोलह सेर है, भिष्टा चौबीस हैं, नख बीस हैं, दांत बत्तीस हैं, इनके सिवाय कृमि कीड, निगोद आदि जीवोंसे यह शरीर भरा हुआ है, सात धातुओंके नाम ये हैं—रस रुधिर मांस मेदा हाड़ मज्जा शुक्र इन धातुओंसे भरा हुआ यह शरीर है। ऐसा समझकर इस शरीरसे ममत्व छोड़ देना चाहिये और अपने चैतन्य स्वरूपका विचारकर इस संसार शरीरसे विरक्त हो जाना चाहिये। यह सब कथन श्री शिवकोटि मुनि कृत भगवती आराधनामें लिखा है सो वहांसे विचार लेना।

प्रश्न—यहां कोई प्रश्न करे कि मनुष्यके शरीरकी उत्पत्ति जो पहले कही थी उससे यह कथन मिला नहीं सो यह विपरीतता क्यों है—

समाधान—विपरीतता नहीं है किन्तु सामान्य और विशेष कथन है।

७५—चर्चा पिचहत्तरवीं

प्रश्न—तीर्थंकर गृहस्थाश्रममें अपने अवधिज्ञानको विचारें या नहीं ?

समाधान—एकबार बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ गृहस्थावस्थामें ही अपने पुत्रके साथ सभामें विराजमान थे। वहाँपर पट्टहस्तीका (मुख्य हाथीका) प्रसंग आ गया था। उस समय भगवान्‌ने अपने अवधिज्ञानके द्वारा सब सभासदोंको उस पट्टहस्तीका वृत्तान्त कहा था। सो ही श्रीसोमसेन कृत लघु पद्मपुराणमें बारहवीं सन्धिमें लिखा है।

पट्टहस्ती तदा मुक्तः भुक्तिं करोति दुःखदाम्।
तद्दृष्ट्वावधिनेत्रेण जिनः प्राह जनान् प्रति ॥ ११ ॥

इससे सिद्ध होता है कि तीर्थंकर गृहस्थ अवस्थामें अवधिज्ञानको जोड़ते हैं। अवधिज्ञानके विचारनेका (जोड़नेका) कुछ निषेध नहीं है।

७६–चर्चा छिहत्तरवीं

प्रश्न—देवोंकी जातिमें दुर्गति जातिके देव सुने जाते हैं सो क्या देवोंमें भी दुर्गति है ?

समाधान—जो अन्य लिंगी मिथ्या तपश्चरण कर देवगतिमें मिथ्यादृष्टि देव होते हैं। वे देव बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले सम्यग्दृष्टि देवोंके यहाँ काम करनेवाले आभियोग्य जातिके देव होते हैं अर्थात् वे दासके समान काम करते हैं, गीत गाते हैं, नृत्य करते हैं, बाजे बजाते हैं और वाहनका (सवारीका) रूप धारण करते हैं। इनके सिवाय कितने ही कुदेव किल्विष जातिके भी हैं। ये सब जीव दुर्गतिके ही कहलाते हैं तथा आयु पूरीकर स्वर्गसे चयकर तिर्यंच गतिमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक वनस्पति तथा त्रसकायिक पशु पक्षी होते हैं। सो ही रविषेणाचार्यविरचित पद्मपुराणके चौथे पर्वमें लिखा है—

यथाप्युर्ध्वं तपः शक्त्या व्रजेयुः परिलिंगिनः।
तथापि किंकरा भूत्वा ते देवान् समुपासते ॥ ४२ ॥
देवदुर्गतिदुःखानि प्राप्य कर्मवशात्ततः। स्वर्गाच्च्युत्वा पुनस्तिर्यग्योनिमायान्ति दुःखिनः॥४३॥

इस प्रकार भगवान् ऋषभदेवने अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा बतलाया है। इससे सिद्ध होता है कि ऐसे देव स्वर्गमें भी दुख देखकर मरनेके बाद तिर्यंचगतिमें जन्म धारण करते हैं। यही कथन श्रीवट्टकेर स्वामीने चारों गतियोंका वर्णन करते समय मूलाचारमें लिखा है—

कंदप्पमाभिओग्गं किब्बिसं संमोहमासुरत्तं च ।
ता देव दुग्गईओ मरणम्मि विराहिए होंति ॥ २८ ॥

टीका—कंदर्पं आभियोग्यं किल्विषं स्वमोहत्वं आसुरत्वं च ।
ताः देवदुर्गतयः मरणे विराधिते भवंति ॥

इस प्रकार लिखा है सो यह सब मिथ्यात्वका फल है । इसका भी विशेष वर्णन इस प्रकार है—कंदर्प, आभियोग्य, किल्विष, असुर ये देवोंमें उत्पन्न होते हैं । जो जीव अन्त समयमें समाधिमरणके बिना केवल बुर्बुद्धि सहित मरण करते हैं वे ही ऊपर लिखे नीच देवोंमें उत्पन्न होते हैं । इसका भी अलग अलग खुलासा इस प्रकार है—जो योगी होकर भी असत्य वचन बोलते हैं, हँसी, ठट्ठा करते हैं, राग बढ़ानेवाले वचन कहते हैं, कामदेवके वशीभूत होकर कामसेवनमें लीन रहते हैं और कामदेवको उत्तेजित करनेवाली क्रियाएँ करते रहते हैं ऐसे खोटे योगी मरकर कंदर्प जातिके देव होते हैं । सो वहां भी वे काम-क्रियाको बढ़ाने-वाले कार्य ही किया करते हैं तथा जो यन्त्र तन्त्र मन्त्र आदि कार्योंको अधिकताके साथ करते हैं जो ज्योतिष वैद्यक आदि अशुभ कार्योंको करते हैं जो संघ वा चैत्यालयकी हँसी करते हैं, अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं, जो धर्मात्माओंकी अविनय करते हैं, जो मायाचारी हैं और किल्विष अर्थात् पापकर्ममें सदा लीन रहते हैं ऐसे पुरुष मरकर देवगतिमें नीच योनिमें अर्थात् किल्विष जातिके देवोंमें उत्पन्न होते हैं । जो जीव कुमार्ग वा शास्त्र-विरुद्ध मार्गका उपदेश देते रहते हैं, जो जिनमार्गका नाश करनेमें लगे रहते हैं, सम्यग्दर्शनसे सदा विपरीत चलते हैं, जो स्वयं सम्यग्दर्शन रहित होते हैं, महा मिथ्यात्वी रहते हैं, जो मिथ्यात्व, मायाचारी और मोहसे सदा मोहित रहते हैं तथा मोहसे सदा पीड़ित रहते हैं ऐसे जीव मरकर भंडाभरण जातिमें उत्पन्न होते हैं । जो यति होकर भी क्षुद्र, क्रोधी, दुष्ट, हिंसक, मायाचारी, दुर्जन हैं तथा जो तप और चारित्रमें परम्परासे वैर बांधते चले आ रहे हैं जिनके परिणाम सदा संक्लेशरूप रहते हैं और जो सदा निदान करते रहते हैं ऐसे जीव मरकर रौद्र परिणामोंको धारण करनेवाले असुरकुमार जा तके देवोंमें असुर होते हैं सो ही मूलाचार प्रदीपकमें समाधिमरणके प्रकरणमें मरणके सत्रह भेदोंमें कहा है ।

कांदर्पमाभियोग्यं च कैल्विष्यं किल्विषापरम् । स्वमोहत्वं तथैवासुरत्वमत्वैः कुलक्षणैः ॥५६॥

सम्पन्ना दुर्द्धियो मृत्वा गच्छंति देवदुर्गतीः। कंदर्पाद्या इति प्रोक्ता नीचयोनिभवा दिवि ॥६०॥
असत्यं यो ब्रुवन् हास्यसरागवचनादिकान्। कंदर्पोद्दीपका लोके कंदर्परतिरञ्जितः ॥६१॥
कंदर्य संति देवा ये नाग्नाचार्याः सुरालये। कंदर्पकर्मभिस्तेषु युत्पद्यंते शतशमः ॥६२॥
मंत्रतंत्रादिकर्माणि यो विधत्ते बहूनि च। ज्योतिष्कभेषजादीनि परकार्याशुभानि च ॥६३॥
हास्यकुतूहलादीनि संघचैत्यालयस्य च। आगमस्याविनितोय अत्यनीकः सुधर्मिणाम् ॥६४॥
मायाविकिल्विषाक्रांतः किल्विषादिकुकर्मभिः।
स किल्विषसुरो नीचो भवेत्किल्विषजातिषु ॥६५॥
उन्मार्गदेशको योत्र जिनमार्गविनाशकः। सन्मार्गाद्विपरीतः स दृष्टिहीनः कुमार्गगः ॥६६॥
मिथ्यामायादिमोहानां मोहयन् मोहपीडितः। जायते स स्वमोहेष भंडाभरणजातिषु ॥६७॥
क्रोधी क्षुद्रः खलो मारी मायावी दुर्जनो यतिः। युक्तोनुबद्धवैरेण तपश्चारित्रकर्मसु ॥६८॥
संक्लिष्टः सनिदानो य उत्पद्यन्ते स कर्मणाम्। रौद्रासुरकुमारेषु·····।

इत्यादि लिखा है।

७७–चर्चा सतहत्तरवीं

प्रश्न—सिद्धांतमें आत्माके तीन भेद बतलाये हैं उनका स्वरूप क्या है ?

समाधान—इस लोकमें जीव नामक द्रव्यके तीन भेद बतलाये हैं–बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

जीवा हवंति तिविहा बहिरप्पा तहेव अंतरप्पा य परमप्पा। इत्यादि–

इनका स्वरूप इस प्रकार है। जिनकी आत्मामें मिथ्यात्व कर्मका तीव्र परिणमन हो रहा है। जिनके अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायोंका तीव्र उदय है तथा अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन इन कषायोंका भी तीव्र उदय है तथा जो चैतन्य और शरीरको एक ही पदार्थ मानता है ऐसा जीव इस संसारमें बहिरात्मा गिना जाता है। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

मिच्छत्त परिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो ।
जीवं देहं एगं मण्णंतो होदि बहिरप्पा ॥ १९४ ॥

यह बहिरात्माका स्वरूप है ।

जो जीव जिनवचनमें कुशल होता है, जो श्रीजिनेन्द्रदेवकी कुशल आज्ञाका पालन करनेवाला होता है अथवा जीव और शरीरका भेदविज्ञानी होता है अर्थात् जीव और शरीरको भिन्न-भिन्न जाने, जो यत्नवान हो, सम्यग्दर्शनको घात करनेवाले दुष्ट आठों मदोंको जीतने वाला हो उसे अन्तरात्मा कहते हैं । यह अन्तरात्मा तीन प्रकार है । सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

जो जिणवयणे कुसला भेयं जाणंति जीवदेहाणं ।
णिज्जय दुट्ठमयट्ठा अंतरअप्पा य ते तिविहा ॥१९५॥

अन्तरात्माके वे तीन भेद इस प्रकार हैं—जो पांचों महाव्रतोंको पालन करनेवाले हों, जो धर्मध्यान वा शुक्लध्यानमें निरन्तर लीन हों, ध्यानमें जिनका शरीर निश्चल रहे और जो समस्त अपाय अर्थात् कर्मोंको जीतनेवाले हों ऐसे मुनियोंको उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहते हैं, सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

पंचमहव्वयजुत्ता धम्मे सुक्के विसंठिया णिच्चं ।
णिज्जयसयलमपाया उक्किट्ठा अंतरा होंति ॥१९६॥

जो दर्शन, व्रत आदि श्रावकोंके ग्यारह प्रतिमारूप गुणोंको धारण करनेवाले हों, जो श्रावकोंकी तिरेपन क्रियाओंका पालन करते हों ऐसे पांचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक मध्यम अन्तरात्मा है तथा जो जिन-वचनोंमें सदा अनुरक्त रहते हैं, जिनके दर्शनमोहनीयकी मिथ्यात्व आदि तीनों प्रकृतियां तथा चारित्रमोहनीयकी क्रोध-मानमायालोभ ये चारों प्रकृतियां इस प्रकार सातों ही प्रकृतियां उपशमभावको प्राप्त हो गई हों और क्षुधा, तृषा आदि परिषहोंको सहन करनेमें खूब समर्थ हों ऐसे मुनियोंको भी मध्यम अन्तरात्मा कहते हैं । सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है ।

सावयगुणे हि जुत्ता पमत्तविरदाय मज्झिमा होंति ।
जिणवयणे अणुरत्ता उवसमसीला महासत्ता ॥१९७॥

इस प्रकार मध्यम अन्तरात्माका स्वरूप बतलाया । जो उपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वसे सुशोभित हो, जो जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंका भक्त हो, अपने किये हुए पापोंकी निंदा करनेवाला हो, महाव्रतादि गुणोंको धारण करनेकी जिसकी तीव्र लालसा हो ऐसे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती श्रावकोंको जघन्य अन्तरात्मा कहते हैं । सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है ।

अविरयसम्माइट्ठी होंति जहण्णा जिणंदपयभत्ता ।
अप्पाणं णिंदंता गुणगहणे सुट्ठु अणुरत्ता ॥१९८॥

इस प्रकार तीनों प्रकारके अन्तरात्माओंका स्वरूप बतलाया ।

जो परमौदारिक शरीरसे सुशोभित हैं और केवलज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंके ज्ञाता दृष्टा हैं ऐसे श्री अरहन्त भगवान् सकल परमात्मा हैं तथा जिनके ज्ञान ही शरीर है, जो परमौदारिक शरीरसे भी रहित हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठी निकल परमात्मा हैं । ये निकल परमात्मा सर्वोत्कृष्ट सुखसे सुखी हैं । सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है ।

ससरीरा अरहंता केवलणाणेण मुणिय सयलत्था ।
णाणसरीरा सिद्धा सव्वुत्तमसुक्खसंपत्ता ॥१९९॥

इस प्रकार बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका स्वरूप जानना । इससे भी विशेष स्वरूप जानना हो तो श्री सकलकीर्तिकृत 'सार चतुर्विंशतिका' तथा श्रीयोगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाशसे जान लेना चाहिये । इनके सिवाय अन्य जैन सिद्धान्तोंसे भी जान लेना चाहिये । उनमें विशेष लिखा है । हमने यहां संक्षेपमें लिखा है ।

१. कल शब्दका अर्थ शरीर है जो शरीरसहित परमात्मा हों वे सकल परमात्मा हैं तथा जो शरीर रहित परमात्मा हों वे निकल परमात्मा हैं ।

७८-चर्चा अठहत्तरवीं

प्रश्न—जीवोंके भाव कौन-कौन हैं और उनका स्वरूप क्या है ?

समाधान—जीव नामक तत्त्वके मूलभाव पाँच हैं औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक। ये पाँच भाव समस्त जीवोंके समुच्चयरूपसे हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च।

—अध्याय २रा सूत्र १।

इनका अर्थ इनके शब्दोंसे ही निकलता है अर्थात् जो कर्मोंके उपशमसे हों उन्हें औपशमिकभाव कहते हैं, जो कर्मोंके क्षयसे हों उन्हें क्षायिकभाव कहते हैं जो कर्मोंके क्षय और उपशम दोनोंसे हों उनको क्षायोपशमिक वा मिश्रभाव कहते हैं, जो कर्मोंके उदयसे हों उनको औदयिक और जो अपने आत्म तत्त्वसे उत्पन्न हों उनको पारिणामिकभाव कहते हैं। यह इनका सामान्य अर्थ है। इनके उत्तरभेद ५३ होते हैं, सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्। —अध्याय २ सूत्र सं० २

औपशमिक भावोंके दो भेद हैं—औपशिक सम्यग्दर्शन और औपशमिक चारित्र। क्षायिकके नौ भेद हैं—केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतदान, अनंतलाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य। क्षायिक सम्यग्दर्शन और क्षायिकसम्यक्चारित्र। मिश्रभावके अठारह भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, विभंगावधिज्ञान, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम। औदायिकके इकईस भेद हैं। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या। तथा पारिणामिकके तीन भेद हैं—जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व। ये सब सब मिलकर तिरेपन भाव होते हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

सम्यक्त्वचारित्रे । ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च । ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च । गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः । जीवभव्याभव्यत्वानि च ।

—अध्याय २ सूत्र सं० ३ । ४ । ५ । ६ । ७ ।

इस प्रकार इनका स्वरूप जानना । इनका विशेष वर्णन श्रीदेवसेनमुनि विरचित भावसंग्रहसे जान लेना चाहिये ।

७९–चर्चा उन्यासीवीं

प्रश्न—मनुष्यके तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पशु पक्षी आदि जीवोंके तीन वेद (लिंग–स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसक लिंग) होते हैं परन्तु नरक गतिके जीवोंके और एकेन्द्रियादि संमूर्छन असैनी जीवोंके कौनसा लिंग होता है ?

समाधान—नरकके नारकियोंके तथा समस्त सम्मूर्च्छन जीवोंके केवल नपुंसक लिंगका उदय होता है । इसलिये उनके स्त्रीवेद और नपुंसक वेद नहीं होते ऐसा नियम है । तथा देवोंके नपुंसक वेद नहीं होता उनके स्त्रीवेद और पुंवेद दो ही लिंग होते हैं और मनुष्य तथा गर्भज पशु पक्षियोंके तीनों ही वेद होते हैं । सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है ।

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि । न देवाः । शेषास्त्रिवेदाः ।

—अध्याय २ सूत्र सं० ५० । ५१ ।

८०–चर्चा अस्सीवीं

प्रश्न—राजा शिशुपालने कृष्ण नामके नारायणको रुक्मिणीका हरण करते समय एक सौ गालियां दीं । तदनंतर नारायणने उसको मारा । इस प्रकार हरिवंशपुराणमें वा जैनपुराणोंमें सुना है । परन्तु वहांपर सौ गालियोंके नाम कहीं नहीं लिखे केवल दो चार नाम लिखे हैं सो वे सौ गालियां कौन-कौन सी हैं ।

समाधान—रुक्मिणीके हरण करते समय युद्धमें शिशुपाल कृष्ण नामके वासुदेवसे कहता है—रे क्रोधी

१ रे क्रोध २ रे कराल ३ रे कुनय ४ रे कुलहर ५ रे कद्रव ६ रे क्रूरकर्मा ७ रे काल ८ रे कामी ९ रे कलंकी १० रे कुवल ११ रे कलिकर १२ रे कातर १३ रे कंटकी १४ रे क्रूर १५ रे नपुंसक १६ रे कुविद्य १७ रे कुमद १८ रे कपटी १९ रे नौकर्म २० रे कामांध २१ रे कीर २२ रे क्रोड़ा २३ रे कोष्ठ २४ रे कुलिंगी २५ रे कुचरण २६ रे कलुषि २७ रे क्रव्यभुज २८ रे कंपिन २९ रे कुप्रीत ३० रे कुमद ३१ रे कुरूप ३२ रे कुरणी ३३ रे काक ३४ रे कुवेष ३५ रे कुधृत ३६ रे कुष्ठी ३७ रे कीट ३८ रे कुलक्षणी ३९ रे कलभ ४० रे कारुण्यहीन ४१ रे कुधी ४२ रे कूर्म ४३ रे कुश्रवण ४४ रे कुरंग ४५ रे कुगुरु ४६ रे कौलेयक ४७ रे किंकर ४८ रे काम ४९ रे कापुरुष ५० रे कुलाल ५१ रे कुरव ५२ रे काकोदर ५३ रे कर्कश ५४ रे कुनेत्र ५५ रे कुवक्र ५६ रे कुनास ५७ रे कुकर्ण ५८ रे कुचंक ५९ रे कुकेसर ६० रे कुगलहु ६१ रे कुनाभि ६२ रे कुदंत ६३ रे कुजिह्व ६४ रे कुजंघ ६५ रे कुपाद ६६ रे कुभाग्य ६७ रे कुकर्मा ६८ रे कुतात ६९ रे कुपुत्र ७० रे कुराम ७१ रे कुसेव ७२ रे कुवर्ण ७३ रे कुवास ७४ रे कुलघन ७५ रे कुदेव ७६ रे कुचेल ७७ रे कुराग ७८ रे कुकीर्ति ७९ रे कुनाम ८० रे कुशील ८१ रे कुनीति ८२ रे कुवीर ८३ रे कुचार ८४ रे कुमान ८५ रे कुसंग ८६ रे कुबंधु ८७ रे कुमित्र ८८ रे कुमार ८९ रे कुवाल ९० रे कुजाति ९१ रे कुलारी ९२ रे कला-हीन ९३ रे कर्क ९४ रे कुभोजी ९५ रे कुबन्धो ९६ रे कुराज्य ९७ रे कुभार ९८ रे कुजन्मा ९९ रे कुधर्म १०० । इस प्रकार सौ गालियां शिशुपालने श्रीकृष्णको दीं और फिर और भी कुवचन कहे तब कृष्णने उसका वध किया सो ही 'जैनरत्नाकर' में लिखा है ।

क्रोधी कीशः करालः कुनयकुलहरौ कद्रदः क्रूरकर्मा,
कालः कामी कलंकी कुवलकलिकरौ कातरः कंटकी च ॥
क्रूरः क्लीवः कुविद्यः कुमदकपटिनौकर्मकामांधकीराः,
क्रोडा क्रोष्टा कुलिंगी कुचरणकलुषी क्रव्यभुक् कंपिनश्च ॥
कुप्रीतिः कुमदः कुरूपकुरणौ काकः कुवेषः कुधृत्,
कुष्ठी कीटकुलक्षणौ च कलभः कारुण्यहीनः कुधीः ॥

कूर्मः कुश्रवणः कुरंगकुगुरू कौलेयकः किंकरः,
कामः कापुरुषः कुलालकुरवो काकोदरः कर्कशः ॥
कुनेत्रः कुवक्रः कुनाशः कुकर्णः कुकंठः कुचेताः कुवादुः कुनाभिः ॥
कुदन्तः कुजिह्वः कुजंघः कुपादः कुभाग्यः कुकर्मा कुतातः कुपुत्रः ॥
कुरामः कुसेवः कुवर्णः कुवासः कुलघ्नः कुदेवः कुचेलः कुरागः ॥
कुकीर्तिः कुनामा कुशीलः कुनीतिः कुवीरः कुचारः कुमानः कुसंगः ॥
कुबंधुः कुमित्रं कुमारः कुवाक्यः कुजाति कुलारिः कलाहीनकर्कौ कुभोजी ॥
कुबंधी कुराज्यः कुभारः कुजन्मा कुधर्मा हरेः गालयः स्युः शतानि ॥

८१–चर्चा इक्यासीवीं

ढाई द्वीपमें रहनेवाले समस्त विद्याधर तथा चारणऋद्धिको धारण करनेवाले महामुनिराज इस धित्रा पृथ्वीसे निन्यानवे हजार योजन ऊँचे चढ़कर मेरु पर्वतपर जा पहुँचते हैं ऐसी उनकी शक्ति है परन्तु वे ही विद्याधर और महामुनि सत्रहसौ इकईस योजन ऊँचे मानुषोत्तर पर्वतको उलंघन कर ढाई द्वीपके बाहर जिन-मंदिरोंकी वंदना करनेके लिये क्यों नहीं जा सकते ?

समाधान—ढाई द्वीपके बाहर मनुष्यक्षेत्र नहीं है। मनुष्यक्षेत्र मानुषोत्तर पर्वत तक ही है इसलिये इसका "मानुषोत्तर" (मनुष्य क्षेत्रसे आगे रहनेवाला) यह सार्थक नाम है। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः। —अध्याय ३ सूत्र सं० ३५।

यही कारण है कि वे विद्याधर वा मुनिराज उसके आगे नहीं जा सकते, मनुष्योत्तरके इधर ही रहते हैं। यदि कोई विमानविद्यासे अथवा ऋद्धिसे मानुषोत्तरके आगे जाना चाहे तो भी उसकी सामर्थ्य चलती नहीं उसे उलटा पीछे ही आना पड़ता है। ऐसा नियम श्रीसर्वज्ञदेवके शासनमें कहा है।

प्रश्न—यहाँ कोई प्रश्न करे कि यह कहना असंभव है क्योंकि यह कहना ऐसा ही है जैसा कोई यह कहे कि "एक हाथी एक कमंडलुमें घुस गया और वह उसके नालमें होकर निकल गया परंतु उसकी पूँछका एक बाल

अटक गया तब लाचार होकर यह कहना पड़ा कि भाई एक तिहाई हाथी अटक गया'' इसी प्रकार वे विद्याधर और मुनिराज निन्यानवे हजार योजन ऊँचे तो चले जायें परन्तु उनसे सत्रह सौ इक्कीस योजन ऊँचा मानुषोत्तर पर्वत उल्लंघन न किया जाय अतएव यह कहना असंभव है।

उत्तर—जिस प्रकार इस जीवका स्वभाव ऊर्ध्वगमन करना है परन्तु कर्मरहित मुक्त जीव भी लोकके शिखरपर्यन्त ही जाते हैं। आगे अलोकाकाशमें नहीं जाते। वे भी अपने लोकके क्षेत्रपर्यंत ही गमन करते हैं। आगे गमन करनेमें वे भी असमर्थ हैं। इसी प्रकार मानुषोत्तर पर्वतके आगे भी कोई नहीं जा सकता।

प्रश्न—मुक्त जीव जो लोकशिखरसे आगे नहीं जाते उसका कारण तो लोकके आगे धर्मद्रव्यका अभाव है। धर्मद्रव्यके अभावसे आगे नहीं जा सकते सो ही लिखा है।

धर्मास्तिकायाभावात्। —अध्याय १० सूत्र सं० ८

परन्तु यहाँ किस द्रव्यका अभाव है जिसके कारण वे मानुषोत्तर पर्वतका उल्लंघन नहीं कर सकते।

उत्तर—मानुषोत्तर पर्वतको उल्लंघन करनेकी सामर्थ्य न तो विमानोंमें और न ऋद्धियोंमें है। इसीलिये वे उसका उल्लंघन नहीं कर सकते। आगे और भी उदाहरण लिखते हैं जिस प्रकार लवणोदधि आदि समुद्रोंके जलका पूर आता है उस समय वह जल ऊपरको ही बढ़ता है अपने किनारेको मर्यादा नहीं छोड़ता अर्थात् ऊँचा बँधा हुआ किनारा न होनेपर भी वह समुद्र अपना किनारा छोड़कर आगे नहीं बढ़ता। अथवा लोहा नामकी धातुमें एक कांति नामका लोहा होता है उसकी कढ़ाई भी बनती है उस कढ़ाईमें यदि ऊपर तक दूध भर दें और उसके नीचे अग्नि जलावें तो उस अग्निकी गर्मीसे उस दूधमें उफान तो आवेगा परन्तु उस उफानसे वह दूध ऊपरको ही चढ़ेगा उस कढ़ाईके किनारेसे बाहर निकल कर वह पृथ्वीपर नहीं पड़ेगा। सो ही भावप्रकाश नामके आयुर्वेदशास्त्रमें लिखा है।

यत्पात्रे न प्रसरति जलं तैलबिंदुः प्रक्षिप्ते हिंगुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बकल्कः।
तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नेति भूमि कृष्णांगं स्यात्सजल चकणे कान्तलोहं तदुक्तम्॥

अथवा मछली जलमें गमन करती है तथा जलकी महाधाराके सामने वा उसके ऊपर चली जाती है ऐसी उसकी शक्ति है तो भी वह जलके बाहर एक पैर भी नहीं चल सकती। अथवा सर्वार्थसिद्धि नामके

विमानके अहमिन्द्रोंका अवधिज्ञान और विक्रिया सातवें नरक तक कही है और वे अहमिंद्र सातवें नरक तक अपने अवधिज्ञानको जोड़ भी लेते हैं परन्तु अपनी विक्रियाके द्वारा भी वे अपने विमानसे बाहर कभी नहीं जाते। इस प्रकारके अनेक दृष्टांत हैं। इसी प्रकार मानुषोत्तर पर्वतसे बाहर मनुष्यका गमन नहीं हो सकता। जो लोग मानुषोत्तर पर्वतके बाहर भी मनुष्यका गमन मानते हैं उन्हें जैनी नहीं समझना चाहिये।

तथा जो लोग मानुषोत्तरके बाहर तीर्थंकरोंके केशोंका गमन नहीं मानते वे भी मिथ्यादृष्टी हैं क्योंकि भगवान् तीर्थंकर परमदेव दीक्षा लेते समय जब केशलोंच करते हैं तब उन केशोंको इन्द्र मणिमय पात्रमें रखकर क्षीरसागरमें क्षेपण करता है। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। यदि वे केश मानुषोत्तरके बाहर नहीं जा सकते थे तो फिर ऐसा लिखा ही क्यों है। पंचमंगल भाषामें लिखा है—

"क्षीरसमुद जल क्षिपिकरि गये अमरावती"

कोई-कोई लोग इन केशोंको मायामयी मानते हैं सो भी मिथ्या है क्योंकि शास्त्रोंमें मायामयी केश नहीं लिखे हैं साक्षात् केश लिखे हैं। ऐसा जानकर जैसा शास्त्रोंमें लिखा है वैसा ही श्रद्धान करना ठीक है। शास्त्राज्ञाके विपरीत श्रद्धान कभी नहीं करना चाहिये।

८२–चर्चा बियासीवीं

प्रश्न—आस्रव तत्त्वके पुण्यपाप दो भेद हैं सो उनका विशेष स्वरूप क्या है जिनसे पुण्यपापका विशेष स्वरूप जाना जाय ?

समाधान—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ये तीन प्रकारके सम्यग्दर्शन, देव, शास्त्र, गुरुकी पूजा करना, अनशन आदि बारह प्रकारका तपश्चरण पालना, उत्तम, मध्यम, जघन्य तीनों प्रकारके सत्पात्रोंको दान देना, सब जीवों पर दयाभाव धारण करना, इन्द्रिय संयम (इन्द्रियोंको दमन करना) और प्राणिसंयम (समस्त प्राणियोंकी रक्षा करना) ये दोनों प्रकारके संयम पालन करना, तेरह प्रकारके चारित्रको पालन करनेके लिये खूब अच्छी तरह उद्यम करना, पाँचों प्रकारके ज्ञानोंको धारण करना, कषायोंके जीतनेकी वृद्धि करना, जीवादिक छह द्रव्य तथा नौ पदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान करना आदि शुभोपयोगके जितने कारण हैं

और भगवान् जिनेन्द्रदेवने कहे हैं वे सब पुण्यके अंश हैं अर्थात् पुण्यास्रवके कारण हैं। सो ही रत्नाकरमें लिखा है—

सम्यक्त्वं जिनपूजनं च सुतपो दानं दया संयमः,
चारित्राचरणे त्रयोदशविधौ सम्यक्प्रकरोद्यमः।
पंचज्ञानमतिः कषायविजयः षड्द्रव्यमर्थान्नव,
ऐते हि जिनभाषिताः शुभकरा पुण्यांशवो चास्रवाः॥

ये तो सब पुण्यास्रवके कारण हैं तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञाएँ, माया, मिथ्या, निदान ये तीन शल्य, क्रोधादिक पच्चीस कषाय, मन, वचन, कायकी क्रियारूप तीन दंड, राजकथा, चोरकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथा ये चार विकथाएँ, कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएँ, रसगारव, ऋद्धिगारव, तपगारव ये तीन गारव, एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान ये पाँच मिथ्यात्व, पाँच प्रकारका काम, हलका, भारी, नरम, कठोर, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा, कषायला, सुगंध, दुर्गंध, सचेतन, अचेतन, मिश्र ये तेईस पाँचों इन्द्रियोंके विषय, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये पाँच पाप, मोह, स्नेह, विषादकारण, कुमतिज्ञान, अहंकार, पन्द्रह प्रमाद अथवा साढे सैंतीस हजार ३७५०० प्रमाद, ईंधन और अग्नि के द्वारा व्यापार करना, कलह, आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान आदि सब पापके अंश अथवा पापास्रवके कारण हैं। सो ही रत्नाकरमें लिखा है।

संज्ञाशल्यकषायदंडविकथा लेश्या त्रयो गारवा,
मिथ्यापञ्चकपंचकामविषयाः पञ्चैव हिंसादयः।
मोहस्नेहविषादहेतुकुमतिः गर्वं[1] प्रमादाखिलाः,
इन्ध्यग्निव्यवसायहेतुकलहाः पापांशवोचास्रवाः॥

---

१. गारव अभिमानको कहते हैं, ऋद्धियोंका अभिमान, तपका अभिमान और शरीरका अभिमान।
२. शोषण, संतापन, उच्चाटन, वशीकरण, मोहन।

ऐसा समझ कर ऊपर लिखे हुए पापके आस्रवोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये तथा असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे पुण्यास्रवोंके कारणोंको ग्रहण करना चाहिये। तथा शुद्धनयसे पुण्य पाप दोनों ही त्याज्य हैं।

८३–चर्चा तिरासीवीं

प्रश्न—श्रावकके बारह व्रतोंमें दिग्व्रत और देशव्रत और वो व्रत अलग-अलग गुणव्रत हैं। दिग्व्रतमें योजनादिकके द्वारा दिशा विदिशाओंका प्रमाण किया जाता है तथा मर्यादाके बाहर आने जानेका त्याग किया जाता है और देशव्रतको पालन करनेवाला देशोंका प्रमाण करता है। परन्तु मर्यादा तो दिग्व्रतमें ही हो जाती है उसी क्षेत्रमें वह गमनागमन करता है फिर देशोंके प्रमाण करनेका क्या कारण है? देश भी तो दिशामें ही आ गये। इस प्रकार ये दोनों ही व्रत एक रूप ही होते हैं इनमें कुछ विशेषता नहीं होती।

समाधान—दिग्व्रतमें तो समस्त दिशाओंका प्रमाण हो जाता है फिर भी देशव्रतमें जो देशोंकी मर्यादा की जाती है उसका अभिप्राय यह है कि पहले जो दिशाओंकी मर्यादा की थी उसमें यदि कोई म्लेच्छ देश हो अथवा अनार्य देश हो जहाँपर कि अपने व्रत और सदाचरणोंका भंग होता हो तो ऐसे अधार्मिक देशमें लोभादिकके कारण भी कभी नहीं जाना चाहिये। देशव्रत धारण करनेका यही अभिप्राय है सो ही वसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है।

वयभंगकारणं होई जम्मिदेसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमणणिवित्ती तं जाण गुणव्वयं विदियं ॥२१५॥

देशव्रतका यही अभिप्राय है और कुछ अभिप्राय नहीं है।

---

१. दिग्व्रतकी मर्यादा जन्म भरके लिये की जाती है और देशव्रतकी मर्यादा कुछ कालके लिये उसके भीतर की जाती है। यह दिग्व्रत और देशव्रत में अन्तर है। इसके सिवाय श्रीवसुनंदिश्रावकाचारमें देशव्रतका लक्षण लिखा सो भी ठीक है क्योंकि जहाँपर सम्यक्त्व नष्ट हो जाय अथवा व्रतोंका दोष लग जाय ऐसे देशोंमें जानेका निषेध अन्य शास्त्रोंमें भी है। इसी कारण वर्तमान समयमें समुद्र यात्राका निषेध किया जाता है क्योंकि वर्तमान समुद्रयात्राके जो जो साधन हैं वे सब सम्यक्त्वका घात करनेवाले है क्योंकि वहाँपर देवदर्शन, पात्रदान आदिका कुछ साधन नहीं है इसी प्रकार व्रतोंके घातक हैं क्योंकि खाने पीनेके साधन होटल ही हैं और वहाँपर मांसादिकका स्पर्श बच नहीं सकता। रसोई बनानेवाले मुसलमान और भंगियोंका स्पर्श बच नहीं सकता। यदि कोई स्वयं बनाना चाहे तो भी इनका स्पर्श बच नहीं सकता। इसलिये ऐसे देशोंमें जानेका त्याग करना भी देशव्रत है।

८४–चर्चा चौरासीवीं

प्रश्न—हिंसाका त्याग और उसका ज्ञान किस प्रकार है ? क्योंकि विना समझे हिंसाका त्याग किस प्रकार किया जाय ?

समाधान—इसका विशेष वर्णन इस प्रकार है। अहिंसा व्रत लेनेवालेको सबसे पहले नीचे लिखी चार बातें समझनी चाहिये और फिर उनका त्याग करना चाहिये। सबसे पहले हिंस्य, हिंसक, हिंसा और हिंसाफल इन चारोंका स्वरूप जान लेना चाहिये। संसारमें जो पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद, दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय, संज्ञीपंचेंद्रिय आदि अनेक प्रकारके जीव हैं वे हिंस्य (हिंसा करने योग्य) हैं इनके विशेष भेद और स्वरूपका वर्णन चौदह मार्गणा तथा बीस प्ररूपणाके द्वारा अनेक भेदरूप श्रीगोम्मटसार आदि अनेक जैनशास्त्रोंमें कहा है वहांसे समझ लेना चाहिये। यह हिंस्यका स्वरूप कहा। तथा ऊपर कहे हुए जीवोंकी हिंसा करनेवाला हिंसक है। ऊपर लिखे जीवोंका मरण होना हिंसा है। यह हिंसा शब्द हिंसार्थक हिंसि धातुसे कृदन्तीय प्रत्यय होकर तथा स्त्रीलिंगमें आ प्रत्यय होकर बना है। हिंसा सम्बन्धी जानने योग्य चारों भेदोंमें यह तीसरा भेद है। तथा उस हिंसाके पापसे उस हिंसा करनेवाले जीवको नरक, तिर्यंच आदि अनेक प्रकारकी कुयोनियोंमें थोड़ा वा बहुत दुःख भोगना पड़ता है वह हिंसाका थोड़ा वा बहुत फल है। इस प्रकार हिंस्य, हिंसक, हिंसा और हिंसाका फल इन चारोंका स्वरूप जानकर फिर अपनी शक्तिके अनुसार हिंसाका त्याग करना चाहिये। सो ही अमृतचंद्र-सूरिने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है—

अवबुध्य हिंस्यहिंसकहिंसाहिंसाफलानि तत्त्वेन।
नित्यमवगूहमानैर्निजशक्त्या त्यज्यतां हिंसा॥

अत एव अपनी शक्तिको देखकर अणुव्रत वा महाव्रत धारण कर हिंसादिकका त्याग करना चाहिये।

८५–चर्चा पिचासीवीं

प्रश्न—ऊपर जो हिंस्य, हिंसक आदि भेद बतलाये उसमें हिंसाका फल थोड़ा और बहुत बतलाया।

परन्तु हिंसामें थोड़ा बहुत यह दो प्रकारका फल कैसा ? क्योंकि समान हिंसामें समान फल होना चाहिये। फलमें न्यूनाधिकता क्यों होती है ?

समाधान—ऊपर हिंसा बतलाई है उसके द्रव्यहिंसा, भावहिंसा आदि कितने ही भेद होते हैं। जैसे किसीने बाह्य हिंसा तो की नहीं परन्तु अपने योगोंके द्वारा प्रमादरूप प्रवृत्ति की अर्थात् मनमें हिंसाका विचार किया और वचनसे भी हिंसाका प्रयोग किया तो उसके भी हिंसाका ही फल लगेगा ॥ १ ॥ अथवा किसीने योगोंके द्वारा कोई प्रमाद नहीं किया अर्थात् मन, वचनमें जीवोंकी रक्षा परिणाम रखते हुए बड़े यत्नाचारसे प्रवृत्ति की। ऐसी अवस्थामें उसके द्वारा बाह्य हिंसा हो नहीं सकती। तथापि यदि उससे हिंसा हो जाय तो उसके भाव दयारूप ही समझे जायेंगे इसके हिंसाका पाप नहीं लगेगा ॥ २ ॥ अथवा कोई हिंसा तो बहुत थोड़ी करे परन्तु उसके क्रोधादिक हिंसादिक परिणाम बहुत तीव्र हों तो उसके हिंसाका फल बहुत ही लगेगा ॥ ३ ॥ अथवा किसीके भाव तो हिंसासे निवृत्ति रूप हों, हिंसाके त्याग रूप हों परन्तु उससे हिंसा बहुत हो जाय तो भी उसको उसका फल थोड़ा ही लगेगा ॥ ४ ॥ अथवा एक ही प्रकारकी हिंसा किन्हीं दो जीवोंने की परन्तु एकने तो बड़े तीव्र कषायोंसे की इसलिये उसको फल भी बहुत ही लगेगा तथा दूसरेने बड़े मंद परिणामों-से की इसलिये उसको उसका फल बहुत थोड़ा मिलेगा ॥ ५ ॥ किसीने हिंसा करनेका विचार किया परन्तु वह शीघ्र हिंसा न कर सका तो उसको हिंसा करनेके पहले ही केवल विचार करनेमात्रसे हिंसाका फल मिल जाता है पीछे कालांतरमें वह उस हिंसाको करता है ॥ ६ ॥ किसी जीवको हिंसा करके ही उसी समय उसका फल मिल जाता है ॥ ७ ॥ किसीको हिंसा करनेपर हिंसाका फल मिलता है ॥ ८ ॥ किसीको बिना हिंसा किये ही केवल विचार करने मात्रसे हिंसाका फल मिल जाता है ॥ ९ ॥ हिंसा एक करता है परन्तु उसके फल भोगनेवाले अनेक होते हैं जैसे किसी चोरको एक मनुष्य मारता है परन्तु उसकी अनुमोदना बहुतसे मनुष्य करते हैं वे सब उस हिंसाके फल भोगनेवाले होते हैं ॥ १० ॥ हिंसा अनेक करते हैं परन्तु फल एकको ही लगता है। जैसे युद्धमें हजारों लाखों मरते मारते हैं परन्तु फल राजाको ही लगता है ॥ ११ ॥ किसीसे शत्रुता रखकर उसको मारनेके लिये पहले उसको विश्वास दिलाना, दया करना, उसका पालन करना सो भी सब हिंसाके फलको ही फलता है ॥ १२ ॥ किसी रोगी जीवको दुखी देखकर अथवा अन्य किसी जीवको दुःखी देखकर अथवा किसी जीवको मरता हुआ देखकर उसके बचाने का प्रयत्न करे चाहे वह प्रयत्न शस्त्रके द्वारा

चीड फार करने रूप हो, चाहे अग्नि वा गर्म लोहे द्वारा दागने रूप हो और चाहे लंघन आदि किसी अन्य दुख रूप हो। इन सब आसुरी प्रयत्नोंके द्वारा भी उसके प्राणोंकी रक्षा करे और इस प्रकार रक्षा करते हुए भी वह प्राणी मर जाय अथवा जीवित हो जाय परन्तु उस चीड फाड़ या दाग वा लंघन आदि पीड़ा रूप प्रयत्नका फल दयारूप ही होता है क्योंकि उसके परिणाम उसकी रक्षा करनेके थे ॥ १३ ॥ इस प्रकार हिंसाके फलमें भी थोड़ा बहुतपन आता ही है। अतएव यत्नाचारपूर्वक रहकर दया पालन करना चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार ऊपर लिखी सब प्रकारकी हिंसाका त्याग कर देना चाहिये। यही जैनसिद्धांतका सार है। सो ही पुरुषार्थसिद्धिउपायमें लिखा है—

अविधायापि हि हिंसां हिंसाफलभाजनं भवत्येकः।
कृत्वाप्यपरो हिंसां हिंसाफलभाजनं न स्यात् ॥ ५१ ॥
एकस्याल्पा हिंसा ददाति काले फलमनल्पम्।
अन्यस्य महाहिंसा स्वल्पफला भवति परिपाके ॥ ५२ ॥
एकस्य सैव तीव्रं दिशति फलं सैव मन्दमन्यस्य।
व्रजति सहकारिणोरपि हिंसा वैचित्र्यमत्र फलकाले ॥ ५३ ॥
प्रागेव फलति हिंसा क्रियमाणा फलति फलति च कृतापि।
आरभ्य कर्तुमकृतापि फलति हिंसानुभावेन ॥ ५४ ॥
एकः करोति हिंसां भवन्ति फलभागिनो बहवः।
बहवो विदधति हिंसां हिंसाफलभुग्भवत्येकः ॥ ५५ ॥
कस्यापि दिशति हिंसा हिंसाफलमेकमेव फलकाले।
अन्यस्य सैव हिंसा दिशत्यहिंसाफलं विपुलम् ॥ ५६ ॥
हिंसाफलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे।
इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसाफलं नान्यत् ॥ ५७ ॥

इति विविधभंगगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्।
गुरवो भवन्ति शरणं प्रबुद्धनयचक्रसंचाराः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीअमृतचन्द्रसूरिने लिखा है।

८६-चर्चा छियासीवीं

प्रश्न—असत्यभाषणका त्याग करनेवाला असत्यको छोड़कर और कौन कौनसे वचन न कहे तथा कौन कौनसे कहे।

समाधान—सत्य भाषण करनेवालेको सबसे पहले तो उसके अतिचार छोड़ देना चाहिये। वे अतिचार अनेक ग्रन्थोंमें लिखे हैं। मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥—अध्याय ७, सूत्र २६

प्रथम तो इन पाँचों अतिचारोंका त्याग कर देना चाहिये। इनके सिवाय नीचे लिखी बातोंका त्याग कर देना चाहिये। जो विद्यमान है उसको नहीं कहना, जैसे देवदत्त घरमें है फिर भी नहीं कह देना, यह पहला असत्य है। नहीं होनेपर विद्यमान है ऐसा कह देना, जैसे देवदत्त नहीं है तो भी है ऐसा कह देना, यह दूसरा असत्य है। जो पदार्थ है उसको बदल कर कहना जैसे घरमें गाय है परंतु कहना घोड़ा है, यह तीसरा असत्य है। चौथे असत्यके गर्हित, अवद्य, अप्रिय ऐसे तीन भेद हैं। चुगली खाना वा निंदाके वचन कहना, हँसी ठट्ठा करना, कठोर वचन कहना, अयोग्य वचन कहना, बकवाद करना, मिथ्यात्वको बढ़ानेवाले, अप्रामाणिक और आगमविरुद्ध वचन कहना सो सब गर्हित वचन कहलाते हैं। जिन वचनोंसे प्राणियोंकी हिंसा हो ऐसे दूसरोंके अंग उपांगोंको छेदन भेदन करनेवाले, मारनेवाले वचन, अन्नादिके व्यापार संबंधी वचन अथवा चोरी आदि के वचन सो सब अवद्य अथवा सावद्य वचन कहलाते हैं। अवद्य शब्दका अर्थ पाप है। पापरूप

१. इस प्रकार हिंसाके अनेक भेद हैं इन सब भेदोंको न जाननेवालेके लिये अनेक तपोंके जानकर गुरु ही कारण होते हैं अर्थात् परम ऋषि ही इनके भेद प्रभेद बता सकते हैं।

२. झूठा उपदेश देना, एकांतमें की हुई या कही हुई क्रियाको प्रगट कर देना, झूठे लेख लिखना, किसीकी धरोहर मार लेना तथा किसी तरह किसीके अभिप्रायको जानकर उसको प्रगट कर देना ये पाँच सत्याणुव्रतके अतिचार हैं।

वचनोंको सावद्य वचन कहते हैं। जो दूसरेको बुरे लगें, भय उत्पन्न करें, खेद उत्पन्न करें, वैर, कलह, शोक उत्पन्न करें अथवा और किसी प्रकारका संताप वा दुःख उत्पन्न करें वे सब वचन अप्रिय कहलाते हैं। ये ऊपर सब असत्य के भेद हैं इसलिये सत्याणुव्रतीको कभी नहीं बोलने चाहिये। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में लिखा है—

यदिदं प्रमादयोगादसदभिधानं विधीयते किमपि।
तदनृतमपि विज्ञेयं तद्भेदाः सन्ति चत्वारः ॥ ९१ ॥
स्वक्षेत्रकालभावैः सदपि हि यस्मिन्निषिध्यते वस्तु।
तत्प्रथममसत्यं स्यान्नास्ति यथा देवदत्तोऽत्र ॥ ९२ ॥
असदपि हि वस्तुरूपं यत्र परक्षेत्रकालभावैस्तैः।
उद्भाव्यते द्वितीयं तदनृतमस्मिन् यथास्ति घटः ॥ ९३ ॥
वस्तु सदपि स्वरूपात्पररूपेणाभिधीयते यस्मिन्।
अनृतमिदं च तृतीयं विज्ञेयं गौरिति यथाऽश्वः ॥ ९४ ॥
गर्हितमवद्यसंयुतमप्रियमपि भवति वचनरूपं यत्।
सामान्येन त्रेधा मतमिदमनृतं तुरीयं तु ॥ ९५ ॥
पैशून्यहासगर्भं कर्कशमसमंजसं प्रलपितं च।
अन्यदपि यदुत्सूत्रं तत्सर्वं गर्हितं गदितम् ॥ ९६ ॥
छेदनभेदनमारणकर्षणवाणिज्यचौर्यवचनादि ।
तत्सावद्यं यस्मात्प्राणिवधाद्याः प्रवर्तते ॥ ९७ ॥
अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोककलहकरम्।
यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम् ॥ ९८ ॥

इसके सिवाय बारह प्रकारके वचन और हैं आगे उन्हींको बतलाते हैं। अभ्याख्यान, वाक्कल, पैशून्य, अबद्धप्रलाप, रागोत्पाद, अरति उत्पाद, वंचना प्रमाण, निःकृति वचन, अप्रणति वाक्, मोघ वचन, सम्यग्दर्शन वचन और मिथ्यादर्शन वचन। ये बारह प्रकार के भाषण हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार हैं--

दूसरेसे कहना कि हमारे यहाँ तो हिंसा किये बिना बनता ही नहीं परंपरासे अबतक यही रीति चली आ रही है देवताओंको बलिदान देना, यज्ञादि कार्योंमें बकरे भैंसे आदिकी हिंसा करना, शिकार खेलना आदि सनातनोंका कुल धर्म है इत्यादि हिंसारूपी वचन कहना अभ्याख्यान वचन हैं। १। कलहरूप वचन कहना वाक्कल है। २। दुष्ट बुद्धिके द्वारा दूसरेकी निंदा करनेवाले वचन कहना सो पैशून्यता है। ३। जिसका अंत न आवे ऐसे अप्रमाण वचन कहना अबद्ध प्रलाप है। पागल पुरुषके समान बकवाद करना वा ऐसा ही झूठ बोलना प्रलाप कहलाता है। ४। राग उत्पन्न करनेवाले वचन कहना रागोत्पादन वचन हैं। ५। दूसरेको द्वेष उत्पन्न करनेवाले वचन कहना अरतिकर वा अरति उत्पादन वचन कहलाते हैं। ६। असत्य वस्तुमें सत्यरूप विश्वास उत्पन्न करनेवाले वचन कहना वह वंचना प्रमाण है। ७। कपटरूप वचन कहना वह निकृति वचन है। ८। उच्च पदको धारण करनेवालेके लिये नमस्कार न करना तथा उसके अभावमें विनयके वचन न कहना सो अप्रणतिवाक् है। ९। जिन वचनोंको सुनकर कोई भी मनुष्य चोरी करने लग जाय ऐसे वचन कहना सो मोघभाषा है। १०। जिन वचनोंसे दूसरोंको सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो ऐसे वचन कहना सो सम्यग्दर्शन भाषा है। ११। जिन वचनोंसे मिथ्यात्व उत्पन्न हो ऐसे वचन कहना मिथ्यादर्शन वचन है। इसप्रकार वचनोंके बारह भेद हैं। इनमेंसे सत्याणुव्रतियोंको सम्यग्दर्शन भाषाके सिवाय बाकीके ग्यारह प्रकारके वचनोंका त्याग कर देना चाहिये।

अब दश प्रकार के सत्य वचनोंको कहते हैं। नाम सत्य, रूपसत्य, स्थापना सत्य, प्रतीतिसत्य, स्मृतिसत्य, योजनासत्य, जिनपदसत्य, उपदेशसत्य और समयसत्य। ये दश प्रकारके सत्य हैं। इनका विशेष स्वरूप लिखते हैं—

जिसका जो नाम है उसको उसी नामसे पुकारना नामसत्य है। जैसे किसी दरिद्रीका रंकका नाम लक्ष्मीधर हो सो उसको लक्ष्मीधर ही कहना नामसत्य है। १। किसीका रूप बनाकर उस नामसे कहना जैसे

किसीने नरकुंजरका चित्र बनाया और वह मारा गया तो यद्यपि उसमें साक्षात् जीव नहीं है तथापि उसको 'नरकुंजर मारा गया' ऐसा कहना रूपसत्य है। १। किसी विद्यमान अथवा अविद्यमान वस्तुको तदाकार अथवा अतदाकार मूर्ति बनाकर उसमें उसीकी स्थापना करना, उसकी मूर्ति बनाकर मंदिरोंमें स्थापना करना जैसे श्रीऋषभदेवकी मूर्तिको ऋषभदेव ही कहना सो स्थापना सत्य है।

जीवके औपशमिकादि भावोंके पांच भेद हैं तथा उन पांचों भावोंके तिरेपन भेद हैं। इन सबके [illegible] अनुसार व्याख्यान करना सो प्रतीतिसत्य है। भेरी, मृदंग आदि अनेक प्रकारके बाजोंके समुदायमेंसे किसी ऊँचे बाजेके शब्दकी मुख्यता रखकर उसका ही नाम लेना सो स्मृति सत्य है। युद्धमें जो सेनाकी चक्रव्यूह, गरुडव्यूह आदि अनेक प्रकारके व्यूहोंकी रचना की जाती है उनके अनुसार सेनाको चक्रव्यूहरूप, गरुडव्यूहरूप कहना सो योजना सत्य है। जिस देशमें जिस वस्तुका जो नाम है उसको उसी नामसे कहना जनपद सत्य है। गांव, नगर, राज वा धर्मकी नीतिमें और आचार्य व साधु आदिके उपदेश में जो चतुर पुरुष हैं उनके वचनोंको यथायोग्य स्थान पर तथा यथायोग्य समयपर प्रमाण मानना सो उपदेश सत्य है। द्रव्य और पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान सर्वज्ञ देवको है, अल्पज्ञानी छद्मस्थोंको उनका पूर्ण ज्ञान नहीं है। छद्मस्थोंको उनका एकदेश ज्ञान है इसलिए प्रासुक अप्रासुक आदिका निश्चय केवली भगवानके वचनोंके अनुसार करना सो भाव सत्य है। षद्द्रव्य तथा नौ पदार्थोंके स्वभाव और पर्यायको कहनेवाले जैनशास्त्र हैं इसलिये उनके वचनों-को सत्य मानकर उनका श्रद्धान करना सो समय सत्य वा आगम सत्य है। इसप्रकार दश प्रकारको सत्य भाषा है। सत्याणुव्रतियोंको इनका ग्रहण करना चाहिये। यह बारह प्रकार का असत्य और दश प्रकारके सत्यका व्याख्यान बृहद् हरिवंशपुराणसे लिखा है अथवा और भी जैनशास्त्रोंमें हैं वहांसे देख लेना चाहिये।

८७–चर्चा सत्तासीवीं

प्रश्न—ब्रह्मचर्य व्रतकी नौ बाड हैं तथा अठारह हजार भेद हैं सो कौन-कौन हैं ?

समाधान—स्त्रीके साथ निवास नहीं करना। १। स्त्रीके रूप तथा शृंगारको विकार भावोंसे नहीं देखना।२। स्त्रियोंसे भाषण नहीं करना तथा उनके मधुर वचनोंको रागभावोंसे नहीं सुनना।३। पहले भोगी हुई स्त्रियोंका स्मरण नहीं करना।४। कामको उद्दीपन करनेवाले पदार्थ जैसे घी, दूध, मिष्ठो, लड्डू, मेवा, भांग,

विष, उपविष, मादक (नशा उत्पन्न करने वाले) और पौष्टिक पदार्थ पारा आदि धातु, उपधातु, सोने, चाँदी, मोती आदिकी भस्म, रस, रसायन, बलवान और वीर्य बढ़ानेवाली औषधियाँ तथा अन्य प्रकारके गरिष्ठ भोजन नहीं करना। ५। स्त्रियोंके शृंगार संबंधी शास्त्रोंको न पढ़ना न सुनना। ६। स्त्रियोंके आसनपर नहीं बैठना तथा उनकी शय्यापर नहीं सोना। ७। कामकथा न कहना न सुनना। ८। भोजन पान आदिके द्वारा पेटको पूरा नहीं भरना।९। इस प्रकार ब्रह्मचर्यकी नौ बाड हैं सो ये सब ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये हैं। जिस प्रकार चावल, गेहूँ आदि अन्नोंके खेतोंमें उनकी रक्षाके लिये चारों ओर काँटोंकी बाड लगा देते हैं उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की रक्षाके लिये ये ऊपर लिखी नौ बाड हैं। जिस प्रकार बिना बाडके खेत नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार इन नौ बाडोंके बिना शीलका भंग हो जाता है।

अब आगे अठारह हजार शीलोंके भेदोंको लिखते हैं। चैतन्य रूप स्त्रियोंके ३ भेद हैं मनुष्यणी, देवांगना और तिर्यंचनी। तथा अचेतन स्त्रीका एक भेद है काठ, पत्थरकी तथा चित्रामकी किसी स्त्रीका रूप बनाना अचेतन स्त्री है। इस प्रकार स्त्रियोंके चार भेद होते हैं। इनका त्याग मन, वचन, कायसे तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे किया जाता है सो स्त्रियोंके ४ भेदोंको मन, वचन, कायकी ३ संख्यासे गुणा करनेसे १२ भेद होते हैं और इन बारहको कृत, कारित, अनुमोदनाकी ३ संख्यासे गुणा करनेसे ३६ भेद होते हैं। ये छत्तीसों प्रकारके भेद पाँचों इंद्रियोंसे त्याग किये जाते हैं इसलिये स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन इन्द्रियोंको ५ संख्यासे गुणा करनेसे १८० भेद हो जाते हैं। इन १८० भेदोंको दश प्रकारके संस्कारोंसे त्याग किया जाता है इसलिये १८० को १० से गुणा कर देनेसे १८०० भेद हो जाते हैं। उन १० संस्कारोंके नाम ये हैं। स्नान उबटन आदि लगाना, शृंगार करना, राग बढ़ाने वाले कार्य करना, हँसी विनोद आदि रूपसे क्रीड़ा करना, संगीत वाद्य (गाना बजाना) विषय सेवनका संकल्प करना, दर्पणमें मुख देखना, शरीरकी शोभा बढ़ाना, पहले भोगी हुई स्त्रियोंका स्मरण करना और मनमें चिंताकी प्रवृत्ति करना। ये दश संस्कार कहे जाते हैं। तथा इन १८०० भेदोंका त्याग कामके दश प्रकारके वेगोंसे भी किया जाता है इसलिये १८०० को १० से गुणा कर देनेसे १८००० भेद हो जाते हैं। कामके १० वेग ये हैं। स्त्रीके मिलनेकी चिंता होना।१। स्त्रीके देखनेकी इच्छा होना।२। दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना (लम्बी सांस लेना)। ३। उन्मत्त हो जाना।४। अपने प्राणोंमें भी संदेह

करना ।५। वीर्यपात हो जाना ।६। दुःख वा पीड़ा होना ।७। कामज्वर वा दाह होना ।८। अन्नमें अरुचि होना ।९। और मूर्च्छा आना । १० । ये दश कामके वेग कहलाते हैं । इनसे गुणा कर देनेसे १८००० भेद हो जाते हैं ।

इसके सिवाय इस शीलके और प्रकारसे भी १८००० भेद हो जाते हैं जिनसे शीलांग रथ बन जाता है । उन्हींको आगे लिखते हैं । रत्नाकरमें लिखा है—

जेणो करंति मणसा णिज्जिय आहार सण्णि सो इंदी ।
पुढवीकायारंभा खंति जुआ ते मुणी वंदे ॥

अर्थात् मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना, चार संज्ञा, पांच इंद्रियां, पृथ्वीकाय आदि दश प्रकारके जीवोंके आरम्भ और उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारके धर्म, इनसे परस्पर गुणा करनेसे १८००० भेद हो जाते हैं इन १८००० भेदोंसे बने हुए शीलरूपी रथको चलानेवाले महामुनिराज होते हैं इसलिये ऐसे मुनिराजको हम नमस्कार करते हैं ।

अब आगे शीलांग रथकी रचनाका यंत्र लिखते हैं—

शीलके १८००० भेद जो पहले प्रकारसे बतलाये हैं उनके नष्ट तथा उद्दिष्ट द्वारा प्रत्येक भेदके निकालनेका यंत्र।

मन त्याग ६०००	वचन त्याग ६०००	काय त्याग ६०००							
कृत त्याग २०००	कारित त्याग २०००	अनुमत त्याग २०००							
आहार त्याग ५००	भय त्याग ५००	मैथुन त्याग १००	परिग्रह त्याग ५००						
श्रोत्रइन्द्रिय त्याग १००	चक्षुइन्द्रिय त्याग १००	घ्राणेंद्रिय त्याग १००	रसनेंद्रिय त्याग १००	स्पर्शनेंद्रिय त्याग १००					
पृथ्वीकाया-रंभ त्याग १०	अपकायारंभ त्याग १०	तेजस्काया-रंभ त्याग १०	वायुकायारंभ त्याग १०	वनस्पतिका-यारंभ त्याग १०	बेइंद्रियारंभ त्याग १०	तेइन्द्रियारंभ त्याग १०	चतुरिन्द्रिया रंभत्याग १०	असंज्ञी पंचेंद्रि-यारंभ त्याग १०	संज्ञीपंचेंद्रि-यारंभ त्याग १०
उत्तम क्षमा १	उत्तम मार्दव १	उत्तम आर्जव १	उत्तम शौच १	उत्तमसत्य १	उत्तमसंयम १	उत्तम तप १	उत्तम त्याग १	उत्तम आकिंचन्य १	उत्तमब्रह्मचर्य १

शीलके १८००० भेदोंमेंसे नष्ट तथा उद्दिष्ट द्वारा प्रत्येक भेदके निकालनेका यंत्र ।

कृत १	कारित २	अनुमोदना ३
मन ०	वचन ३	काय ६
आहार ०	भय ९	मैथुन १८	परिग्रह २७
स्पर्शन ०	रसना ३६	घ्राण ७२	चक्षु १०८	श्रोत्र १४४
पृथ्वीकाय ०	अप्काय १८०	तेजस्काय ३६०	वायुकाय ५४०	वनस्पति काय ७२०	बेइन्द्रिय ९००	तेइन्द्रिय १०८०	चौइन्द्रिय १२६०	असंज्ञी पंचेंद्रिय १४४०	संज्ञी पंचेंद्रिय १६२०
क्षमा ०	मार्दव १८००	आर्जव ३६००	शौच ५४००	सत्य ७२००	संयम ९०००	तप १०८००	त्याग १२६००	आकिंचन १४४००	ब्रह्मचर्य १६२००

तिर्यंचिनी १	मनुष्यणी २	देवांगना ३	अचेतन ४	चार प्रकारकी स्त्रियाँ ।
मन १	वचन ४	काय ८		योगोंसे त्याग ।
कृत ०	कारित ४	अनुमोदना २४		कृत, कारित, अनुमोदनासे ।
स्पर्शन ०	रसना ३६	घ्राण ७२	चक्षु १०८	श्रोत्र १४४	इंद्रियोंसे ।
आ० ०	भ० १८०	मै० ३६०	हिं० ५४०	परि० ७२०	१० संज्ञा
क्षे० ०	उ० १८०	ज० ३६०	स्था० ५४०	त्र० ७२०	१० स्थावर
हा० ०	लो० १८०	दे० ३६०	गु० ५४०	अ० ७२०	१० विनय
भ० ०	जु० १८०	हा० ३६०	भ० ५४०	नि० ७२०	१० निदान
जु० ०	मै० १८०	प्र० ३६०	नि० ५४०	मा० ७२०	१० माया
नि० ०	मा० १८०	लो० ३६०	मा० ५४०	लो० ७२०	१० लोभ
भ० ०	आ० १८०	मै० ३६०	आ० ५४०	मै० ७२०	१० आहार
मै० ०	प० १८०	मै० ३६०	प० ५४०	मै० ७२०	१० परिग्रह
मै० ०	मै० १८०	मै० ३६०	मै० ५४०	मै० ७२०	१० मैथुन
मै० ०	मै० १८०	मै० ३६०	मै० ५४०	मै० ७२०	१० मैथुन
स्ना० ०	स्पृ० १८०	राग० ३६०	हँसी ५४०	संगीत ७२०	विषय ९००	दर्पण १०८०	शो० १२६०	स्म० १४४०	चि० १६२०	१० संस्कार
विलाप ०	देखना १८००	सौंस ३६००	उन्मत्त ५४००	प्राणसंदेह ७२००	वीर्यपात ९०००	वृक्ष १०८००	दाह १२६००	अरुचि १४४००	मूर्च्छा १६२००	१० वेग

इस प्रकार शीलांग रथकी रचनाका यंत्र जानना आगे इसीको स्पष्ट करनेके लिये शीलके १८००० भेद लिखते हैं। किसी स्त्रीका त्याग मन, वचन, कायसे तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे किया जाता है। सो इनको परस्पर गुणा करनेसे नौ भेद होते हैं। तथा चारों संज्ञाओंसे त्याग किया जाता है सो चारसे गुणा करनेसे ३६ भेद होते हैं। तथा इन छत्तीसोंका पाँचों इंद्रियोंसे त्याग किया जाता है सो इनको पाँचसे गुणा करनेसे १८० भेद होते हैं। तथा इन १८० का त्याग पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय, असंज्ञी पंचेंद्रिय, संज्ञी पंचेंद्रिय इन दश प्रकारके जीवोंके आरम्भसे

किया जाता है इसलिए १८० को १० से गुणा करनेसे १८०० भेद होते हैं। तथा इन सबका त्याग उत्तम-क्षमा आदि दश धर्मोंके साथ-साथ धारण किया जाता है। इसलिए १८०० को १० से गुणा करनेसे १८००० भेद हो जाते हैं।

इनके सिवाय और प्रकारसे भी १८००० भेद होते हैं। अचेतन स्त्रियाँ तीन प्रकार हैं काठकी बनी, पत्थरकी बनी और रंगकी बनी। इनका त्याग मन, वचनसे किया जाता है तथा कृतकारित अनुमोदनासे किया जाता है। सो तीनको मन, वचनसे गुणा करनेसे ६ तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे गुणा करनेसे १८ भेद होते हैं। इनका त्याग पाँचों इंद्रियोंसे किया जाता है सो ५ से गुणा करनेसे ९० भेद हो जाते हैं। इन ९० का त्याग दोनों द्रव्य-भावेंद्रियसे किया जाता है सो २ से गुणा करनेसे १८० भेद होते हैं। इन १८० का त्याग चारों कषायोंसे किया जाता है इसलिये ४ से गुणा करनेसे ७२० भेद हो जाते हैं। ये अचेतन स्त्रियोंके त्यागके भेद हुए। तथा चेतन स्त्रियाँ ३ प्रकार हैं मनुष्यणी, देवी, तिर्यंचनी। इनका त्याग मन, वचन, कायसे तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे इन ९ से किया जाता है इसलिये ९ से गुणा करनेसे २७ भेद होते हैं। इनको पाँच द्रव्येंद्रिय और पाँच भावेंद्रियसे त्याग किया जाता है इसलिये १० से गुणा करनेसे २७० भेद होते हैं। इनका त्याग चार संज्ञाओंसे किया जाता है सो ४ से गुणा करनेसे १०८० भेद होते हैं। इनका त्याग १६ कषायोंसे किया जाता है इसलिये १६ से गुणा करनेसे १७२८० सत्रह हजार दो सौ अस्सी भेद होते हैं। ये चेतन स्त्रियोंके त्यागके भेद हैं इनमें अचेतन स्त्रियोंके त्यागके ७२० भेद मिलानेसे १८००० भेद हो जाते हैं।

ये सब भेद स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकासे लिखे हैं तथा एक ही कथनको दो बार लिखा है सो खुलासा करनेके लिये लिखा है।

८८-चर्चा अठासीवीं

प्रश्न—शीलकी नौ वाडमें भांग पीनेका भी निषेध लिखा है सो भांग पीनेमें क्या दोष है?

समाधान—इस भांग वा विजयाके पीनेसे अथवा किसी अन्य प्रकार सेवन करनेसे मद्य पीनेके समान १८ दोष साक्षात् उत्पन्न होते हैं आगे उन्हीं दोषोंको लिखते हैं। भांग पीनेसे नींद अधिक आती है।१। हँसी अधिक आती है।२। वचनकी प्रवृत्ति अधिक होती है।३। चंचलता बढ़ जाती है।४। मूर्च्छा हो जाती है।५। बहुत

बकने लगता है ।६। मोह ।७। मद ।८। प्रमाद ।९। कलह ।१०। स्नेह बढ़ जाता है ।११। परिणामोंमें भ्रम हो जाता है ।१२। घूमनेकी प्रवृत्ति हो जाती है ।१३। मौन धारण कर लेता है ।१४। विचार नष्ट हो जाता है ।१५। व्याकुलता बढ़ जाती है ।१६। प्रसंग वा अधिक विषय सेवनकी इच्छा हो जाती है ।१७। और कामवासना बढ़ जाती है। इस प्रकार भांग पीनेसे १८ दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये ऐसा कौन विचारशील है जो इसका सेवन करे ? भावार्थ—विचारशील तो इसका सेवन नहीं करते, अज्ञानी और मूर्ख ही इसका सेवन करते हैं। सो ही रत्नाकरमें लिखा है—

निद्राहास्यचलोगतिश्चपलता मूर्च्छा महाजल्पनं,
व्यामोहः प्रमदः प्रमादकलहस्नेहाः विचारे भ्रमः।
धूर्मो मौनविचारहानिविकलप्रासंगकामातुरं,
भृंगी चाष्टदशप्रदोषजननी कैः पंडितैः सेव्यते ॥ ५५ ॥

इसलिये मूर्ख लोग ही इसका सेवन करते हैं।

आगे भांग पीनेवालोंकी जो दशा होती है उसे एक उदाहरण देकर दिखलाते हैं। एक भांग पीनेवाला पुरुष किसी भांगके अखाडेमें भांग लेकर गया। वहां एक शिलापर भांग पीसकर छानकर पी और फिर उस शिलाको मस्तकके नीचे रखकर किसी छाया में सो गया। थोड़ी देर बाद ही वहाँपर दूसरा भांग पीनेवाला आया। उसको वहाँ पर वह पीसनेकी शिला दिखाई नहीं दी, तलाश करने पर उस सोनेवालेके मस्तकके नीचे मिली। तब उसने उसके मस्तकके नीचे धीरेसे एक पत्थर रख दिया और वह शिला निकाल ली। तथा अपनी भांग पीस छान पीकर वह कहीं बाहर चला गया। तदनंतर उस सोनेवालेकी आँख खुली तब वह उस भांगके नशेमें ही सोचने लगा कि मैं तो पहले शिलावाला था, पाषाणवाला तो मैं नहीं था। इससे मालूम होता है कि मैं बदल गया जो पहले था सो नहीं रहा। मैं और ही हो गया। और पत्थरवाला मैं हूँ नहीं। ऐसा विचारकर वह अखाड़ेके लोगोंसे पूछने लगा कि "हे मित्रो ! मैं जो पहले था वही हूँ या बदलकर और हो गया हूँ। मैं तो पाषाणवाला नहीं था शिलावाला था परन्तु अब पत्थरवाला हो गया सो मैं बदल हो गया। पहलेवाला नहीं रहा" इस प्रकार वह बार-बार बकने लगा। तब लोगोंने उसे समझाया कि तू पहलेका ही

है बदला नहीं है परन्तु उसने माना ही नहीं। वह बराबर बकता ही रहा तथा लोग भी भांगके नशेमें वैसे ही बन गये और तू पहला ही है पहला ही है इस प्रकार बार-बार बकने लगे। तदनंतर कुछ समय बाद उसे विचार उठा कि "ये झूठे हैं मैं किसीको नहीं मानता। मैं तो अब घर जाकर अपनी स्त्रीसे पूछूँगा वह जरूर पहिचान लेगी।" यह सोचकर वह घर चला। घर जाते समय मार्गमें सभी बातको सब लोगोंसे पूछते-पूछते थक गया। लोगोंने पहले तो उससे सच बात कही परन्तु पीछे उसे पागल समझकर उन्होंने हँसी करनेके लिए बहुत-सी झूठी बातें कहीं। उन सबको सुनता हुआ अनेक स्त्री, पुरुष और बच्चोंके साथ वह घर पहुँचा अपनी कन्याका नाम लेकर स्त्रीसे पूछा कि "हे फलानेकी माँ! तू मुझे पहिचान और सच कह कि मैं वही तेरी पुत्री-का पिता हूँ या और हूँ। मैं तो शिलावाला था पत्थरवाला कैसे हो गया। मैं पहले तो पत्थरवाला नहीं था। तू सच कह" इस प्रकार वह सबको देख देखकर बकने लगा तब वह स्त्री बोली कि तुम मेरी कन्याके पिता हो और मेरे तुम स्वामी हो। तुमको ऐसे वचन नहीं कहने चाहिये, लोग सब हँसते हैं। इसलिए सावधान होकर बैठो। परन्तु फिर भी वह बहुत देरतक बकता ही रहा, अपनी स्त्रीके वचन भी उसने नहीं माने। तब स्त्रीने उसके पास बैठकर उसे विश्वास दिलाया और हाथ जोड़कर नमस्कार कर अमृत रूपी वचनोंसे कहा कि "यदि मैं झूठ कहूं तो मेरी कन्याकी सौगंध है। तुम वे ही हो, और नहीं हो।" स्त्रीके ये वचन सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ, स्त्रीके गलेसे लग गया और हृदयसे हृदय मिलाकर बोला कि "हे माता! तूने खूब पहि-चाना" पतिकी यह बात सुनकर वह स्त्री बड़ी लज्जित हुई और कहने लगी कि "अलग हटो, मद्य पीनेवाले पुरुषके समान क्या बक रहे हो, दूर रहो।" अपनी स्त्रीकी यह बात सुनकर वह भांग पीनेवाला पुरुष कहने लगा कि "हे माता! अबकी बार तू फिर कुछ कहेगी तो मैं तुझे अपनी दादी कहूँगा" जब वह इस प्रकार बकने लगा तब सब लोग उसके जन्ममें धूल डालते हुए उठ गये। इस प्रकार भांग पीनेवालेकी कथा लोकवार्ता-में है और सुनकर लिखी गई है तथा पहले कहे हुए अठारह दोषोंसे भी मिलती है इसलिए लिखी है। ऐसा समझकर समझदार लोगोंको इसका त्याग कर देना ही उचित है।

जो अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं, दुष्ट हैं, दुर्बुद्धि हैं, कामी हैं, हीनाचारी हैं वा नीच जातिके हैं वे ही भांग पिया करते हैं। इसके सिवाय बरसातके दिनोंमें तथा जाड़ेके दिनोंमें उसमें अनेक सूक्ष्म त्रस जीव उत्पन्न हो

जाते हैं। परन्तु पीनेवाले प्रभावी पुरुष उसे अग्निमें गर्म कर धोकर पीसकर पीते हैं फिर भला उनके पापोंका क्या ठिकाना है ?

इसके सिवाय द्राक्षासव, लोहासव आदि अनेक प्रकारका आसव निकलवा कर लोग पिया करते हैं सो वह भी मद्यके ही समान है क्योंकि अनन्त निगोद जीवोंका तथा असंख्यात त्रस जीवोंका घात होनेपर आसव तैयार होता है और उसे लोग पी जाते हैं। वैद्यक शास्त्रोंके अनुसार इसके बनानेमें भी मद्यके समान ही भारी हिंसा होती है। इसका केवल नाम ही दूसरा है बाकी गुण सब मद्यके हैं। इसलिये बुद्धिमानोंको इसका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। तथा जिन्हें नरक, निगोद आदि दुर्गतियोंमें जाना है वे पीते हो हैं।

इसके सिवाय हुक्का, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदिकोंका पीना भी महा हिंसाका कारण है। भ्रष्टाचारका फैलानेवाला, उच्छिष्टपान करानेवाला और निगोदका घर है इसलिये जैनकुलवालोंको तो इसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये क्योंकि इसके पीनेवाले जैनी नहीं रह सकते उन्हें अकुलीन ही समझना चाहिये।

८६-चर्चा नवासीवीं

प्रश्न—लोग कहते हैं कि संसारी जीव आयु पूर्ण कर पौने दो घड़ीमें जाकर पुद्गलको ग्रहण करनेरूप आहारको ग्रहण करते हैं सो क्या ठीक है ?

समाधान—यह कहना असत्य है शास्त्रोक्त नहीं है। क्योंकि पूर्व शरीरको छोड़कर नवीन गतिके नवीन शरीरको ग्रहण करनेके लिये मार्गमें अधिकसे अधिक तीन समय तक यह जीव अनाहारक रहता है। अधिकसे अधिक चौथे समयमें नवीन पुद्गलोंको अवश्य ग्रहण कर लेता है। वही आहार है सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः। —अध्याय २ सूत्र सं० ३०

आहार ग्रहण करनेके बाद फिर अन्य यथायोग्य पर्याप्तियोंको क्रमसे धारण करता है। आहार पर्याप्तिके बाद शरीर पर्याप्तिको धारण करता है।

तीन हजार सात सौ तिहत्तरि श्वासोच्छ्वासको दो घड़ियाँ वा एक मुहूर्त होता है तीन हजार छः सौ पिचासी श्वासोच्छ्वासका एक अंतर्मुहूर्त होता है। तथा पौने दो घड़ीके तीन हजार तीन सौ तथा एक

श्वासके सोलह भागोंमेंसे छह भाग ३३००½ श्वासोच्छ्वास होते हैं। यदि एक श्वासके कुछ अधिक करोड़ों भाग करनेसे जो एक भाग आता है उसको आवली कहते हैं और एक आवलीमें असंख्यात समय होते हैं। ऐसे तीन समय तक अधिकसे अधिक विग्रहगतिमें यह जीव अनाहारक रहता है। इसलिये पौने दो घड़ीमें आहार लेता है यह बात सर्वथा मिथ्या है। अतएव ऐसा श्रद्धान कभी नहीं करना चाहिये। जो शास्त्रोंमें लिखा है उसीके अनुसार श्रद्धान करना चाहिये।

९०–चर्चा नब्बेवीं

प्रश्न—ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावकके दो भेद हैं–क्षुल्लक और ऐलक। इनमेंसे क्षुल्लक तो बैठकर पात्रमें रक्खे हुए भोजनको अपने हाथसे गस्सा उठाकर भोजन करता ही है परंतु ऐलक श्रावक किस प्रकार भोजन करता है वा उसे किस प्रकार भोजन करनेका अधिकार है ?

समाधान—ऐलक श्रावक भी बैठकर पात्रमें रक्खे हुये भोजन पानादिकको ग्रहण करता है। अन्तर केवल इतना है कि क्षुल्लक अपने हाथसे ही उठाकर ग्रहण करता है और ऐलक दूसरेके हाथके द्वारा अपने हाथमें रक्खे हुए भोजनको ग्रहण करता है परन्तु वह बैठकर ही ग्रहण करता है। मुनिराजके समान खड़े होकर भोजन नहीं लेता ऐसा सिद्धांत है। यथा—

कोपीनोऽसौ रात्रिप्रतिमायोगं करोति नियमेन।
लोचं पिच्छं धृत्वा भुंक्ते ह्युपविश्य पाणिपुटे ॥ २९ ॥

इसी प्रकार धर्मोपदेश पीयूषवर्षाकर नामके श्रावकाचारमें लिखा है—

यः कोपीन धरोरात्रिप्रतिमायोगमुत्तमम्। करोति नियमेनोच्चैः सदासौ धीरमानसः ॥२२॥
लोचं पिच्छं च संधत्ते भुंक्तेऽसौ चोपविश्य वै।
पाणिपात्रेण पूतात्मा ब्रह्मचारी स चोत्तमः ॥ २३ ॥

९१ चर्चा इक्यानवेवीं

प्रश्न—इस मध्यलोकमें लवणोदधि आदि असंख्यात समुद्र हैं उनमेंसे लवणोदधि, कालोदधि और

अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रमें तो जलचर जीवोंका सद्भाव है ही परन्तु बाकीके समुद्रोंमें जलचर जीवोंका निवास है वा नहीं ?

समाधान—ऊपर लिखे हुए तीन समुद्रोंके सिवाय बाकी जो पुष्कर आदि असंख्यात समुद्र हैं उनमें अपकायिक जीव तो हैं परन्तु मगरमच्छ आदि जलचर त्रस जीवोंका सद्भाव उनमें सर्वथा नहीं है। उनमें जलचर जीवोंका सर्वथा अभाव है सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

लवणोए कालोए अंतिम जलहिम्मि जलयरा संति ।
सेस समुद्दसु पुणो ण जलयरा संति णियमेण ॥ १४४ ॥

यही बात मूलाचारके बारहवें अधिकारमें लिखी है—

लवणे कालसमुद्दे सयंभूरमणे य होंति मच्छा दु ।
अवसेसेसु समुद्दसु णत्थि मच्छाय मयरा वा ॥ ४० ॥

इसी प्रकार त्रिलोकसार आदि अन्य ग्रन्थमें भी यह कथन इसी प्रकार लिखा है।

९२—चर्चा बानवेवीं

प्रश्न—यह जीव संसारमें एक अन्तर्मुहूर्तमें भवके उत्कृष्ट जन्म मरण कितने करता है ?

समाधान—यह संसारी आत्मा कमसे कम एक श्वासके अठारहवें भाग आयु पाता है तथा अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे एकेन्द्रियादि सत्रह स्थानोंमें एक अन्तर्मुहूर्त समयमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस ६६३३६ बार जन्म मरण करता है सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

उस्सासट्ठारसमे भागे जो मरदि ण य समाणेदि ।
एका वि य पज्जत्ती लद्धि अपुण्णो हवे सो दु ॥ १३७ ॥

सो ही गोम्मटसारमें लिखा है—

तिण्णिसया छत्तीसा छवट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि ।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२३ ॥

इसका विशेष स्वरूप इस प्रकार है—बो इन्द्रियके भव ८० तेइन्द्रियके ६० चौ इन्द्रियके ४० पंचेन्द्रियके २४। इन पंचेन्द्रियके २४ भवोंमें भी तीन भाग हैं। तहाँ मनुष्योंमें लब्ध्यपर्याप्तकके भव ८, संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके भव ८ तथा असंज्ञी पंचेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके भव ८ इस प्रकार त्रस जीवोंके सब मिलाकर २०४ जन्म मरण होते हैं तथा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पति कायिक इन पाँचोंके स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे दस भेद होते हैं। तथा प्रत्येक वनस्पतिका एक स्थूल ही भेद होता है। इसके दो भेद नहीं होते। ये सब ग्यारह भेद होते हैं इनमें प्रत्येकके छह हजार बारह जन्म मरण होते हैं इसलिये ग्यारह प्रकारके स्थावर जीवोंके जन्म मरणके छयासठ हजार एक सौ बत्तीस ६६१३२ जन्म मरण होते हैं। इनमें पहले त्रस जीवोंके छह स्थानोंके २०४ जन्म मरण मिला देनेसे सब मिल कर ६६३३६ भेद हो जाते हैं। ये सब संसारी जीवोंके क्षुद्रभव हैं। सो ही गोमट्टसारमें लिखा है—

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे। छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे॥
पुढविदगागणिमारुद साहारणथूलसुहमपत्तेया। एदेसु अपुण्णेया एक्केक्के बार खं छक्कं॥

इस प्रकार एक श्वासके अठारहवें भाग आयुके प्रमाणसे एक अन्तर्मुहूर्तमें सत्रह स्थानोंमें यह संसारी जीव मिथ्यात्वके उदयसे सर्वोत्कृष्ट क्षुद्रभव ६६३३६ धारण करता है।

९३—चर्चा तिरानवेवीं

प्रश्न—चौबीस तीर्थंकरोंमेंसे ऐसे कौन-कौनसे तीर्थंकर हैं जिनका विवाह नहीं हुआ है।

भावार्थ—जो बालब्रह्मचारी हैं, विवाह किये बिना ही कुमारावस्थामें दीक्षा धारण कर तपोवनमें चले गये ऐसे तीर्थंकर कौन-कौन हैं?

समाधान—श्रीवृषभदेवसे लेकर श्रीवर्द्धमान पर्यंत चौबीस तीर्थंकरोंमेंसे वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमारकालमें ही जिनदीक्षा धारण कर महातपस्वी हुए हैं सो ही लिखा है—

वासुपूज्यस्तथा मल्लिर्नेमिः पार्श्वोऽथ सन्मतिः। कुमाराः पंच निष्क्रांताः पृथिवीपतयः परे॥

इनके सिवाय बाकीके उन्नीस तीर्थंकर विवाह कर निर्ग्रन्थ हुए हैं। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

तिहयणपहाणसामिं कुमारकाले वि तविय तवचरणं।
वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरमतियं संथुवे णिच्चं॥ ४८६॥

इस प्रकार श्री वासुपूज्य कुमार को बालब्रह्मचारी समझना चाहिये।

६४-चर्चा चौरानवेवीं

प्रश्न—लवणोदधि, कालोदधि और अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रके जलका स्वाद तो खारा या जलके समान मालूम है परन्तु बाकीके असंख्यात समुद्रोंके जलका स्वाद कैसा है?

समाधान—ऊपर कहे हुए तीन समुद्रोंके सिवाय बाकीके असंख्यात समुद्रोंके जलका स्वाद ईखके रसके समान मीठा और स्वादिष्ट है।

प्रश्न—ईखके रसके समान मीठा जल तो इक्षुवर समुद्रका है परन्तु यहांपर सब समुद्रोंका जल ऐसा मीठा कैसे कहा? तथा क्षीरोदधि समुद्रका जल तथा घृतोदधि समुद्रका जल जुदी-जुदी तरहका बतलाया है इसलिये सबका एकसा स्वाद कैसे कहा?

समाधान—क्षीरोदधि तथा घृतोदधि आदि समुद्रोंके जलका स्वाद नहीं बतलाया है किन्तु उसका वर्ण बतलाया है। स्वाद तो सबका ही ईखके समान मीठा है। सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है—

लवणं वारुणितियमिदिकालदुगंतिसयंभुरमणमिदि।
पत्तेय जलसुवादा अवसेसा होंति इच्छुरसा॥ ३१६॥

यही बात मूलाचारके बारहवें अधिकारमें लिखी है—

पत्तेयरसा चत्तारि सायरा तिण्णि होंति उदयरसा।
अवसेसा य समुद्दा खोद्दरसा होंति णायव्वा॥ ३८॥

यहां पर क्षौद्र शब्दका अर्थ इक्षु वा ईखका है। सिद्धांतसार प्रदीपकमें भी लिखा है—

कालोदे पुष्कराम्भोधौ स्वयंभूरमणार्णवे। केवलं जलसुस्वादं जलौघं च भवेत्सदा॥
क्षीराब्धौ क्षीरसुस्वादु सद्रसांभो भवेन्महत्। घृतस्वादसमस्निग्धं जलं स्याद् घृतवारिधौ॥
एतेभ्यः सपूर्वाब्धिभ्यः परे संख्यातसागराः। भवंतीक्षुरसस्वादसमाना मधुराः शुभाः॥

९५–चर्चा पिचानवेवीं

प्रश्न—भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष्क ये तीन प्रकारके देव भवनत्रिक कहलाते हैं ये तीनों प्रकार के देव अपनी शक्तिके द्वारा ऊपर की ओर कहांतक गमन कर सकते हैं। तीर्थंकरोंके जन्माभिषेकके समय पांडुकशिलातक तो ये देव जाते ही हैं परन्तु इसके ऊपर जा सकते हैं या नहीं?

समाधान—ऊपर लिखे हुए ये तीनों प्रकारके देव अपनी इच्छासे सौधर्म स्वर्ग तक गमन कर सकते हैं। सौधर्म स्वर्गसे ऊपर वे अपनी इच्छासे गमन नहीं कर सकते। यदि स्वर्गोंके रहनेवाले देव इनको आकर ले जांय तो उनके ले जाये गये जा सकते हैं। परन्तु इस प्रकार ले जाये गये भी सोलहवें अच्युत स्वर्ग तक जा सकते हैं सो भी अपनी शक्तिसे नहीं। तथा सोलहवें स्वर्गसे आगे दूसरे देवोंके द्वारा ले जाने पर भी नहीं जा सकते। यह नियम है सो ही सिद्धांतसारदीपकमें चौदहवीं संधिमें लिखा है—

क्रियामात्रोवधिस्तेषामधोलोकेऽपि जायते।
भावना व्यंतरा ज्योतिष्का गच्छंति स्वयं क्वचित्॥ २०॥
तृतीयक्षितिपर्यंतमधोलोके स्वकार्यतः।
सौधर्मैशानकल्पांतमूर्ध्वलोके निजेच्छया॥ २१॥
तेपि सर्वे सुरैर्नीता भावनाद्यास्त्रयोऽमराः।
षोडशस्वर्गपर्यंतं प्रीत्या यांति सुखाप्तये॥ २२॥

देव लोग तीर्थंकरोंके जन्म समयमें आते हैं सो मुनिसुव्रतके जन्म समयमें जो चार प्रकारके देव आये थे उनमेंसे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क आदि सब देव पहले सौधर्म इंद्रके दरवाजे पर आकर इकट्ठे हुए थे

फिर वहाँसे सब मिलकर भगवानकी जन्मपुरीमें आये थे ऐसा सोमसेनकृत लघु पद्मपुराणके ग्यारहवें अधिकारमें लिखा है—

सेन्द्राश्च व्यंतराः सर्वे भवनवासिनस्तथा ।
ज्योतिषाः सपरिवारा नाना यानैश्च संयुताः ॥ २८ ॥
सौधर्मेन्द्रगृहे द्वारं संप्राप्ता विभवान्विताः ।
तथा षोडशस्वर्गस्थदेवास्तत्र समागताः ॥ २९ ॥

इस प्रकार वर्णन है । इससे भी सिद्ध होता है कि भवनत्रिक पहले स्वर्गतक जा सकते हैं ।

९६—चर्चा छ्यानवेवीं

प्रश्न—श्री वासुपूज्य तीर्थंकरकी मोक्ष चंपापुरीसे हुई है या राजनमालिका नदीके पास मंदारगिरि पर्वतसे हुई है ?

समाधान—श्री वासुपूज्य स्वामी चंपापुरी नगरीके बाहर मंदराचल पर्वतपर जो मनोहर नामका वन है वहाँसे मोक्ष पधारे हैं । जब उनकी आयु एक महीनेकी बाकी रह गई थी तब वे अपना योग निरोध कर पद्मासनसे विराजमान थे तथा अंतमें वहाँसे भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीकी संध्याके समय विशाखा नक्षत्रमें चौरानवें मुनियों सहित मोक्ष पधारे ऐसा श्रीगुणभद्राचार्यविरचित उत्तरपुराणमें (श्रीवासुपूज्यपुराणमें) लिखा है ।

स्थित्वात्र निष्क्रियो मासे नद्या राजनमालिका ।
संज्ञायाश्चित्तहारिण्याः पर्यंतावनिवर्तिनि ॥ ५१ ॥
अग्रमंदरशैलस्य सानुस्थानविभूषणे । वने मनोहरोद्याने पल्यंकासनमाश्रितः ॥५२॥
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्ने चतुर्दश्यापराह्णके । विशाखायां ययौ मुक्तिं चतुर्नवतिसंयतैः ॥५३॥

९७—चर्चा सतानवेवीं

प्रश्न—उत्कृष्ट, मध्यम तथा जघन्य पात्रके लिये दिये हुए दानका फल तथा कुपात्रके लिए दिये हुए

दानका फल तो प्रसिद्ध है प्रायः सबने सुना है। परंतु लोभी पुरुषके लिए दान देनेवालेकी कैसी शोभा होती है ?

समाधान—जो पुरुष लोभी पुरुषके लिये दान देता है उसकी शोभा आचार्य श्रीकुन्दकुन्द स्वामीने मृतक पुरुषके विमानके समान (विमानके आकारमें बनाई हुई अस्थीके समान) बतलाई है। जिस प्रकार मृतक पुरुषके विमानके आगे रुपये पैसे बखेरे जाते हैं बड़ी शोभा की जाती है, चांडाल आदि उसका यश भी गाते हैं और सब लोग उसकी शोभा बढ़ाते हैं परन्तु घरवाले मालिकके लिये तो वह दान (बखेर) और वह शोभा आदि सब छाती कूटने और सिर धुननेके लिये ही होती है तथा रुला-रुलाकर महा दुख उत्पन्न करती है ऐसी ही शोभा लोभी पुरुषको दान देने की है। इसलिये सत्पुरुषोंके लिए दिया हुआ दान तो कल्पवृक्षादिकके सुखोंको उत्पन्न करता है और लोभीके लिये दिया हुआ दान ऊपर लिखे अनुसार फल देता है। सो ही रयण-सारमें लिखा है—

सप्पुस्साणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहं वा।
लोहाणं दाणं जइ विमाणसोहा स जाणेह ॥ २४ ॥

९८-चर्चा अठानवेवीं

प्रश्न—दर्शन और ज्ञान तो जीवका लक्षण है परन्तु चारित्र किसका लक्षण है ?

समाधान—चारित्र भी जीवका निजधर्म है क्योंकि अपनी आत्माका निजाचरण रूप ही चारित्र है। समस्त जीवोंसे समान भाव होना, रागद्वेष रहित, अनिष्ट बुद्धिकर रहित भाव ही निश्चयचारित्र है। सो ही आत्माका निजधर्म है। इसलिये ज्ञानदर्शन और चारित्र ये तीनों ही आत्माके निजस्वरूप हैं सो ही षट्पाहुडके मोक्षप्राभृतमें लिखा है—

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रायरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ॥ ५० ॥

९९-चर्चा निन्यानवेवीं

प्रश्न—इस समय इस पांचवें कालमें रत्नत्रयको धारण करनेवाले मुनि अपने उत्कृष्ट भावोंसे स्वर्ग-लोकमें जाते हैं सो कौनसे स्वर्ग तक जा सकते हैं।

समाधान—पांचवें कालके भावलिंगी और रत्नत्रयको धारण करनेवाले मुनि इन्द्र पदवी पाते हैं तथा पांचवें ब्रह्मलोक स्वर्गमें लौकांतिक देवोंकी पदवी को पाते हैं तथा वहांसे आकर मनुष्य होकर मोक्ष जाते हैं इससे सिद्ध होता है कि पांचवें कालके मुनि पांचवें स्वर्गतक जाते हैं। सो ही मोक्षप्राभृतमें लिखा है—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाए वि लहइ इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥ ७७ ॥

इससे यह भी सिद्ध होता है कि पांचवें कालमें भी जीवोंकी ऐसी शक्ति होती है।

१००-चर्चा एकसौवीं

प्रश्न—मिथ्यादृष्टिके बाह्य चिह्न कौन-कौन हैं?

समाधान—मिथ्यादृष्टियोंके विशेष बाह्य चिह्न तो अन्य शास्त्रोंमें प्रायः सब जगह लिखे हैं। यहां केवल सामान्य रीतिसे लिखते हैं—जो देव भूख, प्यास आदि अठारह दोष सहित हैं वे कुत्सित देव कहलाते हैं। जिस धर्ममें हिंसा आदि अनेक पाप करने पड़ें उसे कुत्सित धर्म वा कुधर्म कहते हैं। जो परिग्रहसहित हों और अनेक पाप रूप आरम्भ करते हों ऐसे भेषी पाखंडियोंको कुगुरु कहते हैं। इस प्रकार कुदेव, कुधर्म और कुगुरुओंको जो पूजे, वंदना करे तथा लज्जा, भय, गौरव आदिके वश होकर भी इसकी पूजा वंदना करे सो प्रगट मिथ्यादृष्टि जीव हैं। भावार्थ—मिथ्यादृष्टियोंके ये बाह्य चिह्न हैं। "इन कुदेवादिकोंको सब लोग पूजते हैं। यदि हम न पूजेंगे तो लोग क्या कहेंगे" इस प्रकारकी लज्जासे पूजना अथवा सात प्रकारके भयसे पूजना अथवा हम सबसे ऊंची पदवीको धारण करनेवाले हैं हमको तो सबका आदर सत्कार करना चाहिये इत्यादि समझकर पूजना सो गौरवसे होनेवाली पूजा है। इस प्रकार कुदेवादिककी पूजा करना सो सब मिथ्यादृष्टिके बाह्य लक्षण हैं। सो ही मोक्षप्राभृतमें लिखा है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंग च वंदए जो दु ।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु ॥ ९२ ॥

१०१-चर्चा एकसौएकवीं

प्रश्न—सम्यग्दृष्टिके विशेष चिन्ह क्या हैं ?

समाधान—सम्यग्दृष्टिके भी विशेष चिह्न अन्य शास्त्रोंमें विस्तारसे लिखे हैं, यहाँ संक्षेपमें लिखते हैं। जो भूख, प्यास आदि अठारह दोषोंसे रहित वीतराग सर्वज्ञदेवका ही श्रद्धान करता है, हिंसादिक समस्त पापोंसे रहित श्रेष्ठ धर्मका श्रद्धान करता है, तथा सब तरहके परिग्रह और आरंभोंसे रहित निर्ग्रंथ गुरुका श्रद्धान करता है वही सम्यग्दृष्टी है। सो ही मोक्षप्राभृतमें लिखा है—

हिंसारहिये धम्मे अट्ठारहदोसविवज्जिए देवे। निग्गंथे पठवयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥९०॥

१०२-चर्चा एकसौ दोवीं

प्रश्न—भगवानके समवशरणमें जो मानस्तंभ आदि होते हैं उनकी ऊँचाई का प्रमाण किस प्रकार होता है ?

समाधान—समवशरणके मानस्तम्भ, ध्वजास्तम्भ, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, स्तूप, तोरण, कोट, गृह, वनवेदिका, वन, पर्वत आदि की ऊँचाई भगवान् तीर्थङ्करकी ऊँचाईसे बारह गुणी होती है। भावार्थ—भगवान्के शरीरकी जितनी ऊँचाई होती है उससे बारह गुणी ऊँचाई इन सबकी समझ लेना चाहिये। सो ही सकलकीर्ति विरचित आदिपुराणमें लिखा है।

मानस्तंभा ध्वजास्तंभा चैत्यसिद्धार्थपादपाः ।
स्तूपाः सतोरणाः गेहाः प्राकारा वनवेदिकाः ॥ १४ ॥
वनादयो बुधैः प्रोक्ता उत्सेधेन द्विषड्गुणाः । जिनांगोत्सेधतश्चैषां दैर्घ्यानुरूपविस्तरः ॥१५॥

पार्श्वपुराणमें भी लिखा है—

मानस्तंभाश्च प्राकाराः सिद्धार्थचैत्यपादपाः। सतोरणाः गृहाः स्तंभाः केतवो वनवेदिकाः ॥१७

प्रोक्तास्तीर्थंकरोत्सेधादुत्तुंगेन द्विषड्गुणाः ।

इस प्रकार जानना ।

१०३–चर्चा एकसौ तीसरी

प्रश्न—चतुर्गति निगोद दो प्रकार हैं, एक नित्यनिगोद और दूसरा इतरनिगोद । इन दोनों निगोदोंमें क्या अन्तर है ?

समाधान—जो अनादिकालसे एकेन्द्रिय कर्मके उदयसे सदा स्थावर गतिमें ही जन्म-मरण करते रहें तथा जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान किसी भी कालमें कभी भी दो इन्द्रिय आदि त्रस पर्याय धारण न करें । जिनकी स्थावर गतिका न आदि है न अन्त है, सदा अनन्तकायके आश्रित जन्म-मरण धारण करते रहें ऐसे जीवोंको नित्य निगोदिया जीव कहते हैं । इसीलिए इस गतिको नित्यगति अथवा शाश्वत गति ऐसा सार्थक नाम कहा है । तीव्र पाप कर्मके उदयसे अनन्तानन्त जीव इस नित्य निगोदमें सदा रहते हैं । सो ही सिद्धान्त-सारमें लिखा है—

त्रसत्वं न प्रपद्यंते कालेन त्रितयेऽपि ये । ज्ञेया नित्यनिगोदास्ते भूरिपापवशीकृताः ॥

श्रीगोम्मटसारमें भी लिखा है—

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति ॥ १९७ ॥

तथा जिससे निकल कर त्रसगतिको प्राप्त करे अथवा त्रसगति पाकर जिस निगोदमें जाय उसको इतरनिगोद कहते हैं । इस प्रकार निगोद दो प्रकारके हैं । निगोद शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार है । जो अपने शरीरके अङ्गरूपी क्षेत्रमें रहनेके लिये अनन्तानन्त जीवोंको जगह देवे उसको निगोद कहते हैं । नि-नियतं गां (गो शब्दका द्वितीयाका एकवचन) भूमिं क्षेत्रं अनन्तानन्तजीवानां द-ददातीति निगोदम् । निगोदं शरीरं येषां ते निगोदशरीराः । अर्थात्–नि का अर्थ नियत है गो शब्दका अर्थ क्षेत्र वा निवास स्थान है और द शब्दका अर्थ देना है । जो नियमसे अपने शरीरमें अनन्तानन्त जीवोंको उत्पन्न होनेके लिये क्षेत्र देवे उसको निगोद कहते हैं । ऐसे शरीरको निगोद शरीर कहते हैं ।

प्रश्न--कोई ऐसा कहते हैं कि इन्द्रादिक देव सुदर्शन नामके मेरुपर्वतकी पाण्डुका शिलापर जो तीर्थङ्कर भगवान्का जन्माभिषेक करते हैं सो चतुर्णिकायिक देव अभिषेकके गंधोदक जलको अपने नेत्रोंसे ललाटसे लगाते हैं और इस प्रकार लगाते हैं कि वह जल सब उठ जाता है बाकी बिल्कुल नहीं रहता। कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि थोड़ा-थोड़ा सबके हिस्सेमें आ जाता है और किसी-किसीके हाथ भी नहीं आता। इसलिये थोड़ा-सा गन्धोदक लेकर मस्तकसे लगा लेना चाहिये और फिर हाथ धो डालना चाहिये। क्योंकि यदि गन्धोदकके हाथ किसी बुरे पदार्थसे अथवा पाँव आदिसे लग जावें तो बड़ी अविनय होगी। इसलिये गन्धोदक लगाकर हाथ धो डालना अच्छा है। ऐसा ही उपदेश दूसरोंको दिया करते हैं सो क्या यह बात ठीक है ?

समाधान--यह कहना ठीक नहीं है, यह कहना कपोलकल्पित और अज्ञान भरा हुआ है। क्योंकि श्रीऋषभदेवके जन्माभिषेकके गन्धोदकका जल इन्द्रादिक सब देवोंने अपने मस्तकसे लगाया तथा सब शरीरसे लगाया तथा मेरुपर्वतके ऊपर उस गन्धोदकके जलका प्रवाह नदियोंके समान बह निकला। इस बहते हुए जलमें देवोंने स्नान किया। वह जल लेकर परस्पर एक दूसरेके ऊपर डाला। भावार्थ--उस जलमें परस्पर जलक्रीड़ा की और उस गन्धोदकके जलको लेकर स्वर्गमें भेजा। ऐसा वर्णन शास्त्रोंमें लिखा है। देखो भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत आदिपुराणके दशवें पर्वमें--

कृतं गंधोदकैरित्थमभिषेकं सुरोत्तमाः। जगतां शांतये शांतिं घोषयामासुरुच्चकैः ॥ ९७ ॥
प्रचक्रुरुत्तमांगेषु चक्रुः सर्वांगसंगतम्। स्वर्गस्योपायनं चक्रुस्तद्गंधांबु दिवाकसः ॥ ९८ ॥
गंधांबुस्नपनस्यांते जयकोलाहलैः समम्। व्यातुक्षीममराः चक्रुः सचूर्णैर्गंधवारिभिः ॥ ९९ ॥

लब्धिसारपुराणमें भी यही बात लिखी है--

तद्गंधांबु प्रवंद्योच्चैरुत्तमांगेषु भक्तिकाः। निधाय सर्वगात्रेषु स्वर्गस्योपायनं व्यधुः ॥२०२॥
गंधोदकाभिषेकांते विधायेति सुरेश्वराः। गंधोदकं च वंदित्वा पूतं शुद्धे जिनेशिनः ॥२०३॥
व्यातुक्षीं निर्मलां चक्रुः जयकोलाहलैः समम्। पूरितैः कलशैः भक्त्या सचूर्णैर्गंधवारिभिः ॥२०४

इसके सिवाय भगवान् पार्श्वनाथके जन्म समयमें भी इसी प्रकार कथन है सो ही पार्श्वपुराण में लिखा है--

इत्थं गंधोदकैः कृत्वाभिषेकं सुरनायकाः। शांतिं ते घोषयामासुश्चैर्भवाघशांतये ॥१२॥
चक्रुः शिरसि भाले च नेत्रे सर्वांगपुद्गले। स्वर्गस्योपायनं पूतं तद्गंधांबु सुरास्त्रियः ॥१३॥
गंधांबुस्नपनस्यांते जयनंदादिसत्स्वरैः। व्यातुक्षीममराश्चक्रुः सचूर्णैर्गंधवारिभिः ॥१४॥

इसलिये ऊपर लिखा हुआ लोगोंका कहना असत्य है।

तथा गर्भान्वय आदि क्रियाओंमें जो बालककी केशवाप (मुण्डन वा केश उतरवाना) क्रिया है उसमें पहले देव, शास्त्र, गुरुकी पूजा होती है, फिर बालकका मस्तक गन्धोदकसे भिगोया जाता है, फिर केश उतारे जाते हैं, तदनन्तर गन्धोदकसे ही बालकको स्नान कराया जाता है। ऐसा श्रीजिनसेनस्वामीने आदिपुराणके अड़तीसवें पर्वमें लिखा है--

केशवापस्तु केशानां शुभेह्नि व्यपरोपणम्। क्षौरेण कर्मणा देवगुरुपूजापुरस्सरम् ॥९६॥
गंधोदकार्द्रितान् कृत्वा केशान् शेषाकृतोचितान्।
मौड्यमस्य विधेयं स्यात्सचूलं वान्योचितम् ॥ ९७ ॥
स्नपनोदकधौतांगमनुलिप्तं समूषणम्। प्रणमय्य मुनीन् पश्चाद् योजनेद्धंधुताशिषा।

इसके सिवाय जब राजा श्रीपाल कोटीभट कोढ़ रोगसे पीड़ित हो गये थे और उनके साथके सातसौ योद्धा भी कोढ़ रोगसे पीड़ित हो गये थे तब श्रीपालकी रानी मैनासुन्दरीने भगवान्का गन्धोदक लेकर उनके समस्त शरीर पर सींचा था और उसके सींचनेसे उन सबका कोढ़ रोग दूर हो गया था। ऐसा कथन श्रीपाल-चरित्र आदि शास्त्रोंमें लिखा है, इसलिये गन्धोदकके हाथ धोना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। तथा गन्धोदककी महिमा जैनशास्त्रोंमें जगह-जगह लिखी है, इसलिये इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। तथा बिना समझे शास्त्रविरुद्ध वचन नहीं बोलना चाहिये। जो इस प्रकार कहते हैं वह उनकी कपोलकल्पना है।

१. वास्तविक बात यह है कि गन्धोदक वा भगवान्के अभिषेकका जल महा-पवित्र है। वह किसी प्रकार अपवित्र नहीं हो सकता तथा विनय और अविनय दोनों भावोंसे होती है।

१०५-चर्चा एकसौ पाँचवीं

प्रश्न--प्रतिमा कौन-सी प्रतिष्ठा योग्य नहीं है अर्थात् कैसी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये तथा कैसी प्रतिमा प्रतिष्ठा करने योग्य है ?

समाधान—व्यंगित प्रतिमा (जिसके अंग उपांग खण्डित हैं) जर्जरीभूत प्रतिमा (बहुत प्राचीन जो खिरती हो जीर्ण-शीर्ण हो) जिस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा पहले हो चुकी हो, जो दुबारा बनायी गयी हो अर्थात् जिसके अंग भंग हो गये हों और फिर गढ़ कर बनायी हो, और जिन प्रतिमाओंमें कोई सन्देह हो ऐसी जिन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठा करने योग्य नहीं हैं तथा जिस प्रतिमाकी नाक, मुख, नेत्र, हृदय, नाभिमण्डल आदि अंग भंग हो गये हों, वह भी पूजा करने योग्य नहीं है। सो ही प्रतिष्ठाशास्त्रमें लिखा है।

व्यंगितां जर्जरां चैव पूर्वमेव प्रतिष्ठिताम्। पुनर्घटितसंदिग्धां प्रतिमां नो प्रतिष्ठयेत्॥
नासामुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमंडले। स्थानेषु व्यंगितेष्वेषु प्रतिमां नैव पूजयेत्॥

यहाँ पर फिरसे बनायी गयी प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका जो निषेध किया है उसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रतिमाके उपांग खण्डित हो गये हों और फिर सुधार कर वह दुबारा बनायी गयी हो तो ऐसी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा नहीं करानी चाहिये। तथा जो प्रतिमा शिल्पि शास्त्रोंमें कहे हुए लक्षणोंसे सुशोभित हो और सांगोपांग हो ऐसी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करना योग्य है। सो ही प्रतिष्ठापाठमें लिखा है।

यद्बिम्बं लक्षणैर्युक्तं शिल्पिशास्त्रनिवेदितम्। सांगोपांगं यथायुक्त्या पूजनीयं प्रतिष्ठितं॥

प्रश्न--जो प्रतिमा पूर्व प्रतिष्ठित है उसका यदि उपांग (उँगली आदि) खण्डित हो जाय अथवा मस्तक हीन हो जाय तो उसकी पूजा स्तुतिका विधान किस प्रकार है ?

समाधान—जिस प्रतिमाकी उँगलीका अग्रभाग अथवा कुछ कानका भाग वा कुछ नाकका भाग खण्डित हो तथा वह प्रतिमा पूर्व प्रतिष्ठित हो, और अतिशय सहित हो तो वह प्रतिमा पूज्य है ऐसी प्रतिमाकी पूजा, स्तुति, नमस्कार आदि करनेमें अपने बुरे भाव नहीं करने चाहिये। यदि ऐसी प्रतिमा अतिशयरहित हो तो वह पूज्य नहीं है तथा जो प्रतिमा मस्तकहीन हो तो उसको जलाशयमें क्षेपण कर देना चाहिये। मस्तकहीन प्रतिमाको चैत्यालयमें नहीं रखना चाहिये, इस प्रकार नरेन्द्रसेनकृत प्रतिष्ठादीपकमें लिखा है। यथा—

जीर्णं चातिशयोपेतं तद्व्यंगमपि पूजयेत्। शिरोहीनं न पूज्यं स्यान्निक्षेप्यं तन्नदादिषु ॥

इस प्रकार जानना। यदि इसका विशेष स्वरूप जानना हो तो जिनसंहिता, प्रतिष्ठापाठ, सरस्वतीकल्प, पूजासार, शिल्पशास्त्र आदि ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये।

१०६-चर्चा एकसौछट्ठी

प्रश्न--इस पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें साक्षात् केवलज्ञानी नहीं हैं फिर भला उनको किस प्रकार मानना चाहिये और उनकी पूजा-भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये। उनकी प्रतिमा तो स्थापना है निक्षेपरूप साक्षात् नहीं है।

समाधान--केवली भगवान्‌की वाणीका पठन-पाठन करनेवाले आचार्य हैं। इसलिए आचार्यको मानना वा उनकी पूजा-भक्ति आदि करना साक्षात् केवलीको मानने और उनकी पूजा-भक्ति करनेके समान है, क्योंकि जिसने केवलीप्रणीत शास्त्रोंको पठन-पाठन करनेवाले मान लिये तो उसने साक्षात् केवली भी मान लिये। इस पंचमकालमें श्रीमहावीर स्वामीके पीछे जिन सूत्रोंको पठन-पाठन करनेवाले और रत्नत्रयको धारण करनेवाले अनेक बड़े-बड़े आचार्य हुए हैं उनके वचनोंकी आज्ञाको मानना ही केवली भगवानको मानना है। सो ही श्रीपद्मनंदिविरचित पद्मनंदिपंचविंशतिकामें लिखा है--

संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौत्रैलोक्यचूणामणि-
स्तद्वाचः परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिकाः ॥

---

१. शास्त्रकारोंने स्थापनाका लक्षण "सोयमित्यभिधानेन स्थापना सा निगद्यते" अर्थात् "ये वे ही हैं" ऐसा संकल्प करना ही स्थापना निक्षेप है। मूर्ति वा प्रतिमामें जो स्थापना की जाती है वह भी ये तीर्थङ्कर ही हैं ऐसी कल्पना की जाती है, इसलिये जिन प्रतिमाकी पूजा-भक्ति करना भी केवली भगवान्‌की ही भक्ति-पूजा करना है तथा यह बात केवली भगवान्‌की कही हुई है या नहीं कही हुई है, इस प्रकारका जहाँ निश्चय करना हो, वहाँपर आचार्योंके वचनोंसे ही निश्चय करना चाहिये। क्योंकि भगवान् महावीर स्वामीने जो उपदेश दिया था, वही उपदेश गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य और जंबूस्वामीने दिया तथा वही श्रुत-केवलियोंने व उनके शिष्योंने दिया। उन्हीं शिष्योंके शिष्य-प्रतिशिष्य आचार्य हुए हैं इसलिये जैसा उनके गुरुओंने उपदेश दिया है वैसा ही उन्होंने उपदेश दिया है और वैसा ही शास्त्रोंमें लिखा है इसलिये आचार्योंके बनाये हुए शास्त्रोंमें जो लिखा है वह केवलीप्रणीत ही है ऐसा निश्चय करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते वे केवली भगवान्‌का तिरस्कार करते हैं।

सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तासां समालंबनं।
तत्पूजा जिनवाचि पूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः॥

इससे सिद्ध होता है कि आचार्योंको माननेमें, उनकी पूजा भक्ति करनेमें और उनके वचनोंकी आज्ञा माननेमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। जो पुरुष आचार्योंकी आज्ञा माननेमें संदेह करते हैं वे केवली भगवान्‌का अविनय करते हैं।

१०७–चर्चा एक सौ सातवीं

प्रश्न—भरत चक्रवर्तीने ब्राह्मणोंकी स्थापना की थी सो उस समय कितने ब्राह्मणोंकी स्थापना की थी अर्थात् उनकी कितनी गिनती थी।

समाधान—भरत चक्रवर्तीने ब्रह्मकर्म विधिके समय पद्मनामकी निधिसे ग्यारह ब्रह्मसूत्र वा यज्ञोपवीत निकाले और उन्हें पहनाकर ग्यारह ब्राह्मण स्थापन किये। भावार्थ–उस समय ग्यारह ब्राह्मण बनाये तथा पीछे अनुक्रमसे बढ़ते गये और बहुत हो गये सो ही आदिपुराणके अड़तीसवें पर्वमें लिखा है।

तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः। उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राढ्यैरेकाद्यैकादशांतकैः॥

इससे सिद्ध होता है कि जो लोग इस बातको नहीं मानते वे भ्रममें पड़े हुए हैं। शास्त्रमें तो ग्यारह-का ही प्रमाण मिलता है। इस प्रकार चतुर्थकालके प्रारम्भमें ब्राह्मण वर्णकी उत्पत्ति हुई है।

प्रश्न—पाँचों महा विदेह क्षेत्रोंमें ब्राह्मण हैं या नहीं। तथा वहाँपर कितने वर्ण हैं?

समाधान—विदेह क्षेत्रमें ब्राह्मण नहीं हैं वहाँपर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये तीन ही वर्ण हैं। सो ही सिद्धांतसारप्रदीपमें लिखा है।

प्रजा वर्णत्रयोपेता जिनधर्मरताः शुभाः। व्रतशीलतपोदृष्टि भूषिता न द्विजाः क्वचित्॥

१०८–चर्चा एकसौ आठवीं

प्रश्न—सामायिकके छह भेद सुने हैं सो वे कौन-कौनसे हैं?

समाधान—नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक और भाव सामायिक। इस प्रकार छह भेदरूप सामायिक होता है। भगवान् जिनेन्द्रदेवने सामायिकके ये छहों भेद धर्म और मोक्षको देनेवाले बतलाये हैं। सो ही प्रश्नोत्तरोपासकाचारमें लिखा है—

नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालेषु श्रीजिनैः। उक्तं सामायिकं भावं षड्विधं धर्ममुक्तिदम्॥२३॥

इनका विशेष स्वरूप इस प्रकार है जो विद्वान् लोग शुभ-अशुभ विकल्पोंके नामोंके समूहको सुनकर राग, द्वेष, मोहका त्याग कर देते हैं उसको नाम सामायिक कहते हैं। जो शुभ और अशुभ चेतन वा अचेतनसे उत्पन्न होते हैं उनको देखकर जो रागद्वेषादिकका त्याग कर देते हैं उनके स्थापना सामायिक होता है। जो लोहा, सोना आदि सब पदार्थोंमें समान भाव धारण करते हैं उनके द्रव्य सामायिक होता है। यह द्रव्य सामायिक विना समता भावोंके और किसी प्रकार नहीं हो सकता। जो शुभ, अशुभ क्षेत्रमें सुख और दुःखोंके समूहको पाकर भी राग, द्वेष, मोहका नाश कर देते हैं वह उनका क्षेत्र सामायिक है। जो शीतकालमें वा उष्णकालमें समताभाव धारण करते हैं, सर्दी, गर्मीके दुःखोंको समताभावसे सहन करते हैं उसमें दुःख नहीं मानते सो काल सामायिक है। तथा जो शत्रु मित्रादिकमें राग द्वेषको सर्वथा छोड़ देते हैं और समताभाव धारण करते हैं उनके भाव सामायिक होता है। इस प्रकार सकलकीर्ति आचार्यने प्रश्नोत्तरोपासकाचारमें सामायिकके छह भेद लिखे हैं। यथा—

शुभेतरविकल्पं यः श्रुत्वा नामकदंबकम्।
रागादिकं त्यजेद्धीमान् नामसामायिकं लभेत्॥ २४॥

दृष्ट्वा शुभाशुभं रूपं चेतनेतरजं हि यः।
त्यजेद्रागादिकं स स्थापनासामायिकं भवेत्॥ २५॥

लोष्टहेमादिदृष्टेषु समचित्तं करोति यः।
द्रव्यसामायिकं तस्य भवेन्नान्यस्य सर्वथा॥ २६॥

शुभेतरप्रदेशं यः सुखदुःखादिसंकुलम् ।
प्राप्य रागादिकं हन्यात् क्षेत्रसामायिकं लभेत् ॥ २७ ॥
शीतोष्णादिषु कालेषु समतां यो वितन्वते ।
कालसामायिकं तस्य भवत्येव न संशयः ॥ २८ ॥
त्यक्त्वा रागादिकं योरिमित्रादिषु करोति सः ।
समताधिष्ठितं भावं भावसामायिकं लभेत् ॥ २९ ॥

१०९-चर्चा एक सौ नौवीं

प्रश्न--गृहस्थ लोग जो अपने घर प्रतिमा रखते हैं उसकी मर्यादा ग्यारह अथवा बारह अंगुल प्रमाण है। बारह अंगुलसे ऊँची प्रतिमा जिनमंदिरमें ही स्थापन करनी चाहिये, यह बात तो प्रसिद्ध है परन्तु ग्यारह अंगुलमें भी एक, दो, तीन, चार आदि अंगुलोंकी प्रतिमाके प्रमाणका फल क्या है ?

समाधान--जो गृहस्थ अपने घर जिनप्रतिमाको रक्खें सो अत्यन्त योग्य और ऊँचे स्थानमें रखना चाहिये। आगे प्रतिमाकी ऊँचाईका अलग-अलग फल बतलाते हैं। एक अंगुलकी प्रतिमा पूजा करनेवालेके लिये श्रेष्ठ है। दो अंगुलकी प्रतिमा धन नाश करनेवाली है। तीन अंगुल ऊँची प्रतिमा बुद्धिको उत्पन्न करती है। चार अंगुल ऊँची प्रतिमा पीड़ा उत्पन्न करती है। पाँच अंगुल की प्रतिमा सुखकी वृद्धि करती है। छह अंगुलकी प्रतिमा उद्वेग करती है। सात अंगुलकी प्रतिमा गायोंकी वृद्धि करती है। आठ अंगुलकी प्रतिमा हानि करती है। नौ अंगुलकी प्रतिमा पूजा करनेवालेके लिये पुत्रोंकी वृद्धि करती है। दश अंगुल ऊँची प्रतिमा धनका नाश करती है। ग्यारह अंगुलकी प्रतिमा गृहस्थोंके समस्त काम और अर्थकी सिद्धि करनेवाली होती है। इससे अधिक ऊँची प्रतिमा गृहस्थको अपने घर नहीं रखनी चाहिये। हाँ; जिनमंदिरमें विराजमान करनेमें कोई हानि नहीं है। इस प्रकार एकसे लेकर ग्यारह अंगुल प्रमाण प्रतिमाका शुभाशुभ फल बतलाया। इनमें भी जो शुभ प्रतिमाएँ हैं यदि उनकी नाक, मुख, नेत्र, हृदय, नाभि आदि स्थान खंडित हो जायें तो घरमें रखकर नहीं पूजना चाहिये। ऐसा वीराकल्पमें लिखा है।

अथातः संप्रवक्ष्यामि गृहबिम्बस्य लक्षणम्। एकांगुलं भवेच्छ्रेष्ठं द्व्यंगुलं धननाशनम्॥
त्र्यंगुले जायते वृद्धिः पीडा स्याच्चतुरंगुले। पंचांगुले तु वृद्धिः स्यादुद्वेगस्तु षडंगुले॥
सप्तांगुले गवांवृद्धिः हानिरष्टांगुले मता। नवांगुले पुत्रवृद्धिर्धननाशो दशांगुले॥
एकादशांगुलं बिम्बं सर्वकामार्थसाधनम्। एतत्प्रमाणमाख्यातमत्तरूर्द्धं न कारयेत्॥
नासामुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमंडले। स्थानेषु व्यंगितागेषु प्रतिमां नैव पूजयेत्॥

११०–चर्चा एकसौ दशवीं

प्रश्न––तीसरे मिश्र नामके गुणस्थानमें मरण नहीं है और न अन्य गतिकी आयुका बंध ही होता है। तब फिर वह तीसरे गुणस्थान वाला जीव गतिबंधके बिना अन्यगतिमें किस प्रकार गमन करता है ?

समाधान––सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे तीसरे मिश्र नामके गुणस्थानमें रहनेवाले जीवने पहले या तो मिथ्यात्वके साथ आयुका बंध किया होगा या सम्यक्त्वके साथ आयुका बंध किया होगा। यदि मिथ्यात्वके साथ आयुका बंध किया हो तो वह मिथ्यात्व गुणस्थानमें जाकर मरण करता है यदि उसने सम्यक्त्वके साथ आयुका बंध किया हो तो वह चौथे गुणस्थानमें जाकर मरण करता है। भावार्थ––जो पहले सम्यग्दर्शनके साथ आयुबंध किया है तो चौथे गुणस्थानमें मरण कर शुभ गति प्राप्त करता है। यदि उसने मिथ्यात्व गुणस्थानमें बंध किया हो तो वह मिथ्यात्वमें ही मरण कर अशुभ गतिमें जा उत्पन्न होता है। ऐसा श्रीगोम्मटसारमें प्ररूपणाधिकारके गुणस्थानाधिकारमें लिखा है। यथा–

सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं।
सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण॥ २२॥
सम्मत्तद्धिपरिणामेसु जहि आउगं पुरा बद्धं।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि॥ २३॥

१११–चर्चा एकसौ ग्यारहवीं

प्रश्न––क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले योगीश्वरोंके श्रेणी चढ़ते समय कौनसा संहनन होता है ?

समाधान—क्षपक श्रेणीवाले मुनीश्वरोंके छहों संहननोंमेंसे कोई संहनन नहीं होता। क्योंकि क्षपकश्रेणी-में चढ़नेवाले साधुओंके, अयोगिकेवली जिनराजके, चतुर्णिकाय देवोंके, सातवें नरकमें रहनेवाले नारकी जीवोंके, आहारक शरीरको धारण करनेवाले महर्षियोंके, एकेंद्रिय जीवोंके और कार्मण कायके आश्रित रहनेवाले विग्रह गतिमें प्राप्त हुए जीवोंके, इन सात स्थानोंमें रहनेवाले जीवोंके शरीरमें वज्रवृषभनाराच आदि छहों संहननोंमें-से एक भी संहनन नहीं होता ऐसा सिद्धांतसार प्रदीपकमें लिखा है। यथा—

सयोगे च गुणस्थाने ह्याद्यं संहनन भवेत्। केवले क्षपकश्रेण्यारोहणे कृतयोगिनाम् ॥१२८॥
अयोगिजिननाथाना देवानां नारकात्मनाम्। आहारकमहर्षीणामेकाक्षाणां वपूंषि च ॥१२९॥
यानि कार्मणकायानि व्रजतां परजन्मनि। तेषां सर्वशरीराणां नास्ति संहननं क्वचित् ॥१३०॥

११२—चर्चा एकसौ बारहवीं

प्रश्न—आचार्य, उपाध्याय और साधुओंकी वंदना अर्जिका किस प्रकार करती हैं ?

समाधान—अर्जिकाएँ अपनी गणिनीको (सब अर्जिकाओंमें मुख्य गुराणीको) आगे करती हैं अर्थात् गणिनीके पीछे-पीछे रहकर आचार्य, उपाध्याय, साधुओंकी वंदना करती हैं तथा इसी प्रकार उनसे पूछती हैं और इसी प्रकार उनका धर्मोपदेश सुनती हैं। अर्जिकाएँ अकेली आचार्य वा उपाध्याय वा साधुओंके सामने नहीं जातीं। सो ही मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है—

गणिनीमग्रतः कृत्वा यदि प्रश्नं करोति सा

अर्जिकाएँ आचार्यको पाँच हाथ दूरसे वंदना करती हैं, उपाध्यायको छह हाथ दूरसे वंदना करती हैं और साधुओंको सात हाथ दूरसे वंदना करती हैं। तथा वन्दना भी पदवर्द्धशायी आसनसे करती हैं। जिस प्रकार आधे आसनसे गौ बैठकर सोती है उसी प्रकार अपने शरीरको नवाकर वंदना करती हैं। अर्जिकाएँ सर्व साधुओंको पंचांग अथवा अष्टांग नमस्कार नहीं करतीं। ऐसा मूलाचार प्रदीपकमें समाचार नामके अधिकारमें लिखा है—

पर्यटंति प्रयत्नेन भिक्षायै गृहपंक्तिषु। वा व्रजंति मुनींद्राणां वंदनायै च क्षांतिकाः ॥

पंचषट्सप्तहस्तांतमंतराले महीतले। सूरिपाठकसाधूनां भक्तिपूर्वकमार्यिकाः ॥

श्रीवट्टकेरस्वामीने मूलाचारमें समाचाराधिकारमें भी यही बात लिखी है—

पंच छह सत्त हत्थे सूरी उवझायगो य साधू य। परिहरिऊणज्जाओ गवासणेणेव वंदंति ॥१९५॥

११३-चर्चा एकसौ तेरहवीं

प्रश्न—सदाशिव आदि अन्य मतवाले लोग जीवका स्वरूप जुदा-जुदा मानते हैं सो वे किस-किस प्रकार मानते हैं ?

समाधान—सदाशिव, सांख्य, मस्करी वा संन्यासी, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक और ईश्वरमंडली ये छह मतवाले छह दर्शन कहलाते हैं। ये छहों ही दर्शन जीवका स्वरूप भिन्न-भिन्न तरहसे मानते हैं। सदाशिव वाला तो जीवको सदा कर्मरहित ही मानता है। सांख्यमतवाले मुक्त जीवको सुखसे रहित मानते हैं संन्यासमत वाले मुक्त जीवका भी फिर संसारमें आगमन मानते हैं। अर्थात् उनके मतमें मुक्त जीव भी अनेक अवतार धारण करता है। बौद्ध लोग जीवका स्वरूप क्षणिक मानते हैं। योगशास्त्री जीवको निर्गुणी मानते हैं। ईश्वरवादी सृष्टिरचके द्वारा ईश्वरको कृतकृत्य मानते हैं। मंडली मतवाले आत्माको ऊर्ध्वगमन ही निरूपण करते हैं। इस प्रकार छहों दर्शनवाले आत्माके स्वरूपको परस्पर विरुद्ध निरूपण करते हैं सो ही गोम्मटसारकी टीकामें लिखा है—

सदाशिवः सदाकर्मा सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम्।
मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिम् ॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो योगश्च मन्यते। कृतकृत्यं तमीशानो मंडली चोर्ध्वगामिनम् ॥

इस प्रकार उनके मत परस्पर विरुद्ध हैं।

प्रश्न—ये सब वेदको मानने वाले हैं और फिर भी सबके मत परस्पर विरुद्ध हैं। तब सबको एक वेद मतवाले किस प्रकार कहते हैं ?

समाधान—ये सब एक नहीं हैं अलग-अलग हैं। इनके शास्त्रोंका कथन एक दूसरेसे मिलता नहीं।

सबका जुदा-जुदा है और सबका उपदेश परस्पर विरुद्ध है। क्योंकि छहों दर्शनवालोंके कथन सर्वज्ञरहित छद्मस्थोंके (अल्प ज्ञानियोंके) कहे हुए हैं इसलिये उनमें आदिसे अन्त तक अविरोध नहीं आ सकता।

प्रश्न—इनमें विरोध कहाँ-कहाँ है ?

समाधान—इनमें विरोध तो बहुत है और वह सब लिखा नहीं जा सकता। परन्तु उसमेंसे थोड़ासा बतलाते हैं। वेदमें लिखा है—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गं नैव च नैव च। तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा पश्चाद्भवति तापसः॥

अर्थात्—जिसके पुत्र नहीं है उसकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग भी नहीं मिलता इसलिये पुत्रका मुख देखकर (विवाह कर और भोगोपभोग सेवन कर) फिर तपस्वी होना चाहिये। तब ही सुगति प्राप्त हो सकती है। कुमारोंकी गति कभी नहीं हो सकती। तथा भारतके शांति पर्वमें लिखा है—

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्। स्वर्गं गतानि राजेंद्र ! अकृत्वा कुलसंश्रितम्॥

अर्थात् हजारों कुमार ब्रह्मचारी स्वर्गमें गये इन दोनों कथनोंमें परस्पर विरुद्धता है।

तथा एक सूर्यमें दो बार भोजन करनेमें (दिनमें दो बार भोजन करनेमें) महादोष मानकर रात्रिमें भोजन करनेका उपदेश दिया है। ऋषियोंको कंदमूल खानेका विधान किया है तथा राजाओंको मद्य, मांस खानेका अधिकार बतलाया है। परन्तु भारतमें इसके विरुद्ध लिखा है। यथा —

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्। ये कुर्वंति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः॥
वृथा एकादशी प्रोक्ता तथा च जागरणं हरेः। वृथा च पुस्करी यात्रा कृतं चांद्रायणं तपः॥

यहाँपर मद्य, मांसका, रात्रिभोजनका, कंदमूल खानेका निषेध लिखा है और इन कामोंको करनेवालोंकी तीर्थयात्रा जप, तप, एकादशी नारायणका जागना (नारायणके लिये रात्रि जागरण करना) पुष्करकी यात्रा, चान्द्रायण तप आदि सब व्यर्थ बतलाया है। सो यह पहलेके कथनसे विरुद्ध है। मार्कंडेय ऋषिने मार्कंडेय पुराणमें भी लिखा है—

अस्तं गते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते। अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कंडेयमहर्षिणा॥

अर्थात् मार्कंडेय ऋषिने कहा है कि सूर्य अस्त होनेपर जल रुधिरके समान है और अन्न खाना मांस-के समान है। फिर भला वह रात्रिमें भक्षण करने योग्य किस प्रकार हो सकता है। भारतमें भी लिखा है—

चत्वारो नरकद्वारं प्रथमं रात्रिभोजनम्। परस्त्रीगमनं चैव संधानानंतकायते॥
ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयंति सुमेधसः। तेषां पक्षोपवासस्य मासमेकेन जायते॥
नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठिर। तपस्विनो विशेषेण गृहिणां च विवेकिनाम्॥

अर्थात् नरकके चार द्वार हैं उनमें प्रथम रात्रिमें भोजन पान करना, दूसरा परस्त्रीगमन करना, तीसरा अचार, मुरब्बा आदि खाना और चौथा कंदमूल आदि अनंतकायका भक्षण करना। तथा जो बुद्धिमान रात्रिमें सब तरहके आहारके त्याग कर देते हैं उनके एक महीनेमें पन्द्रह उपवास हो जाते हैं वा उन्हें पन्द्रह उपवासका फल प्राप्त हो जाता है। श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरसे कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! विचारशील गृहस्थोंको रात्रिमें जल भी नहीं पीना चाहिये। तथा तपस्वियोंको तो विशेषताके साथ त्याग कर देना चाहिये।

अरण्यकमें लिखा है—

मृते स्वजनमात्रेपि सूतकं जायते किल। अस्तं गते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम्॥
रक्ता भवंति तोयानि अन्नानि पिशितानि च। रात्रिभोजनशक्तस्य ग्रासेन मांसभक्षणम्॥
नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम्। दानं च विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः॥
उदम्बरं भवेन्मांसं मांसं तोयमवस्त्रकम्। चर्मवारि भवेन्मांसं मांसं च निशिभोजनम्॥
उलूककाकमार्जारगृध्रशंवरशूकराः। अहिवृश्चिकगोधाद्या जायते निशि भोजनात्॥

अर्थात्—जिस प्रकार कुटुंबमें किसी कुटंबीके मर जानेपर सूतक हो जाता है उसी प्रकार सूर्य अस्त होनेसे भी सूतक लग जाता है फिर भला सूतकमें भोजन किस प्रकार करना चाहिये। रात्रिमें जल तो रुधिर के समान हो जाता है, अन्न मांसके समान हो जाता है, इसलिये रात्रिमें भी भोजनकी लंपटता रखनेवालोंके के लिये एक ग्रास मात्र भोजन करना भी मांस भक्षणके समान है। रात्रिमें आहुति देना, स्नान करना, श्राद्ध

करना, देवपूजन करना, दान देना भना है तथा रात्रिमें भोजन करनेका त्याग विशेष रीतिसे बतलाया है। फिर कहा है—उदंबर फल (पीपलफल, बडफल, गूलर, पाकर, अंजीर) भी मांस है, बिना छना जल भी मांस है, चमड़ेके बर्तनमें रक्खा हुआ जल, घी, दूध आदि भी मांस है, और रात्रिमें भोजन करना भी मांस भक्षण है। रात्रिमें भोजन करनेसे ये जीव मरकर परलोकमें उल्लू, कौआ, बिल्ली, गीध, सूअर, सर्प, बिच्छू, गोह, गोहरा, बिस्मरा आदि महानीच योनियोंमें उत्पन्न होता है।

इसके सिवाय ये लोग ऋषियोंके लिये कंदमूलके आहार करनेका बड़ा माहात्म्य बतलाते हैं परन्तु शास्त्रोंमें कंदमूल भक्षणके बड़े दोष बतलाये हैं। जैसा कि पहले भी कह चुके हैं—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।

इसके सिवाय प्रभासखंडमें लिखा है—

पुत्रमांसं वरं भुक्तं न च मूलकभक्षणम्। भक्षणान्नरकं याति वर्जनास्स्वर्गमाप्नुयात्॥
अज्ञानेन मया देव कृतं मूलकभक्षणम्। तत्पापं प्रलयं यातु गोविंद! तव कीर्तनात्॥
रसोनं गृंजिनं चैव पलांडुं पिंडमूलकम्। मत्स्यमांसं सुरां चैव मूलकं च विशेषतः॥

अर्थात्—पुत्रका मांस खा लेना अच्छा परन्तु कंदमूल खा लेना अच्छा नहीं क्योंकि कंदमूलका भक्षण करनेसे यह जीव नरकमें जाता है और कंदमूलका त्याग कर देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ १॥ भक्त लोग श्रीकृष्णसे कहते हैं कि हे गोविंद देव! हमने अपने अज्ञानसे कंदमूल खाये हैं सो आपकी स्तुति करनेसे हमारे वे सब पाप नष्ट हो जाँय॥ २॥ रसोन अर्थात् लहसन, गृंजिन अर्थात् गाजर, पलांडु अर्थात् प्याज, कांदा, पिंडालू मूली, मछलीका मांस और मद्य इनका विशेष रीतिसे त्याग कर देना चाहिये।

शिवपुराणमें भी लिखा है।

यस्मिन् गृहे सदा नित्यं मूलकं पच्यते जनैः। श्मशानतुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम्॥
मूलकेन समं चान्नं यस्तु भुंक्ते नराधमः। तस्य शुचिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि॥
भुक्तं हालाहलं तेन कृतं चाभक्ष्यभक्षणम्। वृंत्ताकभक्षणं चापि नरो याति च रौरवम्॥

अर्थात्–जिस घरमें लोग मूली पकाते हैं (कंदमूल पकाते हैं) वह घर श्मशानके समान है। उसमें पितर लोग कभी नहीं आते हैं जो लोग कंदमूलके साथ अन्न भोजन करते हैं उनकी शुद्धि सैकड़ों चांद्रायण व्रतोंसे भी नहीं हो सकती। कंदमूल भक्षण करनेमें ऐसा महापाप है। तथा जिसने बैंगन खा लिया उसने हालाहल विष खा लिया अथवा विष्ठा मांस आदि अभक्ष्य भक्षण कर लिया समझना चाहिये। क्योंकि बैंगनके खानेसे यह अधम मनुष्य रौरव नरकमें ही जाता है। इस प्रकार ये लोग इनका निषेध भी करते जाते हैं और उनको अंगीकार भी करते जाते हैं।

तथा रामचन्द्र और परशुराम दोनोंको अवतार मानते हैं और दोनोंका परस्पर युद्ध होना भी मानते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंको एकसा ही मानते हैं परन्तु तीनोंके कार्य परस्पर भिन्न-भिन्न मानते हैं। तथा परस्परमें युद्ध करना भी मानते हैं। मत्स्यावतारने तो वेद प्रगट किये तथा बुद्धावतारने उसके मार्गका लोप किया। ऋषभावतारने वैराग्यकी प्रवृत्ति की और कृष्णावतारने शृंगारमय नाना लीलायें कीं। कृष्णावतारने मर्यादाका भंग किया और रामावतार मर्यादापुरुषोत्तम हुए। बाल्मीकि रामायणमें तथा पद्मपुराणमें रावणका वध रामने किया लिखा है। तथा अद्भुत रामायणमें रावणका वध सीताने किया लिखा है। तथा इसी अद्भुत रामायणमें सीताको रावणकी पुत्री बतलाया है। गीतामें पहले तो क्रोधादिक पापोंके त्याग करनेका उपदेश दिया है और ज्ञानके बाद–उपदेशके बाद कौरवोंके साथ युद्ध करनेका उपदेश दिया है। वेदोंमें तो यज्ञमें पशुओंको हवन कर जीवोंकी हिंसाका निरूपण किया है और पुराणोंमें जीवघातका निषेध किया है। वेदांतमें धातु, पाषाण आदिकी मूर्त्तिके सेवन करनेका निषेध और चिदानंद चिद्रूपका चिंतवन करना लिखा है तथा पुराणोंमें उसी मूर्त्तिकी भक्ति पूजा आदिका प्रतिपादन किया है। शाक्तिक मतमें अवतारादिकोंकी न्यूनता और शक्तिकी महानता दिखलाई है। रामके उपासकोंको कृष्णकी उपासना नहीं करनी चाहिये, कृष्णके उपासकोंको रामकी उपासना नहीं करनी चाहिये। शिवके उपासकोंको नारायणकी उपासना नहीं करनी चाहिये और विष्णुके उपासकोंको शिवको नहीं मानना चाहिये। इन सबमें परस्पर विरोध रखनेका उपदेश दिया है। इस प्रकार इन छहों शास्त्रोंमें परस्पर वचनोंकी विरुद्धता, चलनकी विरुद्धता और आचरणकी विरुद्धता दिखलाई है और वह विरुद्धता प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। सो संसारी जीव अपने कल्याणके लिये किस वचनपर, किस चलनपर और किस आचरणपर विश्वास रक्खें। यदि एक वेद, पुराण, वा अवतार पर विश्वास रखते

हैं तो दूसरे वेद पुराण अवतार और ऋषि आदिके वचनोंके आचरणादिका खंडन हो जाता है। यदि कोई सबके ऊपर माना जाय तो भी परस्पर विरोध होनेसे दूसरेका अपमान होता है। ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये यह बड़े संकटकी बात है। इसलिये बिना स्याद्वाद वचनोंके, बिना तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धानके कुछ भी कार्यकारी नहीं है ऐसा समझना चाहिये।

११४-चर्चा एकसौ चौदहवीं

प्रश्न—श्री सम्मेदशिखरकी यात्राका सबसे उत्कृष्ट फल क्या है ?

समाधान—राजा श्रेणिकने विपुलाचल पर्वत पर श्रीमहावीरस्वामीसे पूछा था कि हे भगवन्! श्रीसम्मेदशिखरका माहात्म्य क्या है। तब भगवान्ने दिव्यध्वनि द्वारा निरूपण किया कि हे श्रेणिक! श्रीसम्मेदशिखर नामके पर्वतसे अजितनाथसे लेकर बीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। उनके अलग-अलग कूट हैं उनके नाम इस प्रकार हैं। श्रीअजितनाथ सिद्धवरकूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्री संभवनाथ दत्तधवलकूटसे मोक्ष गये हैं। श्रीअभिनंदननाथ आनंदकूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्री सुमतिनाथ अविचलकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीपद्मप्रभ मोहनकूटसे सिद्ध हुये हैं। श्रीसुपार्श्वनाथ प्रभासकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीचंद्रप्रभ भगवान ललितकूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्रीपुष्पदंत सुप्रभकूटसे सिद्ध हुये हैं। श्रीशीतलनाथ विद्युत्प्रभकूटसे मुक्त हुए हैं। श्रीश्रेयांसनाथ संबलकूटसे (संकुलसे) निर्वाण पधारे हैं श्रीविमलनाथ सुवीरकुलकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीअनंतनाथने स्वयंप्रभकूटसे मोक्ष पाई है। धर्मनाथने वरवरकूटसे निर्वाण प्राप्त किया है। श्रीशांतिनाथने कुन्दप्रभ वा प्रभासकूटसे सिद्धपद प्राप्त किया है। कुंथुनाथस्वामी ज्ञानधरकूटसे मोक्ष गये हैं। श्रीअरःनाथस्वामी नाटककूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्रीमल्लिनाथ भगवान संबलकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकर निर्जरकूटसे सिद्ध हुये हैं। श्रीनमिनाथदेव मित्रधरकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीपार्श्वनाथ भगवान् सुवर्णभद्रसे मोक्ष पधारे हैं। इस प्रकार बीस कूट हैं और उन कूटोंपरसे श्रीअजितनाथ आदि बीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। उन कूटोंमें प्रत्येक कूटसे उन तीर्थंकरोंके मोक्ष जानेसे पहले ही अनंतानंत मुनिराज मोक्ष पधारे हैं इसलिये ये कूट परम पवित्र सिद्धक्षेत्र हैं। यह सम्मेदशिखरक्षेत्र बारह योजन प्रमाण है सो समस्त जीवोंके पापोंका नाश करनेवाला है। इसका दर्शन भव्य जीवोंको ही होता है। अभव्यजीव वहाँ जा ही नहीं सकते। अभव्योंके जानेमें अनेक प्रकारके विघ्न आ उप-

स्थित होते हैं। यदि कोई भव्य जीव महा पापी हो और इस गिरिराजके दर्शन कर ले तो उसके संसारका परिभ्रमण छूट जाता है वह अधिकसे अधिक उनचास भव तक परिभ्रमण कर सकता है। भावार्थ—गिरिराजके दर्शनका ऐसा माहात्म्य है कि इसके दर्शन करनेवाला महापापी भव्य जीव भी उनचास भव तक शुभ गतियोंमें जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उस बारह योजन प्रमाण सिद्धक्षेत्रमें पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पतिकायिक जीव तथा दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीपंचेंद्रिय, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि जो जीव उत्पन्न होते हैं वे सब भव्य ही होते हैं। वहां भव्य जीवोंका ही जन्मक्षेत्र है, अभव्य जीव वहांपर जन्म धारण नहीं कर सकते। वहांपर भव्य ही जन्म लेते हैं ऐसा नियम है। उस गिरिराजका ऐसा ही माहात्म्य है। तथा उसके दर्शन, वंदन, स्पर्शन करने आदिसे नरकगति और तिर्यंचगति छूट जाती है। भावार्थ—वह जीव मरणकर फिर तिर्यंच और नरकगतिमें कभी जन्म नहीं लेता। वह या तो स्वर्गमें देव होता है अथवा मध्यम लोकमें उत्तम मनुष्य होता है। ऐसा नियम है।

अब आगे एक-एक कूटसे तीर्थंकरोंके मोक्ष पधारनेके बाद कितने मुनिराज मोक्ष पधारे हैं सो बतलाते हैं। श्रीअजितनाथके साथ एक हजार मुनि मोक्ष पधारे तथा उनके बाद उसी सिद्धवरकूटसे एक अरब चौरासी करोड़ पैंतालीस लाख मुनिराज मोक्ष पधारे। ऐसे उस कूटके दर्शन करनेसे बत्तीस करोड़ उपवास करनेका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस कूटकी यात्रा सबसे पहले सगर नामके चक्रवर्तीने चतुर्विध संघ सहित की थी। दूसरे वरतधवलकूटसे श्रीसंभवनाथस्वामी एकहजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे पीछे उसी कूटसे नौ कोडाकोडि बहत्तर लाख सात हजार पाँचसे बियालीस मुनिराज मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे बियालीस लाख उपवास करनेका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित मघवा चक्रवर्तीने की थी। श्रीअभिनंदनस्वामी आनंदकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। उसके बाद उसी कूटसे तिहत्तर कोडाकोडी सत्तर करोड़ सत्तर लाख सातसौहजार पांचसौ बियालीस मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह लाख उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा संघ सहित सनत्कुमार चक्रवर्तीने की थी। श्रीसुमतिनाथ भगवान अविचल कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे तथा उनके बाद उसी कूटसे एक अरब चौरासी करोड़ बारह लाख सात सौ इक्यासी मुनि-

राज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे बत्तीस करोड़ उपवास करनेका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा आनंदसेनने की थी।

श्रीपद्मप्रभस्वामी मोहनकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे उनके बाद उसी कूटसे निन्यानवे करोड़ चौरासी लाख बियालीस हजार सातसै सात मुनि मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे बत्तीस करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी वंदना संघसहित राजा सुप्रभने की थी। श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान् सुप्रभकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे बहत्तर लाख सात हजार सातसौ बियालीस मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे बत्तीस करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मों की निर्जरा होती है। इस कूटकी रज शरीर पर लगानेसे कुष्ट रोग मिट जाता है। तथा इसकी यात्राका फल बीसों कूटोंकी यात्राके समान है। इसकी यात्रा चतुर्विधसंघसहित उद्योग नामके राजाने की थी। श्रीचंद्रप्रभ स्वामी ललितघट कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे उनके पीछे फिर उसी कूटसे चौरासी अरब बहत्तर करोड़ चौरासी हजार पाँचसौ पचपन मुनिराज मोक्ष पधारे। इस कूटकी वंदना करनेसे सोलह करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित ललितदत्तने की थी। श्रीपुष्पदंत स्वामी सुप्रभकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। उनके बाद उसी कूटसे निन्यानवे करोड़ नब्बे लाख सातसै हजार चारसौ अस्सी मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा संघसहित राजा सोमप्रभने की थी। श्रीशीतलनाथ भगवान् विद्युतवर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर इसी कूटसे अठारह कोडाकोडि बियालीस करोड़ बत्तीस लाख बियालीस हजार नौ सै पाँच मुनिराज और मुक्ति पधारे। इस कूटके दर्शन करने से सोलह करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा अविचलने की थी। श्रीश्रेयांसनाथ तीर्थंकर संवलकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर इसी कूटसे छयानवे कोडाकोडि छयानवे करोड़ छयानवे लाख पैंतालीस हजार पाँचसौ बियालीस मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा आनन्दसेनने की थी। श्री विमलनाथ भगवान् सुधीर कूटसे एक हजार

मुनियोंके साथ मोक्ष पधारे फिर उनके बाद उसी कूटसे सत्तर करोड़ साठ लाख छह हजार सातसे बियालीस मुनि और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा सुप्रभने की थी। श्रीअनंतनाथ भगवान् स्वयंभू नामके कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। उनके बाद उसी कूटसे छ्यानवे कोडाकोडि सत्तर करोड़, सत्तर लाख, सत्तर हजार सात-सौ मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा चारुसेनने की थी। श्रीधर्मनाथ स्वामी वत्तवर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। फिर उसी कूटसे उन्नीस करोड़ नौ लाख नौ हजार सात सौ पिचया-नवे मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा विभीवसेनने की थी। श्रीशांतिनाथ तीर्थंकर प्रभास कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। फिर उसी कूटसे नौ कोडाकोडि नौ लाख नौ हजार नौ सौ निन्यानवे मुनियोंने और मोक्ष पाई। इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा संघ सहित राजा सुदर्शनने की थी। श्रीकुंथुनाथ भगवान् ज्ञानधर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे छ्यानवे कोडाकोडि छ्यानवे करोड़ बत्तीस लाख छ्यानवे हजार सात सौ बियालीस मुनि और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा सोमधरने की थी। श्रीअरहनाथ स्वामी नाटक कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। फिर वही कूटतें निन्यानवे करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटकी वंदना करनेसे छ्यानवे करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघसहित राजा सुप्रभने की थी। श्रीमल्लिनाथ तीर्थंकर संबल कूटतें पांच हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटतें निन्यानवे करोड़ मुनि और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेतें छ्यानवे करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघसहित राजा सत्यसेनने की थी। श्रीमुनिसुव्रतनाथ स्वामी निर्जर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे निन्यानवे कोडाकोडि सत्यानवे करोड़ नौ लाख नौ सौ निन्यानवे मुनि और मोक्ष पधारे इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघसहित

आठवें बलभद्र राजा रामचंद्रने की थी। इकईसवें तीर्थंकर श्रीनमिनाथस्वामी मित्रधर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे एक अरब एक करोड़ पैंतालीस लाख सात हजार नौ सौ बियालीस मुनि और मोक्ष पधारे। इस कूट के दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा संघसहित राजा मेघदंतने की थी। श्रीपार्श्वनाथ भगवान् सुवर्णभद्र कूटसे मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे एक करोड़ चौरासी लाख पैंतालीस हजार सातसै बियालीस मुनि और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघसहित राजा सुप्रभावसेनने की थी। इस प्रकार बीसों कूटोंकी यात्राका अलग-अलग फल बतलाया। जो सब कूटोंकी यात्रा करते हैं वे जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रश्न—अभव्यको यात्रा क्यों नहीं होती तथा यह बात कहाँ लिखी है ?

समाधान—एक पोहमीपुरका राजा यात्राके लिए गया था परन्तु मार्गमें ही रात्रिमें उसे स्वप्न हुआ। स्वप्नमें उसने अपने पुत्रको मरा देखा। तब वह राजा मोहके उदयसे बहुत दुःखी हुआ और पीछे घरको लौट गया सो यह राजा अभव्य था इसलिये वह सम्मेदशिखर यात्रा न कर सका। इससे सिद्ध होता है कि अभव्यों-को यात्रा नहीं होती ऐसा नियम है।

प्रश्न—जो मनुष्य भव्य हो परन्तु उसके नरकायु अथवा तिर्यंचायुका बन्ध हो गया हो तो उसको यात्रा होती है या नहीं ?

समाधान—राजा श्रेणिकने श्रीमहावीरस्वामीसे पूछा था कि मेरे भाव श्रीसम्मेदशिखरजीकी यात्रा करनेके हैं। तब भगवान्ने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा बतलाया कि तुमको यात्रा हो नहीं सकेगी, क्योंकि तुम्हारे पहले नरकायुका बन्ध हो चुका है। इसलिये तुम्हारे यात्राका संयोग नहीं है। फिर भी राजा श्रेणिक वहाँ गया परन्तु यात्राके समय बड़ा लाख व्यन्तरोंके स्वामी प्रभूत नामक यक्षने महाप्रचण्ड हवा चलाई जिसके कारण राजा श्रेणिकको यात्रा हुई ही नहीं। महारानी चेलनीने भी श्रेणिकसे कहा कि हे स्वामिन्! केवली भगवान्के वचन कभी अप्रमाण नहीं हो सकते। रानीके वचन सुनकर राजा श्रेणिक भी वापिस आ गया। उसको यात्रा हुई ही नहीं। अब भी अनेक संघ जाते हैं परन्तु जिनको दर्शन होनेका योग नहीं होता उनके अनेक विघ्न

हो जाते हैं अनेक अन्तराय आ जाते हैं और उनके दर्शन होते ही नहीं। इसलिए जो अभव्य हैं जिनके नरकायु वा तिर्यञ्चायुका बन्ध हो चुका है उनकी यात्रा नहीं होती। जो भव्य हैं परन्तु जिनके नरकायु वा तिर्यञ्चायु-का बन्ध हुआ है उनको भी यात्रा होना कठिन है। जिनके शुभ कर्मोंका उदय है ऐसे भव्यजीवोंके ही सम्मेद-शिखरकी यात्रा होती है। इसलिये जिसने इसकी यात्रा कर ली उसे आसन्नभव्य या निकट भव्य ही समझना चाहिये।

जो भव्यजीव सफेद वस्त्र पहन कर इसकी यात्रा करते हैं उनको शीघ्र मोक्ष प्राप्त होती है। जो पीले वस्त्र पहिन कर इसकी यात्रा करते हैं उनके अनेक प्रकारके रोग मिट जाते हैं। जो हरे वस्त्र पहिन कर वन्दना करते हैं उनकी मानसिक पीड़ा और अनेक प्रकारके शोक सन्ताप मिट जाते हैं। जो भव्यजीव लाल रंगके वस्त्र पहिन कर दर्शन करते हैं उनको अनेक प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त होती है। इस प्रकार इसका विशेष फल है। इस प्रकार जो भव्यजीव भावसहित एक बार भी सम्मेदशिखरकी यात्रा वन्दना करते हैं उन्हें ऊपर लिखे अनुसार फल प्राप्त होता है। इसमें कोई किसी प्रकारका सन्देह नहीं। यह सब कथन लोहाचार्य विर-चित शिखरविलासमें कहा है। हमने यहाँ संक्षेपसे लिखा है विशेष वहींसे जान लेना। ऐसा समझकर भव्य-जीवोंको सम्मेदशिखरकी यात्रा वन्दना बड़ी भक्तिसे करनी चाहिये। यही कल्याणस्वरूप है।

प्रश्न—जो नरकायुका बन्ध कर चुके हैं ऐसे रावण आदि भी तो वन्दनाके लिये गये हैं?

उत्तर—रावण वहाँ गया तो सही परन्तु यात्रा करनेके लिये नहीं गया। मार्गमें जाते-जाते उस वन-में रहा और त्रिलोकमण्डन नामके हाथीको पकड़ कर उसकी क्रीड़ा करनेमें ही मग्न हो गया। उसको वश कर सबेरे ही वहाँसे घरको चल दिया उसको वहाँकी यात्रा वन्दना आदि नहीं हुई। ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है सो विचार कर लेना चाहिये जिन्होंने पहले नरकायु अथवा तिर्यंचायुका बन्ध कर लिया है उनको सम्मेद-शिखरकी यात्रा नहीं होती।

इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सम्मेदशिखरको बीस टोकोंसे बीस तीर्थङ्कर और अनन्त मुनि मोक्ष पधारे हैं उनको हमारा बार-बार नमस्कार हो। तथा हमारा भी जन्म वहीं हो।

११५-चर्चा एकसौ पंद्रहवीं

प्रश्न—पर्याप्त नामकर्मके उदयसे तो पर्याप्तक होते हैं तथा अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे अपर्याप्तक

होते हैं परन्तु निर्वृत्ति अपर्याप्तक और लब्धि अपर्याप्तक ये दो भेद और सुने जाते हैं वे किस-किस कर्मके उदयसे होते हैं और इनका स्वरूप क्या है ?

समाधान—निर्वृत्ति अपर्याप्त तो पर्याप्तक नाम कर्मके उदयका एक भेद है और लब्धिअपर्याप्तक अपर्याप्तक नाम कर्मके उदयका दूसरा भेद है। ये दोनों भेद और किसीके नहीं है।

इनका स्वरूप इस प्रकार है—पर्याप्त नामकर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोंके चार पर्याप्ति होती हैं, दो इन्द्रियके छः, तेइन्द्रियके सात, चौइन्द्रियके आठ, असैनीपंचेन्द्रियके नौ और सैनीपंचेन्द्रियके दस पर्याप्ति होती हैं। सो इनमेंसे जबतक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक अर्थात् शरीर नामकी पर्याप्ति पूर्ण होने तक जो अन्तर्मुहूर्तका समय है उसमेंसे एक समय कम समय तक अपर्याप्त अवस्था रहती है। शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता-को निर्वृत्ति कहते हैं जिनकी पूर्णता होनेवाली है परन्तु अभी तक हुई नहीं है तबतक अर्थात् शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक निर्वृत्यपर्याप्तक कहलाता है। इस प्रकार यह भेद पर्याप्तकका ही है। निर्वृत्यपर्याप्तकका समय अन्त-र्मुहूर्त है। तथा लब्ध्यपर्याप्तक अपर्याप्त नामकर्मके उदयसे होते हैं। एकेन्द्रियसे आदि लेकर सैनीपंचेन्द्रिय तक के जीव जो अपनी शरीरपर्याप्ति भी पूर्ण न कर सकें एक श्वासके अठारहवें भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमें ही जो मर जांय ऐसे जीवोंको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। ये सब भेद गोम्मटसारके पर्याप्तिप्ररूपणाधिकारमें लिखे हैं।

पज्जत्तस्स य उदये णियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्ति अपुण्णगो ताव॥ १२१॥
उदये दु अपुण्णस्स य सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि।
अंतोमुहुत्तमरणं लद्धिअपज्जत्तगो सो दु॥ १२२॥

इनका उदाहरण इस प्रकार है। जैसे किसीने घर बनवाया। सो नींव भरकर जबतक वह घर पूरा नहीं होता तबतक अपर्याप्तक कहते हैं तथा पूर्ण होनेपर पर्याप्तक कहलाता है। और नींव भरकर फिर कामका पड़ा रखना कभी पूरा न होना सो लब्ध्यपर्याप्तक है। भावार्थ—जो एक श्वासमें अठारहबार जन्म मरण करते हैं उनको लब्ध्यपर्याप्तक जानना।

११६-चर्चा एकसौ सोलहवीं

प्रश्न—ऊपर जो लब्ध्यपर्याप्तक और निर्वृत्यपर्याप्तक बतलाये हैं उन जीवोंके कौनसा गुणस्थान होता है और कौनसा नहीं होता ?

समाधान—लब्ध्यपर्याप्तक जीवके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है, मिथ्यात्वके सिवाय और कोई गुणस्थान नहीं होता। तथा निर्वृत्यपर्याप्तक जीवके मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और प्रमत्त ये चार गुणस्थान होते हैं। इनमें भी पहले और चौथे गुणस्थानसे मरकर यह जीव चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है। तथा सासादन गुणस्थानमें मरण करनेवाला जीव नरकको छोड़कर अन्य तीन गतियोंमें उत्पन्न होता है। इन तीनों गुणस्थानवाले जीवोंके जन्मके प्रथम समयसे लेकर औदारिक वा वैक्रियिक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता न हो तब तक निर्वृत्यपर्याप्तकपना है तथा छठे गुणस्थानवर्ती मुनियोंके जबतक आहारक शरीरकी पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक निर्वृत्यपर्याप्तकपना है। इस प्रकार इनका स्वरूप गोम्मटसारके पर्याप्ति नामके प्ररूपणाधिकारमें लिखा है। यथा—

लद्धिअपुण्णं मिच्छे तत्थ वि विदिये चउत्थ छट्ठे य।
णिव्वित्तिअपज्जत्ती तत्थ वि सेसेसु पज्जत्ती ॥ १२७ ॥

११७-चर्चा एकसौ सत्रहवीं

प्रश्न—चौदह मार्गणा और चौदह गुणस्थानोंमें सांतरके आठ भेद कौन-कौन हैं तथा उनका स्वरूप संख्या और विधान क्या हैं ?

समाधान—श्रीगोमट्टसारके मार्गणा नामके महाधिकारके प्रारंभमें लिखा है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा विवक्षित (जिसका कथन कर रहे हैं) गुणस्थानको तथा मार्गणा स्थानको छोड़कर अन्य कोई गुणस्थान वा मार्गणास्थान प्राप्त हो जाय और फिर जबतक वही विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणा स्थान प्राप्त न हो जाय तबतक वह उसका अन्तर कहा जाता है। उस अंतरको अंतरकाल संज्ञा है। जैसे इस लोकमें नाना जीवोंकी अपेक्षा उपशम सम्यग्दृष्टी जीवोंका अन्तर सात दिन है। अर्थात् तीनों लोकोंमें कोई जीव उपशम सम्यग्दृष्टी

न हों तो अधिकसे अधिक सात दिन तक न हों सात दिन बाद तो कोई न कोई अवश्य होता ही है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपराय संयमीका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। छह महीने बाद कोई न कोई सूक्ष्मसांपराय संयमी अवश्य होता ही है। आहारक और आहार मिश्रकाययोग वालेका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है। तीनसे ऊपर और नौसे नीचे चारसे आठ तककी संख्याको पृथक्त्व कहते हैं। इतने वर्ष बाद कोई न कोई अवश्य होता ही है। वैक्रियिक मिश्रकाय योगवालेका उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है। बारह मुहूर्तबाद कोई न कोई उत्पन्न होता ही है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य सासादनगुणस्थानवर्ती जीव तथा मिश्र गुणस्थानवर्ती जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर एक पल्यके असंख्यातवें भाग है। पल्यके असंख्यातवें भाग बाद कोई न कोई होता ही है। इस प्रकार आठों सांतर मार्गणाओंकी उत्कृष्ट कालकी मर्यादा है। तथा इन आठों ही उत्कृष्ट सांतरोंका जघन्य काल एक समय है। भावार्थ—इनके अन्तरका उत्कृष्ट काल तो पहले कहा है उससे अधिक कालका अन्तर नहीं पड़ सकता। इतने कालके बाद कोई न कोई उत्पन्न होता ही है। तथा जघन्यकालके अन्तरसे कम कालमें कोई उत्पन्न नहीं होता।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व वाले पांचवें गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिनका है चौदह दिन बाद कोई न कोई उत्पन्न होता ही है। तथा प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले छठे गुणस्थानवर्ती जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर एक पक्षका है। तथा किसी आचार्यके मतमें बीस दिनका भी है। अर्थात् इतने दिन बाद कोई न कोई होता ही है। सो ही गोम्मटसारमें लिखा है—

उवसम सुहुमाहारे वेगुव्वियमिस्स णरअपज्जत्ते।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥ १४३ ॥
सत्तदिणा छम्मासा वासपुधत्तं च बारस मुहुत्ता।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमयो दु ॥ १४४ ॥
पढमुवसम सहिदाए विरदा विरदीए चोद्दसा दिवसा।
विरदीए पण्णरसा विरहदिकालो दु बोधव्वो ॥ १४५ ॥

इस प्रकार लिखा है यदि इससे विशेष जानना हो तो तत्वार्थसूत्रकी टीका सर्वार्थसिद्धिसे जान लेना चाहिये।

११८-चर्चा एकसौ अठारहवीं

प्रश्न—चक्रवर्ती, नारायण आदि कितने ही पुण्याधिकारी पुरुषोंके हजारों स्त्रियां होती हैं तथा चक्रवर्ती रातमें पटरानीके ही महलमें रहते हैं परन्तु पटरानीके पुत्र नहीं होता वह बंध्या ही होती है तथा अन्य रानियोंके पुत्रादिक होते हैं और चक्रवर्तीके औदारिक शरीरका उदय रहता है। अर्थात् उसके औदारिक शरीर होता है। इसलिये अन्य रानियोंके पुत्रादिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—चक्रवर्ती आदि कितने ही पुण्य पुरुषोंके औदारिक शरीर तो होता है परन्तु वह विक्रियारूप परिणत हो जाता है। विक्रियाके दो भेद हैं एक पृथक् विक्रिया और दूसरी अपृथक् विक्रिया। जो विक्रियासे अपने शरीरके अनेक रूप बना लेवे उसको पृथक् विक्रिया कहते हैं। जैसे चक्रवर्ती छ्यानवे हजार शरीर बना लेता है तथा जो अलग अलग शरीर तो न बना सके किन्तु विष्णुकुमारके समान छोटा बड़ा शरीर बना सके उसको अपृथक् विक्रिया कहते हैं। ऊपर लिखे चक्रवर्ती आदि पुण्य पुरुषोंके ये दोनों ही विक्रियाएँ होती हैं। इसलिये वे अपनी विक्रियासे अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ वा अनेक शरीर करते रहते हैं। इस प्रकार गोम्मटसारके महामार्गणाधिकारमें योग मार्गणामें लिखा है—

बादरतेऊवाऊ पंचेंदियपुण्णगा विगुव्वंति।
ओरालियं सरीरं विगुव्वणप्पं हवे जेसिं ॥ २३२ ॥

अर्थात्—बादर तेजस्कायिक और बादर वायुकायिक ये दो बादर स्थावर कायके जीव तथा कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए चक्रवर्ती पुण्याधिकारी पुरुष सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, मनुष्य भोगभूमिमें उत्पन्न हुए सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच तथा मनुष्य ये सब अपने औदारिक शरीरको विक्रियारूप परिणमा लेते हैं। जिनके औदारिक शरीर ही विक्रियारूप होता है उनके किसीके पृथक् विक्रिया और कितने ही के अपृथक् विक्रिया होती है। तथा कितने ही के दोनों प्रकारकी विक्रिया होती है। ऐसा समझ लेना चाहिये।

११९-चर्चा एकसौ उन्नीसवीं

प्रश्न—प्रमत्त नामके छठ्ठे गुणस्थानवर्ती मुनियोंके आहारक शरीर होता है। चैत्य वन्दना करने, यात्रा करने वा पदार्थोंके निर्णय करनेके लिये मस्तकसे एक हाथ प्रमाण श्वेत पुरुषाकार प्रदेश निकलते हैं केवलीके दर्शन कर अथवा यात्रादिक अपना कार्य कर फिर वहीं आकर प्रवेश कर जाते हैं ऐसे इस आहारक शरीरकी उत्कृष्ट जघन्य स्थिति कितनी है ?

समाधान—आहारक शरीरकी जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। तथा आहारक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता होनेपर आहारक योगवाले छठे गुणस्थानवर्ती साधुकी आहारक काययोगके समयमें यदि आयुका अन्त हो जाय तो उनका मरण भी हो जाता है, सो ही गोम्मटसारमें मार्गणामहाधिकारके अन्तर्गत योग मार्गणाधिकारमें लिखा है—

अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदी जहण्णिदरे।
पज्जत्तीसंपुण्णं मरणं पि कदाचि संभवइ ॥ २३८ ॥

१२०-चर्चा एकसौ बीसवीं

प्रश्न—ऊपर आहारक शरीरका काल अंतर्मुहूर्त बतलाया उस समय वह साधु अपने औदारिक शरीरसे गमन आगमन आदि क्रिया करे या नहीं और यदि उसके विक्रिया ऋद्धि भी हो तो उस ऋद्धिके द्वारा शरीरकी विक्रिया रूप चेष्टा कर सकता है या नहीं ?

समाधान—प्रमत्त संयमी मुनिराजके एक कालमें एक ही साथ वैक्रियिक काययोगकी क्रियामें आहारक योगकी क्रिया नहीं होती। इससे सिद्ध होता है कि आहारक योगके समय औदारिक वैक्रियिक शरीरसे गमनागमनादिक क्रियाओंका नियमसे अभाव रहता है एक कालमें वो क्रियाएँ नहीं होतीं। सो ही गोम्मटसारमें योगमार्गणाधिकारमें लिखा है।

वेगुव्विय आहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्हि।
जोगो वि एककाले एक्केव य होदि णियमेण ॥ २४२ ॥

१२१–चर्चा एकसौ इक्कीसवीं

प्रश्न––औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणकी उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी है ?

समाधान––औदारिक शरीरकी जघन्य स्थिति एक श्वासके अठारहवें भाग है। इसका वर्णन पहले लिख चुके हैं। वैक्रियिककी जघन्य स्थिति देव नारकियोंकी अपेक्षा दस हजार वर्ष है। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है––

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम्। भवनेषु च। व्यंतराणां च।

––तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ४ सूत्र संख्या ३६–३७–३८।

तथा आहारककी जघन्य वा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है जो ऊपर लिख चुके हैं। तैजसकी जघन्यस्थिति कार्मणकी जघन्यस्थिति अन्य गतिके गमनकी अपेक्षा एक दो तीन समय है। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः। ––अध्याय २ सूत्र सं० ३०

इस प्रकार इनकी जघन्यस्थिति बतलाई। अब आगे इन पाँचों शरीरोंकी उत्कृष्टस्थिति बतलाते हैं। भोगभूमियोंकी अपेक्षा औदारिकोंकी बन्धरूप उत्कृष्टस्थिति तीन पल्य है। देव, नारकियोंकी अपेक्षा वैक्रियिककी तैंतीस सागर है। आहारककी अन्तर्मुहूर्त है। तैजस शरीरकी छयासठ सागर है। कार्माण शरीरकी उत्कृष्ट-स्थिति सामान्य रीतिसे सत्तर कोडाकोडी सागर है तथा विशेष रीतिसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकी तीस कोडाकोडी सागर है नामगोत्रकी बीस कोडाकोडी सागर है। सो ही गोम्मटसारमें लिखा है–

पल्लतियं उवहीणं तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं।
छावट्ठि कम्मट्ठिदि बंधुकस्सट्ठिदी ताणं॥ २५२॥

१२२–चर्चा एकसौ बाईसवीं

प्रश्न––देवोंकी जो देवांगनायें होती हैं उनकी उत्कृष्ट व जघन्य संख्या कितनी है ?

समाधान––देवांगनाओंकी जघन्य संख्या बत्तीस है। अर्थात् किसी भी देवके इससे कम देवांगनायें नहीं होतीं तथा इन्द्रके इससे असंख्यातगुणी देवांगनायें होती हैं। सो ही गोम्मटसारके वेदमार्गणाधिकारमें लिखा है––

इगपुरिसे वत्तीसं देवी तज्जोगभजिददेवोघे।
सगगुणगारेण गुणे पुरुसा महिला य देवेसु ॥ २७८ ॥

१२३–चर्चा एकसौ तेईसवीं

प्रश्न—नरकगतिमें तथा देवगतिमें क्रोधादिक कषायोंके उदयकालकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कितनी है ?

समाधान—नरकके जीवोंके तथा देवोंके कषायकी जघन्य उत्कृष्टस्थिति एक अन्तर्मुहूर्त है। भावार्थ–अन्तर्मुहूर्तके बहुत भेद हैं इसलिए जघन्य और उत्कृष्टस्थिति दोनों ही अन्तर्मुहूर्तमें शामिल हैं। उनकी कषायें इससे अधिक नहीं ठहर सकतीं।

इसका भी विशेष वर्णन इस प्रकार है। नरकके जीवोंके जो लोभ कषाय है उसका उदयकाल सबसे कम है। उसे लोभके उदयकालसे उनकी मायाका उदयकाल संख्यातगुणा है। मायासे मानका उदयकाल संख्यातगुणा है और मानसे क्रोधका उदयकाल संख्यातगुणा है। तथा देवोंके क्रोधका उदयकाल सबसे कम है। क्रोधसे मानका उदयकाल संख्यातगुणा है। मानसे मायाका उदयकाल संख्यातगुणा है और मायासे लोभका उदयकाल संख्यातगुणा है तथा नरकगतिके लोभका और देवगतिके क्रोधका काल भी अन्तर्मुहूर्त है और नरकगतिके क्रोधका तथा देवगतिके लोभका काल भी अन्तर्मुहूर्त है। जघन्य और उत्कृष्टपना समयकी हानि वृद्धिसे है परन्तु दोनोंका काल है अन्तर्मुहूर्त। सो ही गोम्मटसारके कषाय मार्गणाधिकारमें लिखा है—

पुह पुह कसायकालो णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो।
लोहादी संखगुणो देवेसु य कोहपहुदीदो ॥ २९६ ॥

इसके आगे मनुष्य तिर्यञ्चोंके कषायोंका वर्णन है सो विशेष वहाँसे जान लेना।

१२४–चर्चा एकसौ चौवीसवीं

प्रश्न—शास्त्रोंमें सात प्रकारके संयम बतलाये हैं उनमेंसे परिहारविशुद्धि संयमीकी निरुक्ति, उत्पत्ति, स्थिति और इसको धारण करनेवालेकी प्रवृत्तिका स्वरूप क्या है ?

समाधान—इसकी निरुक्ति अथवा प्रत्येक शब्दके अर्थसे निकलनेवाला अर्थ इस प्रकार है। जो छठे गुणस्थानमें रहनेवाले साधुके सामायिक छेदोपस्थापनापूर्वक परिहार अर्थात् छहों कायके जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे विशुद्धि अर्थात् अत्यन्त निर्मलता—आत्माकी निर्मलता हो गई है उस निर्मलताके साथ-साथ सम् अर्थात् अच्छी तरह यम अर्थात् अपनी आयु पर्यंत समस्त पापोंका त्याग कर देना सो परिहारविशुद्धि संयम है। तथा इसकी उत्पत्ति इस प्रकार होती है। जो मनुष्य जन्मसे लेकर भोजन पान आदिसे सदा सुखी रहा हो, कमसे कम तीस वर्षकी आयुमें दीक्षा लेवे, सामायिक आदि संयमके साथ-साथ कमसे कम आठ वर्ष पर्यंत तीर्थंकर भगवान्के चरणकमलोंके निकट रहकर आचारांगको आदि लेकर प्रत्याख्यान नामके नौवें पूर्व तक पाठी हो जाय ऐसे महामुनिके परिहारविशुद्धि नामका संयम उत्पन्न होता है। इस संयमको धारण करनेवाले साधुकी प्रवृत्ति इस प्रकार है। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों सामायिकके समयोंको छोड़कर बाकीके समयमें कमसे कम दो कोस बिहार करता है। रात्रिमें बिहार नहीं करता तथा जिसके वर्षाकालमें एक जगह चौमासा करनेका नियम भी नहीं रहता। एक जगह चौमासा करे भी और न भी करे। अब आगे इसकी स्थिति बतलाते हैं। इसकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है। अंतर्मुहूर्त बाद गुणस्थान बदल सकता है। तथा उत्कृष्ट स्थिति अड़तीस वर्ष कम एक करोड़ पूर्व है जिस मनुष्यकी एक करोड़ पूर्वकी आयु है, वह यदि तीस वर्षकी आयुमें दीक्षा ले लेवे और फिर आठ वर्ष तक तीर्थंकरके निकट रहकर पहले अंगसे लेकर ग्यारह अंग नौ पूर्व तक अभ्यास करे और फिर उसके परिहारविशुद्धिसंयम उत्पन्न हो ऐसी अवस्थामें वह संयम अड़तीस वर्ष कम एक करोड़ पूर्व तक रह सकता है।

प्रश्न—वर्षाकालमें सामान्य साधु भी गमन नहीं करते फिर भला परिहारविशुद्धिसंयमको धारण करनेवाला साधु किस प्रकार गमन करता है। यदि वह वर्षाकालमें भी गमन करता है तो फिर उसके परिहारविशुद्धि अर्थात् हिंसाका त्याग पूर्वक आत्माकी विशुद्धि किस प्रकार बन सकती है?

समाधान—जिस प्रकार कमलके पत्ते जलमें रहते हुए भी जलसे अलिप्त रहते हैं उसी प्रकार जिस मुनिराजके परिहारविशुद्धिसंयमकी ऋद्धि प्राप्त हो गई है वे यदि छहों कायके जीवोंके समूहमें भी गमन करें तो भी वे पापोंसे लिप्त नहीं होते हैं।

भावार्थ—उस ऋद्धिका ऐसा ही माहात्म्य है कि जिसके होते हुये जलमें, स्थलमें, अग्निमें, वृक्षोंपर, फलोंपर, पत्रोंपर, पुष्पोंपर वा तन्तुओं पर कहीं पर गमन करें परन्तु उनके शरीरसे किसी भी सूक्ष्म वा स्थूल जीवको किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती है। लिखा भी है—

परिहारर्द्धिसमेतः जीवः षट्कायसंकुले विहरन्। पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन ॥

यही वर्णन श्रीगोमट्टसारके संयम मार्गणा अधिकारमें लिखा है।

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले। पच्चक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ॥४७३

१२५–चर्चा एकसौ पच्चीसवीं

प्रश्न—इन्द्रियोंके विषय कहीं तेईस कहे हैं और कहीं सत्ताईस कहे हैं सो इनमें विशेषता क्या है?

समाधान—पाँचों इन्द्रियोंके तथा मनके विषय सब मिलकर अट्ठाईस हैं। तेईस तो सामान्य हैं और सत्ताईस वा अट्ठाईस विशेष हैं। वे भेद इस प्रकार हैं। खट्टा, मीठा, कषायला, कड़वा और तीक्ष्ण वा चरपरा ये पाँच रस रसना इन्द्रियोंके विषय हैं। इन पाँचों विषयोंको यह जीव रसना इन्द्रियोंके द्वारा जानता है। सफेद, पीला, हरा, लाल, काला ये पाँच वर्ण नेत्र इन्द्रियके विषय हैं। सुगंध और दुर्गंध ये दो गंध नासिका इंद्रियके विषय हैं। हलका, भारी, नरम, कठोर, ठंडा, गरम, रूखा, चिकना, ये आठ स्पर्श स्पर्शन इन्द्रियके विषय हैं तथा सचेतन, अचेतन, मिश्र ये तीन प्रकारके शब्द श्रोत्र वा कर्ण इंद्रियके विषय हैं। तथा इन्हीं शब्दोंके स्वरोंकी अपेक्षा सात भेद होते हैं। निषाद, ऋषभ, गांधार, षडज, मध्यम, धैवत, पंचम। यदि तीन स्वरों के बदले ये सात मिला दिये जाँय तो तेईसके बदले सत्ताईस भेद हो जाते हैं। इनमें अनेक विकल्प करनेरूप मनका विषय मिला देनेसे सैनी पंचेंद्रियके सब अट्ठाईस विषय हो जाते हैं। सो ही गोम्मटसारमें संयम मार्गणाधिकारमें लिखा है—

पंचरसपंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा।
मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा ॥ ४७६ ॥

१२६-चर्चा एकसौ छब्बीसवीं

प्रश्न—नारकी जीवोंके शरीरका वर्ण एकसा है अथवा जुदे-जुदे रंगका है ?

समाधान—नारकी जीवोंका शरीर वैक्रियिक है और उनका सबका वर्ण कृष्ण वर्ण वा काला है। सो ही गोम्मटसारके लेश्याधिकारमें लिखा है—

णिरया किण्हा कप्पा, भावाणुगया दु तिसुरणरतिरिये।
उत्तरदेहे छक्कं, भोगे रविचंदहरियंगा ॥४९६॥

१२७-चर्चा एकसौ सत्ताईसवीं

प्रश्न—पृथ्वीकायिक आदि समस्त सूक्ष्म जीवोंके शरीरका वर्ण कौनसा है ?

समाधान—समस्त सूक्ष्म जीवोंका शरीर कापोत रंगके (कबूतरके रंगके) समान है। सो ही गोम्मट-सारके लेश्याधिकारमें लिखा है—

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदा, सव्व विग्गहे सुक्का।
सव्वो मिस्सो देहो, कवोदवण्णो हवे णियमा ॥ ४९८ ॥

१२८-चर्चा एकसौ अट्ठाईसवीं

प्रश्न—विग्रहगतिमें रहनेवाले अनाहारक जीवके कार्मण योगके शरीरका वर्ण कौनसा है ?

समाधान—विग्रहगतिके समयमें समस्त जीव शुक्ल शरीर धारण करते हैं। भावार्थ—कार्माण शरीरका वर्ण शुक्ल है। सो ही गोम्मटसारमें लेश्याधिकारमें लिखा है—

सव्व विग्गहे सुक्का

१२९-चर्चा एकसौ उनतीसवीं

प्रश्न—मिश्रयोगवाले जीवके शरीरका वर्ण कौनसा है ?

समाधान—मिश्रयोगवालेके शरीरका वर्ण कपोत वर्ण है। भावार्थ—अपनी-अपनी पर्याप्तिके प्रारम्भके प्रथम समयसे लेकर जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक अपर्याप्तक अवस्था कहलाती है। उस अपर्याप्तक अवस्थामें शरीरका वर्ण नियमसे कपोत वर्णका होता है। सो ही गोम्मटसारमें लिखा है—

१३०–चर्चा एकसौ तीसवीं

प्रश्न—कृष्ण आदि छहों लेश्यावालोंके लक्षण क्या-क्या हैं ?

समाधान— जिसके अत्यन्त तीव्र वा भयानक क्रोध हो, जो बैरभावको कभी न छोड़े, परस्पर लड़ाई करने वा युद्ध करनेका जिसका स्वभाव हो, जो दयाधर्मसे सर्वथा रहित हो, हिंसाधर्मको माननेवाला हो, दुष्ट हो, जो किसी भी गुरुजन वा महापुरुषोंके वश न हो, अथवा गुरु आदि महापुरुषोंकी आज्ञाके बाह्य हो, गुरुजनोंकी आज्ञाको न मानता हो । भावार्थ–निगुरा हो, स्वच्छन्द हो, दीक्षा-शिक्षाका लोप करनेवाला और मनोमति (मनसे धर्मकी अनेक मिथ्या कल्पनाएँ करनेवाला) हो, उन्मत्त हो, यथार्थ क्रियाओंके करनेमें अत्यन्त मंद हो, होनाचारी हो, बुद्धिरहित हो, वर्तमान समयके कार्योंको भी जाननेवाला न हो, जो विज्ञान पांडित्य वा चतुरतासे सर्वथा रहित हो, स्पर्शन आदि समस्त इन्द्रियोंके समस्त विषयोंके भोगोपभोगोंमें अत्यन्त लंपटी हो, जो अभिमानी हो, कपटी हो, कुटिल हो, क्रिया करनेमें कुंठित वा मंद हो, जिसके अभिप्रायको कोई दूसरा न जान सके, जो अत्यन्त आलसी हो, इस प्रकार जिसके लक्षण हों, उसे कृष्णलेश्यावाला समझना चाहिये। जिसको नींद अधिक आवे, दूसरोंको ठगनेका जिसका स्वभाव हो तथा धन-धान्य आदि पदार्थोंमें जिसको अत्यन्त तीव्र इच्छा वा लालसा हो उसको नीललेश्यावाला समझना चाहिये । जो दूसरों पर सदा क्रोध करता रहे, अनेक प्रकारसे दूसरोंको पीड़ा देता रहे, जो अत्यन्त शोक वा भय करनेवाला हो, दूसरेके धन-धान्य ऐश्वर्य आदिको न देख सके, जो दूसरेका अपमान करता रहे, सदा अपनी प्रशंसा ही करता रहे, दूसरोंको अपने समान पापी, कपटी, मानी समझता हुआ किसीका विश्वास न करे, जो दूसरोंकी हानि-वृद्धिको कुछ न समझे, जो युद्धमें मरना चाहे, जो अपनी प्रशंसा करनेवालोंको बहुतसा धन देवे और जो कार्य-अकार्यको कुछ न गिने उसे कापोतलेश्यावाला समझना चाहिये । जो कार्य-अकार्यको जाने, सेवन करने योग्य और न सेवन करने योग्यको समझे, सबको समान देखे, जो दयालु पुरुषोंपर प्रेम करे, जो मनसे, वचनसे, कायसे सब तरहसे कोमल हो, उसे पीतलेश्यावाला समझना चाहिये । जो पापोंका त्यागी हो, भद्रपरिणामी हो, उत्तम-उत्तम कार्य करनेरूप ही जिसका स्वभाव हो, शुभकार्योंके लिए उद्योग करना ही जिसका कर्तव्य हो,

जो अरिष्ट (अशुभ कर्मोंका उदय) अथवा उपद्रवोंके दुखोंको सहन करनेमें दृढ़ हो, मुनियोंकी वा गुरुजनों-की पूजादिक करनेमें प्रेम रखता हो उसे पद्मलेश्यावाला समझना चाहिये। जो एकांतका पक्षपाती न हो, दूसरेकी निन्दा करनेवाला न हो, समस्त जीवोंमें समानभाव रखता हो, इष्ट वा अनिष्ट पदार्थोंमें किसी प्रकारका राग वा द्वेष न रखता हो, पुत्र, स्त्री आदि कुटुम्बियोंमें भी स्नेह न रखता हो, उसे शुक्ललेश्यावाला समझना चाहिये। इस प्रकार छहों लेश्या वालोंके लक्षण गोम्मटसारके लेश्या नामकी मार्गणाके अधिकारमें लिखे हैं।

चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥ ५०९ ॥
मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ॥ ५१० ॥
णिंदावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेसस्स ॥ ५११ ॥
रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो।
असुयइ परिभवइ परं पसंसये अप्पयं बहुसो ॥ ५१२ ॥
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं यि वि परं पि मण्णंतो।
थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणिवड्ढिं वा ॥ ५१३ ॥
मरणं एत्थेइ रणे देइ सुबहुगं पि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥ ५१४ ॥
जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥ ५१५ ॥

चागी भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥ ५१६ ॥
णय कुणइ पक्खवायं ण वि वा णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा णेहो वि य सुक्कलेसस्स ॥ ५१७ ॥

१३१-चर्चा एकसौ इकतीसवीं

प्रश्न--चारों ही गतिवाले जीवोंके वर्तमानकी अपनी आयुमें अन्य गतिका आयुबंध किस-किस कालमें होता है और किस-किस गतिकी आयुका बंध होता है।

समाधान--देवगति और नरकगतिके जीवोंकी आयु जब अधिक से अधिक छह महीनेकी रह जाती है तब वे मनुष्य अथवा तिर्यञ्च आयुका बंध करते हैं। भावार्थ--देवोंकी आयु जब छह महीनेकी रह जाती है तब वे सम्यक्त्व वा मिथ्यात्वके उदयसे होनेवाले अपने-अपने परिणामोंसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, मनुष्य और पशु इन पाँच प्रकारकी गतियोंमेंसे किसी भी एक गतिके लिए आयुबंध कर लेते हैं। इसी प्रकार नारकी जीव मनुष्य अथवा तिर्यञ्चगतिकी आयुका बंध करते हैं। सातवीं पृथ्वीके नारकी जीव तिर्यंचगतिका ही आयु बंध करते हैं। सातवें नरकके जीव मनुष्य आयुका बन्ध नहीं करते। मनुष्य तथा तिर्यंच गतिवाले जीव जब अपनी वर्तमान आयुका तीसरा भाग रह जाता है तब वे अपने-अपने भावोंके अनुसार चारों ही गतियोंमेंसे किसी एक गतिका आयु बंध कर सकते हैं। भोगभूमियोंके मनुष्य, तिर्यंच भी अपनी आयु छह-महीने बाकी रहने पर देवगतिका ही आयु बंध करते हैं। एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय जीव मनुष्य वा तिर्यंचगतिकी आयुका बंध करते हैं। इनमें भी तेजस्काय और वायुकायके एकेंद्रिय जीव तिर्यंच आयुका ही बंध करते हैं। ये दोनों ही प्रकारके एकेंद्रिय जीव मनुष्यगतिकी आयुका बंध नहीं कर सकते। ऐसा श्रीगोम्मटसारके कर्मकांडाधिकारमें लिखा है।

---

१. यहाँपर इतना विशेष और समझ लेना चाहिये कि आयुबंध आयुके त्रिभागमें पड़ता है। और वे त्रिभाग अधिकसे अधिक आठ लिये जाते हैं। जैसे किसी मनुष्यकी आयु ८१ इक्यासी वर्षकी है। वह अपनी आयुका एक त्रिभाग बाकी रहनेपर अर्थात् दो भाग वा ५४ चौअन वर्ष बीत जाने पर आगेके लिये आयुबंध करेगा। यदि कारणवश इस समय आयु बंध न कर सका तो

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स ।
णरतिरया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥ ८६ ॥
भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति ।
इगिविगला णरतिरयं तेउदुगा सत्तगा तिरियं ॥ ८७ ॥

१३२–चर्चा एकसौ बत्तीसवीं

प्रश्न––षोडशकारण, दशलाक्षणिक, रत्नत्रय तथा पंचमी आदि अनेक प्रकारके व्रत जैनशास्त्रोंमें बतलाये हैं। तथा उन व्रतोंको विधिपूर्वक पूर्ण कर लेनेपर प्रतिष्ठापूर्वक उद्यापन करनेकी आज्ञा व्रतकथाकोश आदि अनेक शास्त्रोंमें बतलाई है। परन्तु यदि किसी पुरुषसे उसके उद्यापनकी विधि प्रतिष्ठापूर्वक न बन सके तो वह उन व्रतोंको किस प्रकार कर सकता है ?

समाधान—यदि उद्यापन करनेमें जिनप्रतिष्ठा न बन सके तो उसके अभावमें शांतिक कार्य करना चाहिये। अर्थात् शांतिचक्रका पाठ कर अभिषेकपूर्वक उस व्रतके उद्यापनकी विधि करनी चाहिये ऐसा मार्ग है। यही बात अनंतव्रतकी उद्यापनकी विधिमें अनंतव्रतकी कथामें आचार्य पद्मनंदिने लिखी है।

अभावे तु प्रतिष्ठायाः शांतिकं कार्यमंजसा।

तथा जिस पुरुषकी इतनी भी शक्ति न हो अर्थात् वह न तो शांतिक कर्म कर सके और न उद्यापनकी विधि ही कर सके तो उसे अपने व्रत विधिपूर्वक दूने समय तक करना चाहिये। जैसे सोलह कारण सोलह

बाकीके जो सत्ताईस वर्ष रहे हैं उनके त्रिभागमें अर्थात् ९ वर्षकी आयु शेष रहनेपर ७२ वर्ष बीत जानेपर आयुका बंध करेगा। यदि यहाँ भी न कर सका तो उस बाकीके भी त्रिभागमें अर्थात् तीन वर्ष आयु शेष रहनेपर परगतिके लिये आयुबंध करेगा। यदि वहाँ भी न कर सका तो एक वर्ष आयु शेष रहने पर आयु बंध करेगा। यदि यहाँ भी न हुआ तो चार महीने वा १२० दिन शेष रहने पर आयुबन्ध करेगा। यदि यहाँ भी न हुआ तो ४० दिन शेष रहनेपर, यदि वहाँ भी न हुआ तो इसका एक तिहाई १३-⅓ दिन आयु बाकी रहने पर आयुबंध करेगा। यदि यहाँ भी न हो सका तो इसकी तिहाई ४-⅔ दिन बाकी रहनेपर आयुबंध करेगा। इस प्रकार आठ त्रिभागोंमें आयुबंध होता है यदि इन त्रिभागोंमें बंध नहीं हुआ तो अन्तके अन्तर्मुहूर्तमें होता है। देव, नारकी और भोगभूमियोंके लिये अंतके छह महीनेमें इसी प्रकार आठ त्रिभाग कर लेने चाहिये।

वर्ष तक किये जाते हैं सो उसे बत्तीस वर्ष तक करना चाहिये। पीछे अपनी शक्तिके अनुसार पूजनादिक विधान कर व्रतोंका विसर्जन करे। सो ही अनंतव्रतकी कथामें लिखा है—

अभावे तु प्रतिष्ठायाः शांतिकं कार्यमंजसा।
तस्याप्यभावे कर्तव्यं द्विगुणं तद्दिनात्मकम् ॥ इत्यु ॥

यही बात श्रीवसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित श्रावकाचारमें कायक्लेशाधिकारमें लिखी है।

उज्जवण विहिणंतरइ काउजइ कोवि अत्थपरिहीणो।
तो विगुणं कायव्वा उववासविहाणपयत्तेण ॥३६०॥

इसकी टीकामें लिखा है—

उद्यापनविधिं न समर्थः कर्तुं यदि कोपि अर्थहीनः।
तर्हि द्विगुणं कर्तव्यं उपवासादि विधानकं प्रयत्नेन ॥

अर्थात् यदि कोई धनहीन हो और व्रतोंके उद्यापनकी विधिको न करे तो उसे उपवास आदि संपूर्ण विधान प्रयत्नपूर्वक दूने करने चाहिये ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है सो देख लेना। यदि जिनप्रतिष्ठापूर्वक उद्यापन करनेकी शक्ति न हो तो उन व्रतोंसे अरुचि नहीं करनी चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार तपको बढ़ानेके लिये अपने अनेक व्रतोंको विधिपूर्वक दूर कर लेने चाहिये। इन व्रतोंका अलग-अलग फल व्रतकथाकोश आदि अनेक शास्त्रोंमें लिखा है वहांसे जान लेना चाहिये। तपके भेदोंमें अनेक व्रत हैं सो कर्मोंकी निर्जराके लिये हैं इसलिये इनसे अरुचि नहीं करनी चाहिये। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

तपसा निर्जरा च। —अध्याय ९ सूत्र सं० ३।

अर्थात् तपसे संवर भी होता है और कर्मोंकी निर्जरा भी होती है।

१३३-चर्चा एकसौ तेतीसवीं

प्रश्न—ऊपर लिखे हुए व्रतोंमेंसे कोई मनुष्य कुछ व्रत ले लेवे और कुछ दिन तक उनका पालन करे

फिर अशुभकर्मके उदयसे किसी कारणको पाकर व्रत गल जाय छूट जाय तो उसका क्या प्रायश्चित्त है और दुबारा उसको पालन करनेकी विधि क्या है ?

समाधान—जो कोई व्रती पुरुष विधिपूर्वक व्रत ले लेवे और फिर रोग, शोक वा अन्य किसी कारणसे व्रतकी मर्यादामें एक-दो आदि कुछ उपवास बाकी रह जाय तथा ऐसी हालतमें वह व्रत छूट जाय, भ्रष्ट हो जाय तो फिर उस व्रतीको चाहिये कि वह फिर प्रारम्भसे उस व्रतको करे अर्थात् उस व्रतके लिये जो पहले व्रत, उपवास किये थे वे सब व्रत भंगके पापकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्तमें चले गये अब फिर उसे प्रारम्भसे ही व्रत धारण करना चाहिये। ऐसा अनुक्रम है सो ही वसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है—

जइ अंतरम्मिकारणवसेण एको व दोव उववासो।
ण कओ तस्सो मूलाओ पुणो वि सा होइ कायव्वो ॥ २६१ ॥

इसकी टीका इस प्रकार है—

यद्यन्तरकाले कारणवशेन कोपि वा द्वयोपवासाः।
न कृताः तर्हि मूलात् पुनरपि सा विधिर्भवति तत्कर्तव्या ॥

अर्थात् यदि बीचमें किसी कारणसे एक वा दो उपवास न किये हों तो प्रारम्भसे ही उसकी विधि करनी चाहिये। यदि वह ऐसा न करे तो उसे महापापी समझना चाहिये।

प्रश्न—व्रत भंग करनेसे महापाप लिखा है सो वह कौन सा महापाप लगता है ?

समाधान—जो कोई जीव अपने गुरुसे यम वा नियमरूप कोई व्रत ले लेवे और फिर चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे उस व्रतको भंग कर देवे वह पुरुष एक हजार जिन मंदिरोंके भंग करनेके समान पापका भागी होता है। इसके समान और कोई पाप नहीं है। इसीलिये उसको महापापी कहते हैं। सो ही श्रीश्रुतसागर-प्रणीत व्रतकथाकोशमें सप्त परमस्थान व्रतकी कथा कहते समय लिखा है—

गुरून् प्रतिभुवः कृत्वा भवत्येकं धृतं व्रतम्। सहस्रकूटजैनेंद्रसद्मभंगाघभागलम् ॥

इसलिये व्रत भंग करनेका प्रायश्चित्त अवश्य लेना चाहिए।

१३४–चर्चा एकसौ चौंतीसवीं

प्रश्न—भगवानकी पूजा निक्षेप विधियोंसे किस प्रकारकी जाती है।

समाधान—भव्य जीव अपने-अपने समय पर विधिपूर्वक देव, शास्त्र, गुरु आदिकी पूजा छह निक्षेपोंसे करते हैं आगे उन्हींको दिखलाते हैं। नाम पूजा, स्थापना पूजा, द्रव्य पूजा, क्षेत्र पूजा, काल पूजा, भाव पूजा, इन छह निक्षेपोंसे पूजा करनेका विधान श्रीवसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है—

णामट्ठवणा दव्वे खित्ते काले वियाण भावे य।
छव्विह पूया भणिया समासदो जिणवरिंदेहिं॥ ३८२॥

आगे इनका स्वरूप विस्तारपूर्वक बतलाते हैं। जो पुरुष अरहंत आदि पूज्य परमेष्ठियोंका नाम लेकर किसी पवित्र क्षेत्रमें पुष्पादि द्रव्योंको चढ़ाता है वह नाम पूजा कहलाती है। भावार्थ—जिसका नाम लेकर पुष्प चढ़ाये उसकी नामपूजा की ऐसा समझना चाहिये। सो ही लिखा है—

उच्चार कुणइ णामं अरुहाईणं विसुद्धदेसम्मि।
पुप्फाणि जं खिविज्जंति वण्णिया णामपूया सा॥

इस प्रकार नाम पूजाका स्वरूप है। दूसरी स्थापना पूजा है उसके दो भेद हैं, पहला भेद सद्भाव अथवा तदाकार अथवा साकारके नामसे कहा जाता है और दूसरा भेद असद्भाव अथवा अतदाकार नामसे पुकारा जाता है। इस प्रकार दो भेद हैं। सोना, चांदी आदि धातुओंके अथवा पाषाण आदिके बने हुए साकार-वाले (उसी आकारके) पदार्थमें उसके गुणोंका आरोपण करना तदाकार स्थापना है। जैसे अरहंत देवकी प्रतिमा बनाकर उसमें शास्त्रोक्त पंच कल्याणक विधिसे प्रतिष्ठा कर विधिपूर्वक अरहंत देवके गुणोंका आरोपण करना और फिर उस प्रतिमाको अरहंत मानकर पूजना सो तदाकार वा साकार अथवा सद्भाव स्थापना पूजा है। सो ही लिखा है—

सब्भावासब्भावा दुविहा ठवणा जिणेहि पण्णत्ता।
सायारवंत वत्थुमि जं गुणारोवणं पढमा॥ ३८४॥

अक्षत आदि द्रव्योंमें "ये अरहंत परमेष्ठी हैं अथवा सिद्ध परमेष्ठी हैं" इस प्रकार मंत्रपूर्वक स्थापना करना वा "आह्वान तिष्ठ ठः ठः स्थापनं मम सन्निहितो भव भव वषट् इत्यादि मंत्रोंसे अक्षत वा पुष्पोंमें स्थापना करना और उसकी अष्ट द्रव्योंसे पूजा करना सो असद्भाव अथवा अतदाकार स्थापना निक्षेप है। सो ही लिखा है—

अक्खय वराउ ओव्वा अमुगोए सुत्तिणय बुद्धीए।
सकप्पउणवयणं एस विणेया असब्भावा ॥ ३८५ ॥

इस प्रकार सद्भाव और असद्भावके भेदसे स्थापना पूजा दो प्रकार है। यहाँपर कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि जो तीर्थङ्कर केवली भगवान् साक्षात् समवशरणमें विराजमान हैं उनकी पूजा करना सो तदाकार पूजा है। तथा उनकी प्रतिमाकी पूजा करना अतदाकार पूजा है क्योंकि तीर्थङ्करकी प्रतिमामें यथोक्त रीति नहीं होती। भावार्थ—शरीरकी ऊँचाई, शरीरका वर्ण, सर्पके फणा अथवा सर्पके स्कन्धका सम्बन्ध होना, कर्ण तथा और भी अनेक प्रकारके चिह्न प्रतिमामें तीर्थंकरके स्वरूपसे विपरीत रूप दिखाई पड़ते हैं। इसलिए प्रतिमा तदाकार नहीं है किन्तु अतदाकार है। और इनकी पूजा भी अतदाकार पूजा है। ऐसा कहते हैं सो यह सब शास्त्र विरुद्ध[2] है। इस प्रकार दो प्रकारकी स्थापना पूजा बतलाई।

जो अरहन्त भगवान् केवलज्ञानसे सुशोभित समवशरणमें विराजमान हैं उनकी जल-फल आदि आठों

---

१. पूजामें आह्वान, स्थापना, सन्निधिकरण किया जाता है वह स्थापना निक्षेप नहीं है क्योंकि स्थापना निक्षेप "यह वही है" ऐसा संकल्प किया जाता है परन्तु आह्वान, स्थापना और सन्निधिकरणमें "यह वही है" ऐसा सङ्कल्प नहीं होता, किन्तु वह तो एक आदर सत्कारकी विशेष रीति है। यदि यह विधि न की जाय तो पूजामें कमी समझी जाती है। इसीलिए आह्वान, स्थापन आदिको पूजाके अङ्गोंमें बतलाया है। पूजाके पाँच अङ्ग बतलाये हैं—आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजा और विसर्जन। पूजा अभिषेक पूर्वक होती है इसलिये अभिषेकको मिलाकर पूजाके छः अंग हो जाते हैं। ये सब भेद श्रीयशस्तिलकचम्पूमें लिखे हैं।

असलमें तदाकार प्रतिमाकी पूजा करना तदाकार स्थापना है और शतरंजमें हाथी, घोड़ाकी कल्पना कर गोट बनाना अथवा क्षेत्रपालादिकको अतदाकार मूर्ति बनाना अतदाकार स्थापना है।

२. ऊपर जो स्थापनाके भेद बतलाये हैं उससे भी यह कथन शास्त्रविरुद्ध सिद्ध होता है।

द्रव्योंसे पूजा करना सो द्रव्यपूजा है। इसका अभिप्राय यह है कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छः द्रव्य हैं इन सबमें सारभूत द्रव्य परमात्म द्रव्य है उस परमात्माकी अष्टद्रव्यसे पूजा करना द्रव्यपूजा है। सो ही लिखा है—

दव्वेण य दव्वस्स य जा पूया जाण दव्वपूजा सा।
दव्वेण गंधसलिलाइपुव्वभणियेण कायव्वा ॥ ४४६ ॥

यदि इस द्रव्यपूजाका विशेष वर्णन किया जाय तो इसके तीन भेद हैं—सचित्त द्रव्यपूजा, अचित्त द्रव्यपूजा और मिश्रद्रव्यपूजा। साक्षात् जिनेन्द्रदेवको अथवा साक्षात् आचार्य, उपाध्याय वा साधुओंको जल, गन्ध आदि आठों द्रव्योंसे यथायोग्यरीतिसे पूजा करना सो सचित्त द्रव्यपूजा है। अर्थात् चैतन्यगुणविशिष्ट परमेष्ठीकी पूजा करना सचित्त द्रव्यपूजा है। सो ही लिखा है—

तिविहा दव्वे पूया सच्चित्ताचित्तमिस्सभेयेण।
पच्चक्खजिणाईणं सचित्तपूया जहाजोगं ॥ ४५० ॥

तथा उन तीर्थङ्करोंके मोक्ष हो जाने बाद वा आचार्य, उपाध्याय, साधुओंके मोक्ष हुए बाद उनके शरीरकी पूजा करना अथवा उनके वचनोंकी शास्त्रोंकी जल, गन्धादिकसे पूजा करना सो अचित्त द्रव्यपूजा है। क्योंकि यह शरीर अथवा वचन चेतना रहित हैं। इसी प्रकार शास्त्रसहित गुरुकी पूजा करना सो सचित्त-अचित्त मिली हुई मिश्र द्रव्यपूजा है। इसमें शास्त्र तो अचित्त हैं और साक्षात् गुरु सचित्त हैं। इन दोनोंकी समुच्चयपूजा करना मिश्रपूजा है। सो ही लिखा है—

तेसिं च सरीराणं दव्वसुदस्सवि अचित्त सा पूया।
जा पुण दोण्ह इ कीरइ णायव्वा मिस्स पूया सा ॥ ४५१ ॥

इस प्रकार द्रव्यपूजा तीन प्रकार है।

जहांपर तीर्थङ्करोंके जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण आदि कल्याणक हुए हैं वहां जाकर उस भूमिकी जल, गन्धादिकसे पूजा करना सो क्षेत्रपूजा है। भावार्थ—अयोध्या, बनारस आदि नगरोंमें जहां-जहां श्रीवृषभादि और

पर्यन्त चौबीसों तीर्थङ्करोंने जन्म लिया है, जिन-जिन तपोवनोंमें दीक्षा धारण की है, जहाँ-जहाँ केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है तथा कैलाश, सम्मेदशिखर, गिरनार, चम्पापुर, पावापुर आदि जिन-जिन स्थानोंसे मोक्ष प्राप्त किया है, उन-उन स्थानोंमें वा क्षेत्रोंमें जाकर उनकी जल, गन्धादिकसे पूजा करना सो क्षेत्रपूजा है। सो ही लिखा है—

जिण जम्मण णिक्खवण णाणुप्पत्ती य मोक्ख संपत्ति।
णिसि ही सुखेत्तपूया पुव्वविहाणेण कायव्वा ॥ ४५३ ॥

चौबीस तीर्थङ्करोंके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष, कल्याणक जिन-जिन महीनोंमें जिन-जिन पक्षोंमें व जिन-जिन दिनोंमें हुए हैं, उन्हीं दिनोंमें ऊपर लिखी विधिपूर्वक जल, गन्ध आदिसे पूजा प्रभावना करना तथा उसी कालमें इक्षुरस, घी, दूध, दही और सुगन्धित जलसे भरे हुए अनेक प्रकारके पवित्र कलशोंसे भगवान् अरहन्तदेवकी मूर्तिका अभिषेक वा महाभिषेक करना, रात्रिमें जागरण करना, संगीत शास्त्रोंके नियमानुसार नाटक आदि करना, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सातों स्वरोंसे, छहों रागोंसे, छहों रागोंकी तीसों भार्याओंसे तथा उनके आठों पुत्रोंसे अनेक प्रकारकी राग-रागिनियोंसे सुशोभित ऐसे श्री जिनेन्द्रदेवके गुणोंके समूहका वर्णन करना, गाना, स्तुति करना सो सब कालपूजा है तथा नन्दीश्वर पर्वके (अष्टाह्निकापर्वके) आठों दिन तक तथा व्रतोंके दिनोंमें भगवान् जिनेन्द्रदेवकी महिमाको प्रगट करना सो सब कालपूजा है।

भावार्थ—यह कालपूजा उसी कालमें होती है अन्य कालमें नहीं होती। सो ही लिखा है—

गब्भावयारजम्माहिसेयणिक्खवणाणणिव्वाणं।
जम्हि दिणे संजायइ जिणण्हवणं तह्दिणे कुज्जा ॥ ४५४ ॥
इक्खुरससप्पिदहिखीरं गंधजलपुण्णविविहकलसेहिं।
णिसि जागरणं च संगीय णाउपाइहि कायव्वं ॥ ४५५ ॥

णंदीसर अट्ठदिवसेसु तहय अण्णेसु उचियपव्वेसु ।
जं कीरइ जिणमहिमा विण्णेया कालपूया सा ॥ ४५६ ॥

इस प्रकार कालपूजाका वर्णन किया ।

भगवान् अरहन्तदेवके अनन्त ज्ञान आदि अनन्त चतुष्टयोंका वर्णन करना, भक्तिपूर्वक उनकी त्रिकाल वन्दना करना अर्थात् भक्तिपूर्वक सामायिक स्थलका पाठ करना सो भावपूजा है। अथवा पंच णमोकार मन्त्रका उच्चारण कर जप करना, अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् जिनेन्द्रदेवका स्तोत्र करना सो भावपूजा है। अथवा पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीतके भेदसे चार प्रकारका धर्मध्यान धारण करना सो भी भावपूजा है। सो ही लिखा है—

काऊ णाणं त चउट्ठयाइ गुणकीत्तणसुभत्तीए ।
जं वंदणं तिकालं कीरइ भावच्चणं तं खु ॥ ४५७ ॥
पंचणमोयारेहिं अइवा जावं कुणिज्ज सत्तीए ।
अहवा जिणदत्थोत्तं बियाण भावच्चणं तंपि ॥ ४५८ ॥
पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं रूववज्जिय अहवा । जं झाइज्जइ झाणं भावमहंतं विणिदिट्ठं॥४५९

इस प्रकार भावपूजाका वर्णन समझना चाहिये। इसप्रकार श्रीवसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्तीने अपने श्रावकाचारमें इन छहों ही निक्षेप पूजाओंका वर्णन किया है। तथा यही वर्णन श्रीसकलकीर्तिने लक्ष्म्याविपुराण का श्रीवृषभनाथचरित्रमें किया है। यथा—

इदं नामावलिद्रव्यं स्तोत्रं पुण्यं पठेत्सुधीः । नित्यं योर्हद्गुणं प्राप्या चिरात्सोर्हन् भवादृशः॥६१।
त्वदीयाः प्रतिमाः नाथ येऽर्चयंति स्तुवंति च । नमंति च ते पुण्येन लभंते त्रिजगच्छ्रियः ॥६२॥
साक्षात्त्वां मूर्तिमंतं ये भजंति स्तवनादिभिः । तेषां पुण्यफलादीनां संख्यां वेत्त्यत्र को बुधः॥६३।
दिव्यमौदारिकं देहं जगत्सारागुनिर्मितम् । भवदीयं सुभक्त्या ये स्तुवंति वर्णवर्णनैः ॥६४॥

नेऽतिधर्मेण देवा हो भुक्त्वा सौख्यं परंदिवि। चरमांगं तपोभारक्षमं श्रयंति नान्यथा।६५।
निर्वाणक्षेत्रभूत्यादीन् येऽर्चयंति नमंति च। स देवत्वं तु क्रमान्नूनं निर्वाणं प्राप्नुयात्यहो।६६
पंचकल्याणकालाद्यैर्यस्त्वा स्तौसि गुणैः प्रभो। कल्याणसुखसाराणि हीहामुत्र लभेत् सः।६७।
केवलज्ञानदृष्ट्यादिगुणैः स्तुवंति ये विभोः। भवंति तेऽचिरात् स्युश्च त्वत्समास्त्वद्गुणैसहः।६८।
इति षड्विधनिक्षेपैः स्तवनार्हाय ते नमः। नमस्तीर्थात्मने तुभ्यं नमो मोहारिनाशिने।६९।

इस प्रकार और भी जैनशास्त्रोंमें पूजाधिकारमें लिखा है सो जानना।

१३५–चर्चा एकसौ पैंतीसवीं

प्रश्न—ऊपर जो पूजाके छः निक्षेप बतलाये उसमें स्थापनानिक्षेपके दो भेद बतलाये एक तदाकार दूसरा अतदाकार। अक्षतादिकोंको ऊंचे स्थानपर रखकर तथा उसमें किसी देवका संकल्प कर उसकी जल, गन्धादिकसे पूजा करना सो दूसरी असद्भावस्थापना बतलाई। सो इस पंचमकालमें इसके करनेकी प्रवृत्ति कैसी है?

समाधान—यह ऊपर लिखी हुई असद्भावस्थापना इस हुण्डावसर्पिणी कालमें इस कालके दोषके कारण नहीं करनी चाहिये। ऐसी आचार्योंकी आज्ञा है। इसका भी कारण यह है कि इस लोकमें अनेक कुलिंगी भी (मिथ्यादृष्टि) ऐसा करते हैं उसमें लोग मोहित होकर भ्रममें पड़ सकते हैं। इसलिए अतदाकार स्थापना की पूजा नहीं करना चाहिये। सो ही वसुनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तीने श्रावकाचारमें लिखा है—

हुंडावसप्पिणीए विइया ठवणा ण होइ कायव्वो।
लोए कुलिंगमयमोहिया जदो होइ सन्देहो॥३८६॥

अन्य मतके लोग बिना मूर्तिके ही मंदिरमें, क्षेत्रमें, घर वा वनमें सुपारी आदिको रखकर उसमें मंत्रों द्वारा किसी देवका सङ्कल्प कर जल, गंधादिकसे उसकी पूजा वा विसर्जन आदि करते हैं सो इस प्रकार पूजा विसर्जन आदि करनेका यहाँ निषेध किया है। तथा जिनमंदिरोंमें अरहंत आदिका जो आह्वान, स्थापन, सन्निधी-

ऊपरकी टिप्पणीमें जो आह्वान, स्थापना आदिको पूजाका अंग बतलाया है वह इससे भी सिद्ध हो जाता है। वह स्थापना निक्षेप नहीं है, किन्तु पूजाका अंग है।

करण आदि प्रतिमाके सामने किया जाता है जो कि परम्परासे चला आ रहा है उसका निषेध यहांपर नहीं किया है। अपने घर आदिमें बिना मूर्तिके अतदाकार स्थापना कर पूजा नहीं करनी चाहिए।

१३६–चर्चा एकसौ छत्तीसवीं

प्रश्न––भगवान्‌की पूजाके समय स्नानादिक किस विधिसे करना चाहिये।

समाधान––भव्य जीवोंको शय्यासे उठते ही सबसे पहले अपने मनमें कायोत्सर्गकी विधिसे नौ बार पंच नमस्कार मन्त्रका जप करना चाहिये। पीछे मलमूत्रका त्याग कर हाथ-पैर धोकर एक वा दो पवित्र वस्त्र पहिन कर तथा आसन और पीछीको लेकर किसी एकान्त पवित्र स्थानमें पूर्वकी ओर अथवा उत्तरकी ओर मुख कर सामायिक करना चाहिए। तदनन्तर विधिपूर्वक भगवान् अरहन्तदेवकी पूजा करनी चाहिये। उसकी कुछ थोड़ी-सी विधि लिखते हैं। भगवान्‌की पूजा करनेवाले पुरुषको सबसे पहले अपने हाथ-पैर धो लेना चाहिये फिर पश्चिमकी ओर मुख कर बैठकर शुद्ध जलसे कुल्ला करता हुआ दतौन करना चाहिये। तदनन्तर फिर कर पूर्वकी ओर मुख कर प्रासुक जलसे स्नान करना चाहिये। फिर खड़े होकर किसी धुले वस्त्रसे शरीर पोंछ कर सफेद और शुद्ध वस्त्र पहन लेने चाहिये। पूजा करनेके लिए धोती, दुपट्टा ये दो ही वस्त्र धारण करना चाहिये ऐसी आम्नाय है। सो ही उमास्वामी विरचित श्रावकाचारमें लिखा है।

ऊपर लिखी हुई विधिके अनुसार स्नान करके पूर्वकी ओर मुख करके अथवा उत्तरकी ओरको मुख करके भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। भावार्थ–जो भगवान्‌की प्रतिमा उत्तरकी ओर मुख कर विराजमान हो तो पूजा करनेवालेको पूर्वकी ओर मुख कर बैठकर पूजा करनी चाहिये। यदि भगवान्‌का मुख पूर्व दिशाकी ओर हो तो पूजा करनेवालेको उत्तरकी ओर मुख कर बैठकर भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। ये वाक्य श्रीउमास्वामीके हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन दो दिशाओंको छोड़कर बाकीकी दक्षिण, पश्चिम, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान इन छहों दिशाओंकी ओर मुख करके भगवान्‌की पूजा नहीं करनी चाहिये। कितने ही लोग भगवान्‌के सामने खड़े होकर पूजा करते हैं परन्तु उनके वर्जित दिशा विदिशाओंका दोष आता है। क्योंकि भगवानकी आज्ञा पूर्व, उत्तर दो ही दिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करने की है। बाकी दिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेका निषेध है।

१३७–चर्चा एकसौ सैंतीसवीं

प्रश्न—पूर्व उत्तर दिशाको छोड़कर बाकी दिशा विदिशाओंकी ओर मुख करके भगवान्‌की पूजा क्यों नहीं करनी चाहिये। इसमें क्या दोष है ?

समाधान—पूर्व उत्तर दिशाओंको छोड़कर बाकीकी छः दिशाओंकी ओर मुख करके जो भगवान्‌की पूजा करते हैं वे उमास्वामीके वचनोंके विरुद्ध चलते हैं क्योंकि उमास्वामीने पूजा करनेके लिये दो ही दिशाकी ओर मुँह करना बतलाया है। बाकी दिशाओंका निषेध किया है। पहला दोष सो यह है। दूसरा दोष यह है कि उचित वा शुभ कार्योंके लिए ये दो ही दिशाएँ उत्तम मानी गयी हैं। क्योंकि तीर्थंकर आदि भी इन दो ही दिशाओंकी ओर मुख करके विराजमान होते हैं इन दो दिशाओंको छोड़कर बाकी दिशाओंकी ओर मुख करके भगवान्‌के विराजमान होनेका अथवा शुभ कार्योंके करनेका शास्त्रोंमें कहीं विधान नहीं आया है।

यदि इसमें भी किसीको सन्देह हो तो फिर उसके लिए विशेष कथन लिखते हैं। जो मनुष्य पूर्व, उत्तर दिशाको छोड़कर शेष अन्य दिशाओंकी ओर मुख करके भगवान्‌की पूजा करता है उसको अनेक प्रकारके अनर्थ उत्पन्न होते हैं। प्रथम तो शास्त्रोंमें पूर्व, उत्तर दो ही दिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेका विधान बतलाया है तथा बाकी की दिशा विदिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेका निषेध किया है। इतना जानते हुए भी जो मनोमति (केवल मनसे कल्पना करनेवाले) अपनी बुद्धिके बलसे सामने खड़े होकर पूजा करनेकी प्रधानता मानते हैं और इस प्रकार सब ही दिशा विदिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेका विधान करते हैं सो उनका यह सब कहना शास्त्रविरुद्ध है। क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि जो लोग पश्चिमकी ओर मुख करके भगवान्‌की पूजा करते हैं अर्थात् यदि भगवान पूर्व दिशाकी ओर मुख करके विराजमान हों और पूजा करनेवाला उनके सामने खड़े होकर पूजा करे तो उसका मुख पश्चिमकी ओर होता ही है। इस प्रकार जो पूजा करते हैं उनकी सन्तानका नाश होता है अर्थात् पुत्र-पौत्रादिका मरण होता है। तथा जो दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके भगवानकी पूजा करते हैं अर्थात् यदि भगवान उत्तर दिशाकी ओर मुख करके विराजमान हों और पूजा करनेवाला उनके सामने खड़े होकर पूजा करे तो उसका मुख दक्षिण दिशाकी ओर होता है। यदि इस प्रकार कोई पूजा करता है तो उसके सन्ततिका अभाव होता है, उसके पुत्र-पौत्रादिक उत्पन्न नहीं होते।

पश्चिम, दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पूजा करनेवालोंको इस प्रकार बुरा फल प्राप्त होता है। जो लोग आग्नेय (पूर्व, दक्षिणके बीच) कोणकी ओर मुख करके पूजा करते हैं उनके प्रतिदिन धनकी हानि होती जाती है। जो वायव्य (उत्तर, पश्चिमके बीच) कोणकी ओर मुख करके पूजा करते हैं उनके सन्तान नहीं होती। जो नैऋत्य दिशाकी दक्षिण, पश्चिमके बीचकी ओर मुख करके भगवानकी पूजा करते हैं उनके कुलका नाश होता है। और जो ईशान दिशाकी ओर (पूर्व, उत्तरके बीचकी) मुख करके भगवानकी पूजा करते हैं उनका सदा दुर्भाग्य ही रहता है। उनका सौभाग्य सब नष्ट हो जाता है। इसलिए इन दिशाओंकी ओर मुख करके पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि किसी कारणसे पूर्व और उत्तर दिशाकी ओर मुख करके पूजा करनेकी विधि न बन सके तो पूजा ही नहीं करनी चाहिये। पूर्व, उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही भगवानकी पूजा करनी चाहिये ऐसा श्रीउमास्वामीने अपने श्रावकाचारमें लिखा है। यथा—

तथार्चकः स्यात्पूर्वस्यामुत्तरस्यां च सन्मुखः। दक्षिणस्यां दिशायां विदिशायां च वर्जयेत्॥
पश्चिमाभिमुखीभूय पूजां कुर्याज्जिनेशिनाम्। तदास्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसंततिः॥
आग्नेय्यां चेत्कृता पूजा धनहानिर्दिने दिने। वायव्यां संततिर्नैव नैऋत्यां तु कुलक्षयम्॥
ईशान्यां नैव कर्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी।

इस प्रकार वर्णन है। ऐसा समझकर पूर्व और उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही भगवानकी पूजा करनी चाहिए। बाकीकी दिशाओं वा विदिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेमें अनेक दोष आते हैं ऐसा जानकर उन दिशाओंकी ओर मुख करके कभी पूजा नहीं करनी चाहिये।

---

१. इनके आगे नीचे लिखे श्लोक हैं।

पूर्वस्यां शांतिपुष्ट्यर्थमुत्तरे च धनागमः। अर्हतो दक्षिणे भागे चैत्यानां वंदनं तथा॥
ध्यानं च दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम्।

अर्थात्—पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पूजा करनेसे शांति पुष्टि होती है और उत्तरकी ओर मुख करके पूजा करनेसे धनकी वृद्धि होती है। अरहंत देव तथा अरहंतकी प्रतिमाकी दायीं ओर खड़े होकर वंदना करनी चाहिये, दायीं ओर ही ध्यान करना चाहिये और दायीं ओर ही दीपक रखना चाहिये।

केवल अपनेको ही सम्यग्दृष्टि माननेवाले अन्य कितने ही जीव अपनी बुद्धिके बलसे तथा हटसे सामने खड़े होकर पूजा करनेका उपदेश देते हैं सो वे अपना तथा दूसरोंका दोनों का अकल्याण करते हैं। ऐसे लोग शास्त्रोंकी बातोंको भी नहीं मानते केवल अपने हटको दृढ़ करते रहते हैं ऐसे लोगोंको जिनवचनका विरोधी ही समझना चाहिये।

१३८-चर्चा एकसौ अड़तीसवीं

प्रश्न—पूजा करनेवालेको बैठकर भगवानकी पूजा करनी चाहिये ऐसा ऊपर लिखा है परन्तु यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि खड़े होकर पूजा करना ही उचित है। खड़े होकर पूजा करना विनयका मूल है इसमें भाव अच्छे लगते हैं, भक्ति खूब बढ़ती है, अनुराग खूब बढ़ता है, और मन एकाग्र होकर लग जाता है। इससे अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। बैठकर पूजा करना तो किसी प्रकार ठीक नहीं है। किसी साधारण पुरुषकी सेवा भी बैठकर नहीं की जाती है फिर भला तीनों लोकोंके नाथ भगवानकी पूजा बैठकर किस प्रकार करनी चाहिये। बैठकर पूजा करनेमें प्रमाद बढ़ता है और अनेक अनर्थ उत्पन्न होते हैं? इसलिये इस बातको तो हम लोग नहीं मानते हैं।

समाधान—भगवान सर्वज्ञ देवकी आज्ञा तो बैठकर पूजा करने की है सो ही उमास्वामी विरचित उपासकाचारमें लिखा है—

पद्मासनसमासीनो नासाग्रन्यस्तलोचनः। मौनी वस्त्रावृतास्योयं पूजां कुर्याज्जिनेशिनः॥

अर्थात्—पूजा करनेवालोंको नीचे लिखे अनुसार पूजा करनी चाहिये, पूजा करनेवालेको पद्मासनसे बैठना चाहिये, अपने नेत्रोंकी दृष्टि नासिकाके अग्र भागपर रखनी चाहिये। मौन धारण कर लेना चाहिये, अपना मुख वस्त्रसे ढँक लेना चाहिये। इतने सब काम करके भगवानकी पूजा करनी चाहिये। यह ऊपर लिखे श्लोकका अर्थ है। श्रीपद्मनंदि स्वामीने भी अपने पंचविंशतिका महाकाव्यमें लिखा है कि "भव्य जीवोंको मोक्षके सुख प्राप्त करनेके लिए पद्मासनसे बैठकर ध्यानादिकी भावना करनी चाहिये। यथा—

चेतोवृत्तिनिरोधनेन करणग्रामं विधायोद्धसं,
तत्संहृत्य गतागतं च मरुतौ धैर्यं समाश्रित्य च।

पर्यंकेन मया शिवाय विधिच्छून्यैकभूभृद्दरी-
मध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा स्थातव्यमंतर्मुखम् ॥ —पांचवां अधिकार ।

इससे भी पद्मासनसे बैठकर ही पूजा करना श्रेष्ठ सिद्ध होता है । फिर भी जो तुम खड़े होकर विनय और भक्ति आदि बतलाते हो सो सब व्यर्थ है । पूजा करनेमें खड़े होनेका प्रसंग ही नहीं है ।

इसके आगे यह जो कहा कि बैठकर पूजा करनेके विधानको हम नहीं मानते सो भगवानके वचनोंमें संदेह करना, पूर्वाचार्योंके वचनोंको न मानना अन्धे पुरुषके द्वारा आकाशमें उड़ते हुये पक्षियोंकी गिनती करनेके समान है । अर्थात् व्यर्थ है । क्योंकि अन्धा पुरुष आकाशमें उड़ते हुये पक्षियोंकी गिनती कर ही नहीं सकता । यदि करे तो व्यर्थ है । इसी प्रकार तुम्हारा भी भगवानके वचनोंमें संदेह करना व्यर्थ है । सो ही पद्मनंदि पंच-विंशतिकाके प्रथमाधिकारमें लिखा है ।

यः कल्पयेत् किमपि सर्वविदोपि वाचि संदिह्य तत्त्वमसमंजसमात्मबुद्धया ।
स्वे पत्रिणां विचरतां सुदृशोक्षितानां संख्यां प्रति प्रविदधाति स वादमंधः ॥ १२५ ॥

जो भगवानके वचनोंमें संदेह करते हैं उनके लिये आचार्योंने इस प्रकार लिखा है । यदि अब भी संदेह हो तो वह और भी अनेक जैनशास्त्रोंमें इसके प्रमाण मिलते हैं उन्हें देखकर अपना संदेह दूर कर लेना चाहिये । देखो देवसेनकृत भाव संग्रहमें भी बैठकर पूजा करनेका विधान है । यथा—

पासुइ जलेण ण्हाइय णिवसिय वत्थायगंपितं ठाणे ।
इरियाविहं च सोहिय उवविस उपडिम आसणं ॥

अर्थात्—पूजा करनेवालेको सबसे पहले प्रासुक जलसे स्नान करना चाहिये फिर शुद्ध वस्त्र पहिन कर नीचेकी ओर दृष्टि कर मार्गको देखते हुए आना चाहिये तथा पूजाके स्थानपर पद्मासनसे बैठ कर पूजा करना चाहिये । यही बात यशस्तिलकचंपू नामके महाकाव्यमें लिखी है ।

उदङ्मुखं स्वयं तिष्ठेत् प्राङ्मुखं स्थापयेज्जिनम् ।
पूजाक्षणे भवेन्नित्यं यमी वाचंयमीक्रियः ॥

अर्थात् पूर्व दिशाकी ओर मुख करके भगवानको विराजमान करे और पूजा करनेके लिये उत्तर दिशा-की ओर मुँह करके बैठे। यहांपर भी तिष्ठेत् क्रिया स्था धातुसे बनी है। जिनका अर्थ गति रहित होता है। इस प्रकार मौन सहित तिष्ठना वा बैठना अर्थ होता है।

इनके सिवाय पूजाओंमें, पूजासारमें, भगवद् एक संधिकृत जिनसंहितामें, जिनप्रतिष्ठापाठमें तथा त्रिवर्णा-चारमें भी पूजा करनेवाले पुरुषको पूजाके समय बैठकर ही भगवान्की पूजा करनेका विधान लिखा है। वहाँ पर बैठनेका मन्त्र लिखा है उसमें भी बैठनेका ही संकल्प है यथा—"ओं ह्रीं अर्हं अक्षं दर्भा[illegible] उपविशामि स्वाहा"

इस प्रकार बैठनेका ही विधान है इस प्रकार शास्त्रमें जो विधि बतलाई है उसको मानकर पूजा करना चाहिये, खड़े होकर पूजा नहीं करनी चाहिये। बैठकर ही करनी चाहिये। इस विषयमें अपने हठसे व्यर्थ वाद नहीं करना चाहिये। व्यवहारमें भी देखा जाता है राजसभासे जिनको बैठनेकी आज्ञा है वे तो वंदना आदि कर समीप जाकर बैठ जाते हैं बैठे ही बैठे अपना सुख-दुख निवेदन करते हैं। दुःखोंको दूर करनेके लिये अनेक पदार्थ भेंट कर उन दुःखोंकी शान्ति करा लेते हैं और अपने सब कार्य सिद्ध कर लेते हैं परन्तु जिनको राजसभामें बैठनेका अधिकार नहीं है वह दूर खड़ा-खड़ा ही पुकारता रहता है। यदि वह औरोंको बैठा हुआ देख कर स्वयं भी समीप जाकर बैठता है तो द्वारपाल लोग उसे हाथ पकड़ कर वहांसे उठा कर खड़ा कर देते हैं। इससे साबित होता है कि जो खड़े होकर पूजा करनेका विधान करते हैं वे समीप बैठनेका अधिकार नहीं रखते।

प्रश्न—तुम बैठकर पूजन करनेको इतनी पुष्टि क्यों करते हो? खड़े होकर पूजा करनेमें क्या दोष है क्योंकि फल तो भावोंके अनुसार हुआ करता है?

समाधान—क्या यह नियम है कि खड़े होकर ही भाव लगते हैं पद्मासनसे बैठकर भाव नहीं लगते। तथा पद्मासनसे बैठकर भाव लगें तो भी अच्छे नहीं। यदि यह बात शास्त्रमें लिखी हो तो हमें प्रमाण है। आपको चाहिये कि शास्त्रके ऐसे श्लोक अथवा गाथा आदि बतलावें जिनको हम आप दोनों ही प्रमाण मानकर श्रद्धान करें। यदि शास्त्रोंमें ऐसा प्रमाण कहीं नहीं मिलता तो जो शास्त्रोंमें पद्मासनसे बैठकर पूजा करनेका

विधान लिखा है उसे ही मानकर उसपर श्रद्धान करना चाहिये। कोई-कोई लोग इतने हठग्राही होते हैं कि वे पूजाके पाठ भी खड़े बोलते हैं। वे न स्वयं बैठते हैं और न बोलनेवालोंको बैठने देते हैं परन्तु यह उनका केवल हठ है इसमें अन्य और कोई कारण नहीं है।

कदाचित् कोई यह कहे कि खड़े होकर पूजा करनेमें बड़ी विनय होती है और विनय ही धर्मका मूल कारण है तो इसका उत्तर यह है कि यदि खड़े होनेमें ही विनय है तो शास्त्रसभामें शास्त्रका वांचना, सुनना, स्वयं स्वाध्याय करना, पढ़ना, पढ़ाना आदि कार्य भी खड़े होकर करना चाहिये। ऐसा करनेसे बड़ी विनय होगी और धर्म होगा। क्योंकि जैसा पूजामें धर्म है वैसा यहाँ भी धर्म है। इसके सिवाय खड़े होकर पूजा करनेमें धर्म है उसी प्रकार यदि एक पैरसे खड़े होकर पूजा की जाय तो खड़े होनेकी अपेक्षा उससे अधिक कायक्लेश तप होगा, अधिक विनय होगी, अधिक भक्ति होगी सो ऐसा करना भी अच्छा समझा जायगा। इसलिये जैसा शास्त्रोंमें लिखा है उसी प्रकार श्रद्धान कर कार्य करना चाहिये। इसीमें विनय और धर्म सधता है। शास्त्रकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेमें न विनय है और न धर्म है। किन्तु उलटा अविनय होती है। सो ही सूक्तिमुक्तावलीमें गुरुसेवाधिकारमें लिखा है--

किं ध्यानेन भवत्यशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं,
पूर्णं भावनयालमिन्द्रियदमैः पर्याप्तमाप्तागमैः ।। ।
किंत्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं,
सर्वं येन विना विनाथवलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः ॥

टीका—भो भव्याः गुरोः आज्ञां विना ध्यानं चेत् ? तर्हि तेन ध्यानेन किं अपि तु न किमपि फलम्। पुनः गुरोः आज्ञां विना तपोभिः कृतं षष्ठाष्टमदशमद्वादशमादिपक्षक्षपणमासक्षपणसिंहनिःक्रीडितादिभिस्तपोभिः कृतं संपूर्णं जातं। अर्थात् न किमपि। पुनर्भावनया शुभभावेनापि पूर्णता जाता। पुनः इंद्रियदमैः पंचेंद्रियाणां दमनं कृत्वा अलं पूर्णं मतम्। पुनः आप्तागमैः सूत्रसिद्धांतपठनैरपि पर्याप्त पूर्णं जातं तर्हि किम् ? किंतु

गुरुप्रीत्या गरिष्ठवात्सल्येन अधिकादरेण एके गुरोः शासनं आज्ञां कुरु। गुरोः एव आज्ञां शुद्धां पालय। किं भूतं गुरोः शासनं संसारपरिभ्रमणवारकम्। यतो येन गुरोः शासनेन आज्ञया विना सर्वेपि गुणा निष्फला इत्यर्थः। किंवत् विनाथबलवत्। निर्नायक सैन्यवत्। यथा निर्नायकं सैन्यं जयसाधकं न। तथा गुरोः आज्ञां विना पूर्वोक्त क्रियानुष्ठानादिकं सर्वं निष्फलमेवेति ज्ञात्वा आज्ञापूर्वकं सर्वं कर्तव्यम्।[1]

कदाचित् कोई यह समझे कि चाहे जिस प्रकार करो फल तो भावोंके अनुसार लगता है, उसके लिये कहते हैं कि गुरुकी आज्ञाके विना ध्यान, विषयका त्याग, तप, शुभ, भाव, इन्द्रियोंकी विजय और सिद्धांतादि शास्त्रोंका स्वाध्याय आदि सब बिना सेनापतिकी सेनाके समान व्यर्थ है। इसलिये गुरुकी आज्ञाके अनुसार जप, तप, पूजा आदि करना योग्य है। गुरुकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेमें ही सफलता है। अपने मनके अनुसार कार्य करना सर्वथा व्यर्थ है ऐसा सिद्धांत है।

१३९–चर्चा एकसौ उनतालीसवीं

प्रश्न—बैठकर पूजा करनेमें पूजा करनेवालेकी दृष्टि भगवानके ऊपर नहीं रह सकती। क्योंकि भगवान तो बहुत ऊँचे विराजमान रहते हैं और बैठकर पूजा करनेवाला बहुत नीचा रहेगा ऐसी अवस्थामें पूजामें भाव भी नहीं लगते। इसलिये बैठकर पूजा करनेमें संदेह बना ही रहता है।

समाधान—जैनशास्त्रोंमें गृहस्थको अपने घर चैत्यालय बनानेकी विधि इस प्रकार लिखी है कि गृहस्थको अपने मकानके दरवाजेके बांई ओर बिना किसी शिल्पके (कारीगरीसे रहित) भगवानको विराजमान करनेका स्थान बनाना चाहिये। उस स्थानसे डेढ़ हाथ ऊँची वेदी बनानी चाहिये और उसपर भगवानको विराजमान करना चाहिये। भावार्थ—जब वेदी डेढ़ हाथ ऊँची रहेगी तो बैठकर पूजा करनेवालोंकी दृष्टि भगवानके चरणों पर ही रहेगी ऐसा श्रीउमास्वामीने श्रावकाचारमें लिखा है यथा—

गृहे प्रवेशितावामभागे शिल्पविवर्जिते। देवतासदनं कुर्यात्सार्द्धहस्तोर्ध्वभूमिकम्।

१. इस श्लोक और टीकाका अभिप्राय यही है कि गुरुकी आज्ञाके विना जप, तप, ध्यान, पूजा आदि सब व्यर्थ है इसलिये सब काम गुरुकी आज्ञाके अनुसार करने चाहिये।

यदि पूजा करनेवाला खड़े होकर पूजा करे तो भगवानका सिंहासन उसके नाभि तक आवेगा और फिर उसके नेत्रोंकी दृष्टि भगवानसे भी डेढ़ हाथ ऊँची रहेगी। जिससे अनेक अनर्थ उत्पन्न होंगे सो सब विचार लेना चाहिये।

१४०–चर्चा एकसौ चालीसवीं

प्रश्न—यदि कहीं ऊपर लिखी डेढ़ हाथकी ऊँचाईसे भी प्रतिमा नीची विराजमान हो तो क्या करना चाहिये ?

समाधान—जो भगवानके विराजमान करनेकी वेदी डेढ़ हाथसे भी नीची रखते हैं उनके नीचसे नीच सन्तति उत्पन्न होती है। यही [illegible] आगमग्रन्थमें लिखा है—

नीचैर्भूमिस्थितिं चक्रे.....

प्रश्न—यदि वेदी डेढ़ हाथसे भी ऊँची दो, तीन, चार हाथ ऊँची बना ली जाय और उसपर भगवान विराजमान किये जाँय तो फिर तो कोई दोष नहीं आ सकता। तथा ऐसा करनेसे खड़े होकर पूजा करनेमें भी सुभीता होता है।

समाधान—डेढ़ हाथसे ऊँची वेदी बनानेकी आज्ञा नहीं है इसलिए इससे ऊँची वेदी नहीं बनानी चाहिये। यदि कोई इससे ऊँची वेदी बनाता है तो उसे आज्ञा भंग करनेका महादोष लगता है। सो पहले सूक्तिमुक्तावलीका श्लोक देकर समझा ही चुके हैं। इसलिये आगमपर विश्वास करनेवालोंको आगमके लिखे अनुसार ही काम करना चाहिये। केवल अपनी बुद्धिके अनुसार वा मनोनुकूल चलना योग्य नहीं है।

प्रश्न—इतना विवाद करनेकी आवश्यकता ही क्या है क्योंकि शुभ वा अशुभ फल तो अपने भावोंके अनुसार ही लगता है इसलिये अपने भाव शुद्ध रखना चाहिये। शुद्ध भावोंके बिना सब क्रियाएँ व्यर्थ हैं।

समाधान—यह कहना भी एकान्तवाद है क्योंकि राजा, कच्छ, महाकच्छ, मारीचि आदि चार हजार राजाओंने श्रीऋषभदेव भगवानके साथ केवल उनकी भक्ति और शुभ भावोंसे जिनदीक्षा धारण की थी परन्तु वह उनकी दीक्षा आगमकी आज्ञाके अनुकूल नहीं थी इसीलिये सबको भ्रष्ट होना पड़ा। भ्रष्ट होकर उन्होंने अनेक प्रकारके मिथ्यात्वका प्रचार किया। इसी प्रकार कुमारसेनने पहले तो संन्यासका भंग किया फिर बिना

गुरुके केवल अपने ही भावोंसे फिर दीक्षा ली। इसीलिये उन्हें काष्ठसंघ स्थापन करना पड़ा। इससे सिद्ध होता है कि केवल भावोंसे ऐसा ही फल मिला करता है इससे हठ करना योग्य नहीं।

१४१–चर्चा एकसौ इकतालीसवीं

प्रश्न––पूजा करनेवाला पूजनके लिये वस्त्र किस प्रकार धारण करता है।

समाधान––जो भव्य पुरुष शांतिक और पौष्टिकके लिये भगवानकी पूजा करता है उसे सफेद वस्त्र पहिन कर पूजा करनी चाहिये। यदि वह शत्रुको विजय करनेके लिये भगवानकी पूजा करता है तो उसे श्याम वा काले वस्त्र पहिन कर पूजा करनी चाहिये। यदि वह कल्याणके लिए पूजा करता है तो लाल वस्त्र पहिनना चाहिये। यदि वह किसी राजा आदिके भयको दूर करनेके लिए पूजा करता है तो उसे हरे रंगके वस्त्र पहिन कर पूजा करनी चाहिये। यदि वह ध्यान आदि प्राप्तिके लिए पूजा करता है तो उसे पीले वस्त्र पहिनना चाहिये। और यदि वह किसी कार्यकी सिद्धिके लिए पूजा करता है तो उसे पाँचों रंगके वस्त्र पहिनने चाहिये। सो ही लिखा है––

शांतौ श्वेतं जये श्यामं भद्रे रक्तं भये हरित्। पीतं ध्यानादिसंलाभे पंचवर्णं तु सिद्धये॥

इस प्रकार अलग-अलग कामनाकी सिद्धिके लिये अलग-अलग पाँचों वर्णोंके वस्त्र बतलाये हैं यदि इन पाँचों वर्णोंके वस्त्रोंमें भी कोई अयोग्यताके दोष आ जांय तो वह वस्त्र छोड़ देना चाहिये और दूसरा नवीन वस्त्र धारण करना चाहिये।

१४२–चर्चा एकसौ बियालीसवीं

प्रश्न––वस्त्रोंमें ऐसा कौन-सा दोष है जिसके कारण उसे छोड़ देना चाहिये और नवीन लेना चाहिये।

समाधान––ऊपर लिखे पाँचों रंगोंके वस्त्रोंमेंसे कोई वस्त्र फट जाय, बहुत पुराना हो, छिन्न-भिन्न हो इन सब दोषोंसे रहित होनेपर भी मलिन हो, ऐसे वस्त्र पहिन कर दान, जिनपूजा, णमोकार आदि मन्त्रोंके जप, होम और शास्त्रोंके स्वाध्याय आदि नहीं करने चाहिये। यदि कोई इसमें हठ करता है और इन दोषोंको नहीं मानता तो उसका किया हुआ दान, पूजा आदि सब कार्य व्यर्थ जाता है। सो ही उमास्वामी विरचित श्रावकाचारमें पूजाके प्रकरणमें लिखा है––

खण्डितेतिजीर्णे छिन्ने मलिने नैव वाससि। दानं पूजां जपो होमं स्वाध्यायो निष्फलं भवेत्॥

धर्मरसिकशास्त्रमें भी यही लिखा है।

कोषायं धूम्रवर्णं च केशजं केशभूषितम्। छिन्नाग्रं चोपवस्त्रं च कुत्सितं नाचरेन्नरः ॥३४॥
दग्धं जीर्णं च मलिनं मूषकोपहृतं तथा। खादितं गोमहिष्याद्यैस्तस्याज्यं सर्वथा द्विजैः ॥३५॥

इस प्रकार विशेष वर्णन वहाँ लिखा है। यहाँ संक्षेपसे लिखा गया है।

१४३-चर्चा एकसौ तिरासीसवीं

प्रश्न—त्रिकाल पूजाकी विधि क्या है?

समाधान—चतुर भव्य जीवोंको नियमपूर्वक तीनों समय भगवानकी पूजा करनी चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है कि सबसे पहले पहिले लिखी हुई विधिके अनुसार स्नानादिक कर भगवानकी पूजा करनी चाहिये उसकी विधि इस प्रकार है। प्रथम प्रातःकाल भगवानका जलाभिषेक करना चाहिये फिर चंदन, केशरमें कपूर मिलाकर भगवानके चरण कमलोंकी चर्चना करनी चाहिये। यह प्रातःकालकी पूजा है। फिर दोपहरके समय अनेक प्रकारके सुगन्धित और मनोज्ञ पुष्पोंसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये यह मध्याह्न पूजा कहलाती है। तदनंतर शामके समय दीप और धूपसे पूजा करनी चाहिये। भावार्थ—प्रातःकाल तो चंदनसे पूजा करनी चाहिये। मध्याह्न समयमें पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये और सायंकालको दीपकसे आरती उतार कर दीपसे पूजा करनी चाहिये और सुगन्धित चंदन आदि शुभ द्रव्योंकी बनी हुई धूपको अग्निमें दहनकर धूपसे पूजा करनी चाहिये। यह त्रिकाल पूजाकी रीति है। सो ही श्रीउमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

श्रीचंदनं विना नैव पूजां कुर्यात्कदाचन। प्रभाते घनसारस्य पूजा कार्या विचक्षणैः॥
मध्याह्ने कुसुमैः पूजा संध्यायां दीपधूपयुक्।

---

१. जो वस्त्र मलिन हों, बालोंका, ऊनका बना हो। बालसे सुशोभित हो, जिसके पल्ले फट गये हों, छोटा हो, बुरा हो, जला हो, पुराना हो, कषैला वा धूमके रंगका हो, चूहोंका कतरा हो वा गाय, भैंसका खाया हो वह सब त्याग करने योग्य है।

इस प्रकार त्रिकाल पूजाकी रीति लिखी है। तथा अष्ट द्रव्यसे जो पूजाकी जाती है वह विशेषपूजा है। इस अष्ट द्रव्यकी पूजाको त्रिकालमें करनेका कुछ नियम नहीं है। यह पूजा तो जिस समय की जाय उसी समयमें हो सकती है।

१४४-चर्चा एकसौ चवालीसवीं

प्रश्न—सायंकालको जो दीप, धूपसे पूजा की जाती है उसकी विधि क्या है ?

समाधान—पूजा करनेवाले पुरुषको पूजा करते समय भगवानके बाँई ओर धूपदान रखकर उसमें रक्खी हुई अग्निमें मन्त्रपूर्वक धूप चढ़ाकर भगवानकी पूजा करनी चाहिये। तथा दीपक जलाकर भगवानके सामने मंत्रपूर्वक आरती उतार कर पीछे भगवानकी दाहिनी ओर उस दीपकको रख देना चाहिये। यह पूजाका सब जगहका नियम है सो ही उमास्वामी विरचित श्रावकाचारमें लिखा है।

वामांगे धूपदाहस्य दीपपूजा च सन्मुखी। अर्हतो दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम्॥

पूजाकी ऐसी आम्नाय है सो इसी प्रकार करना चाहिये।

१४५-चर्चा एकसौ पैंतालीसवीं

प्रश्न—भगवानकी पूजामें कैसे पुष्प चढ़ाना चाहिये तथा कैसे नहीं चाहिये ?

समाधान—भगवानकी पूजामें जल, थल आदिके सार सुगन्धित और मनोज्ञ ऐसे कमल, गुलाब आदि अनेक प्रकारके जैन शास्त्रोंमें कहे हुए पुष्प चढ़ाना चाहिये तथा जो पुष्प हाथसे गिर गये हों, जमीनपर पड़ गये हों, जो किसीके भी पैरसे छू गये हों, किसीके मस्तक पर रखे गये हों, मलिन और अपवित्र वस्त्रमें रक्खे गये हों, नाभिके नीचे प्रदेशसे छू गया हो, जो यवन (मुसलमान) आदि दुष्ट जनोंके द्वारा स्पर्श किये गये हों और जो कीड़ोंसे दूषित हों। ऐसे पुष्प कभी नहीं चढ़ाना चाहिये। इसके सिवाय पुष्पोंके दो तीन भाग कभी नहीं करने चाहिये। भावार्थ—मोतिया, मोगरा, कुन्द आदिके पुष्पोंमें दो तीन चार पुष्प निकलते हैं सो उनको अलग-अलग नहीं करना चाहिये। जैसाका तैसा ही चढ़ाना चाहिये। पूजाके लिये फूलोंकी कलियां कभी नहीं निकालनी चाहिये अर्थात् पूजामें कलियां नहीं चाहिये। पूरा पुष्प ही चढ़ाना चाहिये। ये लोग

चंपा और कमलके फूलोंकी कलियाँ अलग-अलग कर निकाल लेते हैं अर्थात् उनको प्रफुल्लित कर लेते हैं अथवा उनकी पंखुड़ियाँ अलग-अलग निकाल लेते हैं उनको जीव हिंसाके समान फल लगा करता है। इसलिये पुष्पोंको अलग-अलग छिन्न-भिन्न कर वा कलियाँ निकाल कर नहीं चढ़ाना चाहिये। सो ही उमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

हस्तात्प्रस्खलितं क्षितौ निपतितं लग्नक्वचित्पादयोः।
यन्मूर्ध्वोर्ध्वगतं धृतं कुवसने नाभेरधो यद् धृतम्॥
स्पृष्टं दुष्टजनैरभिहितं यद्दूषितं कीटकैः।
त्याज्यं तत्कुसुमं वदंति विबुधाः भक्त्या जिनः पूज्यते॥
नैव पुष्पं द्विधा कुर्यान्न छिन्नकलिकामपि। चंपकोत्पलभेदेन जीवहिंसासमं फलम्॥

ऐसा शास्त्रोंका मत है। इसी प्रकार जल, फल आदि आठों द्रव्योंमेंसे जो अयोग्य हों सो पूजामें नहीं लेना चाहिये। विवेकी पुरुषोंको योग्य द्रव्यसे ही पूजा करनी चाहिये।

प्रश्न—ऊपर लिखे हुए पुष्प किस प्रकार चढ़ाना चाहिये?

समाधान—लौकिक शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है—

पुष्पं चोर्द्ध्वमुखं देयं पत्रदेयमधोमुखम्। फलं च सन्मुखं देयं यथोत्पन्नं समर्पयेत्॥

अर्थात्—पूजामें पुष्प तो ऊपरकी ओर मुख कर चढ़ाना चाहिये। उसकी डोंडी नीचेकी ओर रहनी चाहिये, नागवेलके पान आदि पत्रोंको अधोमुखी चढ़ाना चाहिये। उसकी अनी नीचे रहे और डंठल ऊपरको हो। तथा फल सामने चढ़ाना चाहिये। पुष्प, पत्र और फल जैसे वृक्ष पर लगते हैं उसी प्रकार उनको चढ़ाना चाहिये। यह नियम पुष्पमाला अथवा पुष्पांजलिके लिए नहीं है। पुष्पमाला और पुष्पांजलिमें जिस प्रकार बन सके उसी प्रकार चढ़ाना चाहिये।

१४६–चर्चा एकसौ छयालीसवीं

प्रश्न—प्रातःकालकी पूजाकी विधिमें जल, चंदनसे ही पूजा करनेका विधान बतलाया परन्तु हम तो

अष्टद्रव्यसे पूजा करनेको पूजा समझते हैं। अब केवल जल, चंदनसे ही पूजा करनेका विधान है तब फिर अष्ट-द्रव्यसे पूजा कौन करेगा ?

समाधान—सबसे पहिले भगवानका जलसे अभिषेक करना चाहिये फिर चरणों पर गंधका लेप कर पीछे अक्षत आदिसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये ऐसा नियम है। पहले लिख भी चुके हैं—

श्रीचदनं विना नैव पूजां कुर्यात्कदाचन।

इससे सिद्ध होता है कि चंदनके लेप पूर्वक ही अक्षतादिकसे पूजा होती है। सो ही उमास्वामीविरचित श्रावकाचारमें पूजा प्रकरणके अधिकारमें लिखा है—

गंधधूपाक्षतैः सद्भिः प्रदीपैश्च विचारिभिः। प्रभातकाले पूजा वै विधेया श्रीजिनेशिनाम्॥

अर्थात् विवेकी पुरुषोंको प्रातःकाल गंध, धूप, अक्षत, दीप आदिसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनी चाहिये।

१४७–चर्चा एकसौ सैंतालीसवीं

प्रश्न—भगवानका ध्यान और वंदना किस विधिसे करनी चाहिये ?

समाधान—भव्य जीवोंको भगवानका ध्यान और वंदना अर्थात् नमस्कार भगवानके दाहिनी ओरसे करना चाहिये। सामने खड़े होकर ध्यान और वन्दना नहीं करना चाहिये। दाहिनी ओरसे ही करनी चाहिये। सो ही उमास्वामी विरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

अर्हतां दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम्। ध्यानं च दक्षिणे भागे चैत्यानां वंदनं तथा॥

इससे सिद्ध होता है कि भगवानके दाहिनी ओरसे ही ध्यान और वंदना करनी चाहिये। किसी दूसरी ओरसे नहीं।

१४८–चर्चा एकसौ अड़तालीसवीं

प्रश्न—स्त्रियोंके लिये ध्यान, वंदना करनेकी विधि क्या है ?

समाधान--स्त्रियोंको ध्यान और वंदना भगवानके बाईं ओरसे करनी चाहिये। ऐसी शास्त्रकारोंकी आज्ञा है।

१४६-चर्चा एकसौ उनचासवीं

प्रश्न--गृहस्थोंको जो पहिले पूजा करनेकी विधि बतलाई है वह संक्षिप्त विधि है। अब इसको विशेष विधि बतलानी चाहिये।

समाधान--पूजा करनेकी विशेष विधि इस प्रकार है। शौचसे निवृत्त होने, दतौन करने और स्नान करने आदिकी विधि पहले बता चुके हैं उसके अनुसार स्नान करके भगवानके चैत्यालयमें जाना चाहिये। उसकी भी विधि इस प्रकार है। अपने घरसे आकर पैर धोवे फिर अपने मस्तकसे श्रीजिनेन्द्रमन्दिरके किवाड़ खोले। किवाड़ खोलते समय "ओं ह्रीं अर्हं कपाटमुद्घाटयामीति स्वाहा" इस मंत्रको पढ़े। फिर "ओं ह्रीं द्वारपालाननुज्ञापयामि[2] स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर द्वारपालसे आज्ञा लेनी चाहिये। द्वारपालकी आज्ञा लेकर श्री-जिनचैत्यालयमें प्रवेश करना चाहिये तदनंतर "ओं ह्रीं अर्हं निःसही निःसही रत्नत्रयपुरस्सराय विद्यामंडल-निवेशनाय शमययाय निःसही जिनालयं प्रविशामि स्वाहा।" ऐसा उच्चारण कर जिनालयमें प्रवेश करना चाहिये फिर ईर्यापथ शुद्धि करना चाहिये। ईर्यापथशुद्धिका पाठ इस प्रकार है[3]--

निःसंगोऽहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या,
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरण परिणतोऽन्तःशनैर्हस्तयुग्मम्।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम, दुरित हरं कीर्तये शक्रवंद्यं,
निन्दा दूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम्॥१॥

---

१. ओं ह्रीं अर्हं यह बीजाक्षर है, मैं किवाड़ खोलता हूँ। २. मैं द्वारपालकी आज्ञा लेता हूँ।

३. मैं मन, वचन, कायसे शुद्ध हो जिनमन्दिरमें जाकर तीन प्रदक्षिणा दे खड़े होकर थोड़ा आगे चलकर बैठकर धीरे-धीरे कुछ स्तोत्रादिक पढ़ता हुआ हाथ जोड़ मस्तकपर रख इन्द्रपूजित निर्दोष अक्षयज्ञानरूपी सूर्य और मेरे पापोंको दूर करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ॥ १॥ मैं ऐसे श्रीमन्दिरको शरण लेता हूँ जो ऐश्वर्ययुक्त है, पवित्र है, कलङ्क रहित है, जिसमें सदा मंगल होते रहते हैं जो रत्नमय और तीनों लोकोंको सुशोभित करनेवाला है॥ २॥ अत्यन्त गम्भीर स्याद्वाद ही जिसका

श्रीमत्पवित्रमकलङ्कमनन्तकल्पं स्वायंभुवं सकलमङ्गलमादितीर्थम् ।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥
श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् । जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥३॥
श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् । आलोकनविहीनस्य तत्सुखावासयः कुतः ॥ ४ ॥
अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य देव ! त्वदीय चरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक ! प्रतिभासते मे संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ॥ ५ ॥
नमो नमः सत्त्वहितंकराय वीराय भव्याम्बुजभास्कराय ।
अनंतलोकाय सुरार्चिताय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ६ ॥
नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ७ ॥
देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्ध महानुभाव ।
त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव वर्द्धमान स्वामिन् गतोस्मि शरणं चरणद्वयं ते ॥ ८ ॥
जितमदहर्षद्वेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः ।
जितजन्ममरणरोगा जितमात्सर्या जयंतु जिनाः ॥ ९ ॥

सार्थक चिह्न है ऐसा त्रैलोक्यनाथका शासन श्रीजैनशासन चिरकाल तक जीवित रहो ॥ ३ ॥ आज श्रीजिनेन्द्रदेवका मुख देखनेसे मुक्तिलक्ष्मीका मुख देखा, भला जो श्रीजिनेन्द्रदेवके मुखका दर्शन नहीं करते उनको यह सुख कहाँसे मिल सकता है ॥ ४ ॥ हे देव ! आज आपके चरण-कमल देखनेसे मेरे दोनों ही नेत्र सफल हुए । हे त्रिलोकतिलक ! आज यह संसाररूपी समुद्र मुझे चुल्लूभर पानीके बराबर जान पड़ता है ॥ ५ ॥ समस्त प्राणियोंका भला करनेवाले, भव्यरूपी कमलोंको सूर्यके समान, अनन्त-लोक-अलोकको देखनेवाले देवपूजित देवाधिदेव श्रीवर्धमान जिनेन्द्रदेवके लिए नमस्कार हो ॥ ६ ॥ इन्द्रों द्वारा पूजित क्षुधादि १८ दोषोंसे रहित, गुणोंके समुद्र, मोक्षमार्गके उपदेश देनेवाले, देवाधिदेव श्रीजिनेन्द्रदेवके लिए नमस्कार हो ॥ ७ ॥ हे देवाधि-देव, हे परमेश्वर ! हे वीतराग ! हे सर्वज्ञ ! हे तीर्थङ्कर ! हे सिद्ध, हे महानुभाव ! हे त्रिलोकनाथ, हे जिनपुङ्गव, हे स्वामिन् ! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ ॥ ८ ॥ मद, हर्ष, द्वेष, मोह, परीषह, कषाय, जन्म, मरण, रोग और मात्सर्य आदिके

चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे, भक्तिं स्तुतिं विनतिमञ्जलिमञ्जसैव ।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति, यश्चर्करीति तव देव ! स एव धन्यः ।।१०।।
ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादादेकेन्द्रिय प्रमुख जीव निकायबाधा ।
निवर्तिता यदि भवेदयुगांतरेक्षा, मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ।।११।।

पडिक्कमामि भंत्ते ! इरियावहियाए विराहणाए, अणागुत्ते, अइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चक्कमणे, पाणुग्गमणे, वीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चारपस्सवण खेलिसिंघाण-वियडिय-पइट्ठावणियाए जे जीवा एइंदिया, वा वेइंदिया, वा, तेइंदिया वा, चतुरिंदिया वा, पंचिदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा,। किरिच्छिदा वा, लोस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचक्कमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्तकरणं, तस्स विसोहीकरणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं पज्जुवासं करेमि, तावकालं, पावकम्मं, दुच्चरियं वोस्सरामि ।।१२।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

यहाँपर णमोकार मन्त्रका जप नौ बार करना ।

जीतनेवाले श्रीजिनेन्द्रदेव जयवन्त होओ ॥ ९ ॥ हे जिनेन्द्र ! जो पुरुष हृदयमें आपकी भक्ति, मुखसे आपकी स्तुति, शिरसे नमस्कार और हाथसे बार-बार अञ्जलि करता है अर्थात् हाथ जोड़ता है वही पुरुष इस संसारमें धन्य है ॥ १० ॥ हे भगवन् ! मार्गमें चलते हुए मुझसे यदि प्रमादवश बिना देखे किसी एकेंद्रियादिक जीवकी हिंसा हुई हो तो वह आपकी भक्तिसे मिथ्या होवे ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! मेरे चलनेमें जो कुछ जीवोंको हिंसा हुई हो, उसके लिए मैं प्रतिक्रमण (उस किये हुए दोषका निराकरण) करता हूँ। यथा—मन, वचन, कायको वशमें न रखनेसे, बहुत चलनेसे, इधर-उधर फिरनेसे, बैठनेसे जाने-आनेसे द्वींद्रियादिक प्राणियोंपर बोझ और हरितकायपर पैर रखकर चलनेसे, मल, मूत्र, थूक, संगाण (नाकका मैल) और मिट्टी वगैरहके डालनेसे एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिंद्रिय अथवा पंचेंद्रिय प्राणी अपने स्थानपर जानेसे रोके गये हों, दूसरी जगह डाले गये हों, संघर्षित किये गये हों, संघर्षित कराये गये हों, एक दूसरेके ऊपर डाले गये हों, तपाये गये हों, काटे गये हों, मूर्च्छित किये गये हों, छेदे गये हों, अपने स्थानसे अथवा जाते हुए भिन्न-भिन्न किये गये हों, तो मैं उसका प्रायश्चित्त करता

ॐ नमः परमात्मने नमोऽनेकांताय शान्तये ।।१३।।

इच्छामि भंत्ते ! आलोचेउं ईरियावहियस्स पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिम चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण जुगंत्तर दिट्ठिणा, भव्वेण, दट्ठवा । पमाददोसेण डवडवचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये ॥

इस ईर्यापथशुद्धिसे पहले लगे हुए पापोंका निराकरण करना चाहिये । फिर

कनत्कनकघंटितं विमलचीनपट्टोज्वलं बहुप्रकटवर्णकं कुशलशिल्पिभिर्वर्णितम् ।
जिनेन्द्रचरणाम्बुजद्वयं समर्चनीयं मया समस्तदुरितापहृत् वदनवस्त्रमुद्घाट्यते ॥

यह श्लोक पढ़कर अपने मुखपरके वस्त्रको हटाना चाहिये ।

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् आलोकन विहीनस्य तत्सुखावासयः कुतः ।

हूँ । उन दोषोंकी शुद्धि करनेके लिए भगवान अरहंतको नमस्कार करता हूँ तथा ऐसे पापकर्म तथा दुष्ट आचरणोंका त्याग करता हूँ ॥ १२ ॥ अनेकान्त और शान्त परमात्माके लिये नमस्कार हो, हे भगवन् ! मैं ईर्यापथकी आलोचना करता हूँ, पूर्व, उत्तर, दक्षिण, पश्चिम चारों दिशा और ईशानादिक विदिशाओंमें इधर-उधर फिरनेमें वा ऊपरको ओर मुख करके चलनेमें प्रमादवश द्वींद्रियादिक प्राणी वृक्षादिक भूत पंचेंद्रियादिक जीव और एकेंद्रियादिक सत्व जीवोंका घात किया हो, कराया हो, अनुमति दी हो वे सब नाश होवें ।

हे त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र ! पापी, दुष्ट, मन्दबुद्धि, कपटी, लोभी ऐसे मेरे द्वारा रागद्वेषसे मैले मनसे जो कुछ दुष्कर्म हुआ हो, उनको शांति करनेके लिए आपके चरण-कमलोंके निकट अपनी निन्दा करता हुआ उन कार्मोंको छोड़ता हूँ ।

जो देदीप्यमान सुवर्णके समान हैं, सफेद रेशमी वस्त्रके समान निर्मल हैं । जिनकी अनन्त महिमा प्रकट है चतुर कारीगर भी जिनका वर्णन करते हैं जो समस्त पापोंको दूर करनेवाले हैं ऐसी श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण-कमलोंकी पूजा करनी चाहिये इसीलिए मैं अपने मुखवस्त्रको हटाता हूँ ।

ॐ ह्रीं अर्हं नमोर्हत्परमेष्ठिभ्यः श्रीमुखालोकनेन मम सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर भगवानके मुखको देखना चाहिये फिर "ॐ ह्रीं अर्हं निःसही यागोर्वी प्रविशामि स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर पूजाकी भूमिपर्यन्त प्रवेश करना चाहिये फिर "ॐ ह्रीं श्रीं क्ष्वीं भू स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर भगवानके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये । फिर "ॐ ह्रीं आद्यमुद्घोषयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर घंटा आदि बजाना चाहिये । फिर अष्टांग वा पंचांग वा पंचवर्द्धशायी नमस्कार करना चाहिये । फिर उठकर भाव और भक्तिसे 'दर्शनं देवदेवस्य' आदि दर्शन पाठ पढ़कर भगवानकी स्तुति करनी चाहिये, फिर

---

१. दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम् । दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम् ।

देवाधिदेव श्री अरहन्तदेवका ही दर्शन करना चाहिये । यही दर्शन पापका नाश करनेवाला, स्वर्गकी सीढ़ी और मोक्षका कारण है ।

दर्शनेन जिनेंद्राणां साधूनां वन्दनेन च । न च संतिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम् ।

श्रीजिनेंद्र देवके दर्शन करनेसे तथा गुरुओंकी वंदना करनेसे संपूर्ण पाप क्षय हो जाते हैं जैसे सछिद्र हाथोंसे जल नष्ट हो जाता है ।

वीतरागमुखं दृष्ट्वा पद्मरागसमप्रभम् । जन्मजन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति ।

पद्मराग मणिके समान वीतरागका मुख देखनेसे अर्थात् श्रीवीतरागके दर्शन करनेसे जन्म-जन्मके किये हुए पाप सब नष्ट हो जाते हैं ।

दर्शनं जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनम् । बोधनं चित्तपद्मस्य समस्तार्थप्रकाशनम् ।

श्रीजिनेन्द्ररूपी सूर्यका दर्शन करना संसाररूपी अन्धकारको नाश करनेवाला, मनरूपी कमलको प्रफुल्लित करनेवाला, और संपूर्ण पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला है ।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य सद्धर्मामृतवर्षणम् । जन्मदाहविनाशाय वर्द्धनं सुखवारिधेः ॥ ५ ॥

श्रीजिनेन्द्ररूपी चंद्रमाके दर्शन करना जन्मरूपी दाहके नष्ट करनेके लिये सद्धर्मरूपी अमृतकी वर्षाके समान है तथा सुख-रूपी समुद्रको बढ़ानेवाला है ।

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय । प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ।

जीव, अजीव आदि तत्त्वोंको प्रतिपादन करनेवाले, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन आदि आठ गुणोंको धारण करनेवाले परमशांत दिगम्बर देवाधिदेव श्रीजिनेन्द्रदेवके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने । परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः ।

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनन्त सुखरूप परमात्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाले श्रीजिनेन्द्र परमात्मा सिद्धपरमेष्ठीके लिये मैं नित्य ही नमस्कार करता हूँ ।

कायोत्सर्ग कर नमस्कार करना चाहिये फिर जल, गंधादिक पूजनकी सामग्रीको तथा उपकरणादिकोंको पवित्र कर अर्घ बनाना चाहिये। "ओं ह्रीं अर्हं वास्तुदेवाय इदमर्घ्यं पाद्यं, गंधं, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं, स्वस्तिकं, अक्षतं, यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्णतां प्रतिगृह्णतां स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर पूजनकी भूमिपर अर्घ चढ़ाना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं सम्मार्जनं कुरु कुरु स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर डाभके पूलासे पूजाकी भूमिको मार्जन करना चाहिये तथा पूर्व दिशा और ईशान विदिशाके मध्यमें एक अर्घ देना चाहिये। फिर "मेघकुमाराय हं सं वं मं झं ठं वं क्षालनं कुरु कुरु धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अहं भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर जलको डाभसे लेकर पूजाकी पृथ्वीपर छींटे देने चाहिये। फिर ईशान और उत्तर दिशाके मध्यमें मेघकुमारको अर्घ देना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं अर्हं अग्निकुमाराय भूमिं ज्वालय ज्वालय अं हं सं ठं ठं क्षं पः फट् स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर दाभके पूलेको दीपकसे जलाकर पूजाकी पृथ्वीपर रखना चाहिये तथा अग्निकोणमें अग्निकुमारके लिये एक अर्घ देना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं क्रौं वषट् षष्टिसहस्र-संख्येभ्यो नागेभ्यो अमृतांजलिं प्रसिंचयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़ कर ईशानकोणमें नागकुमारोंको संतुष्ट करने-के लिये जलधारा देनी चाहिये। फिर आं क्रों अत्रस्थ क्षेत्रपाल आगच्छागच्छ संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इदं अर्घ्यं पाद्यं, गंधं, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं, स्वस्तिकं, अक्षतं, यज्ञभागं च यजामहे, यजामहे, प्रतिगृह्णतां प्रतिगृह्णतां स्वाहा इस मन्त्रको पढ़कर वहांके क्षेत्रपालको आह्वान

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम। तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष-रक्ष जिनेश्वर!
हे भगवान् मुझे आप ही शरण हैं और कोई शरण नहीं है। इसलिये हे जिनेश्वर! करुणा करके मेरी रक्षा कीजिये।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवं चक्रवर्त्यपि। स्याच्चेटोपि दरिद्रोपि जिनधर्मानुवासितः।
जिनधर्मसे रहित चक्रवर्ती होना अच्छा नहीं और जिनधर्म सहित दरिद्र सेवक होना अच्छा।

जन्मजन्मकृतं पापं जन्मकोट्यामुपार्जितम्। जन्ममृत्युजरातंकं हन्यते जिनदर्शनात्।
श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शन करनेसे जन्म-जन्मके किये हुये पाप तथा कोटि जन्ममें उपर्जन किये जन्म, मृत्यु, जरा, रोग आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये। वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।
इन तीनों लोकोंमें वीतराग देवके सिवाय अन्यदेव न रक्षा करनेवाले हुए न होंगे।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने। सदामेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे।
मेरे प्रतिदिन और प्रत्येक भवमें श्रीजिनेन्द्रदेवकी ही भक्ति सदा रहो।

स्थापन सन्निधिकरण कर एक अर्घ देना चाहिये फिर शांति पाठ तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये। फिर पूजाकी भूमिपर नीचे लिखे मन्त्र पढ़कर अलग-अलग अष्ट द्रव्य चढ़ाना चाहिये। ओं ह्रीं नीरजसे नमः जलं, ओं ह्रीं दर्पमथनाय नमः दर्भं, (यहांपर दाभ रखनी चाहिये।) ओं ह्रीं शीलगंधाय नमः गंधं, ओं ह्रीं अक्षताय नमः अक्षतान्, ओं ह्रीं विमलाय नमः पुष्पं, ओं ह्रीं परमसिद्धाय नमः नैवेद्यं, ओं ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः दीपं, ओं ह्रीं श्रुतधूपाय नमः धूपं, ओं ह्रीं अभीष्टफलदाय नमः फलं, इस प्रकार अष्ट द्रव्यसे पूजाकी भूमिकी पूजा करनी चाहिये फिर उस भूमिपर किसी ऊंचे आसन पर शांति चक्रका यंत्र स्थापन करना चाहिये। फिर उस यंत्रके बांई ओर नीचे भूमिपर अपने बैठनेके लिये देख शोधकर दाभका आसन बिछाना चाहिये और उस समय "ओं ह्रीं अर्हं क्षां ठः ठः दर्भासनं निक्षिपामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़ना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं अर्हं निःसही हुं फट् दर्भासने उपविशामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर उस दाभके आसन पर बैठ जाना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं अर्हं हस्तुं मौनस्थिताय अहं मौनजलं गृह्णामि स्वाहा" कह मंत्र पढ़कर हाथमें थोड़ा जल लेकर और मौनव्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर जलधारा छोड़ देनी चाहिये। अर्थात् हाथका जल छोड़ देना चाहिये।

यहांसे आगे पूजा करनेवालेको मौन धारण करना चाहिये। फिर ओं ह्रीं भूः प्रपद्ये भुवः प्रपद्ये स्वः प्रपद्ये चतुर्विंशतितीर्थंकुच्चरणशरणं प्रपद्ये ममांगानि शोधयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर अपने वस्त्रके ठोकसे (पल्लेसे) अपना शरीर शुद्ध करना चाहिये। यह अंगशुद्धिका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं असुजर असुजर भव तथा हस्तौ प्रक्षालयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर अपने दोनों हाथ धोने चाहिये। यह हाथोंके शुद्ध करनेका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन पात्रशुद्धिं करोमि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर गंध मिले हुए जलसे पूजाके सब पात्र शुद्ध करना चाहिये और फिर उन पात्रोंमें पूजाके अष्ट द्रव्य स्थापन करना चाहिये। यह पात्र शुद्धि है। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं ह्रौं ह्रौं वं मं हं सं तं पं ह्वीं क्ष्वीं हं सं अ सि आ उ सा समस्तजलेन शुद्धपात्रे निक्षिप्तानि पुष्पादिपूजाद्रव्याणि शोधयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर दाभसे जल लेकर पूजाके सब द्रव्योंपर छींटा देना चाहिये और इस प्रकार सब द्रव्योंको शुद्ध कर लेना चाहिये। यह द्रव्य शुद्धिका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं आग्नेय्यां दिशि अस्मद्गुरुविद्यागुरुभ्यो बलिं दवामि स्वाहा' यह मंत्र

पढ़कर आग्निकोणमें अपने विद्यागुरुके लिये अर्थात् णमोकार मंत्र आदि भगवान अरहंत देवके कहे हुए श्रुत-ज्ञानको पढ़ानेवालेके लिये एक अर्घ देना चाहिये। यह विद्यागुरुकी पूजाका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रीं सिद्ध-परमेष्ठिभ्योऽर्घं समर्पयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर सिद्ध परमेष्ठीको एक अर्घ देना चाहिये। फिर सहस्रनाम-का पाठ करना चाहिये फिर पूजा करनेवालेको अपने अंग और मनकी शुद्धि करनेके लिये सकलीकरण करना चाहिये। सकलीकरणकी विधि इस प्रकार है।

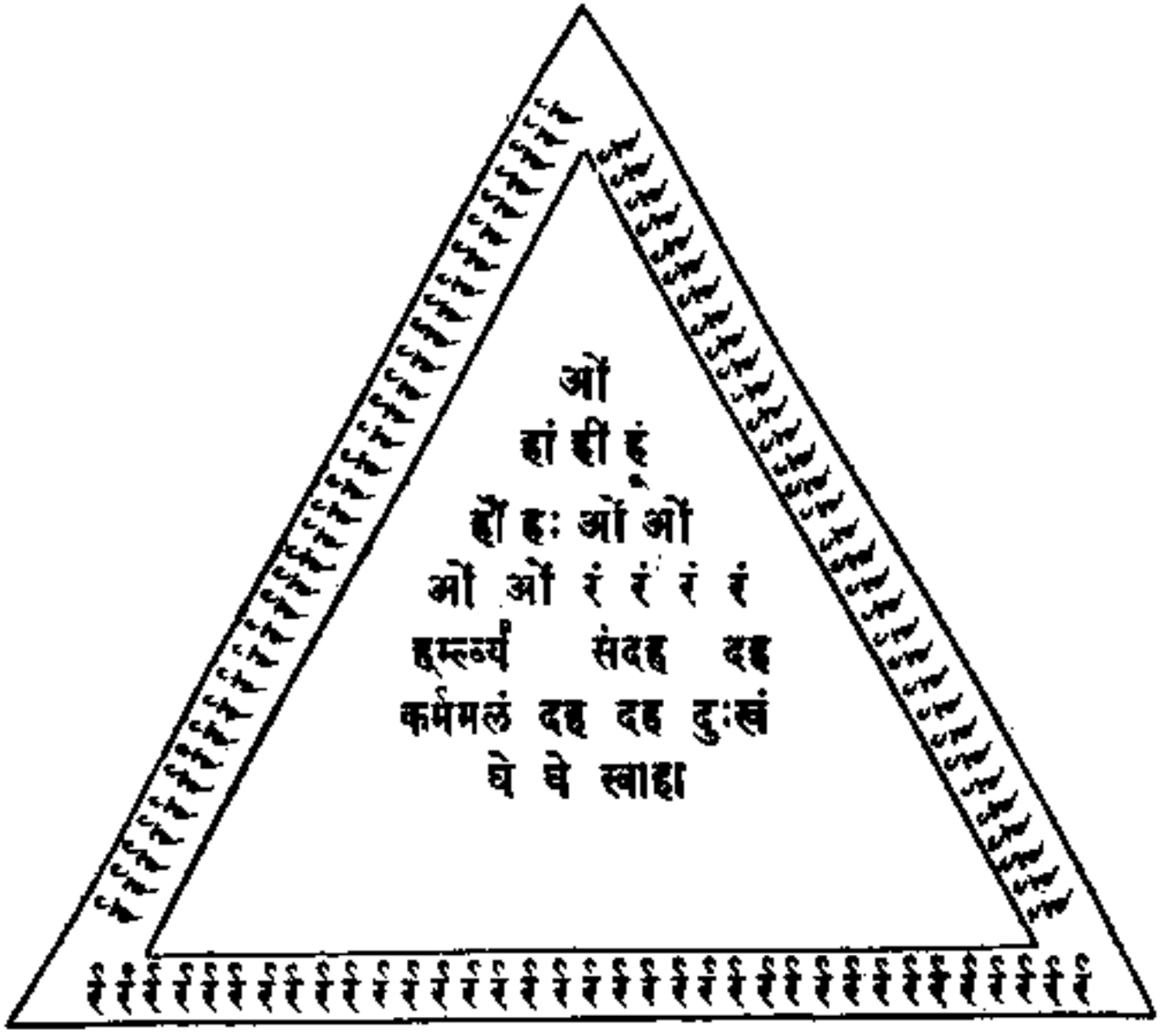
सबसे पहले अग्निमंडलका चिंतवन करना चाहिये। एक त्रिकोण आकारका यंत्र बनाना चाहिये उसके तीनों ओर सौ (१००) रेफ वा रकार बनाना चाहिये उन रकारों के ऊपर आधे रकारका आकार और बनाना चाहिये इसको अर्द्ध रेफकी ज्वाला कहते हैं। ऐसे रेफोंमें व्याप्त अग्नि मंडलके मध्यमें अपने शरीरको स्थापन करना चाहिये तथा ध्यान कर अपने शरीरके मलको दग्ध करना चाहिये जलाना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है। 'ओं ह्रीं अर्हं भगवते जिनभास्कराय बोधसहस्रकिरणैर्मम किरणेन्धनस्य द्रव्यं शोषयामि धे धे स्वाहा। यह मंत्र पढ़कर अपने कर्म मलको सोखना चाहिये अर्थात् दाभके छोटे पूलेको दीपकसे सेक लेना चाहिये और फिर उस दाभको अग्निमंडलमें भस्म कर देना चाहिये सो ही लिखा है—

'अग्निमंडलमध्यस्थै रेफैर्ज्वालाशताकुलैः। सर्वांगदेशजैर्ध्यात्वा ध्यानदग्धं वपुर्मलम्॥

इसीको यंत्रके द्वारा दिखलाते हैं—

१. अर्थात् अग्निमंडलके मध्यमें बैठकर सौ रेफ ज्वालाओंसे व्याप्त होकर तथा सब शरीरसे ध्यान कर उस ध्यानके द्वारा शरीरके मलको जलाना चाहिये।

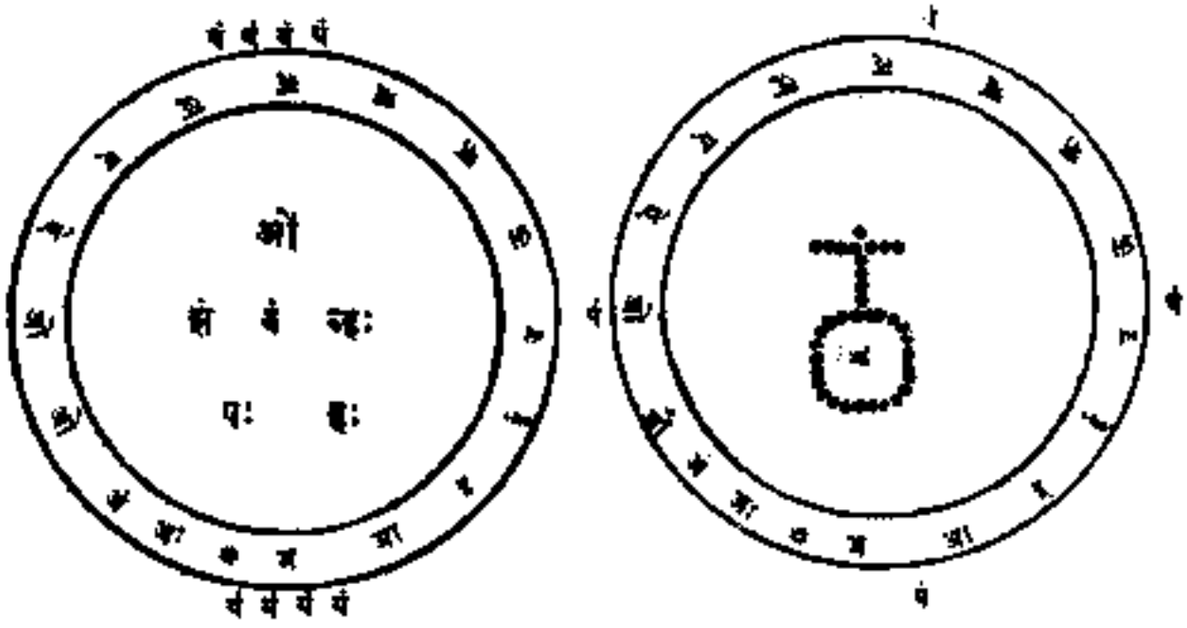
अग्निमंडल यंत्र



पूजा करनेवालेको दर्भासनपर बैठकर ऊपर लिखा मंत्र पढ़कर अपने पाप सम्बन्धी पापमलको जलानेके लिये वामको दीपकसे जलाकर अग्निमण्डलपर रखना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीजिन प्रभुजिनाय कर्मभस्मविधूननं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्रको पढ़कर उस जली हुई वामकी भस्मपर जलधारा देकर उसको बुझा देना चाहिए। फिर पञ्च परम [1]गुरुमुद्रा धारण करनी चाहिये। फिर अ सि आ उ सा इनका न्यास करना चाहिये। अर्थात् इनको स्थापन करना चाहिये। फिर जल मण्डल यन्त्र बनाकर उसके ऊपर झं वं वह: पः हः इन अमृत बीजोंको स्थापन कर अपने मस्तकपर जल छोड़ना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है—किसी तांबेके पात्रमें (गोल कटोरा आदिमें) जल भरकर उसमें अनामिका उँगलीसे जल मण्डल यन्त्र लिखना चाहिये। सो ही लिखा है—

झ ठं स्वरावृत्तं तोयं मण्डलद्वयवेष्टितम्

यन्त्र जलमण्डल



१. पञ्च परम गुरु मुद्राका स्वरूप इस प्रकार है। अपने दोनों हाथोंको सीधा कर दोनों हाथोंकी आठों उँगलियोंको एक सीधमें मिलाकर खड़ी करनी चाहिए। फिर दोनों अनामिका (सबसे छोटी) उँगलियोंको मिली हुई खड़ी करना चाहिए। फिर

फिर उस जलमण्डलमें आचमनी (छोटी चमची) रखकर "ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं सं ह्स्वौं ह्स्वौं हं सः अ सि आ उ सा अर्हं नमः स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर आचमनीसे जल लेकर मस्तकपर डालना चाहिए और इस प्रकार तीन बार करना चाहिए यह अमृतस्नान है। फिर अपने दोनों हाथोंकी कनिष्ठा उँगलीसे लेकर अनुक्रमसे अँगूठे पर्यन्त मूलकी रेखासे ऊपरकी रेखा तक पञ्चनमस्कारका न्यास करना चाहिए, स्थापन करना चाहिए उसकी विधि इस प्रकार है—"ॐ ह्रीं णमो अरहन्ताणं कनिष्ठकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं णमो आइरिआणं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं अंगुष्ठाभ्यां नमः। इस प्रकार अलग-अलग मन्त्र पढ़कर दोनों ही हाथोंकी उँगलियोंकी मूल रेखासे लेकर ऊपरके पर्व तक अँगूठा लगाकर अलग-अलग नमस्कार करना चाहिये। इसको करन्यास कहते हैं। फिर "ॐ ह्रीं अर्हं वं मं हं सं तं पं अ सि आ उ सा हस्तसंपुटं करोमि स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर दोनों हाथ मिला कर कमलकी कर्णिकाके समान संपुटरूप करना चाहिए अर्थात् हाथ जोड़ना चाहिए। तथा दोनों हाथोंके अँगूठोंको ऊँचा खड़ा रखना चाहिए। फिर नीचे लिखे मन्त्र पढ़कर अंगन्यास करना चाहिये उसकी विधि इस प्रकार है। 'ॐ ह्रीं णमो अरहन्ताणं स्वाहा हृदि' यह मन्त्र पढ़कर उन जुड़े हुए हाथोंके खड़े अँगूठोंको हृदयसे लगाना चाहिए। ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ललाटे। ॐ ह्रीं णमो आइरिआणं शिरसि। ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं शिरो दक्षिणभागे। ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं शिरोपश्चिमभवेशे। इन मन्त्रोंको पढ़कर दोनों हाथोंके अँगूठोंको अनुक्रमसे हृदय, ललाट, मस्तक, मस्तकके दायीं ओर और बायीं ओर नमस्कारपूर्वक स्पर्श करना चाहिए और उस समय हाथ जुड़े ही रखने चाहिए। यह अंगन्यास है अर्थात् अपने शरीर और हाथोंमें मन्त्रपूर्वक पञ्चपरमेष्ठीका स्थापन करना है। इसके बाद इसी विधिसे और इन्हीं ऊपर लिखे मन्त्रोंसे दूसरा अंगन्यास करना चाहिए। उसके स्थान ये हैं। ॐ ह्रीं णमो अरहन्ताणं स्वाहा शिरोमध्ये, ॐ ह्रीं णमो

दोनों हाथोंकी मध्यमा उँगलियोंको तर्जनी उँगलीसे दाबना चाहिए और दोनों कनिष्ठा उँगलियोंको अँगूठेसे दाबना चाहिये। इस प्रकार करनेसे पाँच उँगलियाँ ऊपरको खड़ी हुई दिखाई देंगी तथा पाँच दबी हुई अदृश्य रहेंगी। इसीको पंच गुरुमुद्रा कहते हैं।

२. इस श्लोकसे जो मण्डल बनता है वह दूसरे नम्बर पर लिखा है।

सिद्धाणं शिरोऽग्रभागे, ॐ ह्रीं णमो आइरिआणं शिरो नैऋत्याम्, ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं शिरो वायव्याम्, ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं शिरोईशाने। (शिरके मध्यमें, शिरके आगे, शिरकी नैऋत दिशामें, शिरको वायव्य दिशामें और शिरकी ईशान दिशामें अंगन्यास करे) फिर तीसरा अंगन्यास ऊपर लिखे मन्त्र पढ़कर अनुक्रमसे दाहिनी भुजा, बायीं भुजा, नाभि, दायीं कोंख और बायीं कोंखमें करे। यथा—ॐ ह्रीं णमो अरहन्ताणं स्वाहा दक्षिणभुजायां, ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं वामभुजायां, ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं नाभौ, ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं दक्षिणकुक्षौ, ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं वामकुक्षौ। तदनन्तर बाएँ हाथकी तर्जनी उंगलीमें पंचमन्त्रको स्थापन कर पूर्व दिशाको आदि लेकर दशों दिशाओंमें नीचे लिखे मन्त्र पढ़कर सरसों क्षेपण करनी चाहिए। ॐ क्षों स्वाहा पूर्वस्यां, ॐ क्षीं स्वाहा आग्नेये, ॐ क्षुं स्वाहा दक्षिणे, ॐ क्षें स्वाहा नैऋत्ये, ॐ क्षों स्वाहा पश्चिमे, ॐ क्षों स्वाहा वायव्यां, ॐ क्षौं स्वाहा उत्तरे, ॐ क्षं स्वाहा ईशाने, ॐ क्षः स्वाहा अधः, ॐ क्षः स्वाहा ऊर्ध्वम्। इस प्रकार दशों दिशाओंमें सरसों स्थापन करनी चाहिये। फिर ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रें ह्रं ह्रः स्वाहा, इस मन्त्रको पढ़कर दशों दिशाओंमें सरसों क्षेपण करनी चाहिए। यह शून्य बीज है। इस प्रकार दशों दिशाओंका बन्धन करना चाहिए। फिर मन्त्रको जाननेवाले श्रावकको मन्त्रपूर्वक कवच और करन्यास करना चाहिए। इसकी विधि इस प्रकार है। ॐ ह्रीं वषट् शिरसि, ॐ ह्रीं शिखायै वषट्, कवचाय हूं अस्त्राय फट्' यह मन्त्र पढ़कर पृथक्-पृथक् मन्त्रोंसे मस्तकका स्पर्श करना चाहिये। चोटीका स्पर्श कर चोटीमें गाँठ बाँधनी चाहिए। फिर कन्धेसे लेकर समस्त शरीरको दोनों हाथोंसे स्पर्श कर फिर दोनों हाथोंसे ताली बजाकर शब्द करना चाहिए। फिर परमात्माका ध्यान करना चाहिए। ध्यानके मन्त्र ये हैं। ॐ ह्रीं णमो अरहन्ताणं अर्हद्भ्यो नमः' इसको २१ बार जपना चाहिए। 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धेभ्यः नमः स्वाहा' इसको भी २१ बार जपना चाहिए। इन मंत्रोंके द्वारा पद्मासनसे कायोत्सर्गपूर्वक ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार सकलीकरण विधानके द्वारा अपना मन शुद्ध करना चाहिए। भावार्थ—शौच दो प्रकार है एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर। सो जल, मिट्टी आदिसे तो बाह्य शौच करना चाहिये और मन्त्रसे आभ्यन्तर शौच करना चाहिये। सो ही लिखा है—'स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः।

तदनन्तर अनुक्रमसे देव, शास्त्र, गुरुकी पंचो पंचोपचारी पूजा करनी चाहिये। फिर सिद्धचक्रकी पूजा करनी चाहिये। आगे उन्हीं पूजाओंको लिखते हैं।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मन् अनन्तानन्तज्ञानशक्ते एहि एहि अत्रावतरावतर संवौषट् स्वाहा इत्याह्वानम्। ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मन् अनन्तानन्तज्ञानशक्ते अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा स्थापनम्। ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मन् अनन्तानन्तज्ञानशक्ते अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् स्वाहा इति सन्निधिकरणम्। इस प्रकार सबसे पहले आकर्षण करना चाहिये और वह आकर्षण आकर्षणी मुद्रासे तथा दंडासनसे (खड़े होकर) पुष्पक्षेपण करना चाहिये। दूसरा उपचार स्थापन है वह पद्मासनसे अथवा सुखासनसे स्थापनी कर्षणी मुद्रा-पूर्वक पुष्पक्षेपण कर करना चाहिये। तीसरा सन्निधिकरण पद्मासनने ऊर्द्ध्व मुद्रा रखकर पुष्पक्षेपण करना चाहिये। इन तीनों मुद्राओंका स्वरूप इस प्रकार है। दोनों हाथोंको खोलकर एक साथ मिलाकर फैलावे फिर दोनों अंगूठे अनामिकाके मूलस्थानमें रखनेसे आकर्षणी मुद्रा बन जाती है। स्थापनीमुद्रा—उसी आकर्षणीमुद्रा सहित दोनों हाथोंको उलटा रखनेसे स्थापनीमुद्रा होती है। सन्निधिकरणमुद्रा—दोनों हाथोंको मुट्ठी बांधकर मिलानेसे और दोनों अंगूठे ऊपरकी ओर रखनेसे सन्निधिमुद्रा होती है। सन्निधिकरण करते समय सन्निधि-मुद्रासे हृदय स्पर्श करना चाहिये और नमस्कार करना चाहिये। सो ही मुद्रोद्धार शास्त्रमें लिखा है—

हस्ताभ्यामंजलिं कृत्वानामिका मूलपर्वणि ॥
अंगुष्टौ ना क्षिपेत्सेयं मुद्रात्वावाहनी मता ॥
अधोमुखी इयं चेत्स्यात्स्थापिनी मुद्रिका मता ॥
उच्छ्रितांगुष्ठयुग्मोत्थसंयोगात्सन्निधापिनी ॥

इस प्रकार मुद्राका स्वरूप बतलाया।

तदनंतर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनंतानंतज्ञानशक्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा'। जलम्। यह मंत्र पढ़कर जल चढ़ाना। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये गंधं निर्वपामीति स्वाहा'। गंधं। यह मंत्र पढ़कर भगवानके चरणोंपर गंध लेपन करना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्त-ज्ञानशक्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा'। अक्षतान्। यह मंत्र पढ़कर अक्षत चढ़ाना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा'। पुष्पं। यह मंत्र पढ़कर पुष्प चढ़ाना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तशक्तये नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा'। नैवेद्यम्। यह मंत्र

पढ़ कर नैवेद्य चढ़ाना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये दीपं निर्वपामीति स्वाहा'। दीपं। यह मंत्र पढ़कर दीपक संजोकर भगवानके सामने आरती उतार कर उस दीपकको सामने रखना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये धूपं निर्वपामीति स्वाहा'। धूपम्। यह मंत्र पढ़कर धूपदानमें रक्खी हुई अग्निमें चन्दनादिक सुगंधित पदार्थोंकी बनी हुई धूप प्रज्वलित करना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं परमब्रह्मणेऽनन्तानन्तशक्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा' फलं। यह मंत्र पढ़कर भगवानके सामने फलके पुंज चढ़ाना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं परमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये जलाद्यर्घं निर्वपामीति स्वाहा' अर्घ्यम्। यह मंत्र पढ़कर जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, स्वस्तिक दर्भ, दूब, सरसों आदिका अर्घ बनाकर सामने आरती उतार कर चढ़ाना चाहिये तदनंतर सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये। उसका मंत्र यह है 'ॐ ह्रीं परमब्रह्म मुखकमलोत्पन्न द्वादशांगश्रुतेभ्य जलं निर्वपामीति स्वाहा' इसी प्रकार चंदन अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, वस्त्र और अर्घ चढ़ाना चाहिये इस प्रकार अनुक्रमसे श्रुतपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर आचार्य परमेष्ठीकी पूजा करनी चाहिये उसका मंत्र यह है। 'ॐ ह्रीं शिवपदसाधकेभ्यः आचार्यपरमेष्ठिभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा' इसी प्रकार चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, अर्घ चढ़ाना चाहिये इस प्रकार अनुक्रमसे गुरुकी पूजा करनी चाहियें। फिर सिद्धपूजा करनी चाहिये उसका मंत्र यह है 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जलं गृहाण गृहाण स्वाहा' इसी प्रकार गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, अर्घ चढ़ाना चाहिये। यह सिद्धार्चन कहलाता है।

फिर भगवानके चरण-कमलोंपर जो चन्दनका विलेपन किया था उसमेंसे बचे हुए चन्दनका तिलक करना चाहिये। तथा प्रभुके चरणोंसे स्पर्शित किये गये पूजाके पुष्पोंकी माला बनाकर अपने कण्ठमें धारण करनी चाहिये। सो ही लिखा है—

जिनांघ्रिस्पर्शनात्माला निर्मले कंठदेशके। ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च।

अब आगे तिलक लगानेकी विधि लिखते हैं

पहले पूजाके समय भगवानके चरणोंमें जो चन्दन लगाया था और उसमेंसे जो बचा था उस चंदनसे

पूजा करनेवालेको तिलक लगाना चाहिये। पूजा करनेवालेको किसी अन्य चन्दनसे तिलक लगाना योग्य नहीं है वह तिलक जैनमतमें छः प्रकारका बतलाया है। पहला आतपत्र अर्थात् तीन छत्रके आकारका यथा—≡ दूसरा धर्म चक्रके आकारका गोल यथा ० तीसरा अर्द्धचक्रके आकारका अर्थात् अष्टमीके चन्द्रमाके आकारका यथा ⌒। चौथा त्रिशूलके आकारका अर्थात् ऊपरकी ओर तीन रेखा यथा ↑। पाँचवां मानस्तम्भके आकारका यथा ⌀। छटा सिंहपीठ वा सिंहासनके आकारका धर्मचक्रके आकारका छोटा बिंदीके समान गोल यथा ०। इनका अभिप्राय यह है। भगवानके ऊपर तीन छत्र शोभायमान हैं उनको हृदयमें विचार कर आतपत्र वा छत्रके आकारका तिलक करना चाहिये। भगवानके यक्षदेव धर्मचक्रको अपने मस्तकपर लिये हुए चलते हैं उस धर्मचक्रको चिंतवन कर चक्रके आकारका गोल तिलक करना चाहिये। तथा सुदर्शन आदि पाँचों मेरु पर्वतोंपर पांडुक वनमें भगवानके जन्म कल्याणके समय अभिषेक करनेके लिये अर्द्ध चन्द्राकार स्फटिक आदि अनेक मणियोंकी बनी पांडुक शिला है। उसपर रक्खे हुए सिंहासनोंपर इन्द्र भगवानको विराजमान कर बड़े उत्सवके साथ क्षीरसागरके जलसे भगवानका अभिषेक करता है। उस पांडुक शिलाको स्मरण कर अर्द्ध चन्द्राकार तिलक करना चाहिये। तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों रत्नत्रयोंका चिंतवन कर त्रिशूलके आकारका अथवा त्रिदण्डाकार तिलक करना चाहिये। समवशरणके बाह्य दरवाजेके पास मानस्तम्भ है। और उसपर भगवान अरहन्त देवकी प्रतिमा विराजमान हैं उस मानस्तम्भको चिंतवन कर मानस्तम्भके आकारका तिलक करना चाहिये। भगवानके विराजमान होनेके सिंहासनको अपने मस्तकपर रखनेका भाव रखकर सिंहासनके आकारका तिलक करना चाहिये। इस प्रकार छहों तिलकोंके भाव बतलाये हैं।

यदि ललाटपर तीन छत्र तथा अर्द्ध चंद्राकारका तिलक किया हो तो अपने हृदयपर दोनों भुजाओंमें और कण्ठमें त्रिदण्डाकार तिलक करना चाहिए। यदि ललाट पर मानस्तम्भ वा सिंहासनके आकारका तिलक किया हो तो भुजा, कण्ठ आदि स्थानोंमें त्रिदण्ड तथा चक्राकार तिलक करना चाहिए। इन सब तिलकोंमें पहले गन्धका लेपकर उसके ऊपर त्रिशूल आदिका आकार बनाना चाहिए। तीन छत्राकार और अर्द्ध चन्द्राकार तो आड़ी रेखा बनाकर बनाना चाहिए, त्रिदण्ड और मानस्तम्भ ऊपरकी ओर रेखा कर बनाना चाहिए। तथा धर्मचक्र और सिंहासन गोल आकारका बनाना चाहिए। मानस्तम्भ तो एक अंगुल चौड़ा करना चाहिए

तथा दो अँगुल चौड़ा भी लिखा है। तथा इसकी लम्बाई चार अँगुल करनी चाहिए। और वह इस प्रकार बनाना चाहिए जो दोनों नेत्रोंकी भौंवोंके केशोंको स्पर्श करता रहे। तथा चक्राकार और त्रिदण्डाकार भी भौंवोंके केशोंको स्पर्श करता हुआ बनाना चाहिए। यह सब तिलकोंके आकारका निरूपण बतलाया।

इन छहों प्रकारके तिलकोंमेंसे क्षत्रियोंको तो अर्द्ध चन्द्र तथा छत्रत्रयका तिलक करनेका अधिकार है। ब्राह्मणोंको मानस्तम्भ सिंहपीठ तथा छत्राकार तिलक करनेका अधिकार है। वैश्योंको मानस्तम्भ तथा छत्राकारका तिलक करना सुखदायक है और शूद्रोंको चक्राकार तथा अन्य लोगोंको त्रिदण्डाकार तिलक करनेकी आम्नाय है।

गृहस्थोंको ललाटपर तिलकके ऊपर जिनपादार्चित अक्षतोंको (जिन अक्षतोंसे भगवानके चरण कमलोंकी पूजा की है उन अक्षतोंको) एक अँगुलमात्र लगाना चाहिये, और आसिकाके अक्षत अपने ललाटपर चढ़ाना चाहिये।

पंच परमेष्ठीको अपने अंगोंमें स्थापन करना ही तिलक करनेका अभिप्राय है। ये तिलक पंचपरमेष्ठीके चिह्न हैं। अरहन्तोंको ललाटपर स्थापन करना चाहिये, सिद्धोंको हृदयमें, आचार्योंको कण्ठमें, उपाध्यायोंको दाहिनी भुजाओं और सर्व साधुओंको बायीं भुजाओंमें स्थापन करना चाहिये। यही तिलक करनेका हेतु है। सो ही लिखा है—

अर्हतां वा ललाटे च सिद्धानां हृदये तथा। आचार्याणां च श्रीकंठे पाठको दक्षिणे भुजे।
साधूनां वामभागे च पंचस्थानं प्रकीर्तितम्।

इनके सिवाय कर्ण उदर आदि अन्य अंग उपांगोंमें भी तिलक करना कहा है। सो ही लिखा है—

जिनांघ्रिचन्दनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत्।

और भी लिखा है—

भुजयोर्भालदेशे वा कंठे हृदुदरेपि च। सर्वांगरचना कार्या विकारपरिवर्जिता॥

इस प्रकार तिलकके चिह्न करने चाहिये।

पूजा करते समय धोती, दुपट्टा ये दो वस्त्र और यज्ञोपवीत या जनेऊ धारण करना चाहिये। जनेऊ पहननेका मन्त्र यह है 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रेभ्यो नमः अहं यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा' इस मन्त्रसे जनेऊ पहनना चाहिये। तदनन्तर कर्ण, कुण्डल, मुकुट, मुद्रिका और कंकण आदि आभूषण धारण कर फिर अपनेको इन्द्रकी कल्पना कर पंचामृताभिषेक पूर्वक पूजा करनी चाहिये। यदि ऊपर लिखे आभूषण पहननेका योग न मिल सके तो भगवानके चरण-स्पर्शित चंदनसे तिलक करना चाहिये और उसी चंदनसे समस्त शरीर-पर आभूषणोंका चिह्न करना चाहिये। सो ही लिखा है--

वस्त्रयुग्मं यज्ञसूत्रं कुण्डलं मुकुटं तथा। मुद्रिका कङ्कणं चेति कुर्याच्चंदनभूषणम्।

पूजासागरमें भी लिखा है---

धृत्वा शेखरपट्टहारपटकग्रैवेयकालम्बकं केयूरांगदमध्यबन्धुरकटी सूत्रं च मुद्रांकितम्।
चंचत्कुंडलकर्णपूरममलं पाणिद्वये कंकणं मंजीरं कंटकं पतेर्जिनपतेः श्रीगंधमुद्रांकितम्।

इस प्रकार विधि कर फिर भगवानका अभिषेक करनेके लिये पांडुकशिलाकी कल्पना कर श्रीपीठ स्थापन करना चाहिये। अभिषेककी विधि क्रमसे इस प्रकार है---

ॐ ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर कलश स्थापन करना चाहिये। फिर

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पद्मादि षड्ह्रदा गंगासिंध्वादिचतुर्दशनदीमहासरितः उपनद्यस्तत्र स्थिताः सकलदेवताः तीर्थोदकप्रदानेन प्रसीदन्तु इदं तीर्थजलं भवतु स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर कलशोंमें जल भरना चाहिये। 'ॐ ह्रीं नेत्राय संवौषट्' यह मन्त्र पढ़कर गंध, अक्षत, पुष्पादिकसे कलशोंकी पूजा करनी चाहिये। तथा दाभ दूर्वा पुष्पमाला और पाँच पल्लवोंसे (पाँच पानसे या आमके पाँच पत्तोंसे) उन कलशोंको सुशोभित करना चाहिये। फिर सूत्रबन्धन करना चाहिये अर्थात् उन कलशोंके चारों ओर रंगति सूत (कलावा) लपेटना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ ह्रीं स्वस्तये पीठमारोपयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर सिंहासन उठाना चाहिये। और ॐ ह्रीं अर्हं क्षां ठः ठः श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा'

यह मन्त्र पढ़कर उस सिंहासनको मन्त्रसे आगे पूर्वकी ओर मुखकर अथवा उत्तरकी ओर मुखकर स्थापन करना चाहिये। यह सिंहासन अथवा पीठके स्थापन करनेकी विधि है। फिर ॐ ह्रीं अर्हं पीठं प्रक्षालयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर उस सिंहासनको जलसे प्रक्षालन करना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं दर्पमथनाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर उस सिंहासनमें दाभ रखना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहाः' यह मन्त्र पढ़कर जल, गंध,अक्षतादिकसे उस सिंहासनका पूजन करना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीकारं लेखयामि स्वाहाः' यह मन्त्र पढ़कर उस सिंहासन पर केशर अथवा चंदनसे श्रीः इस प्रकार श्रीकार लिखना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीयंत्रं पूजयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर जल, गंध, अक्षत, पुष्प आदिसे उस श्री यंत्रकी (लिखे हुए श्रीकी) पूजा करना चाहिये।

तदनन्तर स्वयं उठकर भगवानके सन्मुख खड़ा होकर हाथ जोड़ना चाहिये 'ॐ ह्रीं अर्हं धात्रे वषट्' इस मन्त्रको पढ़कर भगवानके दोनों चरण कमलोंको अपने दोनों हाथोंसे स्पर्श करना चाहिये। उन हाथोंको मस्तक ललाट और नेत्रोंसे लगाना चाहिये और फिर वहांसे प्रतिमाजीको उठाकर उस सिंहासन तक ले आना चाहिये फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर गीत, नृत्य, बाजे, जय जयकार आदि बड़े उत्सवके साथ और बड़े हर्ष भावसे उस सिंहासन पर लिखे हुए श्रीवर्णपर श्रीप्रतिमाजीको स्थापन करना चाहिए। साथ ही एक सिद्धयंत्र स्थापन करना चाहिए फिर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणे अर्घं निर्वपामीति स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर भगवानको एक अर्घ चढ़ाना चाहिए फिर 'ॐ नमः परमब्रह्मणे श्रीपादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर भगवानके दोनों चरणोंका प्रक्षालन करना चाहिए। फिर ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा एहि एहि संवौषट्' यह मन्त्र पढ़कर आह्वानन करना चाहिए। फिर ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः' यह मन्त्र पढ़कर भगवानका स्थापन करना चाहिए। फिर ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् यह मन्त्र पढ़कर सन्निधिकरण करना चाहिए। इस प्रकार अनुक्रमसे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण कर गुरुमुद्रा धारण करना चाहिये।

गुरु मुद्राका स्वरूप यह है—अपने दोनों हाथोंको सीधाकर दोनों हाथोंकी आठों उँगलियोंको मिलाकर

जिस प्रकार यह गुरुमुद्रा मस्तकपर चढ़ाते हैं उसी प्रकार मस्तक ललाट शिरके दांई और बांई ओर और पीछेकी ओर भी

लम्बी खड़ी करनी चाहिए। फिर दोनों अनामिका (सबसे छोटी) उँगलियोंको मिली हुई खड़ी कर विलोम रूप (तले ऊपर) कर लेना चाहिए। फिर दोनों हाथोंकी मध्यमा (बीचकी) उँगलियोंको तर्जनीसे (अँगूठेकी पासवाली उँगलीसे) दाबकर तथा कनिष्ठा (सबसे छोटीकी पासवाली उँगली) को अँगूठेसे दाबकर खड़ी रखना चाहिए इस प्रकार करनेसे पाँच उँगलियाँ खड़ी हुई दिखाई देंगी और पाँच दबी हुई अदृश्य रूप होंगी इसीको पंचगुरुमुद्रा कहते हैं यह मुद्रा पंच परमेष्ठीका स्मरण करनेके लिए की जाती है। इस पंच गुरुमुद्राको धारण करते समय हथेलीमें थोड़ा सा जल और पाँचों उँगलियोंको दाबते समय एक-एक पुष्प रख लेना चाहिए फिर ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा पंचगुरुमुद्राधारणं करोमि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़ लेना चाहिए फिर ॐ वृषभादिदिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनंतचतुष्टयाय परमसुखप्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपरमपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्ठिने महते त्रिलोकनाथाय त्रैलोक्यप्रस्थानाय अदिष्टदिव्यनागपूजिताय परमपदाय ममात्र सन्निहिताय स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर उस पंचगुरुमुद्राको अपने मस्तक पर चढ़ाना चाहिए। तथा वहीं पर जल पुष्पोंको छोड़कर गुरुमुद्रा छोड़ देनी चाहिये और फिर नमस्कार कर लेना चाहिये। तदनंतर पाद्य दान करना चाहिये अर्थात् एक अर्घ देना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं ह्वीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं व्रां व्रीं ह्रं सः स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर आचमनीमें (एक छोटीसी चमचीमें) जल भरकर भगवानके ऊपर तीन बार जल क्षेपण करना चाहिये। यह भगवानका आचमन विधान है। फिर 'ॐ ह्रीं क्रौं समस्तनीराजनद्रव्यैर्नीराजनं करोमि अस्माकं दुरितमपनयतु भगवान् ॐ नमोर्हते भगवते अ सि आ उ सा स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर आरती उतारनेके पात्रसे नीराजनावतारण करना चाहिये अर्थात् आरती उतारनी चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं आं क्रौं प्रसस्तवर्णसर्वलक्षणसंपूर्ण स्वायुधवाहनयुवतीसचिह्नसहित इन्द्राग्नि यम, नैऋत, वरुण, पवन, कुवेरैशान शेषशीतांशु वश दिक्पाल देव अत्र आगच्छ आगच्छ संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्, ॐ आं क्रों

चढ़ाते हैं अर्थात् इन पाँचों जगह पंचपरमेष्ठीकी स्थापना करते हैं पुष्प क्षेपण करते हैं और जल सिंचन करते हैं।

इस प्रकार अपने शरीरके उत्तम भागमें पंच परमेष्ठीको स्थापना करनेसे आत्मामें पंच परमेष्ठीके गुणोंकी दृढ़ भावना उत्पन्न होती है, दृढ़ संस्कार होता है। जिसकी वासना शरीरके संबंध पर्यंत वैसी ही दृढ़ बनी रहती है।

१. एक थालीमें दही, अक्षत, लाजा, (खीलें) भस्म, गोमट, पिण्ड, पुष्प, दूर्वा, स्वस्तिक और चार बत्तीके जलते हुए दीपकको लेकर भगवानकी आरती उतारनी चाहिये।

ह्रीं दश दिक्पालाय इदं अर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरु वलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर अलग-अलग इन्द्रादिक दश दिक्पालोंका स्थापन करना चाहिये तथा एक अर्घ देकर सबको प्रसन्न करना चाहिये। फिर

यस्यार्थं क्रियते पूजा स प्रीतो नित्यमस्तु ये। शांतिमे पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धदः॥

इस श्लोकको पढ़कर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

फिर 'ओं ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर शुद्ध जलसे भरे हुए कलशको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर ऊपर कर लेना चाहिये। फिर ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं थं मं हं हं सं सं सं तं पं पं झं झं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते पवित्रतरजलेन अभिषेचयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर भगवानके मस्तकपर उन कलशोंसे शुद्ध जलकी धारा देनी चाहिये। इसको शुद्धोदक स्नान कहते हैं फिर इसी मन्त्रको पढ़कर पवित्रतर जलेनकी जगह 'पवित्रतर इक्षुरसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह पढ़कर इक्षुरसकी धारा देनी चाहिये। ईख गन्ना वा सांठेका रस अथवा जलमें थोड़ा गुड़ या शक्कर वा बूरा मिलाकर उस रस वा मीठे जलसे अभिषेक करना चाहिये। यह इक्षुरसस्नान कहलाता है। फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं इत्यादि ऊपरके मन्त्रको पढ़कर तथा 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतर घृतेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा' पढ़कर घीका अभिषेक करना चाहिये। इसको घृतस्नान कहते हैं। फिर ऊपरका ही मन्त्र पढ़कर 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतरदुग्धेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा' पढ़कर दूधसे अभिषेक करना चाहिये। यह दुग्धस्नान कहलाता है। फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं' इत्यादि ऊपरका मन्त्र पढ़कर 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतर दध्ना जिनमभिषेचयामि स्वाहा' पढ़कर भगवानके ऊपर दहीकी धारा देनी चाहिये। इसको दधि स्नपन कहते हैं। फिर ॐ ह्रीं श्रीं इत्यादि ऊपरका मन्त्र पढ़कर तथा 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतर सर्वौषधिना जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह पढ़कर भगवानका सर्वौषधिसे अभिषेक करना चाहिये। सर्वौषधिमें केसर, चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ डालने चाहिये यह सर्वौषधि स्नान है। फिर 'ॐ नमोऽर्हते भगवते कक्कोलैलालवंगादिचूर्णैर्जिनागमुद्वर्तयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर कक्कोल, इलायची, लौंग तथा आदि शब्दसे श्रीखण्ड, कपूर, केशर, अगर, तगर, देवदारु, कूट, जातिफल आदि सुगन्धित वस्तुओंका चूर्ण

कर उससे भगवानके समस्त शरीरमें उद्वर्तन वा उबटना करना चाहिये। फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं इत्यादि ऊपर लिखा मन्त्र पढ़कर तथा 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतर चतुष्कोण कुम्भजलेन पूर्ण कुम्भजलेन च जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर चतुष्कोणके कलशोंके जलसे तथा पूर्ण कुम्भके जलसे भगवानका अभिषेक करना चाहिये। यह चतुष्कोणकुम्भस्नान और पूर्ण कुम्भस्नान कहलाता है। फिर 'ॐ ह्रीं निखिललोकत्रिशुद्धीकरणगन्धोदकेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर चन्दन, केशर आदिसे मिले हुए जलसे (गन्धोदकसे) भगवानका अभिषेक करना चाहिये। इसको गन्धोदक स्नपन कहते हैं। तदनन्तर इस गन्धोदकको अपने समस्त उत्तम अंगोंपर लगाना चाहिये। फिर अभिषेकके पात्रमें और भृंगारमें (टूटनी लगे हुए छोटे लोटेमें) पूर्ण जल भरकर भगवानके ऊपर मन्त्रपूर्वक शांतिधारा देनी चाहिए। शांतिधाराका पाठ करना और जल छोड़ते जाना सो शांतिधारा है। वह मन्त्र इस प्रकार है। ॐ ह्रीं क्रौं अर्हं मम पापं खण्ड खण्ड, वह वह, दुःखं हन हन, ध्वीं ध्वीं द्रुः पः हः क्षं वं क्षं क्षौं क्षूं क्षौं क्षः आं क्रौं द्रां ॐ ह्रीं ठः ठः ठः श्रीरस्तु सिद्धिरस्तु पुष्टिरस्तु कल्याणमस्तु स्वाहा' इति लघुशान्तिधारा। यह लघुशांतिधारा पाठ है। बड़े-बड़े कार्योंमें महाशांति धाराका पाठ पढ़ना चाहिये। फिर जिन प्रतिमाके चरणोंपर गन्ध लेपन कर तथा प्रतिमाको वस्त्रसे पोंछकर यन्त्र सहित सिंहासनपर विराजमान कर देना चाहिये। फिर अरहन्त भक्तिका पाठ करना चाहिये। अथवा अरहन्त भगवानका कोई भी स्तोत्र बोल लेना चाहिये। फिर 'यद्गर्भावतरे गृहे पितुरपि प्रागेव शक्राज्ञया' इत्यादि अरहन्त भक्तिका पाठ है सो दश भक्तियोंमेंसे देख लेना चाहिये।

तदनन्तर आगे बैठकर शांतिचक्र यन्त्रके आगे जलादिक फल पर्यन्त समस्त सामग्री चढ़ाकर पूजा करनी चाहिये। वह पूजा इस प्रकार है—

यन्त्रके मध्य स्थित अष्टपत्रोंमें जो अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु तथा सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र, तप इनकी पूजा सबसे पहले करनी चाहिये। पूजा करनेका मंत्र यह है—'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा जलं गृह्णाण गृह्णाण नमः स्वाहा' इस मन्त्रको पढ़कर जल चढ़ाना चाहिये तथा यही मन्त्र पढ़कर जलकी जगह उस द्रव्यका नाम लेकर अनुक्रमसे गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, अर्घ चढ़ाकर पूजा करनी चाहिये। फिर पूर्णार्घ देकर 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय नमः' ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः, ॐ ह्रीं सम्यक्-चारित्रेभ्यो नमः, ॐ ह्रीं सम्यक्तपसे नमः' ये मन्त्र अलग-अलग पढ़कर पूजा करनी चाहिये।

फिर उन अष्ट दलोंके बाहर स्थित जयादिक आठों देवियोंका अनुक्रमसे पूजन करना चाहिये। पहले तो उनका आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये। उसका मन्त्र यह है—'ॐ ह्रीं जये विजये अजिते अपराजिते जंभे मोहे स्तम्भे स्तम्भिनि इति अष्ट देव्य स्वायुधवाहनसमेताः सचिह्नाः अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्'। इस मन्त्रको पढ़कर सबका आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर ॐ ह्रीं जयायै स्वाहा, ॐ ह्रीं विजयायै स्वाहा, ॐ ह्रीं अजितायै स्वाहा, ॐ ह्रीं अपराजितायै स्वाहा, ॐ ह्रीं जंभायै स्वाहा, ॐ ह्रीं मोहायै स्वाहा, ॐ ह्रीं स्तंभायै स्वाहा, ॐ ह्रीं स्तम्भिन्यै स्वाहा। इदं अर्घ्यं चरु अमृतं स्वस्तिकं च यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा' इन मंत्रोंसे आठ दलोंपर स्थित आठों जयादिक देवियोंकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर उन आठ दलोंके बाहर सोलह दलोंपर स्थित रोहिणी आदि सोलह विद्या देवताओंकी अनुक्रमसे पूजन करना चाहिये। यथा—ॐ ह्रीं रोहिणि प्रज्ञप्ति वज्रशृंखले वज्रांकुशे अप्रतिचक्रे पुरुषदत्ते कालि महाकालि गांधारि गौरि ज्वालामालिनि वैरोटि अच्युते अपराजिते मानसि महामानसि इति षोडश देव्यः स्वायुधवाहन समेताः सचिह्नाः अत्रागच्छतागच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्, इस मन्त्रको पढ़कर तथा पुष्प चढ़ाकर अनुक्रमसे आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये। तथा फिर ॐ ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ ह्रीं वज्रशृंखलायै स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ ह्रीं वज्रांकुशायै स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ ह्रीं अप्रतिचक्रायै स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ ह्रीं काल्यै स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ ह्रीं गांधार्यै स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ ह्रीं गौर्यै स्वाहा ॥ १० ॥ ॐ ह्रीं ज्वालामालिन्यै स्वाहा ॥ ११ ॥ ॐ ह्रीं वैरोट्यै स्वाहा ॥ १२ ॥ ॐ ह्रीं अच्युतायै स्वाहा ॥ १३ ॥ ॐ ह्रीं अपराजितायै स्वाहा ॥ १४ ॥ ॐ ह्रीं मानसी देव्यै स्वाहा ॥ १५ ॥ ॐ ह्रीं महामानसी देव्यै स्वाहा ॥ १६ ॥ इदं अर्घ्यं पाद्यं चरु बलि यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा। इस प्रकार मन्त्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये और "यस्यार्थं क्रियते पूजा" इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

तदनन्तर उन सोलह पत्रोंके बाहर चौबीस पत्रोंपर स्थित चक्रेश्वरी आदि चौबीस जिनशासन देवियों-

का पूजन करना चाहिये। यथा—ॐ ह्रीं चक्रेश्वरि रोहिणि प्रज्ञप्ति वज्रशृंखले वज्रपुरुषदत्ते मनोवेगे कालि महाकालि ज्वालामालिनि मानवि गौरि गांधारि वैरोटि अनन्तमति मानसि महामानसि जये विजये अपराजिते बहुरूपिणि चामुण्डे कुष्मांडिनि पद्मावति सिद्धायिनि सर्वा देव्यः स्वायुधवाहनसमेताः सचिह्ना अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। इस मन्त्रको पढ़कर तथा पुष्प चढ़ाकर अनुक्रमसे आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये। तथा फिर—ॐ ह्रीं चक्रेश्वरीदेव्यै स्वाहा १ ॐ ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा २ ॐ ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा ३ ॐ ह्रीं वज्रशृङ्खलायै स्वाहा ४ ॐ ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा ५ ॐ ह्रीं मनोवेगायै स्वाहा ६ ॐ ह्रीं काल्यै स्वाहा ७ ॐ ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा ८ ॐ ह्रीं ज्वालामालिन्यै स्वाहा ९ ॐ ह्रीं मानव्यै स्वाहा १० ॐ ह्रीं गौर्यै स्वाहा ११ ॐ ह्रीं गांधार्यै स्वाहा १२ ॐ ह्रीं वैरोट्यै स्वाहा १३ ॐ ह्रीं अनन्तमत्यै स्वाहा १४ ॐ ह्रीं मानसीदेव्यै स्वाहा १५ ॐ ह्रीं महामानसीदेव्यै स्वाहा १६ ॐ ह्रीं जयायै स्वाहा १७ ॐ ह्रीं विजयायै स्वाहा १८ ॐ ह्रीं अपराजितायै स्वाहा १९ ॐ ह्रीं बहुरूपिण्यै स्वाहा २० ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा २१ ॐ ह्रीं कुष्मांडिन्यै स्वाहा २२ ॐ ह्रीं पद्मावत्यै स्वाहा २३ ॐ ह्रीं सिद्धायिन्यै स्वाहा इदं अर्घ्यं चरु अमृतं बलि यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्णातां प्रतिगृह्णातां स्वाहा। इस प्रकार मन्त्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये और 'यस्यार्थं क्रियते पूजा' इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा तथा पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये।

तदनन्तर उन चौबीस पत्रोंके बाहर बत्तीस पत्रोंपर स्थित असुरेन्द्रादिक बत्तीस इन्द्रोंका पूजन करना चाहिये। यथा—ॐ ह्रीं असुरेन्द्रनागेन्द्र विद्युदिन्द्र सुपर्णेन्द्र अग्नीन्द्र वातेन्द्र स्तनितेन्द्र उदधीन्द्र द्वीपेन्द्र दिगीन्द्र किन्नरेन्द्र किंपुरुषेन्द्र महोरगेन्द्र गन्धर्वेन्द्र यक्षेन्द्र राक्षसेन्द्र भूतेन्द्र पिशाचेन्द्र चन्द्रादित्य सौधर्मेन्द्र ईशानेन्द्र सानत्कुमारेन्द्र माहेन्द्र ब्रह्मेन्द्र लांतवेन्द्र शुक्रेन्द्र शतारेन्द्र आनतेन्द्र प्राणतेन्द्र आरणेन्द्र अच्युतेन्द्र सर्वे इन्द्रा यानायुधवाहनयुवतिजनैः सार्द्धं आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। इस मन्त्रको पढ़कर अनुक्रमसे आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर ॐ ह्रीं असुरेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं नागेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं विद्युदिन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं सुपर्णेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं वातेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं स्तनितेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं उदधीन्द्राय स्वाहा।

ॐ ह्रीं द्वीपेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं दिगिन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं किन्नरेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं किंपुरुषेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं महोरगेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं गंधर्वेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं यक्षेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं राक्षसेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं भूतेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं पिशाचेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं चंद्रेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं आदित्येन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं सौधर्मेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं ईशानेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं सानत्कुमारेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं माहेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं ब्रह्मेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं लांतवेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं शुक्रेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं शतारेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं आनतेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं प्राणतेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं आरणेन्द्राय स्वाहा। ॐ ह्रीं अच्युतेन्द्राय स्वाहा। ॐ भू र्भुवः स्व स्वाहा स्वधा इदं अर्घ्यं चरु अमृतं स्वस्तिकं यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा। इस प्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये। तथा 'यस्यार्थं क्रियते पूजा' इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा तथा पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये।

तदनन्तर उस मण्डलके बाहर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर चारों दिशाओंमेंसे एक-एक दिशामें गोमुखादिक छः-छः यक्ष हैं सब मिलकर चौबीस यक्ष हैं तथा वे वज्र जो त्रिशूलाकार हैं उनमें स्थित हैं उनकी पूजन करनी चाहिये। उनके मंत्र ये हैं—

ॐ ह्रीं गोमुख महायक्ष त्रिमुख यक्षेश्वर तुंबुरु कुसुम वरनंदि विजय अजित ब्रह्मेश्वर कुमार षण्मुख पाताल किन्नर किंपुरुष गरुड़ गंधर्व महेन्द्र कुबेर वरुण विद्युतप्रभ सर्वाण्ह धरणेन्द्र मातंग इति चतुर्विंशति यक्षेन्द्रगणाः आयुधवाहनयुवतिसहिता आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। इस प्रकार मन्त्र पढ़कर आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर—

ॐ ह्रीं गोमुखाय स्वाहा। ॐ ह्रीं महायक्षाय स्वाहा। ॐ ह्रीं त्रिमुखाय स्वाहा। ॐ ह्रीं यक्षेश्वराय स्वाहा। ॐ ह्रीं तुंबुरवे स्वाहा। ॐ ह्रीं कुसुमाय स्वाहा। ॐ ह्रीं वरनन्दिने स्वाहा। ॐ ह्रीं विजयाय स्वाहा। ओं ह्रीं अजिताय स्वाहा। ओं ह्रीं ब्रह्मेश्वराय स्वाहा। ओं ह्रीं कुमाराय स्वाहा। ओं ह्रीं षण्मुखाय स्वाहा। 'ओं ह्रीं पातालाय स्वाहा। ओं ह्रीं किन्नराय स्वाहा। 'ओं ह्रीं किंपुरुषाय स्वाहा। 'ओं ह्रीं गरुड़ाय स्वाहा। ओं ह्रीं गंधर्वाय स्वाहा। ओं ह्रीं महेंद्राय स्वाहा। ओं ह्रीं कुबेराय स्वाहा। ओं ह्रीं वरुणाय स्वाहा। ओं ह्रीं विद्युत्प्रभाय स्वाहा। ओं ह्रीं सर्वाण्हाय स्वाहा। ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं मातंगाय स्वाहा।

इदं अर्घ्यं चरु अमृतं बलि यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा। इस प्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये और 'यस्यार्थं क्रियते पूजा' इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये। इसको यक्षार्चन कहते हैं।

तदनन्तर चार दिशाएँ, चार विदिशाएँ और ऊपर नीचे इस प्रकार दशों दिशाओंमें दश दिक्पालोंका पूजन करना चाहिये। यथा—

ओं ह्रीं इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणपवनकुबेरईशानधरणेन्द्रसोमाः सर्वेप्यायुधवाहनयुवतिजनसहिताः आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। इस मंत्रको पढ़कर तथा पुष्प चढ़ाकर अनुक्रमसे आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर ओं ह्रीं इन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं अग्नये स्वाहा। ओं ह्रीं यमाय स्वाहा। ओं ह्रीं नैर्ऋताय स्वाहा। ओं ह्रीं वरुणाय स्वाहा। ॐ ह्रीं पवनाय स्वाहा। ओं ह्रीं कुबेराय स्वाहा। ओं ह्रीं ईशानाय स्वाहा। ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं सोमाय स्वाहा। इदं अर्घ्यं चरु अमृतं बलि यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा। इस प्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये तथा 'यस्यार्थं क्रियते पूजा' इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये। इसमें इतना विशेष है कि 'ओं ह्रीं इन्द्राय स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर पूर्व दिशामें अर्घ चढ़ाना चाहिये। 'ओं ह्रीं अग्नये स्वाहा' इस मंत्रसे आग्नेय दिशामें (पूर्व दक्षिणके बीचमें), ओं ह्रीं यमाय स्वाहा इस मंत्रसे दक्षिण दिशामें, ओं ह्रीं नैर्ऋताय स्वाहा इस मंत्रसे नैर्ऋतकोण (दक्षिण पश्चिमके बीचमें) 'ओं ह्रीं वरुणाय स्वाहा' इस मंत्रसे पश्चिममें, ओं ह्रीं पवनाय स्वाहा इस मंत्रसे वायव्यकोणमें (पश्चिम उत्तरके बीचमें) ओं ह्रीं कुबेराय स्वाहा इस मंत्रसे उत्तर दिशामें ओं ह्रीं ईशानाय स्वाहा इस मंत्रसे ईशान दिशामें (उत्तर पूर्वके बीचमें) ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा इस मंत्रसे भूमिके अधोभागमें और ओं ह्रीं सोमाय स्वाहा इस मंत्रसे ऊपरकी दिशामें। इस प्रकार दशों दिशाओंमें दश दिक्पालोंको पूजन करना चाहिये।

फिर मंत्रकी चारों दिशाओंमें चारों विदिशाओंमें तथा दुबारा पूर्व दिशामें इस प्रकार नौ स्थानोंमें आदित्यादिक नवग्रहोंका पूजन करना चाहिये। यथा—ओं ह्रीं आदित्य सोमांगार बुध बृहस्पति शुक्र शनिश्चर राहुकेतवः सर्वेप्यायुधवाहनबधूचिह्नसपरिवारा अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः

अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् । यह मंत्र पढ़कर तथा पुष्प चढ़ाकर अनुक्रमसे आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करना चाहिये । फिर अलग-अलग मंत्रोंसे पूजन करना चाहिए । अलग-अलग मंत्र ये हैं—

ओ ह्रीं आदित्याय स्वाहा पूर्वदिशि, ओं ह्रीं सोमाय स्वाहा आग्नेय दिशि, ओं ह्रीं भौमाय स्वाहा नैऋत्यां, ओं ह्रीं बृहस्पतये स्वाहा पश्चिमे, ओं ह्रीं शुक्राय स्वाहा वायव्यां, ओं ह्रीं शनैश्चराय स्वाहा उत्तरे, ओं ह्रीं राहवे स्वाहा ईशान्यां, ओं ह्रीं केतवे स्वाहा पूर्व दिशि । इदं अर्घ्यं पाद्यं बलिं अमृतं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा । इस प्रकार पूजन करना चाहिये । यह दिक्पाल पूजन है । यह दिक्पालोंका पूजन मंत्रके आगे सात धान्योंके नौ कोठे बनाकर अथवा नौ कोठेके मण्डल बनाकर ऊपर लिखे मंत्रोंसे अलग पूजा करनी चाहिये ।

फिर मंत्रके प्रागभागमें (पूर्वकी ओर) अनावृत यक्षकी पूजा करनी चाहिये । उसका मंत्र यह है 'ओं ह्रीं आं क्रों हे अनावृत अत्रागच्छागच्छ संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । इदं अर्घ्यं गृहाण गृहाण स्वाहा । इस प्रकार अर्घ चढ़ाकर "यस्यायं क्रियते पूजा" इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये । इसको यक्षार्चन करते हैं ।

इस प्रकार महामंत्रकी आराधना कर मूल विद्याका एकसौ आठ बार जप करना चाहिये । वह मंत्र यह है । "ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अस्माकं सर्वोपद्रवशांति कुरु कुरु स्वाहा ।" इस मंत्रका जातिपुष्पोंसे (चमेलीके फूलोंसे) अथवा अन्य सुगंधित पुष्पोंसे वा देवपुष्प लवंगसे पहले कहे हुए यंत्रके ऊपर एकसौ आठ बार जप करना चाहिये । फिर—

प्रातिहार्यान् जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् सुमात्रिभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून् योगांगैश्चाष्टभिः स्तुवे ॥
मंणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया । पंचकल्लाणसुक्खावलीपत्तया ॥

जयमाला

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाण सुक्खावली पत्तया । दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥ १ ॥
जेहि झाणग्गिवाणेहि अइथट्ठयं, जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं । जेहि पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महा दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥ २ ॥

दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ।

इत्यादि जयमाला पढ़कर तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिये । फिर अर्घ महा अर्घ देकर साष्टांग वा पंचांग नमस्कार करना चाहिये । फिर—

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम् ।

इत्यादि शान्ति पाठ पढ़ना चाहिये । फिर आये हुए देवताओंका विसर्जन करना चाहिये । विसर्जन करनेके श्लोक ये हैं ।

पंचहाचारपंचग्गिसंसाइया, वारसंगाइ सुयजलहिं अवगाहया । मोक्खलच्छी महंतो महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गया संगया ॥३॥ घोरसंसारभीमाडवीकाणणे, तिक्खविसयरालणहावयपंचाणणे । णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥४॥ उग्गतवयणकरणेहि झीणं गया, धम्मवरझाणकक्खेवकक्झाणं गया । णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहओ ते महामोक्खपहमग्गया ॥५॥ एण थोत्तेण जो पंचगुरु बंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए । लहइ सो सिद्ध गुरुसाहु वग्गाणगं कुणइ कम्मिंधणं पुंजजालाणलं ॥६॥

अरिहा सिद्धा इरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेष्ठी । एयाण णमुक्कारो भवे भवे मम सुहं दिंतु ।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

इच्छामि भंते पंचगुरुभक्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अट्टमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरियणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खखओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

२–शांति पाठ

शान्तिजिनंशशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम् । अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥ १ ॥
पंचममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च । शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सु षोडश तीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥
दिव्यतरुःसुरपुष्पसुवृष्टिर्दुंदुभिरासनयोजनघोषौ । आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥ ३ ॥
तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि । सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः, शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजलप्रदीपाः, तीर्थंकराः सततशान्तिकराः भवन्तु ॥ ५ ॥
संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्, देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥६॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया। तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर॥
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्। विसर्जनं नैव जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥
आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं। ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथालयम्॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं कृतं मया। तत्सर्वं क्षम्यतां सर्वः रक्ष रक्ष जिनेश्वर॥

ॐ ह्रीं ये देवगणा अत्र पूजनावसरे मया आहूता पूजिता ते प्रसन्नीभूता स्वस्थाने जः जः जः स्वाहा।

इस प्रकार मंत्रपूर्वक विसर्जन करना चाहिये। तदनंतर नमस्कार कर पूजावशेष द्रव्यसे आशिष अपने मस्तक पर धारण करना चाहिये। फिर पूजा द्रव्य लेकर ईर्यापथ शुद्धिपूर्वक उस गाँव वा नगरके जिनालयमें जाना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है—

श्रावकोंको जिनमंदिरमें जाते समय सबसे पहले "ॐ ह्रीं अर्हं द्वारपालाननुज्ञापयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर द्वारपालकी आज्ञा लेनी चाहिये। फिर "ॐ ह्रीं अर्हं णिसही णिसही णिसही रत्नत्रय पुरस्सराय विद्यामण्डल निवेशनाय सममयाय निःसही जिनालयं प्रविशामि स्वाहा।" यह मंत्र पढ़कर जिनालयमें प्रवेश करना चाहिये। फिर "ॐ ह्रीं पवित्रतर गंधोदकं शिरसि परिषिंचयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर जिनगंधोदकको अपने मस्तक पर लगाना चाहिये। फिर धुपट्टेको कमरसे लेकर एक पल्ला तो बांएँ कंधे पर रखना

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः काले काले च सम्यक् वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि॥ ७॥
प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः। कुर्वन्तु जगतः शांतिं वृषभाद्याः जिनेश्वराः॥ ८॥
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अथेष्टप्रार्थना

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः, सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे, सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः॥ ९॥
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं च तव पदद्वये लीनम्। तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद् यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः॥ १०॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं। तं खमउ णाण देव य मज्झवि दुक्खक्खयं दितु।
दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य। मम होउ जगतबंधव, तव जिणवरचरणसरणेण॥ ११॥

चाहिये और दूसरा पल्ला पीछेकी ओरसे लाकर दांएँ कंधेपर लाते हुए हृदय की ओर नीचे लटका कर उस पल्लेसे भूमिको देखते हुए सम्मार्जन करना चाहिये। तदनंतर साष्टांग वा पञ्चांग अथवा पद्यवर्द्धयायि नमस्कार करना चाहिये। फिर भक्तिपूर्वक अपने समयके अनुसार खड़ा होकर अपने दोनों चरण समान रखकर अपनी दृष्टिसे भगवानको देखना चाहिये। अपने दोनों हाथ जोड़कर ललाट तथा हृदयपर रखना चाहिये। फिर कुछ नम्र होकर प्रदक्षिणा करनी चाहिये फिर नमस्कार कर उठकर फिर नमस्कार करना चाहिये। इस प्रकार तीन बार कर अपनी बुद्धिके अनुसार भगवानकी स्तुति करनी चाहिये। फिर जहाँपर समता धारण हो सके ऐसे समता स्थानमें जाकर सामायिक करना चाहिये। फिर अपने समयके अनुसार देव, शास्त्र, गुरुकी पूजन करना चाहिये। इसकी विधि पहले लिख चुके हैं। फिर भक्तिपूर्वक स्तुति और नमस्कार करना चाहिए। फिर पहले कहे हुए क्षेत्रपाल, पद्मावती आदि शासन देवताओंको क्रमसे अर्घादिक देना चाहिये। फिर सभामण्डपमें जाकर जिनश्रुत (शास्त्र) और मुनिजनोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। श्रीगुरुके शरीरादिकका समाधान पूछना चाहिये। फिर अपनी भक्तिके अनुसार दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत आदि व्रतोंमेंसे नित्य व्रत श्रीगुरुकी आज्ञानुसार ग्रहण करने चाहिये। तथा उन्हीं गुरुराजके मुखसे तत्त्वार्थोंको कहनेवाले शास्त्र आदि जिनश्रुतका व्याख्यान सुनना चाहिये। अथवा दूसरोंको सुनाना चाहिये। अपने मन, वचन, कायसे जिनधर्मका उद्योग करना चाहिये। फिर अपने घर आकर पात्रदान देना चाहिये फिर भोजन पान कर न्यायपूर्वक पाप-रहित कार्योंसे यथायोग्य अपनी जीविका करनी चाहिये।

इस प्रकार श्रावक व्रतके धारण करनेवाले गृहस्थोंकी यह प्रातःकालकी क्रियाकी विधि है। इसका विस्तार बहुत है परन्तु यहाँ थोड़ा-सा लिखा है। जिनको इसका वर्णन देखना हो वे भगवज्जिनसेनाचार्यकृत जिन-संहिता शास्त्र तथा पूजासार शास्त्र तथा धर्मरसिक शास्त्र और पूजाकी विधि जिनयज्ञकल्प, प्रतिष्ठापाठ महा-भिषेक तथा शांतिचक्रपूजा प्रकरण तथा और भी अनेक शास्त्रोंमें देख लेना चाहिये। यहाँपर ऊपर लिखे शास्त्रोंमेंसे थोड़ा-सा लिखा है।

१५०–चर्चा एकसौ पचासवीं

प्रश्न—पहले जो अष्टांग, पञ्चांग और पद्यवर्द्धशायि नमस्कार करना लिखा है सो इनका स्वरूप क्या है?

समाधान—अपने दोनों हाथ, दो पैर, एक मस्तक, एक छाती और दोनों कपाल इस प्रकार आठों अंगोंको भूमिमें स्पर्शते हुए नमस्कार करना सो अष्टांग नमस्कार है। भावार्थ—पहले पृथ्वीपर दण्डके समान नीचेकी ओर मुँह कर सीधा सो जाना जिससे दोनों पैर, मस्तक, छाती, दोनों हाथ भूमिसे लग जांय फिर क्रम-से बांये बांये कपोलोंको लगाना भूमिसे स्पर्श करना। इस प्रकार नमस्कार करनेको अष्टांग नमस्कार कहते हैं। सो ही लिखा है—

हस्तौ पादौ शिरश्चोरः कपोलयुगलं तथा। अष्टांगानि नमस्कारे प्रोक्तानि श्रीजिनागमे ॥

दोनों हाथ दोनों पैर और मस्तक इन पाँचों अंगोंको भूमिमें स्पर्शते हुए नमस्कार करना पंचांग नमस्कार है। सो ही लिखा है।

मस्तकं जानुयुग्मं च पंचांगानि करौ नतौ।

पश्वर्द्धशायि नमस्कारका स्वरूप इस प्रकार है। पशु गायको कहते हैं। गायके समान आधा सोना जिससे पीछेके आधे अंग तो खड़े रहें और आगेका आधा अंग अर्थात् दोनों पैर और मस्तक पृथ्वी पर नम जाय। पैरोंके दोनों घुटनोंसे नमकर गर्दनसे मस्तकको नीचा करना पश्वर्द्धशायि नमस्कार है। भावार्थ—खड़े पैरोंसे बैठकर दोनों हाथोंको कोनीसे नवाकर तथा पृथ्वीपर रखकर अपना मस्तक झुकाना सो पश्वर्द्धशायि नमस्कार है। सो ही लिखा है—

अत्र प्रोक्तानि पश्वर्द्धशयनं पशुवन्मतम्।

इस प्रकार नमस्कारके तीन भेद हैं सो जैसा अपनेसे बन सके वैसा भावपूर्वक देव, शास्त्र, गुरुको नमस्कार करना चाहिये।

इनमेंसे स्त्रियोंके लिये अष्टांग और पंचांगका अधिकार नहीं है। उनको केवल पश्वर्द्धशायि नमस्कार करनेका अधिकार है। पुरुषोंको तीनों प्रकारके नमस्कार करनेका अधिकार है। यह बात मूलाचारमें आर्यिकाओंको वंदना करते समय समयाख्याधिकारमें लिखी है—

पंच छह सत्त सूरी अज्झावगो य साधू य। परिहरिऊणज्जाओ गवासणेणेव वंदंति ॥१९५॥

इसका अर्थ एकसौ ग्यारहवीं चर्चामें लिखा है। जब आर्जिका भी गवासनसे ही आचार्यादिकको वंदना

करती हैं तो फिर अन्य स्त्रियाँ अष्टांग वा पंचांग नमस्कार किस प्रकार कर सकती हैं उनके लिये अष्टांग वा पंचांग नमस्कार करना अयोग्य है इसलिये नहीं करना चाहिये ।

१५१–चर्चा एकसौ इक्यावनवीं

प्रश्न—पहले अर्घ्यं, पाद्यं ऐसा लिखा है सो अर्घ्य और पाद्य किसको कहते हैं ?

समाधान—पय अर्थात् जल, क्षीर अर्थात् दूध, कुश अर्थात् दाभ, उशीर अर्थात् खशखस, तिल, अक्षत, जौ ये सब अर्घ्य द्रव्य कहलाते हैं इनमें सफेद और काली सरसों और मिलानी चाहिए । सो ही पूजासारमें लिखा है—

पयःक्षीरकुशोशीरं तिलाक्षतयवान्वितम् । अर्घ्यद्रव्यमिति प्रोक्तं सर्षपासितसर्षपम् ॥

इसी प्रकार कमलकी जड़, सरसों, दूब और अक्षतको पाद्य द्रव्य कहते हैं । यह पाद्यद्रव्य भगवानके अभिषेकमें लिया जाता है सो ही पूजासारमें लिखा है—

समूलपद्मसिद्धार्थं दूर्वामृततृणाक्षतम्। पाद्यद्रव्यमिति प्रोक्तं जिनस्नपनपूजने ॥

इस प्रकार अर्घ्यं और पाद्यका स्वरूप समझना चाहिये ।

१५२–चर्चा एकसौ बावनवीं

प्रश्न—पूजामें मंगल द्रव्य वा मंगलार्घ्यं कहा है सो मंगलार्घ्यं किसको कहते हैं ?

समाधान—दूब, स्वस्तिक अर्थात् नंद्यावर्त अथवा केवलसूंसाथिया, दर्भ अर्थात् दाभ, कमलफल (कमलगट्टा) नदीके किनारेकी शुद्ध मिट्टी, भूमिमें नहीं पड़ा हुआ गोमय, श्रीखंड अर्थात् बावन चंदनादिक सुगंधित द्रव्य, सुवर्ण, चांदी, पुष्प, दीपक, भृंगार, सरसों, तिल, शालि अक्षत, केशर, जौ, धूप ये सब मंगल सूचक द्रव्य हैं सो अभिषेक वा पूजाके समय भगवानके आगे किसी पात्रमें रखकर अर्घ्यके समान उतार कर चरणोंके आगे चढ़ाना चाहिये । इसीको मंगलार्घ्यावतरण कहते हैं । सो ही धर्मदेवकृत शांतिचक्र पूजामें लिखा है—

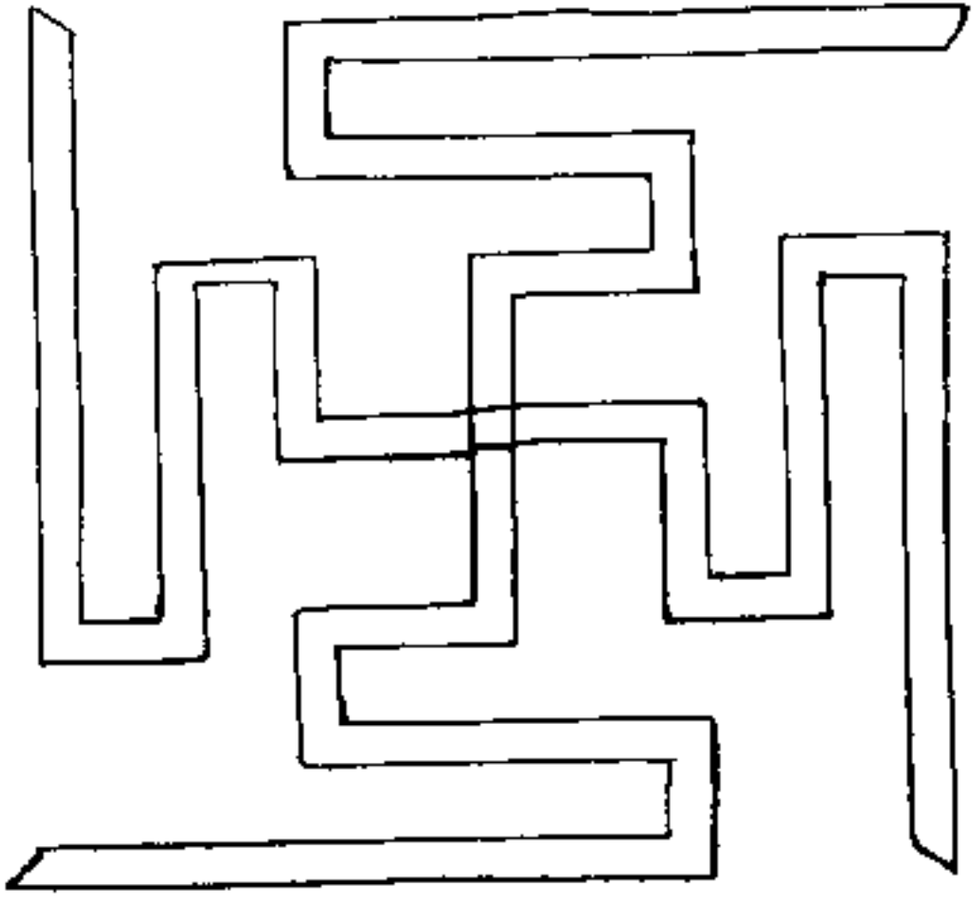
दूर्वास्वस्तिकदर्भपद्मकनदीमृद्रोचनागोमयः, श्रीखंडोत्तमहेरौप्यकुसुमश्रीदीपशृंगारकान् ॥
सिद्धार्थं तिलशालिकुंकुमयवप्रत्यग्रधूपादिकान् ।
सर्वान् मंगल सूचकान् क्रमयुगस्योत्तारयाम्यर्हतः ॥

यही बात लघुस्नपनमें भी लिखी है। दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पबीजैः इत्यादि।

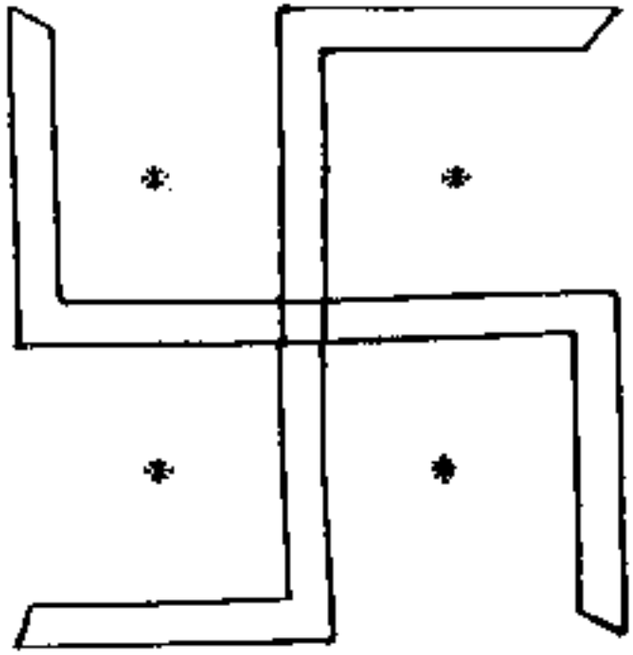
१५३-चर्चा एकसौ तिरेपनवीं

प्रश्न—ऊपर नंद्यावर्तक नामका सांथिया लिखा है सो उसका स्वरूप क्या है ?

समाधान—पूजामें नंद्यावर्तक सांथिया लिखा है सो उसका आकार नीचे अनुसार है। वह स्वस्तिक चावलोंसे बनाना चाहिये अथवा किसी रकाबी थाल आदि पात्रोंमें चंदन, केशर आदि गंध द्रव्यसे लिखना चाहिये। पूजा करनेवालेको पहले स्वस्तिक बनाना चाहिये फिर पूजा करनी चाहिये यह आम्नाय है।



नंद्यावर्तक



स्वस्तिक वा सांथिया

१५४–चर्चा एक सौ चौअनवीं

प्रश्न—पहले जिनाचमन बतलाया है। सो आचमनकी विधि कौन-सी है ?

समाधान—धातकी (धायके) पुष्प, कपूर, जायफल, लौंग ये सब द्रव्य जलके घटमें डालकर पहले लिखी हुई रीतिके अनुसार जिनाचमन करना चाहिये। सो ही पूजासारमें लिखा है।

धातकीसुमनश्चन्द्रजातिफललवंगकम्। घटस्याचमनस्येदं द्रव्यमित्युच्यते बुधैः ॥

यह सब आचमन द्रव्य हैं।

१५५–चर्चा एकसौ पचपनवीं

प्रश्न—ऊपर नीराजन द्रव्यावतरण लिखा है सो उसका स्वरूप क्या है ?

समाधान—नीराजनावतरण आठ प्रकार है और वह क्रमसे इस प्रकार है।

१ ॐ ह्रीं क्रौं दुर्वाकुरसितसर्षपयुक्तैर्हरितगोमयपिंडकैर्भगवतोर्हतोवतरणं करोमि अष्ट कर्माण्यस्माकं भस्मी करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—दूब, सफेद सरसों और भूमिमें नहीं पड़ा हुआ गीला गोमयका पिंड इन द्रव्योंसे भगवानकी आरती करता हूँ वे भगवान मेरे आठों कर्मोंको नष्ट करें।

२ ॐ ह्रीं क्रौं शुद्धभस्मपिंडेन भगवतोर्हतोवतरणं करोमि अष्ट कर्माण्यस्माकं भस्मी करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—शुद्ध भस्मपिंडसे भगवानको आरती करता हूं वे भगवान मेरे आठों कर्मोंको भस्म करें।

३ ॐ ह्रीं क्रौं बहुविधाक्षतपरिपूर्णपाणिपात्रेण भगवतोर्हतोवतरणं करोमि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्यस्माकमक्षतानि दधातु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—दोनों मिले हुए दोनों हाथोंमें अनेक प्रकारके अक्षत भरकर तथा उसमें जल डालकर भगवानकी आरती करता हूं वे भगवान मुझे अक्षत अर्थात् पूर्ण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र देवें।

४ ॐ ह्रीं क्रौं उभयपार्श्वप्रज्वलितवर्भाग्निना भगवतोर्हतोवतरणं करोमि आत्मोज्वलनमस्माकं करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—दोनों बगलोंमें जलती हुई आगकी अग्निसे भगवानकी आरती करता हूँ वे भगवान मेरी आत्माको उज्ज्वल वा निर्मल करें।

५ ॐ ह्रीं क्रौं सुरभिशशिविमलसलिलपरिपूर्णेनांजलिना भगवतोऽर्हतोवतरणं करोमि विमलशीतलध्यानमस्माकमुत्पादयतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—सुगन्धित और चन्द्रमाके समान निर्मल जलसे भरे हुए दोनों मिले हुए हाथोंसे धेनुमुद्रासहित हाथोंसे भगवानको आरती करता हूँ। वे भगवान शांत और निर्मल ध्यान मुझमें उत्पन्न करें।

६–ॐ ह्रीं क्रौं पञ्चवर्णभक्तपिंडकैर्भगवतोऽर्हतोवतरणं करोमि क्षेमं सुभिक्षमस्माकं करोतु भगवान स्वाहा।

भावार्थ––पाँच प्रकारके सुन्दर खाद्य पदार्थोंसे अथवा पाँच वर्णके चावलोंसे (भातसे) भगवानको आरती करता हूँ वे भगवान मुझे सब तरहका कल्याण और सुकाल प्रदान करें।

७–ॐ ह्रीं क्रौं सितहरितपीतकृष्णलोहितैर्वर्द्धमानकैर्भगवतोर्हतोऽवतरणं करोमि श्रियमस्माकं वर्द्धमानं करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—सफेद, हरी, पीली, काली, लाल सरसोंसे भगवानकी आरती करता हूँ वे भगवान मुझे बढ़ती हुई लक्ष्मी प्रदान करें।

८–'ॐ ह्रीं क्रौं पवित्रतरुसमुत्पन्नैः क्रमुकनालिकेरमातुलिंगपनसदाडिमजंबूाम्रफलैर्भगवतोऽर्हतोऽवतरणं करोमि अस्माकमाशाफलमुत्पादयतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—पवित्र वृक्षोंसे उत्पन्न हुए सुपारी, नारियल, बिजोरा, पनस, अनार, जामुन, आम आदि फलोंसे भगवान अरहन्त देवकी आरती करता हूँ। वे भगवान मेरी आशाओंको फलीभूत करें।

इस प्रकार आठों दिशाओंमें आठ प्रकारका नीराजन करना चाहिये। नीराजनके पात्रमें ऊपर लिखे हुए द्रव्य रखकर आरती वा अवतरण करना चाहिये। नीराजनाके पात्रका आकार



ऐसा समझना चाहिये।

यह सब पूजासार तथा बृहत्स्नपन आदिमें लिखा है।

१५६–चर्चा एकसौ छप्पनवीं

प्रश्न—सर्वौषधिमें कौन-कौन-सी औषधियां हैं ?

समाधान—इक्षुरस, घृत, दुग्ध, दधि इनके अभिषेकके बाद सर्वौषधिका अभिषेक करना चाहिये। उसमें नीचे लिखी चीजें डालनी चाहिये। सरसों, चन्दन, वच्छकूट, कक्कोल, मिरच (काली) इलायची, लौंग, जावित्री, कपूर आदि अनेक सुगन्धित द्रव्योंके समूहको जलमें घोलकर सर्वौषधि तैयार करना चाहिये और उससे अभिषेक करना चाहिये। इसके सिवाय सप्तौषधि तथा कषाय औषधि (कषायले पदार्थोंको घोलकर जल तैयार करना) आदि और भी इसके भेद हैं सो अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये। यहां संक्षेपसे लिखा है इस प्रकार सर्वौषधिका विधान है।

१५७–चर्चा एकसौ सत्तावनवीं

प्रश्न—पहले पूजामें सिद्धचक्रका यन्त्र बतलाया है सो इसका स्वरूप क्या है ?

समाधान—पूजामें सिद्धपरमेष्ठीका सिद्धचक्र यन्त्र बतलाया है और सिद्धपूजा इस यंत्रपूर्वक ही होती है सो इसके बनानेकी विधि इस प्रकार है। सबसे पहले एक सोनेका वा चांदीका अथवा तांबेका वा पीतलका अथवा कांसिका वा और किसी उत्तम धातुका पत्र बनाना चाहिये। उसपर यंत्र लिखकर किसी चतुर कारीगरसे पवित्रतापूर्वक वे अक्षर खुदवाना चाहिये। यंत्र इस प्रकार है।

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं। वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधि तत्त्वान्वितम्॥
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं। देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः॥

अर्थ—जिसके ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर और अधो नीचे दोनों जगह रकार है तथा जो बिन्दु अर्थात् अर्द्ध चंद्राकार कला सहित ऐसा स से आगेका अक्षर हकार मध्यमें लिखना। भावार्थ—जिस हकारके ऊपर रकार हो नीचे रकार हो और अर्द्धचंद्र वा अर्द्धबिंदु ऊपर हो ऐसा ह्रं मध्यमें लिखना चाहिये। उस ह्रं के चारों ओर ब्रह्मस्वर अर्थात् सोलह स्वर लिखने चाहिये। इतना सब तो बीचको कर्णिकामें लिखना चाहिये। फिर उस

कर्णिकाके चारों ओर तीन वलय या घेरा देकर उसके बाहर चारों दिशाओंमें और चारों विदिशाओंमें आठ संधियाँ बनाकर उन संधियोंके मध्यमें अष्ट दल आकारका कमल बनाना चाहिये। उन अष्ट दलोंमें अनुक्रमसे अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह ल्ल क्ष इन [illegible] लिखना चाहिये। तथा इन्हीं दलोंमें सोलह स्वरोंमेंसे प्रत्येक दलमें दो-दो स्वर लिखना चाहिये। तथा इन्हीं अष्ट दलोंके अन्तभागमें अनाहत मन्त्र अर्थात् ओंकार सहित अनाहत मन्त्र लिखना चाहिये। तथा उन आठों दलोंके मध्यमें जो आठ संधियाँ हैं उनमें तत्त्वसे सुशोभित करना चाहिये। "णमो अरहंताणं" इस मंत्रको तत्त्व कहते हैं अर्थात् आठों संधियोंमें "णमो अरहंताणं" लिखना चाहिये। फिर तीन वलय देकर भूमण्डलसे वेष्ठित करना चाहिये। फिर क्षितिबीज और इन्द्रायुध लिखना चाहिये। इस प्रकार यंत्र रचना कर सिद्धचक्रका ध्यान करना चाहिये। जो जीव इस सिद्धचक्रका ध्यान करता है वह श्रेष्ठ मोक्षपदको प्राप्त करता है। यह सिद्धचक्र देव शत्रुरूपी हाथियोंको जीतनेके लिए सिंहके समान है, यह सिद्धचक्रकी विधि है सो अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

१५८-चर्चा एकसौ अट्ठावनवीं

प्रश्न—शांतिचक्र यंत्रका स्वरूप क्या है ?

समाधान—इसका समुच्चय स्वरूप तो पूजनके वर्णनमें पहले लिख चुके हैं। अब इसका विशेष स्वरूप यन्त्रोद्धारके द्वारा लिखते हैं।

पहलेके समान बीचमें एक कर्णिका लिखनी चाहिये। फिर वलय देकर उसके बाहर चार दिशा और चारों विदिशाओंमें अष्ट दलाकार कमल बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर वलय देकर सोलह दलका कमल

---

१ अनाहत मन्त्रका स्वरूप—

उ विन्दाकार हरोर्ध्व रेफ विन्दानवाक्षरम्। मालाधःस्यन्दिपीयूषविन्दु विदुरनाहतम्॥

उँ अनुस्वार ईकार ऊर्ध्वरकार हकार हकार निम्नरकार अनुस्वार ईकार। इन नौ अक्षरोंसे अनाहत मन्त्र बनता है

ऊर्ध्वाधोरेफसंरुद्धं सपरं विदुलांछितम्। अनाहतयुतं मंत्रम्॥

बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर वलय देकर चौबीस दलका कमल बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर वलय देकर बत्तीस दलका कमल बनाना चाहिये। उसके बाहर वलय देकर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर इन चारों दिशाओंमें भद्रके आकारके चार द्वार वा दरवाजे बनाना चाहिए। फिर एक-एक द्वारके दोनों ओर तीन-तीन त्रिशूलाकार वज्र लिखना चाहिये। इस प्रकार चारों ओरके उन आठ त्रिशूलोंके चौबीस क्षोभ करना चाहिए। फिर चारों विदिशाओंके दलके बाहर दो-दो अलग क्षितिमण्डलके लिये त्रिशूलाकार वज्र बनाना चाहिये और उसके आठ वज्र लिखना चाहिए। इस प्रकार क्षितिमण्डल करि सहित शांतिचक्र यन्त्रका उद्धार करना चाहिये।

सबसे पहले कर्णिकाके मध्यभागमें "ॐ ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः' यह मंत्र लिखना चाहिये फिर उसी कर्णिकामें उस मंत्रके पूर्वकी ओर "ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः" यह मंत्र लिखना चाहिये फिर उसको दक्षिण दिशा-में 'ॐ ह्रीं सूरिभ्यो नमः' लिखना चाहिये। पश्चिमकी ओर "ॐ ह्रीं पाठकेभ्यो नमः" लिखना चाहिए। उत्तरकी ओरके दलमें 'ॐ ह्रीं सर्वसाधुभ्यो नमः' लिखना चाहिए। तदनंतर उसी कर्णिकामें चार विदिशाओंके चार दलोंमेंसे अग्निकोणके दलमें "ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाय नमः" नैऋत्त कोणमें "ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः" वायव्यकोणमें "ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्राय नमः" और ईशान कोणमें "ॐ ह्रीं सम्यक्तपसे नमः" लिखना चाहिये। यह कर्णिकामें बने नौ कोठोंका उद्धार है। इस कर्णिकाके बाहर वलयके बाहर जो अष्ट दलाकार कमल है उसमेंसे पूर्वके दलमें "ॐ ह्रीं जयायै स्वाहा" दक्षिणके दलमें "ॐ ह्रीं विजयायै स्वाहा" पश्चिमके दलमें "ॐ ह्रीं अजितायै स्वाहा" उत्तरके दलमें "ॐ ह्रीं अपराजितायै स्वाहा" लिखना चाहिए। फिर अग्निकोणमें "ॐ ह्रीं जभायै स्वाहा" नैऋत्य कोणमें "ॐ ह्रीं मोहायै स्वाहा" वायव्य कोणमें "ॐ ह्रीं स्तम्भायै स्वाहा" तथा ईशान कोणमें "ॐ ह्रीं स्तम्भिन्यै स्वाहा" लिखना चाहिए। इन सब मंत्रोंको प्रणव मायाबीजपूर्वक होमांत लिखना चाहिए। इस प्रकार कर्णिकाके बाहरका अष्टदल कमल भर देना चाहिए।

उसके बाहर वलयके बाद सोलह दलका कमल है सो उसमें पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर अनुक्रमसे सोलह विद्या देवियोंके नाम लिखना चाहिए। यथा 'ॐ ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा' ॐ ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा। इस प्रकार सोलह

१. ॐ ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा १ ॐ ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा २ ॐ ह्रीं वज्रशृङ्खलायै स्वाहा ३ ॐ ह्रीं वज्रांकुशायै स्वाहा ४। ॐ ह्रीं

दलोंमें सोलह विद्यादेवियोंको स्थापन करना चाहिए। इस प्रकार सोलह दल कमलको भर देना चाहिये।

तदनन्तर उस सोलह दल कमलके बाहर जो चौबीस दलका कमल है उसमें पूर्वदिशासे प्रारम्भ कर अनुक्रमसे चौबीस शासन देवियोंको स्थापन करना चाहिये। यथा–'ॐ ह्रीं चक्रेश्वरीदेव्यै स्वाहा' इस प्रकार चक्रेश्वरीसे लेकर सिद्धायनी पर्यन्त चौबीसों शासनदेवियोंको स्थापन करना चाहिये। इस प्रकार चौबीस दल कमलको भर देना चाहिए।

चौबीस दल कमलके बाहर वलयके बाद बत्तीस दल कमल है सो उसमें भी पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर अनुक्रमसे बत्तीस इन्द्रोंको स्थापन करना चाहिये। इन सब देवियोंको तथा इन्द्रोंको ब्रह्म माया बीजसे प्रारम्भ कर होमांत (जिसके आदिमें ॐ ह्रीं यह ब्रह्म और मायाबीज हो तथा मध्यमें चतुर्थी विभक्ति सहित देवी वा इन्द्रका नाम हो और अन्तमें होमांत अर्थात् होमके अन्तमें कहे जाने वाला स्वाहा शब्द हो, इस प्रकार सब देव-देवियोंको स्थापन करना चाहिये) लिखना चाहिए। यथा–ॐ ह्रीं असुरेन्द्राय स्वाहा' इस प्रकार बत्तीसों

अप्रतिचक्राये स्वाहा ५ ॐ ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा ६ ॐ ह्रीं काल्यै स्वाहा ७ ॐ ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा ८ ॐ ह्रीं गांधार्यै स्वाहा ९ ॐ ह्रीं गौर्यै स्वाहा १० ॐ ह्रीं ज्वालामालिन्यै स्वाहा ११ ॐ ह्रीं वैरोटयै स्वाहा १२ ॐ ह्रीं अच्युतायै स्वाहा १३ ॐ ह्रीं अपराजितायै स्वाहा १४ ॐ ह्रीं मानसीदेव्यै स्वाहा १५ ॐ ह्रीं महामानसी देव्यै स्वाहा १६।

१. ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी देव्यै स्वाहा १ ॐ ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा २ ॐ ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा ३ ॐ ह्रीं वज्रशृङ्खलायै स्वाहा ४ ॐ ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा ५ ॐ ह्रीं मनोवेगायै स्वाहा ६ ॐ ह्रीं काल्यै स्वाहा ७ ॐ ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा ८ ॐ ह्रीं ज्वालामालिन्यै स्वाहा ९ ॐ ह्रीं मानव्यै स्वाहा १० ॐ ह्रीं गौर्यै स्वाहा ११ ॐ ह्रीं गांधार्यै स्वाहा १२ ॐ ह्रीं वैरोटयै स्वाहा १३ ॐ ह्रीं अनन्तमत्यै स्वाहा १४ ॐ ह्रीं मानसीदेव्यै स्वाहा १५ ॐ ह्रीं महामानसीदेव्यै स्वाहा १६ ॐ ह्रीं जयायै स्वाहा १७ ॐ ह्रीं विजयायै स्वाहा १८ ॐ ह्रीं अपराजितायै स्वाहा १९ ॐ ह्रीं बहुरूपिण्यै स्वाहा २० ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा २१ ॐ ह्रीं कुष्माडिन्यै स्वाहा २२ ॐ ह्रीं पद्मावत्यै स्वाहा २३ ॐ ह्रीं सिद्धायन्यै स्वाहा २४।

२. ॐ ह्रीं असुरेन्द्राय स्वाहा १ ॐ ह्रीं नागेन्द्राय स्वाहा २ ॐ ह्रीं विद्युदिन्द्राय स्वाहा ॐ ह्रीं ३ सुपर्णेन्द्राय स्वाहा ॐ ह्रीं अग्नीद्राय स्वाहा ५ ॐ ह्रीं वातेन्द्राय स्वाहा ६ ॐ ह्रीं स्तनितेन्द्राय स्वाहा ७ ॐ ह्रीं उदधीद्राय स्वाहा ८ ॐ ह्रीं द्वीपेंद्राय स्वाहा ९ ॐ ह्रीं दिगिन्द्राय स्वाहा १० ॐ ह्रीं किन्नरेन्द्राय स्वाहा ११ ॐ ह्रीं किंपुरुषेन्द्राय स्वाहा १२ ॐ ह्रीं महोरगेन्द्राय स्वाहा १३ ॐ ह्रीं गन्धर्वेन्द्राय स्वाहा १४ ॐ ह्रीं यक्षेन्द्राय स्वाहा १५ ॐ ह्रीं राक्षसेन्द्राय स्वाहा १६ ॐ ह्रीं भूतेन्द्राय स्वाहा १७ ॐ ह्रीं पिशाचेन्द्राय स्वाहा १८ ॐ ह्रीं चन्द्रेन्द्राय स्वाहा १९ ॐ ह्रीं आदित्येन्द्राय स्वाहा २० ॐ ह्रीं सौधर्मेन्द्राय स्वाहा २१ ॐ ह्रीं ईशानेन्द्राय स्वाहा २२ ॐ ह्रीं सानत्कुमारेन्द्राय स्वाहा २३ ॐ ह्रीं माहेंद्राय स्वाहा २४ ॐ ह्रीं ब्रह्मेन्द्राय

इन्द्रोंको स्थापन करना चाहिये और [1]इस प्रकार बत्तीस दल कमलको भर देना चाहिये।

तदनन्तर चारों विद्याओंके चारों भागोंके दोनों ओर लिखे हुए चौबीस वर्णोंमें गोमुख आदि चौबीसों यक्षोंको वेद शक्ति बीज सहित तथा होमांत लिखना चाहिये। यथा–'ॐ ह्रीं गोमुखयक्षाय स्वाहा' इस प्रकार पूर्वदिशासे प्रारम्भ कर पश्चिमकी ओर होते हुए अनुक्रमसे लिखना चाहिये। इस प्रकार एक-एक दिशामें छः-छः यक्ष लिखना चाहिये।

तदनन्तर पूर्वादिक चारों दिशाओंमें तथा चारों विदिशाओंमें तथा पूर्व और पश्चिममें प्रणव मायाबीज आदि होमांत युक्त इन्द्रादिक दश दिक्पालोंको स्थापन करना चाहिए। यथा–'ॐ ह्रीं इन्द्राय स्वाहा' पूर्वे, 'ॐ ह्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा' आग्नेय्याम्, 'ॐ ह्रीं यमाय स्वाहा' दक्षिणे इस प्रकार क्रमसे लिखना चाहिए।

तदनन्तर पूर्वादिक चारों दिशाओं तथा चारों विदिशाओंमें और दुबारा पूर्व दिशाओंमें इस प्रकार नौ स्थानोंमें प्रणवपूर्वक स्वाहा पर्यन्त आदित्यादिक[2] नवग्रहोंको लिखना चाहिये और उनको पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर अनुक्रमसे पश्चिम की ओर घूमते हुए पूर्व दिशा तक लिखना चाहिये।

स्वाहा २५ ॐ ह्रीं लांतवेंद्राय स्वाहा २६ ॐ ह्रीं शुक्रेन्द्राय स्वाहा २७ ॐ ह्रीं शतारेन्द्राय स्वाहा २८ ॐ ह्रीं आनतेन्द्राय स्वाहा २९ ॐ ह्रीं प्राणतेन्द्राय स्वाहा ३० ॐ ह्रीं आरणेन्द्राय स्वाहा ॐ ह्रीं अच्युतेन्द्राय स्वाहा ३२।

१. ॐ ह्रीं गोमुखाय स्वाहा १ ॐ ह्रीं महायक्षाय स्वाहा २ ॐ ह्रीं त्रिमुखाय स्वाहा ३ ॐ ह्रीं यक्षेश्वराय स्वाहा ४ ॐ ह्रीं तुम्बुरवे स्वाहा ५ ॐ ह्रीं कुसुमाय स्वाहा ६ ॐ ह्रीं वरनन्दिने स्वाहा ७ ॐ ह्रीं विजयाय स्वाहा ८ ॐ ह्रीं अजिताय स्वाहा स्वाहा ९ ॐ ह्रीं ब्रह्मेश्वराय स्वाहा १० ॐ ह्रीं कुमाराय स्वाहा ११ ॐ ह्रीं षण्मुखाय स्वाहा १२ ॐ ह्रीं पातालाय स्वाहा १३ ॐ ह्रीं किन्नराय स्वाहा १४ ॐ ह्रीं किंपुरुषाय स्वाहा १५ ॐ ह्रीं गरुडाय स्वाहा १६ ॐ ह्रीं गन्धर्वाय स्वाहा १७ ॐ ह्रीं महेंद्राय स्वाहा १८ ॐ ह्रीं कुबेराय स्वाहा १९ ॐ ह्रीं वरुणेन्द्राय स्वाहा २० ॐ ह्रीं विद्युत्प्रभाय स्वाहा २१ ॐ ह्रीं सर्वाण्हाय स्वाहा २२ ॐ ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा २३ ॐ ह्रीं मातङ्गाय स्वाहा २४।

२. ॐ ह्रीं इन्द्राय स्वाहा १ ॐ ह्रीं अग्नये स्वाहा २ ॐ ह्रीं यमाय स्वाहा ३ ॐ ह्रीं नैऋताय स्वाहा ४ ॐ ह्रीं वरुणाय स्वाहा ५ ॐ ह्रीं पवनाय स्वाहा ६ ॐ ह्रीं कुबेराय स्वाहा ७ ॐ ह्रीं ईशानाय स्वाहा ८ ॐ ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा ९ ॐ ह्रीं सोमाय स्वाहा १०।

३. ॐ ह्रीं आदित्याय स्वाहा १ ॐ ह्रीं सोमाय स्वाहा २ ॐ ह्रीं भौमाय स्वाहा ३ ॐ ह्रीं बुधाय स्वाहा ४ ॐ ह्रीं बृहस्पते स्वाहा ५ ॐ ह्रीं शुक्राय स्वाहा ६ ॐ ह्रीं शनैश्चराय स्वाहा ७ ॐ ह्रीं राहवे स्वाहा ८ ॐ ह्रीं केतवे स्वाहा ९।

फिर सबके बाहर 'ॐ ह्रीं आं क्रों अमावृताय स्वाहा' यह मंत्र लिखकर अमावृत यक्षको स्थापन करना चाहिए।

तदनन्तर भूमण्डल देकर अष्ट वज्र सहित क्षिति बीज और अष्ट इन्द्रायुधके बीजकरि सहित लिखना चाहिए।

इस प्रकार यह यन्त्रविधि है। इस प्रकार यन्त्र बनाकर पहिले लिखी विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये।

यह महायंत्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी सिद्धि करनेवाला है इसलिये इसकी नित्य पूजन करना चाहिये। यह सामान्य शांतिचक्र है बृहत्शांतिचक्र और है, जो बहुत बड़ा है सो अन्य शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। उसमें इससे भी बहुत विशेष रचना है।

यह मंत्र अनेक गुणोंसे सुशोभित है यह यंत्र पूजा करनेवालेके अनेक विघ्न समूहोंको, अनेक क्षुद्रोपद्रवोंको, अनेक परकृत उपद्रवोंको, अनेक क्षाम डामरादिक कृत्रिम दोषोंको, अनेक अरि, मारी, रावल चौरादिक कृत घोर उपद्रवोंको, समस्त अरिष्टोंको, अपमृत्युको, डाकिनी, शाकिनी तथा आदित्यादिक दुष्ट ग्रहोंको, भूत, बेताल, राक्षस, पिशाच आदिकोंको तथा स्थावर जंगम विषादिकोंको अनेक दुर्ध्यानियोंको दूर करता है। अनेक प्रकारके दुःख समूहोंको दूर करता है तथा अनेक मनोवांछित सुखोंको प्राप्त कराता है। यह यंत्र महापुण्यका कारण है ऐसा जानकर इस यंत्रको नित्य पूजन करनी चाहिये। यह यन्त्र भाग्यहीनोंको अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये बुद्धिमानोंको इस ऊपर लिखे मंत्रके महत्त्वको समझ लेना चाहिये।

१५६-चर्चा एकसौ उनसठवीं

प्रश्न—कलिकुण्ड दंड स्वामीका यन्त्र और उसकी विधि क्या है?

समाधान—सबसे पहले कलिकुण्ड दंड स्वामीका अर्थ लिखते हैं। कलि शब्दका अर्थ क्लेश है वह अनेक प्रकार है आधि-व्याधिसे उत्पन्न होनेवाली अर्थात् मन और शरीरसे होनेवाली पीड़ासे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके क्लेश क्लेश कहलाते हैं तथा कुण्ड शब्दका अर्थ समूह है। कलि अर्थात् क्लेशोंके कुण्ड अर्थात् समूहको कलिकुण्ड कहते हैं उन क्लेशोंके समूहको दूर करनेके लिये नाश करनेके लिये जो दंडके समान हो

उसको कलिकुण्डदण्ड कहते हैं। उस कलिकुण्डके स्वामी श्रीपार्श्वनाथको कलिकुण्डदण्डस्वामी कहते हैं। भावार्थ—अनेक प्रकारके क्लेशोंके समूहको दूर करनेके लिये भगवान पार्श्वनाथ समर्थ हैं। उन्होंसे सम्बन्ध रखनेवाला यह कलिकुण्डदंडस्वामीका यन्त्र है। उसीको आगे लिखते हैं। इसके लिये नीचे लिखा काव्य है—

ह्रूंकारं ब्रह्मरुद्धं स्वपरिकलितं वज्ररेखाष्टभिन्नं,
वज्रस्याग्रांतराले प्रणवमनुपमानाहतं सासृणं च।
वर्णान् तोयान् सपिंडान् ह भ म र घ झ सखान् वेष्टयेत्तद्बहिर्दत्ते,
वज्राणां यंत्रमेतत् परमसुशुभं दुष्टविद्याविनाशम्॥

अर्थ—एतत् अर्थात् यह यन्त्र परमोत्कृष्ट है और बहुत ही शुभ करनेवाला है। दुष्ट जनोंके द्वारा उत्पन्न हुई दुष्ट विद्याओंका नाश करनेवाला है। भावार्थ—परशत्रुकृत आकर्षण, स्तम्भन, उच्चाटन, मोहन, वशीकरण, मारण इन छहों प्रकारकी दुष्ट विद्याओंका नाश करनेवाला है। इस यन्त्रका आराधन करनेसे दूसरोंकी (शत्रुओंकी) की हुई दुष्ट विद्याओंका खंडन होता है तथा अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है। आगे उसी यंत्रको बतलाते हैं—

सबसे पहले मध्यकी कर्णिकामें 'ह्रूं' ऐसा ह्रूंकार लिखना चाहिये। उसके पास चारों ओर 'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं अर्हं कलिकुण्डदंडस्वामिने अतुलबलवीरपराक्रमाय अभीष्टसिद्धिं कुरु कुरु आत्मविद्यां रक्ष रक्ष परविद्यां छिंद छिंद भिंद भिंद स्फां स्फीं स्फूं स्फः ह्रूं फट् स्वाहा' यह मूल मन्त्र लिखना चाहिये उसको ब्रह्मरुद्ध अर्थात् सौवह स्वरोंसे वेष्ठित करना चाहिये। फिर सोलह स्वरोंसे वलयाकार बनाना चाहिये फिर तीन वलय देकर उसके बाहर चारों दिशा और चारों विदिशाओंमें अलग-अलग आठ वज्र लिखना चाहिये। उन वज्रोंके बीचमें दो-दो प्रणव बीजको अनाहतसे घेरकर उसको ह्रींकारसे वेष्ठित करना चाहिये। अर्थात् एक-एक कोठेमें दो-दो जगह ॐ लिखकर उसके चारों ओर अनाहत बनाकर उस अनाहतको ह्रींकारसे वेष्ठित करना चाहिये। तथा उन वज्रोंके बीच-बीचमें अनुक्रमसे अकारादिक स्वर, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यकरादिक अन्तस्थ और शकारादिक ऊष्म लिखने चाहिये। अर्थात् पहले कोठेमें अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः लिखना चाहिये। दूसरे कोठेमें क ख ग घ ङ तीसरे कोठेमें च छ ज झ ञ चौथेमें ट ठ ड ढ ण पांचवेंमें

त थ द ध न छठमें प फ ब भ म सातवेंमें य र ल व और आठवेंमें श ष स ह क्ष ल क्ष लिखना चाहिये। फिर प्रत्येक कोठेमें जो दो-दो अनाहत लिखे हैं उनके बीचमें अर्थात् आठों वर्गोंमेंसे दो-दो वर्गोंके मध्य भागमें हकाराविक पिंडाष्टक लिखना चाहिये अर्थात् पहले कोठेमें हकार मकार लकार वकार ऊर्ध्व रकार यकार अधो रकार अर्द्ध चन्द्राकार कलायुक्त अनुस्वार नीचे दीर्घ ऊकार इन सब अक्षरोंसे मिला हुआ हकार लिखना चाहिये। उसका स्वरूप "ह्म्ल्व्यूं" इस प्रकार है। दूसरे कोठेमें हकारकी जगह भकार लिखना बाकीके अक्षर ज्योंके त्यों मिला देना चाहिये। इन सबके मिलानेसे उसका स्वरूप 'भ्म्ल्व्यूं" ऐसा बन जाता है। तीसरे कोठेमें हकारकी जगह मकार लिखकर उसमें सब अक्षर मिलाकर लिखना चाहिये उसका स्वरूप 'म्म्ल्व्यूं" ऐसा होता है। चौथे कोठेमें हकारकी जगह रकार लिखकर उसमें अन्य अक्षर ज्योंके त्यों मिलाकर लिखना चाहिये उसका स्वरूप 'र्म्ल्व्यूं" ऐसा होता है। पांचवें कोठेमें हकारकी जगह वकार लिखकर उसमें बाकीके अक्षर मिलाकर लिखना चाहिये उसका स्वरूप 'व्म्ल्व्यूं" ऐसा होता है। छठे कोठेमें पहला अक्षर शकार लिखकर तथा बाकीके अक्षर उसमें मिलाकर लिखना चाहिये। उसका स्वरूप 'श्म्ल्व्यूं" ऐसा होता है। सातवें कोठेमें पहला अक्षर सकार लिखना चाहिए तथा बाकीके अक्षर मिलाकर 'स्म्ल्व्यूं" ऐसा बीजाक्षर बनाकर लिखना चाहिये। आठवें कोठेमें पहला अक्षर क्ष लिखकर उसमें सब अक्षर मिलाना चाहिये उसका स्वरूप 'क्ष्म्ल्व्यूं" ऐसा होता है। इस प्रकार आठों कोठोंमें अनाहतोंके बीचमें ये बीजाक्षर लिखने चाहिये। फिर तीन वलय देकर क्षितिमंडलसे वेष्ठित करना चाहिये। उसमें चारों दिशाओंमें चार क्षिति बीज और चारों कोणोंमें चार इन्द्रायुध बीजसे वेष्ठित करना चाहिये। इस प्रकार बनानेसे यह कलि कुण्डदंडयंत्र बन जाता है।

इस यन्त्रका उद्धार इस प्रकार है। कर्णिकामें स्थित जो ॐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं अर्हं इत्यादि मूल मंत्रसे पंचोपचारी पूजा करनी चाहिये। फिर एकसौ आठ बार सुगन्धित पुष्पोंसे अथवा रक्त कंडीरके पुष्पोंसे जाप करना चाहिये।

इस यंत्रसे समस्त अभीष्ट पदार्थोंकी सिद्धि होती है तथा परकृत समस्त दुष्ट विद्याओंका नाश होता है।

१६०-चर्चा एकसौ साठवीं

प्रश्न—ऋषिमंडल स्वरूप क्या है तथा उसका आराधन किस प्रकार है ?

समाधान—आगे ऋषिमंडल यन्त्रका स्वरूप और आराधन कहते हैं। यह यन्त्र सोना, चाँदी, कांसा, तांबा अथवा भोजपत्र पर लिखना चाहिए। सबसे पहले मध्यमें गोल कर्णिका बनानी चाहिये। उसमें द्विगुण (दो-दो लकीरोंके बीचमें) 'ह्रीं' ऐसा ह्रींकार बनाना चाहिए उस ह्रींकारमें नीचे लिखे अनुसार अनुक्रम ऋषभसे लेकर वर्द्धमान पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकरोंके नाम चतुर्थी विभक्तिके साथ तथा नमः शब्दके साथ लिखना चाहिए। उनका क्रम इस प्रकार है।

ऋषभाजितशंभवाभिनन्दनसुमतिसुपार्श्वशीतलश्रेयोविमलानन्तधर्मशान्तिकुन्थ्वरेमल्लिभ्यो नमः' इस प्रकार इन चौदह तीर्थंकरोंके नाम तो ह्रींकारके हकारमें लिखना चाहिए तथा "वर्द्धमानेभ्यो नमः" यह ह्रींकारके नीचे लगे रेफमें लिखना चाहिए। फिर 'पद्मप्रभवासुपूज्याभ्यां नमः' यह ह्रींकारके मस्तकपर लिखना चाहिए फिर 'चन्द्रप्रभपुष्पदन्ताभ्यां नमः' यह कलामें लिखना चाहिए तथा 'नेमिमुनिसुव्रताभ्यां नमः' यह बिन्दुमें लिखना चाहिए। फिर सुपार्श्व 'पार्श्वनाथमल्लिभ्यां नमः' यह ईकारमें लिखना चाहिए। फिर 'नमिभ्यो नमः" यह रेफके आगे उससे लगता हुआ लिखना चाहिये। इस प्रकार कर्णिकाको पूरा कर फिर उसके आगे वलय देकर उसके बाहर आठ दलका कमल बनाना चाहिए। उस कमलके आठों पत्रोंमें पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर बायीं ओर होते हुए अनुक्रमसे अकारादिक आठों वर्गोंको पिंडाष्टकके साथ लिखना चाहिए अर्थात् पूर्व दिशाके पहले दलमें अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन सोलह स्वरोंको लिखकर 'ह्म्ल्व्यूँ' यह "ह म ल व ऊर्ध्वरकार यकार अधोरकार अर्धचन्द्राकार अनुस्वार और नीचे 'ऊकार' इन सब अक्षरोंसे मिला हुआ वर्ण लिखना चाहिए। फिर बायीं ओरके दूसरे पत्रमें 'क ख ग घ ङ' इन कवर्गके पाँचों अक्षरोंको लिखकर 'भ्म्ल्व्यूँ' इस भकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिए। फिर तीसरे पत्रमें चवर्ग अर्थात् 'च छ ज झ ञ' लिखकर 'म्म्ल्व्यूँ' यह मकारादि पिंडाष्टक लिखना चाहिये। फिर चौथे पत्रमें टवर्ग अर्थात् 'ट ठ ड ढ ण' लिखकर र्म्ल्व्यूँ' इस रकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिये। पाँचवें पत्रमें तवर्ग अर्थात् 'त थ द ध न' लिखकर 'ह्म्ल्व्यूँ' इस हकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिये। छठे पत्रमें पवर्ग अर्थात् 'प फ ब भ म'

लिखकर 'क्ष्म्ल्व्र्यूं' यह क्षकारादि पिंडाष्टक लिखना चाहिये। सातवें पत्रमें यकारादि अर्थात् 'य र ल व' लिखकर 'स्म्ल्व्र्यूं' इस सकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिये। फिर आठवें पत्रमें 'श ष स ह' लिखकर 'ख्म्ल्व्र्यूं' यह खकारादिक पिंडाष्टक लिखना चाहिये। इस प्रकार आठों पत्रोंको भर देना चाहिये।

उसके बाद वलय देकर फिर आठ दलका कमल बनाना चाहिये। उन आठों पत्रोंमें वेद मायाबीजपूर्वक चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ अलग-अलग अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुतत्त्वदृष्टिसम्यग्चारित्रान् लिखना चाहिये। उनका क्रम इस प्रकार है। पूर्व दिशाके पहले दलमें 'ॐ ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः' बायीं ओर दूसरे दलमें 'ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः' तीसरे पत्रमें 'ॐ ह्रीं सूरिभ्यो नमः' चौथे दलमें 'ॐ ह्रीं पाठकेभ्यो नमः' पाँचवें दलमें 'ॐ ह्रीं सर्वसाधुभ्यो नमः' छठे पत्रमें 'ॐ ह्रीं तत्त्वदृष्टिभ्यो नमः' सातवें पत्रमें 'ॐ ह्रीं सम्यग्-ज्ञानाय नमः' आठवें पत्रमें 'ॐ ह्रीं सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः' लिखना चाहिये। इस प्रकार दूसरा आठ दलका कमल भी भर देना चाहिये।

फिर उसके बाद वलय देकर सोलह दलका कमल बनाना चाहिये। उसमें अनुक्रमसे ब्रह्म मायाबीजादि चतुर्थीयुक्त नमः शब्दके साथ भावनेन्द्र आदि सोलह इन्द्र देवोंको लिखना चाहिये। उसका नाम और क्रम इस प्रकार है। पूर्वदिशाके पहिले पत्रमें 'ॐ ह्रीं भावनेन्द्राय नमः' लिखना चाहिये फिर बायीं ओरके दूसरे दलमें 'ॐ ह्रीं व्यन्तरेन्द्राय नमः', तीसरे पत्रमें 'ॐ ह्रीं ज्योतिष्केन्द्राय नमः' लिखना चाहिए। चौथे दलमें 'ॐ ह्रीं कल्पेन्द्राय नमः', पाँचवें दलमें 'ॐ ह्रीं श्रुतावधिभ्यो नमः', छठे पत्रमें 'ॐ ह्रीं देशावधिभ्यो नमः', सातवें पत्रमें 'ॐ ह्रीं परमावधिभ्यो नमः', आठवें पत्रमें 'ॐ ह्रीं सर्वावधिभ्यो नमः', नौवें दलमें 'ॐ ह्रीं बुद्धिऋद्धि-प्राप्तेभ्यो नमः' दशवें कोठेमें 'ॐ ह्रीं सर्वौषधर्द्धिऋद्धिप्राप्तेभ्यो नमः' लिखना चाहिये, ग्यारहवें दलमें 'ॐ ह्रीं अनन्तबलर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः', बारहवें पत्रमें 'ॐ ह्रीं तप्तर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः', तेरहवें दलमें 'ॐ ह्रीं रसर्द्धि-प्राप्तेभ्यो नमः', चौदहवें पत्रमें 'ॐ ह्रीं विक्रियर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः', पन्द्रहवें कोठेमें 'ॐ ह्रीं क्षेत्रर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः' और सोलहवें दलमें 'ॐ ह्रीं अक्षीणमहानसर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः' लिखना चाहिये। इस प्रकार सोलह दल कमलको पूर्ण कर देना चाहिये।

उससे बाहर वलय देकर चौबीस दलका कमल बनाना चाहिये और उसमें पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर

बायीं ओर होते हुए अनुक्रमसे चौबीस देवताओंको प्रणव शक्तिबीज चतुर्थी विभक्तिसहित नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। उन देवता वा देवियोंके नाम ये हैं। पहले दलमें 'ॐ ह्रीं श्रियै नमः', दूसरे दलमें 'ॐ ह्रीं ह्रीदेव्यै नमः', तीसरेमें 'ॐ ह्रीं धृतये नमः', चौथेमें 'ॐ ह्रीं लक्ष्म्यै नमः' पाँचवेंमें 'ॐ ह्रीं गौर्यै नमः', छठेमें 'ॐ ह्रीं चण्डिकायै नमः', सातवेंमें 'ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः', आठवेंमें 'ॐ ह्रीं जयायै नमः', नौवेंमें 'ॐ ह्रीं अम्बिकायै नमः', दशवेंमें 'ॐ ह्रीं विजयायै नमः', ग्यारहवेंमें 'ॐ ह्रीं क्लिन्नायै नमः', बारहवेंमें 'ॐ ह्रीं अजितायै नमः', तेरहवेंमें 'ॐ ह्रीं नित्यायै नमः', चौदहवेंमें 'ॐ ह्रीं मदद्रवायै नमः', पंद्रहवेंमें 'ॐ ह्रीं कामांगायै नमः', सोलहवेंमें 'ॐ ह्रीं कामबाणायै नमः', सत्रहवेंमें 'ॐ ह्रीं सानन्दायै नमः', अठारहवेंमें 'ॐ ह्रीं नन्दिमालिन्यै नमः', उन्नीसवेंमें 'ॐ ह्रीं मायायै नमः', बीसवेंमें 'ॐ ह्रीं मायाविन्यै नमः', इक्कीसवेंमें 'ॐ ह्रीं रौद्रायै नमः', बाईसवेंमें 'ॐ ह्रीं कलायै नमः', तेईसवेंमें 'ॐ ह्रीं कालयै नमः' चौबीसवेंमें 'ॐ ह्रीं कलिप्रियायै नमः'। इस प्रकार पूर्व दिशासे लेकर बायीं ओरकी गतिसे लिखकर पूर्ण करना चाहिये। फिर माया बीजका त्रिकोण अर्थात् तीन वलय देकर तथा भूमण्डलसे वेष्टित कर इसका आराधन करना चाहिये।

इसके आराधन करनेकी विधि यह है। सबसे पहले 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः' इस मूल मन्त्रसे जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घसे पूजा करनी चाहिये। तथा इसी यंत्रके ऊपर एकसौ आठ बार इसी मूलमन्त्रके द्वारा रक्त करवीर अर्थात् लाल कन्नेर आदि सुगंधित पुष्पोंसे जप करना चाहिये। यदि इसकी सिद्धि करना हो तो इसकी सिद्धिके लिये ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहिये, प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और आचाम्ल (केवल माँड, भात खाना) तप करना चाहिये। इतना सब करते हुए आठ हजार जप करना चाहिये तथा इस मंत्रके आगे होमांत अर्थात् स्वाहा शब्द और लगाना चाहिये। इस प्रकार करनेसे इसकी सिद्धि होती है जिससे समस्त सिद्धियोंको प्राप्त होता है।

जो पुरुष इस यंत्रकी आठ महीने तक सिद्धि करते हैं, तीनों समय पूजा करते हैं, जप करते हैं, ब्रह्मचर्यसहित आचाम्ल आदि तप करते हैं तथा सबके अन्तमें दशांश होम, तर्पण, मार्जन करते हैं वे निश्चयसे अपने आत्मामें साक्षात् प्रगट हुए श्रीअरहन्तबिम्बको देखते हैं। तथा ये पुरुष सात आठ भवमें ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं फिर वे संसारमें परिभ्रमण नहीं करते। ऐसा इसका फल है।

इस यन्त्रकी सिद्धिसे अनेक प्रकारके विघ्नजाल तथा संसारकी अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ दूर होती हैं तथा इच्छानुसार फल प्राप्त होते हैं। इस यन्त्रके माहात्म्यसे सर्प, सर्पिणी, गोनसा, वृश्चिक, काकिनी, डाकिनी, याकिनी, राकिनी, लाकिनी, शाकिनी, हाकिनी, राक्षस, भेषस व्यन्तर, देवत, तस्कर, अग्नि, शृंगी, वंष्ट्री, रेपल, पक्षी, मुद्गल, जृंभक, तोयद सिंह, शूकर, चित्रक, हस्ती, भूमिप, शास्त्रव, ग्रामिण, दुर्जन, व्याधि इत्यादि समस्त दुःख देनेवाले तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं तथा वे सब दुष्ट उपद्रव करने के लिये असमर्थ हो जाते हैं। तथा इस यंत्रके प्रभावसे दुर्जन, भूत, वेताल, पिशाच, मुद्गल, अग्नि आदि सर्व उपद्रव शान्त हो जाते हैं। तथा इस यंत्रको पास रखनेसे युद्धमें, द्वारमें, अग्निके उपद्रवमें, जलमें, दुर्ग अर्थात् किलेमें, हाथी, सिंह आदिके उपद्रवमें, श्मशानमें, घोर वनमें और अटवीमें स्मरण करने मात्रसे ही रक्षा होती है और समस्त उपद्रव दूर हो जाते हैं। इसको पास रखनेसे राज्यसे भ्रष्ट हुए लोग राज्यपदको प्राप्त करते हैं, किसी पदसे भ्रष्ट हुए जीव अपने पदको प्राप्त करते हैं, लक्ष्मीसे भ्रष्ट हुए लक्ष्मीको पाते हैं। भार्यार्थी भार्याको पाते हैं, पुत्रार्थी पुत्रको पाते हैं और धर्मार्थी धर्मको पाते हैं। इसके सिवाय इसके गुण और भी बहुत हैं सो सब इसके स्तोत्रसे जान लेना चाहिये। इस प्रकार यह ऋषिमण्डल यन्त्रका उद्धार है। यन्त्र पृष्ठ २११ (क) में देखो।

१६१-चर्चा एकसौ इकसठवीं

प्रश्न—चिंतामणि चक्रका क्या स्वरूप है ?

समाधान—यह यंत्र अरहन्त सम्बन्धी है। इसकी नित्य पूजा, वन्दना, स्तवन, सेवा, जप करनेसे अभीष्ट फल प्राप्त होता है। तथा जो पुरुष इसकी पूजा, वन्दना आदि करते हैं वे मुक्तिरूपी लक्ष्मीके वल्लभ होते हैं और मुक्तिके चित्तको रंजायमान वा प्रसन्न करते रहते हैं। उनके वशमें तीनों लोक हो जाता है ऐसा इसका फल है।

आगे उसके बनानेकी विधि लिखते हैं—

सान्तं विन्दूर्ध्वरेफं वहिरपि विलखेदाथताष्टाब्जपत्रं,
दिक् क्ष्वीं श्रीं ह्रीं स्मरेन्या स्वभिवशकरणं झ्रौं तथा व्लौं पुनर्यूः।

बाह्ये ह्रीं ॐ नमोऽर्हं दिशि लिखित चतुर्थीबीजकं होमयुक्तं,
मुक्तिश्रीवल्लभोसौ भुवनमपि वशं जायते पूजयेद् यः ॥

(अर्थात्-कर्णिकामें ह्रूं लिखकर तीन वलय देवे उसके बाहर आठ दलका कमल बनावे उनमें क्रमसे ऐं क्रौं श्रीं भौं ह्रीं ब्लौं वलीं यू लिखना चाहिये फिर तीन वलय देकर चारों दिशाओंमें ॐ नमोर्हं स्वाहा लिखना चाहिये। इस प्रकार बनानेसे यह चिंतामणि यन्त्र बन जाता है जिसकी पूजा करनेवाला मुक्तिरूपी लक्ष्मीका स्वामी होता है और तीनों लोक उसके वशमें हो जाते हैं। इस प्रकार यह चिंतामणि चक्र है सो पूजा करनेवालोंको चिंतामणि रत्नके समान चिंतित पदार्थोंको देता है। इसलिये इसकी नित्य पूजा, जप, तप, ध्यान करना चाहिये।

यह चिंतामणि चक्र और प्रकारसे भी बनता है सो अन्य शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। यह लघु विधि है।

इति चिंतामणि चक्र विधि। यन्त्र पृष्ठ २१२ (क) में देखो।

१६२-चर्चा एकसौ बासठवीं

प्रश्न—गणधर वलय यन्त्रका स्वरूप तथा आराधन किस प्रकार है ?

समाधान—यह गणधर वलयका यन्त्र सोने, चाँदी तथा ताँबे आदिके पत्रमें पहले लिखी हुई विधिके अनुसार लिखना चाहिये।

सबसे पहले एक कर्णिका बनानी चाहिये उसमें उलट पलट रूप दो त्रिकोण बनाना चाहिये जिससे कि षट्कोणसा बन जाय फिर उसके बीचमें ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा स्वाहा' यह मन्त्र लिखना चाहिये। फिर इसी मन्त्रके ऊपर ॐ अर्हं ह्यीं क्ष्वीं ह्रीं श्रीं ये बीजाक्षर लिखना चाहिये। फिर छहों कोनोंमें "अप्रति चक्रे फट्" लिखना चाहिये फिर वहींसे उलट कर दाईं ओर "वि च क्रा य स्वाहा" लिखना चाहिये। फिर वलय देकर छह वलका कमल बनाना चाहिये उनके बीच बीचमें संधि रखना। उन छहो दलोंमें छह कुमारिकाओंके नाम लिखना चाहिये अर्थात् पहले दलमें 'ॐ श्री' दूसरेमें 'ह्रां ह्री' तीसरेमें 'ह्रीं धृति' चौथेमें 'ह्रूं कीर्ति' पाँचवेंमें 'ह्रौं बुद्धि' छठेमें 'ह्रः लक्ष्मी' इस प्रकार छहों कोठोंमें छहों कुमारिका देवियोंके नाम लिखना चाहिये तथा उनके मध्यमें 'ह्रीं ह्रीं' ऐसे बीचके संधिपत्रोंमें लिखना चाहिये।

फिर उसके बाद वलय देकर आठ दलका कमल लिखना चाहिये फिर उसके बाद वलय देकर सोलह दलका कमल लिखना चाहिये फिर उसके बाद वलय देकर चौबीस दलका कमल लिखना चाहिये। फिर उसके बाद वलय देकर बीजयुक्त क्षितिमंडल लिखना चाहिये।

इस प्रकार जो आठ, सोलह और चौबीस दल बने हैं उनमें नमः शब्दके साथ अड़तालीस ऋद्धियोंको लिखना चाहिये। यथा पहले दलमें ॐ ह्रीं हं णमो जिणाणं। दूसरे दलमें ॐ ह्रीं हं णमो ओहि जिणाणं। तीसरेमें ॐ ह्रीं हं णमो परमोहिजिणाणं। चौथेमें 'ॐ ह्रीं हं णमो सव्वोहिजिणाणं। पाँचवेंमें ॐ ह्रीं हं अणंतोहि जिणाणं। छठेमें ॐ ह्रीं हं णमो कोट्ठबुद्धीणं। सातवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो बीजबुद्धीणं। आठवेंमें ॐ ह्रीं हं पादानुसारीणं लिखना चाहिये। यह सब पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर बाईं ओरको लिखते जाना चाहिए। तदनन्तर वलयके बाहर सोलह दलोंमेंसे पूर्वकी ओरके पहले दलमें तथा अनुक्रमसे नौवें दलमें ॐ ह्रीं हं णमो संभिण्ण सोदराणं। दशवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो पत्तेयबुद्धीणं। ग्यारहवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो सयं बुद्धीणं। बारहवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो बोहियबुद्धीणं। तेरहवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो उज्जुमदीणं। चौदहवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो विउलमदीणं। पन्द्रहवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो दस पुव्वीणं। सोलहवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो चौदस पुव्वीणं। सत्रहवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो अट्ठंग महानिमित्तकुसलाणं। अठारहवें ॐ ह्रीं हं णमो विउव्वण इड्ढिपत्ताणं। उनईसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो विज्जाहराणं। बीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो चारणाणं। इकईसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो पणसमणाणं। बाइसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो आयास गामिणं। तेईसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो दिट्ठिविसाणं। चौबीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो आसो-विसाणं लिखना चाहिये। इस प्रकार सोलह दलका कमल पूरा कर लेना चाहिये। तदनंतर वलयके बाहर चौबीस दलके कमलमेंसे पहले दलमें तथा अनुक्रमसे पच्चीसवें दलमें ॐ ह्रीं हं णमो उग्गतवाणं। छब्बीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो दित्ततवाणं, सत्ताईसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो तत्ततवाणं। अट्ठाईसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो महातवाणं। उनत्तीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो घोरतवाणं। तीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो घोरगुणाणं। इकत्तीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो घोरपरक्कमाणं। बत्तीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो घोरगुणं बंभचारीणं। तेतीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो आमोसहिपत्ताणं। चौंतीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो खेल्लोसहिपत्ताणं। पैंतीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं। छत्तीसवेंमें ॐ ह्रीं हं विप्पोसहिपत्ताणं। सैंतीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं। अड़तीसवेंमें ॐ ह्रीं हं णमो मणवलीणं।

उन्तालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो खीरवलीणं । चालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो कायबलीणं ।' इकतालीसवेंमें 'ॐ ह्रीं हूं णमो खीरवसीणं । व्यालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो सप्पिसवीणं । तेतालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो महुरसवीणं । चवालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो अमियसवीणं । पैंतालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो अक्खीणमहाणसाणं । छ्यालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो लोए सव्व सिद्धायदणाणं । सैंतालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो वद्धमाणाणं । अड़तालीसवेंमें ॐ ह्रीं हूं णमो भगवदिवद्धमाणं बुद्धिरिसीणं लिखना चाहिये । इस प्रकार नीचेके चौबीस दल भरकर पूर्ण करना चाहिये ।

तदनन्तर वलयके बाहर माया बीज अधः क्रौं बीज लिखकर क्षितिमण्डल युक्त करना चाहिये ।

इस यंत्रको 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय ह्रीं ह्रूं स्त्रौं स्त्रौं स्वाहा' इस मूल मंत्रसे पूजन तथा जप करना चाहिये । पहले जो अड़तालीस ऋद्धियों सहित ऋषियोंके नाम लिखे हैं उनका उच्चारण नमस्कारपूर्वक करके पूजनके अन्तमें जपना चाहिये ।

जो मनुष्य इस गणधरवलयको तीनों काल आराधन करते हैं उनके गये हुए धनधान्य, परिग्रह आदि सब पीछे मिल जाते हैं । इससे अनेक प्रकारका पुण्यास्रव होता है, पापोंका आस्रव रुकता है तथा पापकर्मोंकी निर्जरा होती है । अनेक प्रकारके रोगोंसे होनेवाली व्याधियाँ तथा भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, ग्रह, राक्षस, पिशाच आदिसे उत्पन्न हुए उपद्रव तथा स्थावर जंगमके भेदसे दोनों प्रकारके विषयोंसे उत्पन्न हुए उपद्रव सब नष्ट हो जाते हैं । इसके सिवाय होनहार शुभ वा अशुभ सब स्वप्नमें दिखाई देता है । तथा अन्त समयमें आराधन सहित समाधिमरण होता है । इस प्रकार इसका फल है । सो ही पूजासारमें लिखा है ।

मन्त्रेणानेन सदा त्रिसमयगतमर्थमायाति ।

और भी लिखा है—

नित्यं यो गणभृन्मन्त्रं विशुद्धया.....
.....॥ १ ॥

.....विषयादिभिः।
सद्सद्वीक्षणं स्वप्ने समाधिश्च भवेन्मृतौ ॥ २ ॥

इस प्रकार यह गणधरवलय यन्त्र है। इसको शुद्ध जलसे, शुद्ध परिणामोंसे, शुद्ध चित्तसे पवित्र होकर, पवित्र वस्त्र धारण कर, ध्यान, जप, पूजन, सेवन आदि करना चाहिये। भव्यजीवोंको अपने दोनों लोकोंके कल्याणके लिये इसका आराधन करना योग्य है। गणधरवलय यन्त्र पृष्ठ २१५ (क) में देखो।

१६३–चर्चा एकसौ तिरेसठवीं

प्रश्न—षोडशकारण यंत्रकी विधि तथा पूजाकी विधि क्या है?

समाधान—दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण सब तीर्थंकर नामकर्मके कारण हैं। इन सोलहकारणों-के बिना तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं होता इसीलिए इनको कारण कहते हैं। आगे उनका थोड़ा-सा स्वरूप लिखते हैं।

पहला कारण दर्शनविशुद्धि है, इसको घात करनेवाली मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व ये तीन तो दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियां तथा अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियां इस प्रकार सात प्रकृतियां हैं। इन सातों प्रकृतियोंका जिसके केवली भगवान अथवा श्रुतकेवलीके निकट क्षय हो जाय उसके क्षायिक सम्यक्त्व होता है। जिस पुरुषके क्षायिक सम्यक्त्व हो, जो अतिचाररहित सातों व्यसनोंका त्यागी हो, निरतिचार आठों मूलगुणोंका धारण करनेवाला हो तथा पांच अणुव्रत अथवा पांच महाव्रतोंसे सुशोभित हो, शंकादिक पचीस दोषोंसे और पांचों अतिचारोंसे रहित हो, निःशंकित आदि आठों अंग और इकईस गुणोंसे परिपूर्ण हो, उसके सोलह कारणोंमेंसे दर्शनविशुद्धि नामका तीर्थंकर प्रकृतिका पहला कारण होता है। इस दर्शनविशुद्धि के बिना तीर्थंकरप्रकृतिका बंध नहीं होता। इसलिये यह सब कारणोंमें प्रथम कारण अथवा मुख्य कारण है। भावार्थ–बाकीके पन्द्रह कारण भी तीर्थंकर प्रकृतिके कारण हैं परन्तु इस दर्शनविशुद्धि नामके पहले कारणका होना अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा निश्चय है। इस प्रकार यह दर्शनविशुद्धि नामका पहला कारण है।

दूसरा कारण विनयसम्पन्नता है। सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान, चारित्र, तपको धारण करना मन, वचन,

कायसे उनकी पूजा-भक्ति आदि विनय करना तथा इनको धारण करनेवालोंकी पूजा-भक्ति आदि विनय करना तथा विनयके लिये सदा सावधान रहना सो विनयसम्पन्नता नामका दूसरा कारण है।

तीसरा कारण शीलव्रतेष्वनतिचार है। शील और व्रतोंमें अतिचार नहीं लगाना तथा नौ बाड़सहित और अठारह हजार भेदोंसे परिपूर्ण ब्रह्मचर्यको पालन करना सो तीसरा शीलव्रतेष्वनतीचार नामका तीसरा कारण है।

चौथा कारण अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है। अपने आत्माके उपयोगको सदा ज्ञानमें लगाये रखना अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग है। भावार्थ–निरन्तर द्वादशांगको पढ़ना, पढ़ाना, अपने मनको किसी और कार्यमें अथवा किसी अन्य स्थानमें न लगाना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नामका चौथा कारण है।

पाँचवाँ कारण संवेग है। अपने मनके वेगको खूब अच्छी तरह अशुभ प्रवृत्तियोंसे रोकना तथा शुभ भावोंमें स्थिर करना अर्थात् देह, भोग और संसारसे विरक्त होकर वैराग्यका चिन्तवन करना सो संवेग नाम-का पाँचवाँ कारण है।

छठा कारण शक्तितस्त्याग अथवा अपनी शक्तिके अनुसार त्याग करना वा दान देना है। अपनी शक्तिके अनुसार विषयकषायोंका त्याग करना तथा चार प्रकारका दान देना। भावार्थ—अपनी शक्तिसे कम बढ़ न करना सो शक्तित्स्याग नामका छठा कारण है।

सातवाँ कारण शक्तिततस्तप अर्थात् शक्तिके अनुसार तप करना है। अपनी सामर्थ्यके अनुसार अन-शन, अवमोदर्य, वृत्तपरिसंख्यान, रसपरित्याग, कायक्लेश, विविक्तशय्यासन ये छः प्रकारके बाह्य तप तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान इन छः प्रकारके अन्तरंग तपोंको अच्छी तरह धारण करना, अपनी शक्तिको न छिपाकर शक्तिके अनुसार पालना सो शक्तिततस्तप नामका सातवाँ कारण है।

आठवाँ कारण साधुसमाधि है। साधुओंपर आये हुए उपसर्गोंको दूर करना तथा उनकी सेवा शुश्रूषा करना साधुसमाधि है।

नौवाँ कारण वैयावृत्य है। जो मुनि अपनेसे (किसी मुनिसे) बड़े हैं वा अपने समान हैं अथवा छोटे होनेपर भी रोगी हैं वा और किसी व्याधिसे पीड़ित हैं अथवा बुढ़ापेसे दुःखी हैं उन सबकी टहल चाकरी करना,

पैर दबाना, पथ्यसे रखना, मलमूत्र दूर करना तथा भक्ति वा अनुरागसे अनेक प्रकारकी सेवा शुश्रूषा करना, उनको सन्तोष देना सो नौवां वैयावृत्यकरण नामका कारण है।

दशवां कारण अर्हद्भक्ति है। भगवान वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी अरहन्तदेवको मन, वचन, कायसे भक्ति करना, उनकी पूजा, स्तुति करना आदि अर्हद्भक्ति है।

ग्यारहवां कारण आचार्यभक्ति है। छत्तीस गुणोंको धारण करनेवाले आचार्य परमेष्ठीकी मन, वचन, कायसे भक्ति करना, पूजा, स्तुति करना सो आचार्यभक्ति है।

बारहवां कारण बहुश्रुतभक्ति अथवा उपाध्याय भक्ति है। ग्यारह अंग, चौदह पूर्व स्वरूप द्वादशांग श्रुतज्ञानको जाननेवाले उपाध्याय परमेष्ठीकी मन, वचन, कायसे भक्ति करना, पूजा, स्तुति करना सो बहुश्रुत-भक्ति है।

तेरहवां कारण प्रवचनभक्ति है। प्रवचनका अर्थ द्वादशांग सिद्धांत शास्त्र है। उन सिद्धांतशास्त्रोंकी भक्ति करना, नमस्कार करना, पूजा, स्तुति करना सो सब प्रवचनभक्ति है।

चौदहवां कारण आवश्यकापरिहाणि है। समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग ये छः मुनियोंके आवश्यक हैं। तथा देवपूजा, गुरुकी उपासना करना, स्वाध्याय करना, संयम धारण करना, तप करना, दान देना ये छः गृहस्थोंके आवश्यक हैं। अपने-अपने आवश्यकोंको बिना किसी प्रमादके नित्य करना उसमें कभी शिथिलता न करना तथा कभी न चूकना सो आवश्यकापरिहाणि है। परिहाणि शब्दका अर्थ छोड़ना है और अपरिहाणिका अर्थ नहीं छोड़ना है, आवश्यकोंको नहीं छोड़ना सो आवश्यकापरिहाणि है।

पन्द्रहवां कारण मार्गप्रभावना है। मार्गशब्दका अर्थ मोक्षमार्ग अथवा जिनमार्ग है। जिनमार्ग वा जैन-धर्मकी प्रभावना महिमा प्रगट करना सो मार्गप्रभावना है। घोर तपश्चरण करके, उत्तम विद्या प्राप्त करके, व्रत धारण करके, ध्यान धारण करके, उत्तमोत्तम उपदेश देकर तथा परवादियोंका खण्डन करके अपने जैन-धर्मका अतिशय चमत्कार दिखलाना अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार अनेक प्रकारके रथोत्सव आदि उत्सव-कर जिनमार्गका उद्योत करना सो मार्गप्रभावना है अथवा मार्ग शब्दका अर्थ मुनिजन भी है। मुनिजनोंकी भक्ति करना, सब तरहसे उनकी प्रभावना करना सो भी मार्गप्रभावना है।

सोलहवाँ कारण प्रवचनवत्सलत्व है। प्रवचन शब्दका अर्थ धर्मात्मा है अथवा सिद्धांतशास्त्रोंके जानकारोंको भी प्रवचन कहते हैं, उन धर्मात्माओंके साथ गौ बछड़ेके समान प्रेम करना प्रवचनवत्सलत्व कहलाता है।

इस प्रकार दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाएँ हैं जो पुरुष इनकी भावना करता है, इनका पालन करता है उसके तीर्थंकर नामकर्मका बंध होता है। इसीलिए इनको 'सोलहकारण भावना' ऐसी संज्ञा है। यह सोलहकारण भावना साक्षात् मोक्षका कारण है सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमितितीर्थंकरत्वस्य।—अध्याय ६, सूत्र २४

इसलिये भव्य जीवोंको तीर्थंकर पद प्राप्त करनेके लिए जल, गन्ध आदि द्रव्योंसे इनकी पूजा करनी चाहिये, इनका जप करना चाहिए, ध्यान करना चाहिये। तथा इनको साक्षात् प्राप्त करनेके लिए एक महीने तक लगातार एकान्तर उपवास सहित (एक दिन उपवास एक दिन पारणा इस प्रकार सोलह उपवास सोलह पारणा या भोजन) व्रत धारण करना चाहिये। इसकी विधि अन्य शास्त्रोंमें कथासहित लिखी है वहाँसे जान लेना चाहिये।

आगे इस सोलहकारण भावनाका यन्त्र बनानेकी विधि लिखते हैं।

सबसे पहले मध्यमें गोलाकार कमलकी कर्णिका बनानी चाहिये। उसमें सिद्धचक्रका मूल बीज 'ह्रीं' ऐसा लिखना चाहिये। फिर उसके नीचे ब्रह्ममाया युक्त आदि कारणका नाम लिखकर अन्य कारणोंको आदि शब्दसे समुच्चयरूप लिखकर चतुर्थी भक्ति और नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। वह मन्त्र यह है 'ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो नमः' यह मन्त्र लिखना चाहिये। फिर उसके आगे तीन वलय देकर सोलह दलका कमल लिखना चाहिये। उन दलोंमें प्रत्येकमें ब्रह्ममायाबीजसहित चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ अलग-अलग प्रत्येक कारण लिखना चाहिये। तथा पूर्व दिशासे आरम्भ कर बाँई ओरको लिखना चाहिये। पहले दलमें 'ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये नमः' दूसरेमें 'ॐ ह्रीं विनयसंपन्नतायै नमः' तीसरेमें 'ॐ ह्रीं शीलव्रतेष्वनतिचाराय नमः' चौथेमें 'ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः' पाँचवेंमें 'ॐ ह्रीं संवेगाय नमः' छठेमें 'ॐ ह्रीं

शक्तितस्त्यागाय नमः' सातवेंमें 'ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः' आठवेंमें 'ॐ ह्रीं साधुसमाध्ये नमः' नौवेंमें 'ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः' दशवेंमें 'ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः' ग्यारहवेंमें ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये नमः' बारहवेंमें 'ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तये नमः' तेरहवेंमें 'ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये नमः' चौदहवेंमें 'ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नमः' पन्द्रहवेंमें 'ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनायै नमः' सोलहवेंमें 'ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नमः' लिखना चाहिये। फिर बाहर तीन वलय देकर भूमंडल करि वेष्ठित करना चाहिये फिर चार क्षितिबीज, चार इन्द्रायुध सहित कुलिशाष्टक तथा चार द्वार करि सहित लिखना चाहिये।

तदनन्तर उसका आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण कर पूजन करना चाहिये फिर विसर्जन करना चाहिये। तथा मूलमन्त्रसे एकसौ आठ बार जातिपुष्प (चमेली) से अथवा लोंगसे उस यन्त्रके ऊपर जप करना चाहिए। यह इसके आराधन करनेकी विधि है।

इस यन्त्रके आराधन करनेसे भव्यजीवोंको तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध होता है। ऐसा इसका फल है। इसलिये भव्यजीवोंको इसका स्नपन, पूजन, जप तथा व्रत, उपवास आदि सब मन, वचन, कायसे करना चाहिए। षोडशकारण यन्त्र पृष्ठ २१९ (क) में देखो।

१६४-चर्चा एकसौ चौसठवीं

प्रश्न—दशलाक्षणिक धर्मके यन्त्रकी विधि तथा अर्चनादिकका (पूजाका) स्वरूप क्या है ?

समाधान—उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारसे मुनियोंका धर्म सिद्ध होता है तथा कुछ-कुछ श्रावकका धर्म भी सिद्ध होता है। इसलिए धर्मकी प्राप्तिके लिए भव्यजीवोंको इस यन्त्रकी पंचामृत स्नानपूर्वक जल, गंधादिक आठों द्रव्योंसे पूजा करनी चाहिए तथा इस यन्त्रके ऊपर सुगन्धित पुष्पोंसे तथा लवंगसे एकसौ आठ बार जप करना चाहिए। तथा व्रत, उपवास आदि विधिसे इसका आराधन करना चाहिए। आगे इसका स्वरूप लिखते हैं।

पहला धर्म उत्तम क्षमा है। पृथ्वीकायिक आदि छहों कायिक जीवोंपर क्षमा धारण करना उत्तम क्षमा है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई दुष्ट वा दुर्जन जीव अनेक प्रकारके उपद्रव करें तो भी अपने कर्मोंका स्मरण कर उससे क्रोध न करना, क्षमाभाव धारण करना सो उत्तम क्षमा है।

दूसरा धर्म उत्तम मार्दव है। कुल, जाति, ज्ञान, पूजा, बल, ऋद्धि, तप, शरीर आदिका अभिमान न कर कोमल भाव धारण करना अर्थात् यदि अपनेमें कुछ ऊँचे और सर्वोत्तम गुण भी हों तो भी उद्धतता धारण न करना, सदा कोमल परिणाम रखना उत्तम मार्दव नामका दूसरा धर्म है।

तीसरा धर्म उत्तम आर्जव है। माया वा छल, कपटको छोड़कर सदा सरलता वा निष्कपटता धारण करना मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिको सदा सरल रखना, मन, वचन, शरीरमें किसी प्रकारका कपट न रखना सो उत्तम आर्जव है।

चौथा धर्म उत्तम शौच है। बाह्य-आभ्यंतरके भेदसे दोनों प्रकारकी पवित्रता धारण करना उत्तम शौच है बाह्य विशुद्धि तो जल, मिट्टी आदिसे होती है और अंतरंगकी शुद्धि मंत्रोंके जप करनेसे तथा मनको शुद्ध रखनेसे (लोभका सर्वथा त्याग कर देनेसे) होती है। इस तरह दो प्रकारका शौच है सो गृहस्थ श्रावकको तथा मुनियोंको यथायोग्य धारण करना चाहिये। यह चौथा शौच नामका धर्म है।

पाँचवाँ धर्म सत्य है। झूठ बोलनेका सर्वथा त्याग कर देना और सदा सत्यव्रतका पालन करना उत्तम सत्य नामका धर्म है।

छठे धर्मका नाम संयम है। वह दो प्रकार है—इन्द्रिय संयम और प्राणि संयम। पाँचों इन्द्रिय और मनकी गतिको रोकना इन छहोंको वशमें करना सो इन्द्रिय संयम है तथा छहों कायके प्राणियोंकी रक्षा करना उनकी दया पालन करना सो प्राणी संयम है। इन दोनों प्रकारके संयमोंका पालन करना सो संयम नामका धर्म है।

सातवाँ धर्म तप है। उसके दो भेद हैं बाह्य और आभ्यंतर। अनशनादिक छह प्रकारका बाह्य तप है तथा प्रायश्चित्तादिक छह प्रकारका अंतरंग तप है। इन दोनोंके भेदसे बारह प्रकारका तपश्चरण पालन करना सो सातवाँ उत्तम तप नामका धर्म है।

आठवाँ धर्म उत्तम त्याग है। त्याग दानको कहते हैं। वह दान चार प्रकार है—आहार, औषध, उपकरण और वसतिकाका देना, मुनि आदि पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये। दीन अनाथोंको करुणादान देना चाहिये। समस्त जीवोंको अभयदान देना चाहिये। रोगियोंको औषधदान देना चाहिये। तथा मुनि वा

त्यागियोंको वसतिका मठ आदिका दान देना चाहिये। इसके सिवाय अपने घर आदि समस्त परिग्रहका त्याग कर मुनिव्रत धारण करना भी उत्तम त्याग है।

नौवां धर्म उत्तम आकिञ्चन्य है। दश प्रकारका बाह्य परिग्रह और चौदह प्रकारके अन्तरंग परिग्रह इस प्रकार इन चौबीस प्रकारके परिग्रहका त्याग कर निर्ग्रन्थ अवस्थाका धारण करना सो उत्तम आकिञ्चन्य धर्म है।

दशवां धर्म उत्तम ब्रह्मचर्य है। पांचों अतिचारोंको छोड़कर तथा शीलकी नौ बाड़ और अठारह हजार भेदसहित शीलव्रतको पालन करना, पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करना, आत्मामें लीन रहना सो उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है।

इस प्रकार दश धर्म हैं। इन सबके साथ उत्तम शब्द लगा हुआ है (वह सम्यग्दर्शनके लिये है, ये धर्म सम्यग्दर्शनपूर्वक होनेसे ही उत्तम धर्म कहलाते हैं) मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका इन सबको अच्छी तरह इन धर्मोंको यथायोग्य रीतिसे पालन करना चाहिये।

अब आगे इसके यंत्रकी रचना लिखते हैं—सबसे पहले मध्यमें कर्णिका गोलाकार बनाना चाहिये उसमें सिद्धचक्रका मूल बीज 'ह्रीं' लिखना चाहिये। उसके नीचे ब्रह्म माया बीज सहित प्रथम अंगके नामको आदि लेकर चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। वह मंत्र इस प्रकार है "ॐ ह्रीं उत्तम-क्षमादिदशलाक्षणिकधर्मांगाय नमः" फिर उसके आगे तीन वलय देकर उसके बाहर दश दलका कमल लिखना चाहिये। उन दलोंमें अनुक्रमसे प्रणव शक्ति बीजादि सहित एक-एक अंगको चतुर्थी विभक्तिसहित तथा नमः शब्दसहित लिखना चाहिये। पूर्व दिशासे प्रारम्भ कर बायीं ओरको लिखते जाना चाहिये। वे मन्त्र इस प्रकार हैं। पहले दलमें ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय नमः दूसरेमें ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय नमः तीसरेमें ओं ह्रीं उत्तमआर्जवधर्मांगाय नमः चौथेमें ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय नमः पाँचवेंमें ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय नमः छठेमें ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय नमः सातवेंमें ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय नमः आठवेंमें ओं ह्रीं उत्तमत्याग-धर्मांगाय नमः नौवेंमें ओं ह्रीं उत्तमआकिञ्चन्यधर्मांगाय नमः और दशवेंमें ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्य्यधर्मांगाय नमः लिखना चाहिये। फिर तीन वलय देकर भू-मण्डल आदि पहले लिखे अनुसार लिखना चाहिये और फिर उसका आराधन करना चाहिये। मूलमंत्रसे समुच्चयरूप आह्वान, स्थापन, सन्निधीकरण करना चाहिये फिर पूजा-जप

करना चाहिये। पूजाके मंत्र सब अलग-अलग हैं—जैसे कि यंत्रमें लिखे हैं सो समझ लेना चाहिये। दशलाक्षणिक यंत्र पृष्ठ २२१ (क) में देखो।

१६५—चर्चा एकसौ पैंसठवीं

प्रश्न—रत्नत्रययन्त्रकी विधि तथा उसके अर्चनादिककी विधि क्या है ?

समाधान—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रको रत्नत्रय कहते हैं। उनमेंसे सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं। उपशम, क्षायिक और क्षायोपशमिक। सो इनमेंसे कोई एक सम्यग्दर्शन हो और वह निःशङ्कित आदि आठों अंगों सहित हो, शंकादिक पच्चीस दोषोंसे रहित हो और पाँचों अतिचारोंसे रहित हो। इस प्रकार के सम्यग्दर्शनको प्रथम रत्न कहते हैं। इसी प्रकार कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और विभंगावधिज्ञानसे रहित तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और साक्षात् केवलज्ञान इन पाँचों ज्ञानोंमेंसे किसी एक ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं और हिंसादि समस्त पापोंका त्याग कर देना सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार इन तीनोंका सामान्य स्वरूप है। इनका विशेष स्वरूप अन्य शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

इनमेंसे सम्यग्दर्शनके आठ अंग हैं, सम्यग्ज्ञानके आठ अंग हैं और सम्यक्चारित्र तेरह प्रकार है। ये तीनों ही रत्न इस संसारमें जीवोंका उद्धार करनेके लिये चिंतामणि रत्नके समान हैं। इनके बिना संसारी जीवोंको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती। ये तीनों ही रत्न मिलकर मोक्षके मार्ग होते हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" इसलिए भव्य जीवोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिए इनको स्वीकार करना चाहिये तथा इनकी प्राप्तिके लिए इनका यंत्र बनाकर उसका अभिषेक, पूजन, जप आदि करना चाहिये और व्रतोपवास आदिके द्वारा इसकी सेवा आराधना करनी चाहिये।

आगे यंत्र बनानेकी विधि लिखते हैं। सबसे पहले मध्यमें गोलाकार कर्णिका लिखना चाहिये। उसमें सिद्धचक्रका मूलबीज 'ह्रीं' लिखना चाहिये। फिर उसके ऊपर नीचे ब्रह्ममाया बीजसहित रत्नत्रयको चतुर्थी विभक्ति सहित नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। वह मंत्र यह है 'ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः' फिर उसके बाद तीन वलय देकर आठ दलका कमल लिखना चाहिये। उनमेंसे सम्यग्दर्शनके आठों अंगोंमेंसे प्रत्येक अंगको अक्षरमणि और शक्तिबीज कर सहित चतुर्थी विभक्ति सहित नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये।

यथा—पहले दलमें 'ॐ ह्रीं निःशंकितांगाय नमः' दूसरेमें "ॐ ह्रीं निःकांक्षितांगाय नमः" तीसरेमें 'ॐ ह्रीं निर्विचिकित्सांगाय नमः' चौथेमें 'ॐ ह्रीं अमूढदृष्टयांगाय नमः' पांचवेंमें 'ॐ ह्रीं उपगूहनांगाय नमः' छठेमें 'ॐ ह्रीं स्थितिकरणांगाय नमः' सातवेंमें 'ॐ ह्रीं वात्सल्यांगाय नमः' आठवेंमें 'ॐ ह्रीं प्रभावनांगाय नमः' लिखना चाहिये। इस प्रकार आठों दल पूर्ण कर देने चाहिये।

फिर वलय देकर आठ दलका कमल बनाना चाहिये। उनमें वेद माया बीजपूर्वक सम्यग्ज्ञानके आठों अंगोंको चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ अलग-अलग लिखना चाहिये। यथा—पहले दलमें 'ॐ ह्रीं व्यंजनव्यंजिताय नमः' दूसरेमें 'ॐ ह्रीं अर्थसमग्राय नमः' तीसरेमें 'ॐ ह्रीं तदुभयसमग्राय नमः' चौथेमें 'ॐ ह्रीं कालाध्ययन पवित्राय नमः' पांचवेंमें 'ॐ ह्रीं उपधानोपहिताय नमः' छठेमें 'ॐ ह्रीं विनयलब्धिप्रभावाय नमः' सातवेंमें 'ॐ ह्रीं गुर्वाद्यनिन्हवसमृद्धाय नमः' आठवेंमें 'ॐ ह्रीं आवाननिमुद्रिताय नमः' लिखना चाहिये। इस प्रकार दूसरा कमल भी भर देना चाहिये।

तदनन्तर वलय देकर तेरह दलका कमल बनाना चाहिये। उसमें तार और मायाबीजपूर्वक चारित्रके तेरह अंगोंको अलग चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। यथा—पहले दलमें 'ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रताय नमः' दूसरेमें 'ॐ ह्रीं सत्याणुमहाव्रताय नमः' तीसरेमें 'ॐ ह्रीं अचौर्यमहाव्रताय नमः' चौथेमें 'ॐ ह्रीं ब्रह्मचर्यमहाव्रताय नमः' पांचवेंमें 'ॐ ह्रीं परिग्रहत्यागमहाव्रताय नमः' छठेमें 'ॐ ह्रीं ईर्यासमितये नमः' सातवेंमें 'ओं ह्रीं भाषासमितये नमः' आठवेंमें 'ओं ह्रीं एषणासमितये नमः' नौवेंमें 'ओं ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितये नमः' दशवेंमें 'ओं ह्रीं प्रतिष्ठापनसमितये नमः' ग्यारहवेंमें 'ओं ह्रीं मनोगुप्तये नमः' बारहवेंमें 'ओं ह्रीं वचोगुप्तये नमः' तेरहवेंमें 'ओं ह्रीं कायगुप्तये नमः' लिखना चाहिये। इस प्रकार लिखकर सब कमल पूर्ण कर देना चाहिये। फिर तीन वलय देकर भूमंडल लिखना चाहिये। इस प्रकार यन्त्र बनाकर आराधन पूजा, जप आदि करना चाहिये। रत्नत्रयचक्र-यंत्र पृष्ठ २२३ (क) में देखो।

इनके सिवाय और भी अनेक यन्त्र हैं सो भगवदेकसंधिकृत जिनसंहिता, पूजासार, जिनयज्ञकल्प, विद्यानुवाद, णमोकार कल्प, वसुनन्दिकृत प्रतिष्ठापाठ, त्रिवर्णाचार, शान्तिचक्र और रत्नाकर आदि शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। यहाँ हमने थोड़ीसी आम्नाय बतलानेके लिये ऊपर लिखे शास्त्रोंसे थोड़ासा लिखा है।

१६६-चर्चा एकसौ छ्यासठवीं

प्रश्न—पहलेकी पूजा और यन्त्रोंमें ओंकार और ह्रींकार सब जगह मुख्य रीतिसे लिखा है सो इन दोनोंका स्वरूप क्या है। तथा इनमें परमेष्ठी हैं और कौनसे देव हैं। जिससे कि इनका उच्चारण सबसे पहले किया जाता है तथा अन्य पाठ पीछे पढ़े जाते हैं। यह यन्त्र सबसे मुख्य है। इसका क्या कारण है ?

समाधान—सबसे मुख्य मन्त्र ओंकार है। व्याकरणके अनुसार ओं शब्दका अर्थ अंगीकार, स्वीकार अथवा ग्रहण करना है। सो लिखा है "ओमित्यंगीकरणे" अर्थात् ओं शब्दका अर्थ अंगीकार वा स्वीकार करना है। इसीलिये समस्त कार्योंके प्रारम्भमें इस धातुका उच्चारण सबसे पहले किया जाता है। भावार्थ—पूजा, ध्यान, जप आदि समस्त कार्योंके प्रारम्भमें ओं शब्द रखना चाहिये ऐसा आचार्योंका मत है। यह ओंकार समस्त अक्षरोंमें मुख्य है तथा अक्षरोंमें मणियोंके समान सर्वश्रेष्ठ है। यह दूसरोंके द्वारा हराया नहीं जा सकता इसीलिए इसकी अनाहत संज्ञा है। तथा यह नमस्कार रूप है इसीलिए इसकी प्रणव संज्ञा है इसी कारण इसको सबसे पहले रखते हैं। इसको भवत बीज भी कहते हैं अतएव कार्यके प्रारम्भमें अपने इष्ट देवकी भक्तिके लिए तथा अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इसको सबसे पहले लिखते हैं। इसी ओं को ब्रह्म संज्ञा है। ब्रह्म-आत्माको कहते हैं, आत्माके समान यह मुख्य है इसीलिये इसको प्रथम उच्चारण करते हैं। यह ओंकार समस्त कामनाओंसे अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी कामना रूपी जालसे पार कर देता है इसीलिये इसकी तारक संज्ञा है। भावार्थ—इस मन्त्रसे सब कार्योंकी सिद्धि होती है और संसारसे पार हो जाता है। इसी ओं को वेद कहते हैं। यह ओं शब्द समस्त अक्षरोंका द्वादशांगका मूल वा प्रथम अक्षर है और सबको जानता है, इसीलिये इसको वेद कहते हैं। यह वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातुसे बना है। यह सबको जानता है इसीलिये इसको सबसे पहले उच्चारण करते हैं।

अन्य धर्मवाले भी ओं शब्दको मानते हैं अपने इष्ट देवकी स्थापना कर इसकी पूजा करते हैं। इस ओं शब्दमें अन्य धर्मवाले किस-किस इष्ट देवकी कल्पना करते हैं वही आगे दिखलाते हैं। विष्णु, ब्रह्मा, महेश इन तीनों देवताओंके स्वरूपसे ओंकार बनता है ऐसा वे लोग कहते हैं। इसको वे इस प्रकार सिद्ध करते हैं। अ आ उ म इन चार अक्षरोंसे ओंकार बनता है। इनमेंसे अकार अक्षर तो विष्णुमयी है। आकार अक्षर ब्रह्म-

मयी है उकाराक्षर महेशमयी है तथा मकार ब्रह्म संज्ञक अर्थात् वेदमयी है। इन चारों अक्षरोंका व्याकरणके नियमानुसार ओं बन जाता है और वह इस प्रकार बनता है। "समानः सवर्णे दीर्घः परश्च लोपम्" अर्थात् सवर्णी अक्षर परे रहते समान अक्षरको दीर्घ हो जाता है और परका लोप हो जाता है। इस सूत्रके अनुसार आ के परे रहते अ को दीर्घ आ हो जाता है और पहले आ का लोप हो जाता है। तदनन्तर उ है। उवर्णे ओ, इस सूत्रसे अवर्णको ओ हो जाता और पर उ का लोप हो जाता है। इस प्रकार अ आ उ इन तीनों अक्षरोंका ओ बन जाता है। इन अक्षरोंके आगे चौथा अक्षर म् है ही। उसके मिलानेसे 'ओम्' बन जाता है यह मकार ब्रह्म संज्ञक है और 'मोनुस्वारः' इस सूत्रसे मकारको अनुस्वार हो जाता है तथा वह ओ के ऊपर लग जाता है। इसके लिये 'सूचीसूत्रन्यायेन अनुस्वारस्य सह गमनं भवति' इस पंक्तिसे अनुस्वार ऊपर लग जाता है और ओं शब्द बन जाता है।

कदाचित् यहाँपर कोई यह पूछे कि यहाँपर अकारके आगे आकार है सो आकारका ग्रहण कैसे संभव हो सकता है। उसके लिये कहते हैं कि अवर्णके कहनेसे अकार आकार दोनोंका ग्रहण हो जाता है। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। इसीलिये अकार आकार दोनोंका ही ग्रहण किया है। सो ही 'विश्वैकाक्षरी वर्णकोष' में लिखा है।

अकाराकारको भेदो नास्तीत्यत्र विदूरिकौ।

इसीको मनुमूर्तिस्वरूपाचार्यने सारस्वतमें लिखा है 'वर्णग्रहणे सवर्णग्रहणं कारग्रहणे केवलग्रहणम्' अर्थात् वर्णके ग्रहणसे सवर्णका ग्रहण होता है और कारके ग्रहणसे केवल उसी अक्षरका ग्रहण होता है। यहाँ-पर कारका ग्रहण नहीं है वर्णका ग्रहण है। इसलिए अकेला अ न लेकर अ आ दोनोंका ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार अन्य मतवाले भी ओंकारमें अपने इष्टदेवकी कल्पना करते हैं और उसको पूजते हैं। एकाक्षरी कोषमें लिखा है—

अकारो विष्णुनामास्यादाकारः परमेष्ठिकः। उकारः शंकरः प्रोक्तो मकारो ब्रह्मसंज्ञकः॥१॥
ओंकारस्तु त्रिभिर्देवैर्युक्तो ब्रह्मपदः स्मृतः। स एव वेदसंज्ञः स्यात्कथितोयं मनीषिभिः॥२॥

जैनधर्मके अनुसार ओं में पाँचों परमेष्ठी गर्भित हैं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये पाँच

परमेष्ठी हैं। इसलिये इन पाँचों परमेष्ठियोंके प्रथम अक्षर अ सि आ उ सा होते हैं। व्याकरणके नियमानुसार इन पाँचों अक्षरोंके मिलानेसे 'ओम्' बन जाता है। उसका प्रकार यह है। अरहंत परमेष्ठीका प्रथम अक्षर अ लेना चाहिये। सिद्ध परमेष्ठी शरीररहित वा अशरीर हैं इसलिये उनका भी प्रथम अक्षर अ लेना चाहिये। आचार्य-परमेष्ठीका प्रथम अक्षर आ लेना चाहिये। उपाध्यायका प्रथम अक्षर उ लेना चाहिये तथा साधु मुनिको कहते हैं इसलिये साधु वा मुनिका अक्षर म् लेना चाहिये। इस प्रकार पंचपरमेष्ठीके प्रथम अक्षर अ अ आ उ म् ग्रहण करने चाहिये। इन्हींको मिलानेसे 'ओं' बन जाता है सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें लिखा है—

अरहंता असरीरा तह आइरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी॥

अर्थात् अरहन्त अशरीर (सिद्ध) आचार्य, उपाध्याय और मुनि इनके प्रथमाक्षरोंसे ओंकार बनता है और इसीलिये वह पंचपरमेष्ठीका वाचक है।

आगे व्याकरणके अनुसार इसकी सिद्धि लिखते हैं—

"समानः सवर्णे दीर्घो भवति परश्च लोपम्"

अर्थात् सवर्णके परे रहते सवर्णको दीर्घ हो जाता है और परका लोप हो जाता है। इस सूत्रसे 'अअ' इन दोनों अक्षरोंमेंसे पहला अकार दीर्घ[1] आ हो जाता है और दूसरे अ का लोप हो जाता है। फिर आ और आचार्यका आ इन दोनों अक्षरोंमें पहला आ दीर्घ होता है और परका लोप हो जाता है। यहाँपर पहला आकार पहलेसे ही दीर्घ है इसलिये दीर्घको फिर दीर्घ नहीं होता। सो ही लिखा है—

"मृतकस्य मृतिर्नास्ति तथा दीर्घस्य दीर्घता नास्ति"

और भी लिखा है—

अदीर्घो दीर्घतां याति नास्ति दीर्घस्य दीर्घता। पूर्वं दीर्घं स्वरं दृष्ट्वा परलोपो विधीयते॥

१. 'एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।' अर्थात् एक मात्रावालेको ह्रस्व औ मात्रावालेको दीर्घ कहते हैं।

अर्थात् मृत मनुष्यको फिर मृत्यु नहीं होती इसी प्रकार दीर्घको दीर्घ नहीं होता। तथा—ह्रस्वको दीर्घ हो जाता है परन्तु दीर्घको दीर्घ नहीं होता। जहाँपर पहला स्वर दीर्घ होता है वहाँपर केवल परका लोप हो जाता है। इस सूत्रके न्यायसे आगेके दूसरे आकारका लोप हो जाता है। इसलिये आ के आगेके आ का लोप हो जाता है और अकेला आ रह जाता है। फिर उसके आगे उपाध्यायका उ आता है। सो 'उवर्णे ओ' इस सूत्रसे आ को ओ हो जाता है और उ का लोप हो जाता है। फिर मुनिका मकार आता है उसका 'मोनुस्वारः' मकारको अनुस्वार हो जाता है इस सूत्रसे मकारको अनुस्वार हो जाता है। तथा सूचीसूत्र न्यायसे वह अनुस्वार ओके ऊपर चढ़ जाता है और 'ओं' ऐसा शब्द सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार इस ओंकार शब्दमें पाँचों परमेष्ठी विराजमान रहते हैं। इसीलिये यह ओंकार शब्द सबमें मुख्य माना जाता है और सबसे पहले उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी शुभचन्द्र कृत संस्कृत टीकामें सिद्ध किया है।

प्रश्न—यहाँपर ओंकार तो सिद्ध हो गया परन्तु उसके मस्तक पर अनुस्वार होना चाहिये उसके मस्तकपर अर्द्धचन्द्राकार कला किस प्रकार है? पहले जो व्याकरणसे सिद्ध किया है उसमें भी अनुस्वार ही सिद्ध होता है। अर्द्ध चन्द्राकार कला सिद्ध नहीं होती?

उत्तर—यह ठीक है कि मकारका अनुस्वार ही होता है परन्तु छन्दः अथवा वेदमें अनुस्वारको अर्द्ध चन्द्राकार कला भी हो जाती है। अतएव अनुस्वार तो व्याकरणके अनुसार सिद्ध कर लेना चाहिये और फिर अनुस्वारको वेदके अनुस्वार अर्द्धचन्द्राकार कला बना लेना चाहिये।

कदाचित् यहाँपर कोई यह पूछे कि वेद क्या है तो इसका उत्तर यह है कि यह ओंकार ही स्वयं साक्षात् वेदस्वरूप है। 'छंदसि अनुस्वारः 'अर्द्धचन्द्रकलामापद्यते' वेदमें अनुस्वार अर्धचन्द्राकार हो जाता है' इस सूत्रके अनुस्वार अर्द्धचन्द्राकार हो जाता है। ऐसा समझ लेना चाहिये।

यह ओंकार पुरुष है इसीलिये सब कार्योंमें पहले लिखा जाता है। सो ही लिखा है। 'ओंकारः पुरुषो ज्ञेयः' अर्थात् ओंकारको पुरुष समझना चाहिये। ऐसा गायत्रीकी टीकामें लिखा है। इसीको पहले उच्चारण कर पीछे और कार्य करते हैं जिससे उन अन्य सब कार्योंकी सिद्धि हो जाय। यह ओंकार परमब्रह्मका स्वरूप है। बड़े-बड़े योगीश्वर नित्य इसका ध्यान करते हैं तथा यह ओंकार काम और मोक्षका देनेवाला है। सो ही लिखा है—

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥

अर्थात् "यह ओंकार बिन्दु सहित है योगी लोग सदा इसका ध्यान करते हैं, यह इच्छानुसार फल देने-वाला तथा मोक्ष देने वाला है ऐसे ओंकारको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । इसीलिये इस ओंकारको सबसे पहले उच्चारण करते हैं ।

अन्य मतवाले ओंकारका रूप बावन अक्षरोंसे भी बनाते हैं । यथा--

अकारादि अः कारान्तं स्वरा षोडशसंज्ञका । ककारादिमकारान्ताः स्पर्शाश्च पंचविंशतिः ॥
यकारादिक्षकारान्तं दशानुस्वार एव च । ओंकारं मातृकायुक्तं तद् द्विपंचाशदक्षरम् ॥
वेदशास्त्रपुराणानि मंत्रयंत्राणि यद्विदुः । तत्सर्वं मातृकामध्ये मातृकायाः परं न हि ॥
मातृका च परो मंत्रो मूलमंत्रश्च मातृका । तस्माच्च योगिनो नित्यं ओंकारमात्रजापिनः ॥

इस प्रकार इसका स्वरूप है ।

इसके सिवाय मन्त्रशास्त्रके मतसे अन्य प्रकारसे भी यह ओं शब्द बावन अक्षरोंकी बनी हुई मातृकासे बनता है । उसका क्रम इस प्रकार है । ककारसे लेकर क्षपर्यन्त सब अक्षर तथा अकारादिक सोलह मात्राएं ये सब मिलकर बावन वर्ण मातृका कहलाते हैं । सो सब एक ओंकारकी ही कलायें हैं । भावार्थ--सब वर्ण एक ओंकारसे ही उत्पन्न हुए हैं । ऐसा अन्य मतमें लिखा है । इसका भी विशेष स्वरूप इस प्रकार है ।

'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ' एता कचवर्गकलाः अकारजाः । ट ठ ड ढ ण त थ द ध न एता अष्ट टतवर्ग कलाः उकारजाः । प फ ब भ म य र ल व श एताः पयवर्ग-

अकारादिक १६ स्वर, ककारसे लेकर मकार तक २५ स्पर्श, यकारसे लेकर क्षकार तक (य र ल व श ष स ह ळ क्ष) ये दश तथा एक अनुस्वार ऐसे बावन अक्षरमय ओंकार है ये बावन अक्षर मातृका कहलाते हैं इनसे ही सब शास्त्र उत्पन्न होते हैं इसलिये इनको मातृका कहते हैं इन्हीं अक्षरोंसे ओंकार बना है । वेद, पुराण, यन्त्र, मन्त्र आदि सब मातृका में ही गर्भित हैं मातृकासे बाहर कुछ नहीं है । मातृका ही परम मन्त्र है मातृका ही मूलमन्त्र है इसलिये योगी लोग ओंकार मात्रका ही जाप करते हैं हिन्दीके सिवाय मराठी आदि भाषाओंमें ळ क्ष ये दो अक्षर और अधिक माने हैं ।

कलाः मकारजाः। ष स ह ळ एता षवर्गकलाः विन्दुजाः। क्ष एषा कला अव्यक्तजा। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः एता अवर्गकलाः नादजाः इति प्रणवोत्थ-कलाः।

अर्थात् क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ये तो सब कलायें अकारसे उत्पन्न हुई हैं सो इन सबका अ लेना चाहिये। तथा ट ठ ड ढ ण त थ द ध न ये सब कलाएँ उकारसे उत्पन्न हुई हैं सो इन सबका एक उ लेना चाहिये। प फ ब भ म य र ल व श ये सब कलाएँ मकारसे उत्पन्न हुई हैं इसलिये इन सबका मकार लेना चाहिये। ष स ह ळ ये सब बिन्दुसे उत्पन्न हुई हैं सो इनका बिन्दु लेना चाहिये। क्ष अव्यक्तकलासे उत्पन्न हुआ है तथा अ आ इ ई उ ऊ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ये सोलह कलाएँ नादसे उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार इन सब कलाओंका एक नाद शब्द ब्रह्ममय ओं बनता है।

यहाँपर थोड़ासा नादका स्वरूप (अन्य मतके अनुसार) लिखते हैं—

एकबार शिव अर्थात् महादेवने कैलाश पर्वत पर अपना डमरू बजाया था उसमेंसे चौदह सूत्र निकले थे जो 'अ इ उ ण्' 'ऋ ऌक्' ए, ओङ्, ऐ औ, हयवरट् लण, यमङ्णनम्, झ भ ञ घढधष्, ज ब ग ड द श्, खफ छ ठ थ च ट त ब्, क प य्, श ष स र हल् नामसे कहलाते हैं इन्हींसे सब अक्षर बने हैं सो ही लिखा है।

नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पंच वारान्।

ऐसा पाणिनीयमें लिखा है। इन सब अक्षरमय अ उ म् इनको पहलेके अनुसार उवर्णे ओ। मोनुस्वारः और छंदसि इन सूत्रोंसे सिद्ध करनेपर ॐ बन जाता है। इन सूत्रोंकी और साधनिका पहले लिख चुके हैं। इस प्रकार सब अक्षरोंसे ॐ बनता है इसलिये सबसे पहले उच्चारण किया जाता है।

इस एक ही अक्षरके 'ॐ' मंत्रको 'ॐ नमः' इस प्रकार नमस्काररूप योगी लोग सदा ध्यान करते हैं। इसका विशेष वर्णन ज्ञानार्णवसे समझ लेना चाहिये। इस ॐ की महिमा अगम अपार है। ऐसा यह ओंकार है।

इसको अन्यमती भी अपने-अपने इष्ट देव रूप मान कर ध्यान करते हैं। शैव तो इसको शिवरूप

मानते हैं, ब्रह्मवादी परब्रह्मरूप मानते हैं । वैष्णव विष्णुरूप मानते हैं और वेदवाले साक्षात् वेदरूप मानते हैं । इस प्रकार कितने ही प्रकारसे अपने-अपने इष्ट देवको मानते हैं । तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों रूप भी इसको मान कर ध्यान करते हैं, ऐसा जानना ।

आगे ह्रीं का स्वरूप लिखते हैं यह ह्रींकार ह र ई और बिंदु इनसे मिलकर बना है । सो यहाँ भी छंदसि इस सूत्रसे अनुस्वारको अर्द्धचन्द्राकार बना लेना चाहिये । ओंकार तो वेद है सो पुरुष है और यह ह्रीं मायाबीज है सो वेदमाता है तथा गायत्रीरूप है सो स्त्रीरूप वेदमयी है । सो ही लिखा है—

ओंकारः पुरुषो ज्ञेयः गायत्री स्त्री च कथ्यते ।

इस प्रकार गायत्री टीकामें लिखा है । इस न्यायसे यह भी वेद ही है ।

इस ह्रींकारमें हकार तो पार्श्वनाथसंबंधी है नीचेका रकार धरणेन्द्र संबंधी है और ईकार स्वर और बिंदु पद्मावती संबंधी है । इस प्रकार तीनों देवोंका निवास इस मायाबीज ह्रींकारमें प्राप्त होता है । सो ही उभयभाषाकविशेखर श्रीमल्लिषेण सूरि विरचित पद्मावतीकल्पके तीसरे परिच्छेदमें लिखा है—

सान्तः पार्श्वजिनेन्द्रस्तदधोरेफः स धरणेन्द्रः ।
तुर्यस्वरः सविन्दुः स भवेत्पद्मावतीसंज्ञः ॥ ३७ ॥

जो पुरुष इस मायाबीज ह्रींकारको ओंकारपूर्वक नमस्कारमय एकाक्षरी विद्यामय 'ॐ ह्रीं नमः' इस मंत्रको जपते हैं वे मनोवांछित फल पाते हैं इसके सिवाय यह मंत्र तीनों लोकोंके जीवोंको मोहित करनेवाला है । सो ही पद्मावतीकल्पमें लिखा है—

त्रिभुवनजनमोहकरी विद्याप्रणवपूर्विका एषा ।
एकाक्षरीति संज्ञा जपतः फलदायिनी नित्यम् ॥

यही कथन सोमसेनकृत त्रिवर्णाचारमें लिखा है तथा ज्ञानार्णव, जिनसंहिता, पूजासार, जिनयज्ञकल्प, जिनप्रतिष्ठापाठ, शांतिचक्र, त्रिवर्णाचार, महाभिषेक आदि शास्त्रोंमें ह्रींका अर्थ इस प्रकार लिखा है—'ह्रां' यह बीज तो श्री अरहंतका वाचक है । 'ह्रीं' यह बीज सिद्धपरमेष्ठीका वाचक है । 'ह्रूं' यह बीज आचार्यका

वाचक है। 'ह्रौं' यह बीज उपाध्यायका वाचक है और 'ह्रः' यह बीज सर्व साधुका वाचक है। इस प्रकार ये पांचों बीजाक्षर पंच परमेष्ठी वाचक हैं। इनमें ह्रींकार सिद्धपरमेष्ठीका वाचक बतलाया है। इसीलिये ओंकारके पीछे ह्रींकार लिखा है। सो ही लिखा है—

'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः' तथा 'ॐ ह्रां णमो अरहंताणं' 'ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं' 'ओं ह्रूं णमो आइरियाणं' 'ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं' 'ॐ ह्रः णमो लोए सव्व साहूणं' इन मन्त्रोंमें ह्रीं शब्द सिद्धवाचक लिखा है।

यह ह्रींकार वर्ण हकारादिक अक्षरोंसे बना है। सो इसका नामोच्चारण करनेमें भी कोशके अनुसार देवपना सिद्ध होता है और वह इस प्रकार होता है। मातृका निघंटु शास्त्र, मन्त्रशास्त्र आदिमें हकारको व्योम-बीज वा आकाशबीज संज्ञा लिखी है। उसके नीचे जो रकार है उसको अग्निसंज्ञा बतलाई है। तथा चौथा स्वर जो ईकार है उसको देवोंका ईश्वर संज्ञक बीज बतलाया है। और अनुस्वारको आकाश रूप कहा है। सो ऐसी शक्तिरूपी रकार सब देवोंका ईश्वररूपी ईकार और आकाशरूपी बिंदुकी यह शक्ति है। ह्रीं इस बीजाक्षरमें बड़ा ही देवपना है, यही सिद्धचक्रका मूल बीजाक्षर है। 'ह्रूं' इसमें ह्रीं ऐसा पाठ नहीं है तो भी रेफ आदि अक्षरोंसे एक ही समझना चाहिये। व्याकरणमें लिखा है। 'छिन्नकर्णः लांगूलः न श्वा' जिसके कान कट गये हैं ऐसा लंगूर कुत्ता नहीं हो सकता किंतु लंगूर ही रहता है। अथवा 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' जिसका एक देश विकृत हो जाता है वह अन्य नहीं हो जाता किंतु वही रहता है। इस न्यायसे 'ह्रीं' तथा 'ह्रं' दोनोंमें कुछ भेद नहीं है। लिखा भी है 'उर्ध्वाधोरयुतं सबिंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्ठितम्'। इसका विशेष वर्णन ज्ञानार्णव आदि शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

हकार अक्षरका अर्थ व्याकरणके अनुसार हिंसा भी होता है। तथा रकार अक्षर दुष्टके संबोधनके अर्थमें आता है। यहाँ पर दुष्ट आठ कर्म हैं उनको जो हरण करे वह ह है। ऐसा सब देवोंका स्वामी वा प्रभु होता है। तथा यह अर्थ ईश्वरवाचक ईकारके साथ लेना चाहिए। इस प्रकार ह्रीं शब्द बन जाता है। जो कर्मोंको जीतकर देवाधिदेव रूप हों तथा व्योम जो आकाश तत्त्व बिन्दुकर सहित हों ऐसे लोकाग्रनिवासी सिद्ध परमेष्ठी ह्रीं के वाच्य होते हैं अर्थात् इस प्रकार सिद्धपरमेष्ठीका वाचक ह्रीं शब्द सिद्ध होता है।

इस ह्रींकारसे आकर्षण, स्तंभन, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, विद्वेषण आदि समस्त कामनाएँ जुदे-जुदे प्रयोगोंसे सिद्ध होती हैं सो इसका विशेष वर्णन मायाबीज नामके कल्पमें लिखा है। इसीलिये इसको मायाबीज कहते हैं अथवा शक्तिबीज कहते हैं।

मन्त्रोंमें ब्रह्मस्वरूप ओंकार तथा मायास्वरूप ह्रींकार इस प्रकार ब्रह्ममाया दोनों स्वरूप 'ॐ ह्रीं' ऐसा मिला हुआ मन्त्र लेना चाहिये। इस प्रकार यहाँपर मायाबीजका थोड़ासा अर्थ लिखा है।

इस ओंकार और ह्रींकार विशेष स्वरूप जैनमतके मन्त्रशास्त्र विद्यानुवाद पूर्व, णमोकार कल्प तथा बृहत्पद्मावती कल्पसे जान लेना चाहिये। यहाँ हमने अपने बुद्धिके अनुसार लिखा है।

अर्हं शब्दका सामान्य अर्थ तो सब जानते ही हैं तथा विशेष अर्थ आगे कहेंगे। पहले जो और और बीजाक्षर बतलाये हैं उनका नाम इस प्रकार है। 'ॐ' प्रणवबीज है। 'ह्रीं' मायाबीज है। 'श्रीं' लक्ष्मीबीज है। 'क्लीं' 'ऐं' कामबीज है। ऐ विद्याबीज है। 'अर्हं' परमेष्ठीबीज है। 'हं' व्योमबीज है। 'क्ष्वीं' क्षितिबीज है। 'स्वीं' अमृतबीज है। 'पं' और 'पः' जलबीज है। 'स्वा' वायुबीज है। 'द्रां द्रीं' बाणबीज है। इस प्रकार समझ लेना चाहिये।

१६७–चर्चा एकसौ सड़सठवीं

प्रश्न—पहलेके देवदर्शन करनेके श्लोकमें पुनरुक्त पाठ लिखा है यथा—

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्। दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्॥

ऐसा पाठ है सो अशुद्ध मालूम होता है क्योंकि इसमें पुनरुक्त दोष प्रत्यक्ष दिखाई देता है। 'देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्' ऐसा पाठ पढ़ना ही निर्दोष है। यदि ऐसा पाठ माना जाय तो इसमें अक्षर कम होनेसे छंदोभंग होता है। 'दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्' इसमें पहला दर्शन शब्द व्यर्थ जान पड़ता है। बिना प्रयोजनके तथा बिना संबोधन आदि अन्य प्रयोजनके एक ही पाठको दुबारा कहना किस प्रकार ठीक हो सकता है। इससे मालूम होता है कि यह जिनदर्शनका श्लोक किसी छोटेसे पण्डितका बनाया हुआ है।

समाधान—ये श्लोक किसी छोटे पंडितके बनाये हुए नहीं हैं किन्तु किसी बड़े विद्वान्के बनाये हुए हैं। केवल न जाननेवालोंको पुनरुक्त दोष मालूम पड़ता है। परन्तु वास्तवमें यहाँ पुनरुक्त दोष नहीं है। देखो

'दर्शनंवैव' इन शब्दका पदच्छेद 'दर्शनंवा इव' करना चाहिये। दर्श शब्दका अर्थ कृष्णपक्षकी अमावस्या है। सो ही लिखा है। 'अमावस्या स्वमावस्या दर्शः सूर्येन्द्रसंगमः' अर्थात् अमावस्या अमावस्य दर्श ये उस दिनके नाम हैं जहाँ सूर्य चन्द्रमाका समागम होता है अर्थात् कृष्णपक्षकी अमावसके हैं। तथा नन्दा शब्दका अर्थ एकादशी है। सो ही लिखा है 'प्रतिपत्षष्ठी एकादशी नन्दा इति बालबोधपंचांगे पाठः' अर्थात् पडवा, षष्ठी, एकादशीको नंदा कहते हैं ऐसा बालबोध पंचांगमें लिखा है।

वैष्णवमतमें और लौकिक शास्त्रमें ऐसा कहा है कि अमावस्या और एकादशी ये दोनों पुण्यतिथि हैं इनमें दान, व्रत, उपवास आदि करनेसे महान् पापोंका नाश होताहै। ये पर्व बहुतसे पापोंके नाश करनेवाले हैं। इसीलिये इनको पुण्यवर्ती कहते हैं। जिस प्रकार अमावस्या और एकादशीके पर्व बहुतसे पापोंके नाश करनेवाले हैं उसी प्रकार देव अर्थात् वीतराग परम देवके दर्शन करना भी बहुतसे पापोंका नाश करनेवाला है। भावार्थ—यहाँपर केवल लौकिक दृष्टांत दिखलाया है। वास्तवमें देखा जाय तो वीतराग परमदेवका दर्शन करना अमावस्या और एकादशीके समान नहीं है किन्तु इससे अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं सो लिखा ही है 'नैकजन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति' इससे सिद्ध होता है कि वीतराग परमदेवके दर्शन करना सर्वोत्कृष्ट है। अमावस्या और एकादशी तो उसके सामने कुछ भी नहीं है।[1]

'दर्श नंदा इव' इस कच्चे रूपका पक्का रूप व्याकरणके नियमानुसार 'दर्शनंवैव' बन जाता है। नंदा इव इसकी संधि करनेसे 'अवर्णे इवर्णे ए' अर्थात् 'इवर्ण परे रहते अवर्णको ए हो जाता है तथा परका लोप हो जाता है' इस सूत्रसे दा के आकारको ए हो जाता है और इव के इकारका लोप हो जाता है। इस प्रकार दर्शनंदेव ऐसा बन जाता है। इससे सिद्ध होता है कि ये श्लोक किसी साधारण विद्वान्के बनाये हुये नहीं हैं किन्तु किसी बड़े विद्वान्के बनाये हुये हैं और इसमें पुनरुक्त आदि कोई दोष नहीं है। निर्दोष पाठ है।

---

१. ग्रन्थकारने यह परमतका उदाहरण दिखला कर समाधान किया है परन्तु इसका समाधान इस प्रकार भी होता है। 'दर्शनं देवदेवस्य' अर्थात् दर्शन देवाधिदेव अरहंतदेवका ही करना चाहिये, अन्यका नहीं। (अरहंतदेवके कहनेसे आर्हंता दीक्षा धारण करनेवाले आचार्य, उपाध्याय, साधु भी उसीमें आ जाते हैं) 'दर्शनं पापनाशनं' वह दर्शन अर्थात् अरहंतदेवका दर्शन करना पापोंका नाश करनेवाला है। 'दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्' वही दर्शन स्वर्गकी सीढ़ी है और मोक्षका कारण है। इस प्रकार इसका अर्थ समझना चाहिये।

१६८–चर्चा एकसौ अड़सठवीं

पहले पूजाके प्रकरणमें लिखा है कि पूजा करनेवालेको भगवानके चरणस्पर्शित पुष्पमाला तो कण्ठमें धारण करना चाहिये, प्रभुके चरणस्पर्शित चन्दनका तिलक लगाना चाहिये वा समस्त शरीरमें आभूषणोंकी रचना करनी चाहिये तथा जिनपादचंदनके बदले ललाटमें लगाना चाहिये, ऐसा लिखा है। सो यह लिखना अत्यन्त विपरीत है क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष निर्माल्यका दोष आता है। तथा जैनशास्त्रोंमें निर्माल्यके समान और कोई पाप नहीं बतलाया है। इसलिये ऐसा कहना अथवा करना महा पापकारी है। ऐसा श्रद्धान जैनियोंका नहीं हो सकता अन्य मतियोंका हो सकता है।

प्रश्न–भगवानकी मूर्तिके चरणादिकमें चंदन, केसर आदि गंध लगाना तथा भगवानके चरणस्पर्शित पुष्प और पुष्पमाला पहनना आदि समस्त श्रद्धान विपरीत है। इसमें महा पापका बंध होता है। इसलिये ऐसा श्रद्धान त्याग करने योग्य है। ऐसा श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरण कभी योग्य नहीं गिना जा सकता। ऐसा ज्ञान श्रद्धान बड़े-बड़े अनर्थोंका मूल है इसलिये ऐसा कथन न हमें मान्य है और न हम ऐसा करनेको तैयार हैं।

समाधान––बिना शास्त्रोंको समझे और बिना निश्चय किये ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। भगवानके चरणस्पर्शित पुष्पमालाकी महिमा क्या है और अपने मस्तक पर तथा कंठमें किसने धारण की है उसका थोड़ासा कथन यहाँपर लिखते हैं––

भव्य जीवोंको सबसे पहले जल, गंध, अक्षत, पुष्पादिकसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये फिर भगवानके चरणस्पर्शित पुष्पमालाको अपने कंठमें धारण करना चाहिये तथा चरणस्पर्शित शेषगंधका ललाटमें तिलक लगाना चाहिए। ऐसा वर्णन त्रिवर्णाचारमें लिखा है। यथा––

जिनांघ्रिस्पर्शितां मालां निर्मले कंठदेशके। ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च॥

यहाँपर जो चकार है उसका अर्थ तिलकपर पूजाके अक्षत लगाना समझना चाहिए। यदि इस कथनको कोई न माने तो जिनप्रतिष्ठापाठमें भी ऐसा ही लिखा है। जिनपदवीकी स्पर्शित पुष्पमाला तीनों लोकोंके ऊपर अनुग्रह करने योग्य है। सो ऐसी यह माला स्वर्गलोककी लक्ष्मी मिलानेके लिए दूतीके समान है। इसलिए

जिनपदस्पर्शित श्रेष्ठ पुष्पमाला भव्यजीवोंको आशिकाके लिए मस्तकपर धारण करनी चाहिए। सो ही प्रतिष्ठा-पाठमें लिखा है--

जिनांघ्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमां। इमां स्वर्गरमां दूतीं धारयामि वरस्रजम्॥

भगवज्जिनसेनाचार्यने भी आदिपुराणके ब्यालीसवें पर्वमें ऐसी मालाके लिए लिखा है। जिस प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए बालक अपने गुरुकी मालाको अपने मस्तकपर धारण करते हैं उसी प्रकार उनको भगवानके चरण स्पर्शित माला भी अपने मस्तकपर धारण करना चाहिए। सो ही आदिपुराणमें लिखा है--

तथाहि कुलपुत्राणां माल्यं गुरुशिरोधृतम्। मान्यमिव जिनेंद्राघ्रिस्पर्शात्माल्यांगभूषितम्॥

जिनयज्ञ कल्पकी वृत्तिमें लिखा है कि श्री जिनेश्वरके चरण स्पर्शित पूजाकी माला महाभिषेकके अंतमें बहुत सा धन देकर लेनी चाहिए। यह माला अनर्घ्य (अमूल्य) है। इसलिए भव्यजीवोंको अवश्य ग्रहण करनी चाहिए। सो ही वृत्तिमें लिखा है—

श्रीजिनेश्वरचरणस्पर्शितानर्घ्यपूजाव्रतां सा माला महाभिषेकावसाने बहुधनेन ग्राह्या भव्यश्रावकेनेति।

इससे भी ऊपरकी बात ही सिद्ध होती है।

श्रीअजितनाथकी माता जयसेनाने पहले कुमार अवस्थामें पर्वका उपवास कर पारणाके दिन भगवानकी पूजा कर तथा उनके पदस्पर्शित पूजाको परम पवित्र पुण्यमाला पापोंका नाश करनेके लिए सभामें आकर अपने पिताको दी थी तथा राजाने बड़ी भक्तिसे अपने दोनों हाथोंसे लेकर अपने मस्तक पर धारण की थी। तदनंतर अपनी पुत्रीको पारणाके लिए विदा किया था। सो ही अजितपुराणमें लिखा है--

जयसेनापि सद्धर्मं तत्रादायैकदा मुदा। पर्वोपवासपरिम्लानतनुरभ्यर्च्य साहृतः॥
तत्पादपंकजा श्लेषा पवित्रा पापहानये। चित्रा पित्रापि तद्दत्ता भ्यां हस्ताभ्यां विनयेन च॥
तामादाय महीनाथो भक्त्या पश्य जयाभिधाम्। उपवासपरिश्रान्तां पारयेति विसर्जताम्॥

इस प्रकार लिखा है।

तिलकके लिये शास्त्रोंमें लिखा है कि देव पूजाकी वस्तुओंमेंसे पूजा करनेके बाद एक तो गंधोदक दूसरा जिनपादस्पर्शितशेषगंध और पूर्वोक्त जिनपादस्पर्शित पुष्प अथवा पुष्पोंकी माला ग्रहण करनी चाहिये। देखो—

देवस्यार्चनसारवस्तुनिचयाद् गंधांबु पुष्पत्रयम् ।

जिनयज्ञकल्पमें भी लिखा है—

पूज्यपूजावशेषेण गोशीर्षेण हृतात्मिना । देयाधिदेवसेवायै स्ववपुश्चर्चयेत्सुधीः ॥

पूजासारमें भी लिखा है कि पूजा करनेवालेको जिनार्चित गंधसे तिलक करना चाहिये और जिनार्चित चरणस्पर्शित पुष्पमाला विनयसे मस्तकपर धारण करनी चाहिये। सो ही लिखा है—

पुण्याहं घोषयित्वा तदनु जिनपते पादपद्मार्चितां श्री,
शेषां संधार्य मूर्ध्ना जिनपतिनिलयं त्रिःपरीत्य त्रिशुद्धया ॥
आनम्येषं विसृज्यामरगणमपि यः पूजयेत्पूज्यपादं,
प्राप्नोत्येवाशु सौख्यं भुवि दिवि विबुधाः देवनंदीडितं सः ॥

पूजासारमें इसप्रकार लिखा है।

जैनेन्द्रपादयुगयोगविशुद्धगंधैः संबंधबंधुरविलेपविशुद्धगात्रः ।
तेनैव मुक्तिवशकृत्तिलकं विधाय श्रीपादपुष्पधरणं शिरसा वहामि ।

(भगवानके चरण कमलोंके संबंधसे अत्यंत विशुद्ध हुए गंधसे विलेपन कर शरीरको पवित्र करता हुआ तथा उसी गंधसे मुक्तिको वश करनेवाला तिलक लगाकर मैं अपने मस्तकपर भगवानके चरणस्पर्शित मालाको धारण करता हूं।)

१—२ इनका अर्थ इनके ऊपर लिखा है। ३—भगवानकी पूजासे बचे हुये गंधसे पूजकको भगवानकी पूजा करनेके लिए तिलक लगाना चाहिये ४—पुण्याहवाचन पढ़कर जिनदेवके चरण स्पर्शित श्लेषाको मस्तकपर धारण कर जिनालयकी तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार कर देवगणोंका विसर्जन कर जो भगवानकी पूजा करता है वह स्वर्गोंके सुख प्राप्त करता है।

भगवानके चरण स्पर्शित पुष्पोंको कंठमें धारण करनेका कथन इस प्रकार है।

करकंडूके पूर्वभवमें गोपालने श्रीमुनिराजके उपदेशसे पुष्पराज और सेठके साथ एक सहस्रदलका कमल भगवानके चरणोंपर क्षेपण किया था जिससे उसको महा पुण्यका बंध हुआ था। तथा उसी पुण्यसे वह राजा करकंडू हुआ था। इसकी कथा आराधना कथाकोशमें विस्तारसे लिखी है। यथा—

तदा गोपालकः सोपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः।
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्मं एहाणेदमिति स्फुटम्॥
उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जो परिक्षिप्त्वा सुपंकजम्॥

इत्यादि पाठ है। इसका अर्थ ऊपर लिखे अनुसार है।

तथा मुनिराजके उपदेशसे मैना सुन्दरीने सिद्धचक्रकी पूजा की थी। उस पूजामें भगवानका अभिषेक किया था, चरणोंपर गंध लगाया था और उन चरणोंपर पुष्प चढ़ाये थे। इस प्रकार पूजा करनेके बाद वह अभिषेकका गंधोदक तथा पूजाका गंध और पुष्प ये तीनों ही चीजें मैना सुन्दरीने कुष्ठ (कोढ़) रोगको दूर करनेके लिये अपने पति श्रीपालको तथा उनके अंगरक्षक सातसौ योद्धाओंको बड़े हर्षसे दिया था। सो ही श्रीपालचारित्रमें लिखा है।

तत्र नंदीश्वराष्टम्यां सिद्धचक्रस्य पूजनम्। चक्रे सा विधिना द्रव्यैर्जलैः कर्पूरचन्दनैः॥
अक्षतैश्चंपकाद्यैश्च पक्वान्नैर्वरदीपकैः। धूपैः सुगंधिभिर्भक्त्या नालिकेरादिसत्फलैः॥
तद्विलेपनगंधांबुपुष्पाणि सा ददौ मुदा। श्रीपालायांगरक्षेभ्यः पाणिभ्यां रुग्विहानये॥

यहाँपर भी गंधपुष्प ऊपर चढ़ाना लिखा है। दूर चढ़ाना नहीं लिखा है।

तदनंतर मैनासुन्दरीने मुनिराजके उपदेशानुसार सिद्धचक्रके मंत्रोंके द्वारा चमेली आदिके पुष्पोंसे सिद्धचक्रके यंत्रके ऊपर ही जप किया है अर्थात् जपके पुष्प उसके ऊपर ही रक्खे हैं ऐसा श्रीपालचरित्रमें लिखा है। यथा—

यंत्रस्योपरि दातव्या अष्टोत्तरशतप्रमा। जाप्या एकाग्रचित्तेन जातिपुष्पेन धीधनैः॥

यही बात श्रीगुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराणमें श्रीशांतिनाथ पुराणमें लिखी है। यथा—

स्वयंप्रभापिसद्धर्मं तत्रादायैकदा मुदा । पर्वोपासपरिम्लानतनुरभ्यर्च्य चार्हतः ॥
तत्पादपंकजाश्लेषपवित्रां पापहां सृजम्। तां पित्रेपि तद्बुद्ध्याभ्यां हस्ताभ्यां विनयानतः ॥
तामादाय महीनाथो भक्त्यापश्यत्स्वयंप्रभाम्। उपवासपरिश्रांतां पारयेति व्यसर्जयत् ॥

यशस्तिलकचंपूमें भी लिखा है।

पुष्पं स्वदीयचरणार्चनपीठसंगात् चूड़ामणिर्भवति देव ! जगत्त्रयस्य ।

अर्थात् हे देव ! आपके चरणोंकी पूजाके सिंहासनके सम्बन्धसे पुष्प भी तीनों लोकोंका चूड़ामणि हो जाता है।

धर्मरसिकमें भी लिखा है।

त्रिःपरीत्य जिनाधीशं भक्त्या नत्वा पुनः पुनः।
जिनांघ्रिस्पर्शनात्पूतां शेषां शिरसि धारयेत् ॥

अर्थात्—भगवानकी तीन प्रदक्षिणा देकर तथा भक्तिपूर्वक बार-बार नमस्कार कर भगवानके चरणोंके स्पर्शसे पवित्र हुई शेषाको मस्तक पर धारण करना चाहिये।

देवपूजाके प्राचीन पुस्तकोंके पाठमें पूजाकी प्रतिज्ञाके समय पूजकको मंत्रोंके द्वारा सब जगह जिनप्रतिमाके ऊपर पुष्पक्षेपण करनेका विधान है। यथा—

ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

कथाकोशमें मुकुटसप्तमीकी एक कथा है वह इस प्रकार है। एक सेठके एक कन्या थी उसने श्रीमुनिराजसे मुकुटसप्तमीका व्रत लिया था उसको विधिमें मुनिराजने बतलाया था कि श्रावण शुक्ला सप्तमीका उपवास करना चाहिये। उस दिन भगवानका अभिषेक कर पूजा करनी चाहिये। पुष्पोंकी माला पहनाना चाहिये तथा पुष्पोंका मुकुट श्रीजिनबिंबके मस्तक पर धारण कर कहना चाहिये कि हे जिनवर ! आप मुक्तिस्त्रीके वर हो इसीलिये आपके लिये यह मुकुट और माला पहनाई जाती है। उन मुनिराजके उपदेशानुसार उस कन्याने ऐसा ही किया था सो ही व्रतकथाकोशमें मुकुटसप्तमीकी कथामें लिखा है—

शुक्लश्राद्धपौर्णमास्यां जन्मतिथीदिवसेऽर्हताम्। स्नपनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्टविधमूर्जितम् ॥
वक्ष्यते मुकुटं मूर्ध्नि चितं कुसुमोत्करैः। कंठे श्रीवृषभेशस्य पुष्पमाला च धार्यते ॥
मुक्तिस्वयंवराख्यक् ते समक्षं सर्वभूभुजाम्। कंठेभूत्तद्दे कंठे तवार्हन् कुसुमस्रजम् ॥
इत्युक्त्वा मालतीकुंदकुमुदादिसमुद्भवाम्। धारयेदर्हतः कंठे मालां पुण्याप्तिहेतवे ॥

इस प्रकार कथाकोशमें है। इनका अर्थ ऊपर लिख चुके हैं सो वहांसे कथा सहित देख लेना चाहिये।

मैनासुन्दरीने भी श्रीमुनिराजके उपदेशानुसार सिद्धचक्रकी पूजा अभिषेक कर अपने पतिको तथा उनके साततौ साथियोंको वह गंधोदक पुष्प और चंदन दिया था और उसीसे उनका कोढ़ रोग दूर हुआ था। जैसा कि श्रीपालचरित्रमें लिखा है—

इति वृद्धिक्रमेणैषा सिद्धान् प्रपूज्य भक्तितः। ददौ भर्त्रेंगरक्षेभ्यस्तत्पुष्पोदकचन्दनम् ॥

इसके सिवाय श्रीगोम्मटस्वामीकी वंदना कहते समय निर्वाण कांडके पाठमें लिखा है कि देव लोग पांचसौ धनुष ऊंची उस गोम्मटस्वामीकी प्रतिमापर केशर और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। यथा—

गोमटदेवं वंदमि पंचसयधणुहदेहउच्चंतं।
देवा कुणंति विठ्ठी केसरकुसुमाणि तस्स उवरम्मि।

इसके सिवाय और भी अनेक जैनपुराणोंमें यह कथन लिखा है, वहांसे जान लेना चाहिये तथा पूजाके पाठोंमें सब जगह लिखा ही है। यथा—

सुजातिजातैः कुमुदाब्जकुंदैः, मंदारमालावकुलादिपुष्पैः।
मत्तालिमालामुखरैर्जिनेन्द्रपादारविंद्वयमर्चयामि ॥

इसका अभिप्राय यह है कि पूजा करनेवाला पूजाके समय कहता है कि जुई, कुमुदिनी, कमल, कुन्द, मंदारजातिके पुष्प मौलिश्री आदि उत्तमोत्तम आदि सुगन्धित पुष्पोंसे तथा और भी अनेक प्रकारके पुष्पोंसे जिनपर मदोन्मत्त भ्रमरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं ऐसे सुन्दर पुष्पोंसे मैं भगवानके दोनों चरणकमलोंकी पूजा करता हूँ। इत्यादि वर्णन है।

कदाचित् यहांपर कोई यह कहे कि हम जो पूजा पाठ रोज पढ़ते हैं उसमें यदि लिखा हो तो हम मानेंगे, नहीं तो नहीं। उनके लिये कहते हैं। पहले अनेक ग्रंथोंके प्रमाण दिये उनको न मानना और केवल हठ-करना योग्य नहीं है। यदि हमारे दिये हुए प्रमाण न माननेका ही हठ है तो तुम जो नित्य पूजापाठ पढ़ते हो उसमें भी पुष्प कहे हैं। यथा—

कुंदारविंदप्रमुखप्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

अर्थात् 'मैं कुन्द, कमल आदि पुष्पोंसे जिनेन्द्र सिद्धांत और यतियोंकी पूजा करता हूँ' ऐसा लिखा है तथा सिद्धपूजामें भी लिखा है 'सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः' अर्थात् श्रेष्ठ गंध, अक्षत, पुष्पमाला और नैवेद्यसे पूजा करता हूं, यहांपर पुष्पमालासे पूजन करना बतलाया है। कहां तक कहा जाय बहुतसे पाठ हैं वे सब लिखे भी नहीं जा सकते। विवेकियोंको तो एक ही ग्रन्थका प्रमाण बहुत है तथा न समझनेवालोंके लिये बहुतसे प्रमाण भी हितरूप नहीं हो सकते। इस प्रकार जिनांघ्रि पर गंध और पुष्प लगानेका वर्णन किया।

भगवानके चरणस्पर्शित गंध, पुष्प ही उनके चरणोंकी रज है। वह भव्य जीवोंको गंधोदकके समान मस्तकपर लगाना योग्य है। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। यह रज बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इसके लगानेसे जीवोंके बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं। देखो पूजासारमें लिखा है—

ब्रह्मघ्नोथवा गोनो वा तस्करो वान्यपापकृत्। जिनांघ्रिगंधसंपर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणे ॥

अर्थात् जिसने गौ वा ब्राह्मणकी हत्या की हो अथवा चोरी की हो तथा स्त्री, बालक, कन्याका वधरूप अन्य पाप किये हों सो भी भगवानके चरणस्पर्शित गंधके सम्बन्धसे तिलक लगानेसे उसी क्षणमें उन पापोंसे मुक्त हो जाता है।' इस प्रकार जिनांघ्रिस्पर्शित (भगवानके चरणकमलोंसे स्पर्शित) गन्ध अर्थात् चंदन, केसर आदिका माहात्म्य है।

इसमें इतना और समझ लेना चाहिये कि चन्दन, केसर अथवा पुष्प वा पुष्पमालामें पापोंको काट देनेका गुण नहीं है उसमें तो केवल सुगन्धित होनेका ही गुण है। यह गुण तो भगवानके चरणोंका है। उन चरणोंके सम्बन्धसे उनका स्पर्श करनेसे ही उस गंध वा पुष्पोंमें वह गुण आ जाता है।

इसी प्रकार जिनगंधोदकमें भी भगवानके शरीरके स्पर्शसे वह पापोंके काटनेका गुण आ जाता है।

केवल चन्दन, केसर आदि मिले जलमें केवल शीतल और सुगन्धित होनेके सिवाय और कोई गुण नहीं है। पाप काटनेका गुण उसमें केवल भगवानके स्पर्शमात्रसे होता है। इसी प्रकार गंध और पुष्पोंमें समझना चाहिए। गंधोदकमें तथा गंधमें कुछ होनाधिकता नहीं है। इसी प्रकार पुष्प अक्षतोंमें भी कुछ अन्तर नहीं है। ऐसा समझ लेना चाहिए। सो ही लिखा है—

अंगुल्यग्रमिति देश जिनपादार्चिताक्षतान्। सुगंधलेपनस्योर्ध्वं मध्ये भाले धरेद् गृही॥

अर्थात् 'गृहस्थोंको जिनपादार्चित अक्षत, सुगन्ध, लेप वा तिलकके ऊपर उँगलीके अग्रभागप्रमाण ललाटपर लगाना चाहिए।' यहाँपर इतना और समझ लेना चाहिए कि निर्माल्य भक्षणका दोष अक्षतोंके खानेसे होता है बिना खाये नहीं। आसिकाके अक्षत तो मस्तकपर धारण करने ही योग्य हैं। देखो सुलोचनाने अपने पिता राजा अकंपनको पुष्प मालादिक पूजाकी आसिका दी थी। सो ही आदिपुराणमें लिखा है—

विधायाष्टाह्निकीं पूजामभ्यर्च्यार्चां यथाविधि। कृतोपवासा तन्वंगी शेषान् दातुमुपागता॥
नृपं सिंहासनासीनं सोप्युत्थाय कृतांजलिः। तद्दत्तशेषानादाय विधाय शिरसि स्वयम्॥
उपवासपरिश्रान्ता पुत्रिके त्वं प्रयाहि हि। शरणं पारणाकाल इति कन्यां व्यसर्जयत्॥

भावार्थ—सुलोचनाने उपवासपूर्वक अष्टान्हिकाकी पूजाको फिर वह सिंहासनपर बैठे हुए राजा अकंपनको उस पूजाकी शेषा देनेके लिये सभामें गई। राजाने उठकर हाथ जोड़कर वह शेषा ली और स्वयं अपने मस्तक पर रखी। फिर पुत्रीको पारणाके लिये विदा किया।' इस प्रकार लिखा है।

गंध, गंधोदक, पुष्प, अक्षत आदि बड़ी भक्तिसे विनयपूर्वक अपने मस्तक आदि उत्तमांगमें यथायोग्य रीतिसे धारण करना योग्य है। इनका धारण करना पुण्यबन्धका कारण है। तथा महा पापोंको नाश करनेवाला है। जो भाग्यहीन हैं वे ही इसकी अवज्ञा करते हैं। यही अनेक रोगोंको दूर करनेवाला है। गन्ध, गन्धोदक तथा पुष्पादिककी कथा जैन शास्त्रोंमें श्रीपाल आदि अनेक भव्य जीवोंके चरित्रोंमें लिखी है। तथा इन सबकी महिमा समस्त शास्त्रोंमें वर्णन की है।

एक यह बात भी समझने योग्य है कि भगवानके चरणस्पर्शित गन्ध तथा पुष्पोंकी ही चरणरज संज्ञा है। भगवानके चरणोंमें मार्गमें चलनेसे लगी हुई धूलिकी तो संभावना ही नहीं है फिर चरणरजका वर्णन किस

प्रकार किया जा सकता है परन्तु ग्रन्थोंमें चरणरजके लगानेसे अनेक रोगादिकोंका नाश होना बतलाया है इससे सिद्ध होता है कि भगवानके चरणस्पर्शित गन्ध धूपको ही चरणरज कहते हैं। जो कोई भीषण जलोदर आदिका रोगी भी इसको लगाता है उसका शरीर भी देवोंके समान अत्यन्त रूपवान हो जाता है। इससे जीवों-के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। जिसका शरीर जलोदर आदि अनेक रोगोंसे जर्जरित हो गया है, जिसकी शोचनीय अवस्था हो गई है मृत्युके निकट पहुँच चुका है, जीवित रहनेकी जिसकी आशा छूट चुकी है ऐसा मनुष्य भी यदि भगवानके चरणरजको लगावे तो उसके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं तथा वह कामदेवके समान सुन्दर हो जाता है। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है सो यह गुण, जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प आदिमें नहीं है किन्तु भगवानके चरणोंके स्पर्श करनेसे उनमें यह गुण आ जाता है। सो ही श्रीमानतुंगाचार्य श्रीवृषभनाथकी स्तुतिमें (भक्तामरमें) कहा है—

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः, शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ॥
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः, मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥

इसलिए भगवानके चरणस्पर्शित गंध, पुष्प सदा ही वन्दना करने योग्य हैं। जो कोई पुरुष बिना समझे इसकी निन्दा करते हैं उनके कर्मका बंध होता है। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार तिलक आदि देकर भव्य जीवोंको भगवानकी भक्ति करनी चाहिये।

प्रश्न—यदि कोई तिलक न करे तो क्या दोष है। यह तो इच्छा पर निर्भर है करें या न करें ?

समाधान—जैनी श्रावकको बिना तिलकके रहनेकी मनाई है। शास्त्रोंमें लिखा है कि णमोकार आदि मन्त्रोंके जप, होम, सत्पात्रोंको दान, जैनशास्त्रोंका पाँचों प्रकारका स्वाध्याय, पितृतर्पण, जिनेन्द्रदेवका पूजन तथा शास्त्र श्रवण आदि कार्य बिना तिलक लगाये कभी नहीं करने चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि पहले तिलक कर लेना चाहिये पीछे ऊपर लिखे कार्य करने चाहिये। सो ही लिखा है—

जैपो होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। जिनपूजाश्रुताख्यानं न कुर्यात्तिलकं विना ॥

१., २. इनका अर्थ उनके ऊपर लिखे अनुसार है।

कदाचित् कोई यह कहे कि "भगवानके चरणोंके गंध लगाना सरागताका कारण है तथा अयोग्यता आदि अनेक दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है परन्तु ऐसा कहना भी बड़े अनर्थका कारण है। यदि यह कहना ठीक है तो इसको कहनेवाले शास्त्रोंका प्रमाण देना चाहिये। भगवानके चरण-कमलोंमें केशर, चंदन आदिके लगानेका किन-किन शास्त्रोंमें निषेध है उनको लिखना चाहिये। अमुक शास्त्रमें, अमुक गाथामें तथा अमुक भाषा वचनिकामें गन्धादिकके लगानेका निषेध है सो बतलाना चाहिये। केवल अपनी इच्छानुसार मुखसे ही कहना या लिखना योग्य नहीं है। बिना प्रमाणके ऐसा कहना बड़ी बात है, छोटी नहीं है इसलिए ऐसी बात न लिखनी चाहिये न कहनी चाहिये।

प्रश्न—भगवानके चरणोंपर गन्ध लगाना कहाँ कहा है ?

समाधान—गन्धका लगाना ऊपर पुष्पादिकके वर्णनमें कह ही चुके हैं तथा जिन-जिन शास्त्रोंमें (जैन-मतके शास्त्रोंमें) पूजाका प्रसंग आया है वहाँ ही इसका वर्णन लिखा है। उनमें कुछ शास्त्रोंके नाम श्लोक गाथा आदि लिखते हैं।

श्रीशुभचन्द्रस्वामी विरचित सहस्रगुणी पूजामें लिखा है।

परिमलविमलाढ्यैरिन्दुकश्मीरमिश्रैः निखिलमिलितद्रव्यैश्चन्दनैर्वाणपेयैः।
शिवसदननिविष्टं नाद्यनन्तं प्रयुक्तं दृशशतकरधारं चर्चये सिद्धचक्रम् ॥

अर्थात् कर्पूरादि मिले हुए घिसे चन्दनसे सिद्धचक्रकी अर्चना (पूजा) करता हूँ।

सकलकीर्तिविरचित श्रीशान्तिनाथ पुराण सन्धि ७ श्लोक १३१ में लिखा है।

स्वच्छनीरैः पवित्रैश्च दिव्यैः गंधविलेपनैः। मुक्ताफलादिजैः सौरैरक्षतैः स्वर्गसंभवैः।
चंपकादिमहापुष्पैर्नैवेद्यैश्च चतुर्विधैः। ज्वलद्दीपैर्महाधूपैः फलैः कल्पद्रुमादिजैः ॥

अर्थात् स्वच्छ पवित्र जलसे, दिव्य गन्धके विलेपनसे, मुक्ताफलादिक अक्षतोंसे, चम्पक आदि पुष्पोंसे नैवेद्य, दीप, धूप, फलोंसे भगवानकी पूजा करता हूँ।

प्रतिष्ठासारमें भी लिखा है--

कर्पूरजोंगकलवंगत्रुटिप्रयंगुकंकोलपूर्वकरंवितचन्दनोघैः ।
दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुरारात् विद्राणसौरभ मदैरपि चर्चयेन्घ्रिम् ॥

अर्थात् "कपूर, लौंग, कंकोल आदि मिले हुए चन्दनसे भगवानके चरण-कमलोंको चर्चता हूँ ।"

वसुनन्दिकृत प्रतिष्ठापाठमें लिखा है—

कर्पूरैलालवंगादिद्रव्यमिश्रितचन्दनैः सौगंध्यवासिताशेषदिङ्मुखैश्चर्चयेज्जिनम् ।

अर्थात् "सब दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले कपूर, इलायची, लौंग आदि द्रव्योंसे मिले हुए चंदनसे मैं भगवानकी पूजा करता हूँ ।"

भावसंग्रहमें भी लिखा है--

चंदण सुयंध लेऊ जिणवर चरणेसु कुणइ जो भविओ ।
लहइ तणु विक्किरियं सुहाय सुपधयं विमलं ॥

अर्थात् "जो भव्य भगवानके चरण कमलोंपर चन्दनका लेप करता है । वह बहुत उत्तम सुगन्धित वैक्रियिक शरीर पाता है ।

पद्मनंदिआचार्यकृत पद्मनंदिपंचविंशतिकामें भी लिखा है--

यद्वद्वचो जिनपतेः भवतापहारि नाहं सुशीतलमपीह भवामि तद्वत् ।
कर्पूरचन्दनमितीव मयार्पितं सत् त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं करोति ।

अर्थात् जिस प्रकार भगवानके वचन संसारतापको नाश करनेवाले हैं उस प्रकारको शीतलता मुझमें नहीं है परन्तु मैं ऐसा शीतल होना चाहता हूँ इसीलिये चंदनको समर्पण करता हूँ ।

धर्मकीर्तिकृत नन्दीश्वर पूजामें भी लिखा है—

कर्पूरकुंकुमरसेन सुचन्दनेन ये जैनपादौ परिलेपयन्ति ।
तिष्ठंति ते भविजनाश्च सुगंधगंधा दिव्यांगनापरिवृताः सततं वसंति ।

विलेपनं गंधसुगंधद्रव्यैर्येषां प्रकुर्वन्त्यमराश्च तेषाम् ।
कर्तेऽङ्गंगे वरचन्दनाद्यैर्नन्दीश्वरद्वीपजिनाधिपानाम् ।

अर्थात् जो भव्यजन कपूर, कुंकुम, चन्दन आदिसे भगवानके चरणोंको लिपन करते हैं वे सुगन्धित शरीरको धारणकर सुन्दर देवांगनाओं सहित स्वर्गमें निवास करते हैं। नन्दीश्वरद्वीपमें विराजमान जिनप्रतिमाओंके अंगमें देवगण सुगंधित द्रव्योंसे लेप करते हैं इसीलिये मैं नन्दीश्वर द्वीपमें विराजमान भगवानके चरणोंपर चन्दनका लेप करता हूँ।

त्रिवर्णाचारमें भी लिखा है—

जिनांघ्रिचन्दनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत् । यज्ञोपवीतसूत्रं च कटिमेखलया युतम् ।

अर्थात् भगवानके चरण स्पर्शित चंदनसे अपने शरीरपर लेप करना चाहिये तथा यज्ञोपवीत और कटिमेखला धारण करनी चाहिये।

मुक्तावलिपूजामें भी लिखा है—

सद्गंधसारघनसारविलेपनैश्च गंधागतालिकुलजाततरुप्रकांडैः ।
उद्यापनाय जिनपादसरोजयुग्मं मुक्तावलीव्रतपरस्य यजेति भक्त्या ॥

अर्थात् 'मुक्तावलीव्रतके उद्यापनके लिये भगवानके चरणकमलोंको चंदनसे लिपन करना चाहिये।

श्रीपालचरित्रमें सिद्धपूजाके समय लिखा है—

मिश्रकुंकुमकर्पूरसुगंधचंदनद्रवैः । हेमादिभाजने सिद्धचक्रमुद्वृत्य भक्तितः ॥

अर्थात् 'सुवर्णादिकके पात्रमें कपूर, चंदनादिकसे सिद्धचक्र यंत्रको उद्वर्तन (विलेपन) करना चाहिये।

अभयनंदिसूरिकृत श्रेयोविधानमें लिखा है—

काश्मीरपंकहरिचंदनसारसांद्रनिष्पंदमभिरुचितेन विलेपनेन ।
अव्याजसौरभतनोः प्रतिमां जिनस्य संचर्चयामि भवदुःखविनाशनाय ॥

अर्थात् 'संसारके दुःख दूर करनेके लिये मैं भगवानकी प्रतिमाको (उनके चरणोंको) केशर, चन्दन आदिसे विलेपन कर पूजन करता हूँ।

श्रीप्रभाकरसेनप्रतिष्ठापाठमें लिखा है—

यश्चन्दनैश्च नवकुंकुमजै र्जिनस्य कर्पूर ..... विलपंति देहम् ।

अर्थात् जो भगवानके शरीरको (चरणोंको) चंदनादिकसे विलेपन करता है ।

श्रीआशाधरकृत जिनयज्ञकल्पमें लिखा है—

काश्मीरकृष्णागरुगंधसारकर्पूरपौरस्त्यविलेपनेन ।
निसर्गसौरभ्यगुणोल्वणानां संचर्चयाम्यंघ्रियुगं जिनानाम् ॥

अर्थात् स्वभावसे ही अत्यन्त सुगन्धित ऐसे भगवानके चरणकमलोंको केशर, कपूर, चन्दन आदि द्रव्यों-से विलेपनकर पूजन करता हूँ ।

त्रिकालचतुर्विंशतिका पूजामें लिखा है—

गंधसारघनगंधविलेपैर्गंधसारहिमकुंकुमयुक्तैः ।
गंधसारहिमलिंदिकवृंदैर्यायजीमि ऋषभादिजिनेंद्रान् ॥

अर्थात् 'मैं ऋषभादि जिनेन्द्रोंको चन्दनादिकसे विलेपनकर पूजन करता हूं ।'

श्रीयोगीन्द्रदेवकृत प्राकृतश्रावकाचारमें बोधक छन्दमें लिखा है—

'जो जिणु चंदन चच्चइइए'

अर्थात् जो भगवानको चंदनसे चर्चता है ।

प्रथमपुराणकी संधि २३ श्लोक १०६ में लिखा है—

अथोत्थाय तुष्टाः सुरेन्द्राः स्वहस्तैर्जिनस्यांघ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः ॥
सुगंधैः समाल्यैः संदीपैः सधूपैः, सदिव्याक्षतैः प्राज्यपीयूषपिंडैः ॥

अर्थात् इन्द्र संतुष्ट होकर खड़े हुए और उन्होंने गंध, माला, दीप, धूप, अक्षत, चरु आदिसे स्वयं भगवानके चरणकमलोंकी पूजा की ।

पूजासारमें लिखा है—

क्षौदैः कर्पूरमिश्रैर्वहलपरिमलाकृष्टभृंगांगनानां,
मोदैः स्वर्गापवर्गफलममलमतं चंदनैः क्ष्मारुहाणाम् ॥
नैःफल्यं नेति शैत्यं प्रथयतुनलिनेनाप्नुवद्भिः दिगन्तान्,
गंधैः संबंधनीयं त्रिजगदधिपतेः पादमापादयामि ॥

अर्थात् भगवानके चरणकमलोंको अत्यन्त सुगन्धित कपूर, चंदन आदिसे विलेपन करता हूँ।

पूजासारमें दूसरी पूजामें लिखा है—

समृद्धभक्त्या परया विशुद्धया, कर्पूरसन्मिश्रितचन्दनेन ॥
जिनस्य देवासुरपूजितस्य, सुलेपनं चारु करोमि मुक्त्यै ॥

ॐ ह्रीं अर्हं सर्वकर्मविलेपनरहितपवित्राय नमः उद्वर्तनम् ।

अर्थात् "मोक्ष प्राप्त करनेके लिये इन्द्रोंसे पूज्य भगवानको बड़ी भक्तिसे चंदनादिकसे विलेपन करता हूँ। समस्त कर्मोंके विलेपनसे रहित भगवानका उद्वर्तन (उबटन) करता हूँ।

भगवदेकसंधिकृत जिनसंहितामें लिखा है—

ओं चन्दनेन कर्पूरविमिश्रेण सुगंधिना व्यालिंपामो जिनस्यांघ्रिः निलंपाधीश्वरार्चितः ॥

अर्थात् इन्द्रोंके द्वारा पूज्य भगवानके चरणोंको कपूर, चंदन आदिसे लेपन करता हूँ।

शांतिचक्रविधानमें लिखा है—

श्रीचंदनमुदा चर्चे चंद्रगर्भैः स्फुरत्प्रभैः। दिव्यतेजोमयं शांतिमंत्रात्मानमघच्छिदे ॥

अर्थात् पापोंको नाश करनेके लिए दिव्य तेजोमय शांतियन्त्रको केशर, चन्दन आदिसे लेपन करता हूँ।

अकृत्रिम चैत्यालयकी भाषापूजामें लिखा है—

सौरभेयद्रव्य लेय पादयुग्म चर्चिकें। भवाताप शांत ह्वै जिनेंद्रपीठ अर्चिकें ॥
तीन लोक जैन भौन अकृत्रिम पूजिये। अष्टकर्म भानि सार सौख्यरूप हूजिये ॥

यह चंदन चढ़ानेका है। इसी प्रकार और भी पाठ हैं, जो चतुर्विंशतिके मंडलपाठमें अलग-अलग जिन-पादके विलेपन करना कहा है।

देखो सुपार्श्वनाथकी पूजामें लिखा है—

कुंकुमेन कर्पूरेण चंदनेन सुगंधिना। श्रीजिनेन्द्रपदांभोजं विलेपेहं सुभावतः॥

अर्थात् भगवानके चरण कमलोंको कुंकुम, कपूर, चन्दन आदिसे लेपन करता हूँ।

श्री चन्द्रप्रभकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमेश्चन्दनचन्द्रमिश्रितैः विलेपयेहं शशिपादपद्म।

अर्थात् चन्द्रप्रभके चरण-कमलोंको कपूर, चन्दन आदिसे लेप करता हूँ।

श्री शीतलनाथकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमैः चन्दनेन मिश्रितैः विलेपयामि जिनपादपयोजयुग्मम्।
श्रीशीतलेशं विधिना यजामि संसारतापहननाय सुखाय शांत्यै॥

अर्थात् भगवानके चरण-कमलोंको कुंकुम, चंदन आदिसे लेपन करता हूँ।

श्रीश्रेयांसनाथकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमैश्चन्दनचन्द्रयुक्तैर्विलेपयेहं जिनपादयुग्मम्।
श्रेयांसदेव परिपूजयेहं त्रैलोक्यनाथार्चितपादयुग्मम्॥

तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य ऐसे श्रेयांसनाथके चरण-कमलोंको चन्दनादिकसे लेपन करता हूँ।

श्रीवासुपूज्यकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमैश्चन्दनचन्द्रमिश्रितैः विलेपयेहं जिनपादयुग्मम्।
श्रीवासुपूज्यं प्रयजे सदाहं सुवासवानां शतकेन पूज्यम्॥

अर्थात् सौ इन्द्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे श्रीवासुपूज्यके चरणकमलोंको कपूर, चन्दन आदिसे विलेपन करता हूँ।

श्रीविमलनाथकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमकर्पूरेण चंदनेन विलेपये। विमलजिनपादाब्जं संसारातापहानये॥

अर्थात् संसारतापको नाश करनेके लिए विमलनाथके चरण-कमलोंको कपूर, कुंकुम, चंदन आदिसे विलेपन करता हूँ।

श्रीअनन्तनाथकी पूजामें लिखा है—

सचन्द्रकर्पूरसुकुंकुमैश्च विलेपयेऽनन्तपदाब्जयुग्मम्।
यजे त्रिकालं वरभावतोऽहं अनंतसौख्याय अनन्तनाथम्॥

अर्थात् अनन्त सुख प्राप्त करनेके लिये अनन्तनाथके चरण-कमलोंको केशर, कपूर, कुंकुमते विलेपन करता हूँ।

श्रीशान्तिनाथकी पूजामें लिखा है—

काश्मीरचंदनसुचंद्रयुतैः सुगन्धैः पादारविंदद्वयलेपविलेपनैश्च।
शोकारिरोगभवदुःखविनाशनाय श्रीशांतिनाथजिनपं प्रयजे सुखाय॥

अर्थात् शोक, रोग आदि संसारके दुःख दूर करनेके लिए केशर, चंदन, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्योंसे दोनों चरण-कमलोंको विलेपनकर श्रीशांतिनाथकी पूजा करता हूँ।

श्रीअरनाथकी पूजामें लिखा है—

मलयारण्यसंभूतैर्गंधचन्दनलेपनैः। दुष्टाष्टकर्मशांत्यर्थं अरनाथमहं यजे॥

अर्थात् आठों कर्मोंको शान्त करनेके लिए मलयागिरके चंदनसे लेपनकर अरनाथकी पूजा करता हूँ।

श्रीअरिष्टनेमिनाथकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमैश्चन्दनचन्द्रमिश्रैर्विलेपनैर्नेमिक्रमाब्जयुग्मम्।
कृष्णप्रभं नेमिजिनं यजेहं सुकुंबुकांकं शिवदेविसूनुम्॥

अर्थात् शंखके चिह्नसहित, शिवदेवीके पुत्र, कृष्णप्रभाको धारण करनेवाले श्रीनेमिनाथके चरण-कमलोंको कपूर, चंदन, कुंकुम आदिसे लेपन कर पूजा करता हूँ।

श्रीमहावीरस्वामीकी पूजामें लिखा है—

मलयचन्दनकुंकुमचन्द्रजैः सुभवतापहरैः परिलेपनैः।
परमपावनमुक्तिसुदायकं परियजे जिनवीरपदाब्जकम् ॥

अर्थात् चन्दन, कपूर, कुंकुम आदिसे भगवान वीरनाथके चरण-कमलोंका विलेपनकर परम पवित्र और मुक्तिके देनेवाले वीरनाथकी मैं पूजा करता हूँ।

इसी प्रकार शांतिचक्र, ऋषिमण्डल, पञ्चकल्याण, कर्मदहन, षोडशकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय, सार्द्ध-द्वितयद्वीप, इन्द्रध्वज, पञ्चमेरु, नन्दीश्वर पूजा आदि अनेक पूजा-पाठोंमें लिखा है परन्तु ग्रन्थका विस्तार होनेके डरसे इन सबके श्लोक नहीं लिखे हैं।

प्रश्न—यहाँपर कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे भाव लेपन करनेके नहीं हैं इसलिये हम बिना लेपन किये ही पूजा करते हैं इसमें क्या दोष है। तुम लेपन करो, हम नहीं करते ?

समाधान—जिनके चरण-कमल केशर, चन्दन आदिके रससे लेपन नहीं किये गये हैं ऐसी मूर्तिका जो दर्शन करते हैं वे अज्ञानी हैं। ऐसे लोगोंको ज्ञानहीन कहते हैं। ऐसा वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीकृत जिनसंहिता नामके शास्त्रमें लिखा है। यथा—

अनर्चितपदद्वन्द्वं कुंकुमादिविलेपनैः। बिम्बं पश्यति जैनेन्द्रं ज्ञानहीनः स उच्यते ॥

अर्थात् कुंकुमादि विलेपनके द्वारा जिनके दोनों चरण चर्चित नहीं किये गये हैं ऐसी जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके जो दर्शन करता है वह ज्ञानहीन कहलाता है। इससे सिद्ध होता है कि भगवानके चरण चन्दनसे चर्चे बिना नहीं रखने चाहिये, चंदनका विलेपन जरूर करना चाहिये।

जिनके चरण-कमल चंदनादिकसे चर्चित हो रहे हैं ऐसी प्रतिमाके जो दर्शन नहीं करते वे कभी धर्मात्मा नहीं हो सकते। सो ही वसुनन्दिकृत जिनसंहितामें लिखा है—

पश्येन्नो जिनविम्बस्य चर्चितं कुंकुमादिभिः। पादपद्मद्वयं यो हि स भवेन्नैव धार्मिकः ॥

अर्थात् जो चंदनादिकसे चर्चित हुए भगवानके चरण-कमलोंके दर्शन नहीं करता वह कभी धर्मात्मा नहीं हो सकता।

जिसने श्रीअरहन्तदेवके चरण-कमलोंको चंदनसे विलेपन नहीं किया वह कभी धर्मात्मा नहीं हो सकता ऐसा व्रतकथाकोशमें लिखा है। यथा—

न लिप्तश्चन्दनैरर्हन्

भगवानके चरण-कमलोंमें केशर, चन्दन लगाना वसुनन्दिकृत श्रावकाचारमें भी लिखा है। यथा—

कप्पूरकुंकुमापरुत्तरुक्कमिस्सेण चंदणरसेण। वरवहलपरिमलामोयवासिया सा समूहेण॥
वासाणुमग्गसंपत्ता मयमत्तालि एव मुहलोण। सुरम उडघट्टचलणं भत्तिए समलहिज्ज जिणं॥

अर्थात् जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं ऐसे कपूर, कुंकुम, चंदन आदिसे भक्तिपूर्वक विलेपन करता है वह जिनेन्द्रके समान विभूति पाता है।

सकलकीर्ति कृत सिद्धान्तसारप्रदीपककी पन्द्रहवीं सन्धिमें लिखा है—

तत्र नतोत्तमांगेनार्हन्.....अर्चयन्ति महाभूत्या महाभक्त्या महोत्सवैः।
मणिभृङ्गारनालांतनिर्गतैस्तु जलोत्करैः दिव्यामोदनभैर्व्याप्तै र्जगत्सारैर्विलेपनैः॥

जो भव्यजीव बड़ी भक्तिसे, उत्सवसे, विभूतिसे, मणिके बने भृंगारकी नालसे निकले जलसे तथा अपनी सुगन्धिसे आकाशको व्याप्त करनेवाले चंदनके विलेपनसे भगवानकी पूजा करता हूँ।

षट्कर्मोपदेश रत्नमालामें गंध पूजाके समय लिखा है—

नरेण येन नार्या वा कृतं जिनविलेपनं। तयोः कथामहं वक्ष्ये श्रोतव्या सावधानतः।

अर्थात् सकलभूषणने लिखा है कि जिन स्त्री, पुरुषोंने भगवानका विलेपन किया उनकी कथा कहता हूं सावधान होकर सुनो।

श्रीवसुनन्दिने भी पूजाके फलके समय लिखा है—

चंदणलेप्पेण णरो जायइ सोहागसंपण्णो।

अर्थात् यह मनुष्य चंदनका लेप करनेसे सौभाग्यवान होता है।

यशस्तिलकचम्पूमें लिखा है—

मंदमदमदनमानं मंदरगिरिशिखरमज्जनावसरे ।
कंदमुयालतिकायाश्चन्दनचर्चांचितं जिनं कुर्वे ॥

अर्थात् भगवानके चरणोंको चन्दनसे विलेपन कर पूजा करता हूँ ।

प्रतिष्ठा-पाठ जिन यज्ञ कल्पमें लिखा है—

किसी एक अहिच्छत्रपुर नगरके राजा वसुपालने अपने घरमें श्रीपार्श्वनाथका चैत्यालय बनवाया था उसमें प्रतिष्ठापूर्वक पार्श्वनाथ बिंब विराजमान किया था तथा कितने ही दिन बाद उस राजाने किसी चित्रकारसे उस प्रतिमापर लेप चढ़वाया था इसका वर्णन आराधनाकथाकोशमें विस्तारके साथ लिखा है। उसमेंसे लेपका श्लोक यह है—

तस्यां लेपः कृतस्तेन सलेपः संस्थितस्तदा । कार्यसिद्धिर्भवत्येवं प्राणिना व्रतशालिना ॥

अर्थात् 'उसने फिर उस प्रतिमापर लेप कराया इसलिये वह बिंब लेपसहित विराजमान रहा । सो ठीक ही है व्रती प्राणियोंकी कार्यसिद्धि इसी प्रकार होती है ।

जो पुरुष भगवानके चरणकमलोंमें लेप करते हैं उनके अनेक रोगोंकी शांति होती है ।

किसी एक मदनावली नामकी रानीने पहले भवमें मुनिकी निन्दा की थी उस पापसे उसके शरीरमें अत्यन्त दुर्गन्ध उत्पन्न हो गया था सो उसने उस रोगको शांत करनेके लिये किसी अर्जिकाके उपदेशानुसार भगवानका अभिषेककर सात दिन तक प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल तीनों समय गंध लगाकर पूजा की थी उसीसे उसकी वह दुर्गन्ध व्याधि दूर हुई थी । तथा आयु पूर्ण होनेके बाद वह पाँचवें स्वर्गमें उत्पन्न हुई थी ।

षट्कर्मोपदेशरत्नत्रयमालामें भी इसका वर्णन लिखा है । यथा—

इति मां निश्चयं कृत्वा दिनानां सप्तकं सती। श्रीजिनप्रतिबिंबानां स्नपनं सा ह्यकारयत् ॥
चंदनागुरुकर्पूरैः सुगंधैश्च विलेपनैः । सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणां त्रिसन्ध्यकम् ॥

अर्थात् उस सती रानीने ऐसा निश्चयकर सात दिन तक तीनों समय भगवानका अभिषेक किया और चंदन, अगुरु, कपूर आदि सुगंधित द्रव्योंसे विलेपन किया।

इस प्रकार और भी कथायें हैं।

श्रीउमास्वामीने अपने श्रावकाचारमें पूजा प्रकरणमें गंधके विलेपन करनेका वर्णन किया है सो पहले पूजामें लिख चुके हैं वहाँसे देख लेना चाहिये।

श्रीउमास्वामीने इकईस प्रकारकी पूजाके प्रकरणमें लिखा है कि सबसे पहले भगवानका अभिषेक करना सो स्नानपूजा है। तदनन्तर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंको घिसकर भगवानके चरणोंसे लगाना सो विलेपन पूजा है। फिर पुष्प चढ़ाना सो पुष्पपूजा है। इत्यादि और भी बहुतसा वर्णन है। यथा—

"स्नानैर्विलेपनविभूषितपुष्पवासा" इत्यादि।

और भी पाठ है।

प्रश्न—तुमने जो ऊपर वर्णन किया है वह महा पापका कारण है क्योंकि पूजा आदिमें हिंसादिक महा आरम्भ होता है। इसी प्रकार कोई-कोई अधर्मी रात्रिमें भी पूजा करते हैं सो उसका पाप तो हम जान ही नहीं सकते क्योंकि उसमें महापाप होता है और धर्म जीव दयापूर्वक है। इसलिये ऐसे कथनको हम नहीं मानते। इस प्रकार कितने ही असमझ पुरुष इन कार्योंकी निन्दा करते हैं। उसका समाधान इस प्रकार है। जैनशास्त्रोंको बिना समझे केवल उद्धत पुरुषके समान इस प्रकारके निन्दारूप वचन कभी नहीं कहना चाहिये। अपना हिताहितका विचार कर विवेकरूप वचन कहना चाहिये। यह जैनमत एकांतपक्षरूप नहीं है अनेकांत-रूप है। स्याद्वादरूप नयोंसे सिद्ध है। लिखा भी है—'स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हं' स्याद्वादके स्वामी अनंत-चतुष्टयको धारण करनेवाले श्रीअरहंतदेवकी मैं पूजा करता हूँ। इसलिये एक पक्षको दृढ़ करनेसे मिथ्यात्वका दोष आता है तथा ऐसा कहना अनेक अनर्थोंको उत्पन्न करनेवाला है।

जो पुरुष भगवानके अभिषेक करनेमें, जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करनेमें, जिनालयके निर्माण करानेमें तथा जिनयात्रा, तीर्थयात्रा आदिमें सावद्य लेश अर्थात् हिंसादिक आरम्भका पाप बतलाते हैं, वे जैन-

धर्मको पालन करते हुए भी मिथ्यादृष्टी और पापी हैं, सम्यग्दर्शनके घातक हैं और केवल निन्दा करनेवाले हैं ऐसा सारसंग्रह नामके शास्त्रमें लिखा है। यथा—

जिनाभिषेके जिनपप्रतिष्ठा जिनालये जैनसुपात्रकायाम्।
सावद्यलेशो वदते स पापी स निन्दको दर्शनघातकश्च॥

यहाँपर ऐसे पुरुषको दर्शनका घातक बतलाया है और श्रीकुन्दकुन्दस्वामीने अपने षड्पाहुड़में ऐसे दर्शनघातीको दोष प्राप्त होनेका निषेध किया है। जैसा कि दर्शनपाहुडमें लिखा है—

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरिये भट्टा दंसणभट्टाण सिज्झंति॥

अर्थात् दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं क्योंकि जो दर्शनसे (सम्यग्दर्शनसे—जैनशास्त्रोंके यथार्थ श्रद्धानसे) भ्रष्ट हैं उनको मोक्ष कभी नहीं मिल सकती तथा इसका भी कारण यह है कि जो चारित्रसे भ्रष्ट हैं वे समय पाकर मोक्षमार्गमें लग जाते हैं परन्तु जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे मोक्षमार्गमें कभी नहीं लगते हैं।

श्रीयोगीन्द्रदेवने भी अपने श्रावकाचारमें लिखा है कि जो पुरुष भगवानके अभिषेकमें पाप गिनता है उसके सम्यग्दर्शन कभी नहीं हो सकता। यथा—

आरंभे जिणण्हाइये जो सावज्जं भणंति दंसणं। तेण जिम इयलीयो इच्छुण काई उभंति॥

कोई-कोई लोग ऐसा कहते हैं कि रात्रिमें श्राविक-श्राविका आदि चतुर्विध संघ भी भोजनका त्यागी हो जाता है फिर भला रात्रिमें श्री अरहंतदेवकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, उनको नैवेद्य किस प्रकार चढ़ाना चाहिये। यह तो बड़ा अपराध है क्योंकि जो पुरुष रात्रिमें स्वयं नहीं खाता वह भगवानको जल, फलादिकसे रात्रिमें किस प्रकार पूजा कर सकता है इसलिये रात्रिमें भगवानकी पूजा करनेका वा नैवेद्य चढ़ानेका निषेध है। परन्तु इसका समाधान यद्यपि ऊपरके श्लोकोंसे हो जाता है तथापि थोड़ासा फिर भी बतलाते हैं।

जिस दिन हम उपवास करते हैं उस दिन भगवानको पूजा करनी चाहिये या नहीं ? कदाचित् कोई यह कहे कि रात्रिमें पूजा किसने की है तो इसका समाधान यह है कि वज्रजंघ श्रीमतीने विवाहके बाद अनेक दीपकोंके उद्योतसे ईर्यापथविशुद्धिपूर्वक अभिषेक कर रात्रिमें पूजाको थी सो ही महापुराणके सातवें पर्वमें लिखा है—

अथापरेद्युरुद्यानमुद्योतयितुमुद्यमी । प्रदोषे दीपकोद्योते महापूतं ययौ वरः ॥
कृतेर्याशुद्धिरिद्धार्द्धः प्रविश्य जिनमंदिरे । तत्रापश्यद्यतीन् दीप्ततपसः कृतवंदनः ॥
ततो गंधकुटीमध्ये जिनेंद्रार्चां हिरण्मयीम् । पूजयामास गंधाद्यैरभिषेकपुरस्सरः ॥

इसी प्रकार व्रतकथाकोशमें चन्दनषष्ठी आदि अनेक व्रतोंके विधाममें कथा और विधिपूर्वक रात्रिपूजन का कथन किया है । वह सब लिखा भी नहीं जा सकता, ऐसा समझ कर निषेध नहीं करना चाहिये । जो लोग निषेध करते हैं वे जिनश्रुतके विरोधी कहे जाते हैं ।

कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि मुनि वनमें ही रहते हैं, मंदिरमें नहीं, रहते सो भी पहले श्लोकोंमें कहा है कि वज्रजंघ श्रीमतीने पहले मुनियोंकी वंदना की फिर भगवानकी पूजा की ।

आराधना कथाकोशमें लिखा है कि श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रकी पूजा पापको नाश करनेवाली है प्रत्यक्ष स्वर्ग मोक्षकी देनेवाली शास्त्रोंमें बतलाई है । जो श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष भगवानकी ऐसी पूजाको धर्मके लिये पवित्र होकर भक्तिपूर्वक करते हैं वे ही सम्यग्दृष्टियोंमें शुद्ध हैं और वे ही महाभव्य हैं । इसमें सन्देह नहीं । तथा जो जिनपूजाकी निन्दा करते हैं वे पापी इस पृथ्वीपर निन्दनीय होते हैं और उस निन्दाके पापसे दुःखी, दरिद्री कोढ़, अन्धापन, लँगड़ापन, जलोदर आदि अनेक रोगोंसे दुःखी होते हैं, पीछे दुर्गतिके पात्र होते हैं ऐसा लिखा है । यथा—

श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां पूजा पापप्रणाशिनी । स्वर्गमोक्षप्रदा प्रोक्ता प्रत्यक्षपरमागमे ॥
यः करोति सुधीर्भक्त्या पवित्रोऽपापहेतवे । स एको दर्शने शुद्धो महाभव्यो न संशयः ॥
यस्तस्या निन्दकः पापी स निंद्यो जगति ध्रुवम् । दुःखदारिद्ररोगादि दुर्गतेर्भाजनं भवेत् ॥

श्रीनेमिचन्द्रकृत कर्मकांडकी संस्कृत टीकामें तथा दशाध्याय तत्त्वार्थसूत्रकी टीकामें बंध तत्त्वके भेदोंमें ऐसा ही कहा है।

श्रीअमृतचन्द्रसूरिने लिखा है कि जो पुरुष तपस्वी गुरु और जिनप्रतिमाकी पूजाका लोप करते हैं, दीन, अनाथ, कृपण और भिखारियोंको दान देनेका निषेध करते हैं दूसरोंको बाँधने, मारने, बेड़ी डालने, नासिका छेदन करने आदिके लिये कहते हैं जो प्रमादसे देवपर चढ़ाये हुए नैवेद्यको ग्रहण करते हैं जो निर्दोष शास्त्रादि उपकरणोंका त्याग करते हैं प्राणियोंका वध करते हैं दान, भोग, उपभोग आदि विघ्न करते हैं जो ज्ञानका निषेध करते हैं और धर्ममें विघ्न करते हैं उनके अन्तराय कर्मका आस्रव होता है। भावार्थ—ये सब कार्य अन्तराय कर्मके आस्रवके कारण हैं। ऐसा लिखा है यथा—

तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनम्। अनाथदीनकृपणभिक्षादिप्रतिषेधनम्॥
वधबंधनिरोधैश्च नासिकाच्छेदकर्तनम्। प्रमादाद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा॥
निरवद्योपकरणपरित्यागो वधोऽङ्गिनाम्। दानभोगोपभोगादिप्रत्यूहकरणं तथा॥
ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा। इत्येवमन्तरायस्य भवन्त्यास्रवहेतवः॥
(तत्त्वार्थसार आस्रववर्णन श्लोक ५५–५८)

इस प्रकार बहुत-सा वर्णन है।

आगे सचित्त पूजाका विधान कहते हैं—

जो पुरुष भगवानकी पूजामें पुष्प, फल, दाभ, दूब, पत्र, जल आदिमें सचित्तपनेका दोष मानते हैं और उनका निषेध करते हैं वे महापापी हैं, देखो श्रीसमन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जिनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ॥

अर्थात् भगवानकी पूजा करनेमें थोड़ा-सा पाप होता है परन्तु पुण्य बहुत बड़ा होता है। उसके सामने वह पाप कुछ चीज नहीं है। शीतल अमृतके समुद्रमें भला एक विषकी कणिका क्या दोष उत्पन्न कर सकती है?

श्रीवसुनंदिने भी लिखा है—

माल्याधूपप्रदीपाद्यैः सचित्तैः कोऽर्चयज्जिनम्। सावद्यसंभवं वक्ति यः स एवं प्रबोध्यते॥
जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्बिषं हन्ति यत्कृतम्। सा किंन्न यजनाचारैर्भवसावद्यमंगिनाम्॥
प्रेर्यन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः। तत्राल्पा शक्तितेजस्सु का कथा मषकादिषु॥
मुक्तं स्यात्प्राणनाशाय विषं केवलमंगिनाम्। जीवनाय मरीच्यादिसदौषधविमिश्रितम्॥
तथा कुटुम्बभोगार्थं आरंभः पापकृद् भवेत्। धर्मकृद् दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा॥

अर्थात् जो पुरुष माला, दीप, धूपादिकसे पूजा करता है उसको जो पापलेश बतलाता है उसके लिए कहते हैं कि भगवानकी पूजा अनेक पापोंको नाश करनेवाली है फिर भला वह यत्नाचारपूर्वक होनेवाले प्राणियोंके पापोंको क्यों दूर नहीं कर सकती। जिस हवासे पर्वतके समान हाथी बह जाते हैं उसके सामने थोड़ी-सी शक्ति और थोड़ेसे तेजको धारण करनेवाले मच्छरोंकी क्या बात है। जो विष अकेला खाया जाय तो प्राणनाश कर देता है परन्तु मिरच आदिके सम्मेलनसे वही विष जीवनदाता हो जाता है। इसी प्रकार कुटुम्ब वा भोगोपभोगके लिए किया हुआ आरम्भ पाप करनेवाला होता है परन्तु धर्मको बढ़ानेवाले दान, पूजा आदिमें वही आरम्भ पुण्य बढ़ानेवाला होता है।

इस प्रकार पूजाके निन्दकोंका स्वरूप बतलाया विवेकी पुरुषोंको हट नहीं करना चाहिये। हट जिनधर्मका नाश करनेवाला है इसलिये ऊपर लिखे हुए शास्त्रोंसे निश्चय कर लेना चाहिये और शास्त्रानुसार गंध, पुष्पादिक लगाना चाहिये। केवल अपने मनसे अपनी स्वकल्पित बुद्धिसे हट ग्रहण कर निश्चय किये बिना जो व्यर्थ ही अनेक प्रकारके वाचालपनेसे कहते हैं तथा शास्त्रोंका प्रमाण देते नहीं उनके मिथ्यात्वके बंधको श्री वीतराग ही जानते हैं। जो अपनी बुद्धिके बलसे व्यर्थ ही बाद करते हैं उससे मौन धारण करना योग्य है। इस प्रकार प्रसंग पाकर थोड़ा-सा लिखा है फिर भी विशेष स्वरूप जाननेके लिए प्रश्नोत्तरसहित खण्डन-मण्डन पूर्वक चर्चा करना श्रेष्ठ है।

प्रश्न—यहांपर कोई यह कहे कि हम तो इस कथनको नहीं मानते। अभिषेकमें अप्रमाण जल फैलाया

जाता है और बड़ा आरम्भ किया जाता है। इसलिए हम तो केवल प्रतिमाके ऊपरकी धूलि, जाले, मैल आदिकी मलिनताको दूर करनेके लिये तथा उसको उज्ज्वल रखनेके लिये थोड़ेसे जलमें वस्त्र भिगोकर प्रतिमाको पोंछ लेते हैं। तुम्हारे समान घोर आरम्भ नहीं करते। इन आरम्भोंमें कोई पुण्य नहीं है इनमें तो पाप ही पाप है। इन अभिषेकादिकमें कार्य वा फल तो थोड़ा है और कर्त्तव्यता वा आरम्भ बहुत है ऐसा कार्य यथार्थश्रद्धानी नहीं करते। यह तो मिथ्यातियोंका कार्य है। इस प्रकार नाना विकल्पजालरूप विरुद्ध वचन कहते हैं उसका समाधान इस प्रकार है। पहला विचार यह है कि यथार्थ श्रद्धानी किसको कहते हैं। जो भगवानके कहे हुए तत्त्वोंका श्रद्धान करता है वही यथार्थ श्रद्धानी होता है। ऐसे श्रद्धानके बिना केवल जातिश्रद्धानी, नामश्रद्धानी अथवा वचनश्रद्धानी तो यथार्थश्रद्धानी हो नहीं सकते।

दूसरी बात यह है कि मुनि वा श्रावकके त्रिकाल करनेकी सामयिकमें चैत्यभक्तिके पाठमें नीचे लिखे अनुसार लिखा है—

इच्छामि भंत्ते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सा लोचेओ अहलोय, तिरियलोय, उड्ढलोयम्मि, किट्टिमा किट्टिमाणि, जाणि जिणचेइयाणि, ताणि सव्वाणि, तीसु वि लोएसु, भवणवासिय, वाणविंतर, जोइसिय, कप्पवासियत्ति, चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धुव्वेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थात् तीनों लोकोंमें कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय हैं तथा उनमें जो जिनप्रतिमा विराजमान हैं उनकी पूजा भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क तथा कल्पवासी चारों प्रकारके देव करते हैं। वे देव देवोपनीत गंधसे, दिव्य पुष्पोंसे, दिव्य धूपसे, दिव्य चूर्णसे, दिव्य वाससे, दिव्य स्नपनसे (अभिषेकसे) सदा अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना और नमस्कार करते हैं। अतएव सामायिक करनेवाला मैं भी यहाँ ही बैठा हुआ सदा अर्चा करता

हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। ऐसा करनेसे मेरे दुःख नाश हों, कर्म नाश हों, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, सुगतिमें जन्म हो, समाधिमरण हो और भगवानके गुण प्राप्त हों।

इस प्रकार कथन किया है सो क्या देवोंके विमानोंमें वा आवासोंमें भी प्रतिमापर धूलि आदि मलिनता जम जाती है जो देव उसका अभिषेक करते हैं तथा समवशरणमें केवलियोंको छोड़कर मानस्तम्भादिकों पर जो जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं उनको इन्द्रादिक देव अभिषेकपूर्वक पूजा करते हैं ऐसा जिनसेनाचार्यने आदिपुराणमें लिखा है। सो क्या वहाँ भी प्रतिमाकी मलिनता दूर करनेके लिये अभिषेक किया जाता है वहाँपर बिना अभिषेकके पूजा क्यों नहीं की जाती ? क्या आप लोगोंको यह श्रद्धान नहीं होता कि समवशरणकी भूमि दर्पणके समान निर्मल और निष्कंटक है वहाँ मलिनता कहाँसे आई ? सो खूब विचार कर लेना चाहिये। इस कथनको कहनेवाले श्लोक पहले लिख चुके हैं।

इसके सिवाय श्रीपालके जीवने पूर्वभवमें सरोवरके किनारे किसी मुनिको देखकर कहा था कि 'यह मुनि कैसा मलिन दिखता है मानों इसे कोढ़ रोग हो गया हो। यह कभी स्नान नहीं करता, इसकी देह महा मैली ग्लानिरूप अमनोज्ञ है जो देखी भी नहीं जा सकती। श्रीपालके जीवकी यह बात सुनकर उसके साथी सातसौ सुभटोंने भी यह बात मान ली और उन्होंने भी कहा कि हां यह ऐसा ही दिखता है। यह सुनकर श्रीपालके जीवने कहा कि इसको पकड़कर इस सरोवरमें डुबा दो तथा पकड़ कर बहुतसे गोते लगाओ। अपने राजाकी यह बात सुनकर उन सुभटोंने वैसा ही किया और उन मुनिराजको भारी उपसर्ग किया। उसी पापकर्मके उदयसे राजा श्रीपालके तथा उनके साथी सातसौ योद्धाओंके महा कोढ़ रोग उत्पन्न हुआ था तथा वे सातसौ योद्धा समुद्रमें पड़कर डूबे थे इस प्रकारका कथन अनेक ग्रन्थोंमें विस्तारके साथ लिखा है।

जिन लिंगकी (मुनि वा प्रतिमा आदिकी) विचिकित्सा वा ग्लानि करनेका फल सम्यक्त्वका नाश करनेवाला और महापाप बंधका कारण है। इसी प्रकार तुम्हारा भी यह कहना है जो प्रतिमाजी मैली हो जाती हैं, बुरी लगती हैं, अच्छी नहीं लगतीं इसलिये जलके वस्त्रसे पोंछकर उज्ज्वल कर लेते हैं। तुम लोग अभिषेकसे होनेवाले पुण्यको नहीं समझते।

एक विद्याधर अपनी वल्लभाके साथ मेरु आदि पर्वतोंकी यात्राके लिये जाता था। मार्गमें एक महा

वन मिला उसमें एक महामुनि विराजमान थे उन मुनिके शरीरमें उनके अशुभ कर्मके उदयसे अत्यन्त दुस्सह दुर्गन्धमय रोग हो गया था। उसकी दुर्गन्ध हवाके सहारे उस विद्याधरके विमान तक फैल गई थी तथा उस विद्याधरको उस दुर्गन्धसे उत्पन्न हुई ग्लानि सहन नहीं की गई थी इसीलिये वह नीचे उतरा और उसने देखा कि महा मुनिराज ध्यानमें लीन हुए खड़े हैं तदनन्तर उसने उनके शरीरपर बाधन चंदनका सर्वांग लेप किया। उस विद्याधरने वह लेप कुछ भक्तिभावसे नहीं किया था किंतु अपनी ग्लानि दूर करनेके लिये किया था। उस लेपके लगते ही उसकी सुगन्धिसे मुनिराजके शरीरपर बहुतसे भ्रमर आकर लग गये थे जिनसे उन मुनिराजको भारी उपसर्ग हुआ था। जब वे दोनों विद्याधर विद्याधरणी मेरुकी यात्रा कर वापिस आये तो उन्होंने उस भारी अनर्थको देखा। तब उन्होंने अपनी विचिकित्सा वा ग्लानि रूप भावोंकी निन्दा की और उन मुनिराजका उपसर्ग दूर किया। तब अपनी निन्दा करनेसे उस विद्याधरका थोड़ा-सा पाप दूर हुआ। बाकीके पाप कर्मके उदयसे अगले जन्ममें वह विद्याधर किसी सेठकी पुत्री हुआ। तथा कंचन समान (सुवर्णके समान) सुन्दर और सुगन्धमय शरीर हुआ।

इस प्रकार जिनप्रतिमा, जिनधर्म और जिनलिंगके (मुनिराजके) ग्लानि करनेका फल तथा उस पापको दूर करनेके लिये अभिषेक तथा चंदनादिक गंधके लगानेका कथन षट्कर्मोपदेश रत्नमालामें गंधकी पूजाके फलमें विस्तारके साथ बतलाया है। सो कहाँ तो शास्त्रोंका यह कथन और कहाँ तुम्हारा यह उनकी निन्दा करनेवाला वचन सो भी तुमको विचार करना चाहिये।

व्रतकथाकोश तथा षट्कर्मोपदेश रत्नमालामें वा और भी अनेक ग्रन्थोंमें ज्येष्ठजिनवरव्रतके विधानमें ब्राह्मणी सेठकी पुत्री तथा कुम्हारकी कथा लिखी है। इन्होंने श्रीजिनप्रतिमाकी जलकी पूजाके समय कुम्भके (घटके) जलसे अभिषेक किया था तथा अनुमोदना की थी सो उसका फल उनको अलग-अलग महापुण्यरूप मिला था। ऐसा शास्त्रोंमें कथन है। तथा ब्राह्मणीकी सासुने उस अभिषेककी निंदा की थी सो उस निंदाके पापसे उसके मस्तकपर कुम्भके समान बड़ा भारी फोड़ा हुआ। तथा वह महा दुर्भागा और अत्यन्त निंद्यनीय हुई थी। तदनन्तर उन सब जीवोंने मुनिराजसे अपने पहले भव सुने थे उनको सुनकर उसने उस ब्राह्मणीके जीवके चरण स्पर्श किये थे। उन चरणोंके स्पर्श करनेसे ही उसका वह फोड़ा अच्छा हो गया था। तब उसने

अपनी बड़ी निंदा की थी। उस आत्मनिंदासे ही उसका बाकी बचा पाप दूर हो गया था, वह भगवानकी भक्ति करने लगी थी और उससे वह स्वर्गमें उत्पन्न हुई थी। इस कथाका वर्णन विस्तारसे उन ग्रन्थोंमें लिखा है।

इसके सिवाय इन्हीं दोनों ग्रन्थोंमें तथा और भी शास्त्रोंमें एक पुरंदर विधान लिखा है वह इस प्रकार है। एक किसी विष्णुभट्ट नामके ब्राह्मणने किसी मुनिराजसे पुरंदरविधान व्रत लिया था। उसने पंचामृत-का अभिषेककर फिर जल, गंधादिकसे भगवानका महाभिषेक किया था और अष्ट द्रव्यसे पूजा की थी सो उसके फलसे प्रथम तो उसका दारिद्र दूर हो गया था फिर उसने राजपद प्राप्त किया था और अंतमें समाधिमरण धारणकर सौधर्म नामके प्रथम स्वर्गमें सौधर्म नामका इंद्र हुआ था।

देखो कहाँ तो ऐसा करनेवालोंके महान् पुण्यरूप फलका वर्णन है और कहां तुम्हारे मिथ्या और खोटे वचनोंसे उन पुण्यकार्योंकी निंदा और निषेधका कथन है। क्या इससे तुमको दोष नहीं लगेगा? परंतु जीवकी जैसी होनहार गति होती है उसकी बुद्धि भी वैसी ही उत्पन्न हो जाती है। यदि कोई शास्त्राविकोंके प्रमाणसे उपदेश देता है तो भी उसको सत्य बात भी झूठी दिखाई पड़ती है। तथा अपनी झूंठी बात भी सत्य मालूम पड़ती है। ऐसे लोग सैकड़ों शास्त्रोंके वचनोंके तो सबको मिथ्या मानते हैं और अपने वचन सत्य मानते हैं जो शास्त्रोंकी बात छोड़कर उस मिथ्याभाषण करनेवालेके मुखसे निकली हुई बात झट मान लेते हैं। यदि एक वा दो शास्त्र हों तो न माने जायें परंतु अनेक शास्त्र भी सब असत्य माने जाते हैं और उसके निंदक वचन सत्य माने जाते हैं यह सर्वथा अयोग्य है। जैनधर्मी तो सत्य वचनोंको मानकर झूठोंका संग ही छोड़ देते हैं। तथा जो ऐसे मिथ्याभाषियोंका विश्वास कर और जिन वचनोंसे अरुचि कर अनेक प्रकारके विपरीत कथन करते हैं तथा अपनेको अपने ही मुखसे श्रद्धानी बतलाते हैं सो सब मिथ्या है।

इस, अभिषेक, महाभिषेक, जिनपूजा प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, देवदर्शन, वंदन, पूजन, प्रभावना अंग, रथ-यात्रा, रात्रिपूजन आदिमें जो स्वकपोलकल्पित महापापरूप वचन कहते हैं अनेक प्रकारकी निंदारूप बकवाद करते हैं सो इसका कथन पहले लिख ही चुके हैं वहाँसे देख लेना चाहिये।

इस अभिषेकपूर्वक पूजा करनेके समान गृहस्थोंके लिये और कोई भी महापुण्य नहीं है जो लोग इसकी निंदा करते हैं वे निंदनीय हैं ऐसे लोगोंको सुभाषित ग्रन्थोंमें सर्वचांडाल कहा है। यथा—

पक्षीनां काकचांडालः पशुचांडालगर्दभः। मुनीनां कोपचांडालः सर्वचांडालनिंदकः॥

अर्थात् "पक्षियोंमें कौआ चांडाल है, पशुओंमें गधा चांडाल है, मुनियोंमें क्रोधी चांडाल है और निंदा करनेवाला सबसे बढ़कर चांडाल है।"

इसके सिवाय और भी लिखा है यथा—

फलस्य कारणं पुष्पं फलं पुष्पविनाशकः। पुण्यस्य कारणं पापं पुण्यं पापविनाशकः॥
धर्मस्य कारणं पुण्यं पुण्यं धर्मविनाशकः। मोक्षस्य कारणं धर्मः धर्मः मोक्षस्य साधकः॥

अर्थ—जैसे वृक्षमें फल लगनेका कारण पुष्प है। परन्तु वह फल पुष्पका नाश करनेवाला है। भावार्थ—पहले पुष्प आता है फिर फल लगता है और जब फल लगता है तो पहलेके लगे हुए पुष्पोंका नाश कर उत्पन्न होता है। इसलिये वह फल पुष्पोंका नाश करनेवाला है। इसी प्रकार धर्मसेवन करनेरूप पुण्यका कारण गृहस्थधर्ममें होनेवाले आरम्भमय पाप हैं अर्थात् देवपूजाकी सामग्री धोना, मुनियोंको दान देनेके लिये रसोई बनाना आदि खेती, व्यापार आदि छहों कर्मोंसे उत्पन्न हुए आरम्भमय पाप पहले होते हैं तदनन्तर दान देने, पूजा करने आदि शुभ कार्योंसे पुण्य पीछे उत्पन्न होता है परन्तु वह पहले किये हुये समस्त पापोंका नाश करने वाला है। पूजा करने, दान देने आदिसे जो पुण्य होता है वह जिन आरम्भादिक पापोंसे उत्पन्न हुआ था उन आरम्भादिक पापोंको अवश्य नष्ट कर देता है। जो पुरुष अभिषेक, पूजा, तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, दान, आदि कार्योंमें पहले आरम्भजनित पाप जानकर नहीं करते हैं उनके वह महापुण्य भी उत्पन्न नहीं होता है। जिसने मुनिराजको दान नहीं दिया, मुनिराज आये हुये पीछे लौट गये तब उसके पुण्यका तो अभाव होता ही है किन्तु साथमें महापाप भी लगता है क्योंकि श्रावकके आरम्भपूर्वक ही पुण्य होता है।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि देवपूजा करने या दान देनेसे अनेक जन्मोंके महापाप कट जाते हैं तो फिर उस पूजा और दान देनेमें जो आरम्भजनित थोड़ा-सा पाप हुआ है वह तो अवश्य ही कट जाता है और उसी समय कट जाता है। यदि ऐसा न माना जायगा तो जिस पूजा, दानसे एक बारका पाप भी नहीं कट सका तो फिर जन्म-जन्मान्तरके पाप किस प्रकार कट सकते हैं ऐसा भी निश्चय करना पड़ेगा क्योंकि जिससे कुत्ता भी न जीता गया वह हाथीको किस प्रकार जीत सकेगा। दूसरी बात यह है कि ऐसा ही मान

लिया जायगा अर्थात् दान, पूजा आदिसे तज्जनित आरम्भमय पाप दूर नहीं होते हैं ऐसा मान लिया जायगा तो फिर दान, पूजाको कुछ सफलता ही नहीं रहेगी। तथा जब दान, पूजाकी सफलता ही नहीं होगी तो फिर बिना कारणके उससे फलकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकेगी। इसलिये जो विवेकी पुरुष हैं वे पहले थोड़ा-सा धन खर्च करनेपर यदि बहुत-सा लाभ होता हो तो उस कार्यको करते ही हैं इसी प्रकार ये सब पुण्य कार्य हैं तथा जो कृपण हैं, अज्ञानी वा रंक हैं वे बहुतसे लाभके लिए भी अपना थोड़ा-सा धनका खर्च भी नहीं देख सकते। इसलिए वे व्यापाररहित होते हुए आगामी लाभ नहीं उठा सकते। जिस प्रकार पुष्प फलका कारण है उसी प्रकार पूजा, दान आदि आरम्भोंसे होनेवाला थोड़ा-सा पाप भी महापुण्यका कारण है। जो मनुष्य पुष्पको देख कर उसीको दृढ़तापूर्वक पकड़ लेता है और फलको छोड़ देता है यह अत्यन्त मूर्ख गिना जाता है क्योंकि वह पुष्प भी अधिक दिन तक नहीं ठहरता थोड़े ही दिनमें सूख जाता है तथा उसका फल भी उसे नहीं मिलता। इस प्रकार उसके समान कोई मूर्ख नहीं ठहरता। इसी प्रकार थोड़ेसे आरम्भजनित पापके डरसे जो धर्मके कारण पुण्य कार्योंको नहीं करते हैं वे अवश्य ही पुण्यके अभावसे कुगतिमें जाकर उत्पन्न होते हैं।

जिस प्रकार फल लगते ही पुष्पका नाश हो जाता है उसी प्रकार दान, पूजा आदिसे उत्पन्न हुए पुण्यके लगते ही उन कार्योंके आरम्भसे उत्पन्न पाप अवश्य नष्ट हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो फिर तुम जो पूजा, दानादिक करते हो वह भी निष्फल है। तथा कर्त्तव्यता महाहिंसा और आरम्भादिक महापापपूर्वक होती है क्योंकि संसारमें कोई भी कार्य और स्थान निरवद्य (पापरहित) और निर्जीव नहीं है।

इसी प्रकार पुण्य धर्मका कारण है और वह धर्म उसी पुण्यका उत्पादक है तथा वह धर्म मोक्षका कारण और मोक्षका साधक है। इस अनुक्रमसे परस्पर हेतु रूप हैं।

जो मनुष्य आरम्भादिक थोड़ेसे पापके डरसे महापापोंको नाश करनेवाले महान् पुण्यबंधको छोड़ देते हैं वे धर्मके कारण जो पुण्य हैं उसके अभावसे मोक्षके कारण और पापके नाश करनेवाले धर्मको भी छोड़ देते हैं और धर्मका त्याग कर देनेसे महापाप कर्मके उदयसे नरक निगोदादिक दुर्गतियोंको प्राप्त होते हैं। यह ऐसी दुर्बुद्धि बिना अशुभ गति बंधके उत्पन्न नहीं हो सकती।

कोई दो मनुष्य द्रव्य उपार्जन करनेके लिए घरसे निकल कर रत्नद्वीपको चले। मार्गमें चलते-चलते

अनेक प्रकारके कष्ट सहते चोर, भूख, प्यास, ठण्डी, गर्मी, वर्षा आदिके दुःख सहते-सहते अनुक्रमसे समुद्रके किनारे पहुँचे। वहाँ जाकर वे दोनों ही जहाजमें बैठे परन्तु जहाजवालेने वहाँ ले जानेके लिये भाड़ा माँगा सो एक पुरुषने निकाल कर दे दिया परन्तु दूसरा मनुष्य तुम्हारे समान था सो विचार कर कहने लगा कि—"भाई अनेक कष्ट सहकर तो यहाँ तक आये। अब यहाँ सबसे पहले अपने पाससे दाम देने पड़ेंगे रत्नद्वीप पहुँचनेपर न जाने रत्न मिले या न मिले। यदि न मिले तो पासके दाम भी व्यर्थ ही खर्च हो जायेंगे इसलिए इस देनेवालेके समान हमसे तो दिया नहीं जाता। पहलेसे ही घाटा देनेवाले व्यापारको भला कौन करता है? इसलिए यहाँ ही रहना ठीक है अपने पाससे द्रव्य देना ठीक नहीं" ऐसा विचार कर वह उस जहाजसे उतर पड़ा और निष्फल होकर उसने वापिस घरका रास्ता लिया। दैवयोगसे मार्गमें चोरोंने उसका सब धन लूट लिया वह दरिद्र हो गया और घर-घर भीख माँगता हुआ पेट भरने लगा। इस प्रकार अपनी आयु पूर्ण कर मर गया। इस प्रकार अत्यन्त कृपणतासे उसने लोकनिंद्यगति पायी।

दूसरा मनुष्य जहाजका भाड़ा देकर रत्नद्वीप पहुँचा वहाँसे बहुमूल्य अनेक रत्न लाया तथा फिर थोड़ा-सा जहाजका भाड़ा देकर उस जहाजमें बैठकर अपने घर आ पहुँचा। वहाँ आकर उसने पूजा, दान तीर्थयात्रा के द्वारा अनेक प्रकारका पुण्योपार्जन किया और फिर अन्तमें स्वर्गादिक शुभगतिको पाकर तथा वहाँके अनेक सुखोंको भोगकर क्रमसे परमपदको प्राप्त हुआ। इस प्रकार यह उदाहरण है।

आपके समान बुद्धिको धारण करनेवाले पुरुष थोड़ेसे पापके आरम्भके डरसे महापुण्यके कारण ऐसे दान, पूजादिकके फलको छोड़ देते हैं सो यह बुद्धिमानीका काम नहीं है। ऐसे पुरुष तुच्छ बुद्धिवाले कहलाते हैं।

जिस प्रकार अग्निसे जला हुआ पुरुष उसकी शान्तिके लिए किसी अच्छे वैद्यके द्वारा बतलाये हुए क्षार पदार्थोंसे धोता है और फिर अग्निसे सेकता है। यदि वह पुरुष किसी कुवैद्यके कहनेसे उस जले हुएके ऊपर शीतल जल डाल दे तो महाउपद्रव उत्पन्न हो जाय। यदि अग्निसे जला हुआ वह पुरुष क्षार पदार्थसे धोने और अग्निके सेकसे डर जाय और उस कुवैद्यके वचन मानकर सुवैद्यके वचनोंको छोड़कर शीतल जलसे धो डाले तो उसकी मूर्खताका क्या पूछना?

किसी एक मनुष्यने अपने किसी कुमित्रके कहनेसे अधिक भाँग पी ली उसके नशेसे उसको बहुत दुःख

हुआ तब किसी अच्छे वैद्यने उसको थोड़ा-सा सर्पफेन अर्थात् अफीम दे दी उसके खानेसे उसका नशा जाता रहा और वह सुखी हो गया। यह देखकर कोई कुवैद्य कहने लगा कि यह उपाय तो अनर्थ करनेवाला है क्योंकि इसको भांगका नशा हो हो रहा है यदि इसके ऊपर फिर अफीमका विष दिया जायगा तो यह मर जायगा। इस प्रकार उस सुवैद्यकी निन्दा कर उसको शीतल जलमें रहनेकी क्रिया बतलाता है परन्तु उससे उसका नशा और बढ़ जाता है।

इसी प्रकार पापोंमें भी अनेक प्रकारके भेद हैं एक तो असि, मसि, कृषी, वाणिज्य, शिल्प, पशुपालन आदि गृहस्थ सम्बन्धी पाप हैं। दूसरे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रहरूप पाप हैं। तीसरे चक्की, उखली, चूल, बुहारी, पानी आदिसे होनेवाला पाप है। ये सब पाप नित्य होते हैं और इन्हीं पापोंसे यह जीव नरकादिक दुर्गतियोंमें जाता है। इन्हीं सब पापोंको दूर करनेके लिए तथा महापुण्य उपार्जन करनेके लिए परम्परासे मोक्षका साधनरूप धर्मके लिए भगवानने षट्कर्म करनेवाले गृहस्थोंको थोड़ी-सी आरम्भजनित हिंसासे होनेवाले पूजा, दान आदि उपाय बतलाये हैं क्योंकि गृहस्थोंको असि, मसि आदि छहों कर्मोंसे अथवा इन्द्रियोंके विषय भोगोंसे होनेवाले त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसासे महापाप उत्पन्न होता है। ऐसे आरम्भी श्रावकोंके लिये दान, पूजा आदि आरम्भमय कार्योंसे ही पुण्य उपार्जन हो सकता है। जो मुनिराज अनारम्भी हैं सब तरहके आरम्भके त्यागी हैं उनके उन आरम्भोंके त्यागसे ही धर्म होता है। गृहस्थ धर्ममें रहकर भी जो थोड़ा-सा मुनियोंकासा आचरण पालन करते हैं उनके लिए ऐसा करना आज्ञाधर्म नहीं है। पूर्वाचार्योंके वचनोंके विरुद्ध परम्परासे चले आये मार्गका बाध करना सर्वथा अयोग्य है। भावार्थ—ऐसा करना अपने कर्त्तव्यकी विपरीतता है।

देखो दूसरोंके प्राणोंको पीड़ा पहुँचानेमें धर्म नहीं है साक्षात् पाप है इस बातको सब जीव मानते हैं अन्य मती भी मानते हैं। सो ही लिखा है—

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

अर्थात् "दूसरोंका उपकार करना पुण्य है और दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना पाप है।" ये वेद व्यासके वचन हैं। श्रीआचार्य उमास्वामीने भी कहा है—"प्रमत्तयोगात् प्राणव्यरोपणं हिंसा" अर्थात् कषायोंके निमित्तसे दूसरोंके प्राणोंका घात करना हिंसा है" इत्यादि बहुतसे वचन हैं और सब निस्सन्देह रूप हैं यदि दूसरोंको

दुःख पहुँचानेमें कोई दया, धर्म बतलावे तो सब लोग उसको झूठा कहते हैं। तथा है भी इसी प्रकार। परन्तु यदि किसी जीवके वात-व्याधि (वायुका रोग) हो जाय, विसूचिका होकर उदरमें शूल हो जाय अथवा किसी बालकके ऊर्ध्वश्वास आदि रोग हो जाय अथवा सन्निपात, तिल्ली आदि अनेक प्रकारके रोग हो जायें और कोई परोपकारी भव्य पुरुष उसपर दयाकर उस रोगको शान्त करनेके लिए लोहेको जलती हुई लाल सलाईसे दाग देकर शरीरके किसी एक भागको अथवा अधिक भागको जलाता है और उस समय वह रोगी अथवा बालक उस जलानेकी वेदनासे दुःखी होकर करुणाजनक त्राहि-त्राहि पुकारता हुआ चिल्लाता है। इसी प्रकार गाय, बैल, घोड़ा आदि पशुओंके हाथ, पांव बांधकर तथा पृष्ठांपर पटक कर किसी रोगको दूर करनेके लिये उपकारी पुरुष दाग देते हैं और वे पशु उसकी भारी वेदनाको सहते हैं। इसी प्रकार यदि किसीके फोड़ा हो जाता है तो उसके उस फोड़ेको शस्त्रसे फाड़ते हैं, चीरते हैं, सीते हैं इत्यादि आसुरी उपाय करते हैं उनसे यह जीव बड़ा भारी कष्ट पाता है। तथा ऐसे उपायोंसे कोई जीव मर भी जाता है। कोई-कोई भव्यजीव किसी मुनिके इन वेदनाओंके हो जानेपर यही उपाय करते हैं तथा ऐसा उपाय करते-करते भी किसी-किसीका मरण हो जाता है। परन्तु ऐसे उपाय करनेवाले परोपकारीको हिंसा होते हुए भी दया, धर्मका ही महापुण्य होता है। लौकिकमें भी ऐसे पुरुषको हत्याके पापका प्रायश्चित्त नहीं देते हैं। इसका विशेष वर्णन श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत 'पुरुषार्थ-सिद्ध्युपायमें स्पष्ट रीतिसे किया है। तथा इस ग्रन्थमें भी पहले चर्चाओंमें लिखा है वहांसे देख लेना चाहिये।

इसी प्रकार असत्य त्याग व्रतको धारण करनेवाला अन्य जीवोंकी हिंसा होनेके समय केवल दया-धर्मके लिए उन जीवोंकी हिंसा न होने देनेके लिए सत्यव्रतको छोड़कर असत्य भाषण करता है तो भी उसका सत्यव्रत भंग नहीं होता ऐसे भगवानके वचन हैं। इसका भी कारण यह है कि हिंसा करनेवाला जानबूझकर हिंसा करता हो और उससे वह हिंसा न हो सके तो भी उसको उसके पापका फल मिलता ही है यदि हिंसाका उद्देश्य न हो केवल धर्मके लिए कोई पुण्य कारण किया जाय और उसके निमित्तसे अनाश्रित हिंसा हो जाय तो उसका फल दयारूप ही लगता है क्योंकि वह हिंसा जानबूझ कर तो की नहीं है तथा हिंसा करनेके भाव भी नहीं हैं।

१. यह ग्रंथ विस्तृत हिन्दी टीका सहित भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था नं० १२ विश्वकोष लेन, पोस्ट बाघबाजार, कलकत्तामें छपा है और वहांसे मिल सकता है।

देखो साक्षात् हिंसा करनेवाला राघव महामत्स्य तो नरक जाता है सो तो ठीक ही है क्योंकि वह बड़े-बड़े जलचर समान जीवोंको भक्षण करता है, इसलिये वह नरक जाता है। परंतु उसके कान वा आँखके पलक-में रहनेवाला तंदुल वा चावलके समान शरीरको धारण करनेवाला शालिसिक्थ नामका मत्स्य केवल कान वा नेत्रके मलको खाकर जीवित रहता है परन्तु जीवघातके बिना भी वह नरकमें जाता है। इसका कारण केवल भावहिंसा है। उसके भावहिंसा सदा बनी रहती है इसीलिये वह नरक जाता है। यह सब कथन पुरुषार्थ-सिद्धयुपायसे जान लेना चाहिये। इसका वर्णन पहले भी कर चुके हैं।

अतएव भगवानके वचनोंको प्रमाण मानकर संशय मिथ्यात्वमें नहीं पड़ना चाहिये और न अनेक प्रकारका विपरीत कथन करना चाहिये। जो कोई ऐसा विपरीत कथन करता है उसके पाँचों प्रकारके मिथ्यात्व-का दोष लगता है। तथा मिथ्यात्वका दोष लगनेसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला श्रद्धान नष्ट हो जाता है इसलिये जिनपूजा, प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, रात्रिपूजन, अभिषेक, दान, धर्म आदिमें पापरूप श्रद्धान नहीं करना चाहिये। जो ऐसा विपरीत श्रद्धान करते हैं वे ऊपर कहे हुये शास्त्रोंके, उनका कर्ता आचार्योंके तथा परंपरासे पंच परमेष्ठीके, जिनधर्म, जिनचैत्य और जिनचैत्यालयके विरोधी समझे जाते हैं। उन शास्त्रोंके प्रमाण पहले अलग-अलग सबके दे चुके हैं उनको समझ कर विवेकी जीवोंको जिनेन्द्रदेव, धर्म, गुरु, शास्त्रका विनय करना चाहिये उनकी आज्ञा मानकर उनमें कहे हुये मुख्य धर्मको धारण करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते हैं वे देव, धर्म, गुरु-शास्त्रकी निंदा करनेवाले मिथ्यात्वी कहलाते हैं।

प्रश्न—यहाँपर कोई शंका करता है कि भाई तुम कहते हो सो ठीक है परन्तु यदि निरवद्य (सचित्त-घातके दोष रहित) पूजा आदि हो सकती है तो वही करनी चाहिये।

समाधान—परन्तु उसका उत्तर यह है कि श्रावकके लिये मुख्यतासे ऐसा होना असंभव है। तुम जो पूजा करते हो वह भी निरवद्य (आरम्भादिकके पापसे रहित) दिखाई नहीं पड़ती। यदि तुम फिर भी यह कहो कि हम तो निरवद्य ही पूजा करते हैं तो सुनो। सबसे पहले तुम स्नान करते हो सो वह भी प्रसुक जलसे नहीं करते। पूजाके द्रव्य धोते हो सो भी प्रासुक जलसे नहीं धोते। बादाम, सुपारी, नारियल, इलायची आदि सावद्य फलोंको छोड़कर और कोई निरवद्य फल नहीं चढ़ाते, भगवानका प्रक्षालन करते हो अथवा जल-

धारा देते हो उसमें बिना उपदेशके प्रासुक गर्म किया हुआ दूसरेके घरका जल काममें नहीं लाते। घरसे निकलकर ईर्यासमितिसे जिनालय नहीं जाते। दर्शन, वंदना, पूजा आदि कार्योंको प्रतिलेखन वा प्रतिक्रमणपूर्वक नहीं करते, तीर्थयात्रा निकलवाते हो, जलयात्रामें जाते हो और साधन मिलाकर इन सब कार्योंको देखते हो परंतु इन सब कार्योंमेंसे एक भी कार्य ऐसा नहीं है जो विना सावद्ययोगके होता हो। जो नवीन जिनमंदिर बनवाते हो उसमें आरम्भाविक महा हिंसा होती है, फिर उसमें जिनमूर्ति विराजमान करते हो, चारों ओर बहुतसा सामान इकट्ठा करते हो, अनेक प्रकारके पकवान बनाते हो उसमें बहुतसा जल फैलाया जाता है तथा और भी कई प्रकारसे बहुतसे त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा होती है। जो प्रत्यक्ष सबको दिखलाई पड़ती है फिर इतना आरम्भ क्यों करते हो, अपनी शक्तिके अनुसार द्रव्य देकर सीधी तैयार बनी बनाई प्रासुक हवेली मोल लेकर उसमें भगवान विराजमान क्यों नहीं कर देते? अथवा अपनी बनी हुई सुन्दर हवेलीमें ही विराजमान क्यों नहीं कर देते? अपने लिये और हवेली बनवा लेना चाहिये क्या इसमें पुण्य नहीं है? शिल्पकारसे मूर्ति मोल लेकर योंही बिना प्रतिष्ठाके विराजमान कर पूजा क्यों नहीं करते हो? विनय, भक्ति आदि सब तो अपने भावोंके आधीन हैं फिर प्रतिष्ठा आदिका व्यर्थ आरम्भ क्यों करते हो? प्रयोजन तो केवल धर्मसाधनसे है फिर व्यर्थ ही हिंसादिकका आरम्भ क्यों करना चाहिये? परन्तु ऐसा तुम न करते हो और न करना चाहिये। तुम लोग अपने आरम्भाविकके दोषोंको तो ढकते जाते हो और दूसरेके दोषोंको प्रगट कर निन्दा करते हो सो यह सज्जनोंका धर्म नहीं है।

प्रश्न—अभिषेकाविकका वर्णन शास्त्रोंमें कहां लिखा है?

नित्य अभिषेक पाठ, महा अभिषेकपाठ, शांत्यभिषेक पाठ, बृहत् शांत्यभिषेक पाठ, व्रतोद्यापन विधान व्रत धारण तथा व्रतोंके धारण करनेकी विधि, नित्य पूजा, नैमित्तिक पूजा, प्रायश्चित्त शास्त्र, अष्टान्हिका, षोडशकारण, दशलाक्षणिक, रत्नत्रय, अक्षयनिधि, मुकुटसप्तमी, आदित्यव्रत, ज्येष्ठ जिनवर, मेघमाला, आकाशपंचमी, निर्दोष सप्तमी, चंदनषष्ठी, पुष्पांजलि, अनंत व्रत आदि समस्त जिनभाषित व्रतोंके विधानमें, कथा सहित व्रतकथा कोशोंमें, प्रतिष्ठा शास्त्रोंमें, बृहत् आदिपुराण, लघु आदिपुराण, उत्तरपुराण, पांडवपुराण, बृहत् हरिवंश, लघु हरिवंश, बृहत्पद्मपुराण, लघु पद्मपुराण तथा गाथा बद्ध पद्मपुराण, षट्कर्मोपदेश रत्नमाला, यशस्तिलक महाकाव्य, पूजासार संहिता, जिन संहिता, श्रावकाचार आदि समस्त जैनशास्त्रोंमें

पंचामृतको आदि लेकर जलादिक गंधोदक पर्यन्त भगवानके मस्तकसे लेकर समस्त शरीर पर अभिषेक कहा है यह अभिषेक एक, दो, चार शास्त्रोंमें नहीं किन्तु इस प्रकरणके समस्त शास्त्रोंमें बतलाया है।

आप लोग भी पूजामें जलकी पूजा करते समय भगवानके सामने जलधारा देते हो तथा व्रतोंके उद्यापनोंमें जल, इक्षुरस, घृत, दही, दूध आदि पंचामृत तथा जलके कलश भर-भर करके बाजे गाजेके साथ जय जय शब्द करते हुए अपने उत्कृष्ट भाव लगाकर तथा अपने नेत्रोंको आनन्दसे तृप्त करते हुए भगवानके सामने खड़े होकर दूधमें ही किसी अन्य पात्रमें उनकी धारा देते हो। अब इसमें विचारकी बात यह है कि आप लोग भगवानके ऊपर तो जलादिकको धारा नहीं देते किन्तु खड़े होकर सामने देते हो सो यह विधि शास्त्रानुसार करते हो! या केवल अपने बुद्धिबलसे करते हो? अथवा दूसरेकी देखा-देखी केवल स्पर्द्धाके लिए करते हो। तथा जो करते हो उस कर्त्तव्यका फल पुण्यरूप जानते हो या पापरूप? इन कार्योंके लिए आपकी जैसी श्रद्धा हो वैसा करो। जो इन कार्योंमें आपकी श्रद्धा पापमयी है तो दूसरोंकी देखा-देखी वा दूसरोंकी ईर्षासे व्यर्थ ही जबर्दस्ती अपना अकल्याण क्यों करते हो। यह काम श्रद्धानियोंका नहीं हो सकता। क्योंकि जो धर्म-कार्योंमें अपनी मान-बड़ाईके कारण पापोपार्जन करते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं यदि इन कार्योंको धर्मके लिए वा महापापोंको दूर करनेके लिए और महापुण्य उपार्जन करनेके लिए करते हो तो फिर अन्य ऐसे ही कार्योंका निषेध क्यों करते हो। जब दूरसे ही इन जलधाराओंके करनेका इतना शुभफल होता है तो फिर अत्यन्त निकट करनेसे और अधिक फलका होना स्वयं सिद्ध है। यदि इन कार्योंमें पाप ही माना जाय तो श्रीगुरुओंने शास्त्रोंमें ऐसा क्यों लिखा है? ये सब बातें भी तो विचार लेनी चाहिये।

इसके सिवाय श्री वसुनन्दिस्वामीने अपने श्रावकाचारके ४९२ गाथामें लिखा है कि "भगवानका अभिषेक करनेके फलसे यह भव्यजीव मेरुपर्वतपर इन्द्र विक देवोंके द्वारा क्षीरोदधिके जलसे बड़ी भक्तिपूर्वक स्नान कराया जाता है। भावार्थ—अभिषेकके फलसे यह जीव तीर्थङ्कर होता है और फिर इन्द्रादिक देव उसका अभिषेक करते हैं। सो ही लिखा है—

अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरि।
खीरोयजलेण सुरिंदपमुह देवेहिं भत्तिस्स॥ ४९२॥

टीका–अभिषेकफलेन नरः अभिषेकं प्राप्नोति सुदर्शनमेरौ क्षीरोदधिजलेन सुरेन्द्रप्रमुख-देवैः भक्त्या।

इस प्रकार लिखा है इसी प्रकार श्रीयोगीन्द्रदेवने अपने श्रावकाचारमें लिखा है।

जो जिण ण्हावइ धीयय पइ

जो भगवानका अभिषेक करता है वह उसी पदको प्राप्त होता है।

इसके सिवाय और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है जो सब लिखा भी नहीं जा सकता। दूसरी बात यह है कि इन कार्योंमें जो जलादि द्रव्यका आरम्भ होता है उससे महापुण्य प्राप्त होता है। तथा उस आरम्भ-से होनेवाला पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। देखो इस लोकमें अनेक प्रकारके विष हैं उनके खानेसे प्रत्यक्ष शीघ्र ही प्राण नष्ट हो जाते हैं परन्तु वही विष यदि किसी सुवैद्यके द्वारा विधिपूर्वक पकाकर संशोधन कर लिया जाय तो फिर उसको मिरच आदि अन्य औषधियोंके साथ खानेसे सन्निपातादिक महादुस्सह और प्राणांत करनेवाले रोग भी शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और वह खानेवाला मनुष्य जीवित हो जाता है। यदि वही विष किसी कुवैद्यके द्वारा विपरीत क्रियासे शोधा जाय तो वह शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट कर देता है। क्योंकि संसारमें जितने पदार्थ हैं वे यथायोग्य पुरुषोंके सम्बन्धसे यथायोग्य गुणोंको धारण करते हैं। अयोग्य और सर्वथा त्याग करने योग्य विष भी अनुपानके द्वारा महागुणकारी हो जाता है। यदि हठ करके सब तरहसे ग्रहण करने योग्य उस गुणकारी विषको न ग्रहण किया जायगा तो वह पुरुष मरणको प्राप्त होगा ही। इसलिये किसी एक नयसे तो वह विष है ग्रहण करने योग्य नहीं है त्याग करने योग्य है तथा वही विष दूसरे नयसे ग्रहण योग्य है। इसी प्रकार अपनी इन्द्रियोंके विषय-भोगोंके लिए किये हुए हिंसा आरम्भादिक सावद्य योग त्यागरूप हैं परन्तु पूजा, दान, तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमादि, अभिषेक, रात्रिका जागरण, प्रभावना, रथयात्रा, नित्य दिन रात्रिगत पूजाभिषेक, गीत, वादित्र, जिनमहिमा आदि जो-जो धर्मके कारण हैं और प्रबल पुण्य उत्पन्न करनेवाले कार्य हैं उनमें अनाश्रित यत्नाचारपूर्वक कर्त्तव्योंमें जो कुछ थोड़ा-सा आरम्भ होता है सो उस पूजा, दानादिकके होनेपर उसके प्रबल पुण्यके अतिशयसे शीघ्र ही भस्म हो जाता है जैसे

अग्निका एक छोटा-सा कण भारीसे भारी घासके ढेरको शीघ्र ही भस्म कर देता है उसी प्रकार दान, पूजादिकके पुण्यसे उससे होनेवाले आरम्भजनित पाप शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं। यदि वह अग्निका कण किसी सूखे पुराने घासके पूलेको भी न जला सके तो वह अग्निका कण हरी वनस्पतियोंको किस प्रकार जला सकेगा। इसी प्रकार पूजा, दान आदिसे उत्पन्न होनेवाला पुण्य यदि उस पूजा, दानादिकके आरम्भसे उत्पन्न होनेवाले थोड़ेसे पापको ही नष्ट नहीं कर सकेगा तो फिर वह पूजा, दानादिकसे उत्पन्न होनेवाला पुण्य एक जन्मके अथवा अनेक जन्मोंके पापोंको किस प्रकार नष्ट कर सकेगा ? अर्थात् ऐसे उस पूजा, दानसे अनेक जन्मके पाप कभी नहीं मिट सकते। क्योंकि जिस मनुष्यसे एक सरसोंका बोझा नहीं उठाया जा सकता वह मेरुपर्वतको किस प्रकार उठा सकेगा। हाँ, जो मेरुपर्वतको उठा सकता है वह सरसोंको सहज रीतिसे उठा सकता है। अथवा विषका छोटा-सा कण शीतोपचार करनेवालेको वा शीतलादि युक्त पुरुषको किसी प्रकारका दोष नहीं कर सकता किन्तु उस शीत वा सन्निपात आदि दोषोंको दूर कर अनेक प्रकारके गुण उत्पन्न करता है। उसी प्रकार भगवानकी पूजा, पूजा करनेवालेके आरम्भादिक सावद्य दोषोंको दूर कर महापुण्यराशिको उत्पन्न करती है ऐसा श्रीसमन्तभद्रस्वामीने कहा है जो पहले भी लिख चुके हैं। यथा—

पूज्यं जिनं त्वाचर्यतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशिः।

अर्थात् "जो पुरुष पूज्य भगवानकी पूजा करता है आरंभजनित पाप बहुत थोड़ा होता है और पुण्यराशि बहुत होती है।

श्रीवसुनन्दिस्वामीने भी लिखा है—

मालाधूपप्रदीपाद्यैः सचित्तैः कोर्चयेज्जिनम्। सावद्यसंभवं वक्ति यः स एवं प्रबोध्यते॥
जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्विषं हंति यत्कृतम्। सा किन्नयजनाचारैर्भवं सावद्यमंगिनाम्॥
प्रेर्यन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः। तत्राल्पशक्तितेजस्सु का कथा मशकादिषु॥
भुक्तं स्यात्प्राणनाशाय विषं केवलमंगिनाम्। जीवनाय मरीच्यादि सदौषधविमिश्रितम्॥
तथा कुटुंबभोगार्थमारंभः पापकृद् भवेत्। धर्मकृद् दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा॥

अर्थ—जो कोई संशय रखनेवाला जीव जिनपूजा आदि कार्योंमें सुगन्धित मनोज्ञ पुष्पोंकी गूंथी हुई मालासे श्रीखंडादिक सुगन्धित चूर्णकी बनी हुई धूपको अग्नि प्रक्षेपण करनेसे तथा अनेक दीपकोंको जलाकर आरती करनेसे पूजामें पाप बतलाता है तथा जल, गंध, अक्षत, नैवेद्य, फल, दूब, दर्भ आदि चढ़ानेमें अथवा पंचामृताभिषेक, महाभिषेक, रात्रिपूजा, कीर्तिकोत्सव आदिको प्रभावनामें, तीर्थयात्रा, रथयात्रा, जिनबिंब बनवाना, जिनालय बनवाना, प्रतिष्ठा करना, शान्तिकपूजन, अष्टाह्निक, महामह, इन्द्रध्वज, कल्पवृक्षादि, हवनादिकके कार्य आदि शास्त्रोक्त धर्मकार्योंमें पाप बतलाता है उसे इस प्रकार समझाना चाहिये कि हे वत्स! भगवानकी पूजा करनेसे अनेक जन्मके उपार्जन किये हुये बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं फिर क्या उसी पूजासे उस पूजा करनेवालेके इस जन्मके किये हुये पाप अथवा उस पूजा, रथयात्रा आदि धर्मकार्योंसे उत्पन्न हुये कुछ थोड़ेसे पाप नष्ट नहीं हो सकते? अवश्य नष्ट होते हैं जिस प्रकार प्रलयकालकी जिस प्रबल पवनसे पर्वतके समान बड़े-बड़े हाथी उड़ जाते है उस पवनसे क्या जरा जरासे मच्छर नहीं उड़ सकते? अवश्य उड़ जाते हैं। ऐसा समझकर ऊपर लिखे अनुसार जिनवाणीकी निन्दा कर अनंत संसारका बंध नहीं करना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि जिस विषसे यह प्राणी मर जाता है वही विष यदि अच्छी तरह पकाकर शुद्ध कर लिया जाय और कालीमिरच आदि अच्छी तरह औषधियोंके साथ खाया जाय तो उसी विषसे रोग दूर हो जाते हैं और खानेवाला मनुष्य मरनेसे बच जाता है। उसी प्रकार कुटुम्बको पालन करनेके लिये अथवा भोगोपभोग सेवन करनेके लिये जो पाप किये जाते हैं वे तो पाप हैं परन्तु दान, पूजा आदि धर्मकार्योंमें जो कुछ थोड़ासा पाप होता है वह पाप उन धर्म कार्योंसे नष्ट हो जाता है तथा अन्य इकट्ठे हुए सब पापोंको भी नष्ट कर देता है। ऐसे श्रीवसुनंदिके वचन हैं। जिन जीवोंकी होनहार गति अच्छी नहीं है ऐसे जीव ऊपर लिखे आचार्योंके वचनोंको नहीं मानते हैं।

प्रश्न—हम लोग ऊपर लिखे कार्योंको छोड़कर जो कुछ करते हैं वह यत्नपूर्वक आरम्भको घटा-घटा कर थोड़ेसे ही आरम्भसे करते हैं तुम्हारे समान बहुतसा आरंभ नहीं करते। परन्तु इसका उत्तर वा समाधान यह है कि श्रीजिनमूर्तिका नग्न, महाव्रतरूप और वीतरागस्वरूप है। उसमें अट्ठाईस मूलगुण तथा चौरासी लाख उत्तरगुण सबका समावेश है, उसमें सब पापोंका त्याग है तथा स्नानका त्याग तो मुख्यतासे है। फिर

उस मूर्तिको कच्चे जलसे प्रक्षालन क्यों करते हो ? क्या कच्चे जलको एक-एक बूंदमें असंख्यात जीव नहीं है ? क्या उनका घात नहीं होता ? और फिर भगवानको प्रक्षालन करना उनके त्यागका भंग करना नहीं है ? क्योंकि उनके तो स्नानका त्याग है। इसके सिवाय उनके वस्त्रोंका भी त्याग है फिर प्रक्षाल करते समय उनके सब शरीरपर वस्त्रका संबंध क्यों करते हो ? क्या यह उनका व्रत भंग करना नहीं है ? जिस किसी पुरुषने चार प्रकारके आहारका त्याग कर उपवास धारण किया है वह यदि पानीकी एक बूंद पी ले अथवा भोजनका एक कणा मुखमें रखकर खा ले तो उसका उपवास बना रहेगा या भंग हो जायगा। कदाचित् यह कहो कि इससे उसकी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी और इसीलिये तुम लोग चरणोंके नाखूनपर थोड़ासा गंध लगानेमें भी सरागताका दोष मानते हो तो फिर जो दंतधावनके त्यागी हैं, स्नानके त्यागी हैं, वस्त्रोंके त्यागी हैं और अन्न-पानके त्यागी हैं इसलिये स्नान, वस्त्र, जल, नैवेद्य, पुष्प, गंधार्चन आदि आठ द्रव्योंसे उनकी सराग पूजा क्यों करते हो ? क्या इन कार्योंमें आरम्भ नहीं है अथवा आप लोगोंको दोष लग नहीं सकता ? क्या बात है ? सो बतलाना चाहिये। अतएव हठ करना अज्ञानियोंका काम नहीं है। ऐसा अनेक ग्रन्थोंमें लिखा है। ज्ञानी पुरुषोंको समझनेके लिये तो एक ही शास्त्रका प्रमाण बहुत है। जो भगवानकी आज्ञाका पालन करते हैं वे तो एक ही शास्त्रका प्रमाण मान लेते हैं सो ही ही लिखा है "सुज्ञेषु बहुनोक्तेन किमित्यलम्" अर्थात् "विद्वानों-को बहुत कहनेसे कोई लाभ नहीं होता" उनके लिए एक ही प्रमाण है परन्तु जो भगवानकी आज्ञा नहीं मानते उनके लिये कहना न कहना दोनों समान हैं, अनेक प्रमाण बतलानेपर भी वे नहीं मान सकते।

फिर भी इसी विषयको उदाहरण देकर बतलाते हैं। यदि कोई दुष्ट पुरुष शिकार करके वा जाल फैला-कर अथवा किसी शस्त्रसे पशु, पक्षी, मछली आदि जीवोंको मारता हो और उसको अहिंसाणुव्रतको धारण करने-वाला श्रावक उपदेश देकर छुड़ाता हो और वह न मानता हो तो क्या करना चाहिये। उसको जबर्दस्ती छुड़ाना चाहिये या मरने देना चाहिये ? यदि वह जबर्दस्ती छुड़ानेपर भी नहीं मानता है तो पत्थर, लकड़ी, जूते, शस्त्र आदिसे धमका कर वा प्रहार कर भी छुड़ाते हैं उस धमकी वा मारपीटमें कोई-कोई मर भी जाता है अथवा पशु-पक्षियोंमें अनेक जीव दूसरोंको मारकर खाते हैं उनको पत्थर, लकड़ी आदि की घातसे छुड़ाते हैं। जो जीव पत्थर, लकड़ीके घातसे अपने आहाररूप जीवको छोड़ देता है उसके भोगोंका अन्तराय होता है

और भूख न मिटनेसे उसके प्राणोंको पीड़ा होती है। जो खानेकी आशा लगी हुई थी वह निराश हो जाती है। ऐसी हालतमें उस जीवके छुड़ानेका फल दयारूप होता है ? या हिंसारूप ? इस विषयमें आप लोगोंकी क्या सम्मति है ? जीव तो दोनोंमें है अन्तर केवल इतना है कि एक स्थानपर तो रागभाव और करुणासे बचाया जाता है और दूसरी जगह द्वेष-भावसे तथा क्रोधपूर्वक हिंसा करनेके भावसे प्रहार किया जाता है और उसके खाने-पीनेमें अन्तराय किया जाता है और इसमें प्रत्यक्ष हिंसारूप कार्य होता है। मोक्षशास्त्रमें भी लिखा है–"प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा" अर्थात् प्रमाद वा कषायके योगसे जो प्राणोंका वियोग किया जाता है उसको हिंसा कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि केवल जीवोंका घात करनेसे ही हिंसा नहीं होती किन्तु अपने परिणामोंके अनुसार हिंसा होती है।

इसी प्रकार जीवोंके काम-भोगादिकके कार्योंमें दान, लाभ, वीर्यादिकके लाभ होनेपर विघ्न करना, रोकना सो अन्तराय कर्मके आस्रवका कारण है सो ही लिखा है–"विघ्नकरणमन्तरायस्य" अर्थात् दान, लाभादिकमें विघ्न करना अन्तराय कर्मके आस्रवका कारण है। इसी प्रकार दूसरेके अन्न-पानादिकका रोकना अहिंसाणुव्रतका अतिचार है। सो ही लिखा है–"बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः" अर्थात् "बाँधना, मारना, छेदना, अधिक भार लादना और अन्नपानका निरोध करना ये पाँच अहिंसाणुव्रतके अतिचार हैं" इन दोनों बातोंका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण तुम लोगोंके किस प्रकार है ? कदाचित् यह कहो कि जीवोंका बचाना केवल उनकी दयाके लिये है उससे चाहे दूसरे जीवको अन्तराय हो या भूखा मरना पड़े अथवा बचानेमें किसीका घात भी हो जाय सो भी दयारूप परिणाम होनेके कारण उससे पुण्यबंध ही होता है। इसी प्रकार अभिषेक करनेमें, पूजा करनेमें तथा और भी ऊपर लिखे हुए कार्योंमें जो थोड़ा-सा आरम्भजनित पाप होता है वह भी पुण्य सम्पादनके लिये है ऐसा ही श्रद्धान, ज्ञान, आचरण आपको करना पड़ेगा। कदाचित् इन अभिषेक वा पूजादिकके कार्योंमें हिंसादिक पाप मानोगे या इनको कर्मबंधके कारण मानोगे तो फिर वह श्रद्धान, ज्ञान, आचरण, तेरहपंथी, ढूँढ़िया साधुओंका हो जायगा। एक जगह बाईस डोलेके ढूँढ़िया साधु थे। उनमें एक भीष्म नामका ढूँढ़िया था। वह अपने गुरुसे लड़ पड़ा और लड़कर उसने अपने नामका एक जुदा ही पंथ चलाया। धीरे-धीरे उसके साथ बारह ढूँढ़िया और आ मिले। इस प्रकार उन तेरह आदमियोंका पंथ तेरहपंथ

कहलाता है। उनका सिद्धांत है कि यदि किसी चूहेको बिल्ली मारे अथवा कोई जीव अपने आहारके लिये किसी जीवको मारनेके लिए पकड़े अथवा मारे और उसको कोई छुड़ावे तो उसको अठारह प्रकारके पाप लगते हैं। इसलिये दया-धर्म पालन करनेवालेको ऐसे पकड़े हुए जीव नहीं छुड़ाने चाहिये। ऐसा उन तेरहपंथियोंका श्रद्धान है। तथा इससे मिलता-जुलता तुम्हारा श्रद्धान हो जाता है क्योंकि पूजा, अभिषेक आदिमें जो थोड़ा-सा आरम्भजनित पाप होता है तुम उनके करनेका ही निषेध करते हो? इसलिये तुम्हारा श्रद्धान, ज्ञान, आचरण तेरहपंथियोंका-सा समझा जाता है।

प्रश्न—कदाचित् यह कहो कि उस पकड़े हुए जीवको छुड़ाना उसके प्राणोंकी रक्षाके लिये और उसको अभयदान देनेके लिये है। क्योंकि पहले उस जीवको छुड़ानेमें थोड़ी-सी मारकूट आदि अशुभ कार्योंसे थोड़ा-सा पाप होता है। परन्तु उससे बहुत अधिक दया-धर्म उत्पन्न होता है। तो इसका उत्तर वा समाधान यह है कि यहाँपर पूजा, अभिषेक आदि कार्योंमें भी अपनी इन्द्रियोंके विषय-भोग पुष्ट नहीं किये जाते किन्तु भगवानका स्तोत्र करने, णमोकारादि मन्त्रोंका पाठ करने, भगवानके सामने अनेक प्रकारकी भक्ति, ध्यान, वन्दना आदि करनेसे महापुण्य उत्पन्न होता है तथा अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं फिर भला इन कार्योंका निषेध क्यों करना चाहिये। देखो णमोकार मंत्रके पाठ मात्रसे सब पाप दूर होते हैं ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। यथा—'एसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।' इसलिये भगवान अरहन्तदेवकी आज्ञाको भंग करनेवाला मिथ्यात्व-रूप खोटे श्रद्धानको छोड़कर जैनशास्त्रोंके अनुसार श्रद्धान करना चाहिये। तभी सच्चा श्रद्धानी कहलाता है। केवल अपने मुखसे अपनी स्तुति करने और दूसरे किसीकी भी बात न माननेसे कुछ नहीं होता है। जो दूसरेके द्वारा स्तुति की जाती है वही सच्ची समझी जाती है।

इस ऊपरके कथनको सुनकर कोई बहुत चतुर वृद्ध पुरुष कहने लगा कि आपने अनेक शास्त्रोंका प्रमाण दिया तथा अनेक दृष्टांतोंसे सिद्ध किया सो इन सब शास्त्रोंको वा उदाहरणोंको हम भी जानते हैं परन्तु हम इनमेंसे किसीको मानते नहीं। हमारे अनुमान ज्ञानमें जो सिद्ध हो जाय उसे तो हम मानते हैं बाकी किसी-को नहीं मानते। ऐसे चतुर वृद्धके लिए उत्तमरूप वा समाधानरूप कहते हैं कि तुम सब शास्त्रोंके प्रमाणोंको जानते हो परन्तु मानते नहीं सो यह मानना तो सरासर मिथ्या और असत्य है। देखो पहले लंकाधिपति

रावणने श्रीअनन्तवीर्य केवली भगवानके समीप बलात्कारपूर्वक परस्त्रीसेवनका त्याग दृढ़तापूर्वक लिया था। परस्त्रीसेवनमें महापाप है। अन्य मतवाले भी इसमें महापाप मानते हैं। शैवमतमें लिखा है—

परयोनिगतो बिन्दुः कोटिपूजां विनश्यति ॥

अर्थात् "जो मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीकी योनिमें अपने वीर्यकी एक बूंद भी डालता है अर्थात् जो परस्त्रीके साथ संभोग करता है उसके पहले की हुई एक करोड़ प्रमाण महादेवकी पूजा (अथवा विष्णु आदिकी पूजा) सब नष्ट हो जाती है ऐसा अन्य मतियोंके यहाँ भी लिखा है तथा श्रीकेवली भगवानने इससे भी अधिक महापाप बतलाया है। तथा लोकव्यवहारमें भी उसे अत्यन्त निन्दनीय बतलाया है। इन सब बातोंको जानता हुआ भी वह विवेकी जिनभक्त रावण श्रीरामचन्द्रकी रानी सती सीताको हर ले गया। तथा अपनी पट्टदेवी श्रीमंदोदरीके द्वारा, अपने भाई विभीषणके द्वारा, अन्य कुटुम्बियोंके द्वारा, मंत्रियों द्वारा बड़े-बड़े देशोंके अन्य राजाओंके द्वारा, तथा हनुमान आदि महापुरुषोंके द्वारा अनेक बार समझानेपर भी उसने किसीकी न मानी। सीताके हरनेके कार्यको बुरा समझता हुआ भी वह श्रीरामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये सामने आया परन्तु अंतमें वह हारा और मरकर नरकमें पहुँचा। वहाँपर अनेक प्रकारके परम दुःख भोग रहा है और सागरोंतक भोगेगा। इसलिये कहना चाहिये खोटा हट करना जीवोंको सदा दुःख देनेवाला होता है।

और सुनो। एक क्षीरकदंब नामका ब्राह्मण था वह बहुत ही विद्वान् था तथा राजगुरु था। उसके पास राजकुमार वसु, नारद नामका एक विदेशी ब्राह्मण और एक पर्वत नामका उनका ही पुत्र पढ़ा करते थे। कितने ही दिनके बाद राजा मुनि हो गया तथा क्षीरकदंब भी मुनि हो गया। तब राजकुमार वसु तो अपने पिताके सिंहासन पर बैठकर राजा बन गया तथा क्षीरकदंबका पुत्र पर्वत उपाध्याय व राजपुरोहित बन गया। इसके कितने ही समय बाद किसी एक दिन क्षीरकदंबके पुत्र पर्वतने अनेक शिष्योंके सामने व्याख्यान देते समय कहा कि "यज्ञकर्ममें वेदके मन्त्र पढ़ते हुए अज अर्थात् अजाके पुत्र बकरेको अग्निमें डालकर होमना चाहिये। उसके इस व्याख्यानको सुनकर नारद ब्राह्मण कहने लगा कि हे पर्वत ! तू मेरा गुरुभाई है और गुरुका पुत्र है। तुझे ऐसे झूठ और हिंसामय वचन कभी नहीं कहने चाहिये। तेरे पिताने (हमारे तेरे दोनोंके गुरुने) पढ़ाते समय यज्ञकर्मके प्रकरणमें अज शब्दका अर्थ बकरा नहीं बतलाया था किन्तु जो फिर उत्पन्न न हो सके ऐसे

तीन वर्षके पुराने जौका नाम अज बतलाया था। ऐसे जौको घीमें मिलाकर होम करनेका विधान बताया था। पशुका होम करना तो अत्यन्त निन्दनीय और मिथ्या है। जैसा व्याख्यान तेरे पिता कहा करते थे वैसा ही तू कर। विरुद्ध मत कर। तब पर्वत हट कर कहने लगा कि "अज शब्दका अर्थ तो बकरा ही है, जौ नहीं है। इस प्रकार सब शिष्योंके सामने उन दोनोंका बहुत कुछ शास्त्रार्थ हुआ। उस शास्त्रार्थमें दोनों ही अपना-अपना पक्ष कहते रहे, हटे नहीं। अन्तमें दोनोंने यह निश्चय किया कि इस शालामें राजा वसु भी पढ़ा है और हमारे साथ पढ़ा है इसलिये वह जो कुछ कह दे वही प्रमाण मान लेना चाहिये। ऐसा न्याय सबके सामने ठहरा। इस बातको सुनकर क्षीरकदंबकी स्त्री पर्वतकी माता सबसे पहले जाकर राजा वसुके पास पहुँची और राजासे कहने लगी कि हे राजन्! आज मैं आपसे गुरुदक्षिणा माँगने आई हूँ, आपके गुरुभाई विदेशी ब्राह्मण नारदने आज सब शिष्योंके सामने शास्त्रार्थमें आपके गुरुभाई पर्वतका मानभंग किया है। अब अन्तमें आपके वचनोंके ऊपर न्याय ठहरा है। आप जो कह देंगे वही प्रमाण माना जायगा। इसलिये अब पर्वतके वचनोंका पक्ष हटना नहीं चाहिये बस यही गुरुदक्षिणा चाहती हूँ। गुरानीकी यह बात सुनकर राजा वसुने उसको धीरज बँधाया और उसके कहे अनुसार काम करनेका वचन देकर उसे विदा किया।

इसके कुछ समय बाद ही नारद पर्वत और शिष्यमंडली आदि सब राजाके पास पहुँचे, राजा जिस सिंहासनपर बैठा करता था वह स्फटिकमणिका बना हुआ था। किसी एक दिन वह राजा क्रीड़ा करनेके लिये किसी वनमें जा पहुँचा था वहाँपर उसने एक स्फटिकमणिका ऊँचा खंभा देखा था वह वहाँसे उसे ले आया था और उसे अपनी राजसभाके मध्यमें रखकर उसके ऊपर सिंहासन डालकर बहुत ऊँचा बैठा करता था और इस प्रकार बहुत ही सुसज्जित और सुन्दर लगा करता था। जिस समय नारद पर्वत आदि पहुँचे थे उस समय भी वह राजा वसु उसी सिंहासनपर बैठा था। पर्वतने जाकर सब समाचार राजासे कहे और शिष्य आदि सब राजसभाके सामने कहे। राजा वसु जानता था कि इन दोनोंके वचनोंमें नारदके वचन सत्य हैं तथा पर्वतके मिथ्या हैं तथापि गुरानीके कहनेसे जो पक्ष पकड़ लिया था उस पक्षके वशीभूत होकर कहने लगा कि "पर्वतके वचन प्रमाण हैं" राजाका यह कहना था कि उस महा झूठके पापसे वह स्फटिकका खंभा पृथ्वीमें घुस गया यह देखकर नारद आदि सब लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि "हे राजन्! सच कहो झूठ महादुःख

देनेवाला है।" लोगोंको इस बातको सुनकर राजा विचार करने लगा कि "वास्तवमें नारदका वचन सच्चा है। मैंने पर्वतका झूठ पक्ष लेकर असत्य वचन कहा है इसीलिये यह खंभा पृथ्वीमें धँस गया है। परन्तु मैं गुरानीके वचनोंसे बँधा हुआ हूँ मैं जानता हूँ कि गुरुजीकी ऐसी आज्ञा नहीं है। उनकी आज्ञा नारदके वचनोंके अनुसार है। परन्तु जो होनहार होगा सो होगा अब अपने वचनोंका पक्ष तो छोड़ना उचित नहीं है।" इस प्रकार सोच विचार कर वह राजा वसु फिर दुबारा कहने लगा कि "पर्वतके ही वचन प्रमाण हैं" राजाके इस प्रकार कहनेपर वह स्फटिकमणिका बाकीका खंभा भी पृथ्वीमें धँस गया। तब मंत्री आदि सब बड़े-बड़े सभासद खड़े होकर राजासे प्रार्थना करने लगे कि "हे राजन्! आपके असत्य वचनोंके पापसे ही यह स्फटिक-मणिका खम्भा सब पृथ्वीमें धँस गया है और आपका सिंहासन पृथ्वीसे आ लगा है। अब आगे क्या हाल होगा इसको सोचकर सच बात ही कह दीजिये" सब लोगोंकी यह बात सुनकर भी उस पापी राजा वसुने अपने हटसे अपने वचनोंका पक्ष नहीं छोड़ा और तीसरी बार भी उसने कहा कि "पर्वतके वचन ही प्रमाण हैं" तीसरी बार राजाका इतना कहना था कि उसी समय राजा वसु सिंहासन सहित पृथ्वीमें धँस गया और मरकर नरकमें पहुँचा। इससे सिद्ध होता है कि कोई भी जाननेवाला पुरुष केवल हटसे अपने वचनोंका पक्ष लेता है तो उसको ऐसी ही निंद्यगति प्राप्त होती है। उस समय नारदके ऊपर देवोंने पुष्पोंकी वर्षा की थी और सब लोगोंने पर्वतको वहाँसे निकाल दिया था। ऐसे एक नहीं अनेक कथन हैं सो सब जैनशास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

ऐसा ही हट करनेवाला एक सत्यघोष नामका ब्राह्मण था उसने भी अपना हट नहीं छोड़ा था और अन्ततक झूठ ही कहता रहा था इसलिए उसने भी तीन थाली गोबर खानेका, सब धन हरण करे जानेका, और मल्लोंकी तीन मुट्ठियोंकी भारी मार सहनेका दण्ड भोगकर तथा प्राणांत होकर सर्पकी गतिमें जन्म पाया था इसकी कथा आगे भी बहुत है।

इन सब कथाओंसे सिद्ध होता है कि हट करनेवाला अपने कल्याण वा अकल्याणको नहीं देखता, केवल अपने वचनोंको पक्ष पकड़ लेता है। उसको नहीं छोड़ता। परन्तु वचनोंका पक्ष करना वा हट करना बहुत ही दुःखदायक है। जो मनुष्य भगवान अरहन्त देवकी आज्ञाको मानते हैं वे उनके वचनोंके पक्षको ही अपने मस्तकपर धारण करते हैं।

प्रश्न—कदाचित् यह कहो कि-"जो हम मानते हैं वही ठीक है। इस पञ्चमकालमें जैनशास्त्रोंके बीच-बीचमें अनेक श्लोक मिलाकर अनेक प्रकारके सदोष वचन लिख दिये हैं। जिस प्रकार किसी साहूकारके बहुत समयसे पीढ़ी दरपीढ़ीसे सच्चे बहुमूल्य रत्नोंका हार चला आ रहा था। किसी एक समय वह बहुमूल्य रत्नोंका हार उजलवानेके लिए सुनारको दिया। उस सुनारने उस हारमेंसे बीच-बीचमेंसे कितने ही बहुमूल्य रत्न निकाल लिए और उनके बदले झूठे काँचके टुकड़ोंके नग जोड़कर उजालकर वह हार सौंप दिया। वह साहूकार रत्नोंकी परीक्षा करना नहीं जानता था और उसने किसी जानकारको दिखाया भी नहीं था। सुनारसे लेकर ज्योंका त्यों भीतर रख दिया था। कितने ही दिन बाद वह हार किसी जौहरीके हाथ दिया गया तब उनकी परीक्षा हुई। तब मालूम हुआ कि इसमेंसे सच्चे रत्न निकाल लिए गये हैं और उनके स्थानपर झूठे काँचके टुकड़ोंके नग जोड़ दिये गये हैं। इसी प्रकार शास्त्रोंमें भी श्वेताम्बरी, रक्ताम्बरी आदि विषय कषायी लम्पटी और परिग्रह धारण करनेवाले लोगोंने बीच-बीचमें झूठे कथन मिला दिये हैं कितना ही नवीन-नवीन कथन मिला दिया है। इसलिए उनमेंसे सच्चे कथनको तो हम मान लेते हैं और मिलाये हुए झूठे कथनको नहीं मानते तो इसका उत्तर वा समाधान यह है कि जैसे आप हो वैसा ही सबको जानते हो। सोचो तो सही जो बीच-बीचमें कितने ही रत्न झूठे रख दिये गये तब उसकी कीमत सच्चे रत्नोंकी रह गई या झूठोंकी रह गई।

किसी एक ठगने सच्चे रत्नोंका हार देखा फिर उसमें कितने ही झूठे नग मिले हुए देखे। तब उसने एक नया हार बनवाया। जिसमें आदि अन्त और मध्यमें तो सच्चे रत्न लगाये और बाकीके सब रत्न झूठे लगाये और वे झूठे रत्न ऐसे लगाये जिनसे अच्छे-अच्छे जौहरी भी ठगे जा सकें। ऐसा हार बनाकर वह ठग उस हारको बेचने आया और अनुक्रमसे वह उसी जौहरीके पास पहुँचा जिसके पास सच्चे रत्नोंका हार था किन्तु जिसके बीच-बीचमें झूठे रत्न मिले हुए थे उस ठगने आकर उस हारकी कीमत सब सच्चे रत्नोंकी माँगी। तब उस जौहरीने अपने उस पुराने हारसे मिलान किया तो झूठे लगे हुए नग छिप न सके। परन्तु उस ठगने भी जौहरीके हारके बीच-बीचमें झूठे रत्न दिखलाये और उन झूठे रत्नोंकी परीक्षाकर उस सब हारको झूठे रत्नोंका ठहरा दिया तथा अपने हारके जो आदि अन्तमें और मध्यमें सच्चे रत्न थे उनको भी परीक्षा की और

उनकी परीक्षासे सब हारको सच्चे रत्नोंका सिद्ध कर दिखाया। इस प्रकार वह ठग सबकी आंखोंमें धूल डाल-कर उस हारके बदले सच्चे रत्नोंका मूल्य लेकर चला गया। इसी प्रकार तुम्हारे बनाये हुए नवीन-नवीन शास्त्रोंके वचन हैं। दोनोंमें सर्वांग झूठ वा एकदेश झूठ अथवा एकदेश सच किसमें है। इस पंचमकालमें काल-दोषसे वा बुद्धिकी हीनतासे अथवा छद्मस्थ ज्ञानके कारण किसीके कहनेमें कुछ भ्रमरूप वचन निकल जाय तो बिना सर्वज्ञके सन्देह रहित होना कठिन है। यदि उनमें सन्देह मानकर पूर्वाचार्योंके वचनोंका लोप कर नवीन झूठी रचना की जायगी तो अनन्त संसारका बंध होगा। इसलिये तुम्हारे समान जबर्दस्ती अपना अकल्याण करनेवाला और कोई नहीं दिखता।

यदि किसी भेषीने शास्त्रोंमें कहीं-कहीं झूठ लिख दिया भी हो तो जो कोई अयोग्यता वा विरुद्धता करेगा वह अपना फल पावेगा। क्योंकि इस प्रकारकी चोरी करना तो सबसे बुरा है। ऐसी चोरी लोभके वश-से करते हैं यद्यपि वे ऐसे कामोंको और उनके फलोंको परम दुःखरूप जानते हैं तथापि लोभसे उसको छोड़ नहीं सकते उनके फलोंको भोगते हुए भी करते ही जाते हैं। जिन कुलिंगियोंने जिनागमको विरुद्धता और अनंत संसारमय उसके खोटे फलको जानते हुए भी विरुद्ध वचन लिख दिये हैं उन्होंने बड़ी भारी अज्ञानता की है उन्होंने अपनापन खो दिया समझना चाहिये ऐसे लोगोंने पूजा की द्रव्य अथवा भेंटमें अप्रमाण रुपये, मोहरें लीं लिखी हैं। जब ब्राह्मणोंके समान भेंट लेना लिखा है तो उसमें कुछ-न-कुछ मिथ्या भी जरूर लिखा होगा परंतु आप लोगोंको वह भी बुरा नहीं दिखता क्योंकि झूठेको दूसरा ही झूठा दिखता है।

यदि थोड़ी देरके लिये बीच-बीचमें मिलानेकी बात मान भी ली जाय तो फिर उनके बनाये हुये पहले प्रमाणमें लिखे हुए शास्त्रोंको वा अन्य शास्त्रोंको क्यों पढ़ते हो? और उन्हीं शास्त्रोंके द्वारा अथवा उन्हीं लोगोंके द्वारा प्रतिष्ठा की हुई जिन मन्दिरोंमें विराजमान जिन प्रतिमाओंको क्यों पूजते हो? उनके शास्त्रोंका पढ़ना और उनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओंका पूजना भी मिथ्या मानना पड़ेगा।

कदाचित् यह कहो कि हम तो ऐसा नहीं कहते पूर्वोक्त बड़े-बड़े ग्रन्थोंको अप्रमाण नहीं मानते। तो इसका उत्तर यह है कि तुम्हारे जो भाषा वचनिकाके शास्त्र हैं वे पूर्वाचार्योंके वचनोंके प्रत्यक्ष विरोधी हैं जो गाथा श्लोक आदि मूल आचार्योंके ग्रन्थ हैं वे तो प्रमाण हैं ही।

इसपर कदाचित् कोई यह कहे कि हम भी तो सब कार्य श्रेष्ठ ही करते हैं। जल थोड़ा ही खर्च करते हैं, पुष्पादिक चढ़ाते ही नहीं, दीपक जलाते नहीं, रात्रिपूजा करते नहीं, अभिषेक करते नहीं जो-जो अच्छी बातें हैं वे सब करते हैं। जो कुछ नवीन भी करते हैं सो भी अच्छा ही करते हैं। परंपरासे चली आई रीतिमें जो-जो दोष दिखाई देते हैं उनको नहीं करते। नवीन-नवीन रीतियाँ भी अच्छी-अच्छी ही करते हैं। इसमें तो गुण ही है बिगाड़ नहीं है। ऐसा करनेसे पाप छूट जाता है और धर्ममार्गकी प्रवृत्ति होती है। तो इसका उत्तर वा समाधान यह है कि तुम लोग अच्छी-अच्छी रीतियाँ करते हो तो पहलेके आचार्योंने कौन-कौनसी बुरी रीतियाँ चलाई थीं ? अथवा ऐसी कौनसी रीति है जो कालदोषके कारण मलिन वा सदोष बन गई है। पूजादिकके द्रव्य तो सब शुद्ध हैं। जैसे किसी सच्चो टकसालमें बने हुये सोने अथवा चांदीके रुपये, मोहरें आदि किसी साहूकारने शत्रु, चोर वा राजाके भयसे पृथ्वीके नीचे गाड़ दिये अथवा और किसी उपायसे छिपा दिये। जिससे वे सब रुपये, मोहरें मैली, घिसी वा फूटीसी हो गईं परन्तु खटाई, मसाला आदिसे फिर भी उजालने पर वे सुन्दर हो सकती हैं तथा जो परीक्षा करना जानते हैं वे उनको मैली जानकर भी छोड़ते नहीं। घड़ेमें भरे हुये घीके समान सदा सारस्प ही रहते हैं। यदि कोई ठग कांसे, पीतल आदिके खोटे रुपये, मोहरें बना ले और उन सबको यन्त्रसे उजालकर सुन्दर बना ले तो भी वे सुन्दर और कीमती नहीं हो सकतीं। यदि वे मैली हों तो उनके बदले कोई कौड़ी भी नहीं देता। यदि कोई ठग उन नकली रुपये, मुहरोंको बेचने जाय और उनको देखकर कोई संदेह करने लग जाय तो उन सच्चे रुपये, मोहरोंमें तो मैले होनेका दोष लगा देता है और अपने नकली रुपये, मोहरोंमें ऊपरको चमक दमक दिखाकर ठगकर बेच जाता है। इसी प्रकार इस समयके शास्त्रोंमें कदाचित् कालदोषसे कुछ थोड़ासा दोष भी हो तो भी उनसे अकल्याण नहीं हो सकता तथा नवीन मार्ग चलानेवालोंके शास्त्रोंमें सच्चे श्रद्धानका और पूर्वाचार्योंके वचनोंका सर्वांग विरोध आता है तथापि ऐसे शास्त्र केवल ऊपरकी चमक दमकसे चल जाते हैं। नवीन मतोंमें ऊपरसे लोकरंजनकी झलक दिखाई पड़ती है और उसकी उस झलकको देखकर ही लोग उसको मान लेते हैं और उसकी प्रवृत्तिके अनुसार चलने लग जाते हैं। अनेक भेष बनाकर उसकी वृद्धि करते हैं तथा नवीनता, प्राचीनतासे कुछ अच्छीसी मालूम पड़ती है इसलिये भी लोग उसमें लग जाते हैं। इसके सिवाय और कोई कारण नहीं है।

संसारमें बहुतसे लोग ऐसे भी देखे जाते है जिनको सच्चा श्रद्धान तो है नहीं तो भी जो कुछ धर्म-

कार्य करते हैं वह केवल अपनी स्तुति अथवा दूसरोंकी निन्दा करनेके लिये ही केवल दंभरूप करते हैं। अपने कल्याणके लिये नहीं करते।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि हम लोग भेषियोंके द्वारा प्रतिष्ठित जिनबिम्बके चरणोंसे लगे हुए गंध, पुष्प आदि सब दोषोंको हटाकर तथा उसे निर्दोष कर फिर उसकी पूजा, वंदना करते हैं। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि इसी प्रकार सदोष पदार्थ निर्दोष हो जाय तो जो कोई बालक अपनी जाति वा कुलका नहीं है उसको भी स्नान कराकर अपना पुत्र बना लेना चाहिये, उसे सब द्रव्यका स्वामी बना देना चाहिये और उसे अपनी जातिमें व्याह देना चाहिये। यदि केवल स्नान करा देने मात्रसे शुद्धि मान ली जायगी तो फिर किसी शूद्रको भी स्नान कराकर तथा इस प्रकार निर्दोष बनाकर अपना कार्य सिद्ध कर लेना निर्दोष माना जायगा यदि ऐसा होना अयोग्य और बुरा है तो फिर तुम्हारा ऊपर लिखा श्रद्धान भी दंभमय ही सिद्ध होगा। फिर उसे परमार्थ वा यथार्थ नहीं कह सकते।

इसपर कदाचित् कोई यह कहे कि "तुम्हारा कहना असत्य है इसको हम नहीं मानते। हम जो कार्य करते हैं सो यथार्थ श्रद्धान सहित ही करते हैं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि आप लोग जिनागमकी आज्ञा-प्रमाण कार्य करते हो तो भगवानने उसका शास्त्रोंमें ऊपर लिखे अनुसार अभिषेकपूर्वक पूजा करना तथा पूजामें गंध, पुष्प, फल आदि चढ़ानेका विधान बतलाया है उसका निषेध आप लोग क्यों करते हो ?

देखो भगवानकी पूजा करनेसे अनेक जन्मके इकट्ठे हुए पाप, महापाप नष्ट हो जाते हैं तथा परम पुण्य प्राप्त होता है। ऐसा पूजा, पाठ आदि समस्त जिन ग्रन्थोंमें विस्तारके साथ लिखा है तथा जिन्होंने भगवानकी पूजा की है उनको महाशुभ फलोदयसे स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त हुए तथा जिन्होंने निन्दा की उनके पहले किये हुए समस्त महापुण्य नष्ट हो गये महापापका बंध हुआ और अत्यन्त दुःख देनेवाली नरकादिक नीच गति प्राप्त हुई। ऐसे जीवोंकी अलग-अलग कथाएँ स्थान-स्थानपर लिखी हैं तथा पूजा करनेवालोंकी महाव्याधियां नष्ट होती हैं और निन्दा करनेवालेके कोढ़ आदि अनेक प्रकारके रोग दुःख, दरिद्रता और दुर्गन्धादिमय शरीरकी प्राप्ति होती है। ऐसा अनेक पूजा, पाठ ग्रन्थोंमें तुम लोग प्रतिदिन पढ़ते हो, पढ़ाते हो, सुनते हो, सुनाते हो तथापि अभिषेक, पूजा आदि कार्योंमें होनेवाले थोड़ेसे आरम्भसे डरकर यथार्थ श्रद्धानसे च्युत होकर पूजा, पाठ

करते हो। पूजा, पाठ आदि शास्त्रोंमें जो यह लिखा है कि अभिषेक, पूजा आदि करनेसे अनेक जन्मके महापाप मिट जाते हैं और महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है सो मालूम नहीं होगी या नहीं ? अथवा यह लिखना सत्य है वा असत्य ? पूजा-पाठकी जो यह फल-स्तुति (स्वर्गादिक सुखोंके प्राप्त होनेकी महिमा) बतलायी है सो केवल रुचि बढ़ानेके लिये ही है अथवा सत्य है ? किसी जगह लिखा भी है—"रोचनार्थं फलस्तुतिः" अर्थात् किसी पदार्थकी महिमा उसकी ओर रुचि बढ़ानेके लिये ही की जाती है। इस प्रकार आप लोगोंका पूजा-पाठ, अभिषेक आदि शंका सहित किया जाता है।

जैसे किसी समय किसी सेठने एक वनपालको (मालीको) आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करनेके लिए "णमो अरहंताणं" इत्यादि मन्त्र दिया था। तथा उसको विधि बतलायी थी कि किसी श्मशान भूमिमें बड़के वृक्षकी किसी ऊँची शाखामें एकसौ आठ लड़ीका एक दाभका छींका लटकाना चाहिये। उसके नीचे तलवार, किरच आदि बड़े तेज खुले शस्त्र ऊपरको ओर मुँह करके रख देना चाहिये। फिर उस छींकेमें बैठकर एक-एक मन्त्रको पढ़कर छुरीसे एक-एक लड़ी काटते जाना चाहिये। इस प्रकार सब लड़ियों के कट जानेपर विद्या सिद्ध हो जाती है। वह वनपाल विद्या सिद्ध करनेको तो तैयार हुआ परन्तु उसका हृदय कुछ सशङ्कित भी हो गया। वह विचारने लगा कि यदि कदाचित् सेठकी कही हुई बात झूठी हो जाय और विद्या सिद्ध न हो तो फिर मेरा मरण ही हो जायगा। मुझे तो यह भी मालूम नहीं है कि यह सब सत्य है वा असत्य। इस मन्त्रसे और इस विधिसे विद्या सिद्ध होती है या नहीं ? इस प्रकार आप लोगोंके समान सशङ्कित होकर वह विचार कर ही रहा था कि इतनेमें एक अञ्जन नामका चोर वहाँपर भागता-भागता आ निकला। आते ही उसने वनपालसे पूछा कि तू यह क्या कर रहा है ? तब वनपालने कहा कि मैं सेठके दिये हुए मन्त्रको सिद्ध करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ परन्तु साथमें मरनेकी शङ्का भी होती है तब उस अंजन चोरने उस विद्याको सब विधि पूछी तथा उस वनपालको छींकेसे उतार कर आप निःशङ्क होकर उसमें बैठ गया। उसने संशय, विपर्यय आदि सब दूर कर विधिके अनुसार मन्त्रपूर्वक सब लड़ियाँ काट डालीं और उसी समय उसे विद्या सिद्ध हो गई। तदनन्तर वह अंजन चोर उस आकाशगामिनी विद्याके बलसे मेरुपर्वतपर विराजमान उस सेठके पास पहुँचा। वहाँ जाकर चैत्य वन्दना की, पूजा की और ऋद्धिधारी मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर तपश्चरण कर

केवलज्ञान पाकर मोक्ष पहुँचा। इस प्रकार निःशङ्कित सहित आप लोगोंका कार्य दिखाई नहीं पड़ता। आप लोगोंके कार्य धनपालके समान दिखाई देते हैं।

और देखो रेवती रानीके जिनवचनोंमें दृढ़ श्रद्धान था उसकी परीक्षाके लिये एक क्षुल्लक ब्रह्मचारी अपनी विद्यासे समवशरण सहित तीर्थंकर केवली बनकर आया उसको वन्दना करनेके लिये राजा, प्रजा तथा अभयसेन मुनि आदि सब आये। परन्तु रेवती रानी न गई। राजा, प्रजा आदि सबने रेवतीको समझाया कि 'यहाँपर' पहले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आये थे, तब तो तुम नहीं गई थीं, सो ठीक ही था क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवका यही धर्म है परन्तु यहाँ तो समवशरण सहित केवलज्ञानसे सुशोभित साक्षात् तीर्थंकर भगवान पधारे हैं सो यहाँ तो अवश्य चलना चाहिये। तब रानीने कहा कि ऐसा होना भगवानकी आज्ञासे बाहर है। इसलिए मैं नहीं जाती। तीर्थंकर चौबीस होते हैं सो हो गये पच्चीसवाँ तीर्थङ्कर होना शास्त्रोंमें बतलाया नहीं यदि कोई केवलज्ञानादि सहित साक्षात् तीर्थंकरका रूप बना ले तो भी जैन शास्त्रोंकी आज्ञाके बिना जानेमें आज्ञा भंगका दोष लगता है और आज्ञा भंगका दोष लगनेसे अनन्त संसार परिभ्रमण करना पड़ता है। इसलिए यथार्थ श्रद्धानी पुरुषको कभी ऐसा नहीं करना चाहिये। इस प्रकार रेवती रानीके श्रद्धानसे दृढ़ता बनी रही। यदि वह रानी वहाँ जाकर पूजा, वन्दना आदि करती तो क्या उसे मिथ्यात्वका दोष लगता? कभी नहीं। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेशका तो रूप था ही नहीं। वहाँ तो केवलज्ञानी जिनलिंग थे तो भी शास्त्रकी आज्ञा न होनेके कारण वह रानी वहाँ नहीं गई।

दूसरी ओर अभव्यसेन मुनिको देखो वह ग्यारह अंग नौ पूर्वका पाठी था और जिन वचनोंमें भी श्रद्धान रखता था। वह महाव्रतोंको पालता था, सैकड़ोंको उपदेश देता था और स्वर्ग मोक्षका मार्ग दिखलाता था परन्तु जिनवचनोंमें सन्देह होनेके कारण क्षुल्लक विद्याधरके द्वारा बनाई हुई घास आदि वनस्पतिके ऊपर उसने गमन किया, मायामयी सरोवरमें हाथसे पानी लिया और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, केवली सबकी वन्दनाको गया। इस प्रकार उसने भगवानके वचनोंमें सन्देह करते हुए धर्मसाधन किया इसीलिए उसने अन्तमें निन्द्यगति पाई। इसी प्रकार आप लोगोंका कार्य भी सब सशंकित ही जान पड़ता है।

और देखो इस पंचमकालके प्रारम्भमें श्रीभद्रबाहु पाँचवें श्रुतकेवलीके समय बारह वर्षका दुष्काल पड़ा था उसमें रामल्य, स्थूलभद्र आदि बारह हजार मुनि भ्रष्ट हो गये थे। उन्होंने जिन वचनोंमें सशंकित होकर

मूलसंघसे विपरीत कथन किया था। केवली कवलाहार नहीं करते यह मूलसंघका सिद्धांत है परन्तु उन्होंने इसमें शंका खड़ी कर दी कि केवली भगवानकी स्थिति आठ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व तक होती है सो इतने दिन तक बिना कवलाहार किये यह औदारिक शरीर किस प्रकार टिक सकेगा। बस इसी शंकाको सामने रखकर उन्होंने केवलीके कवलाहारका निरूपण कर दिया। इसी प्रकार संशय मिथ्यात्वके उदयसे और भी कितनी ही विपरीत बातें पुष्ट कीं तथा इस प्रकार वे जिनवचनके विरोधी हुए इसलिये जिनवचनोंमें शंका करना निःशंकित नामके सम्यग्दर्शनके अंगका घातक है। इस प्रकारकी शंकाओं सहित सम्यग्दर्शनका श्रद्धान आप लोगोंके समान पुरुषोंके ही होता है।

और देखो श्री ऋषभदेवकी दिव्यध्वनिमें धर्मका स्वरूप सुनकर तथा उसे अच्छी तरह जानकर भी उनके पोते मारीच आदि मिथ्यातियोंने जिन वचनोंमें शंका रक्खी थी और उस शंकाहीके कारण सांख्य, पातंजलि आदि शास्त्रोंकी रचना की थी तथा दंडी, संन्यासी, परमहंस आदि अनेक भेष धारण कर अनेक प्रकारकी विपरीतता पुष्ट की थी। इसीलिये वे सब जिनवचन बाह्य अथवा जिनधर्मके बाहर समझे गये थे। इससे सिद्ध होता जो जैन वचनोंमें वस्तुके स्वरूपमें संदेहयुक्त प्रवृत्ति करता है वह विपरीतता भी अवश्य करता है यह बात मिथ्या नहीं है किन्तु सर्वथा सत्य है।

कदाचित् यह कहो कि "हमें जिन वचनोंमें रंचमात्र भी शंका नहीं है परन्तु फल तो अपने भावोंके आधीन है वैसे भाव भी तो होने चाहिये। बिना भावोंके केवल क्रियायें करना सब व्यर्थ हैं। तो इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि हम लोग तो बिना भावोंके करते हैं तथा आप लोग सब वैसे ही भावोंसे करते हो? आपके भाव बहुत निर्मल हैं। उनमें रंचमात्र भी संदेह वा शंका नहीं है। क्योंकि आप लोग शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पूजा, पाठ पढ़ते हो और उस पूजा, पाठमें जो लिखा है जो मुखसे पढ़ते हो उसके अनुसार जो-जो मिल सकता है और बन सकता है वह सब ही करते हो? उसमेंसे न कुछ घटाते हो? और न कुछ और ही प्रकार करते हो? जो कहते हो? वही करते हो। देखो! जो तुम नित्य पूजा पाठ पढ़ते हो! शास्त्र बाँचते हो! उसमें पुष्पमाला, पुष्पांजलि, नैवेद्य, दीप, फल जो-जो लिखा है सो चढ़ाते ही हो। कल्पवृक्षके पुष्प वा रत्नादिकके दीपक तो हम तुमसे बन ही नहीं सकते। बाकी सब आप लोग करते हो? इससे लोगों के भाव निर्मल मालूम

पड़ते हैं। यदि कोई दूसरा आपके यहाँ आकर पूजा, पाठ करता है उससे आप क्रोध करते हो। मन्दिरोंमें यदि अपने सम्प्रदायकी मूर्ति हो तो आप लोगोंके भाव निर्मल रहते हैं यदि प्राचीन सम्प्रदायकी हो तो कलुष भाव हो जाते हैं इस प्रकार आप समान सम्यग्दृष्टियोंके दो प्रकारके भाव होते हुए भी आप लोग श्रद्धानी कहलाते हो। यह आपका ही मत है।

दूसरी बात यह है कि 'भगवानकी प्रतिमाके चरणोंमें गंध लगानेसे अथवा ऐसी प्रतिमाके दर्शन करने, उसकी पूजा' वंदना, भक्ति, अभिषेक आदि पुण्य कार्य करनेसे, पुष्प चढ़ानेसे, दीपक जलाकर चढ़ानेसे तथा फल चढ़ानेसे तथा अन्य सचित्त पदार्थोंसे पूजा करनेसे कोई जीव मिथ्यादृष्टी हो जाता है, वह नरक, निगोद आदि नीच गतियोंमें जाता है और अनन्त संसार परिभ्रमण करता है यह बात किसी कथा वा पुराण आदिमें दिखलाना तो चाहिये ? तथा जिनपूजाके निन्दकोंने निंद्यगति पाई है सो जिनागममें जहाँ-तहाँ कथारूपमें विस्तारके साथ लिखी ही है तथा आप लोग खूब जानते ही हो !

विचार करनेकी बात है कि भगवानकी पूजा करने, अभिषेक करने, तीर्थयात्रा, रथयात्रा, नैमित्तिक उत्सव, पूजापाठ आदि कार्योंमें आरंभजनित जो कुछ स्थावरादि जीवोंकी हिंसा होती है उसका दोष यदि उस पूजाके करनेसे नहीं मिटता तथा ऐसे कार्योंसे जीवोंके अशुभ कर्मका बंध होता वा अशुभ गति होती तो जो मुनिराज अहिंसा, महाव्रतादि पाँचों महाव्रतोंको पालन करते हैं पांचसमिति, तीन गुप्ति आदि अट्ठाईस मूलगुणोंको पालन करते हैं उत्तरगुणोंको पालन करते हैं और सब प्रकारके आरंभके त्यागी होते हैं ऐसे महा संयमी मुनिराज स्वयं अपने वचनोंसे नवीन मंदिर बनवाने, जिनप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराने, अभिषेक महाभिषेक करने आदि सावद्य योगरूप पुण्यकार्योंके करनेका उपदेश श्रावकोंके लिये क्यों करते ? इस बातका विचार तो बहुत छोटा-सा आदमी कर सकता है फिर भला मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञानको धारण करनेवाले मुनिराजोंको समझमें यह बात न आई ? जो उन्होंने ऐसा उपदेश दिया ? क्योंकि जितने जिनागम हैं वा जितने पूजा पाठ हैं उन सबमें उन्हींके कहे हुये वचन हैं। उन्होंने इन क्रियाओंके करनेका उपदेश दिया है। जैनशास्त्रोंमें जितने व्रत बतलाये हैं तथा उनका विधान पूजा, अभिषेक आदि जो कुछ कहा गया है वह सब उन्हीं मुनियोंका बताया हुआ है। ऐसे पूजा, अभिषेक आदि कार्य जिन्होंने किये हैं उनकी कथा शास्त्रोंमें प्रसिद्ध ही है। तथा उसी प्रकार अब भी लोग करते ही हैं।

और सुनो एक क्षुल्लक ब्रह्मचारी विद्याधर था उसने निमित्तज्ञानी अपने गुरुसे जाना कि हस्तिनापुरमें सातसौ मुनियोंको घोर उपसर्ग हो रहा है, और उसको विष्णुकुमार मुनिराज दूर कर सकते हैं उस समय आधी रातका समय था। वह विद्याधर उसी समय मुनिराज विष्णुकुमारके समीप पहुँचा। विष्णुकुमारको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई थी। उस विद्याधरने मुनिराजसे प्रार्थना की कि महाराज हस्तिनापुरमें सातसौ महा-मुनियोंको घोर उपसर्ग हो रहा है। प्रातःकाल नरमेध यज्ञके लिये उन सब मुनियोंको अग्निमें होम कर मारेंगे आपको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त है सो आप बचाइये। तब मुनिराजने पहले तो विक्रियाऋद्धिके प्राप्त होनेकी परीक्षा की। फिर उसी समय अर्थात् आधी रातमें ही वे हस्तिनापुर आये। वहाँका पद्मनामका राजा उनका भाई था सो उसको महलोंमें जाकर जगाया और उसको समझा कर कहा कि "तू बड़ा दुष्ट है, पापी है, इस राज्यमें वा इस वंशमें कभी ऐसा नहीं हुआ जो आज हो रहा है" मुनिराजकी बात सुनकर राजा पद्मने हाथ जोड़े नमस्कार किया और फिर निवेदन किया कि महाराज इसमें मेरा वश नहीं है। मैं तो बलि नामके मंत्री-को अपने वचनोंसे सात दिनका राज्य हार गया हूँ। अब यह उपसर्ग मुझसे दूर नहीं हो सकता आपसे ही दूर हो सकेगा। राजाकी यह बात सुनकर वे मुनिराज वामनरूप ब्राह्मणका रूप धारण कर राजा बलिके पास पहुँचे। राजाको आशीर्वाद दिया और तीन पैंड पृथ्वी माँगी। राजा बलिने तीन पैंड पृथ्वी सङ्कल्प कर दी। तब उन मुनिराजने विक्रियाऋद्धिसे अपना शरीर बढ़ाया तथा एक पैर मेरु पर्वतपर रक्खा, दूसरा पैर मानुषोतर पर्वतपर रक्खा और तीसरा पैर कहीं रखनेकी जगह न रहनेके कारण बलिकी पीठपर रक्खा, इस प्रकार राजा बलिको वश कर बाँध कर मुनिराजोंका वह घोर उपसर्ग दूर किया। उसी समय आकाशसे देवोंने उन मुनि-राजके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की, जय जय शब्द किया, अनेक प्रकारके वीणा आदि बाजे बजाकर विष्णुकुमारके गुणोंकी स्तुति की, स्तुतिके गीत गाये। इस प्रकार मुनिराज विष्णुकुमारने सातसौ मुनियोंकी रक्षा की।

देखो धर्मकी रक्षाके लिये मुनिराजने भी अपने त्यागेका भंग किया और सात्सत्य अंगका पालन कर

१. मुनिराज न तो ऋद्धियोंसे काम लेते हैं और न रात्रिगमन वा इस प्रकारका छल करते हैं। परन्तु विष्णुकुमारने किया सो केवल धर्मकी रक्षाके लिए किया उसमें आरम्भजनित थोड़ा-सा पाप हुआ परन्तु धर्मकी रक्षा अत्यन्त अधिक हुई। सातसौ मुनिराजकी रक्षा हुई और धर्मका महा उद्योत हुआ मुनिराजको महापुण्यका बंध हुआ। इसीलिये देवोंने उसी समय पुष्प वृष्टि कर उनकी पूजा की। मुनिराज सब आरंभके त्यागी थे परन्तु थोड़ा-सा आरंभ उन्हें करना पड़ा था इसलिए उन्होंने उसका

धर्मका उद्योत प्रगट किया। देखो जैनशास्त्रोंमें त्याग भंग करनेका बहुत ही बुरा फल बतलाया है सो आप लोग जानते ही हैं। प्राणांत होनेपर भी व्रत भंग नहीं करना चाहिये। जो कोई मनुष्य थोड़ेसे भी व्रत लेकर भंग कर देता है उसको जिनप्रतिमा सहित सहस्रकूट जिनालयके भंग करनेका महापाप लगता है। सो ही व्रतकथाकोशमें सप्त परमस्थानव्रतकी कथामें लिखा है। यथा—

गुरून् प्रतिभुवः कृत्वा भाक्तमेकं भुनं व्रतम्। सहस्रकूटजैनेन्द्रसद्मभंगाघभागलम् ॥१०८॥

अर्थात्—"गुरुओंको/साक्षीपूर्वक धारण किये हुए एक व्रतको भी जो भंग करता है उसे सहस्रकूट चैत्यालयके भंग करनेका पाप लगता है।" सो विष्णुकुमारने अच्छा किया या बुरा किया। तथा फिर वे विष्णुकुमार मुनि पूज्य रहे या अपूज्य ? (व्रतभंग करनेपर भी देवोंने पुष्पवृष्टि कर उसी समय उनकी पूजा की सो क्यों ?)

और सुनो मुनिराज श्रीवज्रकुमार भी महाव्रती थे उन्होंने भी अपने पिता आदि बहुतसे विद्याधरोंको अपने वचनसे कहा था कि "रानी उर्वला श्रीजिनेन्द्रदेवका रथ निकालना चाहती है और बौद्धमतको पालने वाली उसकी सौत उस रथको रोकना चाहती है। वह कहती है कि पहले बुद्धका रथ चलेगा पीछे जिनेन्द्रदेव-का रथ चलेगा। इसलिये तुम लोग जैनधर्मकी प्रभावना करनेके लिये उर्वलाका मनोरथ सिद्ध करो और श्रीजिनेन्द्रदेवका रथ सबसे पहले चलवाओ। मुनिराजकी यह बात सुनकर उन विद्याधरोंने बुद्धका रथ तो टुकड़े-टुकड़े कर तोड़-फोड़ दिया और श्रीजिनेन्द्रदेवका रथ बड़े उत्सव और बड़ी भारी प्रभावनापूर्वक चलवाया। सो क्या महाव्रतीको ऐसा कहना योग्य था। महाव्रती तो मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे समस्त सावद्य (अशुभ) योगोंके त्यागी हैं फिर उन्होंने अपने मुखसे ऐसे वचन क्यों कहे अथवा मुखसे कहकर ऐसा कार्य क्यों कराया ? कहाँ तक कहा जाय केवलज्ञानसे सुशोभित श्रीवृषभदेव तीर्थंकरसे लेकर श्रीमहावीरस्वामी

प्रायश्चित लिया था। गृहस्थ आरंभका त्यागी नहीं है इसलिये गृहस्थोंको ऐसे कार्य अवश्य करने चाहिये। जब गृहस्थ घरके कामोंके लिए घर बनवाना, बगीचा लगाना आदि सब काम करता है तब जिनालय बनवाना, प्रतिष्ठा कराना, पुष्प चढ़ाना, आदि कार्य भी उसके कर्त्तव्य हैं शास्त्रोंकी आज्ञा है और वह उसका त्यागी नहीं है इसलिए उसे अवश्य करने चाहिए न करने से वह कर्त्तव्यहीन होकर महापापका भागी होता है।

पर्यन्त समस्त तीर्थंकरोंने, वृषभसेन गणधरको आदि लेकर गौतम पर्यन्त समस्त गणधरोंने, समस्त सामान्य केवलियोंने और अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले अनेक महाव्रती साधुओंने इन अभिषेक, महाभिषेक, पुष्प, फलसे पूजा करने आदिका उपदेश दिया है तथा ऊपर लिखे अनुसार सम्यग्दर्शनके अंग पालन करनेका उपदेश दिया है सो फिर इन सब पुण्य कार्योंका निषेध करनेवाला उन तीर्थङ्करादिकोंसे भी बड़ा और पूज्य मान लेना चाहिये जो तीर्थंकरोंके वचनोंका भी उल्लंघन कर झूठी निन्दा करता है ? जो लोग ऐसे निन्दकोंकी बात मानते हैं वे अनन्त संसारी हैं। भगवानकी आज्ञाके घातक हैं भगवानकी आज्ञाका पालन करनेवाले नहीं हैं।

इतना समझ लेनेपर भी कदाचित् कोई यह कहे कि "अभिषेक तो हम भी करते हैं हम उसका निषेध थोड़े ही करते हैं हां, अन्तर केवल इतना है कि हम उन कलशोंको भगवानके मस्तकपर नहीं ढोलते उनके सामने ढोलते हैं।" सो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि भगवानको सन्मुख कलशाभिषेक करना किस शास्त्रमें बतलाया है।

कदाचित् कोई यह कहे कि भगवानके मस्तकपर कलशाभिषेक करना कहां बतलाया है तो इसका उत्तर यह है कि मस्तकपर कलशाभिषेक करना तो सब पाठोंमें लिखा है। अभिषेकका अर्थ ही उन कलशोंके जलको मस्तकपर डालना है। अभिषेकका अर्थ उस जलको दूर डाल देना नहीं है। तुम लोग जो प्रतिदिन पूजा पाठ पढ़ते हो, मंगल पढ़ते हो उसमें प्रतिदिन पढ़ते हो "सहस अठोत्तर कलशा प्रभुजीके शिर ढुले" सो क्या यह पाठ झूठा है ? या इसका निषेध करनेवाले आप लोग झूठे हैं दोनोंमें कौन झूठा है सो आप लोग ही बतलाओ।

कदाचित् यह कहो कि यह पाठ और यह रीति तो जन्म समयकी है, तपकल्याणक वा ज्ञानकल्याणक समयकी नहीं है। तो इसका उत्तर यह है कि जिनप्रतिमामें क्या जन्मकल्याणक नहीं है और यदि जन्मकल्याणक नहीं है तो क्या तपकल्याणक है ? अथवा ज्ञानकल्याणक है ? और यदि तप कल्याणक वा ज्ञानकल्याणक ही है जन्मकल्याणक नहीं है तो फिर पहलेकी जन्मसमयकी सरागताकी रीति क्यों पढ़ते हो ? और उसके लिये द्रव्य क्यों चढ़ाते हो ? गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण इन पाँचों कल्याणकों सहित क्यों पूजते हो। यह चतुराई तो अजानकारोंकी-सी है। इसलिये जो भगवानकी आज्ञाको माननेवाले सच्चे सम्यग्दृष्टी श्रद्धावान हैं वे अपनी बुद्धिकी चंचलताको रोककर देव, शास्त्र, गुरुके वचनोंपर दृढ़ श्रद्धान रखते हैं तथा वे ही अपने कार्यमें

सफल होते हैं। जो लोग अपने मनमें अनेक प्रकारके विकल्प उठाकर भगवान जिनेन्द्रदेवकी आज्ञामें शंका, संशय, मोह और विपरीतता धारण कर भगवानकी आज्ञाका निषेध करते हैं और अपने मनकी कल्पनाके अनुसार चलते हैं वे भगवानकी आज्ञाके बाधक समझे जाते हैं। जो लोग भगवानकी आज्ञाके विरुद्ध केवल अपनी बुद्धिसे कई प्रकारसे अधिक-अधिक कल्याण करना चाहते हैं, धर्मपालना चाहते हैं तो भी जिनाज्ञाके विरुद्ध होनेसे उनका एक भी कार्य सिद्ध नहीं होता है।

यहाँपर कदाचित् कोई यह कहे कि तुमने अब तक जो कुछ कहा है सो सब बढ़ा चढ़ाकर कहा है सो क्या इतना बढ़ा-बढ़ा कर कहनेवाले तुम ही विद्वान हो ? तुम ही पढ़े हो ? क्या तुम्हारे सिवाय बाकीके सब मूर्ख ही हैं जो तुम उनके लिये ऐसा कहते हो ? तो इसका उत्तर यह है कि "भाई ज्ञानी का ज्ञान तो अनन्त है उसका तो पार नहीं है। हमने तो जो शास्त्रोंमें देखा है वा सुना है, वही लिखा है। यह ठीक है कि हम प्रशंसाके पात्र नहीं हैं न कुछ पढ़े लिखे विद्वान हैं, श्रेष्ठ हैं तथापि आप लोगोंका पढ़ना गुरुमुखसे नहीं हुआ है, आप लोगोंकी विद्या गुरुमुखसे प्राप्त न होनेके कारण गुरुमार कहलाती है। जो लोग पहले थोड़ा बहुत गुरुसे पढ़ लेते हैं और फिर अपने ज्ञानके मदमें आकर अपने आप सिद्ध बन जाते हैं, गुरुसे द्रोह करने लग जाते हैं उनकी विद्या गुरुमार विद्या कहलाती है। जो विद्या गुरुआज्ञासे बाह्य होती है वह चोर, छद्मस्थ और छलबलकी विद्या कहलाती है ऐसी विद्या कभी सफल नहीं होती।

यहाँपर प्रकरणवश लौकिक दृष्टांतको लेकर चार पण्डितोंका उदाहरण लिखते हैं। एक नगरमें चार ब्राह्मणके पुत्र परस्पर मित्र थे। वे सब मिलकर कुछ धन कमानेके लिये विदेश चले। उन्होंने एक बैलपर पुस्तकें, वस्त्र आदि सब समान लाद लिया था। चलते-चलते मार्गमें वृक्षोंकी सघन छाया, जलका पक्का कुआँ, पासमें ही वन और उसके थोड़ी दूर गाँव दिखाई दिया। ऐसे स्थानको देखकर चारोंने सलाह की कि यहाँपर देवपूजन, स्नान, संध्या, रसोई आदि सब काम कर लेने चाहिये। तब फिर आगे चलना चाहिये। ऐसा सोचकर वे सब वहाँपर उतर पड़े। उन चारोंने बहुत थोड़ा गुरुओंसे पढ़ा था बाकी वे अपने आप केवल अपनी बुद्धिके ही अनुसार स्वयं पंडित बन गये थे। गुरुमुखसे पूर्ण ज्ञान नहीं पाया था। अन्तमें जाकर गुरुसे विमुख हो गये थे और अपने ही मनसे कुछका कुछ पढ़कर पंडित बन गये थे। वहाँ उतरकर उन चारोंने अपना अलग-अलग

काम बाँट लिया। उनमेंसे एक तो ज्योतिषी था सो वह तो बैल चरानेके लिये वनमें गया। व्याकरणका पढ़नेवाला वैयाकरणी, रसोई बनानेके लिये चौकेमें बैठा। न्यायशास्त्रको पढ़नेवाला नैयायिक पैसे कटोरी लेकर घी लेने गांव गया और चौथा वैद्यक शास्त्रको पढ़नेवाला वैद्य शाक भाजी लेने गया। इन सबके इस प्रकार काम बाँटनेका अभिप्राय यह था कि ज्योतिषी अच्छा मुहूर्त देखकर बैलको चरने छोड़ेगा जिससे कि वह खोया न जाय। वैयाकरण रसोई अच्छी बनावेगा इसलिये उसे चौकेमें बिठाया। नैयायिकको घी लेने इसलिये भेजा कि वह अपनी न्याय विद्याके कारण तौल मोलमें ठगा नहीं जायेगा तथा देख भालकर उत्तम घी लावेगा। तथा वैद्यजी महाराज निरोग शाक लावेंगे इसलिये उनको शाक लेने भेजा था। अब चारोंकी पंडिताईका हाल सुनिये। उस ज्योतिषीने लंबी चौपड़ी कागी लग्न देखकर और उसीको निर्दोष मानकर उस निर्जन वनमें चरनेके लिये अपने बैल हाँक दिया और स्वयं एक शीतल वृक्षकी छायामें सो रहा।

उस ज्योतिषीने वह लग्न ऐसी स्थापना की थी जिसमें चोरी गये पदार्थ फिर न मिल सकें। ऐसे समयमें बैलको छोड़कर सो रहा था। सो वनके भीलादिक उस बैलको ले गये और आप सोता ही रहा। इधर वैयाकरणने दाल, चावल धोकर बटलोईमें रखकर चूल्हेपर चढ़ा दी। जब वह खिचड़ी पकने लगी तो बार-बार खदबद शब्द करने लगी। उसे खदबद शब्दको सुनकर वह वैयाकरण सोचने लगा कि व्याकरणमें खद शब्द तो सिद्ध हो जाता है परन्तु वह बद शब्द सिद्ध नहीं होता। यह शब्द अशुद्ध है। और अशुद्ध शब्दके ऊपर धूल डाल देनी चाहिये। अर्थात् झूठेके मुखमें धूल डाल देनी चाहिये तथा जो शब्द व्याकरणके विरुद्ध है वह झूठा ही है। ऐसा समझकर उसने एक मुट्ठी चूल्हेकी राख भर कर उस खिचड़ीमें डाल दी जिससे वह सब खिचड़ी बिगड़ गई। नैयायिकजी गाँवमें गये और कटोरीमें घी लिये आ रहे थे। मार्गमें उनका न्यायशास्त्रका तर्क उठा कि "यह घी पात्रके आधार है या यह पात्र घीके आधार है अर्थात् घीमें कटोरी है या कटोरीमें घी है। "घृताधारं पात्रं वा पात्राधारं घृतं" इस बातको न्यायसे सिद्ध करनेके लिये उसने वह घी भरी कटोरी औंधी कर दी—उलट दी जिससे सब घी पृथ्वीपर गिर कर धूलमें मिल गया। तदनन्तर उसने उस घीसे मिली हुई धूलको कटोरीमें रखकर कहने लगा कि 'हां ठीक है 'पात्राधारं घृतं नतु घृताधारं पात्रम्' अर्थात् पात्रके आधार घी है घीके आधार पात्र नहीं है कटोरीमें घी है घीमें कटोरी नहीं है। इस प्रकार निश्चय करते हुए उसने

वह घी मिली धूल रसोई बनानेवाले वैयाकरणको सौंप दो। वैयाकरणने भी खदवद शब्दके और खिचड़ीमें धूल डालनेके सब समाचार कह सुनाये तदनन्तर बैल चरानेवाले ज्योतिषीको बुलाया बैल तो उसका खो हो गया था वह खाली हाथ रोता आया और अन्धी चोपड़ी काणी लग्नको देखकर बैल हाँकनेका सब हाल कहा। अब ये तीनों ही भूखसे व्याकुल हो रहे थे सो परस्पर विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। तब सबने सोचा कि अच्छा वैद्यजी महाराज फल, पत्र, कन्दमूल आदि कुछ तो शाक लावेंगे सो उसीको खाकर आगे चलेंगे। इतनेमें वैद्य भी आ गया। वह शाक-भाजी लेने गया था और उस गाँवमें बहुत अच्छे स्वादिष्ट फल थे परन्तु वह वहींपर निघण्टु शास्त्रके श्लोकोंके अनुसार सबके गुण, दोष विचार करने लगा। वह शाक बहुमूत्र (दाबे) है। यह पित्त करता है। यह कफ करता है। यह त्रिदोष करता है। यह रक्त विकारी है। यह अजीर्ण है। यह ज्वरातिसार करता है। यह श्वास बढ़ाता है। यह उदरविकार करता है यह छर्दि (वमन) करता है। यह सोथ शूल और कुष्ट करता है। इस प्रकार सब शाकोंमें दोष देखकर सबको छोड़ दिया। आगे चलकर नीमके पत्ते देखे उनमें कोई दोष दिखाई नहीं पड़ा। इसलिए उन्हींको लेकर आ पहुंचा। इसी प्रकार आप लोगोंकी विद्वत्ता है।

और सुनो.....(यहाँ कुछ पाठ छूट गया है)

जिन चैत्यालयके लिए अपनी ऋद्धि छोड़ी काय गुप्ति बिगाड़ी अपने त्यागका भंग किया। तथा रावणने भक्तिकरि तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध किया।

विचार करनेकी बात है कि यदि इस समय कोई जिनधर्मका द्वेषी जिनबिंब वा जिनमन्दिरका विघ्न करे वा प्रतिमाजीका भंग करै तब क्या क्रोधादिक क्रूरभाव धारण कर वा उसको बध बंधनादिके द्वारा पीड़ित कर छुड़ावेंगे या नहीं ? ऐसी अवस्थामें यदि वह क्लेश अधिक बढ़ जाय, दोनों ओरकी अच्छी सामर्थ्य हो और शस्त्रोंके द्वारा परस्पर मनुष्योंका घात भी हो जाय तथा ऐसा करनेसे बड़ी भारी हिंसा हो जाय तो देव, गुरु, धर्म, जिनबिम्ब, जिनागम आदि की रक्षा करनेके लिए ऊपर लिखे कार्य करने चाहिये या नहीं ? अथवा इन कार्योंमें महापाप समझ कर प्रतिमाजीका भंग और उससे होनेवाला महा अविनय होने देना चाहिये ? उनकी रक्षा नहीं करनी चाहिये ? क्या करना चाहिये सो बतलाओ ?

कदाचित् कोई यह कहे कि ऐसे कार्योंमें पुण्य है अथवा पाप है। सो इसका उत्तर यह है कि यदि अपनेसे दूसरा बलवान हो तो उसे शांत करे वा दान देकर (शाम, दाम) छुड़ाना चाहिये। यदि वह निर्बल हो तो उसे दण्ड और भेदसे रोकना चाहिये। इनमेंसे जो बन सके उनसे ही छुड़ा लेना चाहिये। यदि ऐसे कार्योंमें जीवघात होनेकी सम्भावना हो तो धर्मकी रक्षाके लिए करना चाहिये या नहीं सो कहो ? क्या वह आरम्भ, देव, धर्म, गुरु आदिके लिए ही है वा नहीं ? तथा ऐसे कार्यको आप करोगे या प्रतिमाजी आदिका भंग होने दोगे सो कहो ? अपना गृहस्थ-जीवन चलाने और धनादिककी रक्षाके लिए तो अच्छे-अच्छे बलवान योद्धा रखते हो यदि कोई उस धनको चुराने आता है तो उसको मारकर छुड़ा लेते हो सो तो आप लोग योग्य समझते हो परन्तु धर्मकी रक्षाके लिए आप अयोग्य समझते हो यह कैसा उलटा न्याय ? यदि धर्मकी रक्षाके लिए ये कार्य करना योग्य है तो पूजा, अभिषेक आदिके लिए भी थोड़ा-सा आरम्भ करना योग्य है।

देखो महाव्रती साधु कच्चे बिना छने जलकी एक बूंदमें असंख्यात त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा समझकर उसका त्याग कर देते हैं और सदा प्रासुक उष्ण जल पीते हैं। स्नान करनेके वे सदाके लिए त्यागी हैं हो। फिर भी वे महाव्रती सिद्ध क्षेत्रकी वन्दनाके लिए वा जिनचैत्यकी वन्दनाके लिए वा धर्मोपदेश देनेके लिए चलते हैं मार्गमें नदी भी पड़ती है उससे पार होनेके लिए नावमें बैठते हैं अथवा छाती तक गहरे जलमें प्रवेश कर पार जाते हैं। बतलाओ वहाँ क्या व्रत भंग नहीं होता ? अथवा जीवोंका घात नहीं होता ? और इन कार्योंमें क्या उनको पाप नहीं लगता ? क्या नहीं होता सो बतलाना तो चाहिये।

कदाचित् यह कहा जाय कि शास्त्रोंमें जो लिखा है सो ठीक है मुनिराज नदी आदिके पार जाते हैं परन्तु पीछे कायोत्सर्ग और प्रतिक्रमण करके उसके दोषोंका निराकरण कर देते हैं। तो इसका उत्तर यह है कि यदि कायोत्सर्गसे आरम्भजनित दोष निराकरण हो जाता है तो फिर पूजा, भक्ति, अभिषेक आदिमें शृंगारादिक, काम-क्रीड़ा वा विषय भोगोंका पाठ है ? अथवा उन कार्योंमें विषय-भोगादिक वा काम-क्रीड़ाएँ की जाती हैं। अथवा गृहस्थ-सम्बन्धी चक्की, उखली, चूल, बुहारी, पानी आदिसे होनेवाले पाँचों पाप किये जाते हैं। उन अभिषेकादिकोंमें भी तो विनय, भक्ति, स्तुति, स्तोत्र, जपमाला, जप, ध्यान आदि सब पुण्य कार्य वा पाप नाश करनेवाले कार्य किये जाते हैं। अभिषेकादिक कार्योंमें द्रव्य पूजा की जाती है और कायोत्सर्ग

वा प्रतिक्रमणमें भावपूजा की जाती है आप लोग जो देव दर्शन, वंदन, पूजन, तीर्थयात्रा, नवीन जिनमन्दिरोंका बनवाना, प्रतिष्ठादिक कराना आदि कार्य करते हो उसमें भी आरम्भजनित हिंसा होती ही है। ये कार्य भी तो बिना हिंसाके होते दिखाई नहीं देते। ये सब क्रियाएँ सावद्य (पापपूर्वक) होती हैं।

इसके सिवाय यह भी विचार करना चाहिये कि पूजा, अभिषेकमें जो जलधारासे पूजा करते हो तो सन्मुख दी हुई जलधारासे पूजा करनेमें शुभ फलका श्रद्धान रखते हो तो जब सन्मुख दूर धारा देनेसे ही पुण्यकी प्राप्ति होती है तो फिर भगवानके मस्तक पर दुग्धादिककी धारा देनेसे क्या पाप हो सकता है ? यदि पाप हो सकता है तो फिर आप लोगोंको भी सन्मुख धारा देना योग्य नहीं है।

कदाचित् यह कहो कि फल तो भावोंके आधीन होता है तो फिर प्रश्न यह है कि आप लोग भावोंसे करते हो या नहीं ? यदि भावसहित करते हो तो फिर पूजा पाठमें लिखी हुई बातोंका निषेध कर अपने मनके अनुसार विपरीतता धारण करना नहीं बन सकेगा। तथा पूजा अभिषेकादिककी यथार्थ विधिमें आरम्भजनित पाप नहीं मानना पड़ेगा। यदि कदाचित् आप लोग बिना भावोंके करते कहोगे फिर बिना भावोंके ऐसा दम्भ क्यों करना चाहिये ?

कदाचित् यह कहो कि भाव तो केवलीगम्य है इसलिये भावोंका निश्चय तो केवलज्ञानी ही कर सकते हैं तो फिर इसका उत्तर यह है कि केवलज्ञानीपर विश्वास रखना पड़ेगा। उनके वचनोंकी आज्ञामें शंका वा संशय करना भी नहीं बन सकेगा। यह निश्चय करना पड़ेगा कि जो जिनागममें लिखा है सो सब प्रमाण और मान्य है। यदि उसमें कोई सावद्यता (आरम्भजनित हिंसा) वा निरवद्यता (पूर्ण अहिंसा) दिखाई पड़ती है तो उसे भी केवली हो जाने। हम तो केवल उनकी आज्ञा मानते हैं और उसे अपने मस्तकपर रखते हैं। परन्तु आप लोग ऐसा नहीं मानते अपने मनके अनुसार कल्पना कर उसका निषेध करते हो। भगवानकी आज्ञामें दोष बताकर नवीन-नवीन कल्पना करते हो और फिर भी सम्यक् श्रद्धानी वा सम्यग्दृष्टी बनते हो। सो यह कैसे हो सकता है।

वर्तमानमें सम्यग्दृष्टी कैसे होते हैं उनका स्वरूप अन्यमतका एक उदाहरण देकर बतलाते हैं।

किसी एक दिन वर्षाऋतुमें दुर्वासा ऋषि गोवर्द्धन पर्वतपर आये। यह जानकर श्रीकृष्णने अपनी

सोलह हजार गोपांगनाओंसे (रानियोंसे) आज्ञा की तुम सब एक-एक भोजनके थालमें छाक (सब प्रकारके भोजन) भरकर दुर्वासा ऋषिको भोजन करानेके लिये जाओ। श्रीकृष्णकी यह आज्ञा सुनकर सब रानियाँ अलग-अलग थालोंमें अनेक प्रकारके भोजन भरकर उन थालोंको हाथमें लेकर कहने लगीं कि "हे महाराज ! इस समय यमुना नदी अथाह जलसे भरी हुई बड़े वेगसे बह रही है। उसमें होकर हम सब किस प्रकार पार हो सकती हैं ? तब श्रीकृष्णने कहा कि तुम सब लोग यमुना नदीके किनारे जाकर कहना कि "हमारे श्रीकृष्ण यदि सचमुच बालब्रह्मचारी हों तो हमको मार्ग दो।" यह सुनकर उन रानियोंने वैसा ही किया और यमुना किनारे जाकर वैसा ही कहा तब यमुना घुटनोंसे भी नीची हो गयी। उसमेंसे वे सब रानियाँ उतर गईं और गोवर्द्धन पर्वतपर जाकर उन दुर्वासा ऋषिके सामने अनेक प्रकार भोजनोंसे भरे हुये सब थाल जाकर रख दिये तथा उनसे प्रार्थना की कि श्रीकृष्णने ये सब थाल आपके भोजनके लिये भेजे हैं। कृपाकर आप भोजन कीजिये। रानियोंकी यह बात सुनकर वह दुर्वासा ऋषि उन सोलह हजार थालोंका सब भोजन खा गया तब जाते समय रानियोंने पूछा कि महाराज ! यमुना अथाह भर रही है हमलोग किस प्रकार पार हों। रानियोंकी यह बात सुनकर ऋषिने पूछा कि तुम सब यहाँपर आईं किस प्रकार थीं ? इसके उत्तरमें रानियोंने पहलेकी सब बात कह सुनाई। उसको सुनकर सोलह हजार भरे हुये थालोंका भोजन करनेवाले दुर्वासा ऋषि कहने लगे कि तुम यमुनाके किनारे जाकर कहना कि हे यमुना महाराणी ! दुर्वासा ऋषि सदा अल्पाहारी हो अथवा सदाकाल उपवास धारण करनेवाला हो तो हमें मार्ग देना। उन रानियोंने ऐसा ही किया। यमुनाके किनारे खड़े होकर ऐसा ही कहा जिससे यमुना घुटनों तक हो गई और वे सब रानियाँ पार उतर गईं। उन्होंने जाकर यह सब वृत्तांत श्रीकृष्णसे कहा। सो देखो जिस प्रकार सोलह हजार गोपांगनाओंने अनेक प्रकारके भोगविलास क्रीड़ा करता हुआ विषयोंको पुष्ट करता हुआ वा परस्त्री सेवन करता हुआ भी बालब्रह्मचारी कहलाया तथा सोलह हजार भरे हुये थालोंको एक ही बारमें भोजन करता हुआ ही सदा अल्पाहारी वा उपवासी कहलाया। उसी प्रकार सैकड़ों जैनशास्त्रोंमें कहे हुये वचनोंको तथा केवलज्ञानी गणधर आचार्य सामान्य मुनियोंके कहे हुये वचनोंको वा उनके आधारपर बड़े-बड़े आचार्योंके द्वारा कहे हुये वचनोंको तो झूठा कह कहकर उनका निषेध करते जाते हो और केवल अपने वचनोंको हटको स्थापन कर सम्यग्दृष्टी वा यथार्थ श्रद्धानी बनना चाहते हो सो भाई आप लोगोंका यह श्रद्धान ऊपर कहे हुये उदाहरणके समान दिखाई पड़ता है।

कदाचित् यहाँपर कोई यह कहे कि यह तो बड़ा अंधेर है जो सोलह हजार स्त्रियोंसे भोग विलास करते हुये भी बालब्रह्मचारी कहलाये ? तो इसका समाधान यह है कि यह परमतका कथन है। भगवतादि पुराणमें लिखा है कि यदि वेदकी साक्षीपूर्वक जो परयोनिमें लिंग प्रवेश करे तो जबतक वीर्यपात नहीं होता तबतक उसको ब्रह्मचारी संज्ञा है वीर्यपातका दोष माना जाता है इसलिए कुच मर्दन, चुम्बन, लिंगप्रवेशादिका दोष नहीं। यथा—

परयोनिगतो विंदु कोटि पूजां विनश्यति।

अर्थात् परयोनिमें प्राप्त हुई वीर्यकी एक बूँद भी करोड़ों पूजाओंको नष्ट कर देती है। वेद श्रुतिमें भी लिखा है—

यावद्वीर्यस्खलनं न भवति तावद्ब्रह्मचारीति श्रुतिः।

अर्थात् जबतक वीर्य स्खलन नहीं होता तबतक ब्रह्मचारी संज्ञा है। इसी प्रकार वेद, श्रुति और स्मृति आदिके वाक्य दिखलाकर ये लोग ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवोंको तथा ऋषियोंको निर्दोष बतलाते हैं सो यह महा-मिथ्यात्व है। ये जैन शास्त्रोंके वचन नहीं हैं।

और सुनो आप लोग यह कहते हो कि जहाँपर पूजा, अभिषेक आदि कार्योंमें बहुत-सा आरम्भ होता हो तो वहाँपर थोड़ी ही वस्तुसे, वा बिना ही उस द्रव्यके अथवा उसके अभावमें उसकी कल्पनासे अथवा किसी निर्दोष द्रव्यको वैसा ही नाम रखकर क्या पूजा नहीं हो सकती है ? क्या इन्हीं द्रव्योंसे पूजा हो सकती है ? चरणोंमें गंध नहीं लगाया उसके बदले गंध मिला हुआ जल दूरसे पूजाके किसी पात्रमें क्षेपण कर दिया। पुष्प न चढ़ाये चावलोंको गंध वा केशरमें रंग कर पूजाके पात्रमें चढ़ा दिये। अनेक प्रकारके शाक, व्यञ्जन, पकवान, दाल-भात, दही-दूध आदि मिष्टान्नके बदले गोलाके टुकड़े पूजाके पात्रमें चढ़ा दिये। दीपकको जगमगाती ज्योतिके बदले गोलेके छोटे-छोटे टुकड़ोंको गंध वा केशरसे रंग कर चढ़ा दिया। धूपके सुगंधित धूमके बदले चंदनके चूरा को घोकर चढ़ा दिया। अनेक प्रकारके सार सुगंधित तथा मिष्ट और स्वादिष्ट फलोंके बदले बादाम, सुपारी आदि पूजा पात्रमें चढ़ा दिये। पुष्पांजलिके बदले केशरमें रंगे हुए चावल बखेर कर बड़े ऊँचे शब्दोंसे जय-जय शब्दोंका उच्चारण कर दिया। सो क्या इस प्रकार पूजा नहीं हो सकती। अवश्य हो सकती

है। परन्तु आप लोगोंका यह कहना और इस प्रकारकी पूजाको पूजा मानना ठीक नहीं है। क्योंकि यदि सामर्थ्य नहीं पूजा करनेवाला असमर्थ हो और वह बहुत अच्छे शुभ परिमाणोंसे इससे भी थोड़े द्रव्यसे भगवान-की पूजा करे तो भी वह महाफलको प्राप्त होता है परन्तु जो समर्थ हैं, धनके पात्र हैं वे अपनी इंद्रियोंकी पुष्टिके लिए अपने घरके बने हुए भोजनमें वा किसी एक भी शाकमें यदि थोड़ा-सा नमक भी कम होता है तो माँग कर उसमें डालकर उसे खूब अच्छा स्वादिष्ट बनाकर खाते हैं। यदि ऐसे लोग दूसरेके घर भोजन करने जाँय तो लड्डू, बर्फी आदि मीठे पकवानोंको छोड़कर केवल रूखी रोटी कब खाते हैं। अच्छे-अच्छे पकवान माँग-माँग कर खाते हैं और जबतक वे अच्छे पदार्थ सामने नहीं आते तबतक उनके परिणाम निरन्तर उसके लोभमें ही लगे रहते हैं। यदि एक ही दिन दूसरी जगह दो-चार घरोंमें भोजन बना हो तो जहाँ अच्छेसे अच्छा घी, शक्कर, मिश्रीका पकवान बना हो वहीं जाते हैं। यदि किसी गरीबके गुड़का सीरा बना हो तो उसके यहाँ कोई नहीं जाता है। ऐसे लोग स्वयं सुगन्धित गंध लगाते हैं। पुष्पोंकी सार सुगन्धी लेते हैं। अपने घर दीपक जला कर आनन्द मनाते हैं। पान, सुपारी, इलायची, लौंग आदि सुन्दर फल खाकर प्रसन्न होते हैं। विवाह शादियोंमें अनेक दीपक जलाते हैं नृत्य-गीत, बाजे-गाजे आदिसे उत्सव करते हैं जिनमें त्रस, स्थावर कायके जीवोंका प्रत्यक्ष घात होता है। ऐसे कार्योंसे वे लोग बहुत प्रसन्न होते हैं उन कार्योंमें तल्लीन हो जाते हैं और उन कार्योंमें होनेवाले पापोंको देखते हुए वा जानते हुए भी उन कार्योंका संग्रह करते हैं। अपनी इन्द्रियोंके भोगोंसे अपने चित्तकी वृत्तिको किञ्चित् भी नहीं रोकते। परन्तु पूजा, पाठ, अभिषेक आदि धर्म कार्योंमें सबका निषेध करते हो ? सो इसमें सिवाय लोभके और कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। यदि आप लोग लड्डू, बरफी आदि मिष्ठान्न भोजनोंके होते हुए भी साधारण भोजनोंसे काम चला लो, जिस तिस तरह अपना पेट भर लो, खीरमें बूरा कम हो वा न हो तो उसे ऐसे ही खा लो अथवा बूरा वा शक्करके बदले उसीके समान सफेद पिसा हुआ नमक डालकर खा लो तो हम भी समझें कि आप लोग ठीक कहते हो और जैसा कहते हो वैसा करते हो। परंतु ऐसा आप करते नहीं। जिस प्रकार पूजामें और और द्रव्योंसे काम लेते हो उसी प्रकार भूख मेटनेके लिये केवल अन्नसे पेट भर लेना चाहिये। सो आप लोग करते नहीं इससे मालूम होता है कि आप लोगोंका कहना मिथ्या है। कोरा छल है।

और देखो यदि अपने शरीरमें विषय-भोगोंके भोगनेकी हीनता आ जाती है वीर्य क्षीण हो जाता है

तब दूध पीते हो, पौष्टिक पदार्थोंका सेवन करते हो ; ऐसे पदार्थोंको बड़े रागसे जहाँ-तहाँसे लाकर इकट्ठा करते हो, न महँगी देखते हो न और कुछ देखते हो। तथा उन विषय-भोगोंको मन्द भावोंसे भी सेवन नहीं करते। बाजीकरणके उपाय करते हैं परन्तु जब पूजा, भक्ति, अभिषेक आदिका कार्य आ पड़ता है तो उसमें मायाचारी-से काम लेते हैं। जो सर्वथा अयोग्य है।

कदाचित् यह कहो कि ये तो गृहस्थ-सम्बन्धी संसारी कार्य हैं इनको इस प्रकार किये बिना बनता नहीं। गृहस्थी आरम्भमय है निमित्त मिलनेपर सब कार्य करने ही पड़ते हैं। परन्तु पूजा, अभिषेक आदि कार्य धर्मरूप हैं इनमें सावद्ययोग वा आरम्भजनित हिंसा नहीं करनी चाहिये। धर्म कार्य और गृहस्थीके कार्य एक नहीं हो सकते। सो भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि क्या संसार सम्बन्धी कार्योंमें पापका फल नहीं लगता है। आप लोग सांसारिक कार्य सब इच्छापूर्वक करते हो उनके करनेमें पापसे नहीं डरते परन्तु पूजा, अभिषेक आदि धर्म कार्योंमें अपने आत्माको बहुत चतुर बनाते हो। आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी अथवा अध्यात्मी बनकर पूजा, अभिषेक आदि कार्योंमें अरुचि दिखलाते हो। धर्म कार्योंको बिना द्रव्यके जिस तिस तरह सिद्ध कर लेते हो। देव, धर्म, गुरु और जिनागमके भक्त बनकर उनमें छिद्र ढूँढते हो, दोष लगाते हो और इस प्रकार उनको सदोष बनाकर आप निर्दोष शुद्ध सम्यक्त्वी शुद्ध श्रद्धानी बनते हो। भावार्थ—स्वयं भक्त होकर भी स्वामीको (देव, शास्त्र, गुरुको) सदोष मानकर स्वामिद्रोहिताका महा दोष लाद कर तथा अपनी स्तुति और परकी निन्दा आदिके सब दोषोंको धारण करते हुए भी शुद्ध श्रद्धानी बनते हो सो आप लोगोंके ये कार्य सब दंभमय हैं।

देखो एक पाप तो घीके घड़ेपर लगी हुई धूलिके समान होता है। संसार सम्बन्धी विषय भोगोंकी तृष्णारूप वा कषायसे होने वाले अथवा मिथ्यात्व अव्रत योग कषाय प्रमादरूप कार्य सब ऐसे ही पाप हैं इन पापोंका मिटना अत्यन्त कठिन है तथा दूसरे पाप कुम्भारके अवासे (भट्ठीसे) निकले हुए घड़ेपर लगी हुई धूलिके समान है जो फूक मारते ही उड़ जाती है। उसी प्रकार भगवानका अभिषेक, पूजा, प्रतिष्ठा, नवीन मन्दिरका बनाना, प्रतिमाजीकी प्रतिष्ठा कराना, तीर्थयात्रा, नित्य-नैमित्तिक पर्व और व्रतोंके विधान वा उद्या-पन करनेमें कुछ थोड़ासा पापरूप आरम्भ होता है परन्तु उसका नाश होना अत्यन्त सुसुखसाध्य है। पूजादिक

शुभ कार्योंसे उसी समय नष्ट हो जाता है। तथा उसके साथ पहलेके किये हुये समस्त पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार थोड़ा-सा घी अग्निकी तीक्ष्ण ज्वालामें पड़कर उसी समय भस्म हो जाता है उसी प्रकार वह पाप उसी समय भस्म हो जाता है। तथा महा पुण्य प्रगट होता है। यदि इसमें संदेह करोगे तो फिर पूजादिक कोई भी कार्य नहीं बन सकेगा क्योंकि फिर तो समस्त आरम्भोंको छोड़ कर केवल ढूंढिया साधुओं-के समान बनना पड़ेगा। भावार्थ—निर्ग्रन्थ मुनि तो फिर भी भगवानकी पूजा, वंदना आदि करते कराते हैं परन्तु ढूंढिया साधुओंको भगवानकी पूजा, वंदना करनी भी अच्छी नहीं लगती। इस प्रकार आप लोगोंका हाल हो जायगा।

इसके सिवाय यह भी विचार करो कि जैसे राजाके यहाँ बहुतसे सेवक होते हैं उनमेंसे कुछ तो निकट-वर्ती रहते हैं और कुछ दूर रहते हैं। जो सेवक राजाके निकट रहते हैं वे राजाके हाथ, पैर दाबते हैं राजा-की आज्ञानुसार सब सेवा करते हैं और पास रहकर राजाकी भक्ति करते हैं तथा जो दूर रहते हैं वे दूरसे केवल भक्ति करते हैं परन्तु इन दोनोंमें लाभ किसको अधिक होता है? अधिक भक्तिवाला कौन कहलाता है? अधिक सुख, अधिक बड़प्पन और राजाका अधिक प्रेम किसको मिलता है? अपराधोंका निवारण किसके अधिक होता है? राजाकी सुदृष्टि किसपर अधिक रहती है तो इसके उत्तरमें कहना ही पड़ेगा कि निकट रहनेवाले सेवकके लिये ही ये सब लाभ अधिक मिलते हैं। इसी प्रकार जो भक्तजन प्रतिमाजीकी अभिषेक, पूजन आदि कार्योंमें बार-बार उनके चरणोंका स्पर्श करते हैं तथा अत्यन्त अनुराग, विनय और भक्ति भावोंसे चरणस्पर्श-नादि कार्य करते हैं उनके पहले किये हुए सब पाप नष्ट होकर स्वर्ग मोक्षका महा लाभ प्राप्त होता है।

यदि किसीके द्वारा योग्य वा अयोग्य अपराध भी बन जाता है तो जिस प्रकार राजा अपने निकटवर्ती भक्त जानकर क्षमा कर देता है और उनकी भक्ति, स्तुतिसे संतुष्ट हो जाता है उसी प्रकार भगवानके चरण-स्पर्श करनेसे, स्नान, विलेपन, पुष्पमाला वा प्रकीर्णक पुष्प उनको आशिका तथा नमस्कार, भक्ति, प्रार्थना आदि उत्तम कार्योंके द्वारा गृहस्थ सम्बन्धी संचित महा पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उस पूजा, अभिषेक आदिसे होनेवाला आरम्भजनित दोष भी सब दूर हो जाता है। और वह भक्त अपनी इच्छानुसार फल पाता है।

कदाचित् यह कहो कि हम भी प्रक्षालन करते समय चरण स्पर्श करते हैं, नमस्कार भक्ति करते हैं,

पूजते हैं, सब काम करते हैं सो भी कहना अयोग्य ही है। क्योंकि सीधासा न्याय तो यह है कि एक बारका फल एक और अनेक बारका फल अनेक गुणा लिखा गया है, "अधिकस्य अधिकं फलम्" अर्थात् अधिकका अधिक फल होता ही है।" जब तक अत्यन्त निकटवर्ती न हुआ जाय तबतक अभिषेक, विलेपन, पुष्पार्चन आदि कार्य सिद्ध नहीं होते। जो दूर रहते हैं उनके निकट रहनेवालोंके समान बार-बार भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती। तथा उसका फल भी बहुत थोड़ा है। इसलिये जो यथार्थ श्रद्धानी हैं, सम्यग्दृष्टी हैं, बुद्धिमान हैं वे व्यर्थका हटकर केवल अपने वचनोंका पक्ष लेकर अपना अकल्याण नहीं करते। तथा जो ऐसा करते हैं सम्यग्-दृष्टि वा यथार्थ श्रद्धानी नहीं हो सकते। उनको मनोमति वा अपने मनके अनुसार चलनेवाला समझना चाहिये। जैसे-ब्राह्मणका लक्षण शास्त्रोंमें लिखा है "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" अर्थात् जो ब्रह्म वा परमात्माको जाने उसको ब्राह्मण कहते हैं परन्तु इस गुणको धारण न करने पर भी सैकड़ों हजारों केवल जातिसे ब्राह्मण हैं वैसे ही शास्त्रानुसार क्रिया न करनेवाले श्रावक भी केवल जातिसे श्रावक समझना चाहिये वे गुणोंसे श्रावक वा यथार्थ श्रद्धानी नहीं हो सकते। जिस प्रकार कोई सुनार चोरीका त्याग कर दे तो भी जातिसे चोर कहलाता है और वैश्य यदि चोरी कर ले तो भी जातिसे शाह कहलाता है। उसी प्रकार शास्त्रानुकूल क्रिया न करने वाले श्रावक समझना चाहिये। वे गुणसे (सम्यक्त्वरूप गुणसे) श्रावक नहीं हैं किंतु जाति वा नामसे श्रावक हैं। ऐसा सम्यग्ज्ञानियोंको समझ लेना चाहिये।

इन पुरुषोंमें बहुतसे जीव मन्दकषायी भी हैं वे यत्नाचरणपूर्वक चलते हैं, विषय-भोगोंमें रुचि भी कम रखते हैं। क्षमा आदि गुणोंको भी धारण करते हैं, विद्वान् भी हैं और सब गुणोंसे सुशोभित हैं तथापि एक भगवानकी आज्ञा न माननेके दोषसे, राजाकी आज्ञा न माननेवाले वकके समान अपराधी हैं। आज्ञाका मानना सबसे पहला कर्त्तव्य है। जो जीव राजाकी आज्ञा मानते हैं उनके किये हुए अपराध छूट जाते हैं परन्तु जो जीव राजाकी आज्ञा नहीं मानते वे गुणवान होनेपर भी दोषी गिने जाते हैं इसी प्रकार भगवानकी आज्ञा न माननेवाले अनेक गुणोंको धारण करनेपर भी दोषी ही समझे जाते हैं और भगवानकी आज्ञा माननेवाले यदि कुछ अपराध कर भी लें तो भी वह आज्ञा मानने मात्रसे नष्ट हो जाता है। ऐसा समझकर विवेकी जीवोंको भगवानकी आज्ञा अपने मस्तकपर धारण करनी चाहिये।

कदाचित् यह कहो कि ऊपर लिखे हुए शास्त्रोंके कथनको वा ऐसे जिनागमको हम नहीं मानते, उनपर हमारी श्रद्धा नहीं है इसीलिए हम वैसा आचरण नहीं करते तो इसका उत्तर यह है कि इन शास्त्रोंके कथनको हजारों ऋषि मुनियोंने कहा है और तुम्हारा कथन केवल एक दो आदमियोंका कहा हुआ है सो हजारों ऋषि मुनियोंके वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते और उनके विरुद्ध केवल एक दो साधारण आदमियोंके वचन कभी सच्चे नहीं हो सकते। जो कथन मिथ्या है वह मिथ्या ही रहता है और जो कथन यथार्थ है वह यथार्थ ही रहता है। चन्द्रमाको कितने ही लोग सदोष कहते हैं परन्तु ऐसी झूठी निन्दासे वह सदोषी नहीं होता। यह तो हाथी और कुत्तेके समान अपना-अपना स्वभाव है जो जैसा होता है वह दूसरोंको भी वैसा ही समझता है। हमने यह कथन केवल भगवानकी आज्ञा माननेवालोंके लिए लिखा है न माननेवालोंके लिए नहीं। दुष्ट लोग सज्जनोंके विरुद्ध सदासे होते चले आये हैं, सो यह उनका स्वभाव मिट नहीं सकता। जो कोई जीव जिन-वाणीके एक अक्षरके अर्थको भी छिपाता है वा उसका अर्थ बदल कर दूसरा करता है वह अनन्त संसारी होता है क्योंकि ऐसा करनेसे देव, गुरु, धर्म और जिनागमकी आज्ञाका भंग होता है। भारी अविनय होता है और ऐसे जीव नरकके पात्र होते हैं।

भगवानकी आज्ञाको न माननेवाले ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव लड़कोंको[1], स्त्रियोंको, भोले-भाले अज्ञानी जीवोंको, थोड़े पढ़े-लिखे नासमझोंको, अपने वचनोंकी चतुराई दिखला कर तथा शास्त्रोंकी झूठी साक्षी दिखला-कर पूर्वाचार्योंके विरुद्ध अपने कपोल कल्पित वचन सिद्ध करते हैं। मान कषायके उदयसे उन्मत्त पुरुषके समान

---

१. ऐसी-ऐसी मिथ्या बातें लड़कोंसे ही प्रारम्भ होती हैं छोटे-छोटे लड़के वा अनपढ़ लोग अथवा विदेशी विद्याओंको सीखनेवाले अभिमानी लोग धर्मका स्वरूप तो जानते नहीं हैं न जाननेका प्रयत्न करते हैं ऐसे लोगोंको चतुर मायाचारी तीव्र मिथ्यादृष्टि लोग अपने वचन जालसे शीघ्र ही अपने वश कर लेते हैं।

२. वर्तमानमें जो अनेक नवयुवकमंडल यंगमेनस् एसोसियेशन, यार दोस्तोंके मंडल, मित्रमंडल, युवक परिषद आदि नवीन-नवीन संस्थाएँ खुली हैं वे सब इसी प्रकारकी संस्थाएँ हैं। कुछ खुदगर्ज लोग अपना कार्य सिद्ध करनेके लिए केवल धर्मके नामपर इन संस्थाओंको खोल देते हैं परन्तु वे लोग वा वे संस्थाएँ मनमाने अधर्मकी प्रवृत्तियाँ चलाती हैं। कोई विजातीय विवाह चलाता है, कोई विधवा विवाह पुष्ट करता है, कोई छुआछूत लोप करता है, कोई मूर्ति पूजाका निषेध करता है, कोई रथोत्सव आदि प्रभावनाओंको रोकता है, कोई पूर्वाचार्योंके शास्त्रोंका खण्डन करता है, कोई पुराणोंको नहीं मानता, कोई जम्बूद्वीप, नरक, स्वर्ग आदिको नहीं मानता। कहाँ तक कहा जाय ऐसी-ऐसी संस्थाएँ सब अधर्मका प्रचार कर रही हैं। ऐसी संस्थाओंसे बहुत सावधान रहना चाहिये। तथा अपने बाल-बच्चोंको बहुत दूर रखना चाहिये।

अनेक अनर्थ उत्पन्न करनेवाले वचन कहते हैं, क्रोध करते हैं, दुर्वचन बोलते हैं, परन्तु अपना हट नहीं छोड़ते। बार-बार उन्हीं वचनोंको कहते वा करते जाते हैं। ऐसे जो लोग पूर्वाचार्योंके कहे हुए जिनागमके वचनोंको नहीं मानते वे इस वास्तविक मोक्षमार्गमें मूर्ख समझे जाते हैं। लिखा भी है—

मूर्खस्य पंच चिह्नानि क्रोधी दुर्वचनी तथा। हठी च दृढवादी च परोक्तं नैव मन्यते॥

अर्थात् क्रोध करना, दुर्वचन कहना, हठ करना, बार-बार उसी बातको कहते जाना और दूसरोंकी बात नहीं मानना ये पाँच मूर्खताके चिह्न हैं। ऐसे लोगोंका श्रद्धान कभी यथार्थ नहीं हो सकता केवल आजीविकाके लिए कपटरूप झूठा श्रद्धान होता है मोक्षके लिए यथार्थ श्रद्धान नहीं होता।

१६६-चर्चा एकसौ उनहत्तरवीं

प्रश्न—पहले पूजामें दाभ, दूब, गोमय, भस्मपिण्ड, सरसों आदि पदार्थ लिखे हैं सो ये पदार्थ तो अपवित्र हैं हिंसा आदि अनेक दोषोंसे भरे हैं इसलिये इनको पूजामें क्यों लेना चाहिये। तथा अष्ट द्रव्योंमें कौन-कौनसे द्रव्य लेने चाहिये।

समाधान—ये सब अपवित्र पदार्थ नहीं है किन्तु मांगलिक द्रव्य हैं इनको पहले भी लिख चुके हैं। जिस प्रकार लोह, लाख, हल्दी, मैनफल आदि मांगलिक पदार्थ विवाहमें वर कन्याके हाथमें बाँधते हैं उसी प्रकार अभिषेक, पूजा, प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें इन मंगल द्रव्योंको ग्रहण किया है। सो ही वसुनन्दीश्रावकाचारकी संस्कृत टीकामें लिखा है "यथा विवाहसमये वरकन्याः हस्ते लोहलाक्षासर्षपहरिद्रा दीयते तथाभिषेकप्रतिष्ठादौ दर्भदूर्वागोमयसर्षपादीनि मंगलद्रव्याणि गृह्यन्ते। अन्यत्किमपि नास्ति। महापुरुषैर्यन्मान्यं तदेव मन्यते" अर्थात् "जिस प्रकार विवाहमें वरकन्याके हाथमें लोह, सरसों, हल्दी आदि मंगल द्रव्य देते हैं उसी प्रकार अभिषेक, प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें दाभ, दूब, गोमय, सरसों आदि मंगलद्रव्य ग्रहण किये जाते हैं। इनके ग्रहण करनेका और कोई प्रयोजन नहीं है। पहलेके महापुरुष जो करते चले आये हैं वही किया जाता है तथा वही माना जाता है।

दाभके दश भेद हैं सो समयपर जैसा मिले वैसा ही ले लेना चाहिये। हमें दाभ वा दूबके ही लिये कोई हट नहीं है। दाभ न मिले तो अनुक्रमसे जो मिले सो ले लेना चाहिये। दस प्रकारके दाभ ये हैं—

कुशाः कांसाः यवा दूर्वा उशीरश्च कुकुंदराः ।
गोधूमा व्रीहयो मुंजा दश दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थात्, कुश, कांस, जौके पूले, दूब, खसखसके पूले, ककुंदर ( ) गेहूँके पूले, चावलोंके पूले, मूंज ये दस प्रकारके दाभ कहलाते हैं। धर्मरसिकमें भी लिखा है कि दाभके अभावमें कांस ले लेना चाहिये ये दोनों एक ही हैं यथा—

"कुशाभावे तु कांसाः स्युः कांसा कुशमयाः स्मृताः"

१७०–चर्चा एकसौ सत्तरवीं

पहले पूजाकी विधिमें यक्ष, यक्षिणी, असुरेन्द्र, इन्द्र, दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल आदिका आह्वान, स्थापन, पूजन आदि लिखा है सो यह तो जैनियोंको करने योग्य नहीं है। ये कार्य तो अन्य मतियोंके हैं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि पुरुष तो अरहन्तदेव, दयाप्रणीत धर्म और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड़कर और किसीकी पूजनादिक नहीं करते। जो करते हैं वे मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं ऐसा सब ग्रन्थोंमें लिखा है। परन्तु तुमने यहाँपर नित्यपूजनमें ही इनका पूजन लिख दिया सो ऐसा श्रद्धान सम्यग्दृष्टियोंका नहीं हो सकता। इन यक्ष, यक्षियोंको मन्दिरमें रखना नहीं चाहिये इनको रखना मिथ्यादृष्टियोंका काम है। जैनियोंमें जो यह रीति चली है सो विपरीत चलनेवाले लोगोंने चलाई है। सम्यग्दृष्टि तो प्राणांत होनेपर भी इनकी पूजनादिक नहीं करता।

समाधान—तुमने जो यह प्रश्न किया सो बहुत ठीक किया। यह ठीक है कि श्रीअरहन्तदेवके सिवाय अन्य देवोंको मानना मिथ्यात्व है। परन्तु अन्यमतके स्थापन किये हुये कुदेवादिकोंके पूजन करनेका निषेध किया है। जिन शासन देवोंका विधान जैन शास्त्रोंमें लिखा है उनका निषेध नहीं किया है यदि ऐसा न होता तो चौबीस तीर्थङ्करोंके गोमुख आदि चौबीस यक्षोंका वर्णन, चक्रेश्वरी आदि चौबीस यक्षियोंका वर्णन तथा क्षेत्रपाल आदि शासन देवताओंका वर्णन जैनशास्त्रोंमें क्यों लिखा जाता तथा इन यक्ष, यक्षियोंकी मूर्ति प्रतिमाके अगल-बगल वा नीचे क्यों बनाते? और इनके पूजनादिकको विधि शास्त्रोंमें क्यों कहते? यदि इनका पूजना मिथ्यात्व होता तो जैनशास्त्रोंमें क्यों लिखते?

कदाचित् कोई यह कहे कि इनका पूजन किन-किन शास्त्रोंमें लिखा है तो इसका उत्तर यह है कि "जिनप्रतिष्ठापाठ, इन्द्रध्वज, सार्द्धद्वितयद्वीपक्षेत्रपूजा, शान्तिचक्र, लघुस्नपन, मध्यस्नपन, बृहत्स्नपन, पंचकल्याण चतुर्विंशतिपूजा, जिनयज्ञकल्प, एकसंधिस्वामी कृत जिनसंहिता, पूजासार, त्रिवर्णाचार, हवन पाठ इनको आदि लेकर समस्त जैनपुराणोंमें यथा अवसर इनका पूजन विधान लिखा है। भगवज्जिनसेनाचार्यने श्रीमदादिपुराणमें गर्भान्वय आदि क्रियाओंका वर्णन करते समय इन्द्रादिकोंका पूजन, आह्वान आदि लिखा है। श्रीऋषभदेवके जन्माभिषेकमें मेरु पर्वतपर अपने यथायोग्य स्थानपर दश दिक्पाल बैठे थे ऐसा लिखा है। यथा—

दिक्पालश्च यथायोग्यं दिग्विदिग्भागसंश्रिताः।
तिष्ठन्ति समं निकायैः जिनोत्सवदिदृक्षया॥

इसी प्रकार श्रीप्रभाचन्द्रने पार्श्वपुराणमें लिखा है कि "इन्द्रने दश दिक्पालोंको स्थापन कर संतुष्ट किया।" बृहद्हरिवंशपुराणमें अन्तमंगल करते समय श्रीजिनसेनाचार्यने चौबीस तीर्थंकरोंके महाभक्त चौबीसों जिनशासन देवताओंको तथा चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बिका, ज्वालामालिनी आदि सम्यग्दृष्टी देव-देवियोंको पुराणके आश्रय बतलाया है कि ये सब शासनदेवता जिनधर्मीके समीप रहते हैं। गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथके मन्दिरकी उपासना करनेवाली सिंहवाहिनी, चक्रको धारण करनेवाली अम्बिकादेवी है जिसके सामने क्षुद्र देवता टिक नहीं सकते ऐसी वह अम्बिकादेवी कल्याणके लिये जिनशासनकी सेवा करती है। इसलिये वहाँपर परचक्रका विघ्न नहीं हो सकता।

इसके सिवाय नव ग्रह, असुर, नाग, भूत, पिशाच, राक्षस आदि नीच देव लोगोंके हितकी प्रवृत्तिमें विघ्न करते हैं। इसलिये विद्वान लोग शासन देवताओंके गुण स्मरण कर उन क्षुद्र देवताओंको शान्त करते हैं। ऐसा कथन ग्यारहवें, बारहवें श्लोकमें लिखा है सो विचार कर लेना चाहिये। रविषेणाचार्यने सुग्रीव यक्षको अर्घ देनेका कथन पद्मपुराणमें लिखा है तथा सोमसेनकृत लघुपद्मपुराणमें लिखा है कि "रावण अपने श्रीशान्तिनाथके मन्दिरमें बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा था। उसमें विघ्न करनेके लिये वानरवंशियोंके कुमार लंकापुरीमें गये और अनेक विघ्न किये परन्तु रावण अपने ध्यानसे नहीं डिगा। उस समय वह रावण अपने ध्यानमें ऐसा लीन बना रहा कि यदि ऐसा ध्यान मुक्तिके लिये करता तो वह मुनि केवलज्ञानको अवश्य प्राप्त होता। उस

समय श्रीशान्तिनाथके मन्दिरमें स्थापन किये हुये क्षेत्रपालने उन वानरवंशी कुमारोंको डरा कर भगा दिया था। तथा उन पूर्णभद्र, मणिभद्र क्षेत्रपालने जाकर उलाहना दिया था कि ये लोग मंदिरोंमें जाकर विघ्न करते हैं सो यह बात ठीक नहीं है। तब रामचन्द्रने उन क्षेत्रपालोंसे कहा कि "आप लोग अन्याय मार्गपर चलनेवाले रावण-की तो रक्षा करते हो और धर्मात्माकी रक्षा नहीं करते सो तुमको ऐसा करना योग्य नहीं है। ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिनमंदिरोंमें क्षेत्रपाल रहते ही हैं।

यशस्तिलक महाकाव्यकी टीकामें लिखा है भगवान अरहन्तदेव तीनों जगतके नेत्र हैं जो कोई पूजा करनेवाला चतुर्णिकाय देवोंको भगवान अरहन्तदेवके समान जानकर पूजा करते हैं, दोनोंको समान जानते हैं वे नरकगतिमें जाकर उत्पन्न होते हैं। परमागम वा जैनशास्त्रोंमें व्यन्तरादिक देवोंको जिनशासनकी रक्षाके लिए कल्पित किया है। इसलिए सम्यग्दृष्टी जीवोंको इन शासन देवताओंके लिये यज्ञांश देकर (पूजाका भाग दान कर) मानना चाहिये ऐसा सम्यग्दृष्टियोंके लिए लिखा है। यथा--

देवजगत्त्रयीनेत्र व्यन्तराद्याश्च देवताः। समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः॥
ताः शासनादि रक्षार्थं कल्पिताः परमागमे। अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः॥
तच्छासनैकभक्तानां सुदृशां सुव्रतात्मनाम्। स्वयमेव प्रसीदन्ति ताः पुंसां सपुरंदराः॥

और देखो विजयार्द्ध पर्वतपर विद्याधर निवास करते हैं उनमें कितने ही सम्यग्दृष्टी उसी भवसे मोक्ष जानेवाले वा स्वर्ग जानेवाले ऐसे राजा, महाराजा हुए हैं जिन्होंने विद्या सिद्ध करनेके लिए यक्ष-यक्षी आदि व्यन्तरोंकी पूजा वा आराधना की है। यह विषय श्रीगुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण आदि अनेक ग्रंथोंमें प्रसंग पाकर अनेक स्थानोंपर लिखा है।

श्रीपालचरित्रमें लिखा है कि जिस समय धवल सेठने राजा श्रीपालको समुद्रमें गिरा कर उसकी रानीका सतीत्व हरण करना चाहा था उस समय उस सती रानीकी महिमा प्रगट करनेके लिये पद्मावती, चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी आदि यक्षियां तथा पूर्णभद्र, मणिभद्र आदि क्षेत्रपाल ये सब शासनदेवता अपने-अपने वाहन और शस्त्र लेकर आ उपस्थित हुए थे और सबने उस पापी सेठका घोर अपमान किया था और सतीकी महिमा प्रगट की थी। यथा--

कम्पमानासना बह्वो जिनशासनदेवताः। आजग्मुः शीलरक्षायै बह्वो व्यन्तरामराः ॥७०॥
मणिभद्रोमरः शीघ्रं चक्रेऽधिमतिचंचलम्। वातैः प्रलयकालाभैः वणिक्पोतादिनाशनम्॥७१॥
चक्रेश्वरी च पोतान्यभ्रमयच्चक्रवत्तदा। व्यधाद्दृष्टिहरं धूपं महान्तं रोहिणी क्षणात्॥७२॥
अग्निं प्रज्वालयामासाहो ज्वालामालिनी क्रुधा। पद्मावती चपेटाद्यैः तन्मुखे मारयद्भृशम्॥
श्वारूढक्षेत्रपालोघास्पापिनं तन्मुखे दहन्। तच्छीलसिद्धये ज्वलता·····ता तेन तत्क्षणम्॥
आरूढो गरुडं व्यन्तरेन्द्रो दशमुखाह्वयः। बंधनैः पृष्ठपाणि बध्वोर्द्धा ह्रीमधो मुखः॥ (?)

विन्ध्याचल पर्वतपरके चैत्यालयमें रहनेवाले यक्षने भीमको गदा नामका शस्त्र दिया था सो पाण्डव-पुराणमें लिखा ही है।

श्रीभद्रबाहु स्वामीने नवग्रह स्तोत्रमें लिखा है कि ग्रहोंकी शांतिके लिए भगवानकी पूजाके साथ नवग्रहों की पूजन भी करनी चाहिये। यथा—

जगद्गुरुं नमस्कृत्य श्रुत्वा सद्गुरुभाषितम्। ग्रहशांतिं प्रवक्ष्यामि लोकानां सुखहेतवे॥
जैनेन्द्रखेचरा ज्ञेया पूजनीया विधिक्रमात्। पुष्पैर्विलेपनैर्धूपं नैवेद्यैः फलसंयुतैः॥
जन्मलग्ने च राशौ च यदि पीडितखेचराः। तदस्य पूजाया धीमान् खेचरैः सहिता जिन॥
आदित्यसोममंगलबुधशुक्रशनीश्चराः। राहुप्रमुखः जिनपतिपुरतोयं तिष्ठति॥
इति भणित्वा पंचवर्णासु पुष्पांजलिं क्षिपेत्। जिनानां गृहे स्थित्वा ग्रहाणां तुष्टिहेतवे॥
नमस्कारं ततो भक्त्या जपेदष्टोत्तरं सुधीः। श्रीरुद्रबाहुभवाचेदं पञ्चमः श्रुतकेवली॥

१. इनका अभिप्राय यह है। उस समय शासन देवताओंका आसन कम्पायमान हो गया और शीलकी रक्षा करनेके लिये वे सब देवता आ गये। मणिभद्रने प्रलयकालके समान हवा चला कर समुद्र चंचल कर दिया जिससे जहाज नष्ट होता दिखाई दिया। चक्रेश्वरी जहाजको चक्रके समान फिरा दिया। रोहिणीने ऐसा धुआँ फैलाया जिससे कुछ न दिखाई दे। ज्वालामालिनीने अग्नि जला दी। पद्मावतीने उस सेठके मुँहपर मार लगाई। क्षेत्रपालने उसका मुँह जलाया। दशमुख नामके व्यन्तरेन्द्रने उसको बाँध लिया।

२. इन सबका भावार्थ यही है कि यदि ग्रह दुष्ट हों, पीड़ा देते हों तो भगवानकी पूजा करनेके बाद इन ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

इसका अर्थ विचार लेना चाहिए ।

और देखो भरत आदि चक्रवर्तियोंकी आयुधशालामें जब चक्र आयुध प्रगट हुआ तब उन्होंने उसकी पूजा की सो यह कथन प्रसिद्ध ही है । इन बारह चक्रवर्तियोंमेंसे आठ चक्रवर्ती तो उसी भवसे मोक्ष गए और दो स्वर्गमें गए । ये सब सम्यग्दृष्टी थे । इनके सिवाय दिग्विजय करनेके लिए जब चक्रवर्ती निकलते हैं तब समुद्रके किनारे जाकर यक्षको वश करनेके लिये दाभके आसन पर बैठकर तेला (तीन उपवास) धारण करते हैं यह सब चक्रवर्तियोंकी रीति है ।

श्रीमत् आदिपुराणके उनचालीसवें पर्वमें लिखा है कि तीर्थङ्करोंके सिवाय विश्वेश्वरादिक और भी देव हैं जो शान्तिके करने वाले हैं ।

इन विश्वेश्वरादिकके सिवाय मांसाहारी क्रूर देव और भी हैं सो उनका त्याग कर देना चाहिये अर्थात् उनको नमस्कार, पूजन आदि नहीं करना चाहिये ऐसा लिखा है यथा—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवता शांतिहेतवः । क्रूरास्तु देवताः हेयाः येषां स्याद् वृत्तिरामिशैः ॥

इससे मालूम होता है कि शान्ति करनेके लिये तीर्थंकरोंके सिवाय और भी देव हैं ।

छयालीसवीं क्रियाका वर्णन करते समय लिखा है "कि नौ निधि और चौदह रत्नोंकी पूजन कर फिर चक्रका महोत्सव किया । यथा—

संपूज्य निधिरत्नानि कृतचक्रमहोत्सवः ।
दत्त्वा किमिच्छिकं दानं मान्याः संमान्य पार्थिवाः ॥ २३६ ॥
यथावदभिषिक्तस्य तिरीटारोपणं ततः । क्रियते पार्थिवैः मुख्यैश्चतुर्भिः प्रथितान्वयैः ॥२३७॥

इस प्रकार महापुरुषोंने भी किया फिर हमारे तुम्हारे समान श्रद्धानियोंकी तो बात ही क्या है ?

दूसरे लघु पद्मपुराणमें भगवान मुनिसुव्रत तीर्थंकरके जन्माभिषेकके समय लिखा है कि "इन्द्रने मेरु पर्वतपर अभिषेक करते समय पहले दश दिक्पालोंको तथा लोकपालोंको स्थापन किया, अर्घ देकर उनका पूजन किया और फिर पाँचवें क्षीरसागरका जल लाकर भगवानका अभिषेक किया । यथा—

ततः शक्रेण दिक्पाला लोकपाला यथाक्रमम्।
संस्थाप्य पूजिता अर्घ्यैः सर्वशांतिकहेतवे ॥ ६७ ॥
जंतूच्छिष्टं जलं चात्र तस्माच्चक्षीरसागरात्। समानीय जिनो देवः तेन संस्नाप्यते मया ॥६८

यहाँ इन्द्रने भी ऐसा किया सो क्या इसके सम्यक्त्व नहीं है जो अपने सेवकोंका भी अर्घ देकर पूजन किया।

श्रीमद् आदिपुराणके चालीसवें पर्वमें क्रियाओंके मन्त्राधिकारमें पीठिका मन्त्र आदि मंत्रोंमें जिनेन्द्रदेवके सिवाय अन्य देवोंको भी पूजना लिखा है। यथा—

"सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्यनिर्वाणपूजार्ह अग्नीन्द्राया स्वाहा" इति पीठिका मंत्रः। "सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते सरस्वति स्वाहा" इति जातिमंत्रः। "ग्रामपतये स्वाहा" इति निस्तारमंत्रः। "अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा"। श्रावकाय स्वाहा। देवब्राह्मणाय स्वाहा। सुब्राह्मणाय स्वाहा। सम्यग्दृष्टे भूपते नगरपते कालश्रवणयक्षाय स्वाहा" इति ऋषिमंत्रः। "सम्यग्दृष्टे कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रनामाय स्वाहा" इति सुरेंद्रमंत्रः।

इस प्रकार और भी परम मन्त्र राजादिक मन्त्रोंमें अग्नींद्र, कालश्रमण, यक्ष तथा इन्द्र आदिका पूजन है। सो सब विचार कर लेना चाहिये।

यहाँपर कदाचित् कोई यह कहे कि यह सब लिखा है सो तो सब ठीक है परन्तु गोम्मटसार, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थोंमें तो नहीं लिखा है। तो इसका समाधान यह है कि प्रथम तो गोम्मटसारमें यह प्रसंग ही नहीं आया है। क्योंकि जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, पूजा, प्रतिष्ठा, श्रावकधर्म आदिका वा प्रथमानुयोगका जहाँ वर्णन है वहाँ यह सब कथन किया है। इसलिये यदि एक गोम्मटसारमें नहीं है तो जैनधर्मके अन्य शास्त्रोंमें तो है। यदि एक गोम्मटसारको ही मानोगे अन्य शास्त्रोंको नहीं मानोगे तो गोम्मटसारके बिना अन्य सब शास्त्र अप्रमाण मानने पड़ेंगे। फिर उन शास्त्रोंका स्वाध्याय श्रद्धान आदि करना भी नहीं बन सकेगा।

कदाचित् आपको ऐसा ही हट है कि त्रिलोकसार, गोम्मटसारके बिना हम और ग्रन्थोंका श्रद्धान नहीं करते तो देखो त्रिलोकसारमें अकृत्रिम चैत्यालयोंमें विराजमान श्रीजिनप्रतिमाओंका स्वरूप दिखलाते समय लिखा

है कि अकृत्रिम चैत्यालयोंकी प्रतिमाओंके दोनों ओर तथा नीचे सर्वाल्हाद और सनत्कुमार आदि बत्तीस-बत्तीस यक्ष और श्रीदेवी तथा श्रुत देवता स्त्री मनुष्योंके आकारमें अनादि निधन विराजमान हैं। भावार्थ—प्रतिमाके दोनों ओर बत्तीस-बत्तीस यक्ष तो चमर ढुला रहे हैं तथा श्रीदेवी वा लक्ष्मीदेवी और श्रुतदेवता वा सरस्वती देवी वहीं पर विराजमान हैं। प्रतिमाजीके नीचे सर्वाल्हाद और सनत्कुमार ये दोनों जिनभक्त यक्ष बैठे हैं। उनके आगे अष्ट मंगलद्रव्य रक्खे हैं। यथा—

दससतालमाणलक्खणभरिया पेक्खंत इव वंदंता वा।
पुरुजिणतुंगा पडिमा रयणमया अट्ठ अहियसया॥ ९७६॥
चमरकरणागजक्खग वत्तीसं मिहुणगेहि पुह जुत्ता।
सिरसीए पत्तीए गब्भगिहे सुट्ठ सोहंति॥ ९७७॥
सिरिदेवी सुहदेवी सव्वाण्हसणकुमारजक्खाणं।
रूवाणिय जिणपासे मंगलभट्ठविहमवि होदी॥ ९७८॥

इस प्रकार त्रिलोकसारमें लिखा है। इसका अर्थ ऊपर लिखे अनुसार है।

इसी प्रकार गोम्मटसारमें कर्मकांडके नौवें अधिकारकी समाप्तिमें जहां समस्त ग्रन्थ पूर्ण होता है तथा शास्त्रकी पूर्णता होती देख कर आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्तीकी प्रतिज्ञा पूरी होती है वहांपर अन्त मंगल करते समय लिखा है कि पंचसंग्रह सूत्ररूप यह गोम्मटसार ग्रन्थ सदा जयशील हो। तथा गोम्मट नामके पर्वतके शिखरपर श्रीचामुण्डरायके किये हुये जिनालयमें श्रीगोम्मट जिन अर्थात् श्रीनेमिनाथ तीर्थङ्करकी एक हाथ प्रमाण ऊँची इंद्रनीलमणिकी प्रतिमा विराजमान है वह सदा जयशील हो। इसी प्रकार जिस राजा चामुण्डरायने श्रीनेमिनाथके जिनालयमें जो एक बहुत ऊँचा स्तम्भ खड़ा किया है तथा उसपर जो यक्षदेवकी मूर्ति स्थापित की है जिसके मुकुटके अग्रभागसे निकलती हुई किरणरूपी जलसे सिद्धपरमेष्ठीके आत्मप्रदेशोंके आकारस्वरूप दोनों शुद्ध चरण धोये जाते हैं ऐसा वह राजा चामुण्डराय सदा जयशील हो। यहांपर जो यक्षके मुकुटकी किरणोंसे सिद्धपरमेष्ठीके चरण धोये जानेकी बात लिखी है सो केवल उपमामात्र है उस खम्भेकी

ऊँचाई अधिक विसलाई है। कुछ वे किरणें सिद्धों तक थोड़े ही पहुँचती हैं। अभिप्राय केवल इतना ही है कि राजा चामुण्डरायने बहुत ऊँचा स्तम्भ बनवाया है जिस पर यक्षकी मूर्ति स्थापित की है, ऐसा गोम्मटसारमें लिखा है। यथा—

गोम्मटसंगहसुगो गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कडजिणो जयऊ॥ ५२॥
जेणुब्भियथंभुवरिल्लसव्वसिद्धीदरणकिरणजलधोया।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयऊ॥ ५३॥

इस प्रकार गोम्मटसारमें भी जिनालयमें स्थापन किये हुए यक्षदेवका वर्णन है।

और देखो—

देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवंद्यान् शुभप्रदान् शोभितसारवर्णान्।
दुग्धाब्धिसंस्पर्द्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम्॥

इत्यादि पूजा-पाठ नित्य पढ़ा जाता है। यह पाठ नरेन्द्रसेन भट्टारककृत प्रतिष्ठापाठका है उसी पाठमें यक्ष, यक्षी, इन्द्रादिक, देव, नवग्रह, दिक्पाल, क्षेत्रपाल आदिकी पूजा करना लिखा है।

श्रीसमन्तभद्रस्वामीने अपने रत्नकरण्डश्रावकाचारमें लिखा है कि सम्यग्दृष्टी पुरुषोंको भय, आशा, स्नेह वा लोभसे कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्रोंको नमस्कार और विनय कभी नहीं करना चाहिये। यथा—

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्। प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥

यहाँपर कुदेवोंका निषेध किया है सम्यग्दृष्टी देवोंका निषेध नहीं किया है। इस प्रकार अनेक शास्त्रोंमें लिखा है।

कदाचित् यहाँपर यह कहो कि शास्त्रोंमें लिखा है तो हम क्या करें? हमको तो किसी प्रकार करना योग्य नहीं है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव किसी प्रकार भी इन देवोंकी पूजा, वन्दना आदि नहीं करते क्योंकि समस्त जैनग्रन्थोंमें कुदेवोंके मानेका त्याग लिखा है। कुदेवोंके माननेका त्याग किसी एक शास्त्रमें नहीं किन्तु

समस्त शास्त्रोंमें लिखा है। इसलिए सम्यग्दृष्टि पुरुषोंको इस प्रकारका (इन देवोंके पूजनेका) श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करना ठीक नहीं है। परन्तु इसका उत्तर वा समाधान यह है कि आपका कहना तो सत्य है और शास्त्रोंमें आपके कहे अनुसार ही लिखा है आपका यह कहना अन्यथा अथवा मिथ्या नहीं है किन्तु उन शास्त्रों-में कुदेवोंका त्याग लिखा है। जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, विनायक, क्षेत्रपाल, चंडी, भैरव, मारुति आदि कुदेव अन्य मतियोंके स्थापन किये हुये हैं उन्हींकी पूजा सेवाके त्याग करनेके लिये लिखा है। जैनशास्त्रोंमें कहे हुये सम्यग्दृष्टी शासन देवताओंका निषेध नहीं है। यदि जैनशास्त्रोंमें कहे हुये शासन देवताओंका निषेध माना जायगा तो अनेक शास्त्रोंमें इनका वर्णन क्यों लिखा जाता ? क्योंकि जैनशास्त्रोंमें तो पूर्वापरविरुद्धरहित वचन हैं।

यदि ऐसा न मानोगे तो गोम्मटसारके पहले अधिकारमें लिखा है कि "महाभारत वा रामायण आदि शास्त्रोंको नहीं सुनना चाहिये। सो क्या जैनशास्त्रोंमें कहे हुये भारत अर्थात् कौरवों पांडवोंका चरित्र वा यादववंशियोंका कथन जो हरिवंशपुराण वा पांडवपुराणादिकोंमें लिखा है तथा रामायण अर्थात् रामचन्द्र रावणकी कथा जो पद्मपुराणमें लिखी है वह भी क्या नहीं सुननी चाहिये। परन्तु हम आप सब ही इन ग्रन्थों-को पढ़ते-पढ़ाते वा सुनते-सुनाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अन्य मतके रामायण, भारत आदि ग्रन्थ नहीं सुनने चाहिये। जैनशास्त्रोंमें कहे हुये रामायण, भारत आदिके सुननेका निषेध नहीं है। यदि जैनशास्त्रोंमें कहे हुये भारत, रामायण आदिके सुननेका निषेध मानोगे तो हरिवंशपुराण, पांडवपुराण, पद्मपुराण आदि ग्रन्थोंका भी लोप करना मानना पड़ेगा। इसलिये अपना और परका विचार कर कहना चाहिये।

जैनशास्त्रोंमें जो शासन देवताओंका पूजन लिखा है सो ये सब देवता सम्यग्दृष्टी जिनभक्त हैं और जैनशासनके रक्षक हैं इसलिये ये साधर्मियोंके समान हैं। यदि सम्यग्दृष्टी पुरुष इनकी पूजा सत्कार करे तो क्या दोष है। जो साधर्मी पुरुष अपनेसे गुण, तप वा आयु आदिमें बड़े हों उनकी विनय, भक्ति, यथायोग्य पूजा सन्मान, विनय आदि अन्य साधर्मी पुरुष करते ही हैं यह रीति सदासे चली आ रही है। शास्त्रोंमें भी साधर्मी-की सेवा, आदर, सत्कार आदि करना लिखा ही है। तथा वर्तमान समयमें भी श्रावक परस्पर वात्सल्यभाव धारण कर एक दूसरेको दान, मान और सन्मान कर संतुष्ट करते ही हैं तो फिर देवगतिके साधर्मियोंको मानने-

में मिथ्यात्वका दोष किस प्रकार आ सकता है ? अन्य कुदेवादिकके माननेमें मिथ्यात्व वा हिंसाका दोष प्रत्यक्ष आता है इसलिये सम्यग्दृष्टी पुरुष उनको कभी नहीं मानते हैं और न कभी मानना ही चाहिये। जो पुरुष इस कथनसे विपरीत कथन करते हैं वे सम्यग्दृष्टी नहीं हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टी हैं। ऐसा अनेक शास्त्रोंमें लिखा है।

१७१–चर्चा एक सौ इकहत्तरवीं

प्रश्न—पहले सब कार्योंमें मंत्र शब्द लिखा है सो मं त्र इन दोनों अक्षरोंका अर्थ क्या है और इनसे मिले हुए मंत्र शब्दका अर्थ क्या है।

समाधान—मन्त्र शब्दमें दो अक्षर हैं पहला अक्षर मं है उसका अर्थ मन अथवा मनसे सम्बन्ध रखनेवालीमनोकामना है और त्र शब्दका अर्थ रक्षा करना है। इन दोनों अक्षरोंके मिलानेसे मंत्र शब्द बनता है। जो 'मं' अर्थात् मन वा मनोकामनाकी 'त्र' अर्थात् रक्षा करे उसको मन्त्र कहते हैं। सो ही लिखा है—

मकारं च मनः प्रोक्तं त्रकारं त्राणमुच्यते। मनसस्त्राणयोगेन मंत्र इत्यभिधीयते।

१७२–चर्चा एकसौ बहत्तरवीं

प्रश्न—पहले जो जिनपूजाका वर्णन लिखा है सो उस पूजाको करनेवाला कैसा होना चाहिये ?

समाधान—जैन शास्त्रोंमें पूजाके प्रकरणमें पूज्य, पूजक, पूजा, पूजा हेतु और फल ये पाँच प्रकरण लिखे हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है। जो क्षुधा, तृषा आदि अठारह दोषोंसे रहित है, केवलज्ञानसे सुशोभित है, जो कृतार्थ है अर्थात् अष्ट कर्मोंके नाश करने रूप कार्यको कर चुके हैं, सिद्ध हो चुके हैं, जो सबका भला करनेवाले हैं, इन्द्रादिक देव भी जिनके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं, जो आठों प्रातिहार्योंसे विभूषित हैं और छयालीस गुणोंसे सुशोभित हैं ऐसे वीतराग अरहन्त देव पूज्य हैं। भावार्थ—अन्य मतके द्वारा माने हुये हरि, हर, चंडी, मुंडी, भैरव, क्षेत्रपाल, दुर्गा, बीजासणी, शीतला, भवानी, गणपति, हनुमान, अऊत, पत्र, भूत, प्रेत, पितर, सती आदि अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टी कुदेवादिक कभी पूज्य नहीं हो सकते। सम्यग्दृष्टी जीव ऐसे कुदेवादिकोंको कभी पूजा नहीं कर सकते किन्तु भगवान अरहंत देव ही सदा पूज्य होते हैं सो ही पूजासारमें लिखा है।

पूज्यः स प्राप्तकैवल्यो निष्ठितार्थो जिनेश्वरः। सार्वः सर्वेन्द्रवंद्यांघ्रिः प्रातिहार्यादिसंयुतः॥

आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजा और विसर्जन इस प्रकार पंचोपचारी पूजाका स्वरूप जो पहले कहा है उसका करना पूजा है। पूजा करना पुण्यवृद्धिका कारण है यही पूजाका हेतु है। मोक्ष प्राप्त होना पूजाका अन्तिम फल है। पूजकका स्वरूप अभी आगे बतलाते हैं। इस प्रकार पूजाके पांच भेद हैं सो ही पूजासारमें लिखा है—

पंचोपचारविधिना पंचशुद्धयान्वितार्हतः। भक्त्यात्माचरणं पूजा प्रतिष्ठादिक्रियाविधिः॥
पूज्यो जिनपतिः पूजा पुण्यहेतुः जिनार्चना।
फलं साभ्युदयामुक्ति भव्यात्मा पूजकः स्मृतः॥

ऐसा क्रमसे समझ लेना चाहिये। आगे पूजक अर्थात् पूजा करनेवालेका विशेष स्वरूप लिखते हैं। जो जाति और कुलसे शुद्ध हो, शीलवान हो, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा उत्तम शूद्र हो, व्रतोंको दृढ़ताके साथ पालन करनेवाला, आचरण जिसके दृढ़ हों, जो सत्य बोलनेवाला हो, शौचाचारको पालन करनेवाला हो, मित्र-बान्धव आदिके द्वारा पवित्र हो, (जातिच्युत न हो) अपने गुरुके दिये हुए मन्त्रसे सुशोभित हो (अष्ट मूलगुण और यज्ञोपवीत आदिको धारण करनेवाला हो) और जो जीवोंकी हिंसासे अत्यन्त दूर हो ऐसा मनुष्य भगवानकी पूजा करनेका अधिकारी होता है। सो ही पूजासारमें लिखा है—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाथ सुशीलवान्। दृढव्रतो दृढाचारः सत्यशौचसमन्वितः।
कुलेन जात्या संशुद्धः मित्रबंधवादिभिः शुचिः। गुरूपदिष्टमंत्राढ्यः प्राणिवधादिदूरगः॥

आगे पूजा करनेवालेका लक्षण और भी विशेषतासे कहते हैं। जो पवित्र हो (जिसके कुलमें धरेजा या विधवा विवाह न हो) जो प्रसन्न वदन हो, सदा प्रसन्न रहनेवाला हो, जो गुरुका भक्त हो, व्रतोंको दृढ़ता-

१. शूद्रके लिये जो पूजाका अधिकार लिखा है सो इसका अभिप्राय यह है कि जिन शूद्रोंमें विधवाका धरेजा नहीं होता ऐसे शूद्रोंको उत्तम शूद्र कहते हैं ऐसे शूद्रोंको केवल दूरसे पूजा करनेका अधिकार है उसको अभिषेक, चरणस्पर्श आदि करनेका अधिकार नहीं है। जिन कुलोंमें विधवाओंका धरेजा होता है वे चाहे ब्राह्मण हों चाहे वैश्य हों और चाहे शूद्र हों वे सब निंद्य शूद्र कहलाते हैं ऐसे लोगोंको पूजा आदि करनेका कोई अधिकार नहीं है।

के साथ पालन करनेवाला हो, दयालु हो, चतुर हो, जप, तप कर सहित हो और बीजाक्षरोंको धारण करनेवाला हो वही भगवानकी पूजा करनेका अधिकारी होता है[1]। सो ही पूजासारमें लिखा है—

शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो दृढव्रतः सत्यदयासमेतः।
दक्षः पटुः बीजपदावधारी जिनेन्द्रपूजासु स एव शस्तः॥

आगे दूसरे प्रकारसे भी पूजा करनेवालेका स्वरूप लिखते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंमेंसे कोई हो, जो अत्यन्त रूपवान हो, सम्यग्दृष्टी हो, अणुव्रती हो, चतुर हो, जो सदा सदाचारका पालन करनेवाला हो, पंडित हो वह पूजा करनेका अधिकारी होता है। सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

त्रैवर्णिकोतिरूपांगः सम्यग्दृष्टिरणुव्रती। चतुरः शौचवान् विद्वान् योग्यः स्याज्जिनपूजने॥

ऐसा जिनसंहिताके तीसरे सर्गमें लिखा है।

१७३—चर्चा एकसौ तिहत्तरवीं

प्रश्न—पूजा करनेवालेका स्वरूप तो जाना परन्तु जो पूजा करने योग्य नहीं है उनका स्वरूप क्या है?

समाधान—साधारण रीतिसे तो यह समझ लेना चाहिये कि जो ऊपर लिखे कथनसे विपरीत चलनेवाला पुरुष है वही पूजा करनेके अयोग्य है। तथा विशेष रीतिसे इतना और समझ लेना चाहिये कि पूजा करनेके वे ही अधिकारी हैं जो कुलहीन न हो, मिथ्यादृष्टी न हो, पापी न हो, मूर्ख न हो, निकृष्ट क्रियावाला और निकृष्ट आचरणवाला न हो, किसी रोगसे दूषित न हो अर्थात् बाद, खुजली, विचर्चिका, कोढ़, मेदा आदिक रोग न हो, जिसका मुंह बुरा दिखने वाला न हो, जो अन्धा, बहरा, काणा, ऐंचाताना न हो, जिसके शरीर पर सफेद फूल न हो, जो गूंगा, लँगड़ा, पागल, टोंटा न हो तथा और २ ऐसे ही रोगोंसे पीड़ित न हो, जिसके शरीरमें अधिक अंग न हो, छह उँगली न हो, हाथ, पैर आदिमें कोई अंग अधिक न हो, कोई अंग कम

१. इस श्लोकमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही पूजा करनेके अधिकारी लिखे हैं। इससे सिद्ध होता है कि शूद्रोंको पूर्ण पूजा करनेका (अभिषेक पूर्वक पूजा करनेका) अधिकार नहीं है। ऐसी पूजा करनेका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको ही है। शूद्र केवल दूरसे ही द्रव्य चढ़ा सकते हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके साथ मिलकर भी पूजा नहीं कर सकते। अलग रहकर ही द्रव्य चढ़ा सकते हैं। आगेकी चर्चा में ही शूद्रोंको पूजा करनेका निषेध लिखा है।

न हो, हाथ, पैर, मुख, मस्तक, नाक, कान आदि शरीरके अवयव जिसके कम न हों। जो मूर्ख न हो, अत्यन्त बूढ़ा न हो, बालक न हो, साहसिक (मारने आदिकी हिम्मत रखनेवाला) न हो, जो अधिक लम्बा न हो, बौना न हो, कुरूप न हो, शास्त्रोंका अजानकार न हो, न लोभी हो, न अत्यन्त क्रोधी हो, न दुष्ट हो, जो अभक्त वा भक्तिहीन न हो, धनकी अत्यन्त इच्छा रखनेवाला न हो, पाखंडी न हो, बदसूरत न हो, जो क्रोधी न हो, अत्यन्त मोहवाला न हो, धीठ न हो, व्रतोंको शिथिलतासे पालन करनेवाला न हो, रोगी न हो अर्थात् ज्वरातिसार संग्रहणी, अजीर्ण, विशूचिका, कृमि, पांडु, रक्त, पित्त, श्वास, कास, शूल, गुल्म आदि अनेक रोगोंमेंसे जिसको कोई रोग न हो, जो अन्यायी न हो, अविनयी न हो, जुवारी न हो, अज्ञानी न हो विदूषक न हो, नाटयकर्मका उपासक न हो, नपुंसक न हो, महाव्रती न हो, सो पूजा करने योग्य है तथा ऊपर लिखे हुये दोष जिसमें हो वह पूजा करने योग्य नहीं है; सो ही पूजासारके दूसरे अधिकारमें लिखा है।

न कुलीनो न दुर्दृष्टिर्नपापीनाप्यपण्डितः। न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नार्तकपरिदूषितः ॥ ३० ॥
नाधिकांगो न हीनांगो नातिदीर्घो न वामनः। न विरूपो न मूढात्मा नातिवृद्धो न बालकः॥
न साहसिकदुर्वेषो नाशास्त्रज्ञो न लोभवान्। नातिक्रोधी न दुष्टात्मा नाभक्तो न विरूपकः॥
न क्रोधावी न मोहावी न दुष्टो नाहढव्रतः। नानर्थी न च पाखंडी न रोगी नाविनीतकः॥
न द्यूतव्यसनासक्तो नाविद्वान् न विदूषकः। न नाट्योपासको षंडः नानयो न महाव्रती॥

जिनमें ऊपर लिखे दोष हों वे पूजा करनेके अधिकारी नहीं हैं। इनके सिवाय और भी कितने ही दोष हैं वे भी पूजा करनेवालेको छोड़ देने चाहिये। जैसे आलसी, तन्द्रालु, अत्यन्त मानी, मायाचारी, शूद्र हो और जो जिनसंहिताके मार्गको अर्थात् पूजा-पाठ करने आदि की क्रियाओंको न जानता हो वह भी पूजा करनेके योग्य नहीं है। सो ही भगवद् एकसन्धिकृत जिनसंहिताके तीसरे अधिकारमें लिखा है। यथा—

न शूद्रः स्यान्न दुर्दृष्टिर्न पापाचारपंडितः। न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नार्तकपरिदूषितः॥ ३ ॥
नाधिकांगो न हीनांगो नातिदीर्घो न वामनः। न विदग्धो न तन्द्रालुर्नातिवृद्धो न बालकः॥
नातिलुब्धो न दुष्टात्मा नातिमानी न मायिकः। नाशुचिर्नविरूपांगो नाजानन् जिनसंहिताम्॥

प्रश्न—यहाँपर जिनसंहिताके मार्गको न जाननेवालेके लिए पूजा करनेका निषेध लिखा सो इसका कारण क्या है ?

समाधान—जैनमतके संहिताशास्त्रोंमें जिनस्नपन पूजा, प्रतिष्ठा आदि अनेक कर्त्तव्य कर्मोंकी विधि लिखी है। यदि कोई पुरुष जिनसंहिताको नहीं जानेगा तो वह पूजाके मार्गको भी नहीं जानेगा। इसलिए पहले जिनसंहिताका अभ्यास कर लेना चाहिये। पूजाके मार्गको, विधिको जान लेना चाहिये तब फिर पूजा करनी चाहिये। जो पुरुष इन संहिताओंको नहीं जानता वह पूजा, प्रतिष्ठा आदि की विधिको भी नहीं जान सकता। इसलिये सबसे पहले जिनसंहिताओंका अभ्यास करना चाहिये, पूजादिककी विधि जाननी चाहिए और फिर पूजा, अभिषेक आदि कार्य करने चाहिये। जो पुरुष संहिता ग्रन्थोंको नहीं जानता उनके न जाननेसे पूजा, प्रतिष्ठाको आम्नाय वा विधि भी नहीं जान सकता जिससे वह अनेक प्रकारके संशय उठाता है अनेक विपरीत कार्य करता है और फिर अपने मनकी कल्पनाओंके अनुसार करता है। इसलिए जो संहिताग्रन्थोंमें कही हुई विधिको नहीं जानता वह पूजा करनेके अयोग्य है।

प्रश्न—जिनसंहिताका अर्थ क्या है ?

समाधान—संहिता शब्द दो शब्दोंसे बना है—सं और हित। जो कल्याण वा हित करनेवाली है उसको हिता कहते हैं, जो सं अर्थात् सम्यक् वा अच्छी तरह जीवोंका कल्याण करनेवाली हो उसको संहिता कहते हैं। अथवा जिसके संसर्गसे जीवोंका कल्याण हो उसको संहिता कहते हैं तथा जो जिन अर्थात् भगवान अरहन्तदेवसे सम्बन्ध रखनेवाली अरहन्तदेवकी कही हुई हो उसको जिनसंहिता कहते हैं। सो ही पूजासारके पहले अधिकार-में लिखा है—

संगतं हितमेतस्या भव्यानामिति संहिता। जिनसंबंधिनी सेयं नाम्ना स्याज्जिनसंहिता ॥

इस प्रकार इसकी निरुक्ति है।

१. शास्त्र और विधि ग्रंथोंकी आज्ञा है कि बालकको सबसे पहले श्रावकाचार पढ़ाना चाहिये। उन श्रावकाचारोंमें भी सबसे पहले संहिता ग्रंथ है। देवदर्शन करना, पूजा, भक्ति, अभिषेक आदि करना ही सबसे पहले सिखाने चाहिये फिर मूलगुण उत्तरगुणों-का स्वरूप सिखाना चाहिये। इसके बाद फिर अन्य विद्याएँ सिखानी चाहिए। जो ऐसा नहीं करते उनकी सन्तान सदा अधार्मिक उत्पन्न होती है।

१७४—चर्चा एकसौ चौहत्तरवीं

पहले योग्य-अयोग्य पूजकका स्वरूप दिखलाते हुए जो यह लिखा है कि अयोग्यको पूजा नहीं करनी चाहिये सो यदि किसी देशकालमें किसी अयोग्यके द्वारा पूजा हो जाय तो इसमें क्या दोष है पूजा करनेमें तो गुण ही है क्योंकि यदि ऊपर लिखे अनुसार किसी पूजा करनेवाले गुणवानका प्रसंग न मिले तो जैसा मिले वैसा कर लेना ठीक है। परन्तु इसका समाधान यह है कि पहले तो भगवानकी ऐसी आज्ञा नहीं है। ऐसा करनेसे भगवानकी आज्ञाका भंग होता है जिससे महापाप होता है। फिर भी जो कोई अयोग्य मनुष्य पूजा करता है उसका फल शास्त्रोंमें ऐसा कहा है "जो अयोग्य मनुष्य मोहवश होकर जिनपूजा करता है अर्थात् तीव्रभाव होनेपर भक्तिके वश होकर पूजा करता है तो उस पुरुषका, उस देशका, उस देशके राजाका तथा उस राजाके सब साम्राज्यका नाश हो जाता है। इस प्रकारकी पूजा करनेवाले और करानेवाले इन दोनोंको पूजाके फलकी प्राप्ति नहीं होती। उनको वह पूजा निष्फल होती है। इसलिये ऊपर कहे लक्षणोंसे सुशोभित होनेवाले पुरुषको ही भगवानकी पूजा करनी चाहिये। सो ही पूजासारके प्रथम अधिकारमें लिखा है—

यदि मोहात्तथाभूतो पूजयेत् त्रिजगद्गुरुम्।
पुरं राष्ट्रं नरेशश्च राज्यं सर्वं विनश्यति ॥ ३५ ॥
न कर्ता फलमाप्नोति नापि कारापिता स्वयम्।
तस्मात्सल्लक्षणोपेतो जिनपूजासु शस्यते ॥ ३६ ॥

यहाँपर अयोग्य पुरुषसे पूजा करानेवालेको भी अशुभ फल होता है ऐसा समझ लेना चाहिये। सो ही जिनसंहिताके तीसरे अधिकारमें लिखा है—

निषिद्धः पुरुषो देवं यथार्चेत् त्रिजगत्प्रभुम्। राजराष्ट्रविनाशः स्यात्कर्तुः कारकयोरपि ॥६॥
तस्मात्यत्नेन गृह्णीयात् पूजकं त्रिजगद्गुरोः। उक्तलक्षणमेवार्यः कदाचिदपि नापरम् ॥७॥

इससे सिद्ध होता है अयोग्य पुरुषसे कभी पूजा नहीं करानी चाहिये। तथा जो कोई कराता है उसको बुरा फल मिलता है।

कदाचित् कोई यह कहे कि ऐसा करनेसे तो सब जगह पूजा करनेका लोप हो जायगा। क्योंकि ऊपर जो पूजा करनेवालेके लक्षण लिखे हैं ऐसे लक्षण वाले तो पुरुष बहुत थोड़े हैं। तथा जिनमन्दिर बहुत हैं। ऐसी हालतमें क्या करना चाहिये। तो इसका उत्तर यह है कि पूजकके दो भेद हैं एक तो जिनप्रतिष्ठादिक महा कार्योंमें पूजा करनेवाला सो तो ऊपर लिखे लक्षणोंसे सुशोभित ही होना चाहिये। अन्य नहीं होना चाहिये। तथा नित्य पूजा विधान करनेवाला ऊपर लिखे दोषोंसे रहित होना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो महादोषोंसे रहित समयानुसार जो यथायोग्य हो उसको ही पूजा करनी चाहिये। जिसके महादोष प्रगट दिखाई देते हों जो सर्वथा अयोग्य हो उसको नित्यपूजा भी नहीं करनी चाहिये। सो ही पूजासारमें लिखा है—

पूजकः पूजकाचार्यः इति द्वेधास्तु पूजकः। आदौ नित्यार्चकोऽन्योस्तु प्रतिष्ठादिविधायकः॥

इससे सिद्ध है कि पूजा करनेवाला योग्य ही देखना चाहिये।

१७५–चर्चा एकसौ पिचहत्तरवीं

प्रश्न—पूजा करते समय किसीके हाथसे श्रीजिनप्रतिमा पृथ्वीपर गिर पड़े तो उसका प्रायश्चित क्या है?

समाधान—जो पूजा करते समय जिनमूर्ति पृथ्वीपर गिर पड़े तो उस पूजा करनेवालेको उस मूर्तिका शुद्ध जल तथा गंधोदक पर्यन्त भरे हुये एक सौ आठ कलशोंसे मन्त्रपूर्वक भगवानका अभिषेक करना चाहिये। फिर पूजा कर एकसौ आठ मूलमन्त्रोंसे आहुति देकर फिर वहीं विराजमान कर देना चाहिये। ऐसा इसका प्रायश्चित्त है। सो ही जिनसंहितामें आठवें अधिकारमें लिखा है—

पतिते जिनबिम्बेऽष्टशतेन स्नापयेद् घटैः। अष्टोत्तरशतं कुर्यान्मूलमन्त्रेण चाहुतीः॥२४॥

इस प्रकार मूर्तिके गिर पड़नेपर बहुतसे लोग बिना समझे केवल अपने मनसे ही किसी सचित्त वस्तुके खानेका त्याग कर देते हैं वा उपवास, एकाशन आदि कर लेते हैं वा करा देते हैं सो शास्त्रकी विधिसे विपरीत है।

१७६–चर्चा एकसौ छिहत्तरवीं

प्रश्न—पूजा करते समय मन्त्रपूर्वक नैवेद्य आदि चढ़ानेमें किसीके हाथसे वह नैवेद्यादिक पृथ्वी आदि अन्य क्षेत्रमें गिर जाय, पूजाके स्थानमें न चढ़ाया जा सके बीच ही में गिर जाय सो क्या करना चाहिये।

समाधान—पूजा करते समय मन्त्र पढ़कर द्रव्य चढ़ाना चाहिये यदि वह द्रव्य बीचमें गिर जाय तो उसे छोड़ देना चाहिये। फिर जो द्रव्य गिरा है उसी द्रव्यको लेकर और उसी मन्त्रको पढ़कर एकसौ आठ आहूति देनी चाहिये अर्थात् अक्षत गिरा हो तो अक्षतका मन्त्र पढ़कर अक्षतकी एकसौ आठ आहूति देनी चाहिये। यदि पुष्प गिरा हो तो इसी प्रकार पुष्पकी एकसौ आठ आहूति देनी चाहिये। इस प्रकार जलादिक आठों द्रव्योंमेंसे जो द्रव्य गिरा हो उसीका मन्त्र पढ़कर एकसौ आठ आहूति देनी चाहिये। फिर बाकीकी पूजा पूर्ण करनी चाहिये। यही इसका प्रायश्चित्त है। सो ही संहिताके अठारहवें अधिकारमें लिखा है—

प्रपांत वलिर्पिडस्य जिनमन्त्रेण मन्त्रवित्। अष्टोत्तरशतं कुर्यादाहूतीस्तद्विधिक्रमात्॥

१७७-चर्चा एकसौ सतहत्तरवीं

प्रश्न—यदि कोई हीन जातिका अस्पृश्य मनुष्य जिनबिम्बका स्पर्श कर लेवे तो उस मूर्तिका क्या करना चाहिये?

समाधान—जो जिनबिंबके गिर जानेका प्रायश्चित्त है वही प्रायश्चित्त अस्पृश्य मनुष्यके द्वारा जिनबिंबके स्पर्श कर लेनेपर करना चाहिये। अर्थात् उस मूर्तिका एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक कर, पूजाकर मूलमन्त्रसे एकसौ आठ आहूती देनी चाहिये फिर उसको वहीं विराजमान कर देना चाहिये। सो ही पूजासारमें लिखा है—

अस्पृश्यजनसंस्पर्शेप्येवंमेवं जिनेशिनाम्।

१७८-चर्चा एकसौ अठहत्तरवीं

प्रश्न—यदि स्पृश्य बिना स्नान किये जिनप्रतिमाका स्पर्श कर लेवे तो क्या करना चाहिये?

समाधान—यदि स्पृश्य मनुष्य बिना स्नान किये भगवानकी मूर्तिका स्पर्श कर लेवे तो भगवानका पचीस कलशोंसे मंत्रपूर्वक अभिषेक करना चाहिये। सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

स्पृष्टेऽनिंद्यजनैः पंचविंशत्या स्नापयेद् घटैः।

१७९–चर्चा एकसौ उन्यासीवीं

प्रश्न—यदि किसीके हाथसे प्रतिमाका भंग हो जाय तो क्या करना चाहिये ।

समाधान—यदि किसीके हाथसे जिनप्रतिमाका भंग हो जाय तो उसी तीर्थंकरकी अन्य प्रतिमाका एक हजार आठ शुद्ध जलके कलशोंसे तथा पंचामृतसे मंत्रपूर्वक महाभिषेक करना चाहिये । फिर एकसौ आठ बार मूलमन्त्रसे आहुती देनी चाहिये । तथा उस भग्न हुई प्रतिबिम्बको किसी अगाध जलमें विराजमान कर देना चाहिये ऐसा करनेसे बहु दोष दूर होता है और शांति होती है । सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

स्नापयेदंगभंगेष्टसहस्रेण जिनेश्वरम् । होमं वा पातवत्कुर्याद् भग्नं चांगं सुसेवयेत् ।
ततो जलाधिवासादिप्रतिष्ठापनमाचरेत् ।

१८०–चर्चा एकसौ अस्सीवीं

प्रश्न—यदि क्षेत्रपालादिक यक्षोंकी पूजाका द्रव्य गिर जाय तो क्या करना चाहिये ?

समाधान—क्षेत्रपालादिककी पूजाका द्रव्य गिर जाय तो उसको पचीस आहुती देनी चाहिये । यदि क्षेत्रपालकी मूर्ति गिर जाय तो इतने ही घटोंसे स्नान कराना चाहिये । यदि उसकी मूर्तिका भंग हो जाय तो वैसी ही दूसरी मूर्तिका एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये । यदि उसके स्थानका भंग हो जाय तो गिर पड़नेके समान प्रायश्चित्त करना चाहिये। यह यक्षकी पूजाका प्रायश्चित्त है। सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

यक्षाचापतने पंचविंशत्या तत्समं घटैः । भंगे त्वष्टशतेन स्यात्सदभेदे तु पातवत् ॥

१८१–चर्चा एकसौ इक्यासीवीं

प्रश्न—यदि जिनमन्दिरमें हड्डी, मांस आदिके गिर जानेसे वह दूषित हो जाय अथवा उसमें चाण्डाल आदि अस्पृश्य मनुष्य घुस जांय तो क्या करना चाहिये ?

समाधान—पहले तो हड्डी, मांस आदि अपवित्र पदार्थोंको दूर कर समस्त मन्दिरको जलसे धुलवाना चाहिये । ध्वजारोपण, अंकुरारोपण और धूपके धूएँसे पवित्र करना चाहिये । फिर भगवानका अभिषेक कर पूजा, जप और होम करना चाहिये । सो जिनसंहितामें लिखा है—

दूषितेऽस्प्यादिभिर्देवधाम्न्यस्पृश्यजनैरपि । संशोध्य सकलं धाम हुत्वा धूम्रध्वजांकुरैः ॥
सिक्त्वा च सुधयो देवं तैरेव स्नापयेद् घटैः ॥ २८ ॥

१८२–चर्चा एकसौ बियासीवीं

प्रश्न—भगवानकी पूजा तीनों समय को जाती है। यदि किसी एक समय प्रतिमाजी अपूज्य रहें, दो समय वा तीन समय अपूज्य रहें। इसी प्रकार एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार, पाँच, छह, सात दिन तथा पन्द्रह दिन, एक महीने तक जिनप्रतिमाजी अपूज्य रहें। इतने दिन तक उनकी पूजा न हो तो फिर क्या करना चाहिये ?

समाधान—प्रतिमाजीके अपूज्य रहनेका प्रायश्चित्त अलग-अलग है उसीको अनुक्रमसे लिखते हैं। यदि एक समय पूजा न बन सके तो दूसरे समय दूनी पूजा कर लेनी चाहिये तथा एकसौ आठ बार णमोकार मन्त्रका जप करना चाहिये। यदि दो समय तक भगवानकी पूजा न हुई हो तो सोलह घटोंसे भगवानका अभिषेक करना चाहिये। यदि एक दिन भगवानकी पूजा न हुई हो तो उन प्रतिमाओंका पच्चीस कलशोंसे जलाभिषेक करना चाहिये। यदि पाँच दिन तक भगवानकी पूजा न हुई हो तो इक्यावन कलशोंसे उन प्रतिमाजीका अभिषेक करना चाहिये। यदि दश दिन रात तक भगवानकी पूजा न हुई हो तो उस मन्दिरमें विराजमान मूर्तिका इक्यासी कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये। यदि पन्द्रह दिन तक भगवान अपूज्य रहे हों तो एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये। यदि एक महीने तक भगवानका पूजन न हुआ हो तो दोसौ आठ कलशोंसे उनका अभिषेक करना चाहिये। यदि दो महीने तक पूजा न हुई हो तो उन अरहंतकी प्रतिबिंबका तीनसौ आठ कलशोंसे स्नपन करना चाहिये। यदि तीन महीने तक पूजा न हुई हो तो चार सौ आठ घटोंसे अभिषेक करना चाहिये। यदि चार महीने तक पूजा न हुई हो तो पाँच सौ आठ कलशोंसे उनका अभिषेक करना चाहिये। यदि पाँच महीने तक पूजा न हुई हो तो फिर एक हजार आठ कलशोंसे महाभिषेक करना चाहिये। यदि छह महीने तक प्रतिमाजी अपूज्य रहें तो एक हजार आठ कलशोंसे महाभिषेक कर संप्रोक्षण करना चाहिये। संप्रोक्षण करनेकी विधि जिनसंहितासे जान लेनी चाहिये।

---

१. उस मन्दिर पर सफेदी भी करानी चाहिये।

इस प्रकार प्रत्येक पाँच-पाँच दिन अपूज्य रहनेपर उन पापोंकी शांतिके लिये अधिक-अधिक कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये। ऊपर लिखी सब विधियोंमें अभिषेक पूर्वक आठों द्रव्योंसे पूजा करनी चाहिये। एक सौ आठ बार मूल मन्त्रोंसे जप करना चाहिये और आहुति देनी चाहिये। यदि सात, आठ, नौ, दश, ग्यारह, बारह महीने तक वा इससे भी अधिक काल तक वा बहुत समय तक प्रतिमाजी अपूज्य रहें तो सर्वलोकशरण्य विधि करनी चाहिये और बलिविधान, प्रतिष्ठापनविधान, प्रोक्षणविधि और विहार विधान आदि जिनसंहितामें कहे अनुसार करना चाहिए। यहाँपर ग्रन्थ विस्तार होनेके डरसे नहीं लिखा है। इस प्रकार अनुक्रमसे पहले कहे हुए कथनको विचार कर समझ लेना चाहिए। यह सब कथन भगवदेकसंधिकृत जिनसंहिता नामके शास्त्रमें आठवें अध्यायमें लिखा है। यथा—

एकसंध्यार्चनाभावे जिनेन्द्रप्रतिमालये। संध्यायामपरस्यायां पूजयेदधिकं विभुम् ॥२॥
जिनेन्द्राभ्यर्चने हीनसाधेन सति धीधनैः। जपो हृदयमंत्रः स्याद्वारानष्टोत्तरं शतम् ॥३॥
संध्याद्वयार्चनाशून्ये जिनदेवनिकेतने। घटैः षोडशसंख्यानैः स्नापयेदखिलेश्वरं ॥४॥
एकवासरमभ्यर्चारहिते देवधामनि। कलशैः पंचविंशत्या स्नापयेत्परमेष्ठिनम् ॥५॥
त्यक्तदेवार्चणा देवभवने पंचवासरान्। एकपंचाशतैः कुंभैः स्नापयेत्त्रिजगद्गुरुन् ॥६॥
देवार्चाविकले देवमंदिरे दशवासरान्। घटैरेकोत्तराशीत्या स्नापयेच्चतुराननम् ॥७॥
अर्द्धमासं जिनेंद्रार्चासंत्यक्ते जिनवेश्मनि। अष्टोत्तरशतेनार्हत्स्वामिनं स्नापयेद् घटैः ॥८॥
मासं जिनेश्वराभ्यर्चाविहीने जिनसद्मनि। देवमष्टशतेन द्व्यर्हतेन स्नापयेद् घटैः ॥९॥
मासौ द्वौ चर्चनारिक्ते जाने जैनेश्वरालये। त्रिभिरष्टशतैः कुंभै स्नापयेत्त्रिजगत्प्रभुम् ॥१०॥
मासान् त्रीन् वर्जिने चैत्यपूजया जिनधामनि। चतुःघ्नेन घटैरष्टशतेन स्नापयेज्जिनम् ॥११॥
जिनाभ्यर्चापरित्यक्ते चतुर्मासं जिनालये। अर्द्धेनाष्टसहस्रस्य स्नापयेद् जिनपं घटैः ॥१२॥
जिनचैत्यालये पंचमासं मानविवर्जिते। अष्टोत्तरसहस्रेण स्नापयेत्कलशैः प्रभुम् ॥१३॥
देवविष्णे विनिर्मुक्ते षण्मासं देवपूजया। कृत्वा संप्रोक्षणे देवे तदेव स्नापयेद् घटैः ॥१४॥

पंचपंचदिनान्येवं प्रच्यवनाशेषकल्मषम् । कलशैरौषधितैरेतैः स्नापयेत्पापशांतये ॥१५॥
अष्टोत्तरशतं कुर्यान्मूलमंत्रेण चाहुतीः । अभिषेकदिनेष्वार्यस्तदन्ते तद्विधिक्रमात् ॥१६॥

इस प्रकार पाठ है। इसके सिवाय जो अपने मनसे और अनेक प्रकारकी विधि करते हैं सो सब शास्त्र बाह्य हैं। मनोनुकूल प्रमाण नहीं है। जो पुरुष बिना शास्त्रोंके अपनी बुद्धिके बलसे अपने मनकी कल्पनानुसार कहते हैं वे पुरुष वाचाल गिने जाते हैं इसलिये उनके वाक्य अप्रमाण माने जाते हैं।

कदाचित् कोई यह कहे कि यहं भी तो शुभ कार्य ही बतलाया है तो इसका उत्तर यह है कि प्रायश्चित्तकर्म चिकित्साशास्त्र अर्थात् रोग दूर करनेके लिए दवाईका देना, लग्न मुहूर्त गणित शास्त्र आदि ज्योतिषशास्त्र और धर्मशास्त्रका निर्णय सब बातोंको इनके अलग-अलग शास्त्र देखे बिना जो अपने मनसे ही बुद्धिमान बनकर अपने मनके अनुसार कहता है अथवा तू ऐसा कर ले इस प्रकार दूसरोंसे कहता है उसको लौकिक शास्त्रमें ब्रह्मघाति बतलाया है। अर्थात् लौकिक नीतिके अनुसार उसे हत्यारा वा पातकी कहते हैं। सो ही लिखा है—

प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम्। विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥

वैद्यक शास्त्रमें भी लिखा है कि जो आचार्य (प्रायश्चित्त आदि धर्मशास्त्रका निर्णय देनेवाला) ज्योतिषी, राजा और वैद्य ये चारों ही पुरुष अपने-अपने कामोंको बिना शास्त्र देखे केवल अपने मनसे वा केवल बुद्धिके बलसे करते हैं उनको मानों ब्रह्माने यमके दूतोंके समान केवल प्रजाको मारनेके लिये ही इस पृथ्वीपर बनाया है। सो ही लंघनपथ्यनिर्णयशास्त्रमें लिखा है—

आचार्यदैवज्ञनृपाश्चवैद्याः ये शास्त्रहीना रचयन्ति कर्म।
देवैः पृथिव्यां यमदूतरूपाः सृष्टाः प्रजासंहरणाय नूनम्॥

यहाँपर आचार्य शब्दसे प्रायश्चित्त देनेवाला वा धर्मशास्त्रका उपदेश देनेवाला समझना चाहिये। [३२३

१८३–चर्चा एकसौ तिरासवीं

प्रश्न—यदि कोई पुरुष प्रायश्चित्तकी विधि न करे तो क्या हो ?

समाधान—जिनसंहितामें ऐसा लिखा है कि जो कोई पुरुष अनेक प्रकारके अनर्थ उत्पन्न करनेवाले जिनपूजा सम्बन्धी दोषोंको शांत करनेके लिये ऊपर लिखे अनुसार प्रायश्चित्त नहीं करता तो वह पुरुष अपने नगरसे, देशसे, राष्ट्रसे, सबसे भ्रष्ट हो जाता है, सबसे रहित हो जाता है। इसलिये पापोंकी शांतिके लिये ऊपर लिखे हुए प्रायश्चित्त अवश्य करने चाहिये। सो ही लिखा है—

इत्थं प्रायश्चित्तमनर्थे प्रतिषिद्धे जाते दोषे शीघ्रतरं सप्रविधेयम्।
नो चेदेवं राष्ट्रमशेषं परिहीनः नगरं राष्ट्रपतिं प्रविहीनः॥ ३३॥

१८४–चर्चा एकसौ चौरासीवीं

प्रश्न—यदि कोई जैनी गृहस्थ श्रावक वा श्राविकाके किसी कारणसे अनाचार वा होनाचरण करनेमें आ जाय तो उस दोषको दूर करनेके लिये क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ?

समाधान—यदि किसी श्रावक वा श्राविकाने अपने अजानपनमें बिना समझे मद्य, मांस, मधु (शहद), बड़फल, पीपल फल, गूलर, अंजीर और पाकर इन आठ वस्तुओंमेंसे किसी एक वस्तुका भक्षण कर लिया हो तो उसको नीचे लिखे अनुसार प्रायश्चित्त देना चाहिये। अलग-अलग तीन उपवास करना, बारह एकासन करना, जिनके साथ अपना पंक्तिभोजन है ऐसे एकसौ आठ पुरुषोंको पंक्तिभोजन कराना, भगवान अरहन्तदेवकी प्रतिमाका एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक करना, अपनी शक्तिके अनुसार केशर, चंदन, पुष्प, अक्षत आदि द्रव्योंसे भगवानकी पूजा करना, एकसौ आठ बार पुष्पोंके द्वारा णमोकार मंत्रका जप करना और दो तीर्थयात्रा करना, इस प्रकार प्रायश्चित्त लेनेपर वह शुद्ध होता है पंक्तिमें बैठने योग्य होता है। सो ही लिखा है—

मद्यं मांसं मधु भुक्ते अज्ञानात्फलपञ्चकम्। उपवासत्रयं चैकभक्तद्वादशकं तथा॥ ७५॥
अन्नदानाभिषेकश्च प्रत्येकाष्टोत्तरं शतम्। तीर्थयात्राद्वयं गन्धपुष्पाक्षतस्वशक्तितः॥ ७६॥

यदि कोई श्रावक-श्राविका म्लेच्छ जातिके घर वा किसी नीचके घर भोजन-पान कर ले तो उसको तीस उपवास, तिरेपन एकासन, अपनी जातिके दोसौ पुरुषोंको आहार दान, गौ-दान, पाँच-पाँच घड़ोंसे दोसौ बार भगवानका अभिषेक, गंध, पुष्प अक्षतादिकसे भगवानकी पूजन और विशेषताके साथ दो तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा

करनी चाहिये। यह उसका प्रायश्चित्त है। इतना कर लेनेपर वह शुद्ध होता है, पंक्तिमें बैठने योग्य होता है। सो ही लिखा है--

म्लेच्छादिनीचजा गेहे भुक्तं त्रिंशदुपोषणम्। एकभुक्ते त्रिपंचाशत् पात्रदानं शतद्वयम्॥
एका गौः पंचकुंभैश्चाभिषेकानां शतद्वयम्। पुष्पाक्षतं तीर्थयात्राद्वयं कुर्याद्विशोधतः॥

यदि कोई श्रावक-श्राविका विजातिके घर (जो अपनी जातिका नहीं है दूसरी जातिका है उसके घर) भोजन कर ले तो उसको नौ उपवास, नौ एकासन, नौ अभिषेक, अपनी जातिके नौ पुरुषोंका आहार दान और तीनसौ पुष्पोंसे जप करना चाहिये। यह उसको दण्ड वा प्रायश्चित्त है। इतना कर लेनेपर वह शुद्ध और पंक्त योग्य होता है। सो ही लिखा है। यथा--

विजातीयानां गेहे तु भुक्तं चोपोषणं नव। एकभुक्त्यन्नदानाभिषेकपुष्पशतत्रयम्॥

जिसके घर कोई मनुष्य पर्वतसे गिर कर मर गया हो अथवा साँपके काट लेनेसे मर गया हो अथवा हाथी, घोड़ा आदि किसी सवारीसे गिर कर मर गया हो तो उसके बाद रहनेवालेको नीचे लिखे अनुसार प्रायश्चित्त लेना चाहिये। उसको पचास तो उपवास करने चाहिये और पचास ही भगवानके अभिषेक करने चाहिये। तथा पूजा करना चाहिये। इतना प्रायश्चित्त करनेपर वह शुद्ध और पंक्ति योग्य होता है। सो ही लिखा है--

गिरेः पातो हि दष्टश्च गजादिपतनान्मृतः। उपवासाश्च पंचाशदभिषेकाश्च तैः समाः॥

यदि कोई अग्निमें पड़कर मर गया हो तो उसके पीछे वालेको पचपन उपवास, अपनी जातिके पांच-पाँच पुरुषोंको अन्नदान, एक तीर्थयात्रा, बीस भगवानके अभिषेक, गऊ-दान, केशर, चंदन, पुष्प, अक्षत आदिसे भगवानकी पूजा, अपनी शक्तिके अनुसार गुरु-पूजा और भगवानके भण्डारमें अपनी शक्तिके अनुसार द्रव्यदान देना चाहिये। इतना प्रायश्चित्त कर लेनेपर वह शुद्ध और पंक्ति योग्य होता है। सो ही लिखा है।

मृतेऽग्नौ पातके जाते प्रोषधाः पंचपंचाशत्। पंचपंचान्नदानं च जिनाभिषेकविंशतिः॥
तीर्थयात्रा च गोदानं गंधपुष्पाक्षतादयः। यथाशक्ति गुरुपूजा द्रव्यदानं जिनालये॥

सब प्रायश्चित्तोंमें प्रायश्चित्त लेनेवाले पुरुषको अपने मस्तकका मुण्डन कराना चाहिये, केशर, अगुरु, चंदन और पुष्पादिक पूजाके द्रव्य अपनी शक्तिके अनुसार जिनालयमें देना चाहिये, यथायोग्य यह ग्रह पूजा करनी चाहिये, सम्यग्दृष्टि जैनी ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये, यथायोग्य रीतिसे चार प्रकारके संघकी पूजा करनी चाहिये और गृहस्थ श्रावकोंको भोजन देना चाहिये। ये सब बातें यथायोग्य रीतिसे सब जगह समझ लेना चाहिये। यह सब प्रायश्चित्तोंमें समुच्चय प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है—

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु शिरोमुण्डं विधीयते। काश्मीरागुरुपुष्पादि द्रव्यदानं स्वशक्तितः॥
ग्रहपूजा यथायोग्यं विप्रेभ्यो दानमुत्तमम्। संघपूजा गृहस्थेभ्यो ह्यन्नदानं प्रकीर्तितम्॥

यदि किसी स्त्री आदिका चाण्डाल आदिसे संसर्ग हो जाय तो उसे पचास उपवास, पांचसौ एकाशन, सुपात्रोंको दान, तीर्थयात्रा, पचास बार पुष्प, चंदन, अक्षत आदिसे भगवानकी पूजा, संघपूजा, मंत्रके जप, व्रत और जिनालयमें द्रव्य दान देना चाहिये। इतना प्रायश्चित्त कर लेनेपर वह शुद्ध और पंक्ति योग्य होता है। सो ही लिखा है—

चांडालादिकसंसर्गं कुर्वन्ति वनितादिकाः। पंचाशत्प्रोषधाश्चैकभक्ताः पंचशतानि च॥
सुपात्रदानं पंचाशत्पुष्पचन्दनपूजनम्। संघपूजा च जाप्यं च व्रतं दानं जिनालये॥

यदि स्त्री आदिका माली आदिसे संसर्ग हो जाय तो उसे पाँच उपवास, दश एकाशन, अपनी जातिके बीस पुरुषोंको भोजन देना चाहिये। इतना प्रायश्चित्त कर लेनेपर वह शुद्ध और पंक्ति योग्य होता है। सो ही लिखा है—

मालिकादिकसंसर्गं कुर्वन्ति योषितादयः। प्रोषधा पंच चैकान्नं दश पात्राणि विंशतिः॥

इसी प्रकार वृद्धि सूतकमें (किसी बालकके जन्म होनेसे जो सूतक लगता है उसमें) अथवा मृत्यु सूतकमें (किसीके मरनेपर जो सूतक लगता है उसमें) पाँच उपवास, ग्यारह एकाशन, पात्र-दान और केशर, चन्दन आदि द्रव्योंसे भगवानकी पूजन करनी चाहिये। इतना प्रायश्चित्त कर लेनेपर उसका वह सूतक दूर होता है। तथा वह शुद्ध होकर पंक्तियोग्य होता है। सो ही लिखा है—

सूतके जन्ममृत्योश्च प्रोषधाः पंचशक्तितः। एकभुक्ता दशैकाद्याः पात्रदानं च चंदनम्॥

जिस पुरुषने किसी वस्तुका त्याग कर रक्खा है वह यदि बिना जाने खानेमें आ जाय तो एक उपवास, दो एकाशन और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्पाक्षतादिकसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये। तब वह त्यागभंगका प्रायश्चित्त होता है। सो ही लिखा है—

(यहाँ एक श्लोककी छूट है)

इसी प्रकार बिना जाने यदि मुखमें हड्डीका टुकड़ा आ जाय तो तीन उपवास, चार एकाशन और अपनी शक्तिके अनुसार केशर, चन्दन, अक्षत आदि पूजाकी सामग्री मन्दिरमें देनी चाहिये तब उसकी शुद्धि होती है। सो ही लिखा है—

आयाते मुखेस्थिखण्डे चोपवासास्त्रयो मताः। एकभुक्ताश्च चत्वारो गंधाक्षताः स्वशक्तितः॥

यदि अपने हाथसे हड्डीका स्पर्श हो जाय अथवा अपने शरीरसे हड्डीका स्पर्श हो जाय तो स्नान कर दोसौ बार णमोकार मंत्रका जप करना चाहिये। यह उसका प्रायश्चित्त है। यथा—

स्पर्शितेस्थिकरे स्वांगे स्नात्वा जाप्यशतद्वयम्। अस्थि यथा तथा चर्म केशश्लेष्ममलादिकम्॥

जिस प्रकार हड्डीके स्पर्शका प्रायश्चित्त बतलाया है वही प्रायश्चित्त गीले चमड़ेके स्पर्श करनेका, केश-श्लेष्म (कफ, खकार) नाकका मल आदिका हाथसे वा शरीरसे स्पर्श हो जाने पर लेना चाहिये।

अपनी स्त्रीके गर्भपातसे उत्पन्न होनेवाले पापके होनेपर बारह उपवास, पचास एकाशन और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्प, अक्षतादिक जिनालयमें देना चाहिये तब शुद्धि होती है। सो ही लिखा है—

गर्भस्य पातने पापे प्रोषधा द्वादशाः स्मृताः। एकभक्ताश्च पंचाशत्पुष्पाक्षतादिशक्तितः॥

यदि अज्ञानसे वा प्रमादसे बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय आदि विकलत्रय जीवोंकी हिंसा हो जाय तो बेइन्द्रिय जीवकी हिंसा होनेपर दो उपवास करने चाहिये और णमोकार मंत्रकी दो मालाएँ जपनी चाहिये। तेइन्द्रिय जीवकी हिंसा होनेपर तीन उपवास और णमोकारमंत्रकी तीन मालाओंका जप करना चाहिये तथा चौइन्द्रिय जीवकी हिंसा हो जानेपर चार उपवास और णमोकार मंत्रकी चार मालाओंका जप करना चाहिये। तब उसकी शुद्धि होती है। सो ही लिखा है—

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा विकलत्रयघातके । प्रोषधा द्वित्रिचत्वारो जपमालाः तथैव च ॥

यदि घास, भुस खानेवाले पंचेन्द्रिय पशुका घात हो जाय तो अट्ठाईस उपवास, पात्रदान, गोदान और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्प, अक्षत आदि पूजाके द्रव्य जिनालयमें दान देना चाहिये तब उसकी शुद्धि होती है तथा तभी वह पंक्तिके योग्य होता है । सो ही लिखा है—

घातिते तृणभुक्जीवे प्रोषधा अष्टविंशतिः । पात्रदानं च गोदानं पुष्पाक्षतादि स्वशक्तितः ॥

यदि जलचर, थलचर वा किसी पक्षीका किसीसे घात हो जाय अथवा चूहा, बिल्ली, कुत्ता आदि दाँतसे हत्या करनेवाले जीवका किसीसे घात हो जाय तो उस पुरुषको बारह उपवास, सोलह एकाशन, सोलह अभिषेक, गोदान, पात्रदान करना चाहिये तथा अपनी शक्तिके अनुसार गुरु जो बतलावें सो करना चाहिये तब वह शुद्ध और पंक्तियोग्य होता है । सो ही लिखा है—

जलस्थलचराणां तु पक्षिणां घातकः पुमान् । गृहे मूषकमार्जारश्वादीनां दन्तदोषिणाम् ॥
प्रोषधा द्वादशकान्नाभिषेकाश्चानुषोडश । गोदानं पात्रदानं तु यथाशक्ति गुरोर्मुखात् ॥

यदि किसीसे गाय, घोड़ा, भैंस, बकरी आदि जीवोंकी हिंसा हो जाय तो उस पातकीको तेईस उपवास, एकसौ एक एकाशन तथा अपनी शक्तिके अनुसार पात्रदान, तीर्थयात्रा आदि करना चाहिये । तब वह शुद्ध और पंक्तिके योग्य होता है सो ही लिखा है—

गोऽश्वमहिषीछागीनां वधकर्ता त्रिविंशतिः । प्रोषधा एकभक्तानां शतं दानं तु शक्तितः ॥

यदि किसीसे किसी मनुष्यकी हिंसा हो जाय तो उसको तीनसौ उपवास, गोदान, पात्रदान आदि पहले कही हुई सब विधि और तीर्थयात्रा आदि करनी चाहिये तब वह शुद्ध और पंक्तिके योग्य होता है । सो ही लिखा है—

मनुष्यघातिनः प्रोक्ता उपवासाः शतत्रयम् । गोदानं पात्रदानं तु तीर्थयात्रा स्वशक्तितः ॥

यदि कोई पुरुष किसी पुरुषके कारणसे विष खाकर वा और किसी तरह मर जाय अथवा अन्न, जलका त्याग कर मर जाय अथवा पतिके मरने पर कोई विधवा स्त्री अग्निमें प्रवेश कर मर जाय अथवा खरीद

विक्री आदि व्यापारके सम्बन्धसे किसी मनुष्यका घात हो जाय अथवा घरमें अग्नि लगने पर कोई मनुष्य वा पशु मर जाय, अपना कुआ खोदनेमें कोई मर जाय, अपने तलाबमें पड़ कर कोई मर जाय, जो अपना सेवक द्रव्य कमाने गया हो और मार्गमें चोर आदिके द्वारा वह मारा जाय अथवा अपने मकानको दीवाल पड़ जानेसे कोई मर जाय तो जिस मनुष्यको कारण मानकर वह मरा है अथवा जिसके कुआ, तलाब, दीवाल आदिसे वह मरा है उसको पाँच उपवास करने चाहिये, बावन एकाशन करना चाहिये, गोदान, संघपूजा, दयादान, अभिषेक, पुष्प, अक्षत आदि पूजा द्रव्यको जिनभंडारमें देना और णमोकारमंत्रका जप यथायोग्य रीतिसे करना चाहिये। तब वह शुद्ध और पंक्ति योग्य होता है। सो ही लिखा है—

यस्योपरि मृतो जीवो विषादिभक्षणादिना। क्षुधादिनाथ वा भृत्ये गृहदाहे नरः पशुः॥
कूपादिखनने वापि स्वकीयेत्र तडागके। स्वद्रव्योपार्जिते भृत्ये मार्गे चौरेण मारिते॥
कुंडयादिपतने चैव रंडा वह्नौ प्रवेशने। जीवघातो मनुष्येण संसर्गे क्रयविक्रये॥
प्रोषधाः पंच गोदानमेकभक्ताद्विपंचाशत्। संघपूजादयादानं पुष्पं चैव जपादिकम्॥

यदि अपने पानी आदिके मिट्टीके बर्तन अपनी जातिके बिना अन्य जातिके मनुष्यसे स्पर्श हो जाँय तो उतार देना चाहिये। यदि ताँबे, पीतल, लोहेके बर्तन दूसरी जातिवालेसे छू जाँय तो राखसे (भस्मसे) माँज कर शुद्ध कर लेना चाहिये। यदि काँसेके बर्तन अन्य जातिवालेसे छू जाँय तो अग्निसे गर्म कर शुद्ध करना चाहिये। काठके बर्तन कठवा, कठौती, कुंडी आदि हों और चौकामें काम आ जाने पर दूसरोंके द्वारा छूये जांय तो वे शुद्ध नहीं हो सकते। यदि कांसे, ताँबे वा लोहेके बर्तनमें अपनी जातिके सिवाय अन्य जाति वाला भोजन कर ले तो अग्निसे शुद्ध कर लेना चाहिये। जिस बर्तनमें मद्य, मांस, विष्ठा, मूत्र, निष्ठीवन (उलटी वा वमन) खकार, कफ, मधु आदि अपवित्र पदार्थोंका संसर्ग हो जाय तो उस पात्रको उत्तम श्रावक त्याग कर देते हैं। फिर काममें नहीं लेते। चलनी, वस्त्रसे मढ़ा सूप, मूसल, चक्की आदि रसोईके उपकरण अपनी जातिके बिना अन्य जातिके लोगोंसे स्पर्श हो जानेपर बिना धोये हुए शुद्ध नहीं होते। उनको धोकर शुद्ध कर लेना चाहिये।

यदि स्वप्नमें किसी अन्नादिक वस्तुका भक्षण किया जाय तो उस वस्तुका तीन दिन तकके लिये

त्याग कर देना चाहिये। यदि किसीने स्वप्नमें मद्य, मांसका भक्षण किया हो तो दो उपवास करना चाहिये। यदि नींदमें परवश होकर ब्रह्मचर्यका भंग हो जाय तो एक हजार णमोकार मंत्रका जप करना चाहिये और तीन एकाशन करना चाहिये। यदि स्वप्नमें अपनी माता, भगिनी, पुत्री आदिका संसर्ग हो जाय तो दो उपवास और एक हजार मंत्रका जप करना चाहिये।

यदि कोई मिथ्यादृष्टिके घर एक रात्रि रहकर भोजन कर ले अथवा एक बार शूद्रके घर भोजन कर ले तो उसको पाँच उपवास और दो हजार णमोकार मंत्रका जप करना चाहिये। यदि शूद्रके घर अपनी रसोई भी बनाकर खावे तो भी दोष ही है। इस प्रकार यह थोड़ी-सी प्रायश्चित्त की विधि बतलाई है। विशेष जाननेकी इच्छा हो तो अन्य अनेक जैनशास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

स्वतोन्यैः स्पर्शितं भांडं मृन्मयं चेत्परित्यजेत्। ताम्रारलोहभांडं चेच्छुध्यते शुद्धभस्मना॥
वह्निना कांश्यभांडं चेत्काष्टभांडं न शुद्धयति। कांस्यं ताम्रं च लोहं चेदन्यभुक्तेग्निना वरम्॥
यद्भाजने सुरामांसं विण्मूत्रश्लेष्ममाक्षिकः। क्षिप्तं ग्राह्यं न तद्भांडं तत्त्याज्यं श्रावकोत्तमैः॥
चालिनीवस्त्रसूर्पं च मुशलं यष्टियंत्रकम्। स्वतोन्यैः स्पर्शितं शुद्धं जायते क्षालनात्परम्॥
स्वप्ने तु येन यद्भुक्तं तत्त्याज्यं दिवसत्रयम्। मद्यं मांसं यदा भुक्तं तदोपवासकद्वयम्॥
ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु निद्रायां परवश्यतः। सहस्रैकं जपेज्जापमेकभुक्तं त्रयं भवेत्॥
मात्रा तथा भगिन्या च समक्षे योग आगते। उपवासद्वये स्वप्ने सहस्रैकं जपोत्तमम्॥
मिथ्याहृष्टिगृहे रात्रौ भुक्तं वा शूद्रसद्मनि। तदोपवासाः पंच स्युः जाप्यं तु द्विसहस्रकम्॥
इत्येवमल्पशः प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः स्फुटम्। अन्यो विस्तारतो ज्ञेयः शास्त्रेष्वन्येषु भूरिषु॥

इस प्रकार प्रायश्चित्तका विधान त्रिवर्णाचारके नौवें अध्यायमें लिखा है—

कदाचित् यहाँपर कोई यह प्रश्न करे कि इस प्रायश्चित्तकी विधिमें गौदान तथा ब्राह्मणको दान देना लिखा है सो यह कहना वा करना तो जिनधर्मसे बाह्य है ऐसा तो अन्यमती कहते हैं इसलिये ऐसा श्रद्धान करना खोटा है। तो इसका समाधान यह है कि जैनशास्त्रोंमें चार वर्ण बतलाये हैं। तीन वर्ण तो अनादिसे

चले आ रहे हैं तथा चौथा ब्राह्मण वर्ण महाराज भरतने स्थापन किया है। जो क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि, उपासकाचारके साधक, दानके पात्र, ब्रह्मज्ञानके प्रकाशक, बारह तप और पाँचों अणुव्रतादिकोंको पालन करनेवाले थे उनको ब्राह्मण वर्ण स्थापन किया था। सो ही लिखा है—

ब्रह्मज्ञानविकाशकाः तपोव्रतयुतास्ते ब्राह्मणाः।

ऐसे ब्राह्मण सम्यग्दर्शन आदि अनेक गुणोंको पालन करते हैं और रत्नत्रयके चिह्न स्वरूप यज्ञोपवीतको धारण करते हैं। ऐसे धर्मात्मा ब्राह्मणोंको दान देना लिखा है। यदि ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि, पाखण्डी, विषय-भोगके लम्पटी, दुराचारी, हिंसादिक महापापके धारी, महारम्भी, जैनधर्मके निन्दक, द्रोही, अभिमानी और दूसरोंको ठगनेवाले ऐसे अपात्र हों तो उनको दानादिक कभी नहीं देना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणोंको दानका फल जैनशास्त्रोंमें खोटा लिखा है। ऐसे ब्राह्मणोंको कभी दान नहीं देना चाहिये।

प्रश्न—यदि वर्तमान समयमें सम्यग्दृष्टि ब्राह्मण न मिलें तो क्या करना चाहिये तो इसका उत्तर यह है कि जैनशास्त्रोंमें और प्रकारसे भी गौदान करना लिखा है। भगवान अरहन्तदेवके अभिषेक करनेके लिए श्री जिनमन्दिरमें गौदान देना चाहिये। इसलिये यदि सम्यग्दृष्टि ब्राह्मण न मिले तो जिनमन्दिरमें गोदान करना चाहिये।

प्रश्न—जिनमन्दिरमें गोदान करना कहाँ लिखा है तथा इसकी प्रवृत्ति भी आजकल कहाँ है। तो इसका उत्तर यह है कि यह प्रकरण त्रिवर्णाचारमें दश दानका वर्णन करते समय लिखा है वह इस प्रकार है—पहले तो उत्तरपुराणमें लिखा है। शास्त्रदान, अभयदान और अन्नदान ये तीनों दान बुद्धिमानोंको देने चाहिये। ये तीनों दान अनेक प्रकारके फल देने वाले हैं। सो ही उत्तरपुराणमें लिखा है।

शास्त्राभयान्नदानानि प्रोक्तानि जिनशासने। पूर्वपूर्वं बहुपात्रफलानीमानि धीमता॥

और देखो दशवें तीर्थंकर श्रीशीतलनाथके अन्तरालमें एक भूतिशर्मा नामके ब्राह्मणके एक मुण्डशालायन नामका पुत्र हुआ था। उसने बहुत विद्या पढ़ी थी परन्तु मिथ्यात्वकर्मके तीव्र उदयसे वह जिनधर्मका तीव्र द्रोही था। उसने जिनधर्मके विरुद्ध बहुतसे शास्त्र बनाये और लोभके वशीभूत होकर अपनी आजीविकाके लिये "ब्राह्मणोंको कन्या आदि दश प्रकारके दान देना चाहिये" ऐसा वर्णन किया और उसमें बहुत पुण्य बत-

लाया। कन्या, हाथी, सुवर्ण, घोड़, कपिला (गौ) दासी, तिल, रथ, भूमि, घर ये दश प्रकारके दान ब्राह्मणों-को देनेके लिये बतलाये। इस प्रकार उसने महा हिंसाकी प्रवृत्ति करनेवाले कुत्सित दानोंका स्थापन किया। सो ही लिखा है—

कन्याहस्तिसुवर्णंवाजिकपिलादासीतिलाः स्यन्दनं,
क्ष्मागेहप्रतिबद्धमंत्रदशधा दानं दरिद्रेशिनम् ॥
तीर्थान्ते जिनशीतलस्य सुतरामाविश्चकारः स्वयं,
लुब्धो वस्तुषु भूतिशर्मतनयोऽसौ मुण्डशालायनः ॥

ऐसे पुरुषोंको जो दान बतलाया है वह हिंसादिक महापापोंका बढ़ानेवाला है। जैनधर्मको धारण करनेवाले धर्मात्माओंको कभी ऐसा दान नहीं देना चाहिये।

परन्तु इन्हीं दानोंका वर्णन जैनशास्त्रोंमें भी है। किन्तु उनके देनेका अभिप्राय जुदा है। जैनधर्ममें तीन प्रकारके पात्र बतलाये हैं। उत्तम पात्र मुनि हैं, मध्यम पात्र व्रत प्रतिमाको आदि लेकर ग्यारह प्रतिमा तकको धारण करनेवाले हैं। तथा जघन्यपात्र ब्राह्मणादि वर्णोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टी मूलगुणादिकोंको धारण करनेवाले सप्त व्यसनादिक किसने ही पापोंके त्यागी ऐसे व्रती गृहस्थ वा गृहस्थाचार्य हैं। इनमेंसे जघन्य पात्रोंको योग्यायोग्य विचार कर ऊपर लिखे दस प्रकारके दान देने चाहिये तथा मध्यम और उत्तम पात्रोंको आहार, औषध, आहार और वसतिका इन चार प्रकारके दानोंमें यथायोग्य रीतिसे कोई-सा भी दान देना चाहिये। सो ही लिखा है—

विचार्य युक्तितो देयं दानं क्षेत्रादिसंभवम्। योग्यायोग्यसुपात्राय जघन्याय महात्मभिः ॥
मध्यमोत्तमयोर्लोके पात्रयोर्न प्रयोजनं। क्षेत्रादिना ततस्ताभ्यां देयं पूर्वं चतुर्विधम् ॥२॥

इससे सिद्ध होता है कि जघन्यपात्रको भूमि आदिका दान देना चाहिये।

इसके सिवाय भगवान जिनेन्द्रदेवका मन्दिर बनवाना, प्रतिमाजी बनवा कर तथा उनकी प्रतिष्ठा कराकर उस मंदिरमें विराजमान करना, उस प्रतिष्ठामें जो श्रावक-श्राविका संघ आया हो उसको भोजनदान देना तथा सुवर्ण दान देकर सबको तृप्त करना, उस मूर्तिकी पूजा सदा काल होती रहे इसके लिये भूमि, क्षेत्र

और गौवा आदिका दान देना तथा पंचामृतसे भगवान अरहंत देवका नित्य अभिषेक होता रहे इसके लिये जिनमन्दिरमें गौदान करना प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य है। मन्दिरमें गौदान देनेसे दूध, दही, घी आदि पंचामृतसे भगवान अरहन्तदेवका नित्य अभिषेक होता रहता है जिससे सदाकाल टिकनेवाला महा पुण्य होता है। ऐसा महा मुनियोंने कहा है। इसी प्रकार जो धर्मात्मा श्रावक अपनी जातिमें उत्पन्न हुआ है जो जाति कुलसे शुद्ध है, ऐसे निर्धन धर्मात्माके पुत्रको भी धर्मकी स्थिति अच्छी तरह पालन करनेके लिए अपनी कन्या देनी चाहिये। सो ही लिखा है—

चैत्यालयं जिनेन्द्रस्य निर्माप्य प्रतिमां तथा। प्रतिष्ठां कारयेद्धीमान् हेमैः संघं तु तर्पयेत्॥
पूजायै तस्य सत्क्षेत्रं ग्रामादिकं प्रदीयते। अभिषेकाय गोदानं कीर्तितं मुनिभिस्तथा॥२॥
शुद्धश्रावकपुत्राय धर्मिष्ठाय दरिद्रिणे। कन्यादानं प्रदातव्यं धर्मसंस्थितिहेतवे॥३॥

यदि घरमें भार्या न हो तो उसका सदाचार अच्छी तरह पालन नहीं हो सकता तथा घरमें भार्याके होनेसे ही पात्रदान हो सकता है और पात्रदान, जिनपूजन आदि धर्मके कार्य आगामी कालमें परम्परा तक सदा होते रहें, इसके लिये गृहस्थोंको स्त्रीकी परम आवश्यकता है। विवाहका मुख्य उद्देश्य अपने समान धर्मात्मा पुत्रको उत्पन्न करना है जिससे कि धर्मकी संतति बराबर चलती रहे। इसके लिये अपनी जातिके धर्मात्मा श्रावकको कन्यादान देना चाहिये। सो ही लिखा है—

विना भार्यां सदाचारो न भवेद् गृहमेधिनाम्। दानपूजादिकं कार्यं प्रगे सन्तति सम्भवः॥

यदि किसी अशुभ कर्मके उदयसे कोई धर्मात्मा श्रावक दरिद्री हो जाय और दरिद्र हो जानेके कारण उसका श्रावकाचार नष्ट होता हो तो उसके धर्माचरणको स्थिर करनेके लिये उसे सुवर्ण दान देना बतलाया है। सो ही लिखा है—

श्रावकाचारनिष्ठोपि दरिद्रः कर्मयोगतः। सुवर्णदानमाख्यातं तस्मै ह्याचारहेतवे॥ १॥

यदि कोई धर्मात्मा मनुष्य निराधार हो, उसके रहनेका ठिकाना न हो तथा निर्धन हो और वा धनके बिना जिसकी निश्चलता न हो और पूजा-दान आदि श्रावक धर्ममें विघ्न आता हो ऐसे घर रहित श्रावकको

धर्मकी रक्षाके लिये और पूजा-दानको दृढ़ताके लिए, उसके रहने योग्य घरका देना वास्तुदान कहलाता है वास्तु-दान देनेसे उसके परिणाम निश्चल और निर्मल रहते हैं और धर्मसाधन बन सकता है। सो ही लिखा है—

निराधाराय निःस्वाय श्रावकाचाररक्षिणे। पूजादानादिकं कर्तुं गृहदानं प्रकीर्तितम्॥

यदि कोई धर्मात्मा पुरुष अपने पैरोंसे तीर्थयात्रा आदि धर्मकार्योंके लिये जानेमें असमर्थ हो और वह पूजा, मन्त्रादिक गुणोंसे सुशोभित हो, जिनधर्मी सुपात्र हो उसको तीर्थयात्रा आदि धर्मसाधनके लिये गाड़ी, घोड़ा आदि सवारी देना जिसके कि उसकी तीर्थयात्रा आदि धर्मसाधन अच्छी तरह हो जाय अथवा भगवानको विराजमान करनेके लिये और प्रभावना अंगकी सिद्धिके लिये जिनालयमें अमूल्य रथ बनवा कर देना गृहस्थका कर्त्तव्य है। सो ही लिखा है—

पद्भ्यां गन्तुमशक्ताय पूजामंत्रविधायिने। तीर्थक्षेत्रसुपात्राय रथाश्वदानमुच्यते॥

तथा भट्टादिक आदि जिनाश्रमोंमें रहनेवाले प्रभाव बढ़ानेवाले धर्मात्मा हैं उनके लिये धर्मकी प्रभावना प्रगट करने और अपनी कीर्त्ति बढ़ानेके लिये हाथी आदिका दान देना बतलाया है। ऐसे कीर्त्तिपात्रोंको हाथीका दान देना भी निष्फल नहीं है। सो ही लिखा है—

भट्टादिकाय जैनाय कीर्तिपात्राय कीर्तये। हस्तिदानं परिप्रोक्तं प्रभावनांगहेतवे॥

इसी प्रकार जो मार्ग निकट और कठिन हो और जिसमें कुआ, तालाब, बावड़ी आदि कोई जलाशय न हो ऐसे मार्गमें चलनेवाले लोगोंकी प्यास व दाह बुझानेके लिये शुद्ध छना हुआ शीतल मीठे जलकी प्याऊ बनवा देना चाहिये। इसको प्रपाशालाका दान कहते हैं। सो ही लिखा है—

दुर्घटे विघटे मार्गे जलाशयविवर्जिते। प्रपास्थानं परं कुर्यात् शोधितेन सुवारिणा॥

---

१. किसी समय श्रीपूज्य सम्मेदाचल पर्वतकी तलहटी मधुवनके जिनालयमें किसीका दान दिया हुआ हाथी था। जाड़ेके दिनोंमें जब यात्री लोग तीर्थयात्रा करने आते हैं और उनमेंसे जो वहाँपर रथोत्सवकी शोभामें वह हाथी काम आता था। कभी-कभी वह हाथी जैनधर्म ध्वजा फहराता हुआ आगे चलता था और कभी-कभी भव्यजनोंको सवार कराकर उनकी शोभा बढ़ाता था। इस प्रकार वह धर्मकी प्रभावना करता था। इससे भी सिद्ध होता है कि धर्मकी प्रभावनाके लिए हाथी देना भी सफल है। तथा जिनालय आदिमें हाथी देनेकी रीति प्राचीन है।

इसी प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार प्रत्येक गाँवमें अन्नक्षेत्र बनवाना चाहिये जहाँसे लोगोंको अन्न मिलता रहे तथा शीतकालमें शीतकी बाधा दूर करनेके लिये सुपात्रोंको रुईकी सौड, बिछौना, अंगरखा, टोपा आदि वस्त्र देना चाहिए। सो ही लिखा है—

अन्नक्षेत्रं यथाशक्ति प्रतिग्रामं समर्पयेत्। शैत्यकाले सुपात्राय वस्त्रदानं सतूलकम्॥

जिन लोगोंके साथ अपने अन्न-पानीका व्यवहार है ऐसे अपनी जातिके लोगोंका व्यवहार चलानेके लिये और उनको अन्न-जल भरनेका सुभीता हो इसके लिये धर्मात्मा सुपात्रोंको काँसे आदिके थाल, लोटा आदि बर्तन देना चाहिये। महाव्रती मुनियोंके लिये पीछी, कमण्डलु देना चाहिये। जिनमंदिरोंमें सोने-चांदी, तांबे, काँसे आदि धातुओंके बने हुए थाल, भृंगार आदि पूजाके उपकरण देना चाहिये और पूजा, मन्त्र आदिकी विधि को जाननेवाले जैनशास्त्रोंके ज्ञाता विद्वानोंको अच्छे भूषण देना चाहिये। सो ही लिखा है—

जलान्नव्यवहाराय पात्राय कांस्यभाजनम्। महाव्रतियतीन्द्राय पिच्छं चापि कमंडलुम्॥
जिनगेहे प्रदेयानि पूजोपकरणानि वै। पूजामंत्रविधेष्टाय पण्डिताय सुभूषणम्॥

इस प्रकार दानके अनेक भेद हैं सो विवेकी पुरुषोंको यथायोग्य अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये। इनके सिवाय और भी प्रकारान्तरसे गृहस्थोंको दान देना बतलाया है। यथा—इस संसारमें उत्तम पात्र निर्ग्रन्थ महामुनि हैं, मध्यम पात्र ग्यारह प्रतिमाओंको धारण करनेवाले श्रावक हैं और जघन्य पात्र अव्रत सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं। ऐसे मुनि, आर्जिका, श्रावक-श्राविका आदि चारों प्रकारके संघको आहारदान, अभयदान, औषधदान, शास्त्रदान, वसतिकादान, वस्त्रदान आदि यथायोग्य देना चाहिये। तथा स्त्री आदि सांसारिक सुखमें रहनेवाले धर्मात्मा पात्रोंको श्रावक धर्मकी सिद्धिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार शुभ वस्त्र वा आभरण देना चाहिये। जो देने योग्य होकर भी नहीं देता और उस धर्मात्माके वचनको नहीं मानता तो फिर उसके घरमें पूजा-दान आदि धर्म कार्योंका लोप हो जाता है। सो ही लिखा है—

भोगपात्रं तु दारादिसंसारसुखदायकं। तस्य देयं सुभूषादि स्वशक्त्या धर्महेतवे॥
यदि न दीयते तस्मै करोति न वचस्तदा। पूजा दानादिकं नैव कार्यं हि घटते गृहे॥

संसारमें अपनी कीर्त्तिको बढ़ानेवाले भाट आदि याचक जन हैं इसलिये यश बढ़ाने और सुखी होनेके

लिए ऐसे भाट आदि याचकजनोंको भी बहुत-सा धन देना चाहिये। क्योंकि संसारमें यदि धनी लोगोंकी कीर्ति न हो तो लोकापवाद होनेके कारण उनका जन्म ही व्यर्थ हो जाता है। अपनी निन्दाके सुननेसे मानसिक दुःख होता है, मानसिक दुःखसे आर्त्तध्यान होता है और आर्त्तध्यानसे पापबंध होता है। इसलिये अपनी यशःकीर्त्तिके लिये समयानुसार और योग्यतानुसार भाट आदिको भी धन देना चाहिये। सो ही लिखा है—

भट्टादिकं यशस्पात्रं लोके कीर्त्तिप्रवर्तकम्। देयं तस्मै धनं भूरि यशसे च सुखाय च ॥१॥
विना कीर्त्या वृथा जन्म मनो दुःखप्रदायकम्। मनोदुःखे भवेदार्तः पापबंधस्तथार्ततः ॥२॥

दासी-दास, नौकर-चाकर आदि जो सेवाके पात्र हैं उनको यथेष्ट (आवश्यकतानुसार) अन्न, वस्त्र देना चाहिये। तथा दया पालन करनेके लिये समस्त जीवोंको अपनी शक्तिके अनुसार यथोचित् दान देना चाहिये। इसी प्रकार गाय, बछड़ा, भैंस आदि भूखे-प्यासे जानवरोंको घास, भुस और छना पानी आदि देना चाहिये। सो ही लिखा है—

सेवापात्रं भवेद्दासी दासभृत्यादिकं ततः। तस्मै देयं पटाद्यन्नं यथेष्टं च यथोचितम् ॥१॥
दयाँहेतोस्तु सर्वेषां देयं दानं स्वशक्तितः। गोवत्समहिषीनां च जलं च तृणसंचयम् ॥ ?

इस प्रकार दानका स्वरूप अनेक प्रकार है और इन सबका फल जुदा-जुदा है। सो ही लिखा है—

पात्रे धर्मनिबंधनं तदितरे श्रेष्ठं दयाद्यापकं, मित्रे प्रीतिविवर्द्धनं रिपुजने वैरापहारक्षमम्।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानसंपादकं,
भट्टादौ तु यशस्करं वितरणं तत्क्वाप्यहो निष्फलम् ॥

अर्थात् अपने हाथसे जो पात्रोंको दान दिया जाता है वह स्वर्ग-मोक्षको देनेवाला और धर्मकी वृद्धि करनेवाला है तथा उत्तम, मध्यम, जघन्य तीनों पात्रोंके सिवाय अन्य जीवोंको दयाके लिये दिया हुआ दान उत्तम ही है। देखो मित्रको दिया हुआ दान प्रेम बढ़ाता है। शत्रुको दिया हुआ दान वैरको दूर करता है। दासी-दास, नौकर-चाकर आदिको दिया हुआ दान भक्ति बढ़ाता है। राजाको दिया हुआ दान अपना सन्मान बढ़ाता है। तथा भाट, राव आदि याचकोंको दिया हुआ दान अपनी कीर्त्तिको बढ़ाता है। इससे सिद्ध होता है

कि हाथसे दिया हुआ दान कभी निष्फल नहीं होता। दानका ऐसा ही माहात्म्य है। इसलिये प्रायश्चित्तोंमें जो गोदान लिखा है सो वह भी समयानुसार यथायोग्य पात्रको देना चाहिये। सर्वथा एकांत पक्षको पकड़कर हठ नहीं करना चाहिये। जैनमत स्याद्वाद रूप है।

इसके सिवाय जैनधर्ममें अनेक शास्त्र हैं सो किसी एक शास्त्रको पकड़ कर हट नहीं करना चाहिये। 'सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।' अर्थात् सामान्य शास्त्रसे विशेष शास्त्र बलवान् होते हैं। यह सब न्याय और नीति समझ लेना चाहिये।

गृहस्थोंको यह सब दान महा पापोंको दूर करनेके लिये तथा अपनी जातिमें धर्मकी वृद्धि करनेके लिए और अपने प्रायश्चित्तकी शुद्धिके लिये लेना चाहिये। यह सब लोकाचरण है जिन लोकाचरणोंमें सम्यग्दृष्टी व्रती श्रावकको सम्यग्दर्शन और व्रतोंमें दोष न लगे ऐसे लोकाचरण करनेमें कोई हानि नहीं है। सो ही यशस्तिलक चम्पूमें लिखा है। और चर्चा समाधानमें भी लिखा है। यथा—

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः। यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥

यह विषय और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है—

श्री आदिनाथके पुत्र महाराज भरतेश्वरने एक बार ऐसा विचार किया था कि दान किसको देना चाहिये। उसी समय यह निश्चय किया था कि जो अहिंसा आदि अणुव्रतोंमें धीर हों, जो गृहस्थ धर्म धारण करनेवालोंमें अग्रेसर हों ऐसे लोगोंको हाथी, घोड़ा, रथ, चाकर, वाहन आदि मनोवांछित पदार्थ तथा अन्न, वस्त्र, घर, गौ आदि दान देकर उनकी आशा पूर्ण करनी चाहिए। ऐसा श्री आदिपुराणके अड़तीसवें पर्वमें आठवें श्लोकमें वर्णन किया है। यथा—

ये च व्रतधरा धीरा धौरेया गृहमेधिनाम्। तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैः वस्तुवाहनैः॥

यद्यपि इस श्लोकमें गो शब्द नहीं है तथापि धातूनां अनेकार्थत्वात्, अवयवानां अनेकार्थत्वात्। अर्थात् धातुओंके अनेक अर्थ होते हैं तथा अवयवोंसे अनेक कार्य बनते हैं। इस प्रसंगको देख लेना चाहिये। प्रकरण दानका है इसलिये ईप्सित वा इष्ट पदार्थोंमें गौ भी आती है।

इसके सिवाय इसी अड़तीसवें पर्वमें पात्रदान, दयादान, समदान, अन्वयदान ऐसे दानके चार भेद

लिखे हैं उनमेंसे समवत्तिवानमे ऐसा लिखा है कि जिनकी आत्मा समान है तथा क्रिया, मंत्र, व्रत आदि भी जिनके समान हैं ऐसे निस्तारक वा गृहस्थाचार्योंको पृथ्वी, सुवर्ण आदि दान देना चाहिये। जो व्रत क्रिया मन्त्र आदिसे समान हैं ऐसे श्रावकोंको धर्मकी स्थिरताके लिये पृथ्वी, सोना आदि दान देना चाहिये। यथा—

समानायात्मनान्यस्मै क्रियामंत्रव्रतादिभिः। निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम् ॥३८॥

श्री पद्मनन्दि मुनिने अपने पंचविंशतिका काव्यमें दूसरे दान प्रकरणमें लिखा है कि अभयदान औषधिदान, आहारदान, शास्त्रदान ये चार दान हैं सो ये चारों ही दान अलग-अलग महाफल देनेवाले हैं। सो ही लिखा है—

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोभेषजैर्भवेत्। अन्नदानात्सुखी नित्यं अभयोऽभयदानतः ॥

अर्थात् ज्ञानदानसे ज्ञानी होता है। औषध दानसे निरोग रहता है। अन्नदानसे सदा सुखी रहता है और अभयदानसे सदा निर्भय रहता है। इन चार दानोंके सिवाय अन्य मतियोंके द्वारा कल्पना किये गये ऐसे गोदान, सुवर्णदान, भूमि, रथ, कन्या आदि पहले कहे हुए जो दस दान हैं वे सब दान पापके कारण हैं। सो ही पंचविंशतिकामें लिखा है—

चत्वारि यान्यभयभेषजभुक्तिशास्त्रदानानि तानि कथितानि महाफलानि ॥
नान्यानि गोकनकभूमिरथांगनादि, दानादि निश्चितमवद्यकराणि यस्मात् ॥३०॥

इससे आगे उसी पंचविंशतिकामें लिखा है भूमि आदिका दान जिन मन्दिरमें देना चाहिये जिससे नवीन मन्दिर बन सके तथा सुवर्ण, गौ आदिभी जिनमन्दिरमें देना चाहिये जिससे दीर्घ काल तक वह मन्दिर बना रहे, जिनशासनकी प्रवृत्ति बनी रहे और सदा पूजा, अभिषेक आदि धर्म कार्य होते रहें। सो ही लिखा है—

यद्दीयते जिनगृहाय धरादि किंचित् तत्तत्र संस्कृतिनिमित्तमिह प्ररूढम्।
आस्ते ततस्तदतिदीर्घतरं हि कालं जैनं च शासनमतः कृतमस्ति दातुः ॥

यद्यपि इस काव्यमें गौ दानका स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि आदि शब्दसे कहा है।

कदाचित् यहाँपर कोई यह कहे कि यहां काव्यमें गौ दानका वर्णन आदि शब्दसे कहा है सो इससे

हमारा संदेह दूर नहीं होता तो इसका उत्तर यह है कि देखो—जिस समय सीताजीकी दाईं आँख फड़की थी तब सीताजीने अपशकुन समझकर भंडारीको बुलाया था और उस होनहार विघ्नकी शान्तिके लिये तथा अपने सुखकी इच्छासे उस भंडारीसे कहा था कि हे भंडारके स्वामी ! हमारे घरसे पात्रोंके लिये चारों प्रकारके दान दो । हमारे देशमें सब जगके जीवोंकी रक्षा करो, कराओ । हमारे देशमें किसीके द्वारा भी जीवघात न होने पावे । इसी प्रकार हमारे देशमें अनेक ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित जिनमन्दिर कराओ । तथा भगवानका नित्य अभिषेक होनेके लिये बहुतसी गायें जिनमन्दिरोंमें दो, जिनपूजा कराओ और जिनमन्दिरोंमें भगवानकी नाटय-शालायें बनवाओ । इस प्रकार सीताजीने आज्ञा की । सीताजीकी यह आज्ञा सुनकर भंडारीने वैसा ही कर देनेका सब प्रबंध कर दिया अर्थात् सीताजीके कहे हुये सब कार्य कर दिये ऐसा स्पष्ट कथन लिखा है । यथा—

भांडागाराधिपे प्राह सीता स्वस्य सुखेप्सया। देहि दानं च सर्वेभ्यो पात्रकेभ्यश्च मद्गृहात् ॥
जीवरक्षां च सर्वत्र कारयेद्विषये मम । मद्देशे कारयेज्जैनप्रासादाः शिखरान्विताः ॥४८॥
अभिषेकाय विम्बानां जिनानां गोधनं बहु। देहि चैत्यालयेषु त्वं कारयेत्पूजनं परम् ॥४९॥
नाटयशाला जिनेन्द्रस्य कारयेज्जिनसद्मसु। तच्छ्रुत्वा तेन तत्सर्वं कृतं परं च तत्क्षणात् ॥

इस प्रकार प्रसंगानुसार लिखा है श्लोकोंका अर्थ ऊपर लिखा जा चुका है ।

इसके सिवाय श्रीअकलंकदेवकृत श्रावकप्रायश्चित्त नामका ग्रन्थ है उसमें भी प्रायश्चित्त वर्णनमें यथोचित गोदान लिखा है । जैसे—

कलशाभिषेकश्चैको गौरेका च प्रदीयते ॥

अर्थात् एक कलशाभिषेक करना चाहिये और एक गाय देनी चाहिये ।

द्विशतं भुक्तिदानानं तिस्रो गावो भवंति हि ॥

अर्थात् दोसौ आहारदान और तीन गायें देनी चाहिये ।

द्विगावो कलशस्नानम् ॥

दो गाय देना चाहिये और कलशाभिषेक करना चाहिये ।

पंचाशद्भुक्तिदानानि गावस्तिस्र उदाहृताः ॥

पचास व्यक्तियों को जिमाना । पचास आहारदान और तीन गायें देनी चाहिए ।

त्रयोभिषेकाः कलशैर्गावस्तिस्रः प्रकीर्तिताः ॥

कलशोंसे तीन अभिषेक करने चाहिए और तीन गायें देनी चाहिए ।

द्वौ गावौ दशगंधस्य फलानि कुसुमानि तु ॥

दो गायें, दश गंध, दश फल और दश फूल देने चाहिये ।

द्विगावौ भुक्तिदानानि ॥

दो गायें और आहारदान देना चाहिए ।

मोक्कल्ला गौर्हि एका स्यादुपवासादयो मताः ॥

मोकल्ला एक गौ उपवासादिक करने चाहिए ।

द्वौ च गावौ भुक्तिशतद्वयम् ॥

दो गाय और सौ आहारदान देना चाहिए ।

गौरेकात्र प्रदीयते ॥

इसमें एक गाय देनी चाहिए ।

गौरेकाहारदानानि ॥

एक गाय और आहारदान देना चाहिए ।

गौरेका त्रीणि लक्षाणि पुष्पं गंधं फलानि च ।

एक गाय, तीन लाख पुष्प, गंध, फल देने चाहिए ।

गौरेकाहारदानानि पंचपंचाशदेव हि ।

एक गाय और पचपन आहारदान देना चाहिए ।

धेनुरेका प्रदीयते ॥

एक गाय देनी चाहिए ।

इस प्रकार अकलंक देवने अपने प्रायश्चित्त ग्रन्थमें कहा है । यहाँ सामान्य कथन (थोड़ा-सा वर्णन) किया है । विशेष विस्तार जानना हो तो श्रीरसेनकृत तथा अकलंकदेवकृत प्रायश्चित्त ग्रन्थोंमें देखना चाहिये ।

प्रश्न—प्रायश्चित्त ग्रन्थोंमें जो शिरमुंडन लिखा है सो यह आम्नाय तो अन्य मतियोंका है सो जैन-शास्त्रोंमें क्यों लिखी गई है ।

समाधान—प्रायश्चित्तके समय जैन शास्त्रोंमें शिर मुंडन करानेका उपदेश है । इसलिये लिखा है । देखो मुनि अर्जिकाके प्रायश्चित्त ग्रन्थोंमें भी लिखा है—

तहय सुवण्णादीणं दव्वं इच्छयाण जह जोगं । सिर मुंडणं च कुज्जा लेयाणं किं गाहणट्ठं ॥

अर्थात्—यथायोग्य सुवर्णादिक द्रव्य लेना चाहिए । और सिर मुण्डन कराना चाहिए ।

इसमें भी शिर मुण्डन लिखा है । तथा दूसरी जगह लिखा है—

सकृद्भांत्यथ दर्पाद्वा सेविता दुर्जनेरिता । प्रायश्चित्तोपवासाः स्युः त्रिंशतं शीर्षमुंडनम् ॥

अर्थात् किसी दुष्टकी प्रेरणासे वा प्रमादसे एकबार मुण्डन सेवन की हो तीन सौ उपवास शिर मुण्डन करना उसका प्रायश्चित्त है । किसी दुष्टकी प्रेरणा से एक बार अभक्ष्य सेवन किया हो ।

१८५–चर्चा एकसौ पचासीवीं

प्रश्न—मुनियोंके प्रायश्चित्त विधि क्या है ?

समाधान—बारह प्रकारके तपोंमें एक प्रायश्चित्त नामका तप है । यदि किसी मुनिके अज्ञान अथवा प्रमादसे पाँच महाव्रतादिक, अट्ठाईस मूलगुणोंमें वा अन्य किसी क्रिया आचरणमें किसी प्रकारका अतिचार वा अनाचार लग जाय तो वे मुनिराज अपने गुरु आचार्यके निकट जाकर अपने किये हुए दोषको प्रगट करते हैं । तदनन्तर आचार्य महाराज जो प्रायश्चित्त दें उसे वे अपने दोष दूर करनेके लिये बड़े हर्षके साथ स्वीकार करते हैं । गुरुके दिये हुए प्रायश्चित्तोंमें किसी प्रकारका विवाद नहीं करते किन्तु उसको यथोचित रीतिसे पाल कर

शुद्ध होते हैं। वही प्रायश्चित्त थोड़ा-सा यहाँ लिखते हैं। मुनियोंके प्रायश्चित्तकी विधि गृहस्थके समान नहीं है किन्तु उसकी विधि अलग ही है और वह इस क्रमसे है।

प्रायश्चित्त, विशुद्धि, मल हरण, पापनाशन और छेदन ये पाँच भेद हैं। उसमेंसे नौ णमोकार मंत्रका एक कायोत्सर्ग होता है। बारह कायोत्सर्गका एकसौ आठ णमोकार मन्त्रोंका एक जप होता है। एवं जपका फल एक उपवास है। यहाँपर उपवास शब्दका अर्थ यही है। आचाम्ल, निर्विडि, गुरुनिरत, एक स्थान, उपवास ये पाँचों मिलकर एक कल्याणक होता है। यदि कोई मुनि इस कल्याणकके पाँचों अंगोंमेंसे आचाम्ल पाँच, निर्विड पाँच वा उपवास पाँच इनमेंसे कोई एक कर लें तो वह लघु कल्याणक कहलाता है। यदि पाँचों कल्याणकोंमें कोई एक कम करे तो उसको भिन्न कल्याणक कहते हैं। यदि वे आचाम्ल, गुरु निरत, एक स्थान, निर्विड इनको करें तो अर्द्धकल्याणक कहा जाता है। ऐसा सब जगह समझ लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

पायच्छित्त विसोही मलहरणं पावणासणं छेदो। पंचाया मूलगुणं मासियसट्ठाण पंचकल्लाणे॥
एकेहिवि कायोस्सग्गे णव णवकारा हवेंति वारससु।
सय अट्ठोत्तर भेदे भवन्ति उववासयं सफलं॥
आयं विलेण वियडि पुरिमंडल सेयट्ठाणमुववासं। कल्लाणमे गमेदे हि पंच हि पंचकल्लाणं॥
आयंविलेण पउणं खमण पुरिमंडले तहापादो। एकट्ठाणे अद्धं णिवि पडिए परामेव॥

यहाँपर मूलगुण मुनियोंके अलग हैं और श्रावकोंके अलग हैं उसी प्रकार उत्तरगुण भी अलग-अलग हैं। उनको क्रमसे बतलावेंगे।

आगे अहिंसा महाव्रतमें जो दोष लगते हैं उनकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त कहते हैं। यदि किसी मुनिसे बारह एकेन्द्रिय जीवोंका घात अज्ञानपनेसे हो जाय तो ऊपर लिखा हुआ (बारह कायोत्सर्गका) एक उपवास करना चाहिये। यदि छः, दो इंद्रिय जीवोंका घात हो जाय तो भी ऊपर लिखा एक उपवास करना चाहिये। यदि चार, तेइन्द्रिय जीवोंका घात हो जाय तो भी एक उपवास करना चाहिये। यदि तीन, चतुरिन्द्रिय जीवोंका घात हो जाय तो भी एक उपवास करना चाहिये। यदि छत्तीस एकेन्द्रिय जीवोंका घात हो जाय तो प्रतिक्रमण

पूर्वक तीन उपवास करने चाहिये। इसी प्रकार अट्ठारह दो इन्द्रिय, बारह तेइन्द्रिय, नौ चौइन्द्रिय जीवोंके घात का प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास समझना चाहिये। यह जघन्य प्रायश्चित्त है।

यदि किसी मुनिसे असावधानीसे एकसौ अस्सी एकेन्द्रिय जीवोंका, नब्बे दोइन्द्रिय जीवोंका वा साठ तेइन्द्रिय जीवोंका वा पैंतालीस चतुरिन्द्रिय जीवोंका वध हो जाय तो अलग-अलग, एक-एक पंचकल्याणक करना चाहिये। यह उत्कृष्ट प्रायश्चित्त है। अन्य आचार्योंके मतमें पंचकल्याणक, छः आवश्यक और प्रतिक्रमण सहित पंचकल्याणक समझना चाहिये। सो ही लिखा है—

मूलगुणावि य दुविहा समणाणं चेवयाणं च। उत्तरगुण तहेव यन्ते हिंसोहिं पच्चखामि॥
ए इंदियाय काओ दो इंदिय गणणाय जीव चउइंदी।
एकाउसग्गेय तहा बारस छह उच्चट्ठ तिहकमणं॥
छत्तीसट्ठारसबारस णवयहि छट्ठपरिकमणं। सिदि सयण उदिहि सट्ठियण दाल एहि मूलगुणं॥

यदि नौ प्राणोंको धारण करनेवाले असैनी पंचेन्द्रिय जीवका वध हो जाय तो अलग-अलग आठ प्रकार-के मुनियोंको अलग-अलग प्रायश्चित्त होता है। सो ही लिखा है—

पंचेदिय असणीए वधकरणे चेव मूलगुणमत्तो। थिर अथिर पयदचारी अपदोई दरा ए॥

अर्थ—मूलगुणके भेद चार, उत्तरगुणके भेद चार, स्थिर मूलगुण चारित्रधारी १, अस्थिर मूलगुण चारित्रधारी २, प्रयत्नचारित्र मूलगुणधारी ३, अप्रयत्नचारित्र मूलगुणधारी ४। ये ही चार भेद उत्तरगुण-धारियोंके समझने चाहिये। इन सबके जुदा-जुदा प्रायश्चित्त होता है। यथा—स्थिर मूलगुण चारित्रवालेको प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास करना चाहिये। अस्थिर मूलगुण चारित्रवालेको प्रतिक्रमण पूर्वक एक पंचकल्या-णक, प्रयत्नचारित्र मूलगुण चारित्रवालेको प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास और अप्रयत्न मूलगुणधारीको प्रतिक्रमण पूर्वक एक पंचकल्याणक, प्रयत्न चारित्र मूलगुणचारित्र वालेको प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास और अप्रयत्न-चारित्र मूलगुणवालेको प्रतिक्रमण पूर्वक एक लघुकल्याणक करना चाहिये। इसी प्रकार अनुक्रमसे ऊपर कहा हुआ प्रायश्चित्त उत्तर गुणवालोंका जानना चाहिये। यह प्रायश्चित्त एक पंचेन्द्रिय असैनी जीवके वध होनेका है।

प्रश्न—यदि किसी मुनिसे अनेक पंचेंद्रिय असैनी जीवोंका वध हो जाय तो उसे क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिये ?

उत्तर—यदि ऊपर लिखे आठ प्रकारके मुनियोंसे नौ प्राणोंको धारण करनेवाले असैनी पंचेंद्रिय जीवोंका अनेक बार वध हो जाय तो उन्हें अनुक्रमसे नीचे लिखे अनुसार प्रायश्चित्त लेना चाहिये। पहलेको (स्थिर मूलगुण चारित्रधारीको) तीन उपवास, अस्थिर मूलगुणधारीको एक कल्याणक, प्रयत्नचारित्रमूल गुणधारीको दो लघु कल्याणक, अप्रयत्नचारित्र मूलगुणधारीको तीन पंच कल्याणक इस प्रकार इनका प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

बहुवारेसु विच्छेदो छट्ठ लहुमास मासियं मूलं। तिण्णुववासा छट्ठ लहुगच्छट्ठाणमट्ठण्णं॥

यदि उत्तरगुणको धारण करनेवाले साधु अपने प्रमादसे एकेंद्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके गमन आगमनको रोकें तो एक कायोत्सर्ग करें। यदि वे असैनी पंचेंद्रियका गमनागमन रोकें तो एक उपवास करें। यदि मूलगुण धारण करनेवाले साधु प्रमादसे एकेंद्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके गमन आगमनको रोकें तो एक कायोत्सर्ग करें। यदि मूलगुणधारी साधु अपने किसी अहंकारसे असैनी पंचेंद्रियका गमन आगमन रोकें तो वे तेरह उपवास करें। सो ही लिखा है—

उत्तरमूलगुणीणं पमाददप्पं हि जाणमलहरणं। काओसग्गोवासो इंदियपाणेण गमणाए॥

तथा जहाँ-जहाँपर प्रयत्नाचार वा अप्रयत्नाचारके द्वारा एकेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंका वा असैनी पंचेंद्रिय जीवोंका गमन-आगमन रुके तो एक कायोत्सर्ग करना चाहिये यदि ऐसे ही साधुओंसे सैनी पंचेंद्रिय जीवोंका गमन-आगमन रुके तो बारह कायोत्सर्गका एक उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है—

अहवा जतनाजतने इंदियगण्णाय पाणगण्णाय।काओस्सग्गो होंति उववासा वारसा देहि॥

यदि किसी मुनिसे क्रोधादिक कषायोंके वश होकर अपनी सामर्थ्यसे तथा अशुभ कर्मके उदयसे अनेक अनर्थोंका मूल ऐसा महापात हो जाय अर्थात् यद्यपि महामुनि समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवाले हैं, सब प्रकारकी हिंसाका त्याग कर अहिंसा महाव्रतको धारण करनेवाले हैं तथापि यदि दैवयोगसे दुष्ट बुद्धिसे उनसे कोई अनुचित बन जाय तो वे मुनि भारी दण्ड देनेके योग्य हैं। आगे उसी दण्डको अनुक्रमसे कहते हैं। यति मारने-

का प्रायश्चित्त एक वर्ष पर्यन्त निरन्तर तेला पारणा करना चाहिये। श्रावक मारनेका प्रायश्चित्त छः महीने पर्यन्त निरन्तर तेला पारणा करना चाहिये। बाल हत्या, स्त्री हत्या, गौ हत्या हो जानेपर यति हत्याके अनुक्रमसे आधा-आधा दण्ड लेना चाहिये अर्थात्—यति हत्याका एकवर्ष पर्यन्त तेला, श्रावक हत्याका छः महीने तक तेला, बालहत्याका तीन महीने तक निरंतर तेला पारणा, स्त्री हत्याका डेढ़ महीने तक निरंतर तेला पारणा। गौ हत्याका साढ़े बाईस दिन तक निरन्तर तेला पारणा करना चाहिये।

परमती पाखण्डोंके मारनेका प्रायश्चित्त छः महीने तक तेला पारणा करना है, पाखण्डियोंके भक्तके मारनेका प्रायश्चित्त तीन महीने तक तेला पारणा करना है और नीचके मारनेका प्रायश्चित्त डेढ़ महीने तक तेला पारणा करना है। ब्राह्मणके मारनेका प्रायश्चित्त आदि अन्तमें तेला करना और छः महीने तक एकांतर उपवास (एक उपवास, एक एकासन) करना है। क्षत्रियके मारनेका आदि अन्तमें तेला और तीन महीने तक एकांतर उपवास है। वैश्यके मारनेका डेढ़ महीने तक एकांतर उपवास और आदि अन्तमें तेला करना है। शूद्रके मारनेका प्रायश्चित्त तेईस दिन तक एकांतर उपवास और आदि अन्तमें तेला करना है। किसी-किसी आचार्यके मतमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके मारनेका प्रायश्चित्त आठ महीने, चार महीने, दो महीने और एक महीने तक एकांतर उपवास और आदि अन्तमें तेला बतलाया है।

इसी प्रकार घास-भुस खानेवाले पशुके मर जानेपर उसकी शांतिके लिए चौदह उपवास, मांस-भक्षी पशुके मर जानेपर ग्यारह उपवास, पक्षी, सर्प, जलचर, छिपकली आदि जीवोंके मरनेका प्रायश्चित्त नौ उपवास हैं। यहाँपर बारह कायोत्सर्गसे होनेवाला उपवास नहीं है किन्तु तेला-बेलाके सम्बन्धसे चार प्रकारके आहारका त्याग करना उपवास लिया है। सो ही लिखा है—

रिसि साक्य वालाणं इत्थि गोघायणं हि मलहरणं।
बारसमासादीणं अद्धद्धकमेण छट्ठ छट्ठ तवं॥
पासंडा तवगुरु जोणि सरिसाण घादण छेदो। छम्मासं छट्ठतवं अद्धद्धं होदि णायठवा॥
वंम्मण खत्तिय वेस्सास सुद्दा चउपयंग दुण पायम्मि।
एगंतर छम्मासा अद्धद्धं छट्ठमासमंतेण॥

तणवत्था य विहंगम उरपरिसप्पाण जलचरवधेहिं।
चोद्दसमोदिक्कादि उणवंत खमणाणि मलहरणं॥

इस प्रकार अहिंसा नामक प्रथम महाव्रतका तथा अहिंसा उत्तरगुणका प्रायश्चित्त बतलाया।

एक बार प्रत्यक्ष असत्य कहनेका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। एक बार परोक्ष असत्य कहनेका प्रायश्चित्त दो उपवास है। एक बार मन, वचन, कायसे असत्य कहनेका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। अनेक बार प्रत्यक्ष कहनेका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। अनेक बार परोक्ष असत्य भाषण करनेका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। अनेक बार प्रत्यक्ष-परोक्ष मिले हुए असत्य कहनेका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। अनेक बार मन, वचन, कायसे असत्य कहनेका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। सो ही लिखा है—

सइ पचक्ख परोक्खं उभयं तियकरण नोसमासीसे।
काउस्सग्गुववसो एगुत्तव असइसट्ठाणं॥

इस प्रकार असत्य त्याग महाव्रतका प्रायश्चित्त बतलाया। यहां पर बारह कायोत्सर्गका एक उपवास समझना चाहिये। चार प्रकारके आहारका त्यागरूप उपवास नहीं है।

यदि मोहसे एकबार परोक्ष चोरी की जाय तो एक कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त है। यदि एकबार प्रत्यक्ष चोरीकी जाय तो एक उपवास प्रायश्चित्त है। यदि एकबार प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों प्रकारकी चोरी की जाय तो दो उपवास प्रायश्चित्त है। यदि एकबार मन, वचन, कायसे चोरी की जाय तो तीन उपवास प्रायश्चित्त है। यदि अनेक बार परोक्ष चोरी की जाय तो पंच कल्याणक प्रायश्चित्त है। यदि अनेक बार प्रत्यक्ष चोरीकी जाय तो पंच कल्याणक प्रायश्चित्त है। यदि अनेक बार मन, वचन, काय तीनोंसे चोरीकी जाय तो पंचकल्याणक प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है—

सुद सुद सुणं हि समक्खेणाभोगे अदत्त गहिदम्हि। काउस्सग्गुववासा गुत्तर असइमासिट्ठं॥

यहाँ भी बारह कायोत्सर्गका उपवास समझना चाहिये। इस प्रकार अचौर्य महाव्रतका प्रायश्चित्त बतलाया।

आगे ब्रह्मचर्यके दोषोंका प्रायश्चित्त बतलाते हैं। यदि मुनि नियमरहित और देववंदनासहित रात्रिमें निद्रा लें और स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक दो उपवास है। यदि मुनि नियम सहित देव वंदना पूर्वक रात्रिमें निद्रा लें और स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय सो प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास प्रायश्चित्त है। यदि पिछली रातमें सामायिक कालके पहले निद्रामें वीर्यपात हो जाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास प्रायश्चित्त है। यदि शामकी सामायिक करनेके बाद नियम सहित सोनेवाले साधुके नींदमें वीर्यपात हो जाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक एक प्रायश्चित्त है। एक सामायिक कर नियमसहित देव वंदना पूर्वक सोते हुये वीर्यपात हो जाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास प्रायश्चित्त है। यदि कोई मुनि आसक्त होकर स्त्रीके साथ वचनालाप करें तो प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास करना चाहिये। यदि स्त्रीका स्पर्श हो जाय तो प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास करना चाहिये। यदि किसी मुनिने अपने मनमें स्त्रीका चिंतवन किया हो सो प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है—

पाथो सणियमरहिदे वंदण सहियं णमज्झएसु तस्सेर। दणिर वरणे उवधा वण दणिख वण्णाणी।
णियमे जुत्तस्स पुणो सेसरिहं सछेद पुव्वं वा। सण्णा परहियसुत्तो पावदीउ च वासेण त्तसेण॥
सो हि लहइ रेदणिक्खरणे.....
सज्झाय णियम स हियं वंदण रहियं सरेदणिक्खरणे।
उवट्ठावण उववासो चेरकं थणं वासणियमस्सछ॥
सज्झायणिम वंदण तिणि विकाउण जो सुवई।
साडरेदेदे णिरकरणं हिय उवट्ठा वण छट्ठ दिवसेय॥
अब्भंझं घासत्तो इत्थिहिय मोहिपदाध इछंत्तो। काउसग्गुववासो उवणा वट्ठदप्पं हि॥(?)

यदि कोई तिर्यंञ्च, देव वा मनुष्य किसी मुनिपर उपसर्ग करें और उस उपसर्गमें प्रमादसे मुनिका ब्रह्मचर्य भंग हो जाय उससे मैथुन कर ले तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक पंचकल्याणक है। यदि मुनि कामविकारसे मन, वचन, कायसे स्त्रीसे फिर भी मैथुन करें तो उनका महाव्रत भंग हो जाता है। वे फिर दुबारा दीक्षा लेनेपर शुद्ध हो सकते हैं। सो ही लिखा है—

तिरियादि दुवस्सग्गे अबंभं सेविदं समूलगुणं। मूलट्ठाणं दप्पे तिरयण सेविसस्स जणणादो॥

यदि कोई महाव्रती मुनि किसी अर्जिकासे एकबार मैथुन सेवन करे तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण सहित पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि अनेक बार किसी अर्जिकासे मैथुन सेवन करे तो उसका महाव्रत भंग हो जाता है। फिर दीक्षा लेनेसे वह शुद्ध होता है। यदि इस बातको बहुतसे लोग जान लें या देख लें और फिर भी वह न छोड़े तो फिर उसको उस देशसे निकाल देना चाहिये। सो ही लिखा है—

आलासं संगोण मूलगुण मूलठाण बहुवारं। जणणादं हि विवेगो देसादो णिद्धाउण होदि॥

इस प्रकार चतुर्थ ब्रह्मचर्य नामके महाव्रतका प्रायश्चित बतलाया। आगे अपरिग्रह महाव्रतका प्रायश्चित्त कहते हैं।

यदि एकबार उपकरणादिक, पदार्थोंके संग्रह करनेकी इच्छा करें, उन मुनिको एक उपवास प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि एकबार प्रेमपूर्वक उपकरणादिक पदार्थ रक्खें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि नित्य-प्रति सदा किसी उपकरणादिक पदार्थके रखनेकी इच्छा करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि और लोगोंसे दान दिलावें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि सब परिग्रहोंको रक्खे तो उसका महाव्रत भंग हो जाता है। यदि वह फिरसे दीक्षा ले तो शुद्ध हो सकता है। सो ही लिखा है—

उवयरण ठवण लोहिदि णमुहे दाणमण विखादे। सग्गग्गहणखमणं छट्ठट्ठं मूलगुणलघंति॥

इस प्रकार महाव्रतका प्रायश्चित्त बतलाया।

जो मुनि रोगके वश होकर एक रातमें चारों प्रकारके आहारका अशन पान करें तो उसके प्रायश्चित्त-में तीन उपवास करना चाहिये। यदि रोगके वशीभूत होकर एक जल-ग्रहण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि किसीके उपसर्गसे कोई मुनि रातमें भोजन पान करें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि अपने दर्पसे अनेक बार भोजन-पान करें तो फिर उनका महाव्रत भंग हो जाता है। वे फिर दीक्षा लेनेसे शुद्ध हो सकते हैं। सो ही लिखा है—

रत्तिगलाणमभुत्ते चउविह एगं हि छट्ठखमणं तु। उवसग्गो सट्ठाणं चरियाए मूलगुणे भुत्ते॥

इस प्रकार रात्रि-भोजन त्याग नामके मूलगुणका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि टेढ़े मार्गको एक कोससे कम प्रासुक भूमिमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि वे किसी सीधे मार्गको एक कोस अप्रासुक भूमिमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि वर्षाकालमें तीन कोस तक प्रासुक भूमिमें गमन करे तो एक उपवास प्रायश्चित्त करें। यदि वर्षाकालमें दिनमें दो कोस अप्रासुक मार्गमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि वर्षाकालमें रात्रिमें एक कोस गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त या दण्ड चार उपवास हैं। यदि शीतकालमें दिनमें प्रासुक भूमिपर छः कोस तक कोई मुनि चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि शीतकालमें दिनमें अप्रासुक भूमिपर छः कोश तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि शीतकालमें रात्रिमें प्रासुक मार्गसे चार कोस तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि गर्मीके दिनोंमें नौ कोस तक प्रासुक भूमिमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित एक उपवास है। यदि गर्मीके दिनोंमें अप्रासुक भूमिमें छः कोस तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि गर्मीमें रातमें अप्रासुक मार्गसे छः कोस तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त दो उपवास है।

यदि मुनि बिना पीछीके सात पैंड तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि बिना पीछीके एक कोस तक गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है।

यदि मुनि घुटने तक पानीमें होकर गमन करे तो उसका प्रायश्चित एक कायोत्सर्ग है। यदि घुटनेसे चार अंगुल ऊपर तक पानीमें गमन करें तो एक उपवास प्रायश्चित्त है। फिर आगे प्रति चार अंगुल पर दूने-दूने उपवास प्रायश्चित्त हैं। सो ही लिखा है—

वियायामगमण मुणिणो उमग्गो पासुगो असुद्धं।
काउस्सग्गो खमणं अपुण्णकोसं हि दायव्वं॥
वासरते दिव वसो पासुगां य गच्छं हि पदरगा।
दिच्चति यदुग कोसे एगोगां तिण्णि चड खमणं॥
छहमे तेहिय दिवसो पातुय गच्छं हि पदरगा।
दिच्चति पदुगे कोसे एगोगां वे णित्तिय खमणं॥

खिवंदु दिदि संहि चहा पासुगोळं हि यद्दारण्हादि ।
चण गच्छ एकोसे एगोगां दोण्णि दुग खमणं ॥
काउस्सगे सुद्धदि सत्तसु पादेसु पिच्छि विण गमणे।
सुगमणादि पडिक्कमणं णो खमणं होदि णियमेण॥
जण्हं हि विजो सगो खमणं चउंगलं हि तसुवारं ।
तं भोयदुगण दुगणे उववासा अंगुलं चडके ॥

इस प्रकार यह ईर्यासमिति नामके मूलगुणका प्रायश्चित्त है ।

यदि कोई मुनि लोगोंमें जाकर भाषा समितिमें दोष लगाते हुए वचन कहें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है । यदि कोई मुनि सम्यग्दृष्टि श्रावकके दोष प्रकाशित करें तो उसका प्रायश्चित्त चार उपवास है। यदि कोई मुनि जल, अग्नि, बुहारी, चक्की, उखली और पानी आदि छः कर्मोंके करनेका वचन कहे तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है । यदि कोई मुनि शृंगारादिकके गीत स्वयं गावे या किसीसे गवावे तो उसका प्रायश्चित्त चार उपवास है । सो ही लिखा है—

भासंताण पउज्जो वेज्जो वोल्लइ पुवत्थिणं दोस ।
काउस्सग्गो अट्ठम अविरदया सुभबोधं हि ॥
छक्कम देश करणे उपवासे अट्ठमं तु गिदिदिंचा । वण अवराह गाणं गदि दालणं होई ॥

इस प्रकार भाषासमिति नामके मूलगुणका प्रायश्चित्त बतलाया ।

यदि कोई मुनि बिना जाने कन्द मूलादिक साधारण प्रत्येक सचित्त, अचित्त वनस्पति एक बार भक्षण करें अर्थात् कन्दमूल अचित्त भी भक्षण करे तथा अन्य वनस्पति सचित्त भक्षण करे तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है । यदि बिना जाने अनेक बार कन्दादिक वनस्पतियोंका भक्षण करे तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है । यदि कोई मुनि रोगके वशीभूत होकर कन्दादिक वनस्पतियोंका भक्षण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कल्याणक है । यदि कोई मुनि अपने सुखके लिये एकबार कंदादिकका भक्षण करें तो उसका प्रायश्चित्त

पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि अपने सुखके लिये अनेक बार कंदादिकका भक्षण करें तो उनकी दीक्षा भंग हो जाती है। सो ही लिखा है--

अण्णाणि ण वाहि दप्पे भक्खण कंदादि एग वहुवारं।
काउस्सग्गुववासो खमणाणय गच्छमूलगुणमूलं॥

यदि मुनिराजके आहार ले लेनेपर बाता कह कहे कि भोजनमें जंतु था उसको दूर कर हमने आपको आहार दिया है नहीं तो अंतराय पड़ जाता, इस प्रकार सुन लेनेपर उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास है। यदि आहार लेते समय थालीके बाहर (गीली हड्डी आदि भारी) अन्तराय दिखाई पड़े तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणपूर्वक तीन उपवास है। यदि भोजनमें हो (गीली हड्डी, चमड़ा आदि भारी) अन्तराय आ जाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक चार उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है—

वट्टंतराय जादे सुदं हि तु तं स होइ खमणं खु। स भुंजमाण दिट्ठे छट्ठट्ठमुट्ठपडिकमणं॥

यदि कोई मुनि तीन, चार घड़ी दिन चढ़नेसे पहले अथवा गोसर्जन समयमें एकबार आहार करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि कोई मुनि तीन, चार घड़ी दिन चढ़नेसे पहले अथवा गोसर्जन समयमें अनेक बार भोजन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि रोगके वशीभूत होकर एकबार अपने हाथसे अन्न बनाकर भोजन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। इसी प्रकार यदि कोई मुनि किसी रोगके वश होकर कई बार अपने हाथसे भोजन बनाकर आहार करें तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। यदि निरोग अवस्थामें कोई मुनि एकबार अपने हाथसे बनाकर भोजन करें तो उसका प्रायश्चित्त पंच-कल्याणक है। यदि निरोग अवस्थामें कोई मुनि अनेक बार अपने हाथसे बनाकर आहार करें तो उनका महाव्रत भंग हो जाता है। सो ही लिखा है—

आधा कम्मेणादो गलाण णीरोगए वहुवारे। उववास छट्ठ मासे मूलं पय होइ मलहरणं॥

इस प्रकार एषणा समितिका प्रायश्चित्त बतलाया।

यदि कोई मुनि दिनमें काठ, पत्थर आदि पदार्थोंको हटावे वा दूसरी जगह रक्खे तो उसका प्रायश्चित्त

एक कायोत्सर्ग है यदि कोई मुनि रातमें किसी काठ, पत्थरको उठावे वा हिलावे वा दूसरी जगह रक्खे अथवा रातमें इधर-उधर फिरे तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। सो ही लिखा है--

उट्ठादि वियडि दालण ठाणादो वा खिवेज अणट्ठ।
काउस्सग्गं पक्खइ असंखविषपं उववासो॥

यह आदाननिक्षेपण समितिका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि हरित काय पृथ्वीपर रात्रिमें एक बार मलमूत्र निक्षेपण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि वे बार-बार निक्षेपण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। सो ही लिखा है--

हरिभूहे चेज उवरिं उच्चारादि करेदि एदेहिं। दो वे काउस्सग्गुववासो जाण बहुवारं॥

इस प्रकार यह प्रतिष्ठापन समितिका प्रायश्चित्त बतलाया।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां हैं। यदि कोई मुनि अप्रमत्त होकर स्पर्शन इन्द्रियका विषय पोषण करे उसको वशमें न रक्खे तो एक कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त है। रसना इन्द्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त दो कायोत्सर्ग है और इसी प्रकार घ्राण इन्द्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त तीन कायोत्सर्ग। चक्षु इन्द्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त चार कायोत्सर्ग और कर्ण इन्द्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त पांच कायोत्सर्ग है। यदि कोई मुनि प्रमादी होकर इन इन्द्रियोंको वशमें न रक्खे तो उनका प्रायश्चित्त इस प्रकार है—प्रमत्त होकर स्पर्शन इन्द्रियोंको वशमें न रक्खे तो एक उपवास, रसना इन्द्रियको वशमें न रक्खे तो दो उपवास, घ्राण इंद्रियको वशमें न रक्खे तो तीन उपवास, चक्षु इंद्रियको वशमें न रक्खे तो चार उपवास और श्रोत्र इंद्रियको वशमें न रक्खे तो पांच उपवास प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है--

फरस रस घाण चक्खु सोददि चोर पमत्त इदरस्स।
काउसग्गुववासो एगुत्तर वड्ढिया कमसो॥

इस प्रकार यह पंचेन्द्रिय निरोधका प्रायश्चित्त बतलाया।

यदि कोई मुनि वंदना आदि छहों आवश्यकोंके करनेमें तीनों कालोंके नियमोंको भूल जाय अथवा

समयका अतिक्रम हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास है। यदि कोई मुनि तीन पक्ष तक प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित्त दो उपवास है। यदि कोई मुनि चातुर्मासिक प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित्त आठ उपवास है। यदि कोई मुनि वार्षिक प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित्त चौबीस उपवास है। सो ही लिखा है—

वंदणग्गह णियम विरहि उपवासो होइकाल छिण्णेवा।
तह सज्झाव चउक्के काउसग्गो अवलाए॥
ते हि अधिकं तु पक्खे चउमासे य जाण वासो य। सोवट्ठावण छेदो.....॥

यह षट् आवश्यकोंका प्रायश्चित्त बतलाया।

यदि कोई रोगी मुनि चार महीनेसे ऊपर केशलोंच करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई रोगी मुनि एकवर्षसे ऊपर केशलोंच करें तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। यदि कोई रोगी मुनि पांच वर्षके ऊपर केशलोंच करे तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई नीरोग मुनि चार महीने बाद वा एकवर्ष बाद वा पांच वर्ष बाद केशलोंच करे तो उसका प्रायश्चित्त निरन्तर पंचकल्याणक प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है—

चउम सिय वरसिय जुगं तरे चेव मदि चोर। उपवास छट्ठ मासिय गिलाण इदरे च णर वादं॥

यह केशलोंच मूलगुणका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि किसीके उपसर्गसे वस्त्र ओढ़ लें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि व्याधिके वश होकर वस्त्र ओढ़ लें तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। यदि कोई मुनि अपने दर्पसे अहङ्कारवश होकर वस्त्र ओढ़ लें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। इनके सिवाय अन्य किसी कारणसे वस्त्र ओढ़ लें तो महाव्रत भंग होता है। सो ही लिखा है—

उवसग्गवाहिकरणे दप्पेण चेलभंग करणे हि।
उपवास छट्ठ मासिय कमेण मूलं च होइ सयं॥

इस प्रकार वस्त्र त्याग मूलगुणका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि एक बार स्नान करे तो उसका प्रायश्चित्त एक पंचकल्याणक है। यदि एकबार दन्त-धावन (दतौन) करें तो उसका भी प्रायश्चित्त एक कल्याणक है। यदि एकबार कोमल शय्यापर शयन करें तो उसका प्रायश्चित्त भी एक कल्याणक है। यदि इनको बार-बार करें तो प्रत्येकका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि प्रमादसे एकबार बैठकर भोजन करें, खड़े होकर भोजन न करें तो उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि कोई मुनि प्रमादसे दिनमें दो बार आहार करें तो भी उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि अहङ्कारके वश होकर एक बार बैठकर भोजन करें अथवा दिनमें दो बार भोजन करें तो उसका प्रायश्चित्त दीक्षा छेद है। यदि कोई मुनि बार-बार बैठकर आहार लें अथवा बार-बार दिनमें दो बार आहार लें तो उसका प्रायश्चित्त फिरसे दीक्षा देना है अर्थात् उसके मूलगुणका नाश हो जाता है। सो ही लिखा है—

अदन्त अण्हाणस्स भंगे गिहत्ते सिज्जासु एइए सुत्तो। ऐगेवारे पणागं बहुवारे पंचकल्लाणं॥

अच्छिय अणेय भुत्ते पमाद दप्पे हि एग बहुवारे।
पणागं मासिय छेदो मूलं च कमेण जाणादि॥

यदि कोई मुनि पाँच समिति, पाँचों इन्द्रियोंको निरोध, भू-शयन, केशलोंच और अदन्तधावन इन तेरह मूलगुणोंमें एकबार संक्लेश परिणाम करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि कोई मुनि इन तेरह मूलगुणोंमें बार-बार संक्लेश परिणाम करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि बाकी-के पन्द्रह मूलगुणोंमें अर्थात् पाँच महाव्रत, छः आवश्यक, खड़े होकर आहार लेना, नग्न रहना, स्नान करना इन पन्द्रह मूलगुणोंमें एकबार संक्लेश करे तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि इन पन्द्रह मूलगुणोंमें बार-बार संक्लेश करे तो उनका महाव्रत भंग हो जाता है। सो ही लिखा है—

समिदिंदिय खिदिसयणे लोचं दन्तधवण संकिलेसेण।
काउस्सग्गुववासो बहुवारे मूलभिदाराणं॥

इस प्रकार मुनिराजके अट्ठाईस मूलगुण हैं उनके प्रमाद-अप्रमादसे होनेवाले दोषोंका ऊपर लिखे अनुसार प्रायश्चित्त समझना चाहिये।

इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुणोंका प्रायश्चित्त समाप्त हुआ।

यदि कोई मुनि मर्यादापूर्वक स्थिर[1] योग धारण करे तो जितने कालकी मर्यादा थी उसके बीचमें ही किसी कारणसे योग समाप्त करना पड़े तो जितना काल शेष रहा है उतने ही उपवास करना उसका प्रायश्चित्त है।

एक महीनेके तीन भाग करना चाहिये। ऐसा करनेसे दश-दश दिनका एक-एक भाग होता है। यदि कोई मुनि महीनेके पहले भागमें प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित्त एक पंचकल्याणक है। यदि दूसरे भागमें प्रतिक्रमण न करे तो जितने दिन प्रतिक्रमण न किया हो उतने दिन उपवास करना चाहिये। यदि तीसरे भागमें प्रतिक्रमण न किया जाय तो एक लघु कल्याणक करना चाहिये। सो ही लिखा है—

थिर जोगाणं भंगे वाही पडिकारकं च जावंतं। जइ दिवसा तइ खमणं इणगं हि रायण्णं॥
स पडिकमणं मासिय तब्बुववासा तहेव लहुमांस।
पढमे पक्खे वदिये पच्छिम पक्खेय जोगहिदे॥

इस प्रकार ये उत्तर गुणोंके प्रायश्चित्त हैं।

यदि किसी मुनिने किसी अप्रासुक भूमिमें एकबार योग धारण किया हो तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास है। यदि किसी अप्रासुक भूमिमें अनेक बार योग धारण किया हो तो उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि कोई मुनि किसी योगकी भूमिको मनोहर देख कर उससे मोह वा प्रेम करे तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि किसी योगकी मनोहर भूमिको देखकर उस पर अहंकार करे तो फिर उसका व्रत भंग हो जाता है। सो ही लिखा है—

अप्पासुगेहसत्तो एय वहुवेर मोहहंकारे। उववासा पणयमासिय सोट्ठाणं हणइ मूलगुणं॥

जो मुनि गांव, नगर, घर, वसतिका आदिके बनवानेमें दोषोंको न जानता हुआ उनके बनवानेका उपदेश करता है उसका प्रायश्चित्त एक कल्याणक है। यदि उनके बनवानेके दोषोंको जानता हुआ उनके आरंभका उपदेश देता है उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि वह गर्व वा अहंकारमें चूर होकर उनके बनवानेका उपदेश दे तो उसका व्रत भंग हो जाता है।

१. वृक्षमूल और अतोरण ये योग स्थिर योग हैं आतापन, स्थिर और चल दोनों प्रकार है। अभ्रावकाश स्थाने मौन और वीरासन ये चल योग हैं। अथवा सभी योग स्थिर हो सकते हैं।

जो मुनि पूजाके आरंभसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको नहीं जानता है वह यदि एक बार गृहस्थोंको पूजा करनेका उपदेश दे तो उसके आरंभके अनुसार आलोचना अथवा कायोत्सर्ग को आदि लेकर उपवास पर्यंत प्रायश्चित्त है। यदि वे मुनि बार-बार उपदेश दें तो उसका प्रायश्चित्त कल्याणक है।

जो मुनि पूजाके आरंभके दोषोंको जानते हैं वे यदि एकबार पूजाके आरंभका उपदेश दें तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण सहित कल्याणक है। यदि वे बार-बार उपदेश दें तो उनका प्रायश्चित्त मासिक पंच कल्याणक है। तथा जिस पूजाके उपदेश देनेसे छह कायिक जीवोंका वध होता हो तो उसका प्रायश्चित्त छेदोपस्थापना वा पुनर्दीक्षा है।

यदि कोई सल्लेखना करनेवाला साधु क्षुधा तृषासे पीड़ित होकर लोगोंके न देखते हुये भोजन कर ले अथवा सल्लेखना न करनेवाला साधु अनेक उपवासोंके कारण भूख प्याससे पीड़ित होकर लोगोंके न देखते हुए भोजन कर ले तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण सहित उपवास है। यदि ऊपर लिखे दोनों प्रकारके मुनि किसी रोगी मुनिके देखते हुये भोजन कर लें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है।

यदि कोई मुनि सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हुये लोगोंके साथ अथवा व्रतोंसे भ्रष्ट हुए लोगोंके साथ विहार करें उनकी संगति करें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि वे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधुओंमें अवर्णवाद लगावें, उनकी निंदा करें, झूठे दोष लगावें तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग सहित उपवास करना है।

यदि कोई मुनि सिद्धांतके अर्थको जानते हुये भी उपदेश न दें, सिद्धांतको विनय करके ही अलग हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त आलोचना पूर्वक कायोत्सर्ग है। यदि वे सिद्धांतके श्रोताओंको संतोष उत्पन्न न कर क्षोभ उत्पन्न करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है।

यदि कोई मुनि विद्या, मंत्र, तंत्र, यंत्र, वैद्यादिक अष्टांग निमित्त, ज्योतिष, वशाकरण, गुटिका चूर्ण आदिका उपदेश दें तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास है।

यदि कोई अप्रमत्त मुनि (उमाद रहित) जीव जंतुओंसे रहित प्रदेशमें सांथरेको न शोधकर सो गये हों तो उसका प्रायश्चित्त कायोत्सर्ग है यदि वे मुनि उमादसे जीव जंतुओंसे रहित स्थानमें सांथरेको न शोधकर

सोये हों तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई उमाद रहित मुनि जीवजंतुओं रहित स्थानमें सांथरेको न शोधकर सो गये हों तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई उमाद सहित मुनि जीव जंतुओं सहित स्थानमें सांथरेको न शोधकर सोये हों तो उसका प्रायश्चित्त कल्याण है।

यदि किसी मुनिसे कमंडलु आदि उपकरण नष्ट हो गये हों, फूट टूट गये हों तो जितने अंगुल फूटे हों उतने उपवास करना चाहिये अथवा किसी आचार्यके मतमें जितने घनांगुल फूटा हो उतने उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है—

गामादिआरभाणं अजाणमाणो करेदि उवदेसं। जाणंतो दं मत्तं पणमासिय मूल गारविए॥
आलोयण तणुसग्गो अजाणमाणो स पूज उवदेसे।
एय वहुवार भुज्झति उवसेसो पयण पडिकमणं॥
जाणतं स बिसोही पूजा करणेहि एग वहुवारं।
पणगं मासिय बहुसो बधकरणे मूल पडिकमणं॥
इतिरिय जवकाले सभा हि भूदोवि एहि भुजप्पे।
अण्णादे उववासो मासिय पडिकमण जणणादे॥
वददंसणदो भट्टे सज्जो गिज्जो मुहादिसं अरुहादि।अवण्णेणध पावदि उपवासं पडिकमणं॥
सुत्तत्थ चोरियाए गिण्हतो विणाय पुच्छ रहिदो वा।
आलोचण तनु संगो पावहि दिहवकोरोय सुदगुरणे॥
विज्जा मंतो वेज्जं अट्ठं गणिमत्त मूलगुणं।
चूणाणि जो कुणइ सो पावइ उपवास पडिकमणं॥
सत्तारम सोहंतो पयदा पहदे सुखवण पणगंतु।
काउसग्गुववासो सुद्धा सुद्धंहि जाणावे॥

अह उवकरणे णट्ठे जावदिया अंगुलिया तावदिया ।
उववासा तावदिया वंदंति घणमंगुलं केई ॥

इस प्रकार प्रायश्चित्त चूलिका नामके ग्रन्थसे यह थोड़ीसी प्रायश्चित्तकी विधि लिखी है विशेष कथन और प्रायश्चित्त ग्रन्थोंसे समझना चाहिये । ये सब गाथाएँ प्रायश्चित्त चूलिकाकी समझना चाहिये ।

१८६-चर्चा एकसौ छयासीवीं

प्रश्न—यदि अर्जिकाके व्रताचरणमें कोई दोष लगे तो उसके प्रायश्चित्तकी विधि क्या है ?

समाधान—जो पहले मुनीश्वरोंके प्रायश्चित्तका वर्णन किया है, उसी प्रकार अर्जिकाओंका प्रायश्चित्त समझना चाहिये । उसमें विशेष केवल इतना ही है कि अर्जिकाको त्रिकाल योगका धारण तथा सूर्य प्रतिमा-योग धारण ये दो प्रकारके योग धारण नहीं करना चाहिये । बाकी सब प्रायश्चित्त मुनियोंके समान हैं । सो ही लिखा है—

सह रूमणाणं भणियं समणीणं तहय होइ मलहरणं ।
वज्जिय तियाल जोग्गं दिणपडिमं छेदमालं च ॥

१८७-चर्चा एकसौ सतासीवीं

प्रश्न—अर्जिका रजस्वला समयमें क्या करें ?

समाधान—यदि अर्जिका रजस्वला हो जाय तो उस दिनसे चौथे दिन तक अपने संघसे अलग होकर किसी एकान्त स्थानमें रहना चाहिये । उन दिनों आचाम्लव्रत (भात, माड़ खाकर) तथा निर्विड वा उप-वास धारण कर रहना चाहिये । सामायिक आदिका पाठ मुखसे उच्चारण नहीं करना चाहिये । इन सामा-यिक पाठोंका मनसे चिंतवन कर सकती है । उसे दिन-दिनमें प्रासुक जलसे अपने अंग और वस्त्र यथायोग्य रीतिसे शुद्ध कर लेना चाहिये, पाँचवें दिन प्रासुक जलसे स्नान कर तथा यथायोग्य रीतिसे वस्त्र धोकर अपने गुरुके समीप जाना चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार किसी एक वस्तुके त्याग करनेका नियम कर लेना चाहिये । सो ही लिखा है—

पुप्फं पस्सदि विर दित दिवसादि चउवट्ठ दिवसोत्ति ।
आयं विखि णिव्वेयडि खमणे वा तत्थ कायव्वा ॥
आवायसयथि मौणे ण चेव तिस्से तदा समुद्दिट्ठं ।
वदरेहणं पि पच्छा कादव्वं गुरु सविवं हि ॥

इसमें जो अर्जिकाके लिये स्नान और वस्त्र प्रक्षालन लिखा है सो ये दोनों ही क्रियाएँ गृहस्थोंके समान नहीं है किंतु अपने वा दूसरेके कमंडलुके प्रासुकजलसे यथायोग्य शरीरको धोना और रक्त मिले हुए वस्त्रको शुद्ध करना कहा है। यदि वह इतना भी न करे तो उसका निस्तराय आहार कैसे हो। तथा सामायिक आदिक छह आवश्यक कर्म किस प्रकार बन सकें। गणिनीके साथ बैठना, गणिनी वा अन्य अर्जिकाओंको स्पर्श करना, धर्मका उपदेश देना, पढ़ना, पढ़ाना, जिन दर्शन करना, आचार्यादिकके दर्शन करना और शास्त्र श्रवण करना आदि कार्य किस प्रकार बन सकें। यदि वह स्नानादिक न करे तो चार दिन तक वह जो एकान्त स्थानमें मौन धारण कर, गणिनीसे अलग, सामायिक आदिकी क्रियाओंके धारणसे रहित रहती है सो उसका वह रहना भी नहीं बन सकेगा। अर्जिकाके साक्षात् महाव्रत तो हैं नहीं, न साक्षात् अट्ठाईस मूलगुण हैं इसलिये उसको स्नानादिकका दोष नहीं लगता। इसके सिवाय एक बात यह भी है कि वह जो स्नान और वस्त्र प्रक्षालन करती है उसका वह प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होती है। अर्जिका जो वह स्नान करती है सो सुखके लिये नहीं करती। सो ही प्रायश्चित्त ग्रन्थमें लिखा है—

अज्जाक चेलधवणे उपवासो आउकाउघादेण ।
काउस्सग्गो कहिओ पास गणीरेण पात्तादी ॥

यदि आर्जिका अप्रासुक जलसे वस्त्र धोवे तो इसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि वह अपने पात्र शरीर तथा वस्त्रोंको प्रासुक जलसे धोवे तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है।

इस प्रकार वह अर्जिका यथायोग्य रीतिसे अपने शरीर वस्त्रादिकके धोनेका प्रायश्चित्त लेती है गृहस्थके समान स्नान करनेका तो उसको अधिकार ही नहीं है। क्योंकि जैनशास्त्रोंमें तीन प्रकारके स्नान लिखे हैं।

अलस्नान, व्रतस्नान और मन्त्रस्नान। इनमेंसे गृहस्थोंके लिये जलस्नान बतलाया है तथा साधुओंको व्रतस्नान और मन्त्रस्नान कहा है। सो ही लिखा है--

तिविहोवि होइ ण्हाणं तोयेण वदेण मंतसंजुत्तं। तोयेण गिहत्थाणं मंतेण वदेण साहूणं॥

इस प्रकार अजिकाकी विधि है।

१८८-चर्चा एकसौ अठासीवीं

प्रश्न—जैन मतके गृहस्थोंके सूतक पातकके विचारकी विधि क्या है?

समाधान—सूतक दो प्रकार है। जो गृहस्थके घर पुत्र-पुत्री आदिका जन्म हो तो दस दिनका सूतक है यदि मरण हो तो बारह दिनका सूतक है। जिस घरमें वा जिस क्षेत्रमें प्रसूति हो उसका सूतक एक महीनेका है। यह सूतक जिसके घर जन्म हो उसको लगता है। जो उसके गोत्र वाले हैं उनको पांच दिनका सूतक लगता है।

यदि प्रसूतिमें ही बालकका मरण हो जाय तो अथवा देशान्तरमें किसीका मरण हो जाय या किसी संग्राममें मरण हो जाय अथवा समाधिमरणसे प्राण छोड़े हों तो इन सबका सूतक एक दिनका है।

घोड़ी, गाय, भैंस, दासी आदिकी प्रसूति यदि अपने घरमें वा आँगनमें हो तो उसका सूतक एक दिनका लगता है यदि गाय, भैंस आदिकी प्रसूति घरमें न हो घरके बाहर किसी क्षेत्रमें वा बगीचेमें हो तो उसका सूतक नहीं लगता।

जिस गृहस्थके यहां पुत्रादिकका जन्म हुआ है उसको बारह दिन पीछे भगवान अरहन्तदेवका अभिषेक, जिनपूजा और पात्रदान देना चाहिये तब उसको शुद्धि होती है। अन्यथा शुद्धि नहीं होती।

यदि दासी-दास वा कन्याकी प्रसूति वा मरण अपने घर हो तो उस गृहस्थको तीन दिनका सूतक लगता है। वह प्रसूति या मरण अपने घर हुआ है इसलिये दोष लगता है।

यदि किसी गृहस्थके स्त्रियोंके गर्भका स्राव हो जाय वा पात (गर्भपात) हो जाय तो जितने महीनेका वह गर्भ हो उतने ही दिनका सूतक लगता है, इस प्रकार समुदाय रूपसे सूतकका वर्णन है उसमें भी थोड़ा-

सा विशेष यह है कि क्षत्रियोंको पांच दिनका सूतक है, ब्राह्मणोंको दस दिनका सूतक है, वैश्यको बारह दिनका सूतक है और शूद्रको पन्द्रह दिनका सूतक है। सो ही प्रायश्चित्त ग्रन्थमें लिखा है—

पण दश वारण णियमा पण्णारस होइ तहय दिवसे हि।
खत्तिय वंभा विस्सा सुद्दा हि कमेण सुद्धन्ति॥

इस अनुक्रमसे सूतक जानना चाहिये।

लौकिकमें जो सती होती है उसके बाद रहनेवाले घरके स्वामीको उसकी हत्याका पाप छः महीने तक रहता है। छः महीने बाद प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होता है। जिसके घरमें कोई सती हो गई हो उसको छः महीने पहले प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध नहीं करना चाहिये।

यदि कोई अपघात कर मर जाय तो उसके बाद रहनेवाले घरके स्वामीको यथायोग्य प्रायश्चित्त लेना चाहिये।

भैंसका दूध प्रसूतिके दिनसे पन्द्रह दिन पीछे शुद्ध होता है। गायका दूध प्रसूतिके दिनसे दस दिन बाद शुद्ध होता है। बकरीका दूध प्रसूतिके दिनसे आठ दिन बाद शुद्ध होता है इन सबका दूध ऊपर लिखे दिनोंसे पहले शुद्ध नहीं होता।

इस प्रकार गृहस्थोंको संक्षेपसे सूतकका विचार समझ लेना चाहिये। सो ही मूलाचारकी टीकामें लिखा है—

सूतकं वृद्धिहानिभ्यां दिनानि दश द्वादश। प्रसूतिकास्थानं मासैकं दिनानि पंच गोत्रिणाम्॥
प्रसूतौ च मृते बाले देशान्तरे मृते रणे। सन्यासे मरणे चैव दिनैकं सूतकं भवेत्॥ २॥
अश्वी च महिषी चेटी प्रसूता गौर्हांगणे। सूतकं दिनमेकं स्यात् गृहबाह्ये न सूतकम्॥३॥
पुत्रादिसूतके जाते गते द्वादशके दिने। जिनाभिषेकपूजाभ्यां पात्रदानेन शुद्ध्यति॥ ४॥
दासी दासस्तथा कन्या जायते मरणे यदि। त्रिरात्रिं सूतकं ज्ञेयं गृहमध्ये तु दूषणम्॥५॥
यदि गर्भ-विपत्तिः स्यात् स्रावणं चापि योषितः। यावन्मासं स्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकं॥

पंचाहान् सूतकं क्षत्रे दशाहान् ब्राह्मणे विदुः। द्वादशाहान् च वैश्ये हि शूद्रे पक्षैकसूतकं॥
सतीनां सूतकं हत्यापापं षण्मासकं भवेत्। अन्येषामपहत्यानां यथापापं प्रणाशयेत् ॥८॥
महिष्याः पक्षकं क्षीरं गोक्षीरं च दिनं दश। अष्टमे दिवसेऽजायाः क्षीरं शुद्धं न चान्यथा॥

इस प्रकार सूतकका सामान्य वर्णन समझना चाहिये।

१८६–चर्चा एकसौ नवासीवीं

प्रश्न—गोत्रीको सूतक किस प्रकार पालना चाहिये।

समाधान—यदि गोत्री चौथी पीढ़ी तकका हो तो उसको दस रात तक सूतक लगता है, पांचवीं पीढ़ी वालेको छः रातका सूतक लगता है। छठीं पीढ़ी वालेको चार दिनका सूतक लगता है चार दिन बाद वह शुद्ध है, सातवीं पीढ़ी वाला तीन दिन बाद शुद्ध होता है। आठवीं पीढ़ी वालेको एक दिन रातका सूतक है, पीछे वह शुद्ध है, नौवीं पीढ़ीवालेको दो पहरका सूतक है। तथा दशवीं पीढ़ी वालेको स्नान करने मात्रका सूतक है। इसके बाद सब शुद्ध हैं। इस प्रकार गोत्रका सूतक समझना चाहिये। सो ही मूलाचारकी टीकामें लिखा है—

चतुर्थे दशरात्रिः स्यात् षट्रात्रिः पुंसि पंचमे। षष्ठे चतुरहः शुद्धिः सप्तमे च दिनत्रयम्॥
अष्टमे पुंस्यहोरात्रिः नवमे प्रहरद्वयम्। दशमे स्नानमात्रं स्यादेतद् गोत्रस्य सूतकम्॥

इस प्रकार गोत्रीके सूतकका विचार है। दूसरी, तीसरी पीढ़ीका सूतक पहिली पीढ़ीके समान है। पीछे सूतकके दिन घटते जाते हैं। ऐसा समझ लेना चाहिये।

प्रश्न—मुनिको अपने गुरु आदिके मरनेका सूतक किस प्रकार है? तथा राजाके घर मृत्यु आदिका सूतक किस प्रकार है?

समाधान—मुनि तो एक कायोत्सर्ग कर लेनेपर एक क्षणमें ही शुद्ध हो जाते हैं। तथा राजाके पांच दिनका सूतक लगता है। सो ही प्रायश्चित्त शास्त्रमें लिखा है—

यतिः क्षणेन शुद्धः स्यात्पंचरात्रेण पार्थिवः।

१९०—चर्चा एकसौ नठवेवीं

प्रश्न—गृहस्थोंके घर स्त्रियां रजस्वला होती हैं उनके योग्य अयोग्य आचरणकी विधि किस प्रकार है ?

समाधान—इसका विधान भाषाके क्रियाकोश आदि शास्त्रोंमें लिखा है । तथापि यहांपर कुछ विस्तार और विशेषताके साथ लिखते हैं। स्त्रियां जो रजस्वला होती हैं सो प्रकृतिरूपसे तथा विकृतिरूपसे ऐसे दो प्रकारसे होती हैं । जो स्वभावसे ही प्रत्येक महीने योनिमार्गसे रुधिरका स्राव होता है वह प्रकृतिरूप होता है । जो असमयमें ही अर्थात् महीनेके भीतर ही रजःस्राव होता है उसको विकृतिरूप कहते हैं वह दूषित नहीं है उसके होनेपर केवल स्नानमात्रसे शुद्धि होती है । उसका सूतक नहीं होता । यदि पचास वर्षके बाद पचास वर्षकी अवस्थासे ऊपर रजःस्राव हो तो उसकी शुद्धि स्नान मात्र ही है । अभिप्राय यह है कि जो रजःस्राव महीनेसे पहले होता है वह विकाररूप है और रोगसे होता है । स्त्रियोंके प्रदर आदि अनेक रोग होते हैं उन्हींसे होता है । इसी प्रकार रजोधर्मका समय पचास पर्यंतक है । उससे बाद जो रजोधर्म हो तो वह रजःस्वलाके समान सदोष नहीं है उसकी शुद्धि स्नानमात्रसे ही होती है । जो बारहवर्षकी अवस्थासे लेकर पचास वर्षतक प्रतिमास रजोधर्म होता है वह काल रजोधर्म है । इसके बाद अकालरूप कहा जाता है । इस प्रकार इसके दो भेद हैं ।

आगे इसका विशेष वर्णन लिखते हैं । जिस दिन स्त्रीके रजका अवलोकन हो उस दिनसे लेकर तीन दिन तक अशौच है । यदि उस दिन आधी रात तक रजोदर्शन हो तो भी पहला ही दिन समझना चाहिये । आगे इसीका खुलासा लिखते हैं। रात्रिके तीन भाग करना चाहिये । उसमेंसे पहला और दूसरा भाग तो उसी दिनमें समझना चाहिये । और पिछिला एक भाग दूसरे दिनकी गिनतीमें लेना चाहिये । ऐसो आम्नाय है ।

यदि ऋतुकालके बाद फिर वही स्त्री अठारह दिन पहले ही रजस्वला हो जाय तो वह केवल स्नानमात्रसे ही शुद्ध हो जाती है । उसको तीन दिनका अशौच नहीं लगता है । यदि कोई स्त्री अत्यंत यौवनवती हो और वह रजःस्वला होनेके दिनसे सोलह दिन पहले ही फिर रजःस्वला हो जाय तो वह स्नान करने मात्रसे शुद्ध हो जाती है । इसका भी स्पष्ट अभिप्राय यह है कि रजस्वला होनेके बाद फिर वही स्त्री रजस्वला होनेके दिनसे यदि अठारह दिन पहले ही फिर रजस्वला हो जाय तो वह स्नान करने मात्रसे शुद्ध हो जाती है । यदि उसके अठारहवें दिन रजोधर्म हो तो उसको दो दिनका सूतक पालन करना चाहिये यदि उसके उन्नीसवें दिन

रजोधर्म हो तो उसको तीन दिन तक सूतक पालन करना चाहिये । तब वह शुद्ध होती है । यदि रजस्वला होनेके बाद चौथे दिन स्नान कर ले और फिर रजस्वला हो जाय तो फिर वह अठारह दिन तक शुद्ध नहीं होती अर्थात् उसे अठारह दिनतक सूतक पालन करना चाहिये । सो ही त्रिवर्णाचारके तेरहवें परिच्छेदमें लिखा है ।

रजः पुष्पं ऋतुश्चेति नामान्यस्यैव लोकतः । द्विविधं तत्तु नारीणां प्रकृतं विकृतं भवेत् ॥
तत्प्रकृतं यत्तु स्त्रीणां मासे मासे स्वभावतः । अकाले द्रव्यरोगायुद्रेकात्तु विकृतं मतम् ॥
अकाले चेद्यदि स्त्रीणां तद्रजो नैव दुष्यति । पंचाशद्वर्षादूर्ध्वं तु अकाल इति भाषितः ॥
रजो वा दर्शनात्स्त्रीणां अशौचं दिवसत्रयम् । कालेज चार्द्धरात्राच्चेत् पूर्वं तत्कस्यचिन्मतम् ॥
रात्रेः कुर्यान्त्रिभागं तु द्वौ भागौ पूर्ववासरे । ऋतौ सूते मृते चैव ज्ञेयोऽन्त्यः स परेहनि ॥
ऋतुकाले व्यतीते तु यदि नारी रजस्वला । तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यादष्टादशदिनात्पुरा ॥
दिनाच्चेत्षोडशादर्वाक् नारी या चातियौवना । पुनः रजस्वलापि स्याच्छुद्धिः स्नानेन केचन ॥
रजस्वलायाः पुनरेव चेद्रजः प्रागृदृश्यतेऽष्टादश वासराच्छुचिः ।
अष्टादशाहि यदि चेद् दिनद्वयादेकोनविंशे त्रिदिनात्ततः परम् ॥ ८ ॥
रजस्वला यदि स्नात्वा पुनरेव रजस्वला । अष्टादशदिनादर्वाक् शुचित्वं न निगद्यते ॥ ९ ॥

आगे रजस्वला स्त्रीके आचरण आदिके योग्य-अयोग्यको विधि लिखते हैं ।

यदि कोई स्त्री अपने समयपर रजस्वला हुई हो तो उसको तीन दिन तक ब्रह्मचर्य पूर्वक रात्रिमें किसी एकांत स्थानमें जहाँ मनुष्योंका संचार न हो ऐसी जगह डाभके आसनपर सोना चाहिये । उसको खाट, पलँग, शय्या, वस्त्र, रुईका बिछौना तथा ऊनका बिछौना आदिका स्पर्श न करना चाहिये । तीन दिन तक उसको देव धर्मकी बात भी नहीं करनी चाहिये । जिस प्रकार मालती, माधवी वा कुन्द आदिकी वेल संकुचित रूपसे रहती है उसी प्रकार संकुचित होकर प्राण धारण कर रहना चाहिये । तीन दिन तक शीलव्रत पालना चाहिये दूध, दही, घी, छाछ आदि गोरसका त्याग कर देना चाहिये । एक बार रुखा अन्न खाना चाहिये । उसको नेत्रोंमें काजल, अंजन आदि कुछ नहीं डालना चाहिये । उबटन करना, तेल लगाना, पुष्पमाल पहनना, गंध लगाना

आदि शृंगारके सब साधनोंका त्याग कर देना चाहिये। तीन दिन तक उसको अपने देव, गुरु, राजा और अपने कुलदेवताका रूप दर्पणमें भी नहीं देखना चाहिये तथा न इनसे किसी प्रकारका सम्भाषण करना चाहिये। इन स्त्रियोंको तीन दिन तक किसी वृक्षके नीचे अथवा पलँगपर नहीं सोना चाहिये तथा दिनमें भी नहीं सोना चाहिये। उसे अपने मनमें पंच णमोकार मंत्रका स्मरण करना चाहिए। उसका उच्चारण नहीं करना चाहिये। केवल मनमें चिंतवन करना चाहिये। अपने हाथमें वा पत्तलमें भोजन करना चाहिये। किसी भी धातुके बर्तन में भोजन नहीं करना चाहिये। यदि वह किसी ताँबे, पीतल आदिके पात्रमें भोजन करे तो उस पात्रको अग्नि-से शुद्ध करना चाहिये। चौथे दिन गोसर्ग कालके बाद स्नान करना चाहिये। प्रातःकालसे लेकर छः घड़ी पर्यंत गोसर्ग काल कहा जाता है। चौथे दिन स्नान करनेके बाद वह स्त्री अपने पतिके और भोजन बनानेके लिये शुद्ध समझी जाती है। देव-पूजा, गुरु-सेवा तथा होम कार्यमें वह पाँचवें दिन शुद्ध होती है। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है—

काले ऋतुमती नारी कुशासने स्वपेत्सती। एकांतस्थानके स्वस्था जनदर्शनवर्जिता ॥१०॥
मौनयुताथ वा देवधर्मवार्तावि वर्जिता। मालतीमाधवीवल्लीकुंदादिलतिकाकरा ॥११॥
रक्षेच्छीलं दिनं त्रीणि चैकभक्तं विगोरसम्। अंजनाभ्यंगस्नानगंधमंडनवर्जिता ॥ १२ ॥
देवं गुरुं नृपं स्वस्य रूपं च दर्पणेपि वा। न पश्येत्कुलदेवं च नैव भाषेत तैः समम् ॥ १३ ॥
वृक्षमूले स्वपेन्नैव खट्वाशय्यासनं तथा। मंत्रं पंचनमस्कारं जिनस्मृतिं स्मरेद् हृदि॥१४॥
अंजलावश्नीयात्पर्णपात्रे ताम्रे च पैत्तले। भुक्त्वा चेत्कांस्यजे पात्रे शुद्धयति तत्तु वह्निना॥१५
चतुर्थे दिवसे स्नायात् प्रातः गोसर्गतः परम्। पूर्वाह्णे घटिका षट्कं गोसर्ग इति भाषितः॥१६
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेह्नि भोजनं रंधनेऽपि वा। देवपूजागुरूपास्तिहोमसेवासु पंचमे ॥ १७ ॥

रजस्वला स्त्रियोंके आचरण इस प्रकार बतलाये हैं। जो स्त्रियाँ रजोधर्मके तीन दिनमें अंजन लगाती हैं, उबटन करती हैं, पुष्प-माला पहनती हैं, गंध लगाती हैं, तेल मर्दन करती हैं और ऊँचे स्वरसे बोलती हैं उनका गर्भ सदोष और विकृत रूप हो जाता है।

स्त्रियोंको ऋतुस्रावके तीन दिन तक ब्रह्मचर्यपूर्वक दाभके आसनपर सोना चाहिये, अपने पतिको भी न देखना चाहिये। हाथपर रखकर अथवा मिट्टीके सकोरामें वा पत्तोंकी पत्तलोंमें रखकर रूखा अन्न भोजन करना चाहिये। आँसू डालना, नाखून काटना, उबटन लगाना, तेल लगाना, गन्ध लगाना, आँखोंमें अंजन लगाना, पानीमें डूबकर स्नान करना, दिनमें सोना, दौड़ना, बहुत ऊँचे स्वरसे किसीको आवाज देते हुए बोलना, ऐसे ही ऊँचे शब्द सुनना, हँसना, अधिक बकबाद करना, कूटना, पीसना, अधिक बोझा उठाना, पृथ्वी खोदना, फैल फूटकर (बहुत-सी जगह घेर कर) बैठना वा सोना तथा और भी ऐसे ही ऐसे अयोग्य कार्य तीन तक नहीं करना चाहिये।

यदि कोई स्त्री अपनी अजानकारीसे वा प्रमादसे वा उसमें लोलुपताके कारण अथवा दैवयोगसे ऊपर लिखे कार्योंको करती है तो उसके अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कोई स्त्री इन ऋतुके तीन दिनोंमें रोती है तो उसके गर्भके बालकके (जो बालक आगे गर्भमें आवेगा) उसके नेत्र विकृत हो जाते हैं। अन्धा हो जाता है, धुंधला हो जाता है, आँखमें फूला हो जाता है वा काना, ऐंचा-ताना हो जाता है। अथवा वह ढेर हो जाता है। उसकी आँखोंसे पानी बहता रहता है। उसकी आँखें लाल हो जाती हैं वा बिल्लीकीसी (मांजरी) आँखें हो जाती है। इस प्रकार उस बालकके नेत्रोंमें अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कोई स्त्री तीन दिनोंमें नाखून काटती है तो उसके बालकके नाखूनोंमें विकार हो जाता है। उस बालक के नाखून फटे-टूटे सूखे, काले हरे, टेढ़े, और देखनेमें बुरे हो जाते हैं। यदि वह स्त्री इन तीन दिनोंमें उबटन करती वा तेल लगाती है उसके बालकके अठारह प्रकारके कोढ़ रोगोंमेंसे कोईसा भी कोढ़ रोग हो जाता है। यदि वह इन तीन दिनोंमें गंध लगावे वा जलमें डूबकर स्नान करे तो वह बालक दुराचारी व्यसनी होता है। यदि वह आँखोंमें अंजन लगावे तो उसके बालकके नेत्र नाद सहित हो जाते हैं। दिनमें सोनेसे वह बालक रातदिन सोनेवाला होता है। अथवा सदा ऊँघनेवाला बालक होता है। जो स्त्री इन तीन दिनोंमें दौड़ती है उसका बालक चंचल होता है, उत्पाती, उपद्रवी होता है। ऊँचे स्वरसे बोलने वा सुननेसे उसका बालक बहिरा होता है। जो स्त्री इन तीन दिनोंमें हँसती है उसके बालकके तालु, जीभ, ओठ काले पड़ जाते हैं। इन तीन दिनोंमें अधिक बोलनेसे उस स्त्रीके प्रलापी बालक होता है। जो झूठा हो, लबार हो उसको प्रलापी कहते हैं।

'प्रलापोनृतभाषणम्' झूठ बोलनेका नाम प्रलाप है। जो स्त्री रजोधर्मके समयमें परिश्रम करती है उसके उन्मत्त उन्माद रोगवाला वा बावला पुत्र होता है। जो स्त्री उन दिनों पृथ्वी खोदती है उसके दुष्ट बालक होता है। जो चौड़ेमें सोती है उसके उन्मत्त बालक होता है। इस प्रकार अयोग्यतासे अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये ये अयोग्य कार्य नहीं करने चाहिये। विवेक पूर्वक रहना चाहिये। यह कथन जैन शास्त्रोंका नहीं है किन्तु लटकन मिश्रके पुत्र भाव मिश्रके बनाये हुए भावप्रकाश नामके वैद्यक शास्त्रमें लिखा है यहाँ प्रकरण समझ कर लिख दिया है। यथा—

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लौल्याद्वा दैवतश्च वा।
साचेत्कुर्यान्निषिद्धानि गर्भे दोषास्तदाप्नुयात्॥
एतस्या रोदनाद् गर्भो भवेद्विकृतलोचनः। नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यंगतो भवेत्॥
अनुलेपात्तथा स्नानाद् दुःशीलो जलनाद्दृक्।
स्वापिशीलो दिवास्वापाच्चंचलः स्यात्प्रधावनात्॥
अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलुः जायते। तालुदंतौष्ठजिह्वासु श्यामो हसनतो भवत्॥
प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात्। खलोतिभूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात्॥

इस प्रकार अयोग्य कर्मोंके करनेके दोष बतलाये हैं सो इनका त्याग करना ही उचित है।

जो कोई अनाचारी भ्रष्ट इनका दोष नहीं मानते। कितने ही लोग स्पर्श करनेपर भी स्नान नहीं करते। कितने ही लोग दूसरे, तीसरे दिन स्नान कराकर उसके हाथके किये हुए सब तरहके भोजन खा लेते हैं। कोई-कोई लोग उन्हीं दिनोंमें कुशील सेवन भी करते हैं परन्तु ऐसे लोग महा अधर्मी, पातकी, भ्रष्ट और नीचातिनीच कहलाते हैं। ऐसे लोग स्पर्श करने योग्य भी नहीं है। इसका भी कारण यह है कि रजोधर्म-वाली स्त्रीको पहले दिन चांडाली संज्ञा है दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी संज्ञा है तीसरे दिन रजकी संज्ञा है और चौथे दिन शुद्ध होती है। यथा—

प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति॥

इसलिये स्त्री चौथे ही दिन शुद्ध होती है। जो स्त्री परपुरुषगामिनी है वह जीवनपर्यन्त अशुद्ध रहती

है। व्यभिचारिणी स्त्री स्नानादिक कर लेने पर भी शुद्ध नहीं होती। वह परपुरुषका त्याग कर देने मात्रसे ही शुद्ध हो सकती है। सो ही लिखा है—

त्रिपक्षं जायते सूता ऋतुधात्री दिनत्रयम्। परजनरता नारी यावज्जीवं न शुद्ध्यति ॥

कितने ही अधर्मी इन तीन दिनोंमें भी सामायिक प्रतिक्रमण तथा शास्त्रके स्पर्श आदि कार्योंको करते हैं ऐसे लोग उससे होनेवाले अविनय और महापापको नहीं मानते। यदि कोई इन कामोंके करनेके लिये निषेध करता है तो उत्तर देते हैं कि इस शरीरमें शुद्ध पदार्थ है ही क्या ? इसमेंसे नव द्वार सदा बहते रहते हैं यदि किसीके गाँठ वा फोड़ा हो जाता है और वह पककर फूट जाता है उसी प्रकार स्त्रियोंका यह मासिकधर्म है। इस प्रकार कहकर वे लोग मानते नहीं परन्तु ऐसे लोग आज्ञाबाह्य हैं महापातकी वा अनाचारी हैं।

रजस्वला स्त्रियोंके स्पर्श, अस्पर्शका, उसकी भूमिकी शुद्धिका तथा संभाषण आदिके दोषोंका और उनके शुद्ध करनेका वर्णन विशेषकर त्रिवर्णाचार आदि प्रायश्चित्त शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। यहाँ संक्षेपसे लिखा है।

कितने ही पापी अपनी लक्ष्मीके मदमें आकर रजस्वला स्त्रियोंको भूमिपर नहीं सोने देते किन्तु उन्हें पलंगपर ही सुलाते हैं। यदि कोई इसका निषेध करता है तो अपनी राजरीतिका अभिमान करते हुए नहीं मानते हैं किन्तु उसी तरह चलते हैं परन्तु ऐसे लोग बड़े अधर्मी और पातकी गिने जाते हैं। जो मुनि होकर घोड़ेपर चढ़े, जो स्त्री रजस्वला अवस्थामें ही पलंगपर बैठे या सोवै तथा जो गृहस्थ शास्त्रसभामें बैठकर बातें करें ऐसे पुरुषोंको देखकर ही वस्त्र सहित स्नान करना चाहिये। भावार्थ—जब ऐसे लोगोंको देखनेसे ही देखनेवालोंको वस्त्र सहित स्नान करना पड़ता है तो फिर उन लोगोंके पापकी तो बात ही क्या है अर्थात् वे बहुत भारी दोषके भागी होते हैं सो ही लिखा है—

अश्वारूढं यतिं दृष्ट्वा खट्वारूढां रजस्वलाम्। शास्त्रस्थाने गृहवक्तॄन् सचेल स्नानमाचरेत्॥

१६१—चर्चा एकसौ इक्यानवेवीं

प्रश्न—यदि रजस्वला स्त्रीके पास बालक हो तो उसके स्पर्शास्पर्शकी शुद्धि किस प्रकार है ?

समाधान—यदि कोई बालक मोहसे रजस्वला स्त्रीके पास सोवै, बैठे वा रहे तो सोलह बार स्नान

करनेसे उसकी शुद्धि होती है यदि कोई दूध पीने वाला बालक दूध पीनेके लिये उसका स्पर्श करे तो जलके छींटे देने मात्रसे ही उसको शुद्धि हो जाती है। ऐसे छोटे बालकको स्नान करनेका अधिकार नहीं है। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है—

तयासह तद्बालस्तु व्यष्ट स्नानेन शुद्धयति। तां स्पर्शन् स्तनपायी वा प्रोक्षणे नैवशुद्धयति॥

कदाचित् कोई यहाँपर छींटा देनेका सन्देह करे तो इसका उत्तर यह है कि प्रायश्चित्त शास्त्रोंमें और भी कितने ही पदार्थ बतलाये हैं जिनमें स्पर्शका दोष नहीं माना जाता। जैसे—मक्खी, हवा, गाय, सुवर्ण, अग्नि, महानदी, नाव, पाथोदक और सिंहासन अस्पर्श्य नहीं होते ऐसा विद्वानोंका कहना है—

मक्षिका मारुतो गावः स्वर्णमग्निमहानदी। नावः पाथोदकं पीठं नास्पृश्यं चोच्यते बुधैः॥

१९२–चर्चा एकसौ बानवेवीं

प्रश्न—ऊपर लिखे अनुसार गृहस्थका यथायोग्य आचरण तो मालूम हुआ परन्तु यदि रजस्वला स्त्री रोगिणी हो, अशक्त हो उसको स्नानादिक किस प्रकार कराना चाहिए।

समाधान—यदि कोई स्त्री किसी रोग वा शोकसे अशक्त हो वा बुढ़ापेसे अशक्त हो और वह रजस्वला हो जाय तो उसकी शुद्धि इस प्रकार करना चाहिये कि चौथे दिन कोई निरोग सशक्त स्त्री उसे स्पर्श करे फिर स्नान करे, फिर स्पर्श करे, फिर स्नान करे। इस प्रकार वह दस बार उसको स्पर्श करे तो वह स्त्री शुद्ध हो जाती है। अन्तमें रजस्वलाके वस्त्रोंको बदलवा कर वस्त्र वा बारह आचमन कर तथा स्नान कर लेनेसे वह नीरोग स्त्री भी शुद्ध हो जाती है रोगिणी रजस्वला स्त्रीकी शुद्धिका यह क्रम है। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है—

आतुरे तु समुत्पन्ने दशवारमनातुरा। स्नात्वा स्नात्वा स्पर्शेदेनामातुरा शुद्धिमाप्नुयात्॥
जराभिभूता या नारी रजसा चेत्परिप्लुता। कथं तस्य भवच्छौच्यं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा॥
चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पर्शेदन्या तु तां स्त्रियम्। सा च सचैव ग्राह्या यः स्पर्शेस्नात्वा पुनः पुनः॥
दश द्वादश वा कृत्वा ह्याचमनं पुनः पुनः। अन्स्ये च वाससां त्यागं स्नात्वा शुद्धा भवेत्तु सा॥

१९३–चर्चा एकसौ तिरानवेवीं

प्रश्न—सोलह स्वर्गके ऊपर नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांच पंचोत्तर विमान बतलाये हैं सो नौ

ग्रैवेयक और पाँच पंचोसरका विमानोंका नाम तथा वहाँकी आयु, काय आदिका स्वरूप तो मालूम है। परन्तु नव अनुदिशके नाम प्रगट सुननेमें नहीं आये। सो कौन-कौन हैं ?

समाधान—अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन ये चार विमान तो पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर इन चार दिशाओंमें श्रेणीबद्ध विमान हैं तथा सोम, सोमरूप, अंक, फलिक ये चार विमान आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान इन चारों विदिशाओंमें प्रकीर्णक विमान हैं और आदित्य नामका विमान सबके मध्यमें इन्द्रक विमान है। इस प्रकार नौ अनुदिशके नौ विमान हैं। सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है—

अच्चीय अच्चिमालिणि वइरे वइरोयण अणुद्दिसगा।
सोमो य सोमरूवे अंके फलिके य आइच्चे॥

इनकी आयु, काय आदिका वर्णन त्रिलोकसारमें जान लेना चाहिए।

१९४–चर्चा एकसौ चौरानवेवीं

प्रश्न—जिन देवोंकी आयु जितने सागरोंकी है उनका मानसिक आहार उतने ही हजार वर्ष बाद होता है। तथा उनका श्वासोच्छ्वास उतने ही पक्ष बाद होता है। यह कथन प्रसिद्ध है परन्तु जिन देवोंकी आयु पल्यों की है उनके आहार और श्वासोच्छ्वासका क्या नियम है।

समाधान—भवनवासियोंमें उत्कृष्ट आयु असुरकुमार देवों की है। सो उनके मानसिक आहार एक हजार वर्षसे अधिक समय बाद होता है तथा सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देवोंके सागरोपके अंशोंके हिसाबसे अलग-अलग है। और बाकीके जो नौ प्रकारके भवनवासी समस्त देवांगनाओंके मानसिक आहारका समय इसी क्रमसे समझना चाहिये। सो ही लिखा है—

असुरेतित्तिसु सासाहारा पक्खं समासहस्संतु। सुमुहुत्त दिणाणद्धं तेरस वारस दलूणद्धं॥

भावार्थ—असुरकुमारनिके एक पक्ष भये एक बार उच्छ्वास होता है, हजार वर्ष गये एक बार आहार होता है। बहुरि नागकुमार आदि सोन जातिविषैं साढ़ा बारा मुहूर्त भये उच्छ्वास हो है साढ़ा बारा दिन गये आहार हो है। बहुरि विक्कुमार आदि सोन जातिविषैं साढ़ा सात मुहूर्त भये उच्छ्वास होवै साढा सात दिन गये आहार हो है।

भवणावासादीणं गोउरयायागणच्चणादिधरा भोम्माहारुस्सासा साहिय पणदिण मुहुत्ताय ॥
—त्रिलोकसार ।

बहुरि व्यन्तरनिके आहार किछू अधिक पाँच दिन भये अर उच्छ्वास किछू अधिक पाँच मुहूर्त भये जानना ।

ज्योतिष्कोंका आहार कुछ अधिक एक हजार वर्ष पीछे होता है । कुछ अधिकका परिमाण अन्तर्मुहूर्त अधिक लेना चाहिये । जैसा कि मूलाचारमें लिखा है—

उक्कस्सेणाहारो वाससहस्साहिएण भवणाणं ।
जोदिसियाणं पुण भिण्णमुहुत्तेणेदि सेस उक्कस्सं ॥ १०५ ॥

इसी प्रकार ज्योतिषियोंका भिन्न मुहूर्त अधिक एक पक्षके पीछे उच्छ्वास होता है जैसा—

उक्कस्सेणुच्छासो पक्खेणादिएण होइ भवणाणं ।
मुहुत्तपुधत्तेण तहा जोइसिणागाण भोमाणं ॥१०६॥ मू०

१९५—चर्चा एकसौ पिचानवेवीं

प्रश्न—दंडकमें लिखा है कि तीसरे नरकसे निकल कर कोई जीव तीर्थङ्कर भी होते हैं सो यह वर्णन किस प्रकार है ?

समाधान—बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती ये जीव नरकसे निकलकर कभी नहीं होते । स्वर्गलोकसे आनेवाले जीवोंको ही यह पद प्राप्त होता है । इसका भी कारण यह है कि यह पदवी बिना संयमके प्राप्त नहीं होती तथा संयम सहित मरण करनेवाला जीव नरकमें जाता नहीं । इसलिये इन पदवियोंको पानेवाला स्वर्गसे ही आता है । सो ही मूलाचारमें लिखा है ।

णिरएहि णिग्गदाणं आणंतरभवेहि णत्थि णियमा दु ।
बलदेववासुदेवतणं च तह चक्कवट्टीणं ॥२०॥

यह नियम है कि नरक योनिसे निकल कर बलभद्र, वासुदेव और चक्रवर्तीकी पदवी प्राप्त नहीं होती ।

सो ही सिद्धांतसार दीपिकामें लिखा है—

निर्गत्य नरकाज्जीवा चक्रेशबलकेशवाः। तच्छत्रवो न जायन्ते चयन्त्यंते यतो दिवात् ॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है—

णिरयचरो णत्थि हरिबलचक्की ॥२०४॥

इस प्रकार लिखा है।

प्रश्न—यहांपर कदाचित् कोई यह पूछे कि तिरेसठ शलाका पुरुष कहां-कहांसे आकर उत्पन्न हो सकते हैं और कहां-कहांसे आकर उत्पन्न नहीं होते इसका खुलासा किस प्रकार है ?

उत्तर—मनुष्य तथा तिर्यंचगतिसे आकर तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र नहीं होते। स्वर्ग वा नरक इन दो गतियोंसे ही आकर उत्पन्न होते हैं सो ही मूलाचारमें लिखा है—

माणुस तिरियाय तहा सलाग पुरिसा ण होंति खलु णियमा।
तेंसि अण्णंतरभवे भयणिज्जं णिव्वुदीगमणं ॥

प्रश्न—जो शलाकापुरुष देवगतिसे आकर होते हैं वे किन-किन देवोंकी जातियोंसे आकर होते हैं और किन-किन निकायोंसे नहीं होते।

समाधान—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी इन तीन निकायोंके देव तो आकर शलाका पुरुष होते नहीं तथा सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पंचोत्तरके देव आकर तीर्थंकर आदि शलाका पुरुष हो सकते हैं ऐसा नियम है। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

आजोदिसित्ति देवा सलागपुरिसा ण होंति ते णियमा।
तेसिं अणंतरभावे भयणिज्जं णिब्बुदीगमणं ॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है—

णरतिरियगदीहिंतो भवणतियादो य णिग्गया जीवा। ण लहंतेते पदवि तेवट्ठिसलागपुरिसाणं ॥

स्वर्गलोकमें भी कल्पवासी तथा कल्पातीत देवोंमें भी कितने ही जीव आकर इन पदवियोंको पाते हैं

और बहुतसे जीव नहीं पाते। उनका क्रम इस प्रकार है। अनुदिश वा अनुत्तर विमानवासी कल्पातीत देव वहाँसे आकर बलभद्र, तीर्थंकर, चक्रवर्ती पद पाते हैं किंतु वहाँसे देवोंमेंसे आकर वसुदेव नहीं होते। यह नियम है।

सो ही मूलाचारमें लिखा है—

णिव्वुदिगमणे रामत्तणे य तित्थयरचक्कवट्टित्ते।
अणुदिसणुत्तरवासी तदो चुदा होंति भयणिज्जा ॥ ४० ॥

ऐसा शलाका पुरुषोंके होनेका नियम है।

१९६–चर्चा एकसौ छयानवेवीं

प्रश्न—यह मनुष्य किस-किस गतिसे आकर हो सकता है तथा किस-किस गतिसे आकर नहीं हो सकता।

समाधान—अग्निकाय और वायुकाय इन दोनोंके सूक्ष्म तथा स्थूल जीव आकर मनुष्यभव धारण नहीं करते ऐसा नियम है बाकीके समस्त गतियोंके जीव आकर मनुष्य हो सकते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है–

सव्वेपि तेउकाया सव्वे तह वाउकाइया जीवा। ण लहंति माणुसत्तं णियमादु अणंतर भवेहिं॥

बंडक भाषामें भी लिखा है—

तेजकाय अरु वायुकाय। इन विन और सबै नर थाय।

१९७–चर्चा एकसौ सतानवेवीं

प्रश्न—अन्यमतके तपसी परिव्राजक आदि तप करते हैं वे मरकर ऊपर स्वर्गमें कहाँ तक जा सकते हैं।

समाधान—असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीव अर्थात् कुभोगभूमिके मनुष्य वा तिर्यंच मरनेके बाद अपने मिथ्यात्वरूप भावोंसे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क इन तीनों ही जातिके देवोंमें उत्पन्न होते हैं। वे आगे वैमानिक देवोंमें उत्पन्न नहीं हो सकते। इसी प्रकार जो उत्कृष्ट भावोंको धारण करनेवाले हिंसापूर्वक पंचाग्नि

१. नरकसे निकलकर चक्रवर्ती, बलदेव, प्रतिवासुदेव नहीं होते ऐसा नियम है इसमें तीर्थंकरका निषेध नहीं है तथा शलाका पुरुषोंका मनुष्य तिर्यंच गतिसे आकर होनेका निषेध है। इससे सिद्ध होता है कि तीर्थंकर स्वर्ग वा नरकसे आकर हो सकते हैं।

आदि तप धारण करने वाले और कंदमूल भक्षण करनेवाले तपस्वी मरनेके बाद अपने अज्ञान तपके फलसे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवों तक सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकते हैं आगे कल्पातीत देवोंमें उत्पन्न नहीं होते सो ही मूलाचारमें लिखा है।

संखादीदाऊणं मणुयतिरिक्खाण मिच्छभावेण। उववादो जोदिसिए उक्कस्सं तावसाणं तु॥

तथा कान्दर्पी परिव्राजक लोग अपने शुभ परिणामोंसे मरकर भवनवासियोंसे लेकर बारहवें सहस्रार स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकते हैं। आगे नहीं जा सकते। सो ही लिखा है—

परिवाजगण णियमा उक्कस्सं होदि बंभलोगम्हि।
उक्कस्स सहस्सार ति होदि या आजीवगाण तहा॥

भाषामें भी लिखा है।

परिव्राजक नामा परमती। सहस्रार ऊपर नहि गती॥

१९८-चर्चा एकसौ अठानवेवीं

प्रश्न—सुना जाता है कि एकेंद्रियसे लेकर पचेंद्रिय तकके जीव सब तीनों लोकोंमें सब जगह भरे हुए हैं सो क्या यह बात ठीक है?

समाधान—यह बात ठीक नहीं है इसमें इतना विशेष है कि पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक तथा नित्यनिगोद, इतरनिगोदके समस्त एकेंद्रिय जीव ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक समस्त तीनों लोकोंमें भरे हुए हैं, तथा पंचेन्द्रिय देव, नारकी, मनुष्य, तिर्यंच आदि सैनी जीव तीनों लोकोंमें रहनेवाली त्रसनाडीमें भरे हुए हैं और बो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, असैनी पशु और मनुष्य गतिके पंचेंद्रिय जीव मध्यलोकमें ही उत्पन्न होते हैं। ये जीव दूसरी जगह उत्पन्न नहीं होते। नरक, स्वर्ग तथा सिद्धस्थानमें ये जीव उत्पन्न नहीं होते, मध्यलोकमें ही उत्पन्न होते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है— [३७५

एइंदियाय पंचेंदियाय उड्ढमह तिरयलोएसु।
सयल विगलिंदिया पुण जीवा तिरिय हि लोयं हि॥ ६०॥

स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षामें भी लिखा है—

वितिचउक्खा जीवा हवंति णियमेण कम्मभूमीसु। चरिमे दीवे अद्धे चरिमसम्मुद्दे सु सव्वेसु॥

१९९-चर्चा एकसौ निन्यानवेवीं

प्रश्न—पहले एक चर्चामें लिखा है कि देवगतिमें देवोंके केश उत्पन्न नहीं होते सो केशोंमें ऐसा क्या दोष है ?

समाधान—शरीरमें केश आदि कितने ही चिह्न ऐसे हैं जो पिताके गुणोंसे उत्पन्न होते हैं। सो ही शारीरिक शास्त्रमें लिखा है—

केशः स्मश्रु च लोमानि नखा दंताः शिरास्तथा। धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि॥

अर्थात् शिरके केश, दाढ़ी, मूंछ, रोम, नख, दांत, शिरा, चौबीस धमनी नाड़ी, नसाजाल और वीर्य सब शरीरमें पिताके वीर्यके गुणसे उत्पन्न होते हैं। बाकीके मांस, रुधिर, मज्जा, मेदा, यकृत प्लीहा, अंतड़ी, नाभि, हृदय, गुदा आदि माताके रुधिर नामके धातुसे उत्पन्न होते हैं। सो ही शारीरिक शास्त्रमें लिखा है—

मांसासृकमज्जामेदा च यकृत्प्लीहांत्रनाभयः। हृदयं च गुदा चापि भवन्त्येतानि मातृतः॥

इस प्रकार ये सब गुण माताके रुधिरसे उत्पन्न होते हैं। देवोंके शरीरमें रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि धातु-उपधातु है नहीं फिर केश कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। देवोंका शरीर वैक्रियिक है और केश आदि सब गुण औदारिकके हैं। देवोंका जन्म उपपाद जन्म है यथा—'देवनारकाणामुपपादः' देव नारकियोंका उपपाद जन्म होता है। इस सूत्रसे देवोंके उपपाद जन्म होनेके कारण माता-पिताके गुणोंका अभाव सिद्ध होता है।

देवगतिमें चतुर्णिकाय देवोंके तथा देवियोंके केश अर्थात् मस्तक, भृकुटी, नेत्र, नासिका (नाक), दाढ़ी, मूंछ आदिकके केश, लिंग, वृषण आदिके केश शरीरपर होनेवाले रोम नहीं होते। इसी प्रकार हाथ-पांवकी बीसों उंगुलियोंमें नख नहीं होते, समस्त शरीरपर विभासिनी नामका पहला चमड़ा (चमड़ेके ऊपर एक पतला-सा चमड़ा) नहीं होता। इसी प्रकार सात प्रकारके चमड़े, नख, रुधिर, हड्डी, मल, मूत्र, वीर्य, पसीना, छाया नेत्रोंकी टिमकार आदि समस्त देवोंके नियमसे नहीं होते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

केस णह मंसु लोमा चम्म वसा रुहिर मुत्ति पुरीसं वा ।
णेवट्टी णेव सिरा देवाण सरीरसंठाणे ॥ ११ ॥

प्रश्न—यदि देवोंके केश नहीं है तो उनका रूप रुंड-मुण्ड-सा मालूम पड़ता होगा ।

समाधान—समस्त देव-देवांगनाओंका शरीर तथा तीर्थङ्करादिक शलाका पुरुषोंका शरीर अत्यन्त सुन्दर होता है। जिस प्रकार सोलह वर्षका राजकुमार शोभायमान होता है उसी प्रकार सदा शोभायमान बना रहता है । जहां-जहां जैसी सुन्दरता चाहिए वहांपर वैसी ही सुन्दरता पुण्यपरमाणुरूप नाम कर्मके उदयसे बन जाती है ।

इनका विशेष वर्णन अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये ।

२००—चर्चा दोसौवीं

प्रश्न—आश्रमोंमें रहनेवाले त्यागी लोग गृहस्थोंके बालकोंको पाँचों उदम्बर फल और मद्य, मांस, मधुका त्याग करा देते हैं । परन्तु कितने ही अनाचारी किसी रोगमें वैद्योंके कहनेसे औषधिमें शहद खा लेते हैं सो क्या ठीक है ?

समाधान—त्याग करनेके बाद जो खाते हैं सो महापापी हैं । यदि केवल शहदसे ही प्राण बचते हों तो भी त्याग करने बाद नहीं खाना चाहिये । भुग्नशाल नामके भीलके समान दृढ़ रहना चाहिये । इसके सिवाय यह शहद ही मद्य और मांसके समान है । क्योंकि मद्य, मांस और शहद तीनों ही एकसे कहे गये हैं । इसलिये जैनीके कुलमें जन्म लेकर इनका ग्रहण कभी नहीं करना चाहिये । जैनशास्त्रोंमें इसके सेवन करनेका महादोष लिखा है। देखो जैसा मद्य है वैसा ही शहद है। इसके सेवन करनेवाले पुरुषको महापाप लगता है । यह पदार्थ ही अत्यन्त घृणित, अपवित्र और निन्दनीय है । इसलिए इसका त्याग करना ही उचित है इसको सेवन करना कभी उचित नहीं है ।

जिस प्रकार भोजनमें कोई मक्खी पड़ जाय तो उसको देखकर लोग कहते हैं कि इसमें मक्खी पड़ गई है अब यह कैसे खाया जा सकता है तो फिर शहद तो उन्हीं मक्षियोंके अण्डोंका निचोड़ वा अर्क है उसे लोग कैसे खा जाते हैं । वसुनन्दीश्रावकाचारमें लिखा है—

जह मज्जय तहय मधु जनयति पावं णरस्स अइबहुगं ।
असुइव्व णिंदणिज्जं वज्जेयव्वं पयत्तेण ॥८०॥

दट्ठूण असनमज्झे पडिइ जइं मत्थियंपि णिट्ठिवई ।
कह मत्थपिंडयाणं णिज्जासं णिग्घिणो पवई ॥८१॥

अन्यमती भी शहदके खानेमें महापाप बतलाते हैं । उनके यहां लिखा है—

सप्त ग्रामेषु दग्धेषु यत्पापं जायते नृणाम् । तत्पापं जायते पुंसां मधुबिंदुकभक्षणात् ॥१॥

सात गाँवोंके जलानेमें जो पाप होता है उतना पाप शहदकी बूंद खानेसे होता है । जो लोग सदा शहद खाते रहते हैं वे अवश्य नरकमें जाते हैं इसमें कोई संदेह नहीं है । सो ही वसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है—

जो अवलेहइ णिच्चं णरयं सो जाइ णत्थि संदेहो ।

इसके सिवा और भी अनेक शास्त्रोंमें शहदके सेवन करनेका निषेध लिखा है वहांसे देख लेना चाहिये । बहुत कहाँ तक कहा जाय प्राणांत होनेपर भी शहद नहीं खाना चाहिये ।

प्रश्न—रोगादिकके उपायोंमें शहदका अनुपान बहुत जगह लिखा है । इसलिये बिना शहदके बदले क्या उपाय करना चाहिये । इसके बिना तो रोगीका काम ही नहीं चल सकता ?

उत्तर—चिकित्सा शास्त्रमें लिखा है कि यदि ओषधिके अनुपानमें मधु लिखा हो और वहाँपर मधु न मिलता हो तो उसके बदले पुराना गुड़ काममें ले लेना चाहिये । पुराना गुड़ भी शहदके समान गुण करनेवाला है इसलिये गुड़से काम चला लेना चाहिये किन्तु शहद कभी नहीं खाना चाहिये । सो ही लटकन मिश्रके पुत्र भावमिश्र विरचित भावप्रकाशमें लिखा है—

मधु यत्र न लभते तत्र जीर्णो गुडो मतः ।

शार्ङ्गधर संहितामें लिखा है—

मध्वभावे गुड़ं जीर्णं ।

भाषाके वैद्यरत्नमें भी लिखा है—

शहत टौर प्राचीनगुड़ गुणकर शहत समीप ।

इसलिये धर्मात्मा जैनियोंको अपने कल्याणके लिये जैनं शास्त्रोंके अनुसार ही अपना कर्तव्य करना चाहिये ।

२०१–चर्चा दोसौ एकवीं

प्रश्न—श्रीऋषभदेव तीर्थङ्कर थे तथा भरतेश्वर चक्रवर्ती थे । यह बात तो प्रसिद्ध ही है परन्तु कोई-कोई इनको कुलकर भी कहते हैं । सो यह कथन किस प्रकार है ?

समाधान—कुलकर चौदह होते हैं परन्तु जैनशास्त्रोंमें ऋषभदेवको पन्द्रहवां कुलकर और भरत चक्रवर्तीको सोलहवां कुलकर बतलाया है इसका भी करण यह है कि ये दोनों ही तीसरे कालके अन्तमें हुए हैं । श्रीऋषभदेवने पहले चौदह कुलकरोंके समान बाल्यावस्थामें ही असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, पशु-पालन आदिकी रचना लोगोंको बतलाई थी । तथा लोगोंको बहुतसे धनका दान दिया था, प्रजाका प्राण पोषण किया था । दीक्षाके समय जिनलिंगकी रीति प्रगट की थी । तथा केवलज्ञानके समय धर्मका मार्ग दिखलाया था और स्वर्ग मोक्षका मार्ग प्रगट किया था सो ही लिखा है—

वत्ताणुट्ठाणे जणधणु दाणे पयपोसिउ तवखत्तधरू ।
तव चरणविहाणे केवलणाणे तवपरमप्पह परमपरू ॥

इसलिये श्री ऋषभदेवको पन्द्रहवां कुलकर कहते हैं ।

भरतेश्वरको सबसे पहले चक्रवर्तीकी पदवी प्राप्त हुई थी जिससे उसने छहों खंडोंको सिद्ध किया था

---

१. मक्खियां फूलोंके रसको पीती हैं पेटमें उनका कुछ देर तक पाक होता है शहद बन जानेके बाद उसे वे छत्तेमें उगलती हैं उगलती हुई चीजमें अनेक जीव उत्पन्न होनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है इसलिये उसमें सदा जीव उत्पन्न होते और मरते हैं । दूसरी बात यह है कि शहद निकालने वाले पहले मक्खियोंको उड़ा देते हैं जिससे हजारों मक्खियां घर रहित हो जाती हैं । यद्यपि उसमेंसे बड़ी-बड़ी मक्खियां उड़ जाती हैं तथापि सैकड़ों छोटी-छोटी मक्खियां और सैकड़ों अंडे उस छत्तेमें रह जाते हैं । शहद निकालने वाले मक्खियोंके उड़ जानेपर उस छत्तेको निचोड़ लेते हैं । जिससे उन अंडोंका तथा छोटी-छोटी मक्खियों-का सब खून मांसका अर्क उस शहदमें आ जाता है उसमें प्रतिसमय अनेक जीव उत्पन्न होते रहते हैं इस प्रकार शहदका स्वरूप ही महा अपवित्र, घृणित और महापापकी खानि है ।

और देशोंमें राज्यकी रीति स्थापित की थी इसलिये इसको सोलहवां कुलकर कहते हैं। सो ही आदिपुराणके ३ पर्व श्लोक २१३ में लिखा है। यथा—

वृषभस्तीर्थकृच्चैव कुलकृच्चैव संमतः। भरतश्चक्रभृच्चैव कुलभृच्चैव वर्णितः॥

प्रश्न—कुलकरोंको मनु भी कहते हैं सो कुलकर शब्दकी तथा मनु शब्दकी निरुक्ति क्या है क्योंकि निरुक्तिके बिना अर्थ स्पष्ट नहीं होता है।

उत्तर—जो कुल उत्पन्न करे पुत्र-पौत्रादिककी वंश वृद्धिको बढ़ाये उसको कुलकर कहते हैं। व्याकरणके कृदन्त प्रकरणमें लिखा है कुलं करोतीति कुलकरः। उन कुलकरोंसे ही संतान परंपरा अब तक चली आ रही है और आगामी कालमें भी बराबर चलती चलेगी।

मनु शब्द 'मनु अवबोधने' धातुसे बना है। अवबोधनका अर्थ दूसरोंको बतलाना है। जितने कुलकर हुए हैं उन सबने प्रजाके लिये यथायोग्य बातोंका ज्ञान कराया है। उन्हें अनेक बातें समझाई हैं। इसीलिये उन सबको मनु कहते हैं। श्रीऋषभदेवने तथा महाराज भरतने प्रजाके लिये अनेक बातें बतलाई हैं इसलिये ये भी मनु वा कुलकर कहलाते हैं। सिद्धांतसारदीपकमें भी नौवें अधिकारमें यही बात लिखी है।

नाभेः कुलकरस्यांतिमस्यात्रासीत्सुतः परः। ऋषभस्तीर्थकृत्पूज्यः कुलकृत् त्रिजगद्धितः॥२७
हा मा धिग्नीतिमार्गोक्तोऽस्य पुत्रो भरतोग्रजः। चक्री कुलकरो जातो वधबंधादिदण्डभृत्॥

२०२–चर्चा दोसौ दोवीं

प्रश्न—मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थानोंमें कौन-कौनसे संहनन होते हैं?

समाधान–मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत, देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन सातों गुणस्थानोंमें छहों संहननवाले जीव रहते हैं। अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांत मोह इन चारों गुणस्थानोंमें रहनेवाले तथा उपशमश्रेणी चढ़नेवाले साधुओंके पहलेके तीन संहनन होते हैं। अर्थात् पहलेके तीन संहननवाले जीव ही उपशम श्रेणी चढ़ सकते हैं इसी प्रकार आठ, नौ, दस तथा क्षीणमोह नामके बारहवें गुणस्थानमें और सयोग जिन नामके तेरहवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले साधुओंके पहला वज्रवृषभनाराचसंहनन ही होता है। सो ही सिद्धांतसार दीपकमें ग्यारहवीं संधिमें लिखा है—

मिथ्यात्वाद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु सप्तसु । प्रमत्तवन्तजीवानां सन्ति संहननानि षट् ॥
अपूर्वकरणाभिख्येऽनिवृत्तिकरणाह्वये । सूक्ष्मादिसांपरायाख्ये ह्युपशांतकषायके ॥२५॥
श्रेण्यामुपशमाख्यां तिष्ठतां योगिनां पृथक् । त्रीणि संहननानि स्युरादिमानि दृढानि च ॥
अपूर्वकरणाख्ये चानिवृत्तिकरणाभिधौ । सूक्ष्मादिसांपरायाख्य क्षीणकषायनामनि ॥ २७ ॥
सयोगे च गुणस्थाने ह्याद्यं संहननं भवेत्"·····

२०३-चर्चा दो सौ तीसरी

प्रश्न—श्री तीर्थंकर केवलीके समवसरणमें पहले दूसरे कोटके बीचमें चारों ओर अशोक वन, चम्पक वन, आम्रवन और सप्तच्छद वन बतलाये हैं जो कि बहुत भारी शोभाको धारण करते हैं। उनमेंसे एक-एक वृक्ष भगवान अरहंत देवकी प्रतिमासहित विराजमान है जिसको चैत्यवृक्ष कहते हैं। सो अशोक, चंपक और आम्रके वृक्ष तो देखे सुने जाते हैं परन्तु सप्तच्छद कौनसा वृक्ष है और वह कहां उत्पन्न होता है।

समाधान—सप्तच्छद सावइय अथवा सातवणीको कहते हैं। इसके पत्ते बड़े-बड़े होते हैं और एक पत्ता सात-सात पत्तोंके आकारका होता है। ऐसे पत्ते उस वृक्ष पर बहुतसे लगते हैं इसलिये उन वृक्षोंका नाम सप्तच्छद है। अमरकोशमें लिखा है—

सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः।

धन्वन्तरी कृत निघंटुमें भी लिखा है—

सप्तपर्णः सुपिपर्णः छत्रपर्णी सुपर्णकः। सप्तच्छदो गुच्छपुष्पस्तथा शालमलिपत्रकः।

प्रश्न—यहांपर सप्तच्छद वृक्षका नाम नहीं बतलाया है किंतु सप्त छद, सप्तपर्ण वा सप्तदल बतलाया है सो कोई और वृक्ष होगा।

उत्तर—यह कहना मिथ्या है, शास्त्रोंसे विरुद्ध है। क्योंकि छद, दल, पर्ण, सब पत्तोंके नाम हैं। लिखा भी है—'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्ण छदः पुमान्। पत्र, पलाश, छदन, दल, पर्ण और छद ये सब पत्तोंके नाम हैं। इन सबका एक ही अर्थ है। इसके सिवाय विचारनेकी बात यह है कि वृक्षोंकी शोभा सुन्दर पत्ते, सुगंधित पुष्प और फलोंसे होती है।

प्रश्न—इस वृक्षमें कौन-कौन गुण हैं ?

उत्तर—इसमें अनेक गुण हैं। निघंटुमें लिखा है—

सप्तपर्णी त्रिदोषघ्नी सुरभी दीपिनी परम् ।

अर्थात् सप्तपर्ण वृक्ष, वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंको नाश करनेवाला है। बहुत ही सुगन्धित है और दीपन, पाचन है। इसके पत्ते बहुत ही सुगन्धित हैं और सात पत्तोंके आकारके, छत्रके आकारके समान बहुत ही सुशोभित होते हैं। ऐसा स्पष्ट अर्थ है।

प्रश्न—दाड़िम, नारंगी, केला, नीबू, बिजोरे, सुपारी, नारियल आदि अत्यन्त शोभायमान वृक्ष क्यों नहीं बतलाये। सप्तच्छदका ही वन क्यों कहा ?

उत्तर—इस जम्बूद्वीपमें अनादिनिधन जम्बूवृक्षको चैत्यवृक्ष बतलाया है। तथा धातकी द्वीपमें धातकी वा आवड़ा वा धायके वृक्षको चैत्यवृक्ष बतलाया है। तथा पुष्कर द्वीपमें शाभला, शीमला अथवा शाल्मलि वृक्षको चैत्यवृक्ष कहा है। सो यहाँ भी क्या आप लोग तर्क करेंगे ? कि अच्छे वृक्ष क्यों नहीं बतलाये ? अनादि निधन रचना जैसी है वैसी ही शास्त्रोंमें कही है। उसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। जो लिखा है उसमें ही प्रमाण मानना चाहिये। यही कथन अकृत्रिम जिनमन्दिरोंकी शोभामें अशोक, आम्र, चम्पक, सप्तच्छद आदि वनोंकी शोभाका वर्णन है। यह भी विवेकी पुरुषोंको शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

२०४—चर्चा दोसौ चारवीं

प्रश्न—श्रीपंचणमोकार मंत्र द्वादशांगका मूल है, पैंतीस अक्षरमयी है, उसके जपनेसे करोड़ों जन्मोंके महापाप कट जाते हैं। अनेक प्रकारके विघ्न जाल मिट जाते हैं। संसारमें सार पदार्थ एक यही है। इस महामन्त्रके प्रसादसे अनेक जीवोंने स्वर्ग मोक्ष प्राप्त किया है इसकी महिमा अपार है। इसकी महिमा जैनशास्त्रोंमें अनेक जीवोंकी कथाओं सहित लिखी है। इसको मन्त्रराज कहते हैं। यह अपराजित मन्त्र है। समस्त पापोंको नाश करनेवाला है। समस्त मंगलोंमें प्रथम मंगलमय है। इस प्रकार अनेक महिमाओंमें सुशोभित यह पंच नमस्कार मन्त्र है। सो इसके पदोंके अक्षरोंकी रचनाका स्वरूप क्या है। इसमें कौन-कौन देव हैं यह मन्त्र किस-किस धातु-

से, किस-किस प्रत्ययसे, किस-किस संधि और विभक्तिसे बना है। इसका क्या अर्थ है तथा क्या फल है सो इन सबका स्वरूप समझना चाहिये।

समाधान—यह प्रश्न बड़े धर्मात्मा भव्यजीवोंका है। क्योंकि यह णमोकार मंत्र जीवोंको संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला है। उसका स्वरूप रुचिसे पूछना अहोभाग्य है। संसारमें वह जीव धन्य है जो मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे इस णमोकार मन्त्रका निरन्तर जाप करता है वा इसके स्वरूपका निरन्तर चिन्तवन करता है, अभ्यास करता है। वही जीव संसाररूपी वनको छेद कर मोक्ष गतिको प्राप्त होता है। इसलिए इसकी प्रतीति और श्रद्धाके लिए जो उसका स्वरूप पूछता है वह भी धन्य है।

आगे इसका थोड़ा-सा स्वरूप शास्त्रोंके अनुसार अपनी भक्तिसे लिखा जाता है। यह पंच णमोकार मन्त्र अनादिनिधन है। इसका कोई कर्ता नहीं है। यह अनादिकालसे स्वयं सिद्ध चला आ रहा है। कालाप व्याकरणका पहला सूत्र है—'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' अर्थात् वर्णोंका समुदाय सब स्वयंसिद्ध है। अकारसे लेकर ह तकके अक्षरोंको वर्ण कहते हैं—वे ये हैं। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह। ळ क्ष। ये सब अक्षर स्वाभाविक हैं इन्हीं अक्षरोंके द्वारा द्वादशांग की रचना हुई है। यह भी अनादिनिधन है और परम्परासे बराबर चली आ रही है। ओ और णमो अरहंताणं इत्यादि द्वादशांगका मूल है। सो भी अनादिनिधन है। इनका विशेष और सम्पूर्ण स्वरूप तो श्रीसर्वज्ञदेव ही जानते हैं। अथवा गणधरादिक उत्तरोत्तर ऋद्धिधारी मुनि जानते हैं। परन्तु इस समय जैनशास्त्रोंमें बारह हजार प्रमाण प्राकृत, घत्ता, छन्दमयी णमोकारकल्प नामका सिद्धांत शास्त्र है उसमें इसका स्वरूप बहुत अच्छी तरह बतलाया है। विशेष ज्ञानियोंको वहाँसे जान लेना चाहिये। यह हम अपनी छोटी-सी बुद्धिके अनुसार थोड़ा-सा लिखते हैं वह भव्य जीवोंको विचार लेना चाहिये।

मूलमन्त्र यह है।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

इसका अर्थ यह है—अरहन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो,

उपाध्यायोंको नमस्कार हो और इस लोकमें रहनेवाले समस्त साधुओंको नमस्कार हो। ऐसा मान्य अर्थ है। अथवा नमः शब्दके साथ चतुर्थी विभक्ति लगती है। इसलिए अरहन्तके लिए नमस्कार हो, सिद्धोंके लिए नमस्कार हो इस प्रकार पांचों पदोंमें जोड़ लेना चाहिये।

अब अलग-अलग पदोंका अर्थ बतलाते हैं। पहला पद 'णमो अरहंताणं' अथवा 'णमो अरिहंताणं' है। अर अथवा अरि शत्रुको कहते हैं। हंता मारनेवाले वा घात करनेवालेको कहते हैं इन दोनोंके मिलनेसे द्वितीया विभक्तिका बहुवचन अरिहंतु बनता है। णमोका अर्थ नमः है इनके मिलानेसे 'शत्रुओंको कर्मरूप वा रागद्वेष रूप शत्रुओंको नाश करनेवाले अरहन्त भगवानको नमस्कार करता हूँ' ऐसा अर्थ होता है।

प्रश्न—पहले तुमने इस मन्त्रकी बड़ी महिमा बतलाई। इसको समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला वा पापोंका नाश करनेवाला और समस्त मंगलोंमें मुख्य मंगल बतलाया है। लिखा भी है—

एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं॥

तथा "विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति" इत्यादि बहुतसी महिमा लिखी है। मंगलाचरणोंमें सबसे पहले इसका उच्चारण करते हैं सो उच्चारणमें सबसे पहले भगवानका नाम लेना चाहिये परन्तु यहाँपर सबसे पहले अरि अर्थात् शत्रु, बैरी वा रिपुका अमंगलकारी नाम लिया है। और फिर उसके बाद हंताणं शब्द कहा है। हंताणं शब्द भी हन, हिंसायां अर्थात् हिंसार्थक, हन धातुसे बना है। इस प्रकार यह दूसरा शब्द भी रक्षा-वाचक नहीं है। घात वाचक दुःखरूप है। इसलिये यह निःसंदेह शब्द नहीं है। संदेह रूप है।

समाधान—सबसे पहले अन्य मतोंके द्वारा अरिहंताणं शब्दको मांगलिक पद सिद्ध करते हैं। यहाँपर पहले पदमें जो अरहन्त पद है सो विशेषणरूप है। यथा—जो ज्ञानावरणादि कर्मरूपी अरि वा शत्रु अथवा रिपु वा द्वेषके हंता घातक है ऐसे जो सकल परमात्मा, सर्वज्ञ, वीतराग अरहन्त आदि एक हजार आठ नामोंसे कहे जाते हैं अथवा अनंत नामोंसे कहे जाते हैं ऐसे श्रीकेवलज्ञानी भट्टारक अरहंतदेवको अरहंत वा अरिहंत कहते हैं। ऐसे अरहन्तदेवको नमस्कार हो ऐसा प्रथम पदका अर्थ है सो ही लिखा है। "कर्मारातीन् हंतीति अरहन्त अथवा अरीन् हंतीति अरिहंत" इस प्रकार व्याकरणके सूत्रसे इसकी निरुक्ति है।

कदाचित् इस शब्दको दूषित कहोगे और अरि तथा घात रूप होनेसे अमंगल रूप बतलाओगे तो

इसका उत्तर यह है कि इसमें 'अरहंत' ऐसे चार अक्षर हैं। इनमें भी पहला अक्षर अ है। यह 'अ' अव रक्षणे अथवा अव रक्ष पालने इस धातुसे कृदन्तीय प्रत्यय लगकर बनता है। जिसका अर्थ रक्षा करना वा पालन करना होता है। फिर भला यह अमंगलरूप कैसे हो सकता है ?

इसके सिवाय एक बात यह है कि यह 'अ' वर्णादि है वर्णोंका प्रारम्भ इसीसे होता है इसलिये भी यह मांगलिक है। मंत्रोंमें अ को अनाहत मंत्र संज्ञा है। जो सज्जन इस मंत्रका स्थिरीभूत होकर अभ्यास करते हैं, शांत भावोंको प्राप्त करते हैं और वे इस संसार सागरसे पार हो जाते हैं। जो सज्जन मनको निश्चल कर इस 'अ' ध्यान करते हैं वे निर्मलताको प्राप्त होते हैं तथा पीछे विषयोंसे उत्पन्न हुए मनके विकारोंको नष्ट कर एक क्षणमें साक्षात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, इसके ध्यान करनेसे अणिमादिक सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। दैत्य, दानव आदि सब इसकी सेवा करते हैं। इससे आज्ञा और ईश्वरता सब सिद्ध हो जाती है। तथा अनेक क्लेशोंसे भरे हुए संसाररूपी वनसे पार हो जाते हैं और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा केवल यह पहला अक्षर 'अ' है। सो ही ज्ञानसमुद्रमें लिखा है—

विंदुहीनं कलाहीनं रेफद्वितीयवर्जितम्। अनक्षरस्वमापन्नमनुच्चार्यं विचिंतयेत् ॥१॥
चन्द्रलेखासमं सूक्ष्मं स्फुरन्तं भानुभास्करम्। अनाहिताभिधं देवं दिव्यरूपं विचिंतयेत् ॥२॥
अस्मिन् स्थिरीकृताभ्यासाः शांतिभावमुपाश्रिताः।
अनेन दिव्यपोतेन नीत्वा जन्माम्बुसागरम् ॥ ३ ॥
तदेव च पुनः सूक्ष्मक्रमात् बालाग्रसन्निभम्। ध्यायेदेकाग्रतां प्राप्य कर्तुं चेतः सुनिश्चलम् ॥
ततोपि गलिताशेषविषयकृतमानसः। अध्यक्षमीक्षते साक्षात् जगज्ज्योतिर्मयं क्षणे ॥५॥
सिद्धयति सिद्धये सर्वा अणिमाद्या न संशयम्। सेवां कुर्वन्ति दैत्याद्या आज्ञैश्वर्यं च जायते ॥
क्रमात् प्राप्याव्य लक्षेभ्यः अलक्षे निश्चलं मनः। दधतोऽस्य स्मरन्स्फुतज्योतिरस्यक्षमक्षयम् ॥
एतत्तत्त्वं शिवाख्यं वा समालंब्य मनीषिणः। उत्तीर्य जन्मकान्तारमनंतक्लेशसंकुलम् ॥८॥

इस प्रकार एक अकार अक्षरका स्वरूप ऊपर लिखे श्लोकोंसे लेना चाहिये। ऊपर इन्हीं श्लोकोंका थोड़ासा सामान्य अर्थ लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि यह अकार मांगलिक और परमेश्वरमय है।

जो भव्य जीव आनंदित और एकाग्रचित्त होकर पांचसौ बार इस केवल अकार अक्षरका जप करते हैं उनको एक उपवासका फल प्राप्त होता है तथा बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। ऐसा यह केवल एक अकार है। सो ही ज्ञानार्णवमें लिखा है—

अवर्णस्य सहस्रार्द्धं जपन्नानन्दसंभृतः। प्राप्नोत्येकोपवासस्य निर्जरां निर्जिताशयः॥

इसके सिवाय इस आकारको अन्य मतियोंके शास्त्रोंमें विष्णु संज्ञा कही है। सो ही एकाक्षरी वर्ण-मात्रा कोशमें लिखा है—

अकारो विष्णुनामा स्यात्।

विष्णुका अर्थ सर्व व्यापक है। श्रीअरहंत भगवान अपने केवलज्ञानके द्वारा तीनों लोकोंमें रहनेवाले चर, अचर समस्त पदार्थोंके त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण, पर्यायोंको एक समयमें ही जानते हैं उनके ज्ञानके बाहर कोई पदार्थ नहीं है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि सर्व व्यापक एक सर्वज्ञ देव ही हैं और कोई नहीं है।

अन्यमती लोग सर्वव्यापक विष्णुको कहते हैं परंतु विष्णु सर्वव्यापक बन नहीं सकते। इसका भी कारण यह है कि किसी एक विन अर्जुनका संदेह दूर करनेके लिये विष्णुने अपना मुख फाड़कर अपनी दाढ़में तीनों लोक दिखाये थे। जब उसको दाढ़में ही तीनों लोक आ गये तब वह व्यापक कहां रहा? परन्तु फिर भी उसको व्यापक कहते हैं सबमें व्याप्त बतलाते हैं जैसा कि विष्णुपंजरमें लिखा है—

जले विष्णुः थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके। ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वविष्णुमयं जगत्॥

मार्कंडेय पुराणमें भी लिखा है—

पृथिव्यामप्यहं पार्थ वायावग्नौ जलेप्यहम्। वनस्पतिगतस्याहं सर्वभूतगतोप्यहम्॥

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि सबमें हूँ। यह समस्त संसार विष्णुरूप है।

इस प्रकार विष्णुको सर्वव्यापक मानते हैं परन्तु जब महाकालासुरने विष्णुके पुत्र प्रद्युम्नकुमारको हर लिया था तब कृष्णको मालूम भी नहीं हुआ था। इसी प्रकार रामावतारमें जब सीताका हरण हुआ था तब रामचंद्र उसके विरहसे पर्वत, वृक्ष, पक्षी आदि सबसे सीताको पूछते थे। सीताको कौन हर ले गया सो भी उनको

खबर नहीं हुई थी। उस समय उनकी सर्वव्यापकता कहाँ चली गई थी। ऐसी-ऐसी अनेक विरुद्ध बातें हैं जिनसे विष्णुकी सर्वव्यापकता सिद्ध नहीं हो सकती। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापक एक सर्वज्ञदेव अरहंत ही हैं और कोई नहीं हैं।

कोई-कोई कहते हैं कि अरहंत नामका कोई राजा हुआ है उसका चलाया यह जैनमत है। परंतु यह कहना सब मिथ्या और वृथा है। सत्य नहीं है। भगवान सर्वज्ञ वीतरागको ही अरहंत कहते हैं। उन्होंने जो कुछ प्रतिपादन किया है वही जैनधर्म है।

इस प्रकार यह अकार परमेश्वर है। समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला और समस्त पापोंका घात करनेवाला है। महा मंगलरूप है और सज्जनोंका रक्षक है इसीलिये यह प्रथम मंगलवाचक है।

इस अकार अक्षरको अन्यमतमें श्रीकंठ, केशव, निर्वृत्ति, ईश्वर, मातृका, वात आदि कितने ही नामसे पुकारते हैं और ये सब नाम मांगलिक तथा मोक्षके वाचक हैं। सो ही मातृका निघंटुमें लिखा है—

श्रीकंठः केशवश्चापि निवृत्तिरीश्वरादिकः। अकारो मातृकाद्याश्च वात इत्यपि कीर्तितः॥

इस प्रकार अरहंतका प्रथम अक्षर अकारका स्वरूप सिद्ध किया।

अब दूसरे अक्षर 'र' का स्वरूप दिखलाते हैं। र का अर्थ राग है, बल है, रव अर्थात् शब्द है जेत्व अर्थात् जय होना है, शब्द है और गधेकी आवाज है सो ही एकाक्षरी वर्णमात्रा कोशमें लिखा है—

रागे वले रवे जेत्वे शब्दे च खरशब्दके।

यहाँ शुभ प्रसंग है। इसलिये 'र' शब्दका अर्थ बलवान, सामर्थ्यपना, शब्दपना अथवा जय वा जीत लेना चाहिये। इस प्रकार यह रकार अक्षर भी मांगलिक और अनेक गुणोंवाला सिद्ध होता है।

इसके आगे हकार है। ह का अर्थ हर्ष और हनन है। प्रकरणके वशसे यहाँ हर्ष ही लेना चाहिये। सो ही एकाक्षरी वर्णमात्रा कोशमें लिखा है। "हर्षे च हनने हः स्यात्"।

हकारके ऊपर अनुस्वार है सो इसकी अन्यमतमें परब्रह्म संज्ञा है। और परब्रह्म श्री अरहंतको कहते हैं। एकाक्षरी वर्णकोशमें लिखा है। "हं परब्रह्मसंज्ञकः" इस प्रकार यह तीसरा अक्षर 'हं' परमात्मस्वरूप और मांगलिक सिद्ध होता है। हं शब्दका अर्थ मत भी है। एकाक्षरी कोशमें लिखा है। 'हं मते'।

इस हकारको सदा शिव कल्याणरूप और मोक्ष वा मुक्तिका वाचक भी लिखा है। अथवा प्राणसंज्ञाको कहनेवाला है। इस प्रकार इसके और भी नाम हैं सो ही मातृका निघंटुमें लिखा है।

नभो वराहो नकुली हृदो वामः पदस्थितः। सदाशिवोरुणप्राणो हकारश्च दयाननः॥

इस प्रकार हकारका स्वरूप बतलाया।

उसके आगे चौथा अक्षर 'त' है। तकारका अर्थ शूरता और चोर है। सो ही एकवर्णमातृका निघंटुमें लिखा है—'शूरे चौरे च तः प्रोक्तः' सो यह मंगलाचरणमें शूरता अर्थ लेना चाहिये। शूरताका अर्थ सामर्थ्य वा बल है। सो अनंत बल भगवान अरहंतदेवमें है। इस प्रकार तकारका अर्थ बतलाया। इस अनुक्रमसे अरहंत शब्दका अर्थ बतलाया।

आगे इसकी निरुक्ति बतलाते हैं। जो नमस्कारके अर्हंति अर्थात् योग्य हों उनको अरहंत कहते हैं। अथवा जो पूजाके अर्हं अर्थात् योग्य हों उनको अरहंत कहते हैं। अथवा लोकमें भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक ऐसे चार प्रकारके देव हैं। इन चारों प्रकारके देवोंसे जो उत्तम हों उनको अरहंत कहते हैं। अथवा मोहनीय और अंतराय कर्मको अरि कहते हैं। अरि शब्दका पहला अक्षर 'अ' है। तथा ज्ञानावरण और दर्शनावरणको रज कहते हैं। रजका पहला अक्षर 'र' है इस प्रकार 'अर' शब्दका अर्थ चारों घातिया कर्म होते हैं। ये चारों घातिया कर्म इस जीवके शत्रु हैं इसलिये इन चारों घातिया कर्मोंको अरि भी कहते हैं उन चारों घातिया कर्मरूपी शत्रुओंको जो हंता अर्थात् नाश करनेवाले हों उनको अरहंत वा अरिहंत कहते हैं। इस प्रकार अरहंत शब्द की निरुक्ति होती है। सो ही मूलाचारमें संस्कृत धारामें लिखा है—

अर्हन्ति नमस्कारमर्हा पूजाया अर्हंतः। वा सुरोत्तमा लोके तथा अर्हन्तः। वा रजसः हंतारः अरेश्च हंतारश्चार्हंतस्तेन उच्यते।

यही बात गाथामें लिखी है। यथा—

अरिहंता णमोकारं अरिहा पूया सुरोत्तमा लोए। रजहंता अरिहंता अरहंता तेण उच्चंते॥

इस प्रकार अरहंत पद अथवा अरिहंत पद सिद्ध होता है।

अरिहंत शब्दमें जो पिछला हंत पद है वह हन हिंसागत्योः अर्थात् हिंसार्थक और गत्यर्थक हन धातुसे

शतृङ् प्रत्यय होकर हंतृ शब्द बनता है उसके प्रथमाका एक वचन हंता बनता है। इसका अर्थ मारनेवाला, घात करनेवाला होता है। सबका मिलकर अर्थ होता है। "ज्ञानावरणादिचतुर्घातिकर्मारातीन् हंतीति अरिहंत। अथवा कर्मारातीन् हंतीति अरहंत। अथवा अरीन् हंतीति अरिहंत। अर्थात् जो ज्ञानावरणादि चारों घातिया कर्मरूपी शत्रुओंको मारे, घात करे वह अरहंत है। अथवा कर्मरूप शत्रुओंका घात करनेवाला अरहंत है। इस प्रकार अरहंत शब्द बनता है। इसकी द्वितीयाका बहुवचन अरिहंतून् बनता है। अरिहंतृ शब्दसे द्वितीयाकी बहुवचन विभक्ति शस आती है। अकारका लोप हो जाता है। पूर्व स्वरको दीर्घ होकर सकारको नकार हो जाता है। इस प्रकार अरिहंतून् बन जाता है। इसके पहले णमो शब्द है। "णमु प्रभुत्वे शब्दे च" अर्थात् णम् धातुका अर्थ प्रभुपना और शब्द है। चकारसे भक्ति करना, नम्र होना भी है। उससे नमः बनता है। अथवा नमः अव्यय है। उसका अर्थ नमस्कार करना होता है। नमःके संयोगमें चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। लिखा भी है। "नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं वषट् योगे चतुर्थी" अर्थात् नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं वषट् इनके योगसे चतुर्थी हो जाती है। इसके संयोगसे अरहंत शब्दमें चतुर्थी विभक्ति होती है। ऐसा करनेसे 'नमोर्हते' अथवा 'नमो अरिहते' वा 'नमो अरहते' बनता है। नमः अर्हते यहाँपर व्याकरणके नियमानुसार संधि होनेपर (विसर्गको उ और अ उ मिलकर ओ हो जानेपर) नमो बन जाता है और नमोर्हते सिद्ध हो जाता है प्राकृत भाषामें नकार होता नहीं है। इसलिये 'णमो' ही रहता है। तथा प्राकृत भाषामें चतुर्थी विभक्तिमें अरहंताणं ही बनता है यह प्राकृत भाषाका ही रूप है। इस प्रकार 'णमो अरिहंताणं' अथवा 'णमो अरहंताणं' बनता है।

अरिहंत अथवा अरहंत पदमें चार अक्षर हैं इन चारों अक्षरोंका माहात्म्य शास्त्रोंमें बहुत कुछ वर्णन किया है। ज्ञानार्णवमें लिखा है—

चतुर्वर्णमयं मंत्रं चतुर्वर्गफलप्रदम्। चतुःशतं जपन् योगी चतुर्थस्य फलं लभेत्॥

अर्थात्—यह "अरहंत" मंत्र चार अक्षरोंका है। सो यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। जो योगी इसको चारसौ बार जप लेता है वह एक उपवासके फलको प्राप्त होता है। इस प्रकार इसका अचिंत्य माहात्म्य है और अचिंत्य फल है।

इसी अरहंत शब्दको 'अर्हं' इन दो अक्षरोंसे भी कहते हैं। इसको अन्य मतमें परमतत्त्व कहते हैं। जो इसको जानता है वही तत्त्वोंका जानकार समझा जाता है। इस 'अर्हं' पदमें पहला अक्षर अकार है, अन्तमें हकार है। हकारके ऊपर रेफ व रकार है जो अकार हकारके मध्यमें है। तथा अंतमें बिंदु वा अनुस्वार है। सो ही लिखा है—

अकारादिहकारान्तं रेफमध्यं सबिंदुकम्। तदेव परमं तत्त्वं यो जानाति स तत्त्ववित्॥

इस प्रकार यह दो अक्षरोंका अर्हं मंत्र है। यह मंत्र अरहंतमय है। ज्ञानका बीज है, समस्त संसारके द्वारा वंदनीय है और जन्म, जरा, मरणको दूर करनेवाला है। यह 'अर्हं' मंत्र अकार हकार रेफ बिंदु और कला-से बनकर "अर्हं" ऐसा बना है। यह भुक्ति-मुक्तिका देनेवाला अमृतमयी किरणोंको बरसानेवाला है और सब मंत्रोंका राजा है। जो बुद्धिमान् अपनी नासिकाके अग्रभागमें, भ्रूलताओंके मध्यमें अथवा महान् उज्ज्वल तालु छिद्रके द्वारा अथवा निर्मल मुखरूपी कमलसे एकबार भी समस्त सुख देनेवाले इस मंत्रका उच्चारण करते हैं अथवा इस मंत्रको अपने हृदयमें स्थिरतापूर्वक धारण करते हैं वे मोक्ष जानेके लिये मानों अपने साथ पाथेय ले जाते हैं। मार्गमें खानेके लिये जो सामान साथ लिया जाता है उसको पाथेय कहते हैं। जो पुरुष इस महामंत्र-राज अर्हंका ध्यान करता है वह अपने समस्त कर्म नष्ट कर मोक्ष सुखको प्राप्त होता है। इस दो अक्षर वाले अर्हं मंत्रकी ऐसी ही अपार महिमा है। सो ही ज्ञानार्णवमें लिखा है—

ज्ञानबीजं जगद्वन्द्यं जन्ममृत्युजरापहम्। अकारादि हकारान्तं रेफबिन्दुकलान्वितम्॥
भुक्तिमुक्तस्यादिदातारं स्रवन्तममृतांशुभिः। मंत्रराजमिमं ध्यायेद्धीमान् विश्वसुखावहम्॥
नासाग्रे निश्चलं वा भ्रूलतांतरे महोज्वलम्। तालुरन्ध्रेण वा मातं विशन्तं वा मुखाम्बुजे॥
सकृदुच्चारितो येन मन्त्रोयं वा स्थिरीकृतम्। हृदि तेनापवर्गाय पाथेयं स्वीकृतं परम्॥

इमं महामन्त्रराजं यः ध्यायति स कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षसुखं प्राप्नोति।

इस प्रकार अर्हं मन्त्रका स्वरूप है। इसकी निरुक्ति आदि सब पहले लिख चुके हैं। तथा अर्हं पदकी निरुक्ति फिर भी लिखते हैं जो मोहरूपी शत्रुको अथवा क्षुधा, तृषा आदि समस्त दोषरूपी शत्रुओंको घात करने-के अर्हं अर्थात् योग्य हो उसको अर्हं कहते हैं अथवा सदाकाल कर्मरूपी रजको घात करनेके अर्हं अर्थात् योग्य

हो उसको अर्हं कहते हैं। अथवा विशेषकर रहः अर्थात् अन्तराय कर्मके घात करनेके योग्य हो उसको अर्हं कहते हैं अथवा जो पूजाके अर्हं अर्थात् योग्य हो उसको अर्हं कहते हैं। सो ही सामायिक पाठमें लिखा है—

मोहारिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदा हत रहोभ्यः।
विरहितरहस्कृतिभ्यः पूजार्हद्भ्यो नमोर्हद्भ्यः॥

इसके सिवाय इस अर्हं पदको ब्रह्मवाचक अथवा परमेष्ठी वाचक बतलाया है। सो ही लिखा है—

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।

इसी मन्त्रको सिद्धचक्रका बीज बतलाया है।

यथा—'सिद्धचक्रस्य सद्बीजम्' ऐसे इस अर्हं पदको हम लोग सदा निरन्तर प्रणाम करते हैं। सो लिखा भी है—"सर्वतः प्रणमाम्यहम्।"

इस प्रकार णमोकार मन्त्रमें जो 'णमो अरहंताणं' ऐसा प्रथम पद है उसका स्वरूप बतलाया।

अब आगे णमो सिद्धाणं पदको सिद्ध करते हैं इसका पहला अक्षर सि है। उसका अर्थ सिद्ध है। सो ही एकाक्षरी वर्ण मात्रा कोशमें लिखा है 'सि सिद्धौ च' सिद्ध परमात्माके ही समस्त कार्य सिद्ध हो गये हैं कोई कार्य बाकी नहीं रहा है इसलिए सिद्ध भगवानको ही सिद्ध कहते हैं। सिद्ध भगवान निष्ठितार्थ हैं अर्थात् उनके समस्त अर्थ सिद्ध हो गये हैं तथा वरिष्ठ हैं, सर्वोत्तम हैं इसलिए उनको सिद्ध कहते हैं। सामायिक पाठमें लिखा भी है—

सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो वरिष्ठेभ्यो कृतान्तरः।

भगवान सिद्ध परमेष्ठीके तप, संयम, चारित्र, दर्शन, ज्ञान आदि सब ही सिद्धियाँ, ऋद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं इसलिये ही उनको सिद्ध कहते हैं। सामायिक पाठमें लिखा है—

तवसिद्धे णयसिद्धे संयमसिद्धे चरितसिद्धे य। णाणमयं दंसणमयं सिद्धं सिरसा णमस्सामि॥

तथा धर्मार्थकाममोक्षाविसकलपुरुषार्थानां सिद्धिर्भवति येषां ते सिद्धाः। तथा स्वात्मोपलब्धीनां सिद्धिर्भवति येषां ते सिद्धाः अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही पुरुषार्थ जिनके सिद्ध हो गये हों उनको सिद्ध

कहते हैं। अथवा जिनको अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्ति हो गई हो उनको सिद्ध कहते हैं ऐसी सिद्ध शब्दकी निरुक्ति है।

अब आगे दूसरे प्रकारके सिद्ध शब्दकी निरुक्ति बतलाते हैं। यह जीव ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके द्वारा अनादिकालसे दुःखी हो रहा है। वह जीव जब कर्मरूप प्रकृतियोंके संक्रमण, उदय, उदीर्णा, उत्कर्षण आदि से रहित हुए सित अर्थात् कर्मबंधको ध्वस्त अर्थात् नाश कर देता है और सम्यग्ज्ञानमय शुद्ध आत्मभावको निधत्त अर्थात् प्राप्त होता है तब उसको सिद्ध कहते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है--

दीर्घकालमयं जन्तुरुषितश्चाष्टकर्मसु। सिते ध्वस्ते निधत्ते च सिद्धत्वमुपगच्छति॥

गाथामें भी लिखा है—

दीहकालमयं जन्तु उसिदो अट्ठकम्महि। सिदे धत्ते निधत्ते य सिद्धत्तमुवगच्छइ॥

अब आगे—यह जीव सिद्धत्व पदको किस प्रकार प्राप्त होता है सो ही उदाहरण देकर बतलाते हैं—

आवेशनी अर्थात् चूल्हा वा भट्टी तो यह शरीर है। इन्द्रियाँ ही ऐरण (घन जमीनमें गाड़नेका बहुत बड़ा लोहा) हतोड़ा, संडासा आदि उपकरण हैं। मन ही आकरी अर्थात् केवलज्ञानरूप जानकार उपाध्याय वा लुहार है और यह आत्मा धातु है। इस आत्मारूपी धातुको निर्मल करनेके लिये अग्निमें दहन करना चाहिये। जिस प्रकार चतुर लुहार धातुओंको अग्निमें पकाकर शुद्ध कर लेता है उसी प्रकार शरीररूपी भट्टी वा चूल्हेमें बाईस परीषहरूपी अग्निके द्वारा इन्द्रियरूपी हथोड़े, संडासी आदि उपकरणोंके कर्म रूपी मैलका नाश कर तथा शरीर और इन्द्रियरूपी भट्टी वा औजारोंको छोड़कर यह आत्मरूप सुवर्ण धातु अपने आप शुद्ध हो जाता है तथा केवलज्ञानरूप सिद्धत्वपदको प्राप्त हो जाता है। उसीको सिद्ध कहते हैं। इस उदाहरणके समान उपाय करनेसे यह आत्मा सिद्ध हो जाता है। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

आवेशनी शरीरं इन्द्रियाभांडानि मन वा आकरी ध्यातव्यं जीवलोहं द्वाविंशतिपरीषहाग्निभिः।

गाथामें भी लिखा है—

आवेसणी सरीरेंदियभंडो मणो व आगरियो। धमिदव्व जीवलोहे वावीसपरीसहग्गीहिं॥

इस प्रकार सिद्धपदकी निरुक्ति है।

यहाँपर भी विभक्ति आदि सब पहलेके समान समझ लेना चाहिये । व्याकरणके अनुसार नमः सिद्धेभ्यः । अथवा नमो सिद्धान् सिद्ध होता है । 'प्राकृतमें णमो सिद्धाणं' ऐसा सिद्ध होता है ।

जो भव्यजीव प्रकारांतरसे इस सिद्धपदका जप करते हैं वे समस्त सिद्धियोंको प्राप्त होते हैं । लिखा भी है—

वर्णद्वयं श्रुतस्कंधे सारभूतं शिवप्रदम् । ध्यायेज्जन्मोद्भवाशेषक्लेशविध्वंसनक्षमम् ॥

अर्थात्—सिद्ध यह दो अक्षरका मन्त्र है । समस्त द्वादशांगका सार है । शिव अर्थात् कल्याण वा मोक्ष देनेवाला है । ऐसे सिद्धपदको वा अर्हं शब्दको जो ध्यान करते हैं वे लोग बहुत शीघ्र अपने जन्म-जन्मान्तरके पापोंको नष्ट कर देते हैं ।

अर्हं शब्द पहले अरहन्त शब्दमें भी कह आये हैं और अब फिर कहा है । इसका अभिप्राय यह है कि अर्हं यह बीजाक्षर अरहन्तका भी वाचक है और सिद्धका भी वाचक है । लिखा भी है—

सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ।

इस प्रकार यह सिद्धपद सिद्ध होता है ।

इस संसारमें बहुतसे अन्यमतवाले इस सिद्ध शब्दका अर्थ नवनाथ वा चौरासी सिद्ध कहते हैं तथा वे रात-दिन निरन्तर इस मध्यलोकके आकाशमें परिभ्रमण करते रहते हैं । जो लोग परस्पर शुभ वा अशुभ बात कहते हैं उनके लिये 'तथास्तु' ऐसा हो हो, इस प्रकार कहते चले आ रहे हैं ऐसे चौरासी सिद्ध बतलाते हैं सो सब मिथ्या हैं क्योंकि सिद्ध होनेपर भी जिसको इतना करना बाकी रहा वह सिद्ध नहीं हो सकता । सिद्ध तो वे ही हैं जिनका स्वरूप ऊपर लिखा है । बाकी सब मिथ्या हैं ।

'णमो सिद्धाणं' के बाद 'णमो आइरिआणं' पद है । यह प्राकृत भाषाका है इसका संस्कृतमें आचार्य बनता है । इसका पहला अक्षर 'आ' है इसका अर्थ सूर्य और मर्यादा है । सो यहांपर मर्यादा अर्थ लेना चाहिये और मर्यादाका अर्थ प्रमाण होता है । उसके 'चार्य' है जो चर धातुसे बना है । चर धातुका अर्थ रक्षण और गति है अथवा चर धातुका अर्थ गति और भक्षण है । सो प्रकरणवश यहाँ चर धातुका अर्थ गति लेना चाहिये । आ पूर्वक चर धातुसे आचार्य शब्द बना है । जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच

प्रकारके आचारोंको स्वीकार करें अथवा इन पाँचों प्रकारके आचारोंमें जो गमन करें उनको आचार्य कहते हैं। लिखा भी है "दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यान् आचारन्ति इति आचार्याः।"

अथवा 'आ' का अर्थ आमंत्रण भी है। आमंत्रणका अर्थ सामने करना है। अथवा सामने होना है। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य इन पाँचों आचारोंको अपने सामने करें अथवा जो स्वयं इन पाँचों आचारोंके सामने हों उनको आचार्य कहते हैं।

आगे इसकी निरुक्ति कुछ और विशेषताके साथ लिखते हैं।

जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य इन पाँचों आचारोंके स्वरूपको रातदिन यथार्थरूपसे जाने, परमार्थसे जाने उनको 'सदाचार' कहते हैं सत् शब्दका अर्थ अच्छा भला सुशोभित है। चित् शब्दका अर्थ सम्यग्ज्ञान है जिसके सुशोभित होनेवाले पाँचों आचारोंका सम्यग्ज्ञान हो, जो पाँचों आचारोंको परमार्थसे जाने उनको सदाचारवित् आचार्य कहते हैं। जो गणधरादिक महामुनियोंके द्वारा अंगीकार किये हुये, धारण किये हुए आचरणोंको स्वयं सदाकाल आचरण करें उनको सदाचरितंचर आचार्य कहते हैं। अथवा सदा आचरण करने योग्य अर्थात् मुनिपदके योग्य दीक्षाकाल, शिक्षाकाल आदि सबका अच्छी तरह आचरण कर जो कृतकृत्य हो चुके हैं उनको सदाचारितंचर आचार्य कहते हैं। अथवा जो अन्य मुनियोंसे पाँचों आचारोंका आचरण करावें उनको आचार्य कहते हैं। इस प्रकार आचार्यपदकी निरुक्ति है। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

सदाचारवित् सदाचरितंचरः आचारं यत्नाच्चर्यते तेनोच्यते आचार्यः।

प्राकृत भाषामें भी लिखा है—

सदा आयारविदण्हू सदा आइरियं चरे आयारं आयारवंतो आइरिय उच्चते॥

इस प्रकार यह आचार्य पद सिद्ध होता है सो इसको विभक्ति आदि पहले कहे हुए अरहन्त वा सिद्धके समान समझ लेना चाहिये। शस् विभक्ति लाकर द्वितीयाका बहुवचन आचार्यान् सिद्ध कर लेना चाहिये। अथवा नमः शब्दके योगमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर 'नमः आचार्येभ्यः' बना लेना चाहिये। इन दोनोंका प्राकृतभाषामें 'णमो आइरिआणं' बन जाता है।

लोकमें ब्राह्मणोंमें भी कितने ही आचार्य होते हैं किन्हींका गोत्र आचार्य है, कोई रसोई आदि बनाने-

से आचार्य कहलाते हैं सो सब मिथ्या है। वे नामके आचार्य हैं, यथार्थ आचार्य नहीं हैं। पांच प्रकारके आचारोंको पाले बिना आचार्य कहना सर्व मिथ्या है। भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपस्य कीटवत्।

अर्थात् "यदि गुण न हो तो केवल नाममात्रसे ही वह पदार्थ पुकारा जाता है। जैसे बरसातमें लाल-कीड़ेको इन्द्रकी गाय कहते हैं।

इसके आगे 'णमो उवज्झायाणं' ऐसा पद है। इसका संस्कृतमें 'नमः उपाध्यायेभ्यः' बनता है। यह उपाध्याय शब्द उप उपसर्ग पूर्वक इङ् अध्ययने धातुसे बनता है। जो अध्यापयति अर्थात् अध्ययन करावें उनको अध्यापक वा अध्याय कहते हैं। जो द्वादशांग श्रुतज्ञानको स्वयं अध्ययन करें वा दूसरोंको अध्ययन करावें उनको अध्याय वा अध्यापक कहते हैं उसका अर्थ समीप है। जो द्वादशांगको समीप कर उध्ययन करावें उनको उपाध्याय कहते हैं। इन्हीं उपाध्यायको पाठक कहते हैं। यह पाठक शब्द पठ् धातुसे बनता है। जिसका अर्थ पठनपाठन है। जो द्वादशांगको स्वयं पढ़ें वा औरोंको पढ़ावें उनको पाठक कहते हैं। इस प्रकार उपाध्याय वा पाठक शब्द सिद्ध होता है।

आगे प्रकारान्तरसे इसको निरुक्ति लिखते हैं—

भगवान अरहन्तदेवने जो ग्यारह अंग, चौदह पूर्वरूप द्वादशांगका निरूपण किया है उसको जो अध्ययन करें, करावें उनको उपाध्याय कहते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

द्वादशांगं जिनाख्यानं स्वाध्यायः कथितो बुधैः। उपदिशति स्वाध्यायं तेनोपाध्याय उच्यते॥

प्राकृतमें भी लिखा है—

वारं संगं जिणक्खादं सज्झायं कथिदं बुधै। उवदेसइ सज्झाया तणोवज्झाय उच्चदि॥

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। जो अपनेमें व्यापक हो उसको स्वाध्याय वा उपाध्याय कहते हैं। अधि शब्दका अर्थ व्यापक है। जो द्वादशांगमें व्यापक हो, तल्लीन वा तन्मय हो, तद्रूप हो उसको स्वाध्याय कहते हैं। जो द्वादशांग श्रुतज्ञानमें स्वयं लीन हो तथा औरोंको भी लीन करावे, स्वयं पठन-पाठन करे वा औरोंको पठन-पाठन करावे उसको उपाध्याय वा पाठक कहते हैं।

इसका द्वितीयाका बहुवचन शस् विभक्ति लगाकर अरहन्त, सिद्ध वा आचार्यके समान उपाध्यायान् बनाना चाहिये। उसके पहले नमो शब्द लगाकर नमो 'उपाध्यायान्' अथवा 'नमः उपाध्यायेभ्यः' पद सिद्ध होता है। इसीको प्राकृतभाषामें 'णमो उवज्झायाणं' कहते हैं।

संसारमें ब्राह्मणोंमें भी बहुतसे उपाध्याय वा पाठक कहलाते हैं। परन्तु उनमें उपाध्यायोंके गुण नहीं हैं वे केवल नाममात्रके उपाध्याय हैं जिस प्रकार वैष्णवोंमें एक वासुदेव हुआ है उसकी कथा भागवत नामके पुराणमें लिखी है। उसी प्रकार उनको भी नाममात्रके आचार्य, उपाध्याय वा पाठक समझना चाहिये। वे सच्चे ब्राह्मण वा पाठक नहीं हैं।

जो शान्त हो, दांत वा तपश्चरणके क्लेश सहनेमें समर्थ हो, जिसके कर्ण शास्त्रकरि परिपूर्ण हो, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला हो, परिग्रहत्यागी हो और जो गृहस्थोंको तरण-तारण करनेमें समर्थ हो उसको ब्राह्मण कहते हैं। जिसने स्त्रीमात्रका त्याग कर दिया है, जो आचारवान् है, जिसने भोगोंका त्याग कर दिया है और जो जितेन्द्रिय है उसीको गुरु कहते हैं। वही समस्त प्राणियोंको अभयदान देने योग्य है। ब्राह्मण ब्रह्मचर्यसे ही कहलाता है जैसे जो शिल्पीका काम करे उसको शिलावट कहते हैं। जो ब्रह्मचर्य पालन नहीं करता वह केवल नाम मात्रका ब्राह्मण है। जैसे बरसातमें होनेवाले लालकीड़े वा वीरबहूटीको संस्कृतमें इन्द्रगोप कहते हैं। उसमें इन्द्रगोपके गुण नहीं है किन्तु नाम मात्रसे कीड़ेको ही इन्द्रगोप कहते हैं। उसी प्रकार बिना ब्रह्मचर्यके ब्राह्मण भी नाममात्रके ही समझना चाहिये। वह गुणसे ब्राह्मण नहीं है।

जिसके सत्यता हो, तप हो, इन्द्रियोंका निग्रह हो, समस्त प्राणियोंमें दया हो वही ब्राह्मण कहलाता है। जिसके सत्य नहीं है, तप नहीं है, इन्द्रियां वशमें नहीं हैं और जीवोंकी दया नहीं है वह ब्राह्मण नहीं है किंतु चांडाल है। क्योंकि ये चांडालके लक्षण हैं ब्राह्मणके नहीं हैं। ऐसा महाभारतके शांतिपर्वमें लिखा है। यथा—

ये शान्तदांता श्रुतपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः।
परिग्रहैः संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः॥
त्यक्तदाराः सदाचारा मुक्तभोगा जितेन्द्रियाः। जायन्ते गुरवो नित्यं सर्वभूताभयप्रदाः॥

ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः । अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपस्य कीटवत् ॥
सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म-ब्रह्म चेन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूतदया ब्रह्म एतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥
सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूतदया नास्ति एतच्चांडाललक्षणम् ॥

ऐसा महाभारतमें लिखा है ।

यदि कोई अपनी जातिमात्रसे ही ब्राह्मणपनेका अभिमान करता है तो वह शूद्रके समान माना जाता है । भारतमें लिखा है—जो जातिसे शूद्र है परंतु जो शीलव्रतको पालन करनेवाला है, स्त्री मात्रका त्यागी है, ब्रह्मचर्य व्रतसे परिपूर्ण है तो वह गुणवान् ब्राह्मण कहलाता है । यदि कोई जातिसे ब्राह्मण होकर भी क्रिया-हीन हो, व्यभिचारी हो, परस्त्रीलंपटी हो तो वह शूद्रके पुत्रके समान माना जाता है । सो ही भारतमें लिखा है—

शूद्रोपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् । ब्राह्मणोपि क्रियाहीनः शूद्रापत्यसमो भवेत् ॥

इससे सिद्ध होता है कि जाति पूज्य नहीं है किंतु गुणपूज्य है । लिखा भी है "गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते" अर्थात् सब जगह गुण ही पूज्य होते हैं । वृद्ध चाणिक्यमें भी लिखा है—

गुणेषु यत्नः क्रियतां साटोपैः किं प्रयोजनं । विक्रियन्ते न घंटाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥

अर्थात् बिना दूधवाली गायके गलेमें चाहे जितने घंटे बांधो तब भी वह नहीं बिकती और दूधवाली गायके गलेमें एक भी घंटा न हो तो भी वह तुरंत बिक जाती है । इसलिये गुण धारण करनेमें प्रयत्न करना चाहिये, व्यर्थके आडंबरसे कोई प्रयोजन नहीं है ।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारी जाति और कुल ही पूज्य है चाहे वह गुणवान् हो या न हो तो इसका उत्तर यह है कि कहनेसे तो कोई मानता ही नहीं है इसलिये जो महाभारतमें लिखा है वही थोड़ासा यहाँ दिखाया जाता है । देखो वाल्मीक ऋषि भीलिनीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं तथापि वे तपसे ही ब्राह्मण कहलाये हैं । वशिष्ठऋषि उर्वशी नामकी वेश्यासे उत्पन्न हुये हैं सो भी तपसे ही ब्राह्मण हुये हैं । पाराशर ऋषि चाण्डालिनीके गर्भसे जन्मे हैं तो भी वे तपसे ब्राह्मण कहलाये हैं । गार्ग्य नामके मुनि गर्दभीसे उत्पन्न हुये हैं वे भी तपश्चरणसे ही ब्राह्मण कहलाये हैं । ऋष्यशृङ्ग मुनि हिरणीसे उत्पन्न हुये हैं वे भी तपश्चरणसे ही

ब्राह्मण कहे गये हैं। भिल्लनीगर्भसे वाल्मीकि ऋषि मृगीके कुलसे उत्पन्न हुये हैं वे भी तपसे ही ब्राह्मण हुए हैं। मांडव्य ऋषि मेंढकीसे जन्मे हैं वे भी तपसे ही ब्राह्मण हुये हैं। विदुर नामके ऋषि दासीसे उत्पन्न हुये हैं तथापि वे तपसे ब्राह्मण हुये हैं। मत्स्यगंधा धीवरीसे वेदव्यासका जन्म है सो भी तपसे ही ब्राह्मण हुये हैं। इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण जातिकी ऊँचता केवल जातिसे ही नहीं होती किंतु ब्राह्मणकी पूज्यता तपसे ही होती है। सो ही महाभारतमें लिखा है—

भिल्लिगर्भसमुत्पन्नो वाल्मीकस्तु महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति न कारणम्।
उर्वशीगर्भसंभूतो वशिष्ठोपि महामुनिः। तपसा ब्रह्मणो जातः तस्माज्जाति न कारणम्॥
चाडांलीगर्भसंभूतः पाराशर महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति न कारणम्॥
गर्दभीगर्भसंभूतो गार्ग्यो नाम महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति न कारणम्॥
हरिणीगर्भसंभूतः ऋषिश्रृंगो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्मज्जाति न कारणम्॥
क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति न कारणम्॥
मंडूकीगर्भसंभूतो मांडव्योयं महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति न कारणम्॥
दासीगर्भसमुत्पन्नो विदुरो यो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति न कारणम्॥

इस प्रकार ऋषियोंकी उत्पत्ति जातिहीन है परंतु इन्होंने तपरूपी गुणसे ब्राह्मण पद प्राप्त किया है। इसलिये जातिमात्रका अहंकार करना व्यर्थ है। गुण ही पूज्य होते हैं।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे श्रीकृष्णने कहा है ब्राह्मण चाहे विद्याहीन हो या विद्या सहित हो दोनों ही मेरे शरीररूप हैं, मेरे ही शरीर हैं। गुणवान् वा निर्गुण दोनों ही मेरे देह हैं। सो ही भगवद्गीतामें लिखा है—

अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः।

इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण सब भगवानका शरीर हैं। परंतु इसका उत्तर यह है कि शरीरके दो भेद हैं एक उत्तमांग और दूसरा अधमांग। उन दोनोंमेंसे गुणवान ब्राह्मण तो भगवानके मुखभागके उत्तमांगके

अधिकारी हैं और केवल जातिमात्रका अभिमान करनेवाले निर्गुणी ब्राह्मण भगवानके शरीरके अधमभाग गुदाके भागी हैं ऐसा श्रीकृष्णने ही कहा है। यथा—

सविद्यो ब्राह्मणो ह्यास्यमविद्यो मामकी गुदा।

इस प्रकार भगवानके शरीरमें भी जुदे-जुदे भाग हैं उससे उत्पन्न हुए ब्राह्मण केवल नाममात्रसे पूज्य नहीं होते किन्तु गुणसे ही पूज्य होते हैं। इसी प्रकार पहले कहे हुए आचार्य, उपाध्याय वा पाठक ऊपर कहे हुए गुणोंसे ही पूज्य हैं। केवल नामसे पूज्य नहीं होते।

आगे पाँचवां पद 'णमो लोए सव्वसाहूणं' ऐसा प्राकृत पद है। इसको संस्कृतमें 'नमो लोके सर्वसाधून्' अथवा 'नमः लोके सर्वसाधुभ्यः' बनता है। आगे इसकी निरुक्ति लिखते हैं। 'साधुकार्याणि साधयन्तीति साधवः' जो अच्छे कार्योंको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। अथवा जो 'आत्महितानि साधयन्ति इति साधवः' जो अपने आत्माके हितको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। अथवा 'पंचमहाव्रतादि अष्टाविंशतिमूलोत्तरगुणादि साधुव्रताचरणं साधयन्ति इति साधवः' जो पंचमहाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुण वा उत्तरगुणरूपी साधुओंके व्रतोंको वा आचरणोंको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। इस प्रकार इसकी निरुक्ति है।

साधु शब्दका अर्थ शोभनीक, अच्छा, योग्य, शिरोमणि और पूज्य है। जो शुभ कार्योंको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। अथवा निर्वाणको सिद्ध करनेवाले और मोक्ष प्राप्त करनेवाले ऐसे योग ध्यान वा मूलगुणादिक तपश्चरणको जो रात-दिन समस्त समयमें अपनी आत्मामें सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। तथा जो छहों कायके समस्त प्राणियोंमें समताभाव धारण करें उनको साधु कहते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

निर्वाणसाधकान् योगान् सदा युजन्ति ते साधवः।
सर्वेषु भूतेषु समभावं प्राप्नुवन्ति ते साधवः॥

प्राकृत भाषामें भी लिखा है—

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो। समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो॥

इस प्रकार साधुपदकी निरुक्ति है।

इस मध्यलोकके ढाईद्वीपमें अर्थात् दोनों समुद्रवर्ती तथा पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँचों महा-

विदेहोंमें रहनेवाले साधुओंको लोके सर्वसाधु ऐसा कहते हैं। इसके रूप भानु शब्दके समान चलते हैं। शस् विभक्ति लगा कर लोके सर्वसाधून् ऐसा द्वितीयाका बहुवचन बनता है। इसके पहले नमो शब्द लगानेसे 'नमो लोके सर्वसाधून्' बन जाता है।

इस संसारमें संयोगी साधु, अयोगी साधु, रामवत् नीमावत्, विष्णुस्वामी, माधवाचार्य आदि कितने ही साधु कहलाते हैं तथा निर्मोही नागा, खाखी, दादुपंथी कबीर रामचरण दयालके शिष्य आदि कितने ही प्रकारके साधु कहलाते हैं। परंतु वे सब गुणोंसे साधु नहीं हैं केवल जातिमात्रसे साधु कहलाते हैं। जिस प्रकार किसीकी जाति क्षत्रिय है, किसीकी वैश्य है, किसीकी ब्राह्मण है तथा किसीकी शूद्र है। उसी प्रकार उन साधुओंकी जाति भी साधु ही है वे केवल नाम मात्रके साधु हैं। यदि उनको नाम मात्रसे साधु न माना जाय तो फिर उनमें शस्त्र धारण करना, खेती करना, विवाह करना, व्यापार करना, हिंसादिक महारम्भ करना, वस्त्राभरण धारण करना, खाद्य-अखाद्य भक्षण करना, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पाँचों पापोंमें तल्लीन रहना, मन्त्र, यंत्र, तंत्र, ज्योतिष, वैद्यक, शिल्प, गीत, नृत्य, वादित्र आदिके द्वारा जीविका करना, आकर्षण स्तम्भन मोहन, वशीकरण, मारण, उच्चाटन आदि विद्याओंके द्वारा आजीविका करना, असि-मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, पशुपालन आदिमें तल्लीन रहना और मोक्षके उपायोंसे बहुत दूर रहना आदि क्रियाएँ कैसे बन सकेंगी। जो नाम मात्रके साधु हैं वे ही इन क्रियाओंको करते हैं। उनको साधु मानना मिथ्या है। यदि भेषमात्रको ही साधु माना जाय उनमें गुण न देखा जाय तो इस संसारमें भांड़ भी भेष धारण कर लेते हैं, साधु बन जाते हैं उनको भी साधु मानना पड़ेगा। इसलिए जिनमें ऊपर लिखे गुण हों, जो मोक्षके साधक हों उनको सच्चे साधु कहते हैं अन्यथा नहीं।

कदाचित् कोई यह कहे कि इन साधुओंमें सब ही तो ऐसे नहीं होते। इनमेंसे कितने ही पंचाग्नि तप तपते हैं, कोई ऊर्ध्वबाहु (ऊपरको बाँह उठाये रखना) ऊर्ध्वपाद (ऊपरको पैर उठाये रखना) अधोशीश (नीचेकी ओर शिर लटकाये रहना) आदि तपोंके द्वारा अनेक प्रकारका कष्ट सहते हैं। कितने ही केवल दूध पीकर रहते हैं, कितने ही पत्ते, पुष्प-फल, कन्दमूल आदिका ही आहार करते हैं, अन्न नहीं खाते। कितने ही संयमी हैं। कितने ही मौनी हैं, कितने ही ध्यानी हैं, कितने ही भजनानन्दि हैं सो इन सबका निषेध क्यों

करते हो। परन्तु इसका उत्तर यह है कि वे सब प्रकारके साधु षट्कायिक जीवोंकी हिंसा पूर्वक अपने सब कार्य करते हैं, सब क्रोध, मान, माया, लोभके वशीभूत हैं और सब अज्ञान, तप करनेवाले हैं। परमार्थ स्वरूप आत्माको जाननेवाले कोई नहीं हैं। इनमेंसे कितने ही मांसभक्षक हैं, कितने ही मद्य पीते हैं, कितने ही अन्य प्रकारसे जीवोंके घातक हैं। इस प्रकार सब साधु अधोगतिके कारणोंको करनेवाले हैं। इनमेंसे कोई गिर, कोई पुरी, कोई नाथ आदि नामसे कहलाते हैं परन्तु इनमेंसे मोक्षके पात्र कोई नहीं हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणोंमें कान्यकुब्ज आदि कितने ही ब्राह्मण ऐसे हैं जो मांसभक्षक हैं, शक्तिके उपासक ब्राह्मण मद्य, मांसका भक्षण करते हैं इसलिये कहना चाहिये कि न तो ऐसे साधु ही साधु हैं और न ऐसे ब्राह्मण ही साधु हैं। इसलिये ऊपर लिखे गुणोंसे पूज्य ही साधु हैं। सम्यग्दृष्टियोंको उन्हींकी पूजा करना चाहिये।

प्रश्न—ऊपर लिखे हुए नाथ, गिर आदि साधु भी तप करते हैं महा कष्ट सहते हैं। सो इनका फल भी अच्छा ही होगा। तप और कष्ट व्यर्थ तो न जायगा ?

उत्तर—अज्ञानतपका फल भवनत्रिक आदि असुरोंमें उत्पन्न होना बतलाया है सो वहांके फल भोगकर फिर वे निगोदके पात्र होते हैं। इसलिये वे मोक्षमार्गके पात्र साधु नहीं कहे जा सकते।

प्रश्न—इस समय ऐसे अतिथि वा साधु कोई नहीं हैं जिनको माना जाय ?

उत्तर—संसारसे अतिथि वा साधुजन वे ही मानने योग्य हैं जो स्नानके त्यागी हों, भोगोपभोगोंसे रहित हों, तिलक, शृंगार, अलंकार, आभूषण आदि सबसे रहित हों, जो शहद, मांस, मद्यके त्यागी हों उन्हींको गुणवान् अतिथि कहते हैं। जो सत्यता, निष्कपटता, दया आदि गुणोंसे सुशोभित हों, जीवहिंसा आदि पापारम्भोंसे सर्वथा रहित हों, जो वेला, तेला आदि उग्र-उग्र महा तपश्चरणसे सुशोभित हों-वे ही निश्चयसे अतिथि वा साधु कहलाते हैं। तिथि पर्व वा त्योहारका नाम है। जिसने तिथि वा पर्वके दिनोंके समस्त उत्सवोंका त्याग कर दिया है सो ही अतिथि वा साधु कहलाते हैं। जो अतिथि वा त्योहारोंके उत्सवोंको मानते हैं वे कभी अतिथि वा साधु नहीं हो सकते। ऐसे लोगोंको प्राघूर्णक वा पाहुना कहते हैं। जब किसी घरमें पाहुना आता है तब उसके सामने अनेक प्रकारकी भोजनपानकी सामग्री, शय्या, आसन आदि देकर उसको प्रसन्न करते हैं परन्तु उनको साधु वा अतिथि नहीं कहते, पाहुना कहते हैं। सो ही महाभारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

स्नानोपभोगरहितः पूजालंकारवर्जितः। मधुमांसनिवृत्तश्च गुणवानतिथिर्भवेत् ॥१॥
सत्यार्जवदयायुक्तः पापारम्भविवर्जितः। उग्रोग्रतपसायुक्तः जानीयादतिथिर्ध्रुवम् ॥२॥
तिथिः पर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना। अतिथिं तं विजानीयात् शेषं प्राघूर्णकं विदुः ॥

ऐसे अतिथि वा साधु कहलाते हैं। बाकीके सब नाममात्रके साधु हैं सो सब व्यर्थ हैं।

इनके सिवाय श्वेताम्बराम्नायके चौरासी गच्छ हैं उनमेंसे भी लोंकागच्छ निकला है तथा लोंकागच्छ-मेंसे भी ढूंढिया साधु तथा भीखम साधु आदि अनेक गच्छ वा भेष निकले हैं सो वे सब साधु नाममात्रके नाम रखने योग्य साधु हैं। वे अपनी ही शास्त्रोंसे विपरीत चलते हैं इसलिये वे कभी साधु नहीं कहलाये जा सकते। इनका विस्तार पूर्वक वर्णन भद्रबाहु चरित्रमें तथा अन्य कितने ही शास्त्रोंमें किया है इनकी उत्पत्ति आदि सब लिखी है सो वहींसे जान लेना चाहिये। इनके इतिहासका, आचरणोंका दिगम्बर आम्नायके विरुद्ध चौरासी चर्चाओंका तथा और भी अनेक प्रकारके इनके शिथिलाचारका वर्णन वसुनन्दिश्रावकाचारकी वचनिकामें लिखा है वहींसे जान लेना चाहिये। तथा कुछ इनका स्वरूप आगे भी लिखेंगे। यहां विस्तार होनेके डरसे नहीं लिखा है।

इससे सिद्ध होता है कि पहले कहे हुए अट्ठाईस मूलगुणोंसे जो सुशोभित हैं और जो रत्नत्रयको धारण करते हैं वे ही सच्चे साधु हैं। अन्यथा केवल नाममात्रके धारी हैं। सो ही विष्णुपुराणमें लिखा है—

मुंडनात् श्रमणो नैव संस्काराद् ब्राह्मणो न च। मुनिर्नारण्यवासित्वाद् वल्कलाच्च न तापसः॥

इससे सिद्ध होता है कि केवल मुंडन करनेमें वनमें, रहने आदिसे साधु नहीं हो सकता। कोई-कोई कहते हैं कि जन्मसे तो शूद्र ही होता है फिर संस्कारसे ब्राह्मण होता है। जिसको द्विज कहते हैं।। यथा—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ॥

सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि केवल संस्कारमात्रसे ही ब्राह्मण नहीं हो सकता और न केवल वनमें रहनेसे मुनि हो सकता है तथा भोजपत्र, वृक्षकी छाल आदिका लंगोट लगाने वा छाल ओढ़नेसे तापसी नहीं हो सकता। यह तो केवल बाह्य भेष है परन्तु गुणोंके बिना केवल बाह्य भेष कार्यकारी नहीं है। सो ही भारतमें लिखा है—

यद्वत्काष्ठमयो हस्ती यद्वच्चर्ममयो मृगः। ब्राह्मणस्तु क्रियाहीनस्त्रयस्ते नामधारकाः॥

अर्थात् काठका बना हुआ हाथी, चमड़ेका बना हुआ हिरण और क्रियाहीन ब्राह्मण ये तीनों ही केवल नामको धारण करनेवाले हैं। काठका बना हाथी केवल नामका हाथी है, चमड़ेका बना हिरण केवल नामका हिरण है उसी प्रकार क्रियारहित ब्राह्मण अथवा केवल जातिमात्रका ब्राह्मण नाममात्रका ही ब्राह्मण समझना चाहिये। वह गुणसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार पंच णमोकार मंत्रके पाँचों पद सिद्ध हुए। सबको इकट्ठा लिखनेसे "नमः अरिहंतान्, नमः सिद्धान् नमः आचार्यान्, नमः उपाध्यायान्, नमो लोके सर्व साधून्। इस प्रकार सिद्ध होते हैं। अब इनको द्वितीयाके बहुवचन और प्राकृत भाषाके शब्दोंको मिलाकर यंत्र रचनाके द्वारा दिखलाते हैं। यदि इन्हीं शब्दों-की षष्ठीका बहुवचन बनाया जाय तो इन शब्दोंसे आम् विभक्ति लगाकर नु का आगम करते हैं न् आम् नाम् हो जाता है, नाम् परे रहते अकारको दीर्घ हो जाता है न सब क्रियाओंको कर लेने पर अरहंताणं, सिद्धानां, आचार्यानां, उपाध्यायानां, तथा भानु शब्दके समान सर्वसाधूनां सिद्ध होते हैं। नमः शब्दके लगानेसे इन सबको नमस्कार हो, ऐसा अर्थ होता है।

प्राकृत भाषाके अनुसार इन सब विभक्ति सहित शब्दोंकी यंत्र रचना इस प्रकार है।

संस्कृत द्वितीयाका बहुवचन	षष्ठीका बहुवचन	प्राकृत भाषाका पाठ
नमो अरिहंतान्	नमो अरिहंतानां	णमो अरिहंताणं
		अथवा
		णमो अरहंताणं
नमो सिद्धान्	नमो सिद्धानां	णमो सिद्धाणं
नमो आचार्यान्	नमो आचार्याणाम्	णमो आइरिआणं
नमो उपाध्यायान्	नमो उपाध्यायानाम्	णमो उवज्झायाणं
नमो लोके सर्वसाधून्	नमो लोके सर्वसाधूनाम्	णमो लोए सव्वसाहूणं

प्रश्न—इस णमोकार मंत्रमें नमः शब्द है। इसके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। सो तुमने द्वितीया और षष्ठीका रूप क्यों लिखा है। चतुर्थी विभक्तिका ही रूप लिखना चाहिये।

समाधान—चतुर्थी विभक्ति भी होती है परंतु द्वितीया, षष्ठीका निषेध नहीं है। आगे प्रश्नके अनुसार चतुर्थी विभक्तिका भी रूप दिखलाते हैं।

णमो अरहंताणं—नमोर्हद्भ्यः अरहंतोंके लिये नमस्कार हो। णमो सिद्धाणं नमः सिद्धेभ्यः सिद्धोंके लिये नमस्कार हो। णमो आइरिआणं नमः आचार्येभ्यः आचार्योंके लिये नमस्कार हो। णमो उवज्झायाणं नमः उपाध्यायेभ्यः उपाध्यायोंके लिये नमस्कार हो। णमो लोए सव्वसाहूणं नमः लोके सर्वसाधुभ्यः लोकमें समस्त साधुओंके लिये नमस्कार हो। इस प्रकार द्वितीया चतुर्थी और षष्ठी तीनोंके रूप सिद्ध होते हैं।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु इन पाँचोंको परमेष्ठी कहते हैं। पर शब्दका अर्थ उत्कृष्ट है। मा शब्दका अर्थ लक्ष्मी है। इन दोनोंके मिलानेसे परम शब्द बनता है। इसका अर्थ उत्कृष्ट लक्ष्मी होता है। इसके आगे उसकी सप्तमीका एकवचन परमे बनता है। इसके आगे षष्ठी शब्द है जो स्था धातुसे बना है। स्था धातुका अर्थ रहना वा ठहरना है। जो उत्कृष्ट लक्ष्मीमें ठहरें, निवास करें उनको परमेष्ठी कहते हैं। संसारमें सबसे उत्कृष्ट लक्ष्मी स्वात्मस्वरूप है, जो अपने शुद्ध आत्मामें ठहरे निवास करें उनको परमेष्ठी कहते हैं। अरहंतादिक पाँचों ही अपने शुद्ध आत्मामें निवास करते हैं इसलिये ये पाँचों ही परमेष्ठी कहलाते हैं। "अर्हन्तादि पंचानां परमेष्ठिनां संहारः इति पंचपरमेष्ठी" ऐसी इसकी निरुक्ति है। इस प्रकार ये पाँचों ही परमेष्ठी कहलाते हैं।

आगे इन परमेष्ठियोंके गुण बतलाते हैं।

अरहंता छीयाला सिद्धा अट्ठेव सूरि छत्तीसा। उवज्झाया पणतीसा अठवीसा होंति साहूणं॥

अरहंत भगवानके छयालीस गुण हैं उनमेंसे दस जन्मके अतिशय, दस केवलज्ञानके अतिशय और चौदह देवकृत अतिशय ऐसे चौंतीस अतिशय हैं, आठ प्रातिहार्य हैं और चार अनंतचतुष्टय हैं। इस प्रकार छयालीस गुण होते हैं। भगवान अरहंत परमेष्ठी समवसरणकी बाह्य लक्ष्मीसे सुशोभित हैं और अनन्त-चतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मीसे सुशोभित हैं दोनों प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित होनेके कारण भगवान अरहंतदेव परमेष्ठी कहलाते हैं।

कोई-कोई लोग ब्रह्माको ही परमेष्ठी कहते हैं। लिखा भी है—

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठो परमेष्ठी पितामहः।

सो ठीक नहीं है क्योंकि ब्रह्माने ध्यान करते-करते ही उर्वशीसे राग बढ़ा लिया था, पात्र, दण्ड, कमण्डलु आदि उसके सदा साथ रहनेवाले पदार्थ उसको अकृतार्थताको सिद्ध करते हैं। जिसने तपसे भ्रष्ट होकर और क्रोधित होकर इन्द्रादिक देवताओंसे युद्ध किया ऐसा रागी, द्वेषी, क्रोधी, ब्रह्मा, परमेष्ठी कैसे हो सकता है। जो क्षुधा, तृषा आदि अठारह दोषोंसे रहित हों और सर्वज्ञ हों ऐसे भगवान अरहन्तदेव ही ब्रह्मा कहे जा सकते हैं और वे ही परमेष्ठी कहलाते हैं। अकलङ्काष्टक स्तोत्रमें लिखा है—

उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेतो यदीयं पुनः।
पात्रीदंडकमंडलुप्रभृतयो यस्या कृतार्थस्थितिम्॥
आविर्भावयितुं भवन्ति स कथं ब्रह्मा भवेन्मादृशां।
क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्मा कृतार्थोस्तुनः॥

ऐसा श्रीअकलङ्कदेवकृत अकलङ्कस्तोत्रमें लिखा है। तथा इनका विशेष स्वरूप धर्मपरीक्षासे जान लेना चाहिये।

ब्रह्मा शब्दका अर्थ सबसे बड़ा है। जो सबसे बड़ा हो, सबसे प्रथम हो, पूज्य हो उसको ब्रह्मा कहते हैं ऐसे ब्रह्मा श्रीवृषभदेव ही हो सकते हैं और नहीं।

भगवान सिद्धपरमेष्ठीमें आठ गुण हैं। यथा—

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं।
अगरुलहु अव्वबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥

अर्थात् सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध ये आठ गुण सिद्धों में होते हैं। इस प्रकार जो आठ गुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा अनन्त गुणरूपी अन्तरंग लक्ष्मीसे सुशोभित हैं जो मोक्षरूप वा शुद्ध आत्मस्वरूप सर्वोत्कृष्ट स्थानमें विराजमान हैं उनको सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।

संसारमें बहुतसे लोग महादेवको ही सब देवोंका देव, सबमें बड़ा देव महादेव वा शिवरूप कहते हैं सो

ठीक नहीं है। महादेव कभी भी शिवरूप वा देवोंके देव महादेव नहीं हो सकते। यदि महादेव ईश्वर हैं तो सब देवोंने तथा ऋषियोंने उसका लिंग क्यों काट डाला। जब उसका लिंग कट रहा था तब उसकी ईश्वरता कहाँ चली गई थी। इसका विशेष वर्णन धर्मपरीक्षासे जान लेना चाहिए। बहुतसे लोग इसी महादेवको विगतभय वा भयरहित कहते हैं परन्तु यदि वह भयरहित होता तो हाथमें त्रिशूल क्यों लिए रहता क्योंकि बिना भयके कोई शस्त्र धारण नहीं कर सकता। इसलिए वह भयरहित भी नहीं है इसी प्रकार इसको सबका स्वामी वा सबका नाथ कहते हैं परन्तु यदि वह सबका स्वामी होता तो भीख क्यों माँगता? भिखारीके बिना कोई भीख नहीं माँगता। इसलिए वह सबका स्वामी भी नहीं है। इसके सिवाय महादेवको यति कहते हैं परन्तु यह भी ठीक नहीं बनता क्योंकि यदि वह यति होता तो गंगा, गौरी, भीलनी आदिसे रमण कैसे करता? तथा यदि वह यति होता तो स्वामिकार्त्तिकेय आदि उसके पुत्र कैसे होते। यति तो वही हो सकता है जो समस्त विषय-कषाय वा इन्द्रियोंको जीते। सो ये गुण उसमें हैं नहीं। इसलिए वह कभी यति नहीं हो सकता। यदि महादेव यति होता तो उसके पास लक्ष्मी क्यों नहीं दिखाई पड़ती। उसका तो स्वरूप महा दरिद्र है। उसके शरीरपर भस्म है, ओढ़ने-बिछानेको हिरणका चमड़ा है। हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी है। गलेमें मनुष्योंके मुण्डोंकी माला है, एक सर्प है, मस्तकपर जटाएँ हैं। कमरमें लँगोट है। अथवा नग्न रहता है। इस प्रकार उसका भयङ्कर रूप है, श्मशानमें वह रहता है, श्मशानमें ही सोता है, बैठता है, लेटता है तथा भूत-प्रेतोंमें रहता है वह यति किस प्रकार हो सकता है। इसी प्रकार उसको अजन्मा वा स्वयंभू कहते हैं। जो बिना जन्मके स्वयंसिद्ध हो उसको स्वयंभू कहते हैं सो वह स्वयंभू भी नहीं हो सकता। क्योंकि यदि वह स्वयंभू होता तो आर्द्रामें उत्पन्न हुआ क्यों कहलाता? लोग उसको वेत्ता भी कहते हैं परन्तु वह वेत्ता होता तो अपने विघ्नोंको तो जानता? सो वह अपने विघ्नोंको भी नहीं जानता। इसलिए वह वेत्ता नहीं है इसी प्रकार उसको पशुपति कहते हैं इसी प्रकार उसकी कितनी ही विरुद्ध चेष्टाएं या विरुद्ध नाम बतलाते हैं। उसको इस सृष्टिका हरण करनेवाला वा मारनेवाला बतलाते हैं और शिव भी कहते जाते हैं। परन्तु जो घातक है वह शिव वा कल्याणरूप कैसे हो सकता है। इनका सिद्धांत है कि ब्रह्मा सृष्टिको उत्पन्न करता है, विष्णु रक्षा करता है और शिव उसका संहार वा भक्षण करता है सो ऐसा अनर्थ करनेवाला महादेव शिवरूप वा मोक्षरूप कल्याणमय कभी नहीं हो सकता। सो ही लिखा है—

ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात् ।
नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च ॥
आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदित किं वेत्ति नात्मान्तरायं ।
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोत्र धीमानुपास्ते ॥

इससे सिद्ध होता है कि महादेव सब देवोंका देव वा शिवरूप मोक्षरूप नहीं हो सकता । जो आठों कर्मोंसे रहित हैं वे ही शिव वा सिद्ध हो सकते हैं ।

तीसरे परमेष्ठी आचार्य परमेष्ठी हैं वे आचार्य परमेष्ठी पंचाचार आदि छत्तीस गुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा रत्नत्रयरूपी अन्तरंग लक्ष्मीसे सुशोभित रहते हैं तथा अपने शुद्ध आत्मारूपी सर्वोत्कृष्ट स्थानमें लीन रहते हैं इसलिये वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं । सो ही नीतिसारमें लिखा है—

पंचाचाररतो नित्यं मूलाचारविदग्रणीः । चातुर्वर्णस्य संघस्य स आचार्य इतीष्यते ॥

चौथे पदमें उपाध्याय परमेष्ठी हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी पच्चीस गुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा रत्नत्रयरूपी अन्तरंग लक्ष्मीसे सुशोभित रहते हैं । तथा शुद्ध आत्मस्वरूप उत्कृष्ट स्थानमें सदा लीन रहते हैं । इस लिये वे उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं । सो ही नीतिसारमें लिखा है—

अनेकभयसंकीर्णशास्त्रार्थविकृतिक्षयः । पंचाचाररतोज्ञेय उपाध्यायसमाहिते ॥

पांचवें पदमें सर्व साधु परमेष्ठी हैं । वे साधु परमेष्ठी अट्ठाईस मूलगुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा रत्नत्रयरूपी अन्तरंग लक्ष्मीसे सुशोभित रहते हैं और निज शुद्धात्मरूपी परम स्थानमें विराजमान रहते हैं । इसलिये वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं । सो ही नीतिसारमें लिखा है—

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो व्याख्यानादिषु कर्मसु । विरक्तो मौनवान् ध्यानी साधुरित्यभिधीयते ॥

इस प्रकार सिद्ध होता है कि अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु ये पांचों ही परमेष्ठी हैं और इन्हींका वाचक णमोकार मंत्र है । इसलिये यह णमोकार मंत्र पंच परमेष्ठीका वाचक है ।

कदाचित् कोई यह कहे कि यहांपर "णमोअरहंताणं" पाठ सिद्ध किया है सो "नमो अरहंताणं"

ऐसा क्यों नहीं सिद्ध किया ? तो इसका उत्तर यह है कि यह प्राकृत भाषाका शब्द है। संस्कृतका नहीं है। प्राकृत भाषामें नकारको णकार हो जाता है। इसलिये णमो ही बनता है। नमो नहीं।

कदाचित् कोई यह कहे कि तब णमो संस्कृतमें ही बना लेना चाहिये। नमो अरहंतान् अथवा नमो अरहंतानां ऐसा बना लेना चाहिये वा नमोर्हद्भ्यः बना लेना चाहिये। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यह मूल-मन्त्र अनादि है। आम्नायपूर्वक ऐसा ही चला आ रहा है। इसलिये इनको इसी प्रकार "णमो अरहंताणं" इसी रूपमें पढ़ना चाहिये।

इस णमोकार मन्त्रकी महिमा अपरम्पार है। जो जीव इसका जप करते हैं वे इच्छानुसार फल पाते हैं। इस मन्त्रके प्रसादसे पहले अनेक जीव तिर चुके हैं। अब अनेक जीव तिर रहे हैं और आगे अनेक जीव तिरेंगे। इस महामन्त्रके गुणोंकी महिमा अनंत है, अपार है, योगी लोग भी इसकी महिमाका पार नहीं पा सकते फिर अन्य तुच्छ बुद्धिवाले तो इसका पार कैसे पा सकते हैं। इस महामन्त्रको जपनेवाले वा धारण करनेवाले अनेक जीव अनेक प्रकारके फलोंको पाकर स्वर्गादिक उत्तम गतियोंमें उत्पन्न हुये अथवा केवलज्ञान पाकर मोक्ष पधारे। अनेक जीवोंके अनेक प्रकारके विघ्न दूर हुए। इत्यादि इस महामन्त्रके गुणोंकी महिमाका वर्णन पुण्यास्रव, आराधना कथाकोश, व्रतकथाकोश, पाण्डवपुराण, महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि अनेक जैन शास्त्रोंमें कथासहित बहुत विस्तारके साथ वर्णन किया है। वहींसे देख लेना चाहिये। वह सब यहां लिखा नहीं जा सकता।

इस महामन्त्रके जप करनेके और भी बहुतसे प्रकार हैं। जैसे पैंतीस अक्षरका मन्त्र, सोलह, छह, पाँच चार, दो, एक आदि अक्षरोंके मन्त्रों द्वारा तथा गुरुके उपदेशानुसार अन्य मन्त्रोंके द्वारा इसका ध्यान वा चिंतवन करना चाहिये। सो ही लिखा है—

पणतीस सोल छप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह। परमेट्ठि वाचयाणं अण्णंचगुरूवएसेण॥

—द्रव्य संग्रह गाथा ४९।

पैंतीस अक्षरका मंत्र

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरिआणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

सोलह अक्षरका मन्त्र—"अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः" अथवा "अरहंत सिद्ध आइरिया उवज्झाया साहू" है। छह अक्षरका मंत्र—"अरहंत सिद्धं" पाँच अक्षरका मंत्र—"अ सि आ उ सा" चार अक्षरका मन्त्र—'अरहंत' है अथवा 'अर्हंत्सिद्ध' है। दो अक्षरका मन्त्र "सिद्ध" वा 'अर्हं' है। एक अक्षरका मंत्र—'ॐ' वा 'अ' है। ये सब मन्त्र पंच परमेष्ठीके वाचक हैं। सब णमोकारमय हैं। इनके जप करनेकी वा चिन्तवन करनेकी विधि पहले लिख चुके हैं। वहाँसे जान लेना चाहिये।

ऐसे इस पंच परमेष्ठीके वाचक णमोकार मन्त्रको हमारा बार-बार नमस्कार हो। यह णमोकार मंत्र संसारके परिभ्रमण और कर्मोदयसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके दुःखोंको दूर करो तथा ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंका नाश करो। इसके प्रसादसे शुद्धात्मस्वरूपका और रत्नत्रयका लाभ हो, सुगति प्राप्त हो, समाधिमरण हो, भगवान अरहन्तदेवके अनंत चतुष्टय आदिक छयालीस गुण प्राप्त हों। इस णमोकार मन्त्रके प्रसादसे हमारे ये सब पदार्थ प्राप्त हों ऐसी प्रार्थना है, वह पूर्ण हो।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरिआणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं

ऐसे इस णमोकार मंत्रका जप करो तथा-भव भवमें यही हमारे शरण हो।

हमने अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार णमोकार मंत्रका स्वरूप बहुत थोड़ासा बतलाया है परंतु इसका वर्णन करना महान् कार्य है यदि इसमें कोई भूल रह गई हो तो विशेष बुद्धिमान लोग क्षमा करें।

२०५—चर्चा दोसौ पाँचवीं

प्रश्न—तीर्थंकर आदिक पदवीधर पुरुषोंपर जो चमर ढुलाये जाते हैं उनका प्रमाण क्या है?

समाधान—श्री तीर्थंकर केवली भगवानके तो सदा चौसठ चमर ढुलते रहते हैं। चक्रवर्तीके बत्तीस ढुलते हैं, नारायणके सोलह, महामंडलेश्वरके आठ, अधिराजके चार और महाराजके दो चमर ढुलते हैं। सो ही लिखा है—

तीर्थंकराणामिति चामराणि चत्वारि षष्ठ्यात्यधिकानि नित्यं।
अर्द्धाद्धिमानानि भवन्ति तानि चक्रेश्वराद्यावदसौ सुराजा।

२०६–चर्चा दोसौ छहवीं

प्रश्न—स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्रके पशु पक्षियोंकी आयु उत्कृष्ट है परन्तु यहाँके पशु पक्षियोंकी कितनी है ?

समाधान—न्योला, चूहे, घूस, बाघ, चीते, कबूतर, कुत्ते और सूअर आदि पशुओंकी आयु भगवान अरहंत देवने बारह वर्षकी बतलाई है तथा इसी प्रकार अन्य पशुओंकी भी यथायोग्य हीन वा अधिक समझ लेनी चाहिये। सो ही त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें लिखा है—

नकुलानां मूषकानां घूषकानां तथैव च। व्याघ्रचित्रकपोतानां मंडलानां जिनोदितम्॥
शूकराणां तथैवात्र संवत्सराणां द्विषट् मतम्।

२०७–चर्चा दोसौ सातवीं

प्रश्न—मुसलमान आदि कितने ही यवन, कितने ही शूद्र, कितने ही क्षत्रिय तथा अधोगतिके पात्र कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञानको धारण करनेवाले अपने वचनोंकी चतुरतासे अपनेको बड़े बुद्धिमान माननेवाले ऐसे कितने ही ब्राह्मणादिक अपनी इन्द्रियोंको पुष्ट करनेके लिये महा अधर्म रूप वचन कहते हैं। वे कहते हैं कि जीवोंका आहार ही जीव है। जीवोंके आहारके बिना यह जीव जीवित नहीं रह सकता। इस संसारमें जीवदया पल नहीं सकती। चांवल, जौ, गेहूँ, उडद, मूंग, मसूर, चना, ज्वार आदि अनेक धान्य हैं तथा शाक, पत्र, फल, पुष्प, जल आदि अनेक भक्ष्य वा खाने योग्य पदार्थ हैं परंतु इन सबमें जीव हैं, बिना जीवके इनमें कोई नहीं है। तथा धान्योंको वा शाक, फल आदिको सब भक्षण करते हैं उसी प्रकार हम पशु, पक्षी आदि जीवोंके मांसका भक्षण करते हैं। क्या अन्न आदिमें जीव नहीं है। क्योंकि बिना जीवके पृथ्वीपर बोनेसे कैसे उत्पन्न हो जाते हैं और उनपर फल, पुष्प आदि कैसे लग जाते हैं इससे सिद्ध होता है कि जीव सबमें हैं। हाँ, अंतर केवल इतना है कि मांसादिकके खानेसे एक जीवके मांससे अनेक जीवोंका पेट भर जाता है इसलिये मांस खानेवाले-को एक जीवकी हिंसाका थोड़ासा भाग लगता है। परंतु अन्न खानेवाले सेर, आधासेर अन्न खाते हैं। उसमें जितने दाने हैं उतने ही जीव हैं इसलिये उनको अनेक जीवोंकी हिंसाका पाप लगता है। इस प्रकार अन्नादिक

भक्षण करनेमें बहुत पाप लगता है और मांस भक्षण करनेमें थोड़ा पाप लगता है इसलिये मांस भक्षणका निषेध करना ठीक नहीं है।

समाधान—समस्त जीवोंको समान मानकर मांसभक्षण पुष्ट करना दुष्टोंका काम है। ऐसे दुष्टोंकी बुद्धिको धिक्कार हो। इस जीवकी जैसी गति होनहार होती है वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है। लिखा भी है "बुद्धिः कर्मानुसारिणी"

यदि समस्त जीवोंको समान मान लिया जाय तो फिर पाँच प्रकारके स्थावर और चार प्रकारके त्रस आदि जो जीवोंके भेद हैं वा योनियोंके भेदसे चौरासी लाख भेद हैं अथवा कुलकोडके भेदसे एकसौ साढ़े निन्यानवे लाख कुलकोडि जीवोंके भेद हैं वे अलग-अलग जीवोंके भेद किस प्रकार सिद्ध होंगे।

यदि समस्त जीवोंको एकसा माना जाय तो स्त्री योनिकी अपेक्षासे माता, पुत्री, बहिन आदि सब ही स्त्रीके समान हो जांयगी फिर क्या स्त्रीके समान सबसे संभोग करना चाहिये। अथवा माताके समान स्त्रीका भी स्तनपान करना चाहिये। क्योंकि सब स्त्रियाँ एक ही हैं, सब समान हैं फिर किसीमें भेदभाव नहीं रखना चाहिये। यदि सब स्त्रियां स्त्रीपर्यायकी अपेक्षासे समान होनेपर भी उन्हें माता, पुत्री स्त्रीकी अपेक्षासे भेद मानोगे तो फिर जीवोंमें भी भेद मानना ही पड़ेगा। जीवोंकी उत्पत्ति, इन्द्रियां, प्राण, पर्याप्ति आदिकी होनाधिकतासे उनकी हिंसामें भी भेद पड़ता है तथा हिंसामें अंतर पड़नेसे पापमें भी हीनाधिकता होती है। सब जीवोंके घातका समान पाप नहीं लगता।

किसी एक एकेन्द्रिय जीवकी हिंसासे लट् आदि द्वीन्द्रिय जीवकी हिंसामें अनेक गुणा पाप लगता है। बेइन्द्रियसे तेइन्द्रिय जीवकी हिंसामें अधिक पाप लगता है तेइन्द्रियसे चौइन्द्रिय और चौइन्द्रियसे पंचेन्द्रिय जीवोंकी हिंसामें अधिक पाप लगता है इसलिये ही एकेन्द्रिय जीवोंके कलेवरके सिवाय अन्य समस्त जीवोंके

१. एकेन्द्रिय जीवोंके कलेवरकी मांस संज्ञा नहीं होती। गेहूं, जौ, उड़द आदिको वा लकड़ी, फल, पत्तोंको कोई मांस नहीं कहता। शास्त्रोंमें भी यही लिखा है—

मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसम्। यद्वन्निम्बो वृक्षः वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्बः॥

अर्थात्—मांस जीवका शरीर ही होता है परन्तु जीवोंके जितने शरीर हैं वे मांस होते हैं अथवा नहीं भी होते जैसे नीम एक वृक्ष होता है परन्तु जितने वृक्ष हैं वे सब नीम नहीं होते कोई होते हैं और कोई नहीं भी होते। अभिप्राय यह है कि त्रस जीवोंके

कलेवरोंके भक्षण करनेका त्याग बतलाया है। तथा एकेन्द्रिय जीवोंमें भी जो योग्य हैं वे ही ग्रहण करने योग्य हैं अनन्त जीवोंका समुदायरूप साधारण जीवोंका वहां भी त्याग बतलाया है।

तू जो समस्त जीवोंको एक-सा बतलाता है सो इसमें तो बड़ा भारी दोष आता है। साक्षात् पंचेंद्रिय जीवको मार कर उसका मांस खाना अत्यन्त हिंसाका, निर्दयीपनेका, क्रोध, मान, माया, लोभका तथा महा अशुद्धिका कारण है। यह साक्षात् चांडाल कर्म है इसलिए उसमें महादोष उत्पन्न होता है।

स्थावर जंगमके भेदसे जीवोंके दो भेद हैं। उनमेंसे जंगम या त्रस जीवोंके शरीर पिंडमें तो मांस *उत्पन्न होता है। परन्तु स्थावर जीवोंके शरीर पिंडसे मांस नहीं निकलता। उसमें तो पत्ते, फल-फूल आदि निकलते हैं। यह प्रत्यक्ष है इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार स्त्रियोंमें माता भोग्य नहीं है* और अपनी स्त्रीके स्तनपान करना योग्य नहीं है। उसी प्रकार मांस कभी भी किसी भी हालतमें भक्षण करने योग्य नहीं है। ऐसा निश्चित सिद्धांत है। सो ही लिखा है—

स्थावरा जंगमाश्चैव प्राणिनो द्विविधाः स्मृता। जंगमेषु भवेन्मासं फलं च स्थावरेषु च॥
जीवत्वेनेह तुल्यास्ते यद्यप्येते भवन्ति वै। स्त्रीत्वे सति यथा माता अभक्ष्या जंगमास्तथा॥

इस प्रकार समस्त जीवोंको समानता नहीं है। यदि सब जीव एक हैं तो फिर जीवोंके शरीरका, उनकी गति या इन्द्रियोंका जुदा-जुदा आकार क्यों दिखाई पड़ता है। इससे सिद्ध होता है कि सब जीव एक नहीं हैं। कोई बड़ा है, कोई छोटा है, कोई स्त्री है, कोई पुरुष है, कोई नपुंसक है, कोई पुत्र है, कोई पिता है, कोई पुत्री है, कोई भगिनी है, कोई मामा है, भानजा है इत्यादि व्यवहार सबको एक मान लेनेपर कैसे होगा ? तथा पशु-पक्षी, जलचर आदि जुदे-जुदे जीवोंका जुदा-जुदा आकार किस प्रकार होगा।

कलेवरोंको तो मांस संज्ञा है परन्तु एकेन्द्रिय जीवोंके कलवरोंको मांस संज्ञा नहीं है। क्योंकि उसमें हड्डी, रुधिर आदि कुछ भी नहीं होता है। त्रस जीवोंके कलवरोंमें बदबू होती है। उसमें अनन्तानन्त जीव प्रति समयमें उत्पन्न होते और मरते रहते हैं और इसीलिये उसमें बदबू होती है। परन्तु गेहूँ, जौ आदि धान्योंमें यह बात नहीं है। न उसमें बदबू है और न उसमें प्रति समयमें अनन्तानन्त जीव उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार गायका दूध पीने योग्य है परंतु गायका मांस खाने योग्य नहीं है वह त्याग करने योग्य है उसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवोंसे उत्पन्न हुए धान्य भक्ष्य हैं और मांस कभी किसी हालतमें भी भक्ष्य नहीं है।

कदाचित् कोई यह कहे कि जीव तो सब एक हैं परन्तु परमेश्वरकी इच्छानुसार सब जुदे-जुदे हो गये हैं सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि तुम्हारे कहनेसे ही वो भेद हो जाते हैं। फिर एकता कैसे रह सकती है।

कदाचित् कोई यह कहे कि जीव तो सब एक ही हैं क्योंकि सबमें एक परमेश्वरकी ही सत्ता है अर्थात् भगवान सबमें है सो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा मानना अनेक अनर्थोंकी जड़ है। क्योंकि यदि सब जीवमें ईश्वर हैं तो फिर जो जीवोंको मार कर खाते हैं वे परमेश्वरको ही मार कर खाते हैं ऐसा मानना पड़ेगा और इसमें महापाप स्वीकार करना पड़ेगा।

कदाचित् कोई यह कहे कि जीवोंमें परमेश्वरका अंश नहीं है किन्तु सब जीव एक हैं। सो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि यदि सब जीव एक हैं, तो फिर ब्रह्माने जब सृष्टि रची तब उसको अपनी माया कैसे बतलाई तथा विष्णुको सर्वगत किस प्रकार बतलाया और सब सृष्टिमें परमात्मा कैसे बतलाया? यह सब कहना व्यर्थ हो जायगा। इसलिए कहना चाहिए कि जीवोंमें सर्वत्र परस्पर भेद है। सब जीव समान नहीं हैं। राजा वा सेवकके समान अपने-अपने कर्मोंके उदयसे समस्त जीव इस संसारमें अनेक प्रकारके पुद्गलोंको ग्रहण करते हुए अनेक रूप धारण करते हैं। फिर भला एकेन्द्रिय और पंचेंद्रिय जीव समान कैसे हो जायेंगे।

इससे सिद्ध होता है कि एकेन्द्रिय जीवोंका कलेवर तो फल, फूल, पत्ते आदि वनस्पति रूप है तथा दो इंद्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवोंका शरीर मांसरूप है। एकेन्द्रिय जीवोंका कन्द-मूल, पत्र, फल, पुष्प रूप शरीर जलसे उत्पन्न होता है। तथा पंचेंद्रिय मनुष्य वा पशु पक्षी जलचरादिक जीव पिताके वीर्य और माताके रुधिरसे उत्पन्न होते हैं। इस समयके मुसलमान आदि यवन लोग शूद्र जातिके मूत्रकी बूंदमें तो बड़ा दोष मानते हैं परन्तु उसी मूत्रकी बूंदसे बने हुए मांसको खा जाते हैं। उसमें कोई दोष नहीं मानते। सो यह उनकी बड़ी भारी भूल है।

कितने ही उत्तम जातिके लोग वा उत्तम कुलके लोग वेदको मानते हैं उसमें लिखे हुए वाक्योंकी पुष्टि करते हुए यज्ञकर्म करने, उसमें जीवोंका होम करने तथा देवताओंके लिये बलिदान देकर जीवोंके मारने और उसको प्रसादी समझकर उन जीवोंके मांसभक्षण करनेका विधान करते हैं। तथा इस प्रकारका मांस भक्षण करते हैं। यदि कोई उनके इस कामकी निंदा करता है तो वेदोंके वाक्य बतला देते हैं। यदि कोई वेदोंको

नहीं मानता तो उसको चांडाल कहते हैं। उनके यहाँ लिखा है "वेदबाह्यास्तु चांडालाः"इस प्रकार वे लोग अपना मांस भक्षण पुष्ट करते है। वे लोग यह भी कहते हैं कि पहले बड़े-बड़े लोग मांस भक्षण करते थे। श्रीरामचंद्र की शिकार खेलते थे। क्योंकि सुवर्णके मृगको मारनेके लिये वे दौड़े ही थे। बड़े-बड़े राजाओंने जीवोंका वधकर उनका मांस खाया है। हमारे क्षत्रिय वंशका यही धर्म है। इस प्रकार कहकर वे लोग अपने शरीर और इंद्रियोंकी पुष्टि करते हैं परन्तु उनका यह सब कहना व्यर्थ है। यदि उनके वेद और पुराणोंमें होम आदिके द्वारा जीवोंका वध करना लिखा है और उनके मांस भक्षणका विधान बतलाया है तो फिर उन शास्त्रोंको शास्त्र ही नहीं कहना चाहिये। जिन शास्त्रोंके वचनोंसे जीवोंका वध हो वे शास्त्र नहीं किंतु शस्त्र हैं। उनका प्रयोग उपदेश अर्थको कहनेवाली शास् धातुसे नहीं बना है किंतु हिंसार्थक शस् धातुसे बना है। वे लोग उन शास्त्रोंको वेद कहते हैं सो वह वेद नहीं है किंतु बेंत है। जिस प्रकार बेंतकी मारसे मनुष्य आदि जीवोंका चमड़ा उधर आता है। उसी प्रकार जिसके ऋचारूपी बेंतके उच्चारणरूपी प्रहारसे पशु आदि जीवों-का बध होता हो, पशुओंका चमड़ा उतारकर होमते हों वह वेद नहीं है किंतु बहुत बड़ा बेंत है। इस प्रकार वह वेद शास्त्र नहीं है किंतु शस्त्र है। ऐसे वेदको मानना महा पाप है, महा हिंसाका कारण है।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि जीवोंको हिंसा करना तथा मांस भक्षण करना इस लोकमें महापाप माना जाता है। यह बात सब शास्त्रोंमें लिखी है। हिंसा और मांस भक्षणका फल महा दुःखरूप है, और नरकादि अनेक दुर्गतियोंका कारण है। शास्त्रोंमें ऐसे लोगोंकी अनेक कथाएँ लिखी हैं। इन सब शास्त्रों-को जानते हुए भी लोलुपी लोग सबका लोप कर फिर भी मांस भक्षणादिककी पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि वेदमें लिखा है "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" अर्थात् इस संसारमें पशुओंकी रचना यज्ञके ही लिये हुई है। वे लोग उन यज्ञोंके भी कितने ही भेद बतलाते हैं। जिसमें बकरा होमा जाय वह अजामेध यज्ञ है। जिसमें गाय होमी जाय वह गोमेध यज्ञ है। जिसमें घोड़ा होमा जाय वह अश्वमेध यज्ञ है। जिसमें मनुष्य होमे जाँय नरमेध यज्ञ है। इस प्रकार वे लोग यज्ञोंके अनेक भेद बतलाते हैं उन यज्ञोंमें अनेक जीवोंको होमते हैं और उनका अलग-अलग फल बतलाते हैं। सो सब महापापका मूल है। क्योंकि इन्होंके शास्त्रोंमें जीवोंके होम करनेमें, उनका वध करनेमें और मांस भक्षण करनेमें महापाप लिखा है। तथा ऐसे-ऐसे समस्त कार्योंके करनेका त्याग

करना बतलाया है। उनके शास्त्रोंमें ऐसे महापापोंका निषेध कहाँ-कहाँ लिखा है सो यहाँ प्रसंग पाकर थोड़ासा लिखते हैं।

भारतमें लिखा है—मद्यका पीना, मांस भक्षण करना, रात्रिमें अन्न, पान, लेह्य, स्वाद्य आदि चारों प्रकारके आहारका भक्षण करना, कंदमूल खाना महापाप है। जो कोई पुरुष इनका सेवन करता है उसकी तीर्थयात्रा, जप, तप आदि सब व्यर्थ होता है। उनके यहाँ सब अड़सठ तीर्थ माने हैं सो जो पुरुष मांस, मद्य, रात्रिभोजन, कंदमूल आदिका सेवन करते हैं उनकी अड़सठ तीर्थोंकी यात्रा व्यर्थ होती है। राम, कृष्ण, परमेश्वर आदिका जप सब व्यर्थ होता है। गायत्री मंत्रका जप भी सब व्यर्थ होता है। तथा चान्द्रायण व्रत तथा और भी [illegible] आदि अनेक प्रकारके कष्ट देनेवाले तप सब व्यर्थ हो जाते हैं। सो ही भारतमें लिखा है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्। ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः॥

उसीमें आगे लिखा मद्य, मांस भक्षण करनेवाले वा रात्रि भोजन करनेवालोंके एकादसी व्रतका उपवास करना, नारायणके मंदिरमें जागरण करना, पुष्करकी यात्रा करना और चंद्रायण तप करना आदि सब व्यर्थ हो जाता है। जबतक वह मद्य मांसादिकका त्याग नहीं करता तब तक उसको जप, तप, व्रत, उपवास आदिका कोई फल नहीं मिलता। मद्य मांसादिकका त्याग करनेसे ही इनका फल मिल सकता है। सो ही भारतमें लिखा है—

वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः। तथा च पुष्करीयात्रा वृथा चंद्रायणं तपः॥

मनुस्मृतिमें लिखा है जो कोई जीवोंकी हिंसा करता है उसके न तो ध्यान हो सकता है, न स्नानसे शुद्धि हो सकती है, न वह दान दे सकता है। तथा न वह शुभ क्रियाएँ कर सकता है। हिंसा करनेवालेके इन सब बातोंका अभाव हो जाता है। यदि वह इन क्रियाओंको कर भी डाले तो भी जीवघात करनेसे उसका सब किया हुआ निष्फल हो जाता है। सो ही मनुस्मृतिमें लिखा है—

न च ध्यानं न च स्नानं न दानं न च सत्क्रियाः। सर्वे ते निष्फलं यांति जीवहिंसा करोति यः॥

भारतमें लिखा है—जो प्राणी बकरा, हिरण, सांभर, गीदड़, सूअर आदि पशुओंका घात करता है

वह उस पापके फलसे उस पशुके शरीरमें जितने रोम हैं उतने ही हजार वर्ष तक अग्निमें पकाया जाता है। यथा—

यावंति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भो नर। तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः॥

भारतमें श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि विष्ठाके कीड़ेको और स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रको दोनोंको जीवित रहनेकी आकांक्षा एकसी है। दोनोंके जीवित रहनेकी इच्छामें कोई कमी नहीं है। इन्द्र महा सुखी है सो उसे तो जीवित रहनेकी इच्छा सदा लगी ही रहती है। परन्तु विष्ठाका कीड़ा भी मरना नहीं चाहता दुखी होने पर भी वहीं रहना चाहता है। इससे सिद्ध होता है कि उसको भी जीवित रहनेकी इच्छा लगी हुई है। इसी प्रकार मरनेका भय दोनोंको एकसा है। दोनों ही मरनेसे डरते हैं मरनेमें सभीको समान दुःख होता है। इसलिये जिस प्रकार अपने प्राण मुझे प्यारे लगते हैं उसी प्रकार अन्य प्राणियोंको भी अपने-अपने प्राण प्रिय लगते हैं। यही समझकर बुद्धिमान पुरुषोंको घोर और भयंकर ऐसा प्राणियोंका वध कभी नहीं करना चाहिये। उपदेश बुद्धिमानोंको ही दिया जाता है। मूर्ख और अज्ञानी पुरुष तो किसीकी मानता ही नहीं है इसलिये उसको कहना ही व्यर्थ है। सो ही भारतमें लिखा है—

अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये। समाना जीविताकांक्षा समं मृत्युभयं द्वयोः॥१॥
यथा ममप्रियाः प्राणास्तथा चान्यस्य देहिनः। इति मत्वा न कर्तव्यो घोरप्राणिवधो बुधैः॥

इसी प्रकार मार्कंडेय पुराणमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि हे अर्जुन! इस पृथिवीमें भी मैं हूं। समस्त अग्नि, वायु, वनस्पति आदिमें भी मैं हूँ और तीनों लोकोंके समस्त प्राणियोंमें भी मैं हूँ। मैं सर्वगत वा सब जगह सब पदार्थोंमें, सब जीवोंमें रहनेवाला हूँ। इसलिये सब जीवोंमें मुझे समझकर जो जीवकी हिंसा नहीं करते उनकी रक्षा मैं करता हूँ। जो जीवोंकी हिंसा करते हैं उनका क्षय होता है। ऐसा मार्कंडेयपुराणमें लिखा है। यथा—

पृथिव्यामप्यहं पार्थ सर्वाग्नौ च जलेप्यहम्। वनस्पतिगतोप्यहं सर्वभूतगतोप्यहम्॥
यो मां सर्वगतं ज्ञात्वा न हिंसति कदाचनः। तस्याहं न प्रणस्यामि स मे न प्रणस्यति॥

शिवधर्ममें लिखा है कि मांसमें, मद्यमें, शहदमें और मक्खनमें उसी वर्णके (मांस, मक्खन या शहदके रंगके) असंख्यात जीव हर समय उत्पन्न होते रहते हैं। यथा—

मद्ये मांसे मधुनि न नवनीते वहि र्न ते। उत्पद्यन्ते असंख्यातास्तद्वर्णास्तत्र जन्तवः ॥

इस प्रकार मांसमें महादोष है। पहले तो यह जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न होता है। तथा फिर उसमें अनेक दोष हैं यही समझकर धर्मात्मा पुरुष हिंसाका और मांस भक्षणका त्याग कर देते हैं।

जो जीव स्वयं मांस नहीं खाते परन्तु दूसरोंको उपदेश देते हैं। कहते हैं यह राजाओंका धर्म है। शिकार खेलना राजाओंका धर्म है। उसके लिये मुहूर्त देते हैं सो हिंसा करना वा उसके लिये उपदेश देना, कारण सामग्री मिलाना सब एक है। जो लोग इन निंद्य कार्योंका उपदेश देते हैं वे धर्मके नाश करने वाले, पापको बढ़ानेवाले, इंद्रियोंके लंपटी, अधर्मी और महा पतित हैं। ऐसा समझना चाहिये।

प्रश्न—यदि मांसमें ऐसा दोष है तो श्राद्धमें मांस खिलानेका विधान क्यों लिखा है। स्मृतिशास्त्रमें लिखा है "मछलीका मांस खिलानेसे पितर लोग दो महीने तक तृप्त रहते हैं। हिरणके मांससे तीन महीने तक रहते हैं। भेड़के मांससे चार महीने तक तृप्त रहते हैं पक्षियोंके मांससे पांच महीने तक। बकरेके मांससे छह महीने तक, कबूतरके मांससे सात महीने तक, एण जातिके हिरणके मांससे आठ महीने तक, रोरव नामके हिरण नौ महीने तक, सूअर तथा भैंसके मांससे दस महीने तक, खरगोश और कच्छपके मांससे ग्यारह महीने तक और गायके दूधकी खीर खिलानेसे बारह महीने तक पितर लोग तृप्त रहते हैं। सो ही लिखा है—

द्वौमासौ मत्स्यमांसेन त्रिमासा हारिणेन वै। औरभ्रेण तु चत्वारः शाकुनेन तु पंच वै ॥
षट्मासाः छागमांसेन पार्वतेन तु सप्त वै। अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तत् ॥२॥
दशमासास्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः। शशकूर्मस्य मांसेन मासा एकादशैव च ॥३॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वै।

प्रश्न—इस प्रकार श्राद्धमें मांस का विधान लिखा है सो क्यों लिखा है?

समाधान—जो लोग इस प्रकार मांसका विधान करते हैं वे चाहे श्रद्धा करनेवाले गृहस्थ हों, चाहे

श्राद्ध करानेवाले आचार्य हों अथवा तृप्त होनेवाले पितर हों वे सब राक्षस वा भील समझने चाहिए। क्योंकि मांसका विधान करना राक्षसोंका काम है। दूसरी बात यह है कि यदि मांसके विधानका ही दृढ़ विश्वास किया जायगा तो श्राद्ध अधिकारमें जो तिल, चावल, जल, शर्करा, घी, दूध, मधु, दही आदिका पिंड करना कैसे बतलाया। देखो श्राद्धकल्पमें लिखा भी है—

तिलान्नं चैव पानीयं शर्कराज्यं पयस्तथा । मधु दध्ना समायुक्तः अष्टांगः पिंड उच्यते ॥

इस प्रकार जो अष्टांग पिंड बतलाया है वह सब व्यर्थ हो जायगा।

आगे तुम्हारे यहाँ लिखा है—

विन्ध्यस्य चोत्तरे भागे मांसभक्षी न दोषभाक्।

अर्थात् विन्ध्याचलके उत्तर भागमें मांस भक्षण करनेवाला दोषी नहीं गिना जाता। इस प्रकार कह कर बहुतसे शक्तिके उपासक कान्यकुब्ज, सनोडिया, सर्वरिया, पुरविया आदि ब्राह्मण, मछली, बकरा आदिका मांस भक्षण करते हैं। परन्तु उनका यह कहना और करना सब मिथ्या है। क्योंकि मांस कुछ पृथिवी जलसे तो उत्पन्न होता ही नहीं है अथवा फलोंके समान वृक्षोंपर लगता नहीं है। वह जंगम जीवोंके घात करनेसे होता है। इस प्रकार जंगम जीवोंके घात करनेसे उत्पन्न हुए मांसको भक्षण करनेवाले लोगोंके भला जीवदया किस प्रकार पल सकती है क्योंकि श्राद्धादिकमें मांसका काम पड़ता ही है। इसलिये कहना चाहिये कि इस प्रकार कहनेवाले वा माननेवाले बड़े ही अधर्मी हैं।

आगे जो लोग यह कहते हैं कि क्षत्रियोंके कुलमें परम्परासे मांस भक्षण वा शिकार खेलना चला आया है तथा उनमेंसे कितने ही इन्द्रियोंके लम्पटी, विषय-कषायोंको पुष्ट करनेवाले, महाकामी, अधोगतिके जाने वाले, भ्रष्ट, महापापी, चांडालोंके समान क्रूर परिणामी, क्रोधी, अधर्मी लोग शास्त्रोंमें भी मांस भक्षणको पुष्टि करते हैं, धर्म मान कर हिंसाको वा मांसभक्षणको पुष्टि करते हैं परन्तु ऐसे लोग महादुर्बुद्धि और महा-मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसे लोग ग्रामीण सूअरोंके समान हैं। जैसे ग्रामीण सूअरोंके सामने चाहे जैसे उत्तम पकवान रक्खे जाँय परन्तु वह सूअर उन उत्तम-उत्तम पकवानोंको छोड़कर विष्ठापर ही पड़ता है। उसीको प्रेमसे खाता है और तृप्त होकर आनन्द मानता है। अथवा उल्लू जातिका पक्षी अनेक प्रकारके उत्तम-उत्तम भोजनोंको

छोड़कर पक्षियोंका मांस भक्षण कर ही अपना पेट भरता है उसी प्रकार दुष्ट बुद्धिके लोग उत्तम-उत्तम पदार्थों-को छोड़कर मांस भक्षणका विधान करते हैं। जिनकी नीच गति होनहार होती है उनके ऐसे ही नीच बुद्धि उत्पन्न हुआ करती है ऐसे नीच बुद्धिवालोंके उत्तम बुद्धि कभी नहीं हो सकती।

ऐसे लोग ऊपर लिखे शास्त्रोंको कहकर अपने मिथ्या धर्मकी पुष्टि करते हैं परन्तु पहली बात तो यह है कि श्राद्धकर्म कुछ मोक्ष देनेवाला नहीं है। यह तो स्वार्थी लोगोंने अपने स्वार्थके लिये चलाया है। इसलिए वह कभी प्रमाणरूप नहीं हो सकता। कदाचित् यह कहा जाय कि हमारे वेदमें लिखा है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि जो जीवहिंसाका उपदेश दे वह वेद कभी नहीं कहा जा सकता। उसे तो वेधक—जीवोंका घात करने वाला कहना चाहिये भला जो 'यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः' अर्थात् पशुओंको यज्ञमें होमनेके लिये ही उत्पन्न किया है" इस महाहिंसाकी पुष्टि करते हैं वे महाहिंसक, महापाप रूप, घातक शस्त्रोंके समान समझे जाते हैं। इसलिये उनको वेध वा वेधक कहना चाहिये।

यहाँपर कदाचित् कोई वेदको माननेवाला यह कहे कि 'यज्ञमें पशुओंको होमना हमारे वेदमें लिखा है। सो मन्त्रोंकी आहुतियोंसे होमना बतलाया है। इसी प्रकार देवताको बलिदान देनेके लिए होमके अन्तमें वध करना भी होमके लिए है। अथवा उस देवताके लिए है इसलिए ऐसी हिंसामें हिंसाका पाप नहीं लगता। ऐसे यज्ञोंको जो करता है अथवा कराता है अथवा जो बकरा, भैंसा, घोड़ा, मनुष्य आदि जीव होमे जाते हैं वे सब स्वर्गमें जाते हैं इसलिये ही यज्ञमें जीव होमनेका निषेध नहीं है। किन्तु कर्तव्य है ऐसा वेद कहता है' इस प्रकार वेद माननेवालेका कहना महाहिंसाके दोषको उत्पन्न करता है क्योंकि यदि वेद यह कहता है कि 'मंत्रपूर्वक जीवोंका होम करनेसे पाप नहीं लगता" तो वेदका यह कहना मुसलमानोंके कहनेके समान हुआ। क्योंकि मुसलमान भी यह कहते हैं कि हमारे कुराणको लिक्का जीवके ऊपर पढ़नी चाहिये और उसको शस्त्रसे मारकर उसका मांस भक्षण करना चाहिये। इस प्रकार जीवको मारने और उसका मांसभक्षण करनेमें कोई दोष वा पाप नहीं है। लिक्का पढ़ लेनेके बाद फिर उसमें कोई दोष वा पाप नहीं रहता। यदि कोई जीव अपने आप मर जाय तो हम (मुसलमान) उसे छूते भी नहीं हैं। लिक्का पढ़नेके बाद जो जीव मारा जाता है वह सीधा बिहिश्तमें (स्वर्गमें) जाता है। इस प्रकार वेदका कहना और मुसलमानोंका कहना समान ही हुआ। वेद

माननेवाले गायको अच्छी मानते हैं और मुसलमान सूअरको अच्छा मानते हैं बस इतना ही दोनोंमें अन्तर दिखाई पड़ता है। हिंसा करना दोनोंका बराबर है। दोनों ही समान हिंसक हैं।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि पहले लोग ऐसे समर्थ होते थे कि वे जीवोंको होम भी देते थे और फिर उनको मंत्र पढ़कर जीवित भी कर देते थे। सो उनका यह कहना भी मिथ्या है। क्योंकि यदि वे इतने समर्थ थे तो फिर उन्होंने अपने कुटुंबको मरनेसे क्यों नहीं बचाया। अपने सब कुटुंबको अमर क्यों नहीं बना दिया। परंतु आज तक किसीने अपने कुटुंबको अमर नहीं बनाया इससे सिद्ध होता है कि उनका इस प्रकार कहना सब मिथ्या है। जो जीव होमे जाते हैं वे सब सीधे स्वर्ग चले जाते हैं यदि यह बात सच है तो फिर उन लोगोंने अपने कुटुंबको ही क्यों नहीं होम दिया, जिससे उनका सब कुटुंब स्वर्ग चला जाता? परंतु अपने कुटुंबको कोई नहीं होमता। इससे मालूम होता है कि होम करना सब स्वार्थ और जिह्वालंपटताके लिये है।

इसके सिवाय एक बात विचार करनेकी यह है कि यदि मांसभक्षण योग्य होता तो भारत आदि तुम्हारे ही शास्त्रोंमें मांसको अत्यंत निंद्य और त्याग करने योग्य क्यों बतलाया जाता? जैसा कि पहले भारतका प्रमाण देकर लिख चुके हैं। तथा यहां फिर भी प्रसंग आ गया है इसलिये प्रसंगानुसार कुछ और भी लिखते हैं। आपके धर्मशास्त्रमें लिखा है—

मांसाशिनो न पात्राः स्युर्न मांसदानमुत्तमम्। तत्पित्राणां कथं तृप्त्यै भुक्तं मांसाशिभिर्भवेत्॥
पुत्रेणार्पितदानेन पितरः स्वर्गमाप्नुयुः। तर्हि तत्कृतपापेन तेपि गच्छंति दुर्गतिम्॥ २॥
किं जाप्यहोमनियमैस्तीर्थस्नानेन भारत!। यदि मांसानि खादन्ति सर्वमेव निरर्थकम्॥३॥

अर्थ—जो मांस भक्षी हैं वे कभी पात्र नहीं हो सकते। कितने ही लोग कहते हैं हम ब्राह्मण हैं इसलिये दानके पात्र हैं परंतु उनका यह कहना मिथ्या है। जो ब्राह्मण होकर मांस भक्षण करता है वह न तो ब्राह्मण है और न कभी पात्र हो सकता है। इसी प्रकार मांसका दान भी दान नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालतमें उन पितरोंको तृप्ति कैसे हो सकती है। कदाचित् ब्राह्मणोंको मांस खिलानेसे पितर लोग तृप्त हो जांय तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि वे पितर लोग भी मांसभक्षी हैं। यदि अपने पुत्रके द्वारा दान देनेसे यदि

पितर लोगोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है तो फिर पुत्रने जो मांसदानके लिये जीवोंका वध किया वा कराया, मांस पिंड दिया तथा मांसका भक्षण किया उसके पापसे पितरोंको दुर्गति की भी प्राप्ति होनी चाहिये। हे भारत! जो जीव मांस भक्षण करते हैं वे चाहे जितना रामकृष्ण आदिका नाम उच्चारण कर जप करें, चाहे जितना होम करें, चाहे जितने नियम करें, चाहे जितनी तीर्थयात्रा करें और चाहे जितने तीर्थ स्नान करें परंतु उनका सब करना व्यर्थ है, मिथ्या है। इस प्रकार धर्मशास्त्र और पुराणोंमें केवल मांसभक्षण के ही अनेक दोष बतलाये हैं। भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

न देयानि न ग्राह्याणि षड्वस्तूनि पंडितैः। अग्निर्मधु विषं शस्त्रं मद्यं मांस तथैव च ॥ १ ॥

अर्थ—विचारशील पंडितोंको अग्नि, शहद, विष, शस्त्र, मद्य और मांस ये छह वस्तुयें न तो किसीको देनी चाहिये न किसीसे लेनी चाहिये। जब इन छहों पदार्थोंका लेन देन भी निषिद्ध बतलाया है तब फिर मांस भक्षण करना वा कराना किस प्रकार संभव हो सकता है। फिर भी जो लोग मानते हैं सो सब मिथ्या है।

इसके सिवाय भी भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यं च एकतः। एकतः सर्वपापानि मद्यमांसं च एकतः ॥ १ ॥
न गंगा न च केदारं न प्रयागं न पुस्करम्। न च ज्ञानं न च ध्यानं न तपो जपभक्तयः ॥२॥
न दानं न च होमाश्च न पूजा न गुरौ नुतिम्। तस्यैव निष्फलं यान्ति यस्तु मांसं प्रखादति॥
तिलसर्षपमात्रं च यो मांसं भक्षयेन्नरः। स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४ ॥

जिस प्रकार एक ओर चारों वेद हैं और एक ओर ब्रह्मचर्य है उसी प्रकार एक ओर संसारभरके समस्त पाप हैं और एक ओर मद्यमांसका सेवन है। भावार्थ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद हैं। सो चारों ही वेद तो एक ओर हैं और स्त्री मात्रका त्याग करनेरूप ब्रह्मचर्य एक ओर है इनमें भी चारों वेदोंसे शीलव्रतकी महिमा अधिक है जिस प्रकार चारों वेदोंसे ब्रह्मचर्य की महिमा अधिक है उसी प्रकार संसार भरके समस्त पापोंसे मद्यमांस सेवनका पाप अधिक है। इससे सिद्ध होता है कि मद्य मांस सेवन करनेसे सबसे अधिक पाप होता है।

इसी प्रकार जो मांस भक्षण करते हैं उनके न तो गंगा है, न केदार, है, न प्रयाग है, न पुस्कर है, न ज्ञान है, न ध्यान है, न जप है, न तप है, न भक्ति है, न दान है, न होम है, न पूजा है, न वंदना है। अर्थात् मांस भक्षण करने वालेकी सब क्रियायें व्यर्थ हैं। उसके किये हुये समस्त पुण्यकार्य भी व्यर्थ हो जाते हैं—निष्फल हो जाते हैं। इस प्रकार महा दोषसे भरे हुए मांसको जो तिल वा सरसों मात्र भी खाता है वह जब तक आकाशमें सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तब तक घोर नरकमें सड़ता रहेगा। इस प्रकार मांस खानेका फल महा निंद्य और नीच बतलाया है।

भारतमें लिखा है—श्रीकृष्ण पांडवोंसे कहते हैं—

स्नानोपभोगरहितः पूजालंकारवर्जितः। मधुमांसनिवृत्तश्च गुणवान् तिथिर्भवेत् ॥

अर्थ—जिसने शहद और मांसका त्याग कर दिया है वह चाहे स्नान उपभोगसे रहित हो और चाहे तिलक आदि पूजाके अलंकारोंसे रहित हो तो भी वह गुणवान् अतिथि माना जाता है। बहुतसे लोग स्नान आचमन, संध्या, तर्पण, तिलक, कंठी आदिका अभिमान करते हैं परन्तु उन्हें सोचना चाहिये कि सबसे मुख्य शहद और मांसका त्याग है। जिसने शहद और मांसका त्याग नहीं किया है उसके स्नान, आचमन आदिका कोई मूल्य नहीं है। बिना मांस, शहदका त्याग किये केवल स्नानादिक करनेमें कोई गुण नहीं है। शहद और मांसका त्याग करना सबसे श्रेष्ठ है। शक्तिके उपासकोंको वा अन्य शहद मांस खानेवालोंको यह उपदेश बहुत अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

कितने ही भेषमात्रको धारण करनेवाले वैरागी शहद और मांसका भक्षण करते हैं और शहद मांसको खाते हुये भी अपनेमें ब्राह्मणपना मानते हैं सो भी मिथ्या है। क्योंकि शहद और मांसका खाना ब्राह्मणका लक्षण नहीं है किन्तु चांडालका लक्षण है। सो ही महाभारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

मद्यमांसमधुत्यागी पंचोदुम्बरदूरगः। निशाहारपरित्यक्तः एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥१॥
सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेंद्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया नास्ति एतच्चांडाललक्षणम् ॥२॥

अर्थ—जिसके मद्य, मांस और शहदके भक्षण करनेका त्याग हो, बड़फल, पीपल फल, गूलर, पाकर, अंजीर इस पाँचों उदंबर फलोंका त्याग हो और जिसके रात्रिमें भोजन करनेका त्याग हो वही ब्राह्मण है।

ब्राह्मणके ये ही लक्षण हैं इन लक्षणोंके बिना केवल अपने आप ब्राह्मण बननेवाले कभी ब्राह्मण नहीं हो सकते। जिसमें ऊपर लिखे ब्राह्मणके लक्षण हों और जो सम्यग्दर्शनसे सुशोभित हों वहीं ब्राह्मण मानने योग्य समझा जाता है। जिसके मद्य, मांसादिकका त्याग न हो, न सत्य भाषण करता हो, न तपश्चरण करता हो, न इन्द्रियोंका निग्रह करता हो और जो समस्त प्राणियोंकी दया पालन भी न करता हो वह ब्राह्मण नहीं किन्तु चांडाल कहा जाता है। क्योंकि यह चांडालके लक्षण है। मद्य मांसादिका सेवन करनेवाला कभी ब्राह्मण नहीं हो सकता।

प्रश्न—यदि यह बात है तो धर्मकी उत्पत्ति किस प्रकार है, ऐसा प्रश्न अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा है। सो ही भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्द्धते। कथं च स्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति ॥

अर्थ—अर्जुन पूछते हैं कि हे भगवन्! धर्म किस प्रकार उत्पन्न होता है कि किन-किन कारणोंसे बढ़ता है किस प्रकार ठहरता है और किस प्रकार नाशको प्राप्त होता है। इनका उत्तर जो श्रीकृष्णने दिया है वह इस प्रकार है। जैसा कि भारतमें लिखा है—

सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्द्धते। क्षमया स्थाप्यते धर्मो क्रोधलोभाद्विनश्यति ॥

अर्थ—सत्यव्रतसे तो धर्म उत्पन्न होता है। दया पालन करने और दान देनेसे बढ़ता है समस्त जीवों-पर क्षमाभाव धारण करनेसे धर्मकी स्थिरता रहती है तथा क्रोध और लोभसे धर्मका नाश होता है।

तस्य व्यर्थाणि कर्माणि सर्वे यज्ञाश्च भारत!। सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यः कुर्यात्प्राणिनां वधः ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम्। एतेषु पंचसूक्तेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः ॥२॥
अहिंसालक्षणो धर्मः अधर्म प्राणिनां वधः। तस्माद्धर्मार्थिना लोके कर्तव्या प्राणिनां दया ॥
ध्रुवं प्राणिवधे यज्ञो नास्ति यज्ञ हिंसकः। सर्वसत्वेष्वहिंसैव सदा यज्ञो युधिष्ठिर ॥४॥

अर्थ—जो प्राणियोंका वध करता है उसकी सब क्रियाएं, सब यज्ञ और समस्त तीर्थों पर किये हुए अभिषेक व्यर्थ हैं। क्योंकि अहिंसा, सत्य, परिग्रहका त्याग और मैथुन करनेका त्याग वा ब्रह्मचर्यका पालन करना इन पांचोंमें ही सब धर्मोंका समावेश हो जाता है। इस संसारमें अहिंसा वा किसी प्रकारकी हिंसा न

करना ही धर्म है और प्राणियोंका वध करना ही अधर्म है इसलिये धर्मात्मा लोगोंको समस्त प्राणियों पर दया अवश्य पालन करनी चाहिये। जो यज्ञ प्राणियोंका वध करनेसे होता है वह कभी यज्ञ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्राणियोंका वध करनेवाला हिंसक समझा जाता है। और हे युधिष्ठिर! यज्ञ वही कहलाता है जिसमें समस्त प्राणियोंपर दयापालन की जाय, किसी भी प्राणीकी हिंसा न की जाय।

इसी भारतके शांतिपर्वमें लिखा है--

इन्द्रियाणि पशून् कृत्वा वेदीं कृत्वा तपोमयीम्। अहिंसामाहुतिं कुर्याच्चात्मयज्ञं यजामहे॥

अर्थ—पाँचों इन्द्रियाँ ही होम करनेकी सामग्री बनाना चाहिये, तपश्चरणको वेदी बनाना चाहिये और अहिंसाकी आहुति देनी चाहिये। इस प्रकार आत्मयज्ञ सदा करते रहना चाहिये।

इस संसारमें देखो बलिदान लेनेवाले देवता भी कैसे निर्दयी हैं जो हाथी, घोड़े, सिंह आदिका बलि तो नहीं लेते किन्तु केवल बकरेका होम बतलाते हैं। सो ठीक ही है। वैद्य भी दुर्बलोंका ही घात करता है। सो ही लिखा है—

अश्वं नैव गजं नैव सिंहो नैव च नैव च। अजापुत्रं बलिं दद्यात् दैवो दुर्बलघातकः॥

जो देवता बलिदान चाहते हैं वे देवता भी निर्दयी समझने चाहिये और उनका कर्ता भी महापापी समझना चाहिये। लिखा भी है—

यज्ञं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्। यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते॥

अर्थात्—यज्ञ करनेवाले यज्ञमें अनेक पशुओंको मार कर और रुधिरकी कीचड़ मचा कर यदि स्वर्ग चले जाते हैं तो फिर वे नरकमें किन-किन कामोंके करनेसे जायेंगे। भावार्थ—ये सब काम तो नरकमें जानेके कारण हैं यदि इनको स्वर्गका कारण मान लिया जायगा तो फिर नरकका कारण संसारमें कुछ मिलेगा ही नहीं अथवा अहिंसा, सत्य आदिको नरकका कारण मानना पड़ेगा, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता इसलिए यज्ञादिककी कल्पना सब व्यर्थ है। भारतके शांतिपर्वमें कृष्ण अर्जुनके संवादके समय लिखा है कि लोभी, मायाचारी, कपटी और इंद्रियोंके विषय-भोगोंके लोलुपी मनुष्योंने केवल अपने स्वार्थके लिए जीवोंकी हिंसामें धर्म माना है सो उनकी यह विपरीतता है। सो ही लिखा है—

लोभमायाभिभूतानां नराणां क्षीणदक्षिणाम्। एषां प्राणिवधे धर्मो विपरीता भवन्ति ते॥

भारतमें दया और हिंसाका स्वरूप दिखलाते हुए लिखा है—

अहिंसा सर्वभूतानां सर्वज्ञैः प्रतिभासिता। इदं हि मूलं धर्मस्य शेषं तस्यैव विस्तरः॥
उद्यन्तं शस्त्रमालोक्य विषादमयविह्वलाः। जीवाः कम्पति संत्रस्ताः नास्ति मृत्युसमं भयम्॥

अर्थ—समस्त जीवोंकी दया पालना, सबकी रक्षा करना अहिंसा है। यही सब धर्मोंका मूल है। बाकी सब इसीका विस्तार है। भावार्थ—जिस प्रकार वृक्षके टिकनेका मुख्य कारण जड़ है। जड़ होनेपर उसकी शाखाएँ प्रति शाखाएँ होती हैं और शाखाएँ आदि होनेपर उनपर फल लगते हैं उसी प्रकार धर्मरूपी वृक्षकी जड़ वा मूल दया है। दयाके सहारे ही यह धर्मरूपी वृक्ष टिका है। बाकी सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि सब इसी दया रूप मूलकी शाखाएँ हैं तथा त्याग, व्रत, जप, तप, संयम, उपवास, तीर्थयात्रा, दान आदि भी सब इस दया धर्मकी शाखाएँ हैं। इस प्रकार यह दया-धर्म सर्वोत्तम धर्म है ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है। हिंसा इससे विपरीत है। देखो जिस समय चण्ड कर्मोंको करनेवाला, दुष्ट बुद्धिको धारण करनेवाला, हिंसाके भावरूप रौद्र परिणामों से अत्यन्त भयानक, महापतित, अधम, नीच, भ्रष्टाचारी कोई घातक वा शिकारी पुरुष पशु-पक्षियोंको देखकर उनके मारनेके लिये उनपर शस्त्र उठाता है उस समय उस चमचमाते हुए शस्त्रको देखकर अपने मरनेके भयसे वह पशु वा पक्षी अत्यन्त विषादको प्राप्त होता है अत्यन्त विह्वल हो जाता है, घबड़ा जाता है उसका शरीर काँपने लगता है तथा वह बहुत ही भयभीत हो जाता है। सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें मृत्युके समान और कोई भय नहीं है। ऐसी हिंसाको न जाने लोग किस प्रकार कर डालते हैं। भारतमें लिखा है—

कंटकेनापि विद्धस्य महती वेदना भवेत्। चक्रकुंतासिशक्त्यार्द्धं छिद्यमानस्य किं पुनः॥

अर्थ—यदि अपने पैर आदि शरीरमें कहीं काँटा भी लग जाता है तो उससे ही बड़ी भारी वेदना वा दुःख होता है फिर भला अन्य जीवोंपर चक्र, भाला, बरछा, तलवार, शक्ति, तीर, गोली आदि अनेक प्रकार-के शस्त्रोंके प्रहार करनेपर छिदते वा मरते हुए उन जीवोंको कितना दुःख होता होगा। अपने शरीरमें काँटेका भी महादुःख होता है और उस काँटेसे बचनेके लिये जूता पहनते हैं वा और अनेक उपाय करते हैं परन्तु वे ही लोग अन्य जीवोंपर शस्त्रोंका प्रहार करते हुए उनके शरीरमें अनेक घाव करते हुए उनको मार डालते हैं

यह कितना बड़ा अन्याय है। ऐसे लोग शिकारी या व्याधा कहे जाते हैं। उनके वस्त्र, भेष आदि भी महा विकराल और पापरूप दिखाई पड़ता है।

भारतमें लिखा है—श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं कि—

यो दद्यात्कांचनं मेरुं कृत्स्नां चापि वसुन्धराम्। एकोऽपि जीवितं दद्यात् न च तुल्यं युधिष्ठिर॥

अर्थ—श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! किसी पुरुषने मेरुपर्वतके समान सुवर्ण दान दिया। तथा समस्त द्वीपोंकी समस्त पृथ्वी दान दे दी। तथा किसी दूसरे मनुष्यने किसी एक जीवको अभयदान दिया अर्थात् उसे मरनेसे बचाया उसे जीवदान दिया तो उस सुवर्णदान वा पृथ्वी दान देनेवालेका पुण्य जीवदान देनेवालेके पुण्यके समान नहीं होता। भावार्थ—उस सुवर्णदान वा समस्त पृथ्वीदानसे भी एक जीवके अभयदानका पुण्य बहुत अधिक है। संसारमें अभयदानके समान और कोई पुण्य नहीं है अथवा कोई दान नहीं है। जो लोग अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये जीव हिंसाकी पुष्टि करते हैं वे अत्यन्त दुष्ट और नीच हैं। भारतमें लिखा है—

यो यत्र जायते जन्तुः स तत्र रमते चिरम्। ततः सर्वेषु भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः॥

अर्थात्—यह जीव जहाँ जन्म लेता है वहीं रम जाता है, क्रीड़ा करने लगता है, वहीं सुख मानता है और वहाँ ही बहुत दिन तक रहकर जीना चाहता है। इसीलिये सज्जन पुरुष वा उत्तम मनुष्य समस्त प्राणियों पर दया पालन करते हैं। भारतमें लिखा है—

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु। तस्य ज्ञानं च मोक्षं च किं जटाभस्मचाम्बरैः॥

अर्थ—जिसका हृदय समस्त प्राणियोंमें होनेवाली दयाके द्वारा द्रवीभूत है, कोमल है उसीको ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उसीको मोक्षकी प्राप्ति होती है। ज्ञान और मोक्षके लिये जटाओंका बढ़ाना, शरीरमें भस्मका लगाना तथा गेरु आदिके रंगे हुए वस्त्रोंको धारण करना सब व्यर्थ है। बिना दयाके केवल भेष धारण करना स्वांग है उस भेषसे मोक्ष नहीं मिल सकती। वह भेष केवल लोभके लिये है।

यदि जीवोंके वध करनेमें, जीवोंकी हिंसा करनेमें धर्म है और जीवोंका घात करनेवाले वा मांस भक्षण करनेवाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं तो फिर संसारका त्याग करनेवाले व्रती, संयमी, तपस्वी वा अनेक यम नियमों-को धारण करनेवाले पुरुषोंको स्वर्गलोककी प्राप्ति कभी नहीं होनी चाहिये। ऐसे तपस्वियोंको फिर नरककी प्राप्ति होनी चाहिये परन्तु ऐसा होता नहीं है। भागवतमें लिखा है—

यदि प्राणिवधे धर्मः स्वर्गश्च खलु जायते। संसारमोचकानां तु कुतः स्वर्गोभिधीयते॥

इससे सिद्ध होता है कि जीवोंको हिंसा करनेवाले, मांस भक्षण करनेवाले वा और भी सप्त व्यसनोंका सेवन करनेवाले जीव ही नरकमें जाते हैं। लिखा भी है—

द्यूतं च मासं च सुरां च वेश्यां पापर्द्धिचौरीपरदारसेवाम्।
सेवन्ति सप्तव्यसनानि लोकाः घोरातिघोरे नरके प्रयान्ति॥

अर्थ—जुआ खेलना, मांस भक्षण करना, मद्य पान करना, वेश्या सेवन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना ये सात व्यसन कहलाते हैं। जो पुरुष इन सातों व्यसनोंका वा इनमेंसे किसी भी व्यसनका सेवन करते हैं वे घोरसे भी महाघोर नरकमें जाते हैं। इन व्यसनोंके सेवन करनेका ऐसा ही नरकमें जाना ही फल है।

कोई-कोई कहते हैं कि हम तो तीर्थोंपर स्नान करके अथवा और कोई पुण्य कार्य करके इन व्यसनोंसे उत्पन्न हुए पापोंको धो डालते हैं सो उनका यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि इसका उत्तर पहले अनेक श्लोकोंका प्रमाण देकर अच्छी तरह बतला चुके हैं। तथा प्रसंगानुसार थोड़ासा यहाँ भी लिखते हैं। भारतमें लिखा है—

मृदो भारसहस्रेण जलकुम्भशतेन च। न शुद्धयन्ति दुराचाराः तीर्थस्नानशतैरपि॥१॥
कामरागमदोन्मत्ताः स्त्रीणां ये वशवर्तिनः। न ते जलेन शुद्धयन्ति स्नानतीर्थशतैरपि॥२॥

अर्थ—जो पुरुष दुराचारी है वह अपनी शुद्धताके लिये यदि हजार भार प्रमाण मिट्टी अपने हाथ पैर आदि सब शरीरसे लगावे और फिर गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियोंके पवित्र जलके सैकड़ों घड़े भरकर स्नान करे तो भी वह शुद्ध नहीं होता। दुराचारी सैकड़ों तीर्थस्थानोंसे भी शुद्ध नहीं हो सकते। इसी प्रकार जो लोग कामके रागसे मदोन्मत्त हो रहे हैं और जो सदा स्त्रियोंके वशीभूत रहते हैं वे पुरुष न तो जलसे शुद्ध होते हैं और न सैकड़ों तीर्थस्नानोंसे शुद्ध होते हैं। दुराचारी लोगोंको ऐसा ही महापाप लगता है जो तीर्थोंके स्नानसे भी नहीं छूट सकता। फिर भला वह पाप दूसरी जगह कहाँ छूट सकता है? अर्थात् वह पाप कहीं नहीं छूट सकता।

शार्ङ्गधर संहितामें लिखा है—

कर्षाभ्यामर्द्धपलं ज्ञेयं सुक्तिरष्टमिका तथा । सूक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥

दशमासेका एक कर्ष होता है । लिखा भी है "कर्षस्तु दशमासकः" दो कर्षका एक पैसा होता है । दो पैसेका एक टका होता है । यहाँ टका कहनेसे टकाभर तोल समझना चाहिये इस प्रकार चालीस मासेका एक टका भर तोल समझना चाहिये । आगे उसी शार्ङ्गधरमें लिखा है—

पलानां द्विसहस्रं तु भारः एकः प्रकीर्तितः ॥

अर्थात् दो हजार पलोंका एक भार होता है । इस प्रकारके एक हजार भार मिट्टीसे तथा गंगा आदि तीर्थोंके सैकड़ों घड़े जलसे भी मांसाहारी कभी शुद्ध नहीं हो सकता । यही बात पहले पर्वमें लिखी है—

चित्तं रागादिसंक्लिष्टमलीकवचनैर्मुखम् । जीवहिंसाभिः कायोयं गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥

अर्थ—जिसका चित्त राग, द्वेष, मोह, मद, काम आदिसे मलीन है, मुख मिथ्या वचनोंसे झूठ बोलनेसे मलीन है और जीवोंकी हिंसा करनेसे जिसका शरीर मलीन है उसके लिये गंगा भी प्रतिकूल हो जाती है । गंगा ऐसे पुरुषके सन्मुख कभी नहीं हो सकती । ऐसे पापियोंको नहीं मिल सकती अर्थात् ऐसे पापियोंके पाप तीर्थोंमें भी नहीं कट सकते ।

कोई-कोई लोग तीर्थोंमें स्नान करने मात्रसे ही समस्त पापोंका छूट जाना मानते हैं तथा शुभ गतियोंका होना मानते हैं सो भी ठीक नहीं है । क्योंकि यदि तीर्थोंमें स्नान करने मात्रसे जीव तिर जांय, पापोंसे छूट जांय तो फिर गंगा आदि तीर्थोंके जलमें रहनेवाले मछली, मेंडक, मगरमच्छ, कछवा आदि जलचर जीव सब ही मुक्त हो जाना चाहिये । सबहीके पाप छूट जाना चाहिये । परंतु ऐसा होता नहीं है । लिखा भी है—

यथंबुस्नानतो देही कृतपापाद्विमुच्यते । मुक्तिं यांति सदा सर्वे जीवास्तोयसमुद्भवाः ॥

वेदव्यासने अठारह पुराण बनाये हैं । परन्तु उन सबका सार केवल दो वचनोंमें लिखा है । जीवोंको अभयदान देनेसे तथा अन्य प्रकारसे पर जीवोंका उपकार करनेसे पुण्य होता है तथा अन्य जीवोंको पीड़ा देनेसे पाप होता है । बस सब पुराणोंमें ये ही दो वचन सार हैं और बाकी सब निःसार हैं । सो ही लिखा है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् । परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।

इस प्रकार और भी अनेक पुराणोंमें जीवोंकी हिंसा करनेमें और मांस भक्षण करनेमें अनेक दोष बतलाये हैं। तथा स्थान-स्थानपर इनके त्याग करनेका उपदेश दिया है। इसलिये सत्पुरुषोंको इन दोनोंका त्याग कर देना ही उचित है। जो निर्दयी, नीच, शूद्रोंके समान विषयोंके लंपटी, महापापोंके द्वारा अधोगतिको जानेवाले धर्मोंका नाश करनेवाले और पापोंको बढ़ानेवाले लोग अनेक प्रकारकी बातें बनाकर जीवहिंसा करने, मांस भक्षण करने, मद्यपान करने, शहद खाने तथा और भी महापापोंका आचरण करनेमें आनंद मानते हैं और धर्मकी हँसी करते हैं वे महा अशुभ कर्मोंका बंध कर नरकादि कुगतियोंमें चिरकाल तक परिभ्रमण करते रहते हैं।

यहाँपर कदाचित् कोई यह कहे कि सब लोग तो ऐसा करते नहीं हैं। द्राविणी संप्रदायके ब्राह्मण तो इसका नाम उच्चारण होते ही भोजनका त्याग कर प्रायश्चित्त लेते हैं। वे अपने धर्ममें इतने दृढ़ हैं। परन्तु कुछ संप्रदायवाले इनका ग्रहण करते हैं सो वे जुदे हैं। सो उनका यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि यद्यपि द्राविड़ी आदि संप्रदायके लोग इनका ग्रहण नहीं करते तथापि वे इनके ग्रहण करनेका उपदेश तो देते हैं, वेद, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक, यंत्र, तंत्र, मंत्र आदि कार्योंमें जीव हिंसाका उपदेश देते हैं। यज्ञमें जीवोंके हवन करनेका तथा देवताओंको बलिदान देनेका उपदेश देते हैं। राजा आदि क्षत्रियोंको शिकार खेलना तथा मद्य, मांस, शहद आदिका सेवन करना उनका परंपरासे चला आया कुल धर्म बतलाते हैं। इन सब पापोंको शास्त्रोक्त बतलाते हैं और उसमें धर्म बतलाते हैं। परन्तु उनका यह उपदेश देना उनके सेवन करनेसे भी बढ़कर है। जो अपने स्वार्थके लिये बकरे, भैंसा आदि पशुको मारता है वह अवश्य नरकमें जाता है। तथा इनका उपदेश देनेवाला इनके करनेवालोंसे बहुत अधिक पापी गिना जाता है।

बहुतसे लोग कहते हैं देवताओंकी पूजाके लिये, पितरोंको तृप्त करनेके लिये, यज्ञमें होम करनेके लिये पशुओंकी हिंसा करनी हिंसा नहीं कहलाती है। वे लोग ऐसे कार्योंमें पशुओंको मारते हैं, उनके मांसको खाते हैं और कहते हैं कि इसमें कोई पाप नहीं है। यह मांस नहीं है किंतु देवताओंका प्रसाद है। ऐसा कहकर तथा उसे निर्दोष बताकर उपदेश देते हैं और फिर उसमें शास्त्रोंको साक्षी बतलाते हैं जैसा कि शार्ङ्गधर कथित सुभाषितसंहिता तीसवें परिच्छेदमें लिखा है—

आत्मार्थं यः पशुं हन्यात् सोऽवश्यं नरकं व्रजेत् ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार बहुतसे ब्राह्मण उपदेश किया करते हैं परंतु उनका यह उपदेश देना महा मिथ्या है। क्योंकि उपदेश देनेसे करनेसे भी अधिक पाप लगता है। करनेसे एक ही जीव द्वारा हिंसा होती है और उपदेश देनेसे हजारों जीवोंके द्वारा हिंसा होती है तथा हजारों जीवोंको मिथ्या श्रद्धान और मिथ्या ज्ञान हो जाता है। इसलिये ऐसा करना वा कराना सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है। ऐसा समझ कर उत्तम धर्मका सेवन करना चाहिये और हिंसामयी धर्मका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। यही कहनेका अभिप्राय है।

इनके वेद पुराणोंमें भी जीवोंकी प्रत्यक्ष हिंसामें तथा अनेक अनाचारोंमें धर्म बतलाया है। तथा बड़े-बड़े विरुद्ध वचन लिखे हैं। जैसे—मत्स्यावतारके मत्स्यका उदर बनाते हैं, कच्छपावतारमें कछुएका मुँह बताते हैं, वराह (सूअर) अवतारमें सूअरका तुण्ड कहते हैं, नृसिंहावतारमें सिंहका मुँह बताते हैं। इस प्रकार उन अवतारोंको पशुओंके आकारके बतलाते हैं तथा उन्हें पशुओंकी योनि मानते हैं। इसी प्रकार कल्की अवतार-को केवल अश्वरूप (घोड़ेके आकारका) मानते हैं और कहते हैं कि परमेश्वरने दैत्यादिक दुष्ट जीवोंका वध करनेके लिये अथवा भक्तोंका पालन करनेके लिये उस घोड़ेमें आकर निवास किया है। ऐसे पुराणोंके वाक्य हैं। ऐसे वाक्योंको कहते हुए भी बड़े-बड़े वैष्णव तथा शैवधर्म वाले अथवा भील आदिक जीव उन मत्स्योंको, कछुओंको, सूअरोंको और सिंहोंको शस्त्रोंसे वा जालमें पकड़ कर मारते हैं और फिर उसको शिकार कहते हैं। वे लोग उनके मांसको खाते हैं और कहते हैं हम वैष्णव हैं। वे लोग जनेऊ पहिनते हैं, तिलक लगाते हैं, कण्ठी पहिनते हैं, स्नान, सन्ध्या, आचमन, तर्पण, पूजन, दान आदि करते हैं और फिर पीछे भोजनके समय जो छूने योग्य नहीं ऐसी अस्पृश्य रसोईमें बैठकर उन्हीं पात्रोंमें जीवोंका मांस भक्षण करते हैं। उसे अपना कुलधर्म बतलाते हैं। उस मांसको बड़ी प्रशंसा करते हुए खाते हैं और साथमें मद्य भी पीते हैं। ऐसे अनेक निंद्य कर्तव्य करते हैं। परन्तु उस समय वे लोग ठीक शूद्रोंमें खटीक जातिके शूद्रोंके समान तथा मुसलमानोंमें कसाईयोंके कामको करनेवालोंके समान दिखाई पड़ते हैं। वे लोग जो जनेऊ पहिनते हैं और अपनेको पवित्र मानते हैं सो उनका जनेऊ पहिनना वा पवित्र मानना मद्य भरे हुए घड़ेके समान है। जिस प्रकार मद्यके घड़े-

को मिट्टीसे मांज कर ऊपरसे गंगा जलसे धोते हैं इस प्रकार उसे ऊपरसे साफ कर लेते हैं तथापि उसके भीतर-की अशुद्धता कभी जाती नहीं वह मद्य भरा हुआ घड़ा मांजने और गंगाजलसे धोनेपर भी कभी शुद्ध नहीं हो सकता। उसी प्रकार मद्य, मांस आदिका सेवन करनेवाले पुरुष जनेऊ पहिनने वा गंगाजलसे स्नान कर लेनेपर भी कभी शुद्ध नहीं हो सकते ।

इन लोगोंकी विरुद्धता कहां तक कही जाय देखो जिस मुखसे तुलसी और शालिगरामका चरणामृत लेते हैं और फिर उनके भोगका महाप्रसाद भी खाते हैं और फिर उससे अपनी अच्छी गति भी चाहते हैं सो यह बड़ा अनर्थ है। देखो इस समय भी लोक परम्पराके अनुसार वृद्ध पुरुष झूठ बोलनेवालोंसे कहा करते हैं कि जिस मुखसे खांड खाई जाती है उस मुखसे क्या धूलि खानी चाहिये। सो उनका यह कहना सत्य है। क्योंकि जिस मुखसे तुलसीका चरणामृत लेना उसी मुखसे क्या मांस खाना और मद्य पीना योग्य है ? और उस मांस भक्षण करने तथा मद्यपान करनेमें धर्म मानना अधोगतिका कारण नहीं है ? अवश्य ही ऐसे लोगोंको नरकादिक अशुभगतिमें प्राप्त होती है ।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि गति तो मुसलमान, जैनी वा वैष्णव तीनोंकी नहीं हो सकती। ये लोग चाहे तो मद्य-मांसादिकका सेवन करें अथवा उसका त्याग करें, तथापि तीनों ही नरकके पात्र हैं। सो ही लिखा है—

म्लेच्छा ध्यानं दया जैनी भक्तिर्भागवता जनाः ।
त्रयोपि नरकं यान्ति हिंसा अशुचि निन्दनात् ॥

अर्थ—मुसलमान आदि म्लेच्छ लोग तो ध्यानको मुख्य मानते हैं। एक दिनमें पांच बार नमाज पढ़ते हैं तो भी वे जीवोंकी हिंसा करनेसे नरकमें जाते हैं। जीव हिंसाके कारण उनका ध्यान भी कुछ काम नहीं करता। जैनी लोग दया पालन करते हैं परन्तु एक अपवित्रताके पापसे वे भी नरक जाते हैं। इसी प्रकार भागवती वैष्णव पुरुष नारायणकी भक्ति करते हैं तथापि परनिन्दाके पापसे वे भी नरकके पात्र कहे जाते हैं। इस प्रकार मुसलमानोंके ध्यानके फल तो हिंसा करनेसे निरर्थक हो जाता है, जैनियोंकी दया पालनेका शुभ फल मलिनताके दोषसे व्यर्थ हो जाता है और वैष्णवोंकी भक्तिका फल परनिन्दासे मिथ्या हो जाता है। इस प्रकार

तीनोंको ही अच्छी गति नहीं मिल सकती परन्तु उनका यह कहना कुछ अंशोंमें सत्य है। म्लेच्छोंका ध्यान तो कुछ ध्यान ही नहीं है और न वह कुछ प्रशंसाके योग्य है क्योंकि उनकी सब क्रियाएं उलटी हैं। इसलिये वे सर्वथा अयोग्य हैं। भागवती पुरुष परनिन्दाके महापापसे नरक जाना ही चाहिये। भागवती पुरुष जैनधर्मसे भारी शत्रुता रखते हैं। अरहन्तदेव और जैनधर्मकी बड़ी निन्दा करते हैं। जैनधर्मसे द्वेष करते हुए अनेक प्रकारके विपरीत कार्य करते हैं। 'न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' अर्थात् 'जैनियोंके मन्दिरमें कभी नहीं जाना चाहिये।' यहां तक वे उपदेश देते हैं। सो ऐसे पुरुषोंको नरक होना ही चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु जैनियोंकी दया अपवित्रताके दोषसे नरक जानेवाली बतलाई सो ठीक नहीं है। क्योंकि सब जैनी अपवित्र नहीं है। कुछ केवल नाम मात्रके जैनी कहलाने वाले श्वेताम्बरादिक ऐसे हैं जिन्होंने अपवित्र आचरणोंका निरूपण किया है उन्हीं श्वेताम्बरोंमें परस्परके रागद्वेषसे तथा क्रोध, मान आदि कषायोंसे विजयगच्छ, खरतरगच्छ, पुण्यागच्छ आदि अलग-अलग चौरासी गच्छ हो गये हैं। उन्होंमें एक लोकागच्छ हुआ था उसने अनेक प्रकारके हीनाचरण स्थापन किये हैं। उस लोकागच्छके उत्पन्न होनेके कितने ही वर्ष पीछे ढूंढिया साधु हुए हैं। उनके पीछे एक भीष्म नामका ढूंढिया हुआ था जिसने तेरह ढूंढियाओंका अलग समुदाय बनाकर अपने नामका भीष्मपंथ अथवा तेरहपंथ चलाया। इस प्रकार इन लोगोंने अलग-अलग धर्म चलाये हैं और हीनसे हीन, महा अपवित्र, महा अशुद्ध आचरणोंका निरूपण किया है। ये लोग दया पालनका तो उपदेश देते हैं परन्तु महा अशुद्ध रहनेके कारण उनके द्वारा अनेक जीवोंकी हिंसा होती है। इसलिये ऐसी हिंसा करनेवाले ढूंढिया आदि जैनी नरकके पात्र हैं ही। एक ढूंढियाओंके निंद्य आचरणोंको देखकर सब जैनी ऐसे अपवित्र नहीं हैं। ऐसा जानकर जीवोंकी दया सदा पालन करते रहना चाहिये। संसारमें जीव दया ही मुख्य धर्म है।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि संसारमें जीवोंकी दया पल कैसे सकती है। क्योंकि बिना आहारके तो कोई जीव जीवित रह ही नहीं सकता। परन्तु उसका यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि जितने जीवोंकी रक्षा हो सकती है उतने जीवोंकी रक्षा जरूर करनी चाहिये। त्रस जीवोंकी रक्षा करना तो मनुष्य मात्रका धर्म है तथा अपने भाव सब जीवोंकी रक्षा करनेके रखने चाहिये। बहुतसे आरम्भका तो त्याग कर देना ही चाहिये। तथा अल्प आरम्भमें अपने भावोंसे महा हिंसाका त्याग कर देना चाहिये। संसारमें यही सार है और सब असार है।

कितने ही मुसलमान वा चांडालादिक नीच शूद्र हिंसा करते हैं मद्य, मांसका सेवन करते हैं और अपने कुमतिज्ञान वा कुश्रुतज्ञानके बलसे उस मद्य, मांसादिकके सेवनको ठीक बतलाते हैं सो वे प्रत्यक्ष अधोगामी हैं इसमें किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है।

कदाचित् यहांपर कोई मुसलमान यह कहे कि "तुम लोग खाते-पीते हो क्या उसमें जीवोंकी हिंसा नहीं होती ? सो भी कहना मिथ्या है क्योंकि इसका उत्तर पहले बहुत कुछ दिया जा चुका है। तथा फिर भी अत्यन्त संक्षेपसे इसका उत्तर यह है कि इस संसारमें जीव दो प्रकार हैं। एक तो ऐसे हैं जिनमें जीवकी सत्ता जीवके प्राण वा जीवका स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है ऐसे जीवोंको त्रस जीव कहते हैं। तथा दूसरे ऐसे हैं जिनमें जीवकी सत्ता वा स्वरूप केवल अनुमानसे जाना जाता है बाहरसे वे अजीवसे ही दिखाई पड़ते हैं। ऐसे जीवोंको एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। ये एकेन्द्रिय जीव पत्ते, पुष्प, फल आदिक जलसे उत्पन्न होते हैं इसलिये ये माताके दूधके समान ग्रहण करने योग्य वा खाने योग्य समझे जाते हैं। तथा पशु, पक्षी, मछली, मनुष्य आदिक जीव त्रस जीव हैं जो माता-पिताके रुधिर, वीर्यसे उत्पन्न होते हैं। जिनको तुम लोग पेशाबसे उत्पन्न होना बतलाते हो। सो ऐसे स्त्रीके दूधके समान अग्राह्य वा त्याग करने योग्य अभक्ष्य बतलाये हैं। जिस प्रकार स्त्रियोंके दूधकी अपेक्षा माता और स्त्रीका दूध समान है तथापि माताका दूध पीने योग्य है और स्त्रीका दूध पीने योग्य नहीं है। उसी प्रकार जीवत्वकी अपेक्षासे जीव एक हैं तथापि उनकी उत्पत्तिमें अन्तर होनेसे तथा वृक्ष आदिक एकेन्द्रिय जीवोंके शरीरकी मांस, संज्ञा न होनेसे वे ग्रहण करने योग्य वा भक्ष्य कहे गये हैं। जिस प्रकार गायके दूध और गायके मांसमें अन्तर है जिस प्रकार मनुष्यके विष्ठा और गायके गोबरमें अन्तर है उसी प्रकार त्रस और स्थावर जीवोंमें भी अन्तर है। मांस भक्षण स्त्रीके दूधके समान ग्रहण करने योग्य नहीं है पेशाबसे उत्पन्न होनेके कारण नापाक वा अपवित्र है। जिस पेशाबके लगनेसे किया हुआ रोजा भी नहीं लगता उस पेशाबसे बने हुये मांसके भक्षण करनेसे भला पवित्रता कहाँ रह सकती है।

इस प्रकार अन्य शास्त्रोंके प्रमाण देकर मांसके अनेक दोष बतलाये। आगे जैन शास्त्रोंके अनुसार इसका विचार करते हैं। श्री वसुनन्दिश्रावकाचारमें लिखा है—

मांसं अमेज्झसरिसं किमिकुलभरियं दुगं विभत्थं।
पाएणवि णत्थि वे उ जं ण नीरए स कह भोत्तु॥

अर्थ—यहाँ मांस मनुष्यकी विष्ठाके समान है। विष्ठा और मांसमें कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं इसलिये मांस विष्ठाके समान है। गाँधके सूअर तथा कोवे, गीध मांसाहारी जीव मांस और विष्ठा दोनों-को खाते हैं इससे साबित होता है कि मांस बिल्कुल विष्ठाके समान है। इसके सिवाय वह मांस लट तथा अन्य छोटे-छोटे जन्तुओंसे भरा हुआ है। अत्यन्त दुर्गन्धमय घृणित है। पैरसे भी छूने योग्य नहीं है। और न कोई उसके पास जाता है। ऐसा मांस भला भक्षण योग्य किस प्रकार हो सकता है? अर्थात् कभी नहीं हो सकता। ऐसे महा निन्दनीय मांसको खाना अत्यन्त अशुभ कर्मके उदयका माहात्म्य है। ऐसे घृणित मांसको घृणित जानते हुये जो खा जाते हैं वे अवश्य नरकके पात्र हैं इसमें कोई संदेह नहीं। ऐसे जिन शास्त्रोंके वचन हैं। इसका विशेष स्वरूप अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये।

मांसादिकके भक्षण करनेसे दयाधर्मका लोप होता है। जो जीव इनका त्याग नहीं करते वे उस पाप-के उदयसे नरकमें ही जाते हैं ऐसा सिद्धांत है। जो लोग लोभी हैं, कपटी हैं, मानी हैं, क्रोधी हैं, इन्द्रियोंको पुष्ट करनेवाले विषय भोगोंके लंपटी हैं उन्होंने अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये तथा राजा, महाराजा आदि बड़े लोगोंको ठगनेके लिये हिंसामयी शास्त्र बनाये हैं। तथा ऐसे शास्त्रोंका पढ़ना-पढ़ाना भी स्वार्थके ही लिये होता है। राजा, महाराजाओंको खुश रखनेके लिये उनको इच्छानुसार अर्थ निरूपण किया है। धर्मके अनुसार चलनेवाले स्पष्ट वेत्ताओंके स्पष्ट वाक्य नहीं है इसलिये विपरीत हैं और सम्यग्दृष्टियोंके श्रद्धान करने योग्य नहीं हैं।

शास्त्रोंमें जो यह लिखा है कि—

येषां न विद्या न तपो न दानं। न चापि शीलं न दया न धर्मः॥
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति॥

अर्थात्—जिसके पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न दया है, और न धर्म है अर्थात् जो जीवोंकी हिंसा करते हैं। मांस भक्षण करते हैं मद्यपान करते हैं ऐसे जीव इस मृत्युलोकमें पृथ्वीके भार हैं। ऐसे मनुष्य मनुष्यके आकारके पशु ही समझने चाहिये। यह जो शास्त्रोंमें लिखा है सो ऐसे ही हिंसक वा मांसाहारियोंके लिये लिखा है। [४३

मांसाहारी पुरुषोंके आचरण कुत्तोंसे भी गये बीते हैं। वेखो राजा, महाराजा आदि बड़े-बड़े मांसाहारी पुरुष मांसके लोभसे वनमें शिकार खेलने जाते हैं। उनके साथ अनेक शिकारी कुत्ते रहते हैं तथा उन कुत्तोंको पालने वाले चांडाल आदि भी साथ रहते हैं। उन चांडालोंकी उच्छिष्ट वा झूठन वे कुत्ते खाते ही हैं। ऐसे कुत्तोंको हिरण, सांभर, रोज आदि जंगली जानवरोंपर छोड़ देते हैं वे कुत्ते अपने मुँहसे उन पशुओंको पकड़ लेते हैं तथा मारकर ले आते हैं। फिर उसका शरीर फाड़कर मांस निकालते हैं और वे राजा, महाराजा आदि बड़े आदमी उस मांसको खा जाते हैं। भला सोचनेकी बात है चांडाल वा मुसलमान आदिको झूठन खानेवाले शिकारी कुत्तोंके मुँहसे पकड़ा हुआ यह मांस बड़े-बड़े पुरुषोंके द्वारा खाया जाता है। तथा वे बड़े-बड़े पुरुष उस कुत्तोंकी झूंठन मांसको खाकर अपनेको बहुत कुछ कृतार्थ मानते हैं। एक तो वह मांस दूसरे कुत्तोंकी झूंठन परंतु फिर भी लोग उसे खा जाते हैं ऐसे मांसको खानेवाले संध्या, आचमन भी करते हैं, नमाज पढ़ते हैं, रोजा रखते हैं, हज करते हैं और इन कामोंको करते हुए अपनेको बहुत कुछ कृतार्थ मानते हैं। परन्तु विचार करनेपर वे सब चांडालके समान वा कुत्तोंके समान अस्पृश्य मालूम होते हैं।

कदाचित् यहांपर कोई वेदांती यह कहे कि ये सब जीवात्मा प्राणी मात्र इस ब्रह्मांडमें सृष्टि मात्रके भूत वा प्राणी हैं वे सब सदा जीवित रहते हैं। वे किसीके द्वारा मारे नहीं जाते। यह जीव अनादिकालसे जीता आ रहा है, वर्तमानमें जी रहा है, और आगे जीवेगा। न कभी मरा है, न कभी मरेगा इसलिये दया पालन करना व्यर्थ है। क्योंकि किसी भी जीवकी कभी हिंसा होती ही नहीं है। परन्तु वेदान्तीका यह कहना सर्वथा मिथ्या है। और महा अनर्थका मूल है। क्योंकि यदि यह जीव अमर है कभी मरता ही नहीं तो फिर गाय, ब्राह्मण आदि की हत्या करनेवालेको हत्यारा क्यों कहते हो ? तथा जब तक उसे प्रायश्चित्त नहीं दे लेते तब तक उसे पंक्तिबाह्य क्यों रखते हो ? स्त्री, बालक, राजा, कन्या, ब्राह्मण, गुरु, गाय, मुनि आदिकी हिंसा करनेवालेको महापापी क्यों कहते हो ? यदि जीवको सर्वथा अमर मानोगे तो अन्य जीवोंकी हिंसा करनेसे पाप उत्पन्न होता है और ऊपर लिखे स्त्री, बालक आदि जीवोंकी हिंसा करनेसे महापाप उत्पन्न होता है। यह जो शास्त्रोंमें लिखा है सो सब व्यर्थ हो जायगा परन्तु यह शास्त्रोंका लिखना कभी व्यर्थ नहीं हो सकता और तेरा कहना कभी सत्य नहीं हो सकता क्योंकि पुराणोंमें लिखा है कि गाय, ब्राह्मण आदिकी दया पालनी चाहिये उनको

रक्षा करनी चाहिये। उनकी दयाके लिये क्षत्रियोंको उचित है कि वे सिंहादिक दुष्ट जीवोंके शब्द सुनते ही भोजन छोड़कर उनके बचानेके लिये जांय। जब यहां तक जीवोंकी दयाका विधान है तो फिर वेदांतियोंका कहना कभी सत्य नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार गाय, ब्राह्मण आदिकी हिंसा करनेमें महापाप होता है और उनकी रक्षा करनेमें महाधर्म होता है उसी प्रकार अन्य जीवोंकी हिंसा करनेमें भी महापाप होता है और उनकी दया पालन करने वा रक्षा करनेमें महाधर्म होता है। वास्तवमें देखा जाय तो समस्त जीवोंकी दया पालन करना ही सबसे बड़ा धर्म है। पाप कार्य करनेसे यह जीव नरक, तिर्यंच गति पाता है। पुण्य कार्य करनेसे मनुष्यगति पाता है और धर्म साधन करनेसे स्वर्ग, मोक्ष पाता है। यह जो शास्त्रोंमें लिखा है सो कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। और इसीलिये तेरा कहना कभी सत्य नहीं हो सकता।

यदि यह मान लिया जायगा कि जीव सब एक समान हैं क्योंकि सब ब्रह्मस्वरूप हैं तो फिर माता, पुत्री, बहिन, स्त्री आदिका रूप भी एक ही माना जायगा और फिर सबके साथ विषय-सेवन करना भी एक-सा ही माना जायगा परन्तु ऐसा कहना वा मानना अनर्थोंका उत्पन्न करनेवाला है। इसलिये इस प्रकार कहने वाला वेदांतमत कभी ठीक नहीं हो सकता।

यहांपर कोई आयुर्वेदी कहता है कि यह जीव अपनी आयु पूर्ण होनेपर ही मरता है किसीके मारनेसे नहीं मर सकता। आयु पूर्ण होनेपर चाहे कितने ही यन्त्र, मन्त्र किये जांय परन्तु वह बच नहीं सकता। इससे सिद्ध होता है कि आयु पूर्ण हुए बिना कोई मर नहीं सकता। हां, जिसको जैसा निमित्त मिलना होता है या जैसी होनहार होती है जिस प्रकार मृत्युका होनहार निश्चित होता है उसी प्रकार वह जीव मरता है। जिसकी आयु अधिक होती है जो दीर्घ आयु वाला होता है वह बिना प्रयत्नके भी बच जाता है। बचानेसे कोई जीव बचता नहीं और मारनेसे कोई मरता नहीं। मारने वा बचानेका कर्त्तव्य करना सब झूठा है। सो ही लघु चाणिक्यमें लिखा है—

भवितव्यं यथा येन नासौ भवति चान्यथा। नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति ॥६॥

अर्थात्—जो होनहार होता है वह अन्यथा नहीं हो सकता। जिसका जहां जैसा होनहार होता है वह

देवके द्वारा उसी मार्गसे ले जाया जाता है अथवा वह स्वयं उस मार्गसे चला जाता है। ऐसा आठवें अध्यायमें लिखा है। परन्तु आयुर्वेदीका यह कहना भी सत्य नहीं है। यदि यह बात सत्य मान ली जाय तो जब वह मनुष्य स्वयं रोगी होता है अथवा उसके परिवार वा कुटुम्बका कोई मनुष्य रोगी होता है तो उसको औषधि क्यों दी जाती है। यदि कोई शस्त्रादिकसे मारना चाहता है तो उसके बचानेका उपाय क्यों किया जाता है। उसका रोग दूर करने अथवा उसको बचानेके लिये देव, देवियोंका आराधन क्यों किया जाता है। दान, पुण्य, जप क्यों किया जाता है, परमेश्वरका भजन वा भक्ति क्यों की जाती है। यदि जीव मारनेसे मरता ही नहीं, आयु पूर्ण होनेपर ही मरता है तो फिर संसारमें जो-जो उपाय किये जाते हैं वे सब व्यर्थ मानने पड़ेंगे। क्योंकि यदि आयु होगी तो वह बिना किसी उपायके अपने आप बच जायगा। आयु पूर्ण हुए बिना कोई भी रोगी नहीं मर सकता इसलिये उसकी चिकित्सा करना, इलाज करना व्यर्थ हो जायगा परन्तु संसारमें ऐसा होता नहीं है और न यह किसीका सिद्धांत है इसलिये आयुर्वेदीका ऊपर लिखा सिद्धांत सर्वथा मिथ्या है।

यदि जन्म, मरण कोई चीज नहीं है तो अपने मरनेके समय तथा अपने कुटुम्बके किसीके मरने समय शोक क्यों करते हो ? रोते क्यों हो, किसीका जन्म होते समय हर्ष क्यों मनाते हो। यदि जन्म, मरण कुछ नहीं है तो जन्म, मरणके समय हर्ष, विषाद भी नहीं करना चाहिये परन्तु समस्त संसार करता है और शास्त्रोंमें भी लिखा है इसलिये जन्म, मरणको न मानना लोकविरुद्ध और शास्त्रविरुद्ध है। दया धर्मका लोप करनेवाला है और हिंसादिक महापापोंको उत्पन्न करनेवाला है इसलिये धर्मात्माओंको कभी मान्य नहीं हो सकता।

कदाचित् यहाँपर कोई यह कहे कि आयु पूर्ण हुए बिना जीव मरता है यह बात अभी तक निःसंदेह नहीं हुई है। तो इसका उत्तर यह है कि मरणके दो भेद हैं। उदय और उदीरणा। जो शस्त्र, अग्नि, जल, श्वासोच्छ्वासका निरोध मर्मस्थानकी चोट, क्षुधा, तृषा, दुस्तर रोग और पतन आदिसे जीवका मरण होता है उसको कदलीघात मरण अथवा उदीरणामरण कहते हैं। इसका विशेष स्वरूप अष्टपाहुड़ आदि शास्त्रोंमें लिखा है। इसी प्रकार अपनी आयु पूर्ण होनेपर जो मरण होता है उसको उदय मरण कहते हैं। जिस प्रकार कच्चे आमको पालमें देकर पका लेते हैं और वह पालमें देनेसे मर्यादाके पहले ही पक जाता है उसी प्रकार विष, शस्त्र आदिके कारण मिलनेसे जो आयुके समस्त निषेक बीचमें ही खिर जाते हैं उसको अकालमरण

कदलीघातमरण वा उदीरणा मरण कहते हैं तथा जिस प्रकार आम डालीपर लगा हुआ क्रम-क्रमसे अपने समय-पर पकता है और पककर गिर जाता है उसी प्रकार आयु पूर्ण होनेपर मरण होना उदय मरण कहलाता है। लिखा भी है—

आपक्वमपि चूतस्य सुंठिगुडप्रलेपनात्। धर्मे संस्थापनादेव सुस्वादु पक्वत्वां व्रजेत्॥

अर्थात्—कच्चे आमको सोंठ, गुड़का लेप करनेसे तथा धूपमें रखनेसे वह पक जाता है और स्वादिष्ट हो जाता है उसी प्रकार कारण मिलनेपर मरण भी समय पूर्ण हुये बिना ही हो जाता है। श्रीउमास्वामीने भी श्रीतत्त्वार्थसूत्रमें लिखा है—

औपपादिकचरमोत्तमदेहा संख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥

अर्थात्—देव, नारकी उत्तम शरीरको धारण करनेवाले चरमशरीरी और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियाँ। इनकी आयु तो बीचमें नष्ट नहीं होती अर्थात् इनका तो कदलीघातमरण नहीं होता बाकी जीवों-का नियम नहीं है। होता भी है और नहीं भी होता।

यहाँपर सब ही चरमशरीरियोंका ग्रहण नहीं है किंतु उत्तम शरीर कहनेसे तीर्थंकरका ही ग्रहण करना चाहिये। अन्य सामान्य केवली, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, गुरुदत्त, पांडव आदिके उदय, उदीरणा दोनों मरण समझना चाहिये। जिस प्रकार दीपकमें तेल रहते हुये भी वायुके झोकेसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार उपसर्ग वा शस्त्रादिकसे आयु पूर्ण हो जाती है।

यहाँपर कदाचित् कोई तत्त्ववादी यह कहे कि यह आत्मा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पांच तत्त्वोंसे बना है आयु पूर्ण होनेपर इसके सब तत्त्व अपने-अपने तत्त्वोंमें मिल जाते हैं। इसलिये जीवोंकी हिंसा वा दया कुछ नहीं है। जीवके मरनेका अर्थ तत्त्वका तत्त्वमें मिल जाना है सो इसमें हिंसा होती नहीं है। परन्तु उनका यह कहना भी सर्वथा मिथ्या है। तथा महा पापरूप है। यदि पंचतत्त्व मिलकर ही शरीरमें जीव

१. सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक आदि ग्रंथोंमें सब ही चरमशरीरियोंका मरण उदयमरण बतलाया है। उसमें लिखा है कि चरम-शरीरियोंका शरीर उत्तम होता ही है इसीलिये उत्तम शरीर यह चरमशरीरियोंका विशेषण है। यदि 'चरमोत्तमदेहाः' इसकी जगह चरमदेहाः ऐसा पाठ कर दें तो भी कोई हानि नहीं है इसके अनुसार राजकुमार पांडव आदि अन्तकृतकेवलियोंको जो मोक्ष हुई है सो आयुके पूर्ण होनेपर ही हुई समझना चाहिये।

बन जाता है उसके पुण्य, पाप कुछ होता नहीं है फिर स्वर्ग वा नरकोंमें जीवोंका आकार अनेकरूपका किस प्रकार हो जाता है। इन गतियोंमें जीव अनेक प्रकारके सुख-दुख किस प्रकार भोगते हैं। स्वामी, सेवक, माता, पिता, पुत्र, पौत्र, भगिनी पुत्र आदिका व्यवहार किस प्रकार हो जाता है। तेरी तथा अन्य मनुष्योंकी उत्पत्ति माता-पितासे ही क्यों होती है पंचतत्त्वोंसे ही क्यों नहीं होती ? यदि पंचतत्त्वसे जीव उत्पन्न होता है पंचतत्त्वसे ही उत्पन्न होना चाहिये फिर मातासे क्यों उत्पन्न होता है ?

यदि जीव पंचतत्त्वसे उत्पन्न हुआ है तो फिर वेद-पुराणोंमें यह जो लिखा है कि जीव मर कर परलोकमें जाता है। वहाँपर धर्मराय सबके पुण्य-पापका हिसाब देखते हैं तथा उनके कर्त्तव्यके अनुसार उनको नारकादिक गति देते हैं सो यह पंचतत्त्वके मिले बिना उत्पन्न हुआ जीव कौन-सा है। जो इस प्रकार परलोकमें जाता है।

यदि जीव पंचतत्त्वसे बना है और मर कर पंचतत्त्वमें ही मिल जाता है तो फिर जो कोई मर कर सर्प वा भूत-प्रेत योनिमें जन्म धारण कर लेता है और फिर अपने कुटुम्बसे कहता है कि हम प्रेतादिक योनिमें उत्पन्न हुए हैं। हमारा उद्धार करो। गंगा, यमुना, प्रयाग, काशी, गया आदिमें पिण्ड भरो, श्राद्ध करो और इस प्रकार हमारी गतिका उद्धार करो। सो लोग भी श्राद्ध, पिंडादिक करते ही हैं। इसी प्रकार स्वर्गके लिये विष्णु-भक्ति, तीर्थयात्रा, यजन, याजन, यज्ञ, दान, पुण्य, व्रतोपवास आदि करते हैं सो सब व्यर्थ मानना पड़ेगा। क्योंकि यदि जीव पंच तत्त्वसे जुदा हो नहीं है फिर ये सब कार्य किसके लिए करना चाहिये। यदि जीव पंचतत्त्वसे जुदा नहीं है तो फिर गाय, ब्राह्मणकी दयाका पालना वा भोजनादिकका दान देकर उनको सन्तुष्ट करना आदि सब व्यर्थ हो जायगा। इसी प्रकार परमेश्वर बैकुण्ठसे आकर यहाँ अवतार लेते हैं और दैत्यादि दुष्ट जीवोंका विध्वंस कर भक्तोंकी सहायता करते हैं सो सब व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि तत्त्वके मिलापसे बने हुए शरीरसे भिन्न कोई जीव है ही नहीं फिर परमेश्वर किसके लिये ये सब कार्य करता है। जब इस शरीरमें पाँच तत्त्व मिले ही हैं फिर अपने कुटुम्बकी रक्षा क्यों की जाती है। मरनेसे बचनेका उपाय क्यों किया जाता है। रोगादिकके होनेपर औषधि देकर उसके जीनेका उपाय क्यों किया जाता है। स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि किसके लिये किया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि पंचतत्त्वसे जीव अलग पदार्थ है।

विचार करनेकी बात है कि यह जीव पंच तत्त्वोंके मिलनेसे ही उत्पन्न होता है तथा पंच तत्त्वोंके अलग अलग हो जानेसे जीव उन्हींमें मिल जाता है। तो फिर रसोईघरमें जिस बटलोईमें दाल पकती है उसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि सभी तत्त्व मिले हुए हैं फिर उनमें जीव क्यों नहीं उत्पन्न हो जाता? चौका, चूल्हा, बटलोई आदि पृथिवी तत्त्व है। बटलोईमें जो जल भरा है वह जल तत्त्व है। अग्नि जलती है जल, बटलोई आदि सब अग्निरूप हो जाता है वही अग्नि तत्त्व है। वायु सब जगह भरी हुई है और आकाश सब जगह व्याप्त है ही। इस प्रकार वहाँपर पाँचों तत्त्व उपस्थित हैं। फिर वहाँपर जीव उत्पन्न क्यों नहीं हो जाता ? परन्तु कहीं किसी भी रसोईमें जीव उत्पन्न नहीं होता इससे सिद्ध होता है कि जीव पंचतत्त्वसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु जुदा पदार्थ है।

कदाचित् कोई यह कहे कि तत्त्वोंमें तो जीव नहीं है। तत्त्व तो पुद्गल स्वरूप है, जीव इन तत्त्वोंसे जुदा है। तत्त्व जड़ हैं और जीव चैतन्य स्वरूप है। परंतु उसका यह कहना भी मिथ्या है क्योंकि इसमें भी हिंसाको ही पुष्टि होती है। जब तत्त्व, तत्त्वमें मिल जाता है और जीव जुदा रहता ही है। तब फिर जीवके मारनेसे हिंसा भी नहीं होती और उसके बचानेसे दया भी नहीं होती। क्योंकि जब जीवका विनाश ही नहीं होता, केवल तत्त्व तत्त्वमें मिल जाता है। तो फिर जीवका विनाश हुए बिना ही हिंसा किस प्रकार सिद्ध हो सकती है। इस प्रकार महादोष उत्पन्न होता है। इसलिये ऐसा मानना भी हिंसाको सिद्ध करता है। इससे दयाका पालन नहीं होता। यथा और भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। इसलिये ऐसे मिथ्या वचन कहनेमें कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जीवोंकी दया पालन करना ही सत्य धर्म है। जो लोग हिंसाको धर्म कहते हैं सो सब मिथ्या है। शास्त्रोंमें लिखा है।

आचारः प्रथमो धर्मः सर्वधर्मे प्रकीर्तितः।

अर्थात् अपने आत्माको शुद्ध रखना, स्नान, सन्ध्यादिक करना और मद्य, मांस आदि अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण न करना ही आचार है। यह आचार ही समस्त धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म है। परन्तु ऊपर लिखे हुए आयुर्वेदोके सिद्धांतके अनुसार यह सर्व व्यर्थ हो जाता है और यह आचाररूप धर्म कभी व्यर्थ हो नहीं सकता इसलिए आयुर्वेदीका कहना ही मिथ्या है।

कदाचित् यहाँपर आदिशक्तिका उपासक यह कहे कि आदिशक्तिके कटाक्षमें अनेक अवसर हो गये इसलिए शक्ति आदि है। खप्पर आदिके द्वारा मद्य, मांसादिकका सेवन करना उसको उपाधि है। इसका विशेष वर्णन रामायण, वेद-पुराण आदिमें लिखा है। रामचन्द्र आदि सब देवताओंने सहस्रनाम आदिके द्वारा इसकी स्तुति वा पूजा की है। जब वे लोग शक्तिके तेजको सह नहीं सकते थे तब नमस्कार कर उसके स्वरूप-को सङ्कोच करनेके लिए प्रार्थना करते थे इसीलिए हम लोग (शक्तिके उपासक लोग) उसकी उपासनाके लिए दुर्गा, चण्डी, कात्यायनी, विन्ध्यवासिनी, अम्बिका, काली आदि अनेक स्वरूपोंको धारण करनेवाली शक्ति-की पूजा करते हैं। उसकी पूजाके लिए बकरे, भैंसे आदिको मार कर बलिदान देते हैं। उसपर मद्य चढ़ाते हैं और उसकी प्रसादी समझ कर उस मद्य, मांसका भक्षण करते हैं। यही सबसे बड़ा धर्म है। तथा ब्राह्मण मात्र सब शक्तिके उपासक हैं ऐसा ही सब शास्त्रोंमें लिखा है। इस संसारमें शिव तथा विष्णुके उपासक कोई नहीं है। लिखा भी है—'ब्राह्मणाः शाक्तिकाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः'।

अर्थात् ब्राह्मण सब शक्तिके उपासक हैं शिव वा विष्णुके उपासक कोई ब्राह्मण नहीं हैं इसीलिये हम शाक्तिक हैं। इस प्रकार वे लोग कहते हैं। परन्तु उनका यह कहना सब हिंसामय है। पापका बढ़ानेवाला है। ऐसे लोगोंसे जीवोंकी दया कभी नहीं पल सकती। क्योंकि वे सब कुछ जानते हुए, देखते हुए भी मद्य, मांसका सेवन करते हैं, और उसको सोमपा कहते हैं सो यह किस प्रकार बन सकता है। उनका यह कहना सब मिथ्या है सोम शब्दका अर्थ अमृत है और पा शब्दका अर्थ पीनेवाला है। जो अमृतको पीवे उसको सोमपा कहते हैं। मद्य, पान करनेवाला कभी सोमपा नहीं हो सकता। उसे तो राक्षस कहना चाहिये। वह तो उपासना करने योग्य कभी नहीं हो सकता। वह तो दूरसे ही त्याग करने योग्य है। जो लोग ऐसोंको उपा-सना करते हैं वे भी राक्षस ही हैं।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो माता, गाय, भैंस, बकरी आदिका दूध, दही, घी, छाछ आदि क्यों खाते पीते हो? यह भी तो शरीरसे ही उत्पन्न होता है। रस नामके धातुसे उपधातु बनता है उसी प्रकार मांस भी शरीरसे उत्पन्न होता है। लगभग दूध और मांस एक-सा है। फिर दूधके समान मांस खानेमें क्या दोष है।

उत्तर—यद्यपि दूध और मांस दोनों ही शरीर उत्पन्न होते हैं। तथापि मांस त्याग करने योग्य है।

और दूध ग्रहण करने योग्य है। जिस प्रकार स्त्री भी स्त्री है और माता भी स्त्री है, स्त्री पर्यायकी अपेक्षा दोनों एकसे हैं तथापि स्त्री सेवन करने योग्य है माता सेवन करने योग्य नहीं है तथा भगिनी पुत्री आदि भी सेवन करने योग्य नहीं है। उसी प्रकार मांस भक्षण करना कभी योग्य नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक पदार्थमें भिन्नता माने बिना कभी काम नहीं चल सकता। सबको एक मानना सर्वथा मिथ्या है। इसलिये दूध, दही, घी आदि पदार्थ पवित्र होनेके कारण ग्राह्य हैं और मांस सर्वथा हेय वा त्याग करने योग्य है।

प्रश्न—हम तो जीवोंको तुरन्त मारकर उसका मांस खाते हैं। इसको हलाल कहते हैं। हलाल कर खानेमें कोई दोष नहीं है। न कोई पाप है। पाप तो मरे हुए जीवके मांसमें है। क्योंकि उसको हराम कहते हैं सो उसका खाना योग्य नहीं है।

उत्तर—ऐसा कहनेमें भी महा दोष उत्पन्न होता है। क्योंकि हलाहल और हरामका भेद करना तो लोगोंको बहकाना है। लोगोंको बहकानेके सिवाय और कुछ नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष जीवोंको मारना तो योग्य समझा जाय और मरे हुए का स्पर्श करना भी अयोग्य समझा जाय। यह कभी नहीं हो सकता है। ये दोनों बातें एक ही हैं इनमें कोई अन्तर नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं वे अपनी इन्द्रियोंकी पुष्टिके लिये अथवा अपनी जिह्वा इन्द्रियके स्वादके लिये कहते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है—

पूतिमांसं स्त्रियो वृद्धाः बालार्कस्तरुणं कधि। प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणिहराणि षट्॥

अर्थ—दुर्गन्धमय मांसका भक्षण करना, वृद्ध स्त्रियोंका सेवन करना, कन्याराशिकी धूपको सहना, तुरन्तके जमाये हुये दहीको खाना, प्रभातके समय मैथुन करना तथा प्रभातके समय नींद लेना। इन छह बातोंके करनेसे शीघ्र ही प्राण नष्ट हो जाते हैं। यहाँ पर प्राण शब्दका अर्थ बल है। इन ऊपर लिखे छहों कामोंमेंसे कोई-सा भी काम करनेसे उसी समय बल नष्ट हो जाता है। सब पराक्रम जाता रहता है। आगे उसी भावप्रकाशमें लिखा है—

सद्यो मांसं नवान्नं च बालास्त्री क्षीरभोजनम्। घृतमुष्णोदकस्नानं सद्यः प्राणकराणि षट्॥

अर्थ—तुरन्त मरे हुए जीवका मांस भक्षण करना, नव यौवन स्त्रीका सेवन करना, तुरन्त बनी हुई रसोईका भोजन करना, दूध पीना, घी खाना और गर्म जलसे स्नान करना। इन छः कार्योंके करनेसे शीघ्र

हो बल पराक्रम बढ़ जाता है। इत्यादि भावप्रकाशके वचनोंके आधारसे वे लोग जीवोंको तुरन्त मारकर उनके मांस खानेकी पुष्टि करते हैं सो केवल अपने स्वार्थके लिये अनेक प्रकारके वचन जाल फैलाकर लोगोंको ठगते हैं यह सब उनके मिथ्यात्व कर्मके उदयका माहात्म्य है।

ऐसे लोग संसारके नासमझ लोगोंको यह समझाया करते हैं कि जो बाजे चमड़ेसे मढ़े जाते हैं वे सब जीवोंको तुरन्त मारकर उनके चमड़ेसे मढ़े जाते हैं इसीलिये उस चमड़ेको जीवित चमड़ा कहते हैं परन्तु अपने आप मरे हुएके चमड़ेसे मढ़ा हुआ बाजा कभी नहीं बजता। इसी प्रकार मरे हुए जीवका मांस नहीं खाना चाहिये किन्तु जीवोंको तुरन्त मारकर उनका मांस खाना चाहिये परन्तु उनका यह कहना महा पापका कारण है। 'ताजे चमड़ेसे बाजे मढ़े जाते हैं, अपने आप मरे हुए जीवोंके चमड़ेसे नहीं मढ़े जाते' उसका कारण तो यह है कि अपने आप मरे हुए पशु घड़ी दो घड़ी घंटे पहर रात दिन आदि कितने काल तक पड़े रहते हैं इसलिये उनका रुधिर वा शरीरका द्रव (पतला) भाग उनके चमड़ेके रोम-रोममें भर जाता है। इसी कारण वह चमड़ा भारी हो जाता है उसके रोम सब बन्द हो जाते हैं और वह चमड़ा गूंगा हो जाता है इसीलिये वह बजता नहीं है। परन्तु उसी समय मारे हुये जीवका चमड़ा वे कसाई लोग उसी समय निकाल लेते हैं इसलिये उसके रोमोंमें रुधिर भर नहीं सकता रोमोंमें रुधिरके न भरनेसे चमड़ा भारी और गूंगा नहीं होता तथा रोम खुले रहते हैं इसलिये वह ठीक तरहसे बजता है इसके सिवाय उसमें और कोई भेद नहीं है। तथा मांस तो दोनोंका ही महा घृणित और अपवित्र है इसलिये कभी ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकता।

ऐसे ही ऐसे दुष्टोंके वचनोंको सुनकर कितने ही क्षत्रिय भी ऐसा ही कहने लगे हैं तथा जीवोंको मारकर मांस भक्षण करने लगे हैं सो वे भी उन्हीं के समान हैं। क्षत्रियोंका धर्म तो यह है कि जो कोई अपराधी भी हो परन्तु उनके सामनेसे भाग जाय तथा उस अपराधको क्षमा करानेके लिए पीछे उनके सामने आवे, अपने केशोंको छूटे हुए रक्खे, मुखमें तृण दबावे तो फिर उसको वे क्षत्रिय लोग कभी नहीं मारते हैं, छोड़ देते हैं तो फिर हिरण आदि पशु तो सदा वनमें ही रहते हैं, किसी का कोई अपराध नहीं करते, उनके केश सदा छूटे रहते हैं, मुखमें सदा तृण दाबे रहते हैं और मनुष्योंको देखते ही भाग जाते हैं। ऐसे हिरण आदि पशुओंको क्षत्रिय होकर भी शस्त्रसे मारना और मारकर उनका मांस खाना कभी योग्य और क्षत्रियोंका

धर्म नहीं हो सकता। ऐसा यह निंदनीय कार्य कभी क्षत्रियोंका नहीं हो सकता। इस प्रकार जो लोग कहते हैं वे सब मिथ्या हैं वे लोग नरकादिक कुगतियोंके बीज बोते हैं। यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है किन्तु नीच शूद्रों-का कार्य है। क्षत्रिय शब्दकी व्याख्या तो इस प्रकार है "क्षतात् त्रायन्ति इति क्षत्रियाः" अथवा "क्षितिं त्रायंति इति क्षत्रियाः" अर्थात् जो क्षत अर्थात् मरते हुएको त्रायंति अर्थात् रक्षा करे उसको क्षत्रिय कहते हैं, क्षत्रियका धर्म है कि किसीके द्वारा मारने नहीं देवे, सबको रक्षा करे वही क्षत्रिय कहलाने योग्य है। अथवा क्षिति अर्थात् पृथिवी की रक्षा करे उसको क्षत्रिय कहते हैं। जहां तक अपनी पृथ्वी है वहां तकके मनुष्य, पशु, पक्षी सभी जीवोंकी रक्षा करे उसको क्षत्रिय कहते हैं। इस प्रकार क्षत्रिय शब्दकी निरुक्ति है। इस निरुक्तिसे भी सिद्ध होता है कि हिंसा करनेवाले कभी क्षत्रिय नहीं हो सकते। जो जीवोंकी हिंसा करते हैं, मद्य, मांसका सेवन करते हैं और पृथ्वीकी प्रजाको लूटते हैं ऐसे अन्यायी अधर्मी वर्तमानके कुछ क्षत्रिय कभी क्षत्रिय नहीं कहे जा सकते।

ऐसे ऐसे ही मांसभक्षी क्षत्रियोंके आचरण देखकर तथा उनके फुसलानेमें आकर कितने ही श्वेताम्बर सम्प्रदायके वैश्य मांसभक्षण वा मद्यपान करते हैं यदि कोई उनकी निन्दा करता है तो कहते हैं कि हम पहले क्षत्रिय थे अब वैश्य हो गये तो क्या हो गया। हम तो पहलेके क्षत्रिय हैं इसलिए मांसभक्षण आदि करना तो हमारे लिए तो ठीक ही है। इस प्रकार मांस भक्षणादिकके लिए वे जबर्दस्ती क्षत्रिय बनते हैं परन्तु जिसकी जैसी होनहार होती है उसी प्रकार उसकी बुद्धि हो जाती है और फिर उसी प्रकार वह बकता है। आचरणों से कुछ क्षत्रिय वा वैश्य नहीं होता। चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो, निंद्य आचरणोंसे निंद्य कहलाता है और उत्तम आचरणोंसे उत्तम कहलाता है इसका भी कारण यह है कि इस संसारमें साक्षात् सर्वज्ञ वीतराग अरहंत-देवका कहा हुआ अहिंसामयी धर्म ही जीवोंको स्वर्ग, मोक्ष देनेवाला है। इसके सिवाय हिंसाका प्रतिपादन करनेवाले समस्त धर्म संसारके कारण हैं अनन्त कालतक दुःख देनेवाले हैं। इसलिए भगवान अरहंतदेवके कहे हुए जैनधर्मका शरण लेना ही जीवोंका कल्याण करनेवाला है सो सदा जयवंत हो।

२०८–चर्चा दोसौ आठवीं

प्रश्न—कोई कोई अन्यमती ऐसा कहते हैं कि तुम्हारे केवली भगवान अरहंतदेव अनन्तदर्शन, अनंत-

ज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य इन चारों अनंत चतुष्टयोंसे सुशोभित हैं परन्तु यह बात सत्य नहीं है क्योंकि ज्ञान और दर्शन तो एक हैं। जो जानना है वही देखना है और जो देखना है वही जानना है। इसलिए अनंत-दर्शन वा अनंतज्ञानमेंसे एक ही रह सकेगा दोनों नहीं बन सकते।

समाधान—ज्ञान दर्शन एक नहीं है किन्तु जुदे जुदे[1] हैं। ज्ञानका कार्य केवल जानना है और दर्शनका कार्य केवल देखना है। जिस प्रकार अंधा पुरुष जान सकता है परन्तु देख नहीं सकता और लंगडा पुरुष देख सकता है परन्तु दूर न जा सकनेके कारण दूरके पदार्थोंको जान नहीं सकता। छोटा बच्चा अनेक पदार्थोंको देखता है परन्तु जानता नहीं। इससे सिद्ध होता है कि दर्शन अलग पदार्थ है और ज्ञान अलग पदार्थ है "ज्ञानांधः दर्शनं पंगु" जैसे अंधा और लंगड़ा दोनों मिल जांय तो अपने कार्यकी सिद्धि कर सकते हैं। उसी प्रकार ज्ञान दर्शन दोनोंसे ही पदार्थका स्वरूप जाना जाता है। दोनों ही आत्माके अलग-अलग गुण हैं। इसलिए अनन्त चतुष्टय अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न—यदि अरहंत भगवान देखते हैं और जानते हैं तथा त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थोंको और उनकी तीनों कालमें होनेवाली समस्त पर्यायोंको प्रत्यक्ष देखते और जानते हैं तो फिर कहना चाहिये कि वे बड़े निर्दयी हैं। क्योंकि संसारी जीव नरकादिक गतियोंमें अनेक प्रकारके दुख पा रहे हैं उनको देखते जानते हुए भी बचाते नहीं। हमारे ईश्वरके समान अवतार धारण कर सबकी रक्षा करना चाहिये। सो अरहन्त देव करते नहीं। इसलिये कहना चाहिये कि वे बड़े निर्दयी हैं।

---

१. प्रत्येक पदार्थमें सामान्य और विशेष दो धर्म रहते हैं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें ये दोनों धर्म न रहते हों तथा ये दोनों धर्म अविनाभावी हैं। एक दूसरेके साथ रहते हैं। बिना सामान्यके विशेष नहीं रहता और बिना विशेषके सामान्य नहीं रहता। लिखा है "निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खर विषाणवत्। विशेषरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि।" अर्थात् बिना विशेषके सामान्य गधेके सींगके समान अभावरूप हो रहता है। इसी प्रकार बिना सामान्यके विशेष भी गधेके सींगके समान है। इससे सिद्ध होता है कि पदार्थका स्वरूप उभयात्मक है। तथा आत्माका समस्त पदार्थोंका जानना है। पदार्थोंमें जो सामान्य गुण है उसका ज्ञान होना दर्शन है और विशेषका ज्ञान होना ज्ञान है। इसीलिए ज्ञान साकार है और दर्शन निराकार है। दर्शनमें "यह घट है यह पट है" ऐसा आकार नहीं होता है। ज्ञानमें यह आकार होता है। आत्मामें ज्ञान गुण अलग है इसलिये उसको ढकनेवाला ज्ञानावरण कर्म अलग है। तथा दर्शन गुण अलग है इसलिए उसको ढकनेवाला दर्शनावरण कर्म अलग है। इस प्रकार हर तरहसे दर्शन और ज्ञान दोनों गुण अलग-अलग सिद्ध होते हैं।

उत्तर—भगवान अरहन्तदेव निर्दयी नहीं हैं किन्तु सबसे अधिक दयालु हैं। तथा वे इतने दयालु हैं कि यदि जातिविरोधी जीव भी उनके समीप आ जाँय उनके समवसरणमें आ जाय तो भगवान अरहन्तदेवके प्रभावसे वे सब जीव अपना-अपना विरोध छोड़ देते हैं इससे बढ़कर और दयालुता कोई हो नहीं सकती। परन्तु साथमें ही अरहन्त देव सबसे बड़े पुरुष हैं और वीतराग हैं। जो पुरुष सबसे बड़ा और न्यायवान् होता है वह किसीके लेन देनमें बोलता नहीं। यदि वह बीचमें बोले तो अन्यायी समझा जाता है। इसी प्रकार समस्त संसारी जीव अपने-अपने किये हुये कर्मोंके फलको भोगते हैं। कर्मोंका फल कभी छूट नहीं सकता। यदि छूटेगा तो उसीके ध्यानादिकसे छूटेगा। इसलिये उनके बीचमें पड़ना न्यायवान् महापुरुषोंका काम नहीं है। इसके सिवाय भगवानके राग द्वेष वा मोह नहीं हैं। जो रागी वा द्वेषी है वे ही मारने वा बचानेका काम किया करते हैं और इसीलिये वे परमेश्वर नहीं कहे जा सकते। भगवान अरहंत देव वीतराग हैं। इसीलिये वे परमेश्वर कहे जाते हैं। वे अठारह दोषोंसे रहित हैं और सर्वज्ञ हैं।

२०६—चर्चा दोसौ नवमीं

प्रश्न—कोई परधावी कहते हैं कि तुम्हारे निर्ग्रन्थ गुरु प्रत्यक्ष रागी-द्वेषी हैं क्योंकि जो नवधाभक्ति करता है उसके घर आहार लेते हैं और जो उनको नमोस्तु आदि न करें उनके घर आहार नहीं लेते। यह एक प्रकारका अभिमान वा राग, द्वेष समझना चाहिये।

समाधान—वास्तवमें यह बात नहीं है। महामुनिराज छयालीस दोष, बत्तीस अन्तराय और चौदह मलोंको टालकर दिनमें एक बार खड़े-खड़े आहार लेते हैं। जो जैनी नहीं है वह न तो आहारकी विधि जानता है और न निर्दोष प्रासुक शुद्ध आहार तैयार कर सकता है। इसलिये वे मुनिराज नमोस्तु आदि पड़गाहनकी विधिको न देखकर अंतराय समझकर चले जाते हैं। रागद्वेष वा मानसे नहीं जाते। अपने गुरुको आये हुए समझकर भक्तिसे उठना, सामने जाना, प्रदक्षिणा देना, नमोस्तु कहना, पड़गाहन करना, पाद प्रक्षालन करना, पूजन करना आदि आहार देनेकी विधिको जैन शास्त्रोंके जाननेवाले श्रावकोंके बिना अन्यमती जानते नहीं। इससे उनके प्रासुक शुद्ध आहारकी अजानकारी भी स्वयं सिद्ध हो जाती है। इसलिये अन्तराय समझकर वे मुनिराज चले जाते हैं। जो जैनी श्रावक बड़े-बड़े विद्वान् होकर भी इस विधिको नहीं करते उनके घर भी वे

अन्तराय समझकर छोड़ देते हैं। ऐसे घरोंका छोड़ना केवल अपने व्रतोंकी रक्षाके लिये है और कुछ नहीं है। यदि वे मुनिराज किसी धनवान, राजा वा मित्रके घर तो चले जांय और दरिद्री, रंक वा शत्रुका घर छोड़ दें तब तो वे रागी, द्वेषी समझे जांय परन्तु ऐसा वे कभी करते नहीं। इसलिये उनके रागद्वेष कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसके सिवाय वे मुनि स्वादिष्ट भोजनमें वा स्वादिष्ट भोजन देनेवालेमें राग नहीं करते तथा स्वादहीन भोजनमें वा उसके देनेवालेमें द्वेष नहीं करते इसलिये भी रागद्वेष रहित सिद्ध होते हैं।

जो पड़गाहन करते हैं उन्हींके घर आहार लेते हैं इसका एक कारण यह भी है कि मुनिराजके भ्रामरी आहार है। जिस प्रकार भ्रमर बिना किसीको सताये फूलका रस लेता है उसी प्रकार वे मुनिराज बिना किसीको तकलीफ दिये अपना निर्वाह करना चाहते हैं और वह इसी प्रकार पड़गाहन करनेसे दातारकी उत्कट इच्छासे हो सकता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार भी वे मुनिराज रागद्वेषरहित स्वार्थरहित परम वीतरागी सिद्ध होते हैं।

२१०-चर्चा दोसौ दशवीं

प्रश्न—मुनिराज पीछी रखते हैं सो इसमें ऐसा कौनसा गुण है जो वे सामायिक, वन्दना, देवदर्शन करनेमें, चलने-बैठनेमें सब कामोंमें उसको अपने पास रखते हैं। तथा उसके वियोगमें प्रायश्चित्त लेते हैं, सो यह क्या बात है ?

समाधान—पीछीमें पाँच गुण होने चाहिये जो धूल और पसीनेको दूर करे, जो कोमल हो, जो चिकनी हो और जो छोटी वा हलकी हो। ये पाँच गुण पीछीमें होने चाहिये ऐसी पीछीसे जीवोंको अभयदान दिया जाता है। यह उसमें सबसे उत्तम गुण है। ऐसा भगवान अरहन्तदेवने कहा है। यदि पीछी न हो साधुजनोंकी ईर्यासमितिका नाश हो जाता है। तथा स्थूल, सूक्ष्म आदि अनेक जीवोंका घात होता है। जिससे उन मुनियोंका मुनिपद ही भ्रष्ट हो जाता है। इसीलिये पीछीके वियोगमें मुनिराज प्रायश्चित्त लेते हैं। सो ही सकलकीर्तिकृत धर्मप्रश्नोत्तरमें लिखा है—

अथ पिच्छिकागुणाः रजःस्वेदाग्रहणद्वयम्। मार्दवं सुकुमारत्वं लघुत्वं सद्गुणा इमे॥
पंच ज्ञेयास्तथा ज्ञेया निर्भयादिगुणोत्तमाः। मयूरपिच्छजातायाः पिच्छिकाया जिनोदिताः॥

समितिस्तां विना नश्येत्साधूनां कार्यसाधने । स्थूलसूक्ष्मादिहिंसाया व्यर्थं जन्मदीक्षणम् ।

इस पंचमकालके दोषसे कितने ही ऐसे मुनि बन गये हैं जो पीछी नहीं रखते और अपने को मुनि मानते हैं परन्तु वास्तवमें वे मुनि नहीं हैं। शास्त्रोंमें उनको जैनाभास (जैनी तो नहीं है परन्तु जैनियोंके समान दिखाई पड़ते हैं) बतलाया है। सो ही नीतिसारमें लिखा है—

कियत्यपि गते काले ततः श्वेताम्बरोऽभवत् । द्राविडो यापनीयश्च केकीसंघश्च मानतः ॥
केकिपिच्छः श्वेतवासो द्राविडो यापनीयकः । निःपिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥
स्वस्वमत्यनुसारेण सिद्धांतव्यभिचारिणः ।

२११–चर्चा दोसौ ग्यारहवीं

प्रश्न—सिद्धक्षेत्रोंमें सबसे पहले कैलाश बतलाया है और वहांसे श्री ऋषभदेव मोक्ष पधारे हैं। तथा महाराज भरतने सुवर्णमय बहत्तर जिनालय बनवाकर उनमें भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनों कालोंके चौबीस तीर्थंकरोंकी बहत्तर प्रतिमाएं विराजमान की हैं। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है सो वह कैलाशपर्वत कहां है। अन्यमती भी कैलाश पर्वत मानते हैं और वहां पर शिवका निवास मानते हैं सो वह भी कहीं जाना नहीं जाता। इसलिए बताना चाहिये कि वह कहां है।

समाधान—कैलाश पर्वत विजयार्द्ध पर्वतकी ओर है। अयोध्या नगरीसे सैंतालीस हजार बीसौ तिरेसठ लघु योजन दूर है। इसके एक लाख नवासी हजार बावन कोस होते हैं। यह अयोध्यासे उत्तर पूर्वकी ओर ईशान दिशाकी ओर है। चक्रवर्ती मकर संक्रांतिके दिन अपने महलों पर चढ़कर अपने नेत्रोंसे कैलासकी ध्वजाको देख लेता है। इस प्रकार कैलाशका स्वरूप एक चर्चाकी पुस्तकमें लिखा है। उसमें श्लोक वा गाथा आदिका कुछ प्रमाण नहीं दिया है। इससमय वहां पर किसीका गमन नहीं है। श्रीअजितनाथ तीर्थंकरके समय दूसरे सगर चक्रवर्तीके साठ हजार पुत्रोंने गंगा महानदीका किनारा तोड़कर उसके जलका प्रवाह कैलाश पर्वतके चारों ओर कर दिया है। इससे वहां पहुँचना अशक्य है। तथा अत्यन्त दूर और दुर्गम होनेके कारण भी वहां पहुँचना अशक्य है। अन्यमती भी यही कहते हैं कि कैलाशके बीचमें हिमालय पर्वत है। इसलिए वहां किसी का गमन नहीं है।

२१२–चर्चा दोसौ बारहवीं

प्रश्न—शास्त्रोंमें पुरुषोंका उत्कृष्ट आहार बत्तीस ग्रास तक बतलाया है। इसी प्रकार स्त्रियोंके आहारका प्रमाण क्या है ?

समाधान—स्त्रियोंका उत्कृष्ट आहार अट्ठाईस ग्रासका बतलाया है। सो ही आचार्य शिवकोटि-विरचित भगवती आराधनामें लिखा है।

बत्तीसं किर कवलाहारो कुक्खिपूरणो होई। पुरुसस्स महिलाए अट्ठावीसं हवे कवला॥

यही कारण है कि मुनि और आर्जिका इसी बत्तीस और अट्ठाईस ग्रासके प्रमाणसे आहार लेते हैं यह उत्कृष्टतासे है इसीलिए मुनि आर्जिका इससे कम ग्रास ले लेते हैं इससे अधिक नहीं लेते।

प्रश्न—एक ग्रासका प्रमाण क्या है ?

समाधान—एक हजार चावलोंका उत्कृष्ट एक ग्रास होता है। सो ही षट्धर्मोपदेशमें लिखा है—

द्वात्रिंशत्कवलैः पुंसामाहारः कथितो जिनैः।
अष्टाविंशतिसंख्यैश्च स्त्रीणां लोपः प्ररूपितः॥ १५॥
सहस्रतंदुलैः प्रोक्तो ह्येकः कवल उत्तमः।

इस प्रकार अट्ठारहवें परिच्छेदमें लिखा है।

२१३–चर्चा दोसौ तेरहवीं

प्रश्न—कोई कोई कहते हैं कि विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकरोंके पंचकल्याणकोंका नियम नहीं है। ज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणक ये दो ही कल्याणक सामान्य केवलीके समान होते हैं। पाँचों कल्याणकोंका नियम नहीं है तो भी वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

समाधान—तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके लिए दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाएँ हैं। सो जिसने पहले भवमें सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन नहीं किया है। उसके पाँचों कल्याणक नहीं होते। उनके केवल दो कल्याणक होते हैं। उनके समवसरण भी नहीं होता। सामान्य केवलीके समान गंधकुटी होती है। जन्मके समय मति, श्रुत, अवधि ये तीनों ज्ञान नहीं होते। जन्मके दश अतिशय नहीं होते। फिर तीर्थंकरोंके

चौंतीस अतिशयोंमेंसे चौबीस ही अतिशय मानने पड़ेंगे। तथा ऐसे तीर्थंकरोंको हीनपुण्य मानना पड़ेगा। सो ऐसा श्वेताम्बर मानते हैं। वास्तवमें ऐसे तीर्थंकर तो पूर्ण पाँचों कल्याणकोंको धारण करनेवाले ही होते हैं। ऐसा नियम है। कम कल्याणकवाले तीर्थंकर नहीं होते।

शास्त्रोंमें लिखा है कि मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है। उसके ऊपर चौथा पांडुक नामका वन है। उसकी प्रदक्षिणा रूपसे चूलिकाकी ईशान दिशामें चार पांडुक शिला हैं वे अर्द्ध चन्द्रमाके समान सुशोभित हैं सौ योजन लम्बी पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची हैं। ये शिलाएँ स्वयं सिद्ध अनादि अनिधन शाश्वती विराजमान हैं। एक एक पांडुक शिलापर तीन तीन सिंहासन विराजमान हैं। मध्यके सिंहासनपर श्री तीर्थंकर विराजमान होते हैं और अगल-बगल सिंहासनोंपर अभिषेक करनेके लिए इन्द्र खड़े होते हैं। भरत-क्षेत्रकी अपेक्षा ईशान कोणकी पांडुक शिलापर भरतक्षेत्रके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। अग्निकोणकी शिला पर पश्चिमविदेहमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। मेरु पर्वतकी नैऋतकोणमें शिलापर रक्खे हुए मध्यके सिंहासनपर ऐरावत क्षेत्रके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। तथा मेरु पर्वतके वायव्य कोणमें विराजमान पांडुक शिलाके मध्यभागमें रक्खे हुए मध्यके सिंहासन पर पूर्व विदेह क्षेत्रके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। इसी प्रकार दो मेरु पर्वत धातकी द्वीपमें हैं तथा दो मेरु पुष्कर द्वीपमें हैं। इन चारों मेरु पर्वतों पर भी उन उन द्वीपोंके क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। ऐसा शास्त्रोंमें है। जिसका जन्माभिषेक होता है उसके पाँचों कल्याणक अपने आप सिद्ध हो जाते हैं। ऐसा सिद्धान्त है।

प्रश्न—पांडुक शिलाएँ किस रंगकी हैं चारों ही शिलाएँ एक रंगकी हैं अथवा अलग-अलग रंगकी हैं।

समाधान—चारों पांडुक शिलाएँ अलग-अलग चार रंगकी हैं। जिसपर भरतके तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है वह सुवर्णमय है। जिस पर पश्चिम विदेहके तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है वह सफेद चाँदीकी है। जिस पर ऐरावत क्षेत्रके तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है वह तापे हुए सोनेके समान हैं और पूर्व विदेहके तीर्थंकरों का अभिषेक जिस पर होता है वह पद्मराग मणिके समान अथवा गुलाबी कमलके समान है। इस प्रकार इन चारों शिलाओंका स्वरूप है।

एक-एक शिलापर जो तीन सिंहासन हैं उनमेंसे मध्यके सिंहासन पर तो तीर्थंकर विराजमान होते हैं।

यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा कथन किसी शास्त्रमें नहीं आया है। यदि ऐसा होता तो शास्त्रोंमें जो पांडुकशिला आदिका वर्णन लिखा है। सो क्यों होता। इससे सिद्ध होता है कि तीर्थङ्कर गर्भसे ही होनहार तीर्थङ्कर होते हैं और इन्द्रादिक देव उनके गर्भ कल्याणक आदि पाँचों कल्याणक करते हैं। जन्म समयमें जन्म-कल्याणक करते हैं तब सब तीनों लोक उनको तीर्थंकर कहते हैं। पीछे अनुक्रमसे तप कल्याणक, ज्ञान कल्याणक और निर्वाणकल्याणक होते हैं। पहले तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद गद्दी खाली न रहनेका कोई नियम नहीं है। यह निश्चित है कि पाँचों कल्याणकोंके बिना तीर्थंकर नहीं होते जैसा कि पहले बता चुके हैं। यदि सामान्यकेवलीको ही तीर्थंकर कह दिया जायेगा तो इसमें दोष आवेंगे। यदि यह कहोगे कि उस क्षेत्रके स्वभावसे ऐसा होता है तो फिर श्वेताम्बरोंके समान इसे अछेड़ा मानकर मानना पड़ेगा। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार शास्त्रोक्त श्रद्धान करना ही योग्य है। अन्यथा नहीं।

२१४–चर्चा दोसौ चौदहवीं

प्रश्न—भगवान तीर्थंकरके जन्माभिषेकके समय अपने-अपने इन्द्रों सहित चारों निकायोंके देव आते हैं। उस समय इन्द्रकी सवारीके आगे इन्द्रकी सात प्रकारकी सेना चलती है। वह सातों प्रकारकी सेना गुणानुवाद करती चलती है। सो वह सेना तीर्थंकर भगवानके ही गुण गाती है या और भी किसीके गुण गाती है।

समाधान—सातों ही प्रकारकी सेना नृत्य करती हुई चलती है। उनमेंसे प्रथम सेनाके देव, विद्याधर, कामदेव और राजाधिराजोंके चरित्र और गुण गाते हुए गमन करते हैं। दूसरी सेनाके देव अर्द्ध, मण्डलीक, सकल मण्डलीक और महा मण्डलीक राजाओंके चरित्र और गुण गाते हुए तथा नृत्य करते हुए गमन करते हैं। तीसरी सेनाके देव बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायणोंके बल, वीर्य गुण आदिका वा उनके जीवनचरित्रका वर्णन करते हुए तथा नृत्य करते हुए गमन करते हैं। चौथी सेनाके देव चक्रवर्तीकी विभूति तथा बल, वीर्य आदिका गुण वर्णन करते हुए चलते हैं। पाँचवीं सेनाके देव लोकपाल जातिके देवोंका गुणानुवाद तथा उसी भवसे मोक्ष जानेवाले चरमशरीरी मुनियोंका गुणानुवाद करते हुए चलते हैं। छठी सेनाके देव गणधरदेव तथा ऋद्धिधारी मुनियोंके गुण और यशको वर्णन करते हुए चलते हैं। सातवीं सेनाके देव तीर्थङ्करके छयालीस गुणोंका वा उनके जीवनचरित्रका वर्णन करते हुए गाते नृत्य करते हुए गमन करते हैं। सो ही सिद्धान्तसार दीपकमें लिखा है—

प्रथमे नर्तकीनीके विद्याधरकामदेवराजाधिराजनां चरित्रेण नटन्तोऽमराः गच्छन्ति। द्वितीये सकलार्द्धमहामंडलीकानां वर चरित्रेण नर्तनं कुर्वन्तः सुराश्च। तृतीये बलभद्रवासुदेवप्रतिवासुदेवानां वीर्यादिगुणनिबद्धचरित्रेण नृत्यंतो देवाः गच्छंति। चतुर्थे चक्रवर्तिनां विभूतिवीर्यादिगुणनिबद्धचरित्रेण महन्नर्तनं भजन्तोऽमराश्च। पंचमे चमरांगयतिलोकपालसुरेन्द्राणां गुणरचितचरित्रेण नटन्तो निर्जराश्च। षष्ठे गणधरदेवानां ऋद्धिज्ञानादिगुणोत्पन्नवरचरित्रेण परं नृत्यं कुर्वाणः सुराः यान्ति। सप्तमे नर्तकानीके तीर्थकराणां चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टप्रातिहार्यानन्तज्ञानादिगुणरचितचरित्रेण तद्गुणरागरसोत्कटाः नाकिनः प्रवरं नर्तनं प्रकुर्वन्तो गच्छन्ति।

प्रश्न—वे देव किस स्वरमें गाते हैं ?

समाधान—खड्ग, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये सात स्वर हैं। इनमेंसे एक-एक सेना एक-एक स्वरसे गाती है तथा अनुक्रमसे गाती है। सो ही सिद्धान्तसारदीपकमें लिखा है—

आद्यनीके खड्गस्वरेण जिनेन्द्रगुणान् गायन्तः, द्वितीये ऋषभस्वरेण च गानं कुर्वन्तः, तृतीये गांधारनादेन गंधर्वा गच्छन्ति। चतुर्थे मध्यमध्वनिना जन्माभिषेकसंबन्धिगीतान् गायन्तः, पंचमे पंचमस्वरेण गानं कुर्वाणः, षष्ठे धैवतध्वनिना च गायन्त, सप्तमे निषादघोषणकलं गीतगानं कुर्वन्तो गंधर्वा व्रजन्ति।

२१५-चर्चा दोसौ पंद्रहवीं

प्रश्न—सातों ही नरकोंमें कोई महापापी जीव अलग-अलग नरकोंमें उत्कृष्टता कर कितनी-कितनी बार जन्म धारण करता है ?

समाधान—पहले घम्मा नामके नरकमें उत्कृष्टता कर असंज्ञी जीव जाता है सो वह अधिकसे-अधिक आठ बार जाकर जन्म लेता है। दूसरे वंशा नामके नरकमें सरीसृप अर्थात् सर्प (फणा रहित जातिका ओड़ी

डु जातिका सर्प) को आदि लेकर महापापके उदयसे अधिकसे अधिक सात बार जन्म धारण करते हैं। तीसरे मेघा नामके नरकमें दुष्ट पक्षी आदि जीव उत्कृष्ट पापके उदयसे छह बार जाकर जन्म लेते हैं। चौथे अंजना नामके नरकमें सर्पादिक तिर्यंच महापापके उदयसे पाँच बार उत्कृष्ट जन्म धारण करते हैं। पाँचवें अरिष्टा नामके नरकमें सिंहादिक जीव अधिकसे-अधिक चार बार जाकर जन्म लेते हैं। मघवी नामके छठे नरकमें मनुष्यणी स्त्री अधिकसे अधिक तीन बार जन्म लेती है। माधवी नामके सातवें नरकमें मनुष्यादिक जीव अधिकसे अधिक दो बार जन्म लेते हैं। इस प्रकार ये जीव मिथ्यात्वादिक महापाप कर्मोंसे तथा हिंसादिक पापोंसे उत्पन्न हुए कर्मोंके उदयसे नरकोंमें उत्कृष्ट जन्मोंको धारण करते हैं। तथा वहाँपर सागरों पर्यन्तकी आयु तक छेदन, भेदन, शूलारोपण, ताडन, पीडन आदिके महा दुःख भोगते हैं। उन दुःखोंको भगवान् सर्वज्ञदेव ही जानते हैं। इसलिये भव्यजीवोंको मिथ्यात्वादिक महापापोंका त्याग कर देना चाहिये, सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये तथा अपने आत्माका कल्याण करनेके लिये अहिंसा आदि व्रतोंको धारण करना चाहिये।

प्रश्न—यहाँपर नरकोंमें जानेकी जो संख्या लिखी है सो नरकोंसे निकल कर अन्य जन्मोंको धारण करता है फिर नरकमें जाता है। सो नरकसे निकल कर किन-किन गतियोंमें जन्म लेता है।

समाधान—नरक गतिसे निकल कर मनुष्य और तिर्यंञ्चगति ही प्राप्त होती है। मनुष्य वा तिर्यंञ्च गतिको पाकर बाकी बचे हुए पहलेके पापकर्मके उदयसे वा उस भवमें किये हुए पापकर्मोंके उदयसे फिर नरकमें जाता है। सातवें नरकसे निकल कर तिर्यंञ्च ही होता है। सो ही सिद्धांतसारमें लिखा है—

उत्कृष्टेन स्वसंतत्या सोऽसंज्ञी प्रथमावनौ। अष्टवारान् क्रमाद् गच्छेत्सरीसृपोतिपापतः ॥१
सप्तवारान् द्वितीयायां तृतीयायां खगो व्रजेत्। षड्वारांश्च चतुर्थ्यां हि पंचवारान् भुजंगमः॥
पंचम्यांच चतुर्वारान् याति सिंहो निरंतरम्। षष्ठ्यां योषित्त्रिवारान् सप्तम्यां वारद्वयं पुमान्॥
श्वभ्रेभ्यो निर्गता एते तिर्यग्नरगतिद्वये। कर्मभूमिषु जायन्ते गर्भजाः संज्ञिनः स्फुटम् ॥४॥

२१६–चर्चा दोसौ सोलहवीं

प्रश्न—पहले नरकसे लेकर सातवें नरक तक तीस लाख आदिके क्रमसे चौरासी लाख बिल हैं। उन

बिलोंमें ये जीव अपने पापकर्मके उदयसे उत्पन्न होते हैं। पहले उन बिलोंके ऊपर बने हुए घण्टाकार घृणित ऐसे उपपाद स्थानोंमें उत्पन्ने होते हैं और फिर वहाँसे नीचे नरकमें पड़ते हैं। सो किसी समय वे बिल खाली रहते हैं या नहीं अथवा उनमें जीव सदा ही बिना किसी अन्तरके उत्पन्न होते रहते हैं। इसका स्वरूप क्या है।

समाधान—ये बिल कभी खाली तो रहते नहीं हाँ, जब कभी उसमेंके नारकीकी आयु पूरी हो जाती है तो नियत अन्तरालके बाद दूसरा नारकी अवश्य उत्पन्न हो जाता है। उन नरकोंमें एक नारकीके मरनेके बाद दूसरे नारकीके उत्पन्न होने तक जो अन्तराल रहता है वह नीचे लिखे कोष्ठसे स्पष्ट हो जाता है।

नरकोंके नाम	बिलोंका प्रमाण		उत्कृष्ट अन्तराल
रत्नप्रभा	तीसलाख	३०००००	चौबीस मुहूर्त
शर्कराप्रभा	पच्चीस लाख	२५०००००	सात दिन
बालुकाप्रभा	पन्द्रहलाख	१५०००००	पन्द्रह दिन
पंकप्रभा	दसलाख	१०००००	एक महीना
धूमप्रभा	तीनलाख	३००००	दो महीना
तमःप्रभा	पाँच कम एकलाख	९९९५	चार महीना
महातमःप्रभा	पाँच	५	छः महीना

इस नियत अन्तरालके बाद कोई जीव अवश्य होता है। सो ही सिद्धांतसारदीपकमें लिखा है—

प्रथमे नरके ज्येष्ठमुत्पत्तौ मरणांतरम्। चतुर्विंशतिसंख्यानां मुहूर्ता द्वितीयेङ्गिनाम् ॥१४॥
दिनानि सप्त वै श्वभ्रे तृतीये पक्षसंख्यकम्। चतुर्थे चैकमासो हि पंचमे मासयुग्मकम्॥१५॥
षष्ठे मासचतुष्कं च सप्तमे नरकात्मनाम्। षण्मासा अन्तरं निःसरणप्रवेशयोर्महत् ॥१६॥

२१७–चर्चा दोसौ सत्रहवीं

प्रश्न—स्वर्गलोकमें जो जीव उत्पन्न होते हैं उनमें भी इसी प्रकार अन्तराल है अथवा उनमें अन्तराल है ही नहीं ?

समाधान—देवोंके उत्पन्न होनेमें जो अन्तराल होता है वह क्रमसे इस प्रकार है। सौधर्म, ऐशान इन

दो स्वर्गोंमें किसी देवके मरण होनेपर दूसरे देवके उत्पन्न होनेका अन्तर अधिकसे अधिक सात दिन है। सानत्कुमार, माहेन्द्रमें उत्कृष्ट अन्तरल एक पक्ष है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट इन चार स्वर्गोंमें किसी देवके मरनेके बाद दूसरे देवके उत्पन्न होनेका अन्तर एक महीना है। शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार इन चार स्वर्गोंमें किसी देवके मरनेपर उसके स्थानपर दूसरे देवके उत्पन्न होनेका अन्तर दो महीना है। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार स्वर्गोंमें उत्कृष्ट अन्तर चार महीना है। इन सोलह स्वर्गोंसे ऊपर नव ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांचों पंचोत्तर इन समस्त कल्पातीत विमानोंमें किसी अहमिंद्रके मर जानेपर दूसरे अहमिंद्रके उत्पन्न होनेका अन्तर अधिकसे अधिक छह महीना है। इस प्रकार इनका अन्तर है। सो ही सिद्धान्तसार दीपकमें लिखा है—

सौधर्मैशानयोः प्रोक्तमुत्पत्तौ मरणेऽतरम्। उत्कृष्टेन च देवानां दिनानि सप्त नान्यथा।१३।
सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिनां कर्मपाकतः। संभवे मरणं ख्यातं पक्षैकमन्तरं परम् ॥१४॥
अंतरं ब्रह्मनाकादिचतुःस्वर्गनिवासिनाम्। उत्पत्तौ च्यवने स्याच्च मासैकमेव हि ॥१५॥
अंतरं मरणोत्पत्तौ भवत्येव च नाकिनाम्। मासौ द्वौ परमं शुक्रादिकस्वर्गचतुष्टये ॥१६॥
आनतादिचतुःस्वर्गवासिनां परमंतरम्। चतुर्मासाश्च विज्ञेयं मरणं च संभवे तथा ॥१७॥
नवग्रैवेयकाद्येषु मरणे च समुद्भवे। सर्वेषामहमिंद्राणां मासषट्कं परान्तरम् ॥१८॥

इस प्रकार सिद्धान्तसार दीपकके सोलहवें अधिकारमें लिखा है।

२१८—चर्चा दोसौ अठारहवीं

प्रश्न—नरक और स्वर्गोंमें अलग-अलग कौन-कौनसे कालकी प्रवृत्ति रहती है?

समाधान—सातों ही नरकोंमें सदा शाश्वता समस्त असाताओंकी खानि ऐसा अतिदुःखमा अथवा दुःखमा-दुःखमा नामका छठा काल रहता है। तथा चतुर्णिकाय देवोंके स्थानोंमें, भवनोंमें, आवासोंमें वा विमानोंमें सब जगह शाश्वता सदा सुखोंका समुद्र ऐसा सुखमा-सुखमा नामका पहला काल रहता है। सो ही सिद्धांतसारके दीपकके नौवें अध्यायमें लिखा है—

कालोतिदुःखमाभिख्यो नरकेष्वस्ति सप्तसु । विश्वासाताकरीभूता शाश्वतो नरकांगिनाम् ॥
चतुर्णिकाये देवानां स्वर्गादिसर्वधामसु । सुखमासुखमा यालो नित्योस्ति सुखसागरः ॥२॥

यहाँपर जो सुखमा-सुखमा वा दुःखमा-दुःखमा काल बतलाया है । सो केवल सुख वा दुःखकी अपेक्षा- से बतलाया है उस कालको आयु, काय आदिकी अपेक्षासे नहीं बतलाया है। भावार्थ—नरक, स्वर्गकी जो आयु वा काय नियत है वही रहती है । उसमें अन्तर नहीं पड़ता केवल सुख वा दुःख उस कालके समान है ।

२१६–चर्चा दोसौ उनईसवीं

प्रश्न—स्वर्गके विमान आकाशमें किसके आधारपर स्थित हैं ?

समाधान—सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार तक बारह स्वर्गोंके विमान जल और पवनके आधार हैं तथा आनत स्वर्गसे लेकर बाकीके स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पाँचों पंचोत्तरोंके समस्त विमान बिना किसी आधारके निराधार अपने आप स्थिर हैं। सो ही सिद्धांतसार दीपकके प्रथम अध्यायमें लिखा है—

जलवातद्वयाधोरणैव व्योम्नि मनोहराः । प्रगान्ताधिकल्पानां चतुर्वर्णा विमानकाः ॥७६॥
ग्रैवेयकादिपंचानुत्तरान्तानां भवन्ति ते । निराधारास्त्रयोविंशाग्रसहस्रप्रमाः स्वयम् ॥८०॥

प्रश्न—यह लोक किसके आधार है ?

समाधान—यह लोक घनोदधि वात, घनवात और तनुवातके आधार है । अर्थात् यह लोक घनोदधि नामकी घनीभूत वायुसे घिरा है । उसीके आधारपर ठहरा है, घनोदधि वायु घनवायुके आधार हैं, घनवायु तनुवायुके आधार हैं और तनुवायु आकाशके आधार है तथा आकाश स्वयं अपने आधार है । सो ही सिद्धांत-सारमें पहले अधिकारमें लिखा है—

घनोदधिर्घनाख्यश्च तनुवात इमे त्रयः । सर्वतो लोकमावेष्ट्य नित्यास्तिष्ठंति वायवः ॥८०॥

श्रुतसागरी टीकामें भी इसी प्रकार लिखा है—

घनोदधिजगत्प्राणः सर्वलोकस्य वेष्ठन । घनप्रभंजनो नाम द्वितीयस्तदनंतरम् ॥
तनुवात उपर्यस्य त्रलोक्याधारशक्तिमान् । वाता एते स्थितिस्तेषां कथ्यमानानि शम्यतां ॥

२२०–चर्चा दोसौ बोसवीं

प्रश्न—एक मुनि, एक अर्जिका, एक श्रावक और एक श्राविका इन चारों धर्मात्माओंका चतुर्विध संघ रहेगा और कल्की इनसे दण्ड मागेगा सो इन चारोंका क्या नाम है ?

समाधान—मुनिका नाम वीरांगद होगा जो इन्द्रराज मुनिके शिष्य होंगे। अर्जिकाका नाम सर्वश्री होगा। श्रावकका नाम अग्निल होगा और उसकी स्त्रीका प्रयंगुसेना होगा। इस प्रकार इन चारोंके नाम होंगे। उस समय जो कल्की होगा वह पापी इनसे ग्रासका दण्ड माँगेगा। सो ये चारों ही जीव संन्यास धारण कर मरण करेंगे और पहले स्वर्गमें उत्पन्न होंगे।

प्रश्न—इनका मरण किस महीनेकी किस तिथिमें होगा ?

समाधान—ये चारों जीव तीन दिन तक संन्यास धारण करेंगे फिर दुःखमा कालके अन्तमें जब तीन वर्ष साढे आठ महीना बाकी रहेंगे उस दिन कार्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन प्रातःकाल मरण करेंगे। ये चारों ही जीव सौधर्म स्वर्गमें उत्पन्न होंगे। वहाँ पर मुनिके जीवकी आयु एक सागरकी होगी और बाकीके तीनों जीवोंकी आयु एक-एक पल्यकी होगी। सो ही सिद्धांतसार दीपकके नौवें अधिकारमें लिखा है—

इन्द्रराजमुनेः शिष्यो यतिर्वीरांगदाभिधः। अंतिमश्चार्यिका सर्वश्री श्रावकोग्निलाख्यकः॥
श्राविका प्रिया तस्य प्रियंगुसेनाभिधा तदा। कालदोषेण चत्वारोऽमी स्थास्यंति सुधर्मिणः॥
स कल्की पापधीः पापात् पूर्ववत्तस्य सन्मुनेः। सद्ग्रासहरणार्थैर्महोपसर्गं करिष्यति॥
चत्वारस्ते तदा तस्मिन्नुपसर्गे शिवाप्तये। ग्रहीष्यन्ति सुसन्यासं त्यक्त्वाहारं चतुर्विधम्॥
ततो दिनत्रयेणैव मुक्त्वा प्राणान् समाधिना। दुःखमस्यैव कालस्यावसानस्य स्थितेषु च॥
सार्द्धाष्टमाससंयुक्तत्रिवर्षोद्धरितेष्वपि। पूर्वाह्णे कार्तिके कृष्णेमावस्यायां शुभोदयात्॥
अन्ते सौधर्मकल्पान्ते चत्वारः सुखसागरम्। गमिष्यन्ति महाशर्मभोक्तारो धर्मतत्पराः॥
तन्मुनेः सागरैकं च भवितायुरखंडितम्। तत्र शेषत्रयाणां च पल्यमेकं हि साधकम्॥

२२१-चर्चा दोसौ इकईसवीं

प्रश्न—असुर कुमारोंके इंद्र चमरेंद्र और वैरोचनेन्द्र हैं ये दोनों सौधर्म स्वर्गके स्वामी सौधर्मेन्द्रसे तथा ऐशान स्वर्गके स्वामी ऐशानेन्द्रसे युद्ध करनेको गये थे। तब इन्द्रने इनपर वज्रका प्रहार किया था तब चमरेंद्र वहांसे भागा और अपने पातालमें आ छिपा। ऐसी कहावत है सो क्या सत्य है ?

यह कहावत असत्य है। दिगम्बर आम्नायके विरुद्ध है। यह कहावत श्वेताम्बर आम्नाय की है इसलिये विरुद्ध और श्रद्धान करने योग्य नहीं है।

प्रश्न—यदि ये दिगम्बर आम्नायके वाक्य नहीं हैं तो फिर दिगम्बर आम्नायमें यह कहावत प्रचलित क्यों है ?

समाधान—कुछ क्षेत्रका स्वभाव ही ऐसा है जिससे चमरेन्द्र सौधर्म इन्द्रसे व्यर्थ ही ईर्षाभाव रखता है। इसी प्रकार वैरोचन इन्द्र ईशान इन्द्रसे व्यर्थ ही ईर्षाभाव रखता है। यद्यपि ये दोनों ही सौधर्म, ऐशान इन्द्रोंका कुछ कर नहीं सकते तथापि ईर्षाभाव रखकर व्यर्थ ही पापका बंध करते हैं। ऐसा वर्णन सिद्धांतसार प्रदीपकके दशवें अधिकारमें आया है। यथा—

सौधर्मेन्द्रेण चित्ते चमरेन्द्रः कुरुते वृथा। सहाकिंचित्करामीर्ष्यां क्षेत्रसद्भाववर्तनात् ॥७०
तथैशानसुरेन्द्रेण सहेर्ष्यां निष्फलां मुधा। हृदि वैरोचनेन्द्रोपि करोति पापकारिणीम्॥७१

इससे सिद्ध होता है कि ये लड़ने नहीं गये, लड़नेकी बात कहना मिथ्या है।

२२२-चर्चा दोसौ बाइसवीं

प्रश्न—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी ये तीनों भवनत्रिकदेव कौनसे तप करनेसे होते हैं ?

समाधान—जो जीव उन्मार्गचारी (मोक्षमार्गको छोड़कर कुमार्गमें चलनेवाले) होते हैं, सम्यग्दर्शनके घातक, अकाम निर्जरा करनेवाले, युवावस्थामें ही तपश्चरण धारण कर शिथिलाचाररूप श्वेताम्बरादिकके धर्म को धारण करनेवाले अथवा मिथ्या संयमको धारण करनेवाले, पंचाग्नि तप करनेवाले, दूसरोंकी निंदा करनेवाले, तापसियोंका भेष धारण करनेवाले, अज्ञानतासे कायक्लेश करनेवाले ऐसे शिव धर्मके उपासक शैवलिंगी

वैष्णव तथा और भी अनेक भेषोंको धारण करनेवाले मनुष्यादिक जीव मरकर भवनत्रिकोंमें देव उत्पन्न होते हैं। इनके सिवाय जो चंडी, मुंडो, भैरव, क्षेत्रपाल, बीजासणी, शीतला, दुर्गा, कात्यायनी आदि अनेक नीच देवोंका उपासना करनेवाले जीव तथा पाँचों महापापोंको धारण करनेवाले क्रोधी, मानी, कपटी, लोभी, कामी आदि अनेक अवगुणोंको धारण करनेवाले, केवल भेष बनाकर लोगोंसे जबर्दस्ती गुरु बनवाने ऐसे नीच गुरुओं-की सेवा करनेवाले और हिंसामयी नीच धर्मको माननेवाले, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, आरम्भ आदिमें धर्म माननेवाले वा ऐसे धर्मको धारण करनेवाले, नीच पाखण्डियोंके भक्त, नीच भेष वा खोटे भेषको धारण करने-वाले, हिंसा धर्मको प्रतिपादन करनेवाले, खोटे शास्त्रोंको माननेवाले जीव नीच देवोंमें जाकर उत्पन्न होते हैं। ऐसा समझकर अपने आत्मसुखके लिये स्वर्ग मोक्षके देनेवाले जैनधर्मको ही धारण करना चाहिये। यही कल्याण-का मार्ग है। दुष्टोंके समान कुमार्ग वा मिथ्यामार्ग कभी स्वीकार नहीं करना चाहिये। सो ही सिद्धांतसार-दीपकके चौदहवें अधिकारमें लिखा है—

उन्मार्गचारिणो येत्र विराधितसुदर्शनाः। अकामनिर्जरायुक्ता बालाबलतपोन्विताः ॥२४॥
शिथिला धर्मचारित्रे मिथ्यासंयमधारिणः। पंचाग्निसाधने निष्ठा सनिदानाश्च तापसाः॥२५॥
अज्ञानक्लेशिनः शैवलिंगिनो ये नरादयः। भावनादित्रयाणां ये यान्ति जीवगतित्रयम् ॥२६॥
ये नीचदेवसंसक्ता नीचानीचगुरुश्रिताः। नीचधर्मरताः नीचपाषंडोभक्तिकाः शठाः ॥२७॥
नीचसंयमदुर्वेशाः नीचशास्त्रतपोन्विताः। तेऽहो सर्वत्र नीचाः स्युः देवत्वेऽन्यत्र च सदा ॥
मत्वेति जैनसन्मार्गं स्वमोक्षदं सुखार्थिभिः। विमुच्च श्रेयसे जातु न ग्राह्यं दुष्पथं खलम्॥२९॥

२२३–चर्चा दोसौ तेवीसवीं

प्रश्न—चतुर्णिकायके देवोंमें महाऋद्धियोंको धारण करनेवाले इन्द्रादिक देव अपनी आयु पूरी कर किस किस गतिको प्राप्त होते हैं ?

समाधान—सौधर्म इन्द्र सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेके प्रभावसे उसकी महादेवी इन्द्राणी, समस्त दक्षिण दिशाके इन्द्र, चारों लोकपाल, समस्त लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र अपनी आयुके क्षय होनेपर वहाँसे चयकर महापुण्याधिकारी मनुष्यभव धारण करते हैं। वहाँपर वे पुरुष ही होते हैं। संसारके सुखोंको

भोग कर मुनिव्रत धारण कर तथा तपश्चरण कर केवलज्ञान पाकर मोक्ष जाते हैं। अर्थात् ऊपर लिखे हुए सौधर्म इन्द्रादिक देव एक भवावतारी जीव हैं। एक मनुष्य भव धारण करके ही मोक्ष जाते हैं। नौ अनुदिशोंके देव, पाँचों पंचोत्तरोंके देव वहाँसे चयकर नारायण, प्रतिनारायण पदको कभी नहीं पाते हैं। इस प्रकार तिर्यञ्च मनुष्य और भवनत्रिकके देव अपनी आयुके क्षय होनेपर वहाँसे चयकर शलाका पुरुष कभी नहीं होते अर्थात् चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ बलभद्र और नौ प्रतिनारायण इन तिरेसठ शलाका पुरुषोंकी पदवीको कभी प्राप्त नहीं होते। तथा विजयादिक विमानोंके रहनेवाले अहमिन्द्र तथा अनुदिशोंके अहमिन्द्र दो मनुष्य भव धारण कर मोक्ष जाते हैं। अर्थात् वहाँसे चयकर मनुष्य होकर फिर विजयादिकमें जन्म लेकर फिर मनुष्य होकर मुक्त होते हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

विजयादिषु द्विचरमाः।

यही सब बात सिद्धांतसार प्रदीपकके पन्द्रहवें अधिकारमें लिखी है।

सौधर्मेन्द्रस्य हृष्ट्याप्ता महादेव्यो दिवश्च्युताः।
सर्वे च दक्षिणेन्द्रा हि चत्वारो लोकपालकाः॥ ३७७॥
सर्वे लौकांतिका विश्वे सर्वार्थसिद्धिजामराः। निर्वाणं तपसा यान्ति संप्राप्य नृभवं शुभम्॥
नवानुत्तरजा देवाः पंचानुत्तरवासिनः। ततश्च्युत्वा न जायन्ते वासुदेवा न तद्द्विषः॥३७९
तिर्यंचो मानवाः सर्वे भावनादिस्त्रिजामराः। शलाकाः पुरुषाः जातु न भवन्त्यमरार्चिताः॥
विजयादिविमानेभ्योऽहमिन्द्रा गत्य भूतलम्। मर्त्यजन्मद्वयं प्राप्य ध्रुवं गच्छन्ति निर्वृतिम्॥

२२४—चर्चा दोसौ चौबीसवीं

प्रश्न—इस मध्यलोकमें जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक कालचक्रका बर्ताव किस प्रकार है। अर्थात् सुखमा-सुखमा आदि छहों कालोंमेंसे कौन-कौन काल कहाँ वर्तता है?

समाधान—ढाई द्वीपके पंचमेरु सम्बन्धी पांचों भरत-क्षेत्र और पाँचों ऐरावत क्षेत्रोंमें अनुक्रमसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके छहों कालोंका बरताव रहता है अर्थात् अवसर्पिणी कालका पहला, दूसरा,

तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा तथा उत्सर्पिणी कालका छठा, पाँचवाँ, चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला इस प्रकार इन दशों क्षेत्रोंमें कालचक्र बराबर फिरता रहता है तथा इन्हीं कालोंके द्वारा उनमें वृद्धि-ह्रास सदा होता रहता है। इसी प्रकार समस्त विजयार्द्ध पर्वतोंपर तथा प्रत्येक क्षेत्रके पाँचों म्लेक्षखण्डोंमें सदा चौथा काल रहता है। उसमें भी इतना अन्तर है कि विदेह क्षेत्रके विजयार्द्धोंको छोड़कर बाकीके भरत, ऐरावत सम्बन्धी दशों विजयार्द्धोंमें चतुर्थकाल हीनाधिक रूपसे रहता है। अर्थात् उनमें तीर्थङ्करोंकी आयु कायके समान हीनाधिकता होती रहती है। पहले तीर्थङ्करके समय पाँचसौ धनुषका शरीर और एक करोड़ पूर्वकी आयुवाले विद्याधर होते हैं। तथा अन्तिम तीर्थङ्करके समय एक धनुषका शरीर और एकसौ बीस वर्षकी आयुवाले विद्याधर होते हैं। बाकीके विदेह क्षेत्र सम्बन्धी एकसौ साठ विजयार्द्ध निवासी विद्याधरोंकी आयु काय उत्कृष्ट श्री सीमंधर स्वामीके समान सदा रहती है। वहाँकी आयु काय हीनाधिक नहीं होती।

विदेहक्षेत्रकी एकसौ साठ नगरियोंमें तथा पंच मेरु सम्बन्धी दश कनकाचल पर्वतों पर सदा मोक्षमार्गका प्रवर्तक चौथा काल रहता है अर्थात् इन क्षेत्रोंमें कभी दूसरा काल नहीं बदलता, सदा चौथा काल ही रहता है। पाँचों मेरु पर्वतकी दक्षिण, उत्तर दिशाकी ओर जो देवकुरु और उत्तरकुरुकी दश भूमियाँ हैं जिनमें सदा उत्कृष्ट भोगभूमि रहती है उसमें सदा पहला काल ही रहता है। पाँचों मेरु सम्बन्धी पाँचों हरिक्षेत्रोंमें तथा पाँचों रम्यक क्षेत्रोंमें सदा मध्यम भोगभूमि रहती है और सदा दूसरा काल रहता है। इसी प्रकार पाँचों हैमवत क्षेत्रोंमें और पाँचों हैरण्यवत क्षेत्रोंमें सदा जघन्य भोगभूमि रहती है और सदा तीसरा काल रहता है। मानुषोत्तर पर्वतसे आगे नागेन्द्रनामके पर्वत तक मध्यके असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें सदा जघन्य भोगभूमिकी रचनाके समान तीसरा काल रहता है। नागेन्द्र पर्वतसे आगे स्वयंभूरमण नामके अन्तके द्वीपके आधे क्षेत्रमें सदा पाँचवाँ काल रहता है। इस प्रकार मध्यलोकमें कालकी किरनका स्वरूप है। सो ही सिद्धांतसार दीपकके नौवें अधिकारमें लिखा है—

भरतैरावतक्षेत्रेषु सर्वेषु द्विपंचसु। द्विषट्कालाः प्रवर्तन्ते वृद्धिह्रासयुताः सदा ॥३५४॥
विजयार्द्धनगेष्वत्र म्लेक्षखंडेषु पंचसु। चतुर्थकाल एवास्ति शाश्वतो निरुपद्रवः ॥३५५॥
किंतु चतुर्थकालस्य यदा स्याद्भरतादिषु। आयुःकायसुखादीनां वृद्धि ह्रासाश्च जन्मिनाम् ॥

तदा तेन समः कालो वृद्धिह्रासयुतो भवेत् । रूप्याद्रिम्लेच्छखण्डेषु शेषकालश्च न क्वचित् ॥
पूर्वापरविदेहेषु द्विपंच स्वर्णपर्वते । चतुर्थकाल एवैको मोक्षमार्ग प्रवर्तकः ॥३५८॥
देवोत्तरकुरुष्वेव द्विपंच भोगभूमिषु । दक्षिणोत्तरयो मेरौ प्रथमः काल ऊर्जितः ॥३५९॥
हरिरम्यकवर्षेषु मध्यमा भोगभूमिषु । वृद्धिह्रासातिगः कालो द्वितीयो मध्यमो मतः ॥३६०॥
हैमवताख्यहैरण्यवत्क्षेत्रेषु । द्वपंचसु । तृतीयः शाश्वतःकालो जघन्यभोगभूमिषु ॥३६१॥
तिर्यग्द्वीपेष्वसंख्येषु मानुषोत्तरपर्वतात् । बाह्यस्थेष्वन्तरेस्थेषु नागेन्द्रशैलतःस्फुटम् ॥३६२॥
जघन्यभोगभूभागस्थितियुक्तेषु वर्तते । जघन्योभोगभूकर्ता नित्यकालस्तृतीयकः ॥३६३॥
नागेंद्रपर्वताद्बाह्ये स्वयंभूरमणार्णवे । स्वयंभूरमणद्वीपार्द्धे कालः पंचमोऽव्ययः ॥३६४॥

इस प्रकार कालका निर्णय है।

२२५—चर्चा दोसौ पच्चीसवीं

प्रश्न—यह जीव पात्रदानसे तो उत्कृष्ट वा मध्यमादिक भोगभूमियोंमें जन्म लेता है परन्तु कुभोग-भूमियोंमें किस कारणसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—जो कुमार्गगामी अपने मायाजालसे आर्हती दीक्षा धारण करते हैं, जो बिना आलोचनाके तप वा व्रत पालन करते हैं जो परविवाहकरण आदि पापरूप कार्योंकी अनुमोदना करते हैं। जो ज्योतिष, मंत्र, तन्त्र वा वैद्यक कर्मके द्वारा अपनी आजीविका करते हैं, पंचाग्नि तप करते हैं, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र-की विराधना करते हैं, मिथ्या तप और मिथ्याज्ञान धारण करते हैं, जो खोटे भावोंसे नीच कुलोंमें भी मौन रहित भोजन करते हैं, जो सूतक, पातक वा रजस्वलादिके सूतकोंमें आहारादिक ग्रहण करते हैं, जो अभक्ष्य आदि सदोष भोजनोंको भी कर जाते हैं तथा इनके सिवाय और भी कितने ही प्रकारके शिथिलाचारोंको धारण करते हैं, जो इन्द्रियोंके लंपटी और शुद्धता रहित हैं ऐसे जो मायाचारी साधु हैं वे सब कुपात्र कहलाते हैं। जैनियोंके भेषको धारण करते हुये भी जो ऊपर लिखे निंद्य कार्य करते हैं ऐसे शिथिलाचारी साधु श्वेतांबर वा अन्य लिंगको धारण करनेवाले मानी मायावी साधु सब कुपात्र कहलाते हैं। जो मूर्ख इन कुपात्रोंको पात्र

समझकर दान देता है वह कुपात्रदानके पुण्यसे कुभोगभूमियोंमें जन्म लेकर कुमनुष्य होता है। वहाँपर जघन्य-भोगभूमिके समान सुख, आयु, काय आदिको भोगता है। सो ही सिद्धांतसार दीपकके दशवें अधिकारमें लिखा है—

ये ऽर्हल्लिंगप्रपंचन्यादिकारिणःकुमार्गगाः । अनालोचनपूर्वं ये तपोव्रतचरन्ति च ॥ ९५ ॥
परेषां ये विवाहादिपापानुमतिकारिणः । ज्योतिष्कमन्त्रतंत्रादिवैद्यकर्मोपजीविनः ॥ ९६ ॥
पंचाग्न्यादितपोनिष्ठ ये दृगादिविराधिनः । कुज्ञानकुतपोयुक्ता मौनहीनान्नभोजिनः ॥९७॥
कुकुलेषु च दुर्भावारसूतकादियुतेषु वा । आहारग्रहणोद्युक्ताः सदोषाशनसेविनः ॥ ९८ ॥
इत्यादिशिथिलाचारा मायाविनः सिटपटाः। शुद्धिहीनाश्च ते सर्वे स्युः कुपात्राणि लिंगिनः॥
तेभ्यः कुपात्रलिंगेभ्यो दानं ददति ये शठाः । ते कुपुण्यांशतो जन्म लभन्तेऽत्र कुभूमिषु ॥
जघन्यभोगभूमेर्या मृत्युत्पत्त्यादिका स्थितिः। सा ज्ञेया कुमनुष्याणां कुत्सिताभोगभूमिषु ॥

२२६–चर्चा दोसौ छब्बीसवीं

प्रश्न—मौनव्रतसे भोजन न करना सदोष बतलाया सो मौन कहां-कहां धारण करना चाहिये ?

समाधान—लघुशंका (पेशाब करते समय) दीर्घशंका जाते समय (शौच जाते समय) में, स्नान करते समय, पंचपरमेष्ठीकी पूजन करते समय, स्त्रीसम्भोग करते समय, भोजन करते समय और सामायिक आदि जप वा ध्यान करते समय इन सात स्थानोंमें मौन धारण करना चाहिये । सो ही लिखा है—

हदनं मूत्रणं स्नानं पूजनं परमेष्ठिनाम्। भोजनं सुरस्तोत्रं कुर्यान्मौनसमन्वितः ॥

इन सात स्थानोंमें मौन धारण करना चाहिये इनके सिवाय जहाँपर वचन बोलनेसे राग वा द्वेष उत्पन्न होता हो, वहाँपर भी मौन धारण करना योग्य है । लिखा भी है—

दोषवादे च मौनम्।

इस प्रकार आठ स्थानोंमें मौन धारण करना चाहिये ।

२२७–चर्चा दोसौ सत्ताईसवीं

प्रश्न—छठे कालमें मनुष्य कैसे होंगे तथा उनका व्यवहार कैसा होगा ?

समाधान—छठे कालका नाम दुःखमा दुःखमा है। वह इकईस हजार वर्षका है उसके प्रारम्भमें मनुष्य धूएँके रंगके होंगे, दो हाथ ऊँचे होंगे, बन्दरोंके समान नग्न होंगे। उनकी उत्कृष्ट आयु बीस वर्षकी होगी। एक दिनमें अनेक बार भोजन करेंगे, मांस भक्षी होंगे। उनके निवास बिलोंमें होंगे। उस समय नगर, पुर, गाँव आदि की रचना नहीं रहेगी। उनका स्वभाव दुष्ट होगा। नरक वा तिर्यञ्च गतिसे आये हुए ही वहाँपर उत्पन्न होंगे। अपनी माता, भगिनी, पुत्री आदि स्त्रियोंके साथ ही पशुओंके समान काम सेवन करेंगे। तथा अपनी आयुके अन्तमें मर कर तिर्यञ्च वा नरकमें ही उत्पन्न होंगे। इस प्रकार छठे दुःखम दुःखमा कालमें दुराचारी, महापापी मनुष्य होंगे और वे घोर दुःखोंके भोगनेवाले होंगे। उस समय बादलोंमें पानी नहीं रहेगा, पृथ्वीके वृक्षादिक वनस्पतियोंमें कोई रस स्वाद नहीं रहेगा। मनुष्य, स्त्रियाँ सब निराश्रय रहेंगी उस छठे कालके अन्तमें मनुष्योंकी ऊँचाई एक हाथ की रहेगी। वे बहुत कुरूपी होंगे। उस समय उत्कृष्ट आयु सोलह वर्ष की होगी। तथा शीत उष्णकी बाधासे वे बहुत ही पीड़ित होंगे। सो ही सिद्धांतसारदीपकके नौवें अधिकारमें लिखा है—

अस्यादौ धूम्रवर्णाभा नरा हस्तद्वयोन्नताः। शाखामृगोपमा नग्ना वर्षविंशतिजीविनः॥३०४॥
मांसाद्याहारिणोनेकवाराशिनो दिनं प्रति। बिलादिवासिनो दुष्टा आयान्ति दुर्गतिं द्वयात्॥
मात्रादिकामसेवांधास्तिर्यक्नरकगामिनः। भविष्यन्ति दुराचाराः पापिनो दुःखभोगिनः॥३०६
तस्मिन्काले शुभातीते मेघाः स्वच्छजलाप्रदाः। स्वादुवृक्षोज्झिता पृथ्वी निराश्रया नरास्त्रियः॥
कालस्यान्ते करैकोच्चदेहा नराः कुरूपिणः। उत्कृष्टषोडशाब्दायुष्काः शीतोष्णादिपीडिताः॥

२२८–चर्चा दोसौ अट्ठाइसवीं

प्रश्न—श्रीमहावीर स्वामीको तथा पार्श्वनाथ स्वामीको तपश्चरण करते समय उपसर्ग हुआ था परंतु उस समय तीनों लोकोंके इन्द्रोंको वा चतुर्णिकायके देवादिक अन्य जीवोंको भी मालूम नहीं हुआ था। क्योंकि

श्रीपार्श्वनाथपर सात दिन तक बराबर उपसर्ग होता रहा। सात दिनके बाद धरणेन्द्र पद्मावती आये और उपसर्ग दूर किया। तदनंतर भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सो धरणेन्द्र पद्मावती भी पहले क्यों नहीं आये। इसका कारण क्या है ?

समाधान—यदि धरणेन्द्र पद्मावती उसी समय आ जाते तो इतने दिन तक उपसर्ग कैसे रहता ? वे अपने पहले बंधे हुए कर्मोंके फलको किस प्रकार भोगते ? तथा उस उपसर्गसे जो अनंत कर्मोंकी निर्जरा हुई थी सो कैसे होती ? तथा बिना कर्मोंकी निर्जराके इतनी शीघ्रतासे केवलज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता ? इसलिये कहना चाहिये कि इनके लिये ऐसे ही निमित्त मिलने थे। जिससे कि इतना उपसर्ग हो और नियत समयपर केवलज्ञान हो।

दूसरी बात यह है कि इस भरतक्षेत्रमें असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल बीत जानेपर एक हुंडावसर्पिणी काल आता है। उसमें उस हुंडावसर्पिणी कालके दोषसे कितनी ही बातें विपरीत होती हैं। लिखा भी है—

हुंडावसर्पिणीकाले णियमेण भवंति पंच पाषंडा। चक्किकहरमाणभंगो उवसग्गो जिणवरंदाणं॥

अर्थात्—असंख्यात उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी कालके बीतने पर इस भरतक्षेत्रमें एक हुंडावसर्पिणी काल आता है। उसमें नियमसे पंच पाखंड बढ़ जाते हैं। एकान्त, विनय, विपरीत, संशय, अज्ञान ये पाँचों मिथ्यात्व बढ़ जाते हैं। चक्रवर्तीका का मान भंग होता है और तीर्थंकरोंको छद्मस्थ अवस्थामें उपसर्ग होता है। यह सब हुंडावसर्पिणीका माहात्म्य है। इसका विशेष वर्णन सिद्धांतप्रदीपकमें लिखा है। यथा—

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यसंख्यातेषु गतेष्वपि। हुंडावसर्पिणीकालः इहायाति न चान्यथा ॥७३॥
तस्यां हुंडावसर्पिण्यां पंचपाषंडदर्शिनः। शलाकाः पुरुषा जाताः सप्त भेदा अनेकशः ॥७४॥
जिनशासनमध्ये स्युः विपरीता मतान्तराः। चीवराद्यावृता निंद्याः सग्रंथाः संति लिंगिनः ॥७५॥
उपसर्गा जिनेन्द्राणां मानभंगाश्च चक्रिणाम्। कुदेवमठमूर्त्याद्याः कुशास्त्राणि अनेकशः ॥
भरतस्य बाहुबलिना मानभंगः प्रजायते।

इस प्रकार इस हुंडावसर्पिणी कालके ऊपर लिखे हुए पाँचों मिथ्यात्वोंकी वृद्धि हुई है। शलाका

पुरुषोंमें कमी हुई है।[1] जिनशासनमें भी वस्त्रोंको धारण करनेवाले श्वेताम्बरोंके साधु हुये है श्वेताम्बरोंने और भी कई प्रकारकी विपरीतता चलाई हैं सो सब काल दोषका प्रभाव है।

इसके सिवाय तीर्थंकरोंको उपसर्गका होना, चक्रवर्तीका मानभंग होना, कुदेवोंकी मूर्ति या मठ स्थापन होने और कुशास्त्रोंका बहुत प्रचार होना आदि सब काल दोष है। इस प्रकार इस काल दोषका वर्णन संक्षेपसे कहा है। यदि इसका विस्तार जानना हो तो त्रिलोकप्रज्ञप्तिसे जानना चाहिये।

प्रश्न—श्रीपार्श्वनाथके तपश्चरण करते समय उपसर्ग हुआ था और उपसर्गके समय धरणेन्द्र पद्मावतीने उनके मस्तकपर उस उपसर्गको दूर करनेके लिये सर्पका फणा बनाया था। तदनन्तर भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। केवलज्ञानके समय वह फणा नहीं रहा था तथा मूर्ति केवलज्ञानके समयकी बनाई जाती है और उस समय उनके मस्तकपर फणा था नहीं। फिर अब उनकी मूर्तिपर फणा क्यों बनाया जाता है?

समाधान—केवलज्ञानका स्वरूप गर्भ, जन्म, तप इन तीनों कल्याणोंके बिना नहीं होता। तुमको जो केवल केवलज्ञानकल्याणकी मूर्ति प्रतिभासित होती है सो नहीं है किन्तु वह प्रतिमा गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण इन पाँचों कल्याणमय है। प्रतिष्ठाके समय भी पाँचों कल्याणकोंकी प्रतिष्ठा होती है। तप कल्याणकी विधिमें पार्श्वनाथकी प्रतिमापर फणावली जो होनी चाहिये इसी अभिप्रायको लेकर प्रतिमाके निर्माण करते समय धातु वा पाषाणमें फणाका चिह्न बनाया जाता है। बननेके बाद वह दूर हो नहीं सकता। तथा प्रतिष्ठाके समय पहलेके पंच कल्याणकोंके संस्कार सब होने ही चाहिये। प्रतिमाजी तभी प्रतिष्ठित कहलावेंगी। ऐसी प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ मंदिरोंमें विराजमान रहती हैं इसी कारण उनपर फणाका चिह्न रहता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि समस्त तीर्थंकरोंकी प्रतिमाएँ पंच कल्याणकमयी ही होती हैं। इसीलिये उनका पंचामृताभिषेक किया जाता है तथा जल-गंधादिकसे स्नान वा विलेपनादिक कर पूजनादिक किया जाता है। जो कोई ज्ञानकल्याणकमय वा तप कल्याणकमय मानते हैं सो सब मिथ्या है।

[४

---

१. शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ ये तीर्थङ्कर भी थे और चक्रवर्ती भी थे। इस प्रकार तिरेसठ शलाका पुरुषोंमें तीन जीवोंकी कमी हुई है।

कोई-कोई श्रावक भगवान पार्श्वनाथजीकी प्रतिमापर फणोंका चिन्ह होते हुए प्रक्षाल, अभिषेक, पूजन, दर्शन, वंदन आदि करते समय मनमें अरुचि लाते हैं, कितने ही श्रावक प्रक्षाल करते समय फणाको छोड़ देते हैं तथा कोई-कोई श्रावक फण सहित प्रतिमाकी पूजन वा दर्शन नहीं करते सो ठीक नहीं है। उनकी यह क्रिया शास्त्रोंविरुद्ध और अपने मनकी कल्पनाके अनुसार है।

कदाचित् कोई यह कहे कि हम तो परीक्षाप्रधानी हैं, आज्ञाप्रधानी नहीं हैं तो इसका समाधान यह है कि धर्मध्यानके चार भेद वा दश भेद बतलाये हैं उनमें आज्ञाविचय नामका भेद सबसे पहले और सबसे मुख्य

---

१. उत्तरपुराणमें लिखा है—

ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्यान्मोहसंक्षये। विनाशमगमद्विश्वो विकारः कमठः द्विषः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान ध्यानमें तल्लीन हुये ध्यानके माहात्म्यसे मोहनीयकर्म नष्ट हो गया और मोहनीयके नाश होनेसे कमठ शत्रुका सब विकार नष्ट हो गया।

इसके पहले उत्तरपुराणमें लिखा है—

भर्तारमस्थाद्वावृत्य तत्पत्नी च फणाततेः। उपर्युच्चैः समुद्धृत्य स्थिता वज्रातपच्छदम्॥ १४०॥ पर्व ७३॥

अर्थात्—उसकी देवी पद्मावती अपने फणाओंके समूहका वज्रमयी छत्र बनाकर बहुत ऊँचा ऊपर उठाकर खड़ी रही।

इससे सिद्ध होता है कि वह वज्रमय फणा पद्मावतीने बनाया। तथा उसी अवस्थामें उनको केवलज्ञान हुआ क्योंकि जब तक वह उपद्रव दूर नहीं हुआ था तबतक तो वे धरणेन्द्र पद्मावती हट ही नहीं सकते थे। तथा उन्होंने जो फण किया था सो बहुत ऊँचा किया भगवानके शरीरसे उसका सम्बन्ध नहीं था। तथा वह उपद्रव मोहनीय कर्मके नाश होनेके बाद हुआ है। इससे सिद्ध है कि वह फणा मोहनीय कर्मके नाश होने तक था। तथा मोहनीय कर्मके नाश होनेपर अन्तर्मुहूर्तमें ही केवलज्ञान हुआ है। आगे इसी उत्तरपुराणमें लिखा है कि केवलज्ञान होनेके बाद वह संवर ज्योतिषी देव शांत हो गया। यथा—

तदा केवलपूजां च सुरेन्द्रा निरवर्तयन्। संवरोप्यात्तकालादिलब्धिः शममुपागमत्॥ १४५॥

अर्थात्—केवलज्ञान होनेपर इन्द्रोंने पूजा की और काललब्धि प्राप्त होनेसे संवर ज्योतिषी भी शान्त हो गया। इससे सिद्ध होता है कि केवलज्ञान प्राप्त होने तक वह ज्योतिषी शान्त नहीं हुआ है। ऐसी अवस्थामें पद्मावती देवी भी उसी तरह रही होगी। यह बात उत्तरपुराणमें लिखी ही है कि पद्मावतीने वह फणा बहुत ऊँचा लगाया था और भगवानके शरीरसे उसका कोई संबंध नहीं था तथापि कमसे कम मोहनीय कर्मके नाश होने तक तो फणा था ही। अब उसके हटानेका समय वही होना चाहिये जो इन्द्रादिक देवोंके आसन कंपायमान होनेका या आनेका है। जैसा कि १४५वें श्लोकसे सिद्ध होता है। इस प्रकार यह मूर्ति केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समय की ही है।

बतलाया है। वह व्यर्थ हो जायगा। भगवान वीतराग सर्वज्ञदेवने अपने केवलज्ञान वा केवलदर्शनके द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थोंका भी निरूपण किया है। उनका जानना वा देखना छद्मस्थ पुरुषोंके ज्ञानगम्य नहीं है। एक जलकी बूंदमें असंख्यात त्रस जीव बतलाये हैं यदि वे कबूतरका शरीर धारण कर उड़ने लगे तो इस एक लाख योजन व्यासवाले जंबूद्वीपमें भी न समावें। इसी प्रकार पृथिवीकाय आदिमें जीवोंकी संख्या बतलाई है। एक निगोदिया जीवके शरीरमें अनन्तानन्त निगोदिया जीवोंका निवास बतलाया है। उनमेंसे यदि एक जीवका मरण हो तो सबका मरण हो जाता है। एकका जन्म हो तो सबका जन्म हो जाता है। इनके सिवाय मेरु-पर्वत, कुलाचल पर्वत, गंगा, सिन्धु आदिक नदियाँ, विदेहक्षेत्र, समुद्र, असंख्यात द्वीप समुद्र, स्वर्ग, नरक, तीनों लोक, अलोक, छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय आदिका वर्णन किया है सो इनमेंसे नेत्रोंके द्वारा वा इन्द्रियोंके द्वारा बहुत थोड़ा देखा वा जाना जाता है। बाकी सब सर्वज्ञगोचर है। छद्मस्थके ज्ञानगोचर नहीं है। यदि उन सबकी परीक्षा कर ही श्रद्धान किया जायगा तो यथार्थ श्रद्धानको विराधना माननी पड़ेगी। तथा इसके साथ-साथ अनन्त संसारका परिभ्रमण स्वीकार करना होगा। सो ही नरेन्द्रसेनकृत सिद्धांतसार-संग्रहकी चौथी संधिमें लिखा है—

जिनोक्तानां हि भावानां श्रद्धानमेकलक्षणम्। शुद्धाशुद्धविमिश्रादि भेदतस्तत्त्रिधा मतम्॥
कथमप्यक्षरं यस्तु जिनोदितमनिंदितम्। अन्यथा कुरुते तस्यात्मानंतसंसृतेर्भवेत्॥१४॥
यस्तु तत्त्वमिदं सम्यक् जीवाजीवादिगोचरम्। विपरीतं करोत्येषः किं स्यात् ज्ञानादिकेवली॥

इससे सिद्ध होता है कि परम्परापूर्वक सनातनसे जो शास्त्रोक्त तथा प्रमाण पुरुषोंके द्वारा विधि चली आ रही है वही करनी चाहिये। अपने बुद्धिके बलसे केवल संशय धारण नहीं करना चाहिये। जो ऐसा संशय करते हैं वे श्वेताम्बरोंके समान मिथ्यादृष्टि समझे जाते हैं।

एक बात बहुत विचारनेकी यह है कि श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमाजीपर फणाका चिह्न परम्परा पूर्वक चतुर्थ कालसे ही चला आ रहा है उसका वर्णन शास्त्रोंमें जहाँ-तहाँपर बहुत मिलता है। उदाहरणके समान थोड़ा-सा यहाँ लिखते हैं। आराधना कथाकोशमें आचार्य पात्रकेशरीकी एक कथा लिखी है। पात्रकेसरीने जब आप्तमीमांसाका पाठ सुना और अष्टशती उसकी टीका देखी तब उनको ब्राह्मणोंके माने हुए (नैयायिक

आदिके माने हुए) अनुमानके लक्षणमें सन्देह हुआ था। उस समय पद्मावती देवीने रात्रिमें ही श्री पार्श्वनाथ की मूर्तिके मस्तकपर रहनेवाले सर्पके फणापर अनुमानका लक्षण लिख दिया था और पात्रकेसरीको स्वप्नमें उस मन्दिरके दर्शन करनेके लिये कहा था। पात्रकेसरीने प्रातःकाल होते ही भगवानके दर्शन किये उन लिखे हुए श्लोकोंको देखकर अपना संदेह दूर किया। यह कथा प्रसिद्ध है। इसके सिवाय श्रीमाधनंदि मुनिकृत जय-मालामें भी पार्श्वनाथकी स्तुतिमें सर्पके फणाका वर्णन किया है यथा—

फणिमणिमण्डितमण्डपदेहं। पार्श्वनि जगतहत संदेहम् ॥

पण्डितप्रवर बनारसीदासजीने लिखा है—

"सजल जलद ननु मुकुट सपत फण" इत्यादि

इस समय सैकड़ों वा हजारों वर्षोंकी प्रतिमा दिखाई पड़ती हैं जिनपर फणाका चिन्ह है। इसलिये ऐसी प्रतिमाओंकी जो मन, वचन, कायसे अवज्ञा करता है उसे जिनमतका विरोधी समझना चाहिये। इस प्रकार भगवानके पांचों ही कल्याणक पूज्य हैं। केवल एक या दो नहीं।

२२६–चर्चा दोसौ उनतीसवीं

प्रश्न—पहले हुण्डावसर्पिणी कालदोषसे विपरीत आदि पांच प्रकारके मिथ्यात्व बतलाये सो इन पांचों मिथ्यात्वोंका स्वरूप क्या है ?

समाधान—इनका विशेष स्वरूप तो जैन ग्रन्थोंमें प्रसंगानुसार जहां तहां बहुत लिखा है। तो भी यहां बहुत संक्षेपमें लिखते हैं। पांच मिथ्यात्वोंके नाम ये हैं—

एयंतं संसइयं विवरीयं विणयजं महामोहं। अण्णाणं मिच्छंतं णिदिट्ठं सव्वदरसी हि।

अर्थ—एकांतमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व और अज्ञानमिथ्यात्व ये पांच प्रकारके मिथ्यात्व भगवान सर्वज्ञ देवने कहे हैं। अब इनका अलग-अलग स्वरूप बतलाते हैं।

जो जीवोंके स्वरूपको क्षणिक बतलाते हैं, यह जीव क्षण-क्षण में बदलता रहता है पहला नष्ट हो जाता है और क्षण-क्षणमें नया उत्पन्न होता रहता है। इस प्रकार कर्मोंको करनेवाला अन्य जीव है और

उनके फल भोगनेवाला अन्य है इस प्रकार प्रत्येक पदार्थके स्वरूप क्षणिक माननेवाले एकान्त मिथ्यात्वी हैं। ये क्षणिकवादी कहते हैं कि यह जीव पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच तत्त्वोंसे बना है। अथवा पच्चीस तत्त्वोंसे बना है। मछली, हिरण, बकरा, भैंसा, सूअर, मुर्गा, कबूतर, लावा, तीतर, मोर आदि त्रस जीवोंके भक्षण करनेमें कोई पाप नहीं है। इस प्रकार कहनेवाले अत्यन्त दुःख देनेवाली मिथ्याबुद्धिको धारण करनेवाले तथा दुष्टोंके कहे हुए कल्पित वचनोंको धारण करनेवाले सब एकांतमिथ्यात्वी समझने चाहिये।

जो केवली भगवानको कवलाहार मानते हैं, जो स्त्री पर्यायमें महाव्रत धारण करना, केवलज्ञानका उत्पन्न होना और उन स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति होना मानते हैं। जो कहते हैं कि श्री महावीर स्वामीका गर्भ किसी ब्राह्मणीके उदरमें हुआ था फिर इन्द्रने वहाँसे उठाकर त्रिशलाके उदरमें रक्खा। श्रीमहावीरस्वामीको समवशरणमें भी उपसर्ग हुआ। समवसरणमें विराजमान रहते हुए भी महावीरस्वामीके रक्तातिसार रोग हो गया। इस प्रकार जो विपरीत कथन करते हैं जो जिनलिंगको धारण करनेवाले महाव्रती साधुओंके भी दंड, वस्त्र, पात्र आदि चौदह उपकरण मानते हैं। इस प्रकार माननेवाले श्वेताम्बर सब संशयमिथ्यात्वी समझने चाहिये। इनका विशेष वर्णन श्री भद्रबाहुचरित्रसे तथा वसुनंदिश्रावकाचारकी वचनिकासे तथा और भी अनेक शास्त्रोंसे स्पष्ट जान लेना चाहिये।

जो जीवोंकी हिंसामें पुण्य मानते हैं, यज्ञ में बकरा, भैंसा, घोड़ा, मनुष्य आदिको मार कर होमते हैं, जो देवताओंपर बकरा, भैंसा आदि जीवोंको मार बलिदान देते हैं तथा इसी प्रकारके जीवघात करनेमें जो पुण्य मानते हैं। जैसा कि उनके यहाँ लिखा है—

देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक्।

अर्थात् देवता और पितरोंको बलिदान देकर फिर उस मांसके खानेमें कोई दोष नहीं है इस प्रकारके यज्ञ वा बलिदान करने वा करानेवालोंको स्वर्गकी प्राप्ति होना मानते हैं, जो तीर्थोंपर स्नान करने मात्रसे आत्माकी शुद्धि मानते हैं। जो क्रूर कर्म करनेवाले वा महापापरूप आरम्भ करनेवाले कुदेवोंकी पूजा भक्ति करते हैं, कामी, क्रोधी, लोभी तथा महा आरम्भ परिग्रहधारी गुरुओंकी सेवा भक्ति करते हैं। जो गाय, हाथी, घोड़ा, बैल, भैंस, भैंसा आदि पशुओंकी पूजा करते हैं, जो दुष्ट सर्प, कौआ, उल्लू, कुत्ता आदि पशुओंकी पूजा

करते हैं जो अपने माता-पिताके मरण होनेके बाद जल, तिल आदि पदार्थोंसे तर्पण करते हैं, श्राद्ध करते हैं, पिंडदान करते हैं। इत्यादि ब्राह्मणोंके बहकाये हुए जो बिना विचारे कार्य करते हैं सो सब विपरीत-मिथ्यात्व है।

जो देव, कुदेव, गुरु, कुगुरु, धर्म, कुधर्म, पात्र, अपात्र आदि सबको एकसा मानकर सबकी एकसा विनय करते हैं सबको एकसी भक्ति, सेवा, नमस्कार, पूजन आदि करते हैं ऐसे तापसियोंको विनयमिथ्यात्वी समझना चाहिये।

जो मद्य, मांस, शहद, पांच उदंबर, बाईस अभक्ष्य आदिके खानेके विचारसे रहित हैं ऐसे म्लेच्छ आदिसे उत्पन्न हुआ धर्म तथा शून्यवादियोंसे उत्पन्न हुआ धर्म सब अज्ञानमिथ्यात्व है। इस प्रकार पाँचों मिथ्यात्वोंका थोड़ासा स्वरूप बतलाया सो ही प्रश्नोत्तरोपासकाचारमें लिखा है—

कथ्यते क्षणिको जीव यत्र तत्त्वं च सर्वथा। अन्यः कर्म करोत्येव भुंक्ते चान्यो हि तत्फलम्॥
मत्स्यादिभक्षणे दोषो नास्ति दुःखाकरं खलम्। मिथ्यात्वं विद्धि तन्मित्र कुबोधमतकल्पितम्॥
ब्रूयते यत्र तीर्थेशे चाहारो मुक्तिसम्भवम्। स्त्रीणां गर्भापहारं च वर्द्धमानस्य दुःखदम्॥
यष्टिकवस्त्रपात्रादि सर्वं धर्मस्य साधनम्। तद्धि संशयमिथ्यात्वं भवेत्स्वेतपटव्रजम्॥
पुण्यं जीववधाद्यत्र शुद्धिः स्नानेन कथ्यते। क्रूरकर्मरताः देवाः गुरवः कामलालसाः॥
पूजनं पशुदुष्टार्हांस्तर्पणं मृतसज्जलात्। विपरीतं च तज्ज्ञेयं मिथ्यात्वं द्विजसम्भवम्॥
विनयो गीयते यत्र पात्रापात्रेषु प्रत्यहम्। देवादेवेषु तद्विद्धि मिथ्यात्वं तापसव्रजम्॥
अज्ञानजं कुमिथ्यात्वं भवेन्म्लेच्छादिगोचरम्। खाद्याखाद्य परित्यक्तविचारं शून्यवादिजम्॥

इस प्रकार इन मिथ्यात्वोंका स्वरूप है।

श्रीपार्श्वनाथजीके समयमें सरयू नामकी नदीके किनारे एक पलास नामके गाँवमें रहनेवाले पिहिताश्रव गुरुके शिष्य बुद्धिकीर्तिने एकान्त नामका मिथ्यात्व स्थापन किया था। उस एकांत मिथ्यात्वमें आत्माको क्षणिक माना है और मांसभक्षणादिकमें दोष नहीं बतलाया है। इस प्रकार एकांत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। सो ही लिखा है—

सिरि पासनाह तित्थे सरऊ तीरे पलास णयरत्थो ।
पिहियासवस्स सिस्सो पहासदो बुद्धिकित्तिये ॥

इसी पंचकालमें महाराज विक्रमके परलोक जानेके एकसौ छत्तीस वर्ष बाद सोरठ नामके देशके वल्लभीपुर नगरमें अर्द्धफालक नामके मनसे बड़ा संघ श्वेतांबर तंत्र उत्पन्न हुआ था । वही संशय मिथ्यात्व है । सो ही लिखा है—

एयसया छत्तीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तेसु । सोरट्ठे वलहीए उप्पणो सेवडो संघ ॥

विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति आगे बतलावेंगे ।

श्रीऋषभदेवके पौत्र मारीचको आदि लेकर सब तीर्थंकरोंके समयमें अनेक तापसियोंने विनय मिथ्यात्व चलाया है । सो ही लिखा है—

सव्वेसु तित्थेसुप वेणइयाणं समुज्झ चौ अत्थि ।
स जडा पुंडीय सिस्सा मिहिणो ण गायके इम ॥
दुट्ठं गुणवंतं विय समया भत्तिण सव्वदेवाणं । णमण दंडो व जणेयरि कलियंते हि मूढे हि ॥
उसह जिण पुत्तपुत्तो मिच्छत्तकलंकि दो महामोहो । सव्वेसिं भट्टाणं धुरि गुणी उपत्तसरीहिं ॥

श्रीमहावीर स्वामीके तीर्थमें बहुश्रुतके उपासकके संघकी सीमा ऐसे मस्तक पूर्ण नामके आचार्यने इस लोकमें अज्ञान मिथ्यात्व अर्थात् म्लेच्छ वा मुसलमान आदि यवनोंका मत तथा शून्यवादियोंका मत स्थापन किया है । इस अज्ञान मिथ्यात्वमें अज्ञानताकी मुख्यता है । ये लोग मुक्त जीवके भी ज्ञान नहीं मानते । उसे भी अज्ञान रूप ही मानते हैं । ये लोग भव-भवमें जीवोंका उत्पन्न होना और मरना नहीं मानते । ये सब जीव शुद्ध बुद्ध, कर्ता और एकरूप हैं तथा यह लोक सब शून्य है ऐसा वर्णन करते हुए अज्ञान पंथ स्थापन किया है । इस प्रकार अज्ञान मिथ्यात्वकी उत्पत्ति है । सो ही लिखा है—

सिरि वीरनाह तित्थे बहुसुदोपाससंघगणिसीमो । मक्कड पूरण साहू अण्णाणं भासिए लोए ॥
अण्णाणादी मुक्खो णाणं णत्थित्ति मुत्तजीवाणं । पुणरागमणं भमणं भवे भवे णत्थि जीवस्स ॥

श्रीऋषभदेवके पुत्र भरत थे और भरतका पुत्र मारीच था। जब महाराज ऋषभदेवने दीक्षा ली थी तब उनके साथ बिना समझे तथा बिना गुरु आम्नायके केवल ऋषभदेवकी भक्तिसे मारीचको आदि लेकर चार हजार राजाओंने दीक्षा ली थी। वह दीक्षा केवल देखा-देखी ली थी। तदनन्तर वे सब मुनि क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमसक आदि परीषहोंसे पीड़ित होकर तथा अपने मनसे ही उस संयमकी विराधना कर अनेक भेषोंको धारण करने लगे। कोई त्रिदण्डी हुए, कोई परिव्राजक हुए। इस प्रकार उन्होंने अपने मनके अनुसार जुदे-जुदे अनेक भेष बनाकर अनेक मत स्थापन किये। वे सब कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल और बिना जलका आहार लेने लगे। उन सबमें मारीच मुख्य था सो उसने अपनी बुद्धिसे सांख्य और पातञ्जलि नामके दो शास्त्र बनाकर सांख्यमत और पातञ्जलि मतका स्थापन किया। सो ही लिखा है—

विवरीय मग्गं किच्चा विणासयं सव्वसंयमं लीए। तत्तो पत्तासे वे सत्तमणरयं महाघोरं॥

उसी समय महाराज भरतने ब्राह्मण वर्णको स्थापन किया था। वे ब्राह्मण कालदोषसे दशवें तीर्थंकर श्रीशीतलनाथके समयमें जैनधर्मके श्रद्धान, ज्ञान और आचरणसे विमुख हो गये थे। तथा जैनधर्मके द्रोही और निन्दक बन गये थे। उसी समय एक मुण्डशालायन नामके ब्राह्मणने धर्मके लिये ब्राह्मणोंको गोदान, सुवर्णदान आदि दश प्रकारके दान देनेकी स्थापना की थी। उस समय उन्होंने और भी कितने ही प्रकारकी विपरीतता स्थापन की थी। तदनन्तर श्रीमुनिसुव्रतनाथके समयमें एक क्षीरकदम्ब ब्राह्मणके पुत्र पर्वतने महाविपरीत मिथ्यात्वका स्थापन किया। उसने विचित्र यज्ञ-कर्म करनेका विधान बतलाया। यज्ञमें अज अर्थात् जो बोनेसे फिर उत्पन्न न हों ऐसे तीन वर्षके पुराने चावल वा जौसे होम करनेका निषेध किया और अपने चलाये हुए झूठे और विपरीत मतके अनुसार उस यज्ञकी अग्निमें अज अर्थात् बकरेके होम करनेका विधान बतलाया। इस प्रकार उसने महापापरूप वचनोंका स्थापन किया। उसी समय उसी क्षीरकदम्बके शिष्य नारद नामके ब्राह्मणने उस पर्वतके मतका खण्डन किया, परन्तु राजा बसुने पर्वतका पक्ष लेकर नारद ब्राह्मणको झूठा करना चाहा। परन्तु वह राजा बसु उस झूठके पापसे उसी समय सिंहासन समेत पृथ्वीमें धँस गया और मरकर नरक पहुँचा। इस प्रकार विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। यह कथन उत्तरपुराण, पद्मपुराण, बृहद्धरिवंशपुराण, पुण्यास्रव, आराधनाकथाकोश तथा और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है। वहांसे विस्तारके साथ जान लेना चाहिये।

किसी एक दिन अयोध्या नगरके राजा आनन्द भगवानकी प्रतिमाकी पूजन करनेमें सन्देह हुआ था वह सोचने लगा था कि यह भगवानकी मूर्ति धातु और पाषाणकी बनी हुई है। ये सब मूर्तियां जड़ हैं अचेतन हैं और अजीव हैं। इनसे स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। इसी सन्देहमें पड़कर उसने मुनिराजसे पूछा। मुनिराजके उपदेशसे उसका सब सन्देह दूर हो गया। उस समय उन मुनि महाराजने उस राजाको तीनों लोकोंमें विराजमान श्रीजिन मन्दिरोंका और उनमें विराजमान श्रीजिन प्रतिमाओंका स्वरूप बतलाया था। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें विराजमान श्रीजिनमन्दिर और जिन प्रतिमाका वर्णन सबसे पहले किया था फिर अन्य सब मन्दिर और प्रतिमाओंका वर्णन किया था। उसको सुनकर वह राजा उस दिनसे प्रतिदिन सूर्यबिम्बमें विराजमान जिनप्रतिमाको प्रणाम करने लगा और अर्घ देकर पूजन करने लगा। तथा अन्य जिन प्रतिमाओंकी पूजा भी वह बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ करने लगा। उसने सूर्यके विमानके आकार-का एक नवीन मन्दिर बनवाया उसमें जिनप्रतिमा विराजमान की और फिर उनकी पूजन वह बड़ी भक्तिके साथ प्रतिदिन तीनों समय करने लगा। लोगोंने उस समय राजाके वास्तविक अभिप्रायको तो समझा नहीं केवल राजाकी रीतिको देखकर सूर्यको ओर पूजनके लिये जलांजलि देकर नित्य अर्घ देने लगे। इस प्रकार राजरीतिको देखकर सूर्यको अर्घ देना चल पड़ा जो आजतक चला आ रहा है। लिखा भी है 'यथा राजा तथा प्रजा' इस प्रकार यह विपरीत मिथ्यात्व चला है। सो ही पार्श्वनाथपुराणमें लिखा है—

इत्यादि हेतुदृष्टान्तैरुत्पाद्य निश्चयं शुभम्। भूपतेः श्रीजिनार्चादौ धर्मपूजादिकं तथा ॥७०॥
तत्कथावसरे लोकत्रयचैत्यालयाकृतीः। सम्यग्वर्णयितुं वांछन् विस्तरेण महाद्भुतान्॥७१॥
प्रागादित्यविमानस्थजिनेन्द्रभवनं महत्। स्वर्णरत्नमयं दिव्यं महाभूत्युपलक्षितम् ॥७२॥
भानुकोट्यधिकातीव्र तेजो बिम्बौघसंभृतम्। मुनीशो वर्णयामास सूर्यदेव नमस्कृतम् ॥७३॥
कृत्वा साधारणीं भूतिं महतीं जिनधामजाम्। श्रुत्वा वहन परां श्रद्धामानन्दोपि मुदान्वितः॥
दिनादौ च दिनान्ते श्रीजिनेशां रविमंडले। स्वकरो कुड्मलीकृत्य करोति स्तवनं परम् ॥७५॥
आनम्रमुकुटो धीमांस्तद्गुणग्रामरंजितः। धर्ममुक्त्यादिसिद्ध्यर्थं ज्ञानादिगुणसंचयैः ॥७६॥

पुनरर्कविमानं सः शिल्पिभिर्मणिकांचनैः। जिनेन्द्र भवनोपेतं कारयामास अद्भुतम् ॥७७॥
चतुर्मुखं रथावर्तं सर्वतोभद्रमूर्जितम्। कल्पवृक्षं च दीनेभ्यो ददद्दानमवारितम् ॥७८॥
तद्विलोक्य जिनाः सर्वे तत्प्रामाण्य स्वयं च तत्।
स्तोस्तुमारेभिरे भक्त्या पुण्याय रविमण्डलम् ॥ ७९ ॥
अहो लोका प्रवर्त्तन्ते नृपाचारेण भूतले। सद्विचारे न जानन्ति कार्याकार्यं शुभाशुभम् ॥८०॥
तदा प्रभृति लोकस्मिन् वभूवार्कोपसेवनं। मिथ्याकारं च मूढानां विवेकविकलात्मनाम् ॥८१॥

इसके सिवाय जैनमतमें भी विपरीत मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ है आगे उसीका वर्णन करते हैं।

सिरिपुज्जपोदसिस्सो दाविडसंघस्स कारणं दुट्ठो। णामेण वज्जणंदी पाहुणवेदी महासत्थो ॥१॥
अप्पासुयचणयाणं भक्खण दोसो ण वज्जिओ मुणिहिं।
परिइयं विवरीयं विसेसियं वयण वोज्जं ॥ २ ॥
वीएसु णत्थि जीवो उणवणं णत्थि फासुयं णत्थि।
सावज्जं णहु मण्णइ ण गणइ गिहकप्प अट्ठे ॥ ३ ॥
कच्छे खेत्तवसही वाणिज्जं कारिऊण जीवंतो। ण्हाइंतो सीयलणीरे पावं पउरं समज्जेरी ॥४॥

अर्थ—श्रीपूज्यपाद मुनिका वज्रनंदि नामका एक दुष्ट शिष्य था उसने प्राभृतवेदी नामका महाशास्त्र बनाया और द्राविड नामके संघकी स्थापना करनेके लिये अनेक प्रकारका विपरीत कथन किया। उसने बतलाया कि कच्चे चनोंके खानेमें सचित्त द्रव्यके समान पाप नहीं लगता अर्थात् कच्चे चनेमें जीव नहीं है वह अजीव है, अचित्त है इसलिये भक्षण करने योग्य है। इस प्रकार वचन स्थापन कर विपरीतमिथ्यात्वको पुष्ट किया। इसी प्रकार बीजमें भी जीवका निषेध किया। उसने बतलाया कि गृहस्थोंको अन्न, जल, खेत, व्यापार आदिके कामोंमें होनेवाले थोड़ेसे पाप गिनने ही नहीं चाहिये। शीतल कच्चे जलसे स्नान करनेमें कोई पाप नहीं है इस प्रकार उसने बहुत कुछ विपरीत मिथ्यात्वका प्रचार किया।

सिरिवीरसेणसिस्सो जिणसेणो सयलसत्थ विण्णाणी ।
सिरि पउमणंदी पच्छा चउसंघ समुद्धरण धीरो ॥ १ ॥
तस्स य सिस्सो गुणवंतो गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो ।
परमाबुद्धी सामी महातवो भाव लिंगोय ॥ २ ॥
तेण पुणोवि य मव्वु णाऊण मुणी स विणयसेणस्स ।
सिद्धंतं घोसित्ता सयमत्थं जाण लोयस्स ॥ ३ ॥
आसी कुमारसेणो णंदि पडंविणयसेण दिक्खीय ।
सण्णासभंजणेणय अगहिय पुण दिक्खिओ जाऊ ॥ ४ ॥
परिवज्जिऊण पीछं चमरं घित्तूण मोहकलिदेण । ऊमग्ग सकिलेसं वागडविसयेसु सव्वेसु॥
इत्थीणं पुण दिक्खा खुल्लयलोयस्स वीरचरियंतं। ककस्सकेसगहणं छठ्ठे गुणव्वदं णाम ॥
आयम अत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि। विरइत्ता मिच्छत्तं पवट्टियं मूढलोएसु ॥७॥
सो सवणसंघवज्झो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो। चत्तोवसमो रुद्दो कट्ठं संघं परूवेदी ॥८॥
सत्तसये तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स । णंदियरे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥९॥
णंदियरे वरगामे कुमारसेणो य मिच्छविण्णाणी। कट्ठो दंसणभट्ठो जादो सल्लेहणा काले ॥१०॥

अर्थ—राजा विक्रमके मरण होनेके सातसौ वर्ष बाद नंदिवर नामके गाँवमें विनयसेन मुनिके शिष्य कुमारसेन मुनिने पहले अपने संन्यासका भंग किया फिर मूलसंघसे दूसरा काष्ठसंघ नामका एक संघ स्थापन किया। उसका क्रम इस प्रकार है। श्री आचार्य वीरसेनके शिष्य श्री जिनसेनाचार्य हुए। वे जिनसेनाचार्य समस्त शास्त्रोंके जाननेवाले थे। उनके बाद श्री पद्मनंदि नामके आचार्य हुए जो चारों प्रकारके संघको धारण करनेके लिये बड़े घोर वीर थे। उनके शिष्य श्री गुणभद्राचार्य थे जो बड़े ही गुणवान् थे, दिव्यज्ञानसे परिपूर्ण थे, परमबुद्धिके स्वामी थे, महा तपस्वी थे और भावलिंगी थे। गुणभद्राचार्यके शिष्य विनयसेन थे जो समस्त पदार्थोंको जानते थे। उन विनयसेन मुनिका शिष्य कुमारसेन नामका मुनि हुआ। जिसने गुरुसे संन्यास धारण

किया और फिर उसका भंग किया। तदनंतर उसने अगृहीत दीक्षा ली अर्थात् गुरुके पास छेदोपस्थापना किये बिना ही स्वयं दीक्षा ले ली। उसने मयूर पीछीका त्याग कर दिया और सुरागायके पूछके बालोंकी पीछी ले ली। उसने उन्मार्ग अर्थात् सनातन मोक्षमार्गसे विरुद्ध काष्ठसंघका स्थापन किया और मूलसंघ दिगंबराम्नायके विरुद्ध कितनी ही बातोंका प्रचार किया। उसने स्त्रियोंको पुनः दीक्षा लेनेका अधिकार दिया। क्षुल्लक, श्रावकों-को वीरचर्याका अधिकार दिया और कठोर केशोंके ग्रहण करनेका विधान बतलाया। इस प्रकार उसने और भी कितनी ही विपरीत बातें स्थापन कीं। इसके सिवाय आगम, शास्त्र, पुराण, प्रायश्चित्त आदि शास्त्रोंमें भी अन्यथा वर्णनकर अज्ञानी लोगोंमें प्रवृत्ति की। इस प्रकार कुमारसेन मुनिने मूर्तियोंमें रुद्रके समान प्रकाष्ठ-संघकी वृत्ति की और यह काष्ठसंघ मूलसंघसे अलग स्थापन हुआ। इसके कुछ वर्ष बाद इसी काष्ठसंघमें और भी विपरीतता हुई। सीताको जनककी पुत्री बतलाया, अभिषेकमें पहले घृताभिषेक बतलाया। काष्ठकी प्रतिमा बनाना, सीताका दंडकवनमें हरण होना, पूजामें अष्टद्रव्योंमें अक्षतके पहले पुष्प चढ़ाना, पुष्पोंके बाद अक्षत चढ़ाना। श्रीनेमिनाथका द्वारावतीमें जन्म होना इत्यादि कितनी ही बातें मूलसंघसे विरुद्ध स्थापन कीं। इस प्रकार संक्षेपसे काष्ठसंघका वर्णन किया।

इसी प्रकार विक्रम सम्वत् सात सौ पाँचमें कल्याण वर नामके नगरमें श्वेतांबर मतमेंसे एक यापुलीय संघ प्रगट हुआ। इन्होंने अपने साधुओंका स्वरूप तो नग्न ही रक्खा पर आचरण सब श्वेतांबरोंके समान शिथिल ही रक्खे। इसका विशेष वर्णन भद्रबाहु चरित्रमें लिखा है। यथा—

कल्लाणे वरणयरे सत्तसयं चउत्तरे जादे। जावलियसंघभावो सिरिकलसादोवि सेवडादो॥

इसके दो सौ वर्ष बाद मथुरा नगरमें माथुरान् नामके गुरुके शिष्य रामसेन नामके साधुने निपिच्छ संघ स्थापन किया। उसमें उन्होंने कमंडलु और पीछीके ग्रहणको भी परिग्रह बतलाया। सो ही षट्पाहुडमें लिखा है—

जिहिजाइरूपसरिसो तिलतुसमत्तेसु अत्थेसु। जहि लइ अप्प बहुलं तत्तो पुण जाइ णिगोदं॥

इत्यादि वचनोंको ग्रहणकर मुनिका स्वरूप पीछीरहित बतलाया तथा सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्वकी स्थापना करते हुये उसने ममत्व बुद्धिसे प्रतिमामें भी विपरीतता को स्थापन की। प्रतिष्ठा रहित प्रतिमाको ही पूज्य

बतलाया, गुरुओंको पीछी रहित बताया इस प्रकार उसने संघको नाश करनेका विचार किया। इस प्रकार निःपिछि मत स्थापन हुआ। इस समयमें भी कितने ही लोग बिना समझे मुनिको पीछी रहित ही मानते हैं। पीछीको परिग्रह कहते हैं। सो उनको भी मूलसंघसे बाह्य समझना चाहिये। सो ही लिखा है—

तत्तो दुसएसीदे महुराए माहुराण गुरुणाहो। णामेण रामसेणो णिपिच्छं वण्णयं तेण।
सम्मत्तपयडमिच्छत्तं कहियं जं जिणंदबिंबेसु। अप्पपर णिट्ठएसु य ममत्तबुद्धिए परिवसणं॥
ऐसो मम दो भु गुरु अवरो णरियीति चित्तपरिरमणं।
संग गुरु कुलाहिमाणो इयरेसु विभंगकरणं च॥

इस प्रकार निःपिच्छ मतकी उत्पत्ति बतलाई।

श्रीमहावीर स्वामीके अठारहसौ वर्ष बाद दक्षिण देशके पुस्खल नगरमें बारिचन्दमुनिने भिल्लुसंघकी स्थापना की। उसने उसमें सोनीय गच्छ स्थापन किया। प्रतिक्रमणमें तथा अन्य कितने ही क्रिया चरणोंमें उसने मूलसंघसे विपरीत बातें निरूपण कीं। सो ही लिखा है—

दक्खिणदेसे विज्झे पुर कलए वारचंद मुणिणाहो। अट्ठारसएसीदे भिल्लुघं संघ परुवेदी॥
सो णियगच्छं किच्चा पडिकमणं तहय भिण्णकरि आऊ।
वण्ण वण्ण विवाई जिणमग्गं सुट्ठुणिहरेदे॥

इस प्रकार भिल्लुसंघकी उत्पत्तिका वर्णन किया।

इस प्रकार पंचमकालमें जैनमतमें भी विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। उन सबमें उनके स्थापन करनेवालोंने अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सिद्धांताविक शास्त्रोंमें मूलसंघसे विरुद्ध विपरीत बातें निरूपण की हैं। सो ही नीतिशतकमें लिखा है—

पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनु सितपटः काष्ठसंघस्ततो हि
तत्राभूद् द्राविडोख्यं पुनरजनि ततो पापुलीसंघ एकः।

तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेननंदी च संघो
स्यातां सिंहाख्यसंघौ भवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः ॥
कियत्येपि ततोऽतीते काले श्वेताम्बरोऽभवत् । द्राविडो यापनीयश्च केकीसंघश्च नामतः ॥
केकीपिच्छः श्वेतवासः द्राविडो यापनीयकः । निःपिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥
स्वस्वमत्यनुसारेण सिद्धांतव्यभिचारणम् । विरचय्य च जैनेन्द्रं मार्गं निर्भेद याति भो ॥४॥

अर्थ—मूलसंघ तो अनादि निधन है उसके पीछे अर्द्धफालकोके द्वारा श्वेताम्बर गच्छ उत्पन्न हुआ। उसके बाद काष्ठसंघ उत्पन्न हुआ। उसके कितने काल बाद श्वेताम्बर धर्म सेवड़ासंघ प्रकट हुआ। तदनंतर द्राविडसंघ, यापनीयसंघ, केकीसंघ प्रकट हुए। केकी, श्वेताम्बर, द्राविड, यापनीय, निःपिच्छ ये पांचों संघ जैनाभास कहलाये। इनका बाह्य लिंग तो जैनियोंका रहा परन्तु क्रिया आचरण आदि सब शिथिल और हीन बने रहे। इनका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण सब मूलसंघसे विरुद्ध है इसलिये इनको जैनाभास कहते हैं। इन पांचों जैनाभासोंके आचार्योंने अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अपने सिद्धांतमें दोष उत्पन्न करनेवाले विरुद्ध बातें निरूपण कीं और अपने संघकी स्थापना की सो सम्यग्ज्ञानियोंको श्रद्धान करने योग्य नहीं है।

इन सबके पीछे भोपाल नामके नगरमें सिरोज (भेलसा) गांवका रहनेवाला ताराचंद नामका श्रावक था। वह बड़ा मानी, अधोगतिका पात्र, महा मिथ्यात्वी था। किसी एक दिन वह अपने पिताके साथ विदेशके लिये चला। उसके पिताके भगवानकी नित्य पूजन करनेका नियम था। इसलिये उसने अपने साथ श्री जिन-प्रतिमाजी ले रक्खी थीं। मार्गमें प्रातःकालके समय किसी नदीके किनारे उतरे। पिताने वह प्रतिमाजी और पूजनकी सामग्री आदि सब अपने पुत्रके पास रख दी और स्वयं शौच होनेके लिये बाहर गया। ताराचन्दने अपने पिताको अपने मतमें दृढ़ करनेके लिये वे प्रतिमाजी और पूजनकी सब सामग्री उस नदीमें अगाध जलमें डुबो दी। पिताने आते ही सामग्री आदि पूछी तब ताराचन्दने कहा कि तुम्हारे दर्शन और पूजा करनेका दृढ़ नियम है तो भगवान आप आकर मिल जायेंगे। यदि जिनेन्द्रदेव सच्चे हैं तो वे जलसे निकल कर तुम्हारा धर्म रख लेंगे। हमें भी तो देखना है तुम्हारे भगवान कैसे हैं। ताराचन्दकी यह बात सुनकर पिताने अन्न जलका त्याग किया और संन्यास धारण कर मरण किया। पिताके मर जानेपर ताराचन्दने उनको भी उस अगाध

जलमें डुबा दिया। तदनंतर उसने एक नवीन भाषामें छन्दोबद्ध शास्त्र बनाया। उसमें धर्मका स्वरूप तथा कथाएं आदि तो जैनधर्मसे मिलती-जुलती लिखीं। परन्तु श्रीमंदिरोंमें विराजमान जिनप्रतिमाओंको अचेतन और जडरूप बतलाकर उनका निषेध किया तथा कितने ही मन्दिरोंमेंसे प्रतिमाएं उठवा दीं और उन वेदियोंमें बड़ी विनयके साथ केवल शास्त्र विराजमान किये। वे लोग नित्य उन शास्त्रोंकी पूजा करने लगे, उनको बाँधने लगे और उन पर नैवेद्य चढ़ाकर उसका प्रसाद बाँटने लगे और खाने लगे। उन्होंने जिनप्रतिमाके दर्शन, वंदन, पूजन आदिका निषेध किया और जिनप्रतिमाके समान केवल शास्त्रोंकी ही पूजा, भक्ति करने लगे। यदि कोई उनसे इसका कारण पूछता है तो वे कहते हैं कि हमारे यहाँ एक तारणस्वामी हुए हैं उन्होंका चलाया हुआ यह धर्म है।

ये तारणपंथी लोग भैंसके सींग समान हैं अथवा रोडोका मलिन पृथ्वीके समान हैं। भैंसके सींग और रोडोकी मलिन पृथ्वी ऊपरको नहीं जाती। टेढी ही जाती है। कोमल पृथ्वी ही ऊपरको आती है। इस प्रकार उनके लिये श्रेष्ठ दृष्टांत दिया जाता है। जैसे वे हैं वैसे ही उदाहरणके द्वारा उनको उपमा मिली है। जैसे लोकमें कहावत है "जैसी शीतला देवी वैसे ही उसको गधेकी सवारी।" लिखा भी है—

याद्दशी शीतला देवी ताद्दशो खरवाहनः।

प्रश्न—यहां शीतलाका उदाहरण दिया सो इस उदाहरणसे क्या प्रयोजन है?

उत्तर—स्कंधपुराणमें लिखा है—

नमस्ते शीतला देवि सूर्यालंकारमस्तके। सस्मिता च लंबोष्ठी च रासभस्था दिगम्बरी॥
करे तु मार्जनोपेता

अर्थात् जिसका मस्तक सूर्यसे सुशोभित हो रहा है, जो मंद-मंद हँस रही है, जिसका होठ लम्बा है, जो गधेपर बैठी है, नग्न है और जिसके हाथमें बुहारी है। ऐसी शीतला देवी है उसके लिये नमस्कार हो। इसका अभिप्राय यह है कि जैसी वह देवी थी वैसी ही उसको सवारी मिली। उसी प्रकार जैसे वे तारणपंथी थे वैसा ही उनके लिये भैंसके सींगका उदाहरण दिया गया है।

उन तारणपंथियोंसे यदि कोई पूछता है कि ये तारण स्वामी कौन हुए हैं तो वे उत्तर देते हैं कि श्रेणिकजी महाराज पहले नरकसे निकलकर तीर्थंकर रूप प्रगट हुए हैं। इस प्रकार उन्होंने अनेक प्रकार विरुद्ध वचनोंके द्वारा विपरीत मिथ्यात्व स्थापन किया है और उसका नाम तारणपंथ रक्खा है। यह तारणपंथ समैया जातिमें चला आ रहा है, समैया जातिका अर्थ यह है कि इनमें कोई जुदी-जुदी जातियोंका व्यवहार नहीं है। इनके धर्ममें जो कोई शामिल हो जाता है चाहे वह नीच जातिका हो वा ऊँच जातिका हो वह वही समैया कहलाता है। उसीके साथ ये लोग रोटी बेटी आदिके देने लेनेका व्यवहार कर लेते हैं। इस प्रकार यह तारण स्वामीके मतकी तारणपंथकी उत्पत्ति एक समैयाके मुखसे सुनकर लिखी है। सो समझ लेनी चाहिये।

पहले जो अर्द्धफालकोंका श्वेताम्बर मत लिख आये हैं उसमें भी कितनी ही विपरीत बातें उत्पन्न हुईं, उनको जाननेके लिये थोड़ीसी यहांपर भी लिखते हैं।

श्रीमहावीर स्वामीके मोक्ष गये बाद श्रीगौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी और जंबूस्वामी ये तीन तो केवली हुए। ये तीनों केवली बासठ वर्षमें हुए। तदनंतर सौ वर्षमें विष्णुकुमार, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पांच द्वादशांगके धारक श्रुतकेवली हुए। यहांतक भगवानके मोक्ष जानेके बाद एकसौ बासठ वर्ष व्यतीत हुए थे। इनमेंसे पांचवें श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमें उज्जयिनी नगरीमें राजा चन्द्रगुप्त राज्य करता था। उसने रात्रिमें कल्पवृक्षकी शाखाका भंग होना आदि महा अशुभकी सूचना देनेवाले सोलह स्वप्न देखे। प्रातःकाल उनके फल सुननेकी इच्छासे कुछ चिंतवन करता हुआ बैठा ही था कि इतनेमें ही किसीने आकर भद्रबाहुके आनेकी बधाई दी। मुनिराजको आये हुए जानकर राजाको बहुत ही हर्ष हुआ। उसने मुनिराजके समीप जाकर उनके दर्शन किये, वंदना की, पूजा की और धर्मवृद्धि ग्रहणकर लेनेके बाद उसने रातमें देखे हुए सोलह स्वप्नोंका फल पूछा। भद्रबाहुने भी राजाके सामने उनके होनहार फल कहे। भद्रबाहुने यह भी समझ लिया कि यहांपर बारह वर्षका महा दुर्भिक्ष पड़ेगा। उनके साथ चौबीस हजार साधुओंका संघ था उन सबसे भद्रबाहुने ये समाचार कहे। तथा कहा कि यहां संयम पलना कठिन है इसलिये संयमकी रक्षाके लिये अन्य देशमें चलना चाहिये। आचार्यकी यह बात सुनकर बारह हजार मुनि तो उनके साथ हो लिये और बाकीके बारह हजार मुनि सेठ कुबेरमित्र, जिनदास, माधवदत्त और बंधुमित्र आदि सेठोंके आग्रहसे वहींपर रह गये। दुष्कालके पड़ते ही वहांपर बहुतसे लोग बाहरसे आ गये जिससे ऊपर लिखे सेठोंके घरका सब अन्न निबट गया।

ज्यों-ज्यों दुष्काल भीषण होता गया त्यों-त्यों कंगाल और दरिद्रोंकी तथा माँगनेवालोंकी संख्या बढ़ती गई। उनके कारण मुनियोंके आहारमें भी विघ्न होने लगा। किसी एक दिन रामलाचार्य आदि कितने ही साधु आहार लेकर वनमें जा रहे थे परन्तु मार्गमें उन माँगनेवाले कंगलोंने किसी मुनिका पेट फाड़ डाला और उनके पेटमेंसे खाया हुआ अन्न निकाल कर भक्षण कर गया। इस बातको सुनकर सब शहरमें हाहाकार मच गया। तब कुबेरमित्र आदि सेठोंने उन मुनियोंसे प्रार्थना की कि महाराज आप वनमें रहना छोड़ दीजिये और नगरमें रहिये। तब वे मुनि नगरमें आ गये और अलग-अलग उपाश्रयोंमें रहने लगे। इतना सब करनेपर भी भोजनके समय मार्गमें कंगलोंके द्वारा अंतराय होना बंद नहीं हुआ। तब श्रावकोंके हटसे उन मुनियोंने दिनमें आहारके लिये जाना छोड़ दिया और रातमें तुम्बीफलके पात्रमें (सूखी तूंबड़ीमें) आहार लाकर दिनमें खाने लगे।

किसी एक दिन एक नग्न मुनि रातमें आहार लेनेके लिये एक यशोभद्र नामके सेठके घर गये, उस सेठकी धनश्री नामकी सेठानी गर्भवती थी सो हाथमें दंडपात्र लिये नग्न और दुर्बल मुनिको देखकर तथा उन्हें राक्षस समझकर वह डर गई और डरते ही उसका गर्भपात हो गया। वे मुनि तो वापिस चले गये परन्तु उस समय उन सब लोगोंने विचार कर उन भ्रष्ट यतियोंसे कहा कि "इस समय यह नग्न भेष पल नहीं सकता इसलिये एक खंड वस्त्रकी धोती पहिनो और मस्तकपर एक कँवलका अर्द्धफालक (कँवलका आधा टुकड़ा) रक्खो। फिर रातको भोजन लाकर उपाश्रयमें रख लो और दिनमें खा लो।"[1] इस प्रकार उन मुनियोंसे निवेदन किया। वे मुनि भ्रष्ट तो थे ही उन्होंने इन श्रावकोंकी सब बातें स्वीकार कर लीं। इसके बाद उन श्रावकोंने उन मुनियोंसे यह भी कहा कि आप लोग इन कंगालोंकी दुर्गन्ध रोकनेके लिये हाथमें एक वस्त्र रक्खो। दुर्गन्ध आनेपर उससे मुँह नाक बंद कर लिया करो। सो भी उन्होंने स्वीकार कर लियो। इस प्रकार अर्द्धफालकोंकी उत्पत्ति हुई है।

राजा चन्द्रगुप्तने उन सोलह स्वप्नोंका फल सुनकर दीक्षा धारण कर ली थी और मुनिराज भद्रबाहु-

१. इसके बाद कितना ही काल बीत जाने पर कितने ही श्वेताम्बर साधुओंने हाथमें वस्त्र लेनेके बदले उसमें डोरा लगाकर मुँहसे बाँध लिया जिससे वे मुँहपट्टीवाले कहलाये। यदि कोई उनसे इसका कारण पूछता है तो कहते हैं कि वायुकायके जीवोंकी रक्षाके लिये यह पट्टी बाँधी गई है।

के साथ दक्षिण देशको चला गया था। बारह वर्षका दुष्काल बीत जानेपर जब सब मुनि उज्जयिनी नगरीकी ओर चलने लगे तब भद्रबाहु स्वामी अपनी आयु निकट जानकर चन्द्रगुप्तके साथ वहीं रह गये। आयु पूर्ण होनेपर भद्रबाहु मुनि तो समाधिमरण धारणकर स्वर्ग पधारे और मुनिराज चन्द्रगुप्त वहीं रह गये। शेष बारह हजार मुनि धीरे-धीरे विहार करते हुए उज्जयिनी नगरीमें आ पहुँचे। उन मुनियोंको आया जानकर वे पहलेके रहे हुए भ्रष्ट मुनि भी उनको वंदना करनेके लिये आये परन्तु इन मुनियोंने उनको तपसे भ्रष्ट देखकर प्रतिवंदना नहीं की। तथा उनको छेदोपस्थापना आदि प्रायश्चित्त लेनेके लिये उपदेश दिया। सो कितने ही साधु तो उन मुनिके उपदेशके अनुसार प्रायश्चित्त लेकर यथार्थ मुनि हो गये परन्तु रामल्याचार्य आदि मुनि वैसेके वैसे ही भ्रष्ट बने रहे। उन्हीं भ्रष्टोंमें एक स्थूल भद्राचार्य थे उन्होंने उन सब भ्रष्ट मुनियोंसे फिरसे दीक्षा धारण करनेके लिये कहा। तब सब भ्रष्ट मुनियोंने उस स्थूलभद्राचार्यको मारकर उसके मृतक शरीरको किसी एक गड्ढेमें छिपाकर डाल दिया। वे स्थूलभद्राचार्य आर्त्तध्यानसे मरे थे, इसलिये मरकर व्यंतर देव हुए। उस व्यंतर देवने विभंगावधिसे अपने पहले भवकी सब बात जान ली और फिर उसने उन भ्रष्ट मुनियोंपर अनेक उपद्रव किये। तब उन सब भ्रष्ट मुनियोंने उस व्यंतरदेवको हाथ जोड़े, उसको नमस्कार किया और उसकी हड्डियाँ लाकर उनकी पूजा की तब कहीं जाकर उनको शांति मिली। तबसे ही ये लोग खम्मणहडी नाम रखकर काठकी पट्टीको (तख्तीको) अबतक पूजते हैं इसके सिवाय इन्होंने अनेक शास्त्र बनाये और आचारांग सूत्र आदि नाम रखकर उनमें बहुतसे शिथिलाचारोंका निरूपण किया तथा बहुतसी विपरीत बातोंका निरूपण किया और बहुतसी बातें दिगम्बराम्नायसे विरुद्ध लिखीं। इस प्रकार अर्द्धफाल्कको प्रवृत्ति हुई।

इसके कितने ही वर्ष बाद उज्जयिनी नगरीमें एक चन्द्रकीर्ति नामका राजा हुआ। उसके चन्द्रलेखा नामकी पुत्री हुई थी। वह चन्द्रलेखा अर्द्धफाल्की गुरुओंके समीप पढ़ने लगी। वह क्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई और सोरठ देशके वलभीपुर नगरके राजा प्रजापालके पुत्र लोकपालको परणाई। किसी एक दिन उस चन्द्रलेखाने अपने पतिसे कहा कि हे स्वामिन्! मेरे गुरु कान्यकुब्ज देशमें हैं सो वहांसे बुलाओ। राजाने उसके आग्रहसे उनको बुलाया। वे चन्द्रलेखाके गुरु राजाके बुलानेसे आये। राजा लेनेके लिये उनके सामने गया परन्तु उनको भ्रष्टलिंग देखकर रानी चन्द्रलेखासे कहा कि तुम्हारे गुरु गुरु नहीं हैं। ये निर्ग्रंथ नहीं हैं सग्रन्थ हैं सो हमारे वंदना करने योग्य नहीं हैं। इनका भेष निंदनीय भेष है तब रानी चन्द्रलेखाने अपने गुरुके पास

जाकर कहा कि महाराज इस मलिन भेषको हँसी हमारे सामने हुई है। इसलिये इस भेषको तो छोड़ो और ये सफेद वस्त्र धारण करो तब उन सब भ्रष्ट मुनियोंने सफेद वस्त्र धारण कर लिये। तदनंतर वे राजा रानी उनको उत्सवके साथ अपने नगरमें लाये और उन्होंने बड़ी भक्ति की। तबसे यह अर्द्धफालकोंका मत श्वेत वस्त्र धारण करनेसे श्वेतांबर कहलाया। इस प्रकार राजा विक्रमके मरनेके एक सौ छत्तीस वर्ष बाद श्वेताम्बर मत प्रगट हुआ। सो ही भद्रबाहुचरित्रमें लिखा है—

मृते विक्रमभूपाले षट्त्रिंशदधिके शते। गताब्दानामभूल्लोके मतं श्वेताम्बराभिधम्।

इन्हीं श्वेताम्बरियोंमें एक जिनचन्द्र नामका श्वेताम्बर हुआ है। उसने सूत्रोंमें अनेक प्रकारकी विपरीत रचना की है। उसने उन सूत्रोंका नाम आचारांग सूत्र आदि नाम रक्खा है और उनमें मूलसंघसे अत्यन्त विरुद्ध कथन किया है। उन विरुद्ध बातोंमेंसे कुछके नाम यहाँ लिखते हैं।

१. केवलज्ञानीके कवलाहारका सद्भाव मानना।
२. केवलज्ञानीके रोगोंकी उत्पत्ति मानना।
३. केवलज्ञानीके मलमूत्रका नीहार मानना।
४. केवलियोंके परस्पर नमस्कार करनेका व्यवहार मानना।
५. केवलज्ञानीके उपसर्गका सद्भाव मानना।
६. जिनबिम्बोंके आभूषणोंका सद्भाव मानना।
७. तीर्थङ्करोंका पाठशालामें पढ़ना।
८. केवलीकी पहिली वाणीका व्यर्थ जाना।
९. श्रीवर्द्धमान स्वामीका देवनन्दा ब्राह्मणीके गर्भमें तिरासी दिनतक रहना और इन्द्रके द्वारा उस गर्भको वहांसे उठाकर त्रिशला नामकी क्षत्राणीके गर्भमें रखना। इस प्रकार श्रीमहावीर स्वामीका गर्भापहरण करना।
१०. श्रीऋषभदेव तीर्थङ्कर और उनकी रानी सुनंदाको युगलिया मानना अर्थात् श्रीऋषभदेवने अपनी सगी बहिनके साथ विवाह किया मानना।

११. केवलीको छींकका सद्भाव मानना ।

१२. सुनन्दा ब्राह्मणी मिथ्यादृष्टिनी और असंयमी थी तो भी उसका सत्कार करनेके लिए भगवान महावीर स्वामीकी आज्ञासे गौतम स्वामीका उसके सामने जाना ।

१३. स्त्रियोंके महाव्रतका सद्भाव मानना ।

१४. स्त्रियोंके केवलज्ञानकी उत्पत्ति मानना ।

१५. स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति होना मानना ।

१६. दीक्षा लेनेके बाद तीर्थङ्करोंको इन्द्र श्वेत वस्त्र देता है सो साधु अवस्थामें तीर्थङ्कर उन्हीं इन्द्रके दिए हुए सफेद वस्त्रोंको पहिनते हैं । दीक्षा लेनेके बाद भी तीर्थङ्कर नग्न नहीं रहते ऐसा मानना ।

१७. जिनप्रतिमाके लंगोट और करधनीका चिह्न मानना ।

१८. मल्लिनाथ तीर्थङ्करको स्त्री मानना अर्थात् उनको पुरुष न मानकर मल्लिबाई कहना ।

१९. देवता लोग युगलियोंका छोटा शरीर बनाकर उनको भरत क्षेत्रमें लाये थे उनसे हरिवंशकी उत्पत्ति मानना ।

२०. श्रीमहावीर तपश्चरण कर रहे थे उस समय किसी गवालियेने आकर उनके कानमें लोहेके कीले ठोंक दिये तब महावीर स्वामीने पुकार की और पुकारनेके लिए पर्वत पर चढ़े ऐसा मानना ।

२१. साधु लोग दण्ड, पात्र, ओंघा, पुंजणी, बड़ी धोती, कँवल, मुँहपट्टी आदि चौदह उपकरण रखते हैं, ये धर्मके साधन हैं, इनके रखनेमें दोष नहीं है ऐसा मानना ।

२२. श्रीमुनिसुव्रतनाथके एक घोड़ा गणधर हुआ था ऐसा मानना ।

२३. साधु लोग श्रावकोंके घरसे अपने पात्रमें आहार, पानी लाकर अपने उपाश्रयमें खा लेवें तो कोई दोष नहीं है ऐसा निरूपण करना ।

२४. यदि आहार बाकी बच जाय तो तेला आदि अधिक उपवास करनेवाले साधुओंको उपवासमें ही खिला देनेको निर्दोष मानना ।

२५. यदि गर्म जलके मिलनेकी विधि न बने तो अपने पेशाब पीनेको भी निर्दोष मानना ।

२६. निन्वक जीवोंके मारनेमें पाप न गिनना ।

२७. युगलियोंको नरकगति होना ।

२८. भरतने अपनी बहिन ब्राह्मीसे विवाह करनेका विचार किया था ऐसा मानना ।

२९. दीक्षा लिए बिना ही अर्थात् महाव्रत धारण किये बिना ही भरत चक्रवर्तीको केवल भावनाओंके बलसे आरीसा भवनमें ही केवलज्ञानकी उत्पत्ति मानना ।

३०. शिष्य झालको समझानेके लिए श्रीमहावीर स्वामीका कुम्हारके बाड़ेमें समवशरण सहित रहना मानना ।

३१. अर्जुनकी स्त्री द्रोपदीको सोलहसे तीनमें सती कहना और उसको पाँचों भाइयोंकी स्त्री मानना ।

३२. एक बूढ़ा गुरु किसी कुँवारे (अविवाहित) शिष्यके कन्धे पर बैठा किसी मार्गमें आ रहा था। गुरुने देखा कि वह शिष्य ईर्यासमितिसे गमन नहीं कर रहा है। इसलिए उस गुरुने उस शिष्यके शिरमें ओघेके दण्डकी मार लगाई परन्तु उस शिष्यने क्षमा धारण करते हुए वह मार सह ली। इसीसे उस शिष्यको उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और गुरु कन्धे पर बैठा ही रहा। केवलज्ञान होने पर गुरुने पूछा कि क्या तुझे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है इससे मालूम होता है तू ईर्यासमिति सहित चलता है। तब शिष्यने कहा महाराज आपके प्रसादसे ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। इतने कह-सुन लेने पर उस गुरुने उस केवलज्ञानी शिष्यका शिर कूटना बन्द किया और फिर वह उसके कन्धेसे नीचा उतरा। इस प्रकार मानना ।

३३. श्रीमहावीर स्वामीने अपना विवाह किया था, उनके पुत्री हुई थी और उसका विवाह जयमिली नामकी जातिके मालीके साथ किया मानना ।

३४. कमिल नारायणको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ मानना और उसी अवस्थामें उसका नृत्य करना मानना।

३५. वसुदेवके बहत्तर हजार रानियोंका मानना ।

३६. साधु, शूद्रके घरसे आहार, पानी लाकर खा लेवे तो उसमें कोई दोष न मानना। यदि कोई मांस भी दे देवे तो उसको रक्खे नहीं केवल प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाय ऐसा मानना ।

३७. देवोंका मनुष्य स्त्रियोंसे भी भोग करना मानना और उनसे पुत्रादिककी उत्पत्ति मानना। एक सुलसा नामकी श्राविकासे किसी देवने भोग किया था और उससे उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ऐसा मानना।

३८. चक्रवर्तियोंके छयानवे हजार स्त्रियोंका नियम न मानना।

३९. बाहुबलिके शरीरकी ऊँचाई सवा पाँचसौ धनुष न मानकर केवल पाँचसौ धनुषकी मानना।

४०. श्रीमहावीर स्वामीका म्लेच्छखण्डोंमें भी विहार करना मानना।

४१. चौथे कालमें साधु लोग असंयमियोंकी पूजा करते थे ऐसा मानना।

४२. देवोंका एक कोश मनुष्योंके चार कोशके बराबर है ऐसा मानना।

४३. तीर्थङ्कर केवली भगवान समवशरणमें वस्त्र सहित दिखाई पड़ते हैं नग्न नहीं ऐसा मानना।

४४. साधुओंको हाथमें दण्डका रखना।

४५. श्रीवृषभदेवकी माता मरुदेवी मिथ्यादृष्टिनी थी। जब श्रीवृषभदेवने दीक्षा ली थी तब वह उनके वियोगसे बहुत रोयी थी और रोते-रोते अन्धी हो गई थी परन्तु पीछे समवशरणको देखकर सूझती हो गई थी ऐसा मानना।

४६. भरतदेवको हाथी पर बैठे-ही-बैठे केवलज्ञानका होना।

४७. चांडालादिक नीच कुलोंमें उत्पन्न होनेवालोंको भी पाँच महाव्रतोंका धारण करना मानना।

४८. केसीकुमार जातिके भंगीको भी केवलज्ञान और मोक्षका होना मानना।

४९. श्रीमहावीर स्वामीके समवशरणमें चंद्र, सूर्यदेवोंका मूल शरीर सहित वंदना करनेके लिए आना।

५०. पहले स्वर्गका इन्द्र दूसरे स्वर्गमें जाकर इन्द्र होवे और दूसरे स्वर्गका इन्द्र पहले स्वर्गमें आकर इन्द्र होवे ऐसा मानना।

५१. युगलियोंका शरीर मरनेके बाद कपूरके समान खिरता नहीं, पड़ा रहता है ऐसा मानना।

५२. तीर्थङ्करादिक केवलज्ञानियोंके निर्वाण गये बाद उनके शरीरका पड़ा रहना कपूरके समान उड़ना न मानना।

५३. यदि किसी यतिका मन स्त्रीसेवनके लिए चलायमान हो जाय तो श्रावकोंको उसे स्त्री देकर उसका मन स्थिर रखनेमें कोई पाप नहीं है ऐसा मानना।

५४. तीर्थङ्करोंका स्वरूप अठारह दोष सहित प्ररूपण करना ।
५५. केवलज्ञानीके मूल शरीरसे पाँच प्रकारके स्थावर जीवोंके घातका सद्भाव मानना ।
५६. भगवानके गर्भमें आनेके समय माताका चौदह स्वप्नोंका देखना । सोलह स्वप्न न मानना ।
५७. स्वर्गोंकी संख्या सोलहके बदले बारह मानना ।
५८. गंगादेवीके साथ पचास हजार वर्षतक किसी युगलियाने भोग किया मानना ।
५९. प्रलयकालमें देवता बहत्तर स्त्री, पुरुषोंके जोड़ोंको उठा ले जाते हैं ।
६०. चर्मके पात्रमें रक्खे हुए घी, तेल, हींग, जल आदिके खाने-पीनेमें कोई दोष नहीं मानना ।
६१. बासे भोजनके भक्षण करनेमें दोष न मानना, पक्वान्नको निर्दोष मानना ।
६२. महावीर स्वामीके दीक्षा लेनेके पहले ही उनके माता-पिताकी मृत्यु मानना ।
६३. बाहुबलिको मुगलोंका रूपवान कहना तथा बाहुबलिने ही मुसलमान बनाये मानना ।
६४. पूरे फलको खानेमें कोई दोष न मानना ।
६५. युगलिया भी परस्पर ईर्ष्या करके युद्ध करते हैं ऐसा मानना ।
६६. शास्त्रोंको अचेतन मानकर उनकी विनय न करना ।
६७. तिरेसठ शलाका पुरुषोंके नीहारका सद्भाव मानना ।
६८. इन्द्रोंकी संख्या सौ न मानकर चौसठ मानना ।
६९. यदुवंशियोंको मांसाहारी मानना ।
७०. मानुषोत्तर पर्वतके बाहर तेरह द्वीप तक ऋद्धिधारी साधुओंका तथा विद्याधर आदि मनुष्योंका गमन मानना ।
७१. कामदेवोंकी संख्या चौबीस न मानकर हीनाधिक मानना ।
७२. तीर्थङ्करोंके मोक्ष होनेके बाद देवता उनके मुखमेंसे दाढ़ निकाल कर ले जाते हैं और स्वर्गमें उसकी पूजा करते हैं ऐसा मानना ।
७३. नव ग्रैवेयकके देवोंका नव अनुदिश तक गमन करना मानना ।
७४. नाभिराय और मरुदेवीको युगलिया मानना ।

७५. किसी एक शिष्यने छमछरोका (वार्षिक प्रतिक्रमणके दिन) उपवास नहीं किया था उसने आहार लाकर गुरुको दिखाकर खानेकी आज्ञा माँगी थी सो गुरुने उसकी निन्दाकर उसके भोजनके पात्रमें थूक दिया था परन्तु उस शिष्यने उससे घृणा न की उस जुगुप्साको जीत लिया और गुरुके थूक सहित उस उच्छिष्ट भोजनको खा गया इसी कारण उसको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ऐसा मानना।

७६. गृहस्थोंको कुदेवोंकी उपासनामें दोष न मानना।

७७. कुदेवोंकी पूजासे भी सम्यक्त्वका घात न मानना।

७८. कुदेवोंकी पूजा करना गृहस्थोंका कार्य मानना।

७९. बोलते समय मुखके ऊपर वस्त्रकी पट्टी बाँधकर बोलना चाहिये उघाड़े मुखसे नहीं बोलना चाहिये ऐसा मानना।

८०. जहाँ चित्रामकी लिखी हुई स्त्रियाँ हों वहाँ पर साधु न रहें परन्तु व्याख्यानमें सैकड़ों स्त्रियोंके पास रहते हुए भी दोष न मानना।

८१. बाहुबलि साधु अपने अभिमानके कारण पृथ्वीको भरतकी पृथिवी जानकर एक अँगूठेके सहारे खड़े रहे। इसीलिए उनको ध्यानकी प्राप्ति नहीं हुई ऐसा मानना।

८२. बाहुबलिके चारों ओर केवलज्ञान फिरते रहा उत्पन्न नहीं हुआ। तब ऋषभदेवके वचनसे भरतने ब्राह्मीसे कहा कि तू अपने भाईको समझा जिससे वह मानरूपी हाथीसे उतरे। तब ब्राह्मीने जाकर समझाया तब वह चारों ओर फिरनेवाला केवलज्ञान बाहुबलीको प्रगट हुआ।

८३. श्रीमहावीर स्वामीके समवशरणमें किसी गोशालामें जन्म लेनेवाला कोतका पुत्र गोशाला आया था उसने आकर भगवानको गालियाँ दीं, बहुतसे निन्दनीय वचन कहे 'रे', 'तू' आदि बुरे शब्द कहकर उसके ऊपर तेजो लेश्या चलाई। जिसको लोकमें मूठ कहते हैं। उस मूठसे वे भगवान मरे नहीं क्योंकि उनका बहुत बड़ा अतिशय था परन्तु रक्तातिसार नामकी व्याधि (खूनके दस्त) हो गई। ऐसा मानना।

८४. जिस समय गोशालाने तेजो लेश्या चलाई थी उस समय समवशरणमें दो साधु भगवानका यह

अपमान देख नहीं सके थे और वे दोनों क्रोधित होकर उस गोशालासे लड़ने लगे। परन्तु उस गोशालाने अपनी तेजो लेश्यासे अर्थात् अग्निकी ज्वाला रूप मंत्रसे उन दोनों साधुओंको भी जला दिया। जिससे वे दोनों मर गये। ऐसा मानना।

इस प्रकार कितनी ही विपरीत बातें चलायीं जिनप्रतिमाके नेत्रोंके ऊपर और नेत्र लगाना, उनके मुखको सिन्दरफसे रँगना, नौ अंगोंको चन्दनादिकसे पूजना आदि कितनी ही विपरीत बातें स्थापन कीं जिनका विशेष वर्णन अन्य ग्रन्थोंमें लिखा है। इस प्रकार श्वेताम्बरोंका स्वरूप बतलाया।

इसी श्वेताम्बर मतमेंसे कितने ही कालके बाद पहले लिखा हुआ यापनीय संघ उत्पन्न हुआ। उसका थोड़ा-सा वर्णन इस प्रकार है। श्वेताम्बरोंका भक्त एक लोकपाल राजा था। उसके चित्रलेखा नामकी रानी थी। उसके एक नृकुला नामकी पुत्री हुई थी। वह करहाट नगरके राजा भूपालको ब्याही गई थी। वहाँ जाकर किसी एक दिन उस रानीने अपने गुरु बुलाये। राजा उनको लेनेके लिए सामने गया परन्तु उस श्वेताम्बरीको देखकर अर्थात् गुरुको निर्ग्रन्थ न देखकर राजा पीछे लौट आया। तब रानी बहुत लज्जित हुई और उसने अपने गुरुके पास जाकर प्रार्थना की कि आप मेरे आग्रहसे फिर एक बार निर्ग्रन्थ हो जाइए। वस्त्रोंका त्याग कर दीजिये। तब रानीके आग्रहसे वे नग्न तो हो गये परन्तु उनका आचरण शिथिल ही रहा। इस प्रकार आयाल संघ उत्पन्न हुआ। उसके गुरुओंका रूप तो नग्न था परन्तु क्रिया आचरण सब श्वेताम्बरोंके थे। इस प्रकार उसने नटका-सा स्वांग बनाकर नया मत चलाया। तदनन्तर उनमें भी परस्पर क्रोध, मान आदि कषायें बढ़ने लगीं और उनमें भी विजय तपा खरतरा पुन्या आदि चौरासी गच्छ उत्पन्न हो गये।

इसके भी कुछ दिन पीछे इस श्वेताम्बर मतसे राग-द्वेष कर मान कषायके आवेशसे इन्हीं श्वेताम्बरों-का विरोधी लोंकागच्छ नामका मत प्रगट हुआ। आगे उसीका थोड़ा-सा स्वरूप लिखते हैं।

महाराज विक्रमके मरनेके पन्द्रहसौ सत्ताईस वर्ष बाद गुजरात देशके अणहल्ल नगरमें प्राग्वाट कुलका एक लुंका नामका ओसवाल वैश्य हुआ था। उसने यतियोंसे उनके सूत्र पढ़े और फिर अपने नामका एक गच्छ स्थापन किया। उसीने यह लुंका नामका धर्म चलाया। तीव्र मिथ्यात्वके उदयसे उसने श्रीजिनप्रतिमाकी पूजा करनेका भी निषेध किया तथा जिनपूजा, तीर्थयात्रा, पात्रदान, जिनमन्दिर प्रतिष्ठा आदि धर्म कार्योंमें हिंसा

और आरम्भ बतलाकर इन सब कार्योंका निषेध किया, इन सब कार्योंको उसने पापरूप बतलाया और सबका निषेध करता हुआ जैनधर्मका शत्रु बन गया। इस प्रकार उसने अपना विपरीत मिथ्यात्व धर्म चलाया। सो ही भद्रबाहु चारित्रमें लिखा है—

मृते विक्रमभूपाले सप्तविंशतिसंयुते। दशपंचशतेऽब्दानामतीते शृणुता परम् ॥ १ ॥
लुङ्कामतमभूदेकं लोपकं धर्मकर्मणः। देशेऽत्र गौर्जरख्याते विद्वत्ताजिननिर्जरे ॥ २ ॥
अणहल्लपत्तने रम्ये प्राग्वाटकुलजो भवेत्। लुङ्काभिधो महामानी श्वेतांशुकमताश्रयी ॥३॥
अन्योन्यमीर्ष्यया दुष्टः कुपितः पापपण्डितः। तीव्रमिथ्यात्वपाकेन लुंकामतमकल्पयत् ॥४॥
सुरेन्द्रार्चिज्जिनेन्द्रार्चां तत् पूजादानमुत्तमम्। समुत्थापितवान् पापी प्रतीपो जिनसूत्रतः ॥

इस प्रकार लुंका मत प्रगट हुआ।

तदनन्तर इस लुंकामतके दो गच्छ हुए। एक तो जिनप्रतिमा, मन्दिर, पूजा, प्रतिष्ठा आदि करनेका श्रद्धान करते हुए उपाश्रयमें रहने लगे और दूसरे ज्योंके त्यों बने रहे।

तदनन्तर ऊपर कहे हुए जिन प्रतिमाको उठानेवाले लुंकामतके साधुओंसे ढूँढ़िया मत प्रगट हुआ। उसने श्वेताम्बरोंसे भी विरुद्ध कथन निरूपण किया। तथा जिनप्रतिमाको निन्दाकर उसके दर्शन, पूजन, वन्दना आदि करनेका निषेध किया और लोगोंको अपना मिथ्यात्व धर्म ही सच्चा धर्म बतलाया। अनेक प्रकारके भ्रष्टाचरणोंका निरूपण किया।

आगे इसीकी उत्पत्ति बतलाते हैं—

किसी एक समय मेवाड़ देशके भीला शहरमें लुंकामतके यति माणिक ऋषिने चतुर्मास किया। उसके व्याख्यानमें प्रतिदिन सब श्रावक आते थे। वहाँपर वहींका रहनेवाला एक ढेड भी आता था उसने अपनी जाति हंजा जाति बतलाई तथा राम-राम जपता हुआ वह प्रतिदिन पुराण सुनने आया करता था दैवयोगसे उसको कुछ ज्ञान प्राप्त हो गया। अतएव माणिकऋषिने उससे जीवोंकी हिंसाका त्याग करा दिया। तदनन्तर वहाँपर वर्षा हुई। किसान लोग सब अपने-अपने हल, बैल और मजदूर लेकर खेत जोतने चले उस समय यह हंजा भी अपनी स्त्री और पुत्रके कहनेसे हल लेकर खेतकी ओर गया। वहाँ उसने बहुतसे गिंडोरे देखे सो उन

पर वया धारण करता हुआ यह पीछे लौट आया। उसको लौटकर आते हुए देखकर पुत्रने पूछा कि आप पीछे क्यों आये। स्त्रीने कहा कि आजका मुहूर्त ऐसा है जो आजका बोया धान्य बारह महीने तक निबट नहीं सकता। आज तू लौट क्यों आया। इन सबको हंजेने उत्तर दिया कि मैं इस संसारमें थोड़ेसे जीवनके लिए ऐसा हिंसा-रूप पाप नहीं करता। यह सुनकर स्त्री, पुत्रने क्रोधकर उसको घरसे बाहर निकाल दिया। तब वह हंजा बनकर माणिक ऋषिके समीप आया और यति बननेकी दीक्षा माँगने लगा। माणिक ऋषिने कहा तू जातिका ढेड है इसलिए तुझे दीक्षा लेनेका अधिकार नहीं है। तब हंजेने कहा—"यह पुद्गल हो शूद्र है जीव तो शूद्र नहीं है।" इस प्रकार अद्वैत ब्रह्मज्ञानका निरूपणकर ऋषिसे दीक्षा ले ली। ये माणिक ऋषि चतुर्मास तक तो वहाँ रहे फिर वहाँसे बाहर चले गये।

किसी एक दिन माणिक गुरु किसी श्रावकके घरसे कसारके लाडू लाये थे सो उनका बाँट कर हंजा-को दूरसे हाथ बढ़ाकर बिना उसको छुए दिया और उसे दूर बिठा दिया तब हंजेने कहा कि पहले तो भोजनमें इतना जुदापन नहीं था अब इतना जुदापन क्यों दिखलाते हो। इसपर दोनोंमें विवाद हो गया और माणिक ऋषिने उस हंजेको अपने यहाँसे निकाल दिया। तब हंजेने सोचा कि अब क्या करना चाहिये अब तो दूसरा नया मत स्थापन करना चाहिये। ऐसा विचारकर अहमदाबाद आया वहाँ पर एक हंजा नामके पीरकी कुछ चमत्कार दिखानेवाली कबर थी। वहाँपर जाकर वह सात दिन तक भूखा रहा तब वहाँ वालोंने पीर बनकर कहा कि तू गुरुद्रोही है इसलिए हमारी दरगासे चला जा। तेरा मुँह देखने योग्य नहीं है। तब हंजेने उसकी बड़ी स्तुति की उसको प्रसन्न किया। तब पीरने कहा—"यदि तू मेरा नाम चलावेगा जैसा मैं हूँ उसी मार्गसे चलेगा तो तेरा मत चलेगा। तू सब ओरसे मलिन रहना, मुँहपट्टी सदा रखना, शूद्र आदि सबके घरकी भिक्षा लेना, बर्तन धोनेका वा और भी ऐसा ही उच्छिष्ट पानी पीना इस प्रकारकी मलिनता रखना। यदि कोई तुझे वन्दना करे तो बदलेमें धर्मलाभ नहीं कहना किन्तु हांजी कहकर मेरा नाम लेना ऐसा तू कर तब उस हंजेने सब स्वीकार किया। इस प्रकार सम्वत् पन्द्रहसौ पिचासीके भादोंसुदी अष्टमी रविवारके दिन ऊपर लिखे हुए लुंकामतसे उस हंजा नामके ढेडने यह ढूँढ़ियाओंका मत चलाया और नाहंजा पीरकी सहायतासे चलाया है। कालांतरमें उसमें बाईस यति और आकर मिल गये। उनके नाम ये हैं—संघनाथ १, भीष्म २,

जयमल्ल ३, पैमा ४, जगरूप ५, कान्हा ६, सांवला ७, मनरूप ८, रतना ९, नाथू १०, माणी ११, कौथ-मल्ल १२, भारमल्ल १३, केशों १४, रायचन्द्र १५, लच्छो १६, गुमाना १७, टीकम १८, जसरूप १९, छित्रा २०, माना २१, पानाचन्द २२ इस प्रकार होनकूली बाईस यति और मिल गये। इसीलिये ये सब बाईस टोलाके साधु कहलाते हैं। इन्होंने अनेक प्रकारकी विपरीत बातें निरूपण की हैं ये सब सम्यग्ज्ञानियोंको श्रद्धान ज्ञान, आचरण करनेके सर्वथा अयोग्य हैं। यह कथन हमने मरुस्थलके (मारवाड़के) कुंचेरा गाँवके रहनेवाले खरतरगच्छकी बड़ी शाखाके गच्छके ज्ञानकीर्तिनामके यतिके शिष्य हेमकीर्तिकृत 'हेम विलास' नामकी भाषा छन्दकी ढालसे लिखा है। इसका विस्तार जानना हो तो वहाँसे जानना ।

तदनन्तर सम्वत् अठारहसौ तेईसकी सालमें ऊपर लिखे हुए ढूँढ़िया मतमें एक रघुनाथ नामके साधु-का शिष्य भीष्म नामका ढूँढ़िया साधु था। उसने किसी एक समय मारवाड़के बगड़ी गाँवमें चौमासा किया। वहाँपर उसने अपने गुरुसे ईर्ष्या की, गुरुकी आज्ञाका लोप किया उससे जुदा हो गया और उसने अपने नाम-का जुदा ही पंथ चलाया। उसने उस अपने नये पंथमें जैनधर्मसे तथा ढूँढ़िया मतमें भी बहुत-सी विरुद्ध और विपरीत बातें निरूपण कीं। उसने बतलाया कि कोई मांसभक्षी हिंसक जीव किसी दूसरे जीवको पकड़कर मारता हो तो उसे छुड़ाना वा बचाना नहीं चाहिये। जो छुड़ाता है वह दूसरेके (पकड़नेवाले-के) प्राणोंको पीड़ा देता है। इसलिए उसे अठारह पाप लगते हैं। वे कहते हैं कि जो कोई किसी जीवके काम वा भोगमें अन्तराय करता है तो उसके अन्तराय कर्मका आस्रव होता है इसलिए किसीके द्वारा पकड़े हुए जीव-को नहीं छुड़ाना चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी गाँवमें अग्नि लग गई हो वा और कोई घोर उपद्रव आ गया हो और उससे अनेक जीव मरते हों। गाय, भैंस, घोड़ा, बकरे, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जीवोंके समूह मरते हों तो उनको बचाना नहीं चाहिए वा बचानेका कोई उपाय नहीं करना चाहिये। उन्हें मरने देना चाहिये, दुःख सहन करने देना चाहिये। क्योंकि उनके कर्मोंका ऐसा ही उदय आया है सो अपना फल देकर निर्जरित हो जायगा। इस प्रकार (मरनेपर) उन कर्मोंकी निर्जरा हो जानेपर वे जीव सुखी हो जायेंगे। जो लोग दया पालन करनेके लिये उन्हें बचाते हैं उन्हें अठारह पाप लगते हैं। इस महाहिंसामयी कथनके साथ-साथ वे लोग यह भी कहते हैं कि यदि कोई अपने कुटुम्बका हो वा कोई साधु हो वा श्रावक हो तो उसे बचा लेना चाहिये। इस प्रकार उसने बहुत-सी निर्दय और विपरीत बातें बतलायीं। उसने जिनप्रतिमापूजनका भी निषेध

किया और इस प्रकार ढूँढ़िया मतसे भी अपना भिन्न मत और गच्छ स्थापन किया उनका मत तेरहपंथी साधु कहलाया और उसको माननेवाले तेरहपंथी साधु कहलाये। उन्होंने अपना नवीन ढाला बनाया है तथा और भी कई प्रकारसे अपना मत पुष्ट किया है सो वह भी सम्यग्ज्ञानियोंको श्रद्धान ज्ञान वा आचरणके योग्य नहीं है वह सब विपरीत मिथ्यात्व है। इस प्रकार भीष्मपंथीकी उत्पत्ति बतलाई।

प्रश्न--तेरहपंथी तो दिगम्बराम्नायमें होते हैं इन ढूँढ़ियाओंमें तेरहपंथी कैसे ?

उत्तर---इनमें भी तेरह साधु मिले थे इसलिए उनको माननेवाले तेरहपंथी साधु कहलाते थे। वह मत भीष्मपंथी ही रहा।

प्रश्न---दिगम्बर आम्नायमें जो तेरहपंथीकी आम्नाय है सो उसकी उत्पत्ति किस प्रकार है तथा उसका श्रद्धान ज्ञान आचरण ठीक है वा नहीं ?

समाधान---एक भाषा छन्दका नाटक संग्रह ग्रंथ है उसमें इसकी उत्पत्तिका वर्णन लिखा है। उससे लेकर यहाँ थोड़ा-सा लिखते हैं। यथा---

छन्द चौपाई भाषा

आदिपुरुष यह जिन मति भाष्यो। भवि जीवनि नीके अभिलाष्यो।
पहले एक दिगम्बर जानो। तातैं श्वेताम्बर निकसानो॥ १६॥
तिनमें ईकसि भई अति भारी। सो तो सब जानत नर नारी।
ताही माँहि रहसि अब करिकें। तेरह पंथ चलायो अडिकें॥ १७॥
तब कितेक बोले बुधिमान। उपज्यो पंथ यह केही थान।
किहि सम्मत कारण कहु कौन। सो समुझाय कहो तजि मौन॥ १८॥

दोहा

प्रथम चल्यो मत आगरे श्रावक मिले कितेक। सोलहसै तीयासीये गही कितेक मिलि टेक॥
काहू पंडितपै सुने किते अध्यातम ग्रन्थ। श्रावक किरिया छोडिकै चलन लगे मुनिपंथ॥

फिरि कामामें चलि परयो ताहीके अनुसारि। रीति सनातन छांडिके नई गही अघकारि ॥
....
....
....

कितै महाजन आगरै जात करण व्योपार। बनि आये अध्यातमी लखि नूतन आचार ॥

सोरठा

ते मिलिके दिनरात छाने चर्चा करत नित। प्रगट भए जिह भांति जा नगरीसों विधि सुनो॥

चौपाई

जयपुर निकट वसै इक ओर। सांगानेर आदितैं तौर।
सर्व सुखी ता नगरी मांहि। श्रावक तिनमें सुवसि बसाहि ॥ २७ ॥
बड़े बड़े चैत्यालय जहां। ब्रह्मचारि इक निवसै तहां।
अमरचंद्र है ताको नाम। शोभित सकल गुणनिको धाम ॥ २८ ॥
ताके ढिग मिलि आवत पंच। कथा सुनत तजिकै परपंच।
तिनमें अमरा भवसा जाति। गोदीका यह व्योक कहात ॥ २९ ॥
धनको गर्व अधिक तिन धियो। जिनवाणीको अविनय कियो।
तब वाको श्रावकनि विचारि। जिनमंदिरतैं दियो निकारि ॥ ३० ॥
जब उन कीन्हों क्रोध अनन्त। कही चलाऊं नूतन पंथ।
तब उनमें अध्यात्म कितेक। मिले भये सब द्वादश एक ॥ ३१ ॥
उनको कछु इक लालचे देय। अपने मतमें आने लेय।
लालच ठानि ठानि मनमांहि। मूढ मिले कछु समझे नांहि ॥ ३२ ॥

पूजा पाठ रचै बहु जोर। कही तासमें नूतन ओर।
सत्रहसौ तिहोत्तर साल। मत थाप्यो ऐसो अघजाल ॥ ३३ ॥
लोगनि मिलिकै मतो उपाय। तेरह पंथ नाम ठहराय।
तिनमें नृप मन्त्री मिलि एक। बांधी नये पंथकी टेक ॥ ३४ ॥
दै दै खिदमत पंथ बधायो। नहिं भायो ताही डरपायो।
कछु लालच कछु डरतैं साह। भयो गडरियाके परवाह ॥ ३५ ॥
आदि सेति चलि आयो धर्म। मूढ न समझै ताको मर्म।
इहि विधि फैल्यो नगरनि मांहि। उत्पति कही झूठ कछु नांहि ॥ ३६ ॥

दोहा

मानत उस ही ग्रंथको अर्थ करत कछु और। धर्म अधर्म गिनै नहीं चलत अकलिके जोर ॥

इस प्रकार इसकी उत्पत्तिका वर्णन किया। आगे इसके श्रद्धान और आचरण कहते हैं।

छन्द पद्धरी

सिद्धि श्री सांगानेर थान। अनेक बोपरमा जोग जान।
भाईजी श्री मुकुन्ददास। फुनि दयाचन्द्र महस्यघमास ॥ १ ॥
छाजू कल्ला सुन्दर सुपह। फुनि लेहि विहारीलाल जेहि।
तिन जोग्य सुपत्री जानि लेहु। कामातैं सब मिलि लिखत एहु ॥२॥
हरिकिसनदास चिंतामणीस। देवी फुनिलाल निशा धणीस।
जगन्नाथ केन श्रीशब्द जाति। लिखी सबै साहि मिली हुमानि ॥ ३ ॥
ये बात लिखी हम सप्त वीस। सो तुमहू करियो विश्ववीस।
ताकी तफसील कहूँ सुनाय। सु अब सुन लीजो चित्तलाय ॥ ४ ॥

पहले केसरकी सुनहु बात। आगे जिन चरननिको लगात।
सो हम यह मेटि दई सुचाल। तुमहू मिलि ऐसे करहु हाल॥ ५॥
फुनि पूजा बैठे करत कोय। सो अब ऊभै ही करहु लोय।
चैत्यालयमें रहतो भंडार। सो हू मति राखहु अब लगार॥ ६॥
प्रभुकों जलौट ऊपर धराय। ढालत कलशा विधिवत बनाय।
सो विधि तजि अब इमिकरि सुजान। प्रतिमाको राखि विराजमान॥ ७॥
ज्योंकी त्यों वेदी मांहि मीत। प्रभु आगे कलश ढलोत चित्त।
मनमें अजहूँ यह रहत नीत। तजि वेगि दीजिये एह रीत॥ ८॥
पूजा शांतिक फुनि क्षेत्रपाल। नवग्रह पूजनकी हुती सुचाल।
सो हू अब तो सब छांडि दीन्ह। यो कपन योह मख रचि कीन्ह॥ ९॥
देवलमें खेलत जुआ लोय। पंखेतैं लेते पवन कोय।
आरीतैं मांझ घला घलात। सोहू सब तजियो क्षिप्र भ्रात॥ १०॥
प्रभु माला लेते हरषि गात। देवलमें भोजक आत जात।
पुनि पनही देवल माझि मान। एती न्वात त्यागो सुजान॥ १९॥
जपिके अठोतर लवंग आदि। पहुंचारे मधि धरते सुसादि।
प्रभुको चढावत हैं भविक लोय। सो हू तजियो साहसी होय॥ १२॥

छन्द चाल

जल प्रभु पूजनको ल्यावन। भोजकपै राछ मजावन।
ए विधि कर लेहु महाजन। आपसहीमें मिलि साजन॥ १३॥
न्हावण घरघर सूं लावें। भोजक सो नाहि सुहावें।
अब एक महाजन जावो। इक ही घर सेती ल्यावो॥ १४॥

जो होइ कुलिंगी कोई । निरमाथल लेवे सोई ।
तिनको नहिं मानहु भाई । यह नूतन रीत चलाई ॥ १५ ॥
माली बाजे न बजावैं । श्रावक ही बजावें गावैं ।
रांध्यो निज नाज चढावो । थालोडी मत करवावो ॥ १६ ॥
ताजी मन कोऊ काहीं । मति करहु दोहरे मांही ।
सुदि चौदस भादौं आई । वेदी चौगिरद लुगाई ॥ १७ ॥
कूटलका फेरा लेहै । सोहू न करो भवि जो है ।
तिस पूजन श्री जिनराई । करते सुन करियो भाई ॥ १८ ॥
रथजात्रा करहु न कोई । जीवनिकी घात सु होई ।
नहि सघत दया अब तातैं । यह वरजी ह हम यातैं ॥ १९ ॥
सोवत हैं देवल मांही । गोली ढालत हैं लुगाई ।
यह दोऊ बात न कीजो । तजिके जगमें यश लीजो ॥ २० ॥
घर घर प्रतिमा ले जाहीं । रोगी रवि जोगी पाहीं ।
सोहू हम तो अब त्यागी । तुमहूँ तजियो बडभागी ॥ २१ ॥
जो देत आशिषा कोई । सोहू त्यागो भवि लोई ।
निरमाल्य द्रव्य चढया सो । मन्त्रनि करके मु पढयोसो ॥ २२ ॥
भोजक जे घर ले जावैं । सो पुरमें विकन उपावैं ।
ए विधि सब ही गिन लीजो । इनमेंते घाट न कीजो ॥ २३ ॥
फुनि और विधि है ये है । पहुंचारो भोजक लेहै ।
स्वाहाको पढयो जो कोई । निर्मायल विषसम होई ॥ २४ ॥

ताकों जो कोऊ खाहीं। ते नरक निगोदे जाहीं।
तातैं यह होम करीजे। तो योग्यकाज यह कीजे॥ २५॥

सोरठा

आई सांगानेर पत्री कामातैं लिखी। फागुण चौदसि हेर सत्रहसै गुणचास सुदि॥ २६॥

इस प्रकार पात्रोंका वर्णन किया। इसके सिवाय पुष्प न चढ़ाना, दीपक न जलाना आदि और भी मनःकल्पित बहुत-सी विपरीत बातें लिखी हैं। सो मनके वेगका कुछ प्रमाण नहीं है। सब कहाँतक लिखा जाय। इस प्रकार उत्पत्ति तथा श्रद्धान, ज्ञान, आचरण आदिका थोड़ा-सा स्वरूप बतलाया। विशेष नाटक संग्रहसे जान लेना चाहिये।

उसी समय आगरेमें पं० ज्ञानविलासजी, पं० बनारसीदासजी, पं० रूपचंदजी, पं० चतुर्भुजजी, पं० कुमारपालजी, पं० भगवतीदासजी हुए थे। इन्होंने श्रावक धर्मकी गौणता कर दी और अध्यात्मपक्ष मुख्य मान लिया। इन्होंने अपने-अपने नामको प्रगट करनेके लिए अपने-अपने नामके भाषा छन्दोबद्ध ग्रन्थ बनाये थे ज्ञानविलास, बनारसीविलास, ब्रह्मविलास आदि ग्रन्थोंको बनाकर अध्यात्मशैलीके भाई कहलाये।

इनके बाद जयपुर नगरमें एक गुमानीराम श्रावक हुए थे। उन्होंने तेरहपंथ आम्नायसे भी विपरीत बातें बनाकर अपने नामका गुमान पंथ चलाया। इन्होंने बतलाया कि जलसे वस्त्र गीला कर प्रतिमाजीका प्रक्षाल किया जाता है सो भी नहीं करना चाहिये। इसमें भी पाप लगता है। इसके बदले सूके वस्त्रसे प्रतिमाजी पर लगी हुई धूलि आदि झाड़ लेनी चाहिये। सो कितने दिनों तक तो यह बात चली परन्तु निभ न सकी। इसलिए फिर पीछे ये लोग थोड़े जलसे प्रक्षाल करने लगे। इसके सिवाय नव स्थापना पूर्वक दूरसे पूजन करना चाहिये। पूजा पढ़नेवालोंको भी खड़े होकर पढ़ना चाहिये। बैठकर नहीं पढ़ना चाहिये। मंडल-की पूजा करनी हो तो उसके ऊपर थाल रखकर उसमें द्रव्य चढ़ाना चाहिये। मंडलके कोठेमें द्रव्य नहीं चढ़ाना चाहिये। यदि कोई इसका कारण पूछे तो कह देना चाहिये कि यह तो बिछोना है और केवल शोभा-के लिये है। यदि दो-चार दिन तकका पाठ हो तो प्रतिदिन जितनी पूजाएँ हो जांय उतना ही शांति-पाठ कर विसर्जन कर देना चाहिये और द्रव्य उठा लेना चाहिये। यदि शास्त्रोंका स्वाध्याय करना हो तो जिनप्रतिमा-

की पूजनके समान स्नान कर स्वाध्याय करना चाहिये। यदि इस प्रकार स्नान करना किसीसे न बने तो स्नान करनेवाले एक पुरुषको अलग रखना चाहिये वह शास्त्रजीके पन्ने उलटता रहे। जिसने स्नान नहीं किया है उसको शास्त्रजीका स्पर्श नहीं करने देना चाहिये। इसी प्रकार पूजाके द्रव्यको अग्निमें जला देना चाहिये। माली व्यास आदिको देनेमें निर्माल्यका पाप लगता है और कुगति प्राप्त होती है। वह पाप अपनेको भी लगता है। इसलिए किसीको नहीं देना चाहिये। इस प्रकार उन्होंने सबको बतलाया परन्तु यह रीति भी थोड़े ही दिन चली। इसके सिवाय उन्होंने बतलाया कि गंधोदक लगाकर हाथ धोना चाहिये यदि जिन प्रतिमाके चरणों पर केशर, चन्दन आदि लगा हो तो वहाँके दर्शन वा वन्दना नहीं करनी चाहिये। तथा दूसरोंको भी दर्शन, वन्दना आदि न करनेका नियम दिलाना चाहिये। रात्रिमें जिन मूर्तिके सामने वा जिनमन्दिरमें यत्न-पूर्वक भी दीपक नहीं जलाना चाहिये। फल, पुष्पोंमें नारियल बदाम आदि की मिगी निकाल कर चढ़ाना चाहिये। अखण्ड फल नहीं चढ़ाना चाहिये। केशरको पूजामें लेना ही नहीं चाहिये। केवल चंदन घिस लेना चाहिए। पुष्प चावलोंके बनाने चाहिए चावलोंको कसूम वा हरसिंगारके फूलोंसे रंग लेना चाहिए इत्यादि बहुत-सी बातें विपरीत कल्पना की हैं। यदि इसका कोई कारण पूछता है तो केशरमें अनेक दोष बतला देते हैं। कहते हैं केशर बनानेमें रुधिरका संस्कार दिया जाता है। इससे केशर काममें लाना अयोग्य है। कोई कोई दुष्ट लोग खोटी केशर बनाते हैं उसमें भी रुधिरका संस्कार देते हैं। इस प्रकार बतलाकर दोष देते हैं। इस प्रकार अपनी बुद्धिके बलसे दूसरोंको भ्रममें डाल देते हैं। इनके सिवाय और भी अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ अपने मनसे करते हैं। कोई अपने नामसे पंथ चलाता है। जैसे गुमानपंथीकी आम्नाय है। इसे लोग छोटी सहेलीके भाई कहते हैं। इस प्रकार परस्पर पत्रोंके लेखोंसे तथा देखादेखी वा क्रोध, मान, माया, लोभके वश-से बहुत-सी विरुद्ध बातोंका प्रचार किया है। इन्होंने अपने बनाये हुए भाषा वचनिकाके शास्त्रोंमें अपने आम्नायकी पुष्टिके वचन रखकर ऊपर लिखी बातोंका प्रचार किया है। सैनपुरीके एक वंशोधर नामके श्रावक-ने अपने उपदेशसे पूर्वदेश बुन्देलखण्ड आदि देशोंमें इसकी प्रवृत्ति की है। सो यह सब हुंडावसर्पिणीका दोष है।

प्रश्न—ऊपर जो एकांत विपरीत आदि पांच प्रकारके मिथ्यात्व बतलाये हैं वे कबतक रहेंगे ?

उत्तर—ये सब मिथ्यात्व पाँचवें कालके अन्त तक रहेंगे। पाँचवें कालके अन्तमें सब नष्ट हो जायेंगे।

शुद्ध मूलसंघके एक साधु, एक अर्जिका, एक श्रावक, एक श्राविका ये चार धर्मात्मा रहेंगे। ये चारों ही कल्कीके द्वारा उपसर्ग पाकर संन्यास धारण कर स्वर्गलोक जायेंगे। सो ही लिखा है—

तत्तो ण कोवि भणिऊ गुरुएणहरपुंगवेहि मिच्छत्तो। पंचमकालवसाणे मित्थादंसणविणासेहिं॥
एक्कोवियं मूलगुणो वीरं गयणा मउज्जई होई। सो अप्पसुदेविवरं वीरोव्व जणं यव्वोई॥

ऐसे वाक्य हैं। इनके सिवाय अन्यत्र भी लिखा है—

सहस्साणि वरस वीसा ण वसइ पंच एव सत्त हयदरु। वे घडिय वे वलियं विहरंति वीरणि धम्मं॥

प्रश्न—यह कथन यहाँ क्यों लिखा क्योंकि अन्यमतका लिखना तो ठीक है परन्तु घरके एक धर्मके विरुद्ध तो नहीं लिखना चाहिये।

उत्तर—आपका कहना ठीक है। परन्तु जीवोंके परिणामोंके अंश कितने ही तरहके हैं। धर्मके अनेक अंग हैं इनमेंसे किसीके परिणाम कहीं धर्मसाधन करते हैं और किसीके अन्य किसी अंगमें धर्मसाधन करते हैं। किसीके धर्मके किसी अंगमें भाव लगते हैं और किसीके किसी अंगमें। किसीका मन कथामें लगता है। किसीका प्रथमानुयोगमें, किसीका करणानुयोगमें, किसीका चरणानुयोगमें और किसीका द्रव्यानुयोगमें मन लगता है। किसीका मन आक्षेपिणीमें, किसीका विक्षेपिणीमें, किसीका संवेगिनीमें और किसीका निर्वेदिनी कथामें लगता है। इसी प्रकार किसीका मन छहों रसोंके स्वादिष्ट भोजनोंमेंसे किसी रसके भोजनमें लगता है। किसीको कोई रस अच्छा लगता है। राग-रागिनी अनेक प्रकार हैं उनमेंसे किसीको कोई राग अच्छा लगता है और किसीको कोई रागिनी अच्छी लगती है। इसी प्रकार चर्चाएँ अनेक प्रकार की हैं। किसीका मन किसी चर्चासे प्रसन्न है और किसीका किसी चर्चासे प्रसन्न है। इसीलिए यहाँ पर यह चर्चा लिखी है कुछ राग-द्वेष वा अभिमान वा ईर्ष्यासे नहीं लिखी है। यदि इससे किसीके राग-द्वेष उत्पन्न हो तो हम उससे क्षमा माँग लेते हैं।

प्रश्न—यह जो कुदेवोंकी स्थापना हुई है सो इसका कारण क्या है?

समाधान—जिस प्रकार कुदेवोंकी स्थापना हुई है उसका स्वरूप लिखते हैं। किसी एक समय स्वर्गलोकमें नौवें बलभद्रके जीवने विचार किया कि श्रीकृष्ण कहाँ हैं? अवधिज्ञानसे मालूम हुआ कि वह बालुकाप्रभा नामकी तीसरी पृथिवीमें है। वह बलभद्रका जीव तीसरे नरकमें पहुँचा। कृष्णके जीवको धर्मोपदेश दिया।

संसारका अनित्यपना दिखलाया तथा उसके धर्मकी श्रद्धा अत्यन्त निश्चल की। तदनंतर कृष्णके जीवने कहा कि संसारमें हमारी लीलाका विस्तार करो। यह सुनकर बलभद्रका जीव भरतक्षेत्रमें आया और उसने इस लोकमें कृष्णकी अनेक बाल लीलाएँ प्रकट कीं। तबसे इस संसारमें कृष्णकी अनेक लीलाएँ प्रगट हुई हैं। ब्राह्मणोंने लोभके वशीभूत होकर वे सब लीलाएँ स्वीकार कर लीं और उसके उपासक बन गये जो आज तक बने हैं। ऐसा कथन लघु हरिवंशपुराण वा बृहद् हरिवंशपुराण वा और अनेक पुराणोंमें लिखा है। हरिवंशपुराण-में लिखा है—

अथ श्रीबलदेवोऽसौ ब्रह्मकल्पोऽमरोत्तमः। [illegible] स्नेहनोदितः॥

दूसरे हरिवंशपुराणमें लिखा है कि—

एवं तस्य हृदि स्थाप्य सम्यक्त्वमणिमुज्वलम्। सुरो निवर्तितः पश्चात् भ्रातृदुःखेन दुःखितः॥
आगत्य भारतं क्षेत्रं प्रियं व्यरचयत्परम्। विमानं किंकिणीघंटानानानादमनोहरम् ॥८४॥
तत्र पीतांबरं कृष्णं सश्यामं गरुडध्वजम्। लोकेभ्यो दर्शयामास वामांगे कमलाश्रितम्॥८५॥
स्वयं च कथयामास लोकेभ्यो भो जनाः शुभाः। श्रूयतां च त्रिलोकीशः उत्पत्तिप्रलयक्षमः॥८६
गोविंदो मम भ्राता लोकानां हितचिंतये। नृलोकेत्रावतारं स ..... परिपूर्णवत् ॥८७॥
परोपकारनिपुणस्त्रिलोकीपुरुषोत्तमः । दैत्यानां च प्रणाशाय क्रीडारसकुतूहली ॥८८॥
कृष्णेच्छया पुरी रम्या द्वारिकायां प्रतिष्ठिताः। पुनः प्रज्वलिता तस्य लीला या स्फुटम्(?)॥
कृतिरस्यैकसंसारे धर्मस्थापनकारिणः। दुष्टानां च्छेददक्षस्य रक्षणं कुर्वतः सताम्॥ ९० ॥
विष्टपादिमयं सर्वं सर्वं कृष्णेन च कृतम्। नररूपेण पश्यंती एवं ज्ञानमयं विभुम् ॥ ९१ ॥
रत्नाकरोस्मै श्रीभार्यां ददौ रत्नादिसंपदम् । जगतामुपकाराय अवतारो भवेद्विभोः॥ ९२ ॥
य एनं पूजितं श्रीदं ध्यायते हृदयेऽमलम्। स भवेत् सदृशोनेन ऐश्वर्येण विवर्द्धते ॥९३॥
कीर्तनं यैः स्वगेहस्य गीतनृत्यैः प्रकीर्त्यते। तेषां लक्ष्मीर्वशा देहे आरोग्यं च यशोमलम्॥९४
विप्रा ये स्थापिताः पूर्वं प्रथमेन सुचक्रिणा। तेषां पुरः सुरोगत्वा नायया तान् व्यमोहयत् ॥९५

किसी एक समय बलभद्र दीक्षा लेनेके बाद तुंगोगिरि पर्वत पर घोर तपश्चरण कर रहे थे। वहाँ पर जरासिन्धुके वंशके शत्रु इनको देखकर घोर उपसर्ग करने लगे। उस समय बलदेवके सारथी सिद्धार्थका जीव स्वर्गमें था उसने अपने अवधिज्ञानसे स्वामीका घोर उपसर्ग जाना। वह शीघ्र ही वहाँपर आया और माया-मयी अनेक सिंह बनाकर उन मुनिके चारों ओर कर दिये। सिंहोंको देखकर वे सब शत्रु भाग गए। तबसे ये ब्राह्मण लोग उन मुनिको मनुष्य जानकर और उनके चारों ओर सिंह जानकर नृसिंह अवतार मानकर पूजा करने लगे। उन्होंने नृसिंहकी मूर्ति बनाकर भी और पूजने लगे। यह कथा दोनों हरिवंशपुराणोंमें लिखी है। यथा—

तुंगीशृंगं समाश्रित्य तपस्तेपेऽपि दुष्करम्। भवभ्रमणतः शांतो बलदेवो दिगम्बरः ॥५६॥
एकद्वित्रिचतुःपंचषण्मासो पोषणव्रती। शांतं चक्रे कषायाणां पोषयन्·····॥५७॥
एकदा विहरन् स्वामी ध्यानधारणहेतवे। वने वैरिजनैर्दृष्टः शुद्धाहारदिदृक्षया॥५८॥
पूर्ववैरं स्मरेतोमी श्रुत्वा ख्यातिं तपस्विनः। संभूय ते समाजग्मुः भूभृतो भूरि सङ्कटाः॥५९॥
समंततो भ्रमित्वा ते तत्स्थं प्रहरणोद्यताः। आत्मानमिव कर्माणि वेष्टयित्वा तपस्विनम्॥६०॥
कायोत्सर्गस्थितं साधुं निर्भयं स्तंभवत् स्थिरम्। सिंहरूपेण सिद्धार्थं तं ते हंतुं प्रचक्रमे॥६१
पादपीठान् मुनेस्तावत् सिंहरूपाननेकशः। भयभीताः पलायागुर्दृष्ट्वा दशदिशं पृथक्॥६२॥
स्वस्वस्थानैर्गतैर्भूपैः भयलज्जाकुलैस्ततः। नरसिंह इति ख्यातिं चक्रे तस्य सभा स्थितः॥६३
केचित् प्रहरणान्मुक्ता मुनेः शरणमागताः। प्रणामं चक्रिरे केचित् दैवतस्य धियाभयात्॥६४
सिंहनादेन संत्रस्ते नारसिंहेन विश्रुतः। मूर्तिः कृता धृता मूढैः पूजिता श्रेयसे स्थिता॥६५॥
नारसिंहसुरेशस्य प्रथिता भुवि वै तदा। तदा प्रभृति मिथ्यात्वमेकमेतद् जायत॥६६॥

इस प्रकार संसारमें नृसिंह अवतारकी कल्पना हुई है।

किसी एक दिन मथुरामें देवकीने बलभद्रके मुखसे श्रीकृष्णके अप्रमाण पराक्रमकी महिमा सुनी तब उसे कृष्णको देखनेकी इच्छा हुई। उसने सोचा कि बलभद्रके किसी प्रपंचसे ही कृष्णसे मिल सकते हैं। यही

सोचकर बछड़े सहित गौके पूजनेके व्रतका प्रपंच किया। बलदेवको लेकर वह देवकी गोकुल गई और गायोंके वनमें खेलते हुए नारायणको देखा। बहानेके लिए गौकी पूजा की और फिर देवकीने कृष्णका स्पर्श किया। कृष्णका स्पर्श करते ही वह बहुत प्रसन्न हुई। अपना मनोरथ सिद्ध किया। उस समय महा-मोहके उदयसे देवकीके दोनों स्तनोंसे दूधकी धारा स्वयमेव निकलने लगी। उस समय बलभद्रने सोचा कि यदि इन दोनोंका माता और पुत्रपना प्रगट हो जायगा तो दुष्ट कंस न जाने क्या अपराध करेगा। अतएव दूधका निशान मिटाने-के लिए बलदेवने दूधका घड़ा उठाकर देवकीके ऊपर डाल दिया अर्थात् दूधसे देवकीका अभिषेक कर दिया जिससे उसका सब शरीर दूधसे सफेद हो गया। तदनन्तर देवकीने श्रीकृष्ण यशोदाको सौंपे और आप बलभद्र-के साथ मथुरा आयीं। उस समयसे लेकर भेड़िया धसानकी तरह इस संसारमें स्त्रियाँ भादों कृष्णा द्वादशीके दिन बछड़े सहित गौकी पूजा करती हैं और इसको व्रत मानती हैं। यह कथा भी दोनों हरिवंशपुराणोंमें लिखी है। यथा—लघु हरिवंशपुराणमें—

एकदा बलभद्रेण वर्ण्यमानं विचेष्टितं। तस्य मानुष्यमाकर्ण्य देवकी विस्मयं ययौ ॥७२॥
कृतोपवासव्याजेन सुतदर्शनहेतवे। व्रजं ययौ गोपगोपीजनगानविराजितम् ॥७३॥
तारघंटारवै रम्यैर्गोधनै राचितं क्वचित्। नानावृक्षगणैर्हृष्ट्वा सा सती प्रभूपगता ॥७४॥
नंदगोपस्ततः सार्द्धमागत्य च यशोदया। ननाम देवकी भक्त्या पश्यंती गोकुले श्रियः ॥७५
ततो यशोदयानीय क्रीडन्तं गोधनान्तरे। शिखिपिच्छकृतापिंडं वसानं पीतवाससी ॥७६॥
सुवर्णकर्णाभरणं श्यामं जनमनःप्रियम्। मृदुपाणिपदाम्भोजलीलाकृतनमस्कृतिम् ॥७७॥
देवक्या मातुरुत्संगे तया निन्ये स्वगर्भजम्। आलुलोक चिरं दृष्ट्वा जननी मुमुदेतराम् ॥
तं लोललोचनं बालं मृदुकोमलविग्रहम्। स्पृशन्ती निजहस्तेन मेने स्वजन्म सार्थकम् ॥७९
अहो हो वंचितो वैरी मया कंसो दुराशयः। पुत्रांगस्पर्शपीयूषं अद्यैवास्वादि तत्किल ॥८०॥
सा देवकी ततः प्राह वनेपि वसति तव। श्याध्या यशोदा या नित्यमीदृशं पुत्रमीक्षसे॥८१
इन्द्रः पुत्रविहीनोऽत्र राज्यलाभोपि नोचितः। तस्मात्त्वयासि वो नित्यं त्वदादेशपरायणैः॥

जगाद गोपी पुत्रोयं स्वामिन्यास्तव पाल्यते। अस्माभिः सेवकैर्नित्यं त्वदादेशपरायणैः॥८३॥
अत्र यद्रुचिरं वस्तु तत्तवैवास्ति निश्चितम्। तेनायं खलु पुत्रोपि तवैवेह ममास्ति कः ॥८४॥
अत्रांतरे प्रस्तुतोस्याः पुत्रदर्शनतः स्तनौ। शशाक संवरीतुं नो क्षरंतौ रहितान्तरौ ॥८५॥
यथोज्झितोस्ति पुत्र रे दुष्टकंसस्य साध्वसात्। अत्यंतशुद्धमात्मीयं दर्शनं नीरराजसा ॥८६॥
प्रकाशभीरुसहसा हली क्षीरघटैश्च ताम्। अभ्यषिंचन् महाबुद्धः दक्षः कार्येण मुज्झति ॥८७
हरिप्रेक्षणतः प्राप्तसुखां तां मथुरां पुनः। आनीय प्रवेश्याथ पित्रे वार्तां तमब्रवीत् ॥८८॥
ततःप्रभृति तज्जातं गोवत्सार्चननामकम्। मिथ्यात्वं वनितालोकमुग्धचित्तैः प्रतिष्ठितम् ॥८९

जब कृष्णकी बहिनका जन्म हुआ था तब कंसने उसकी नाक काट ली थी। बड़ी होनेपर किसी एक दिन उसने अपना मुँह दर्पणमें देखा। सो अपना कुरूप देखकर संसारसे उदास हो दीक्षा धारण कर ली और वह आर्जिका बन गई। किसी एक दिन वह आर्जिका विन्ध्याचल पर्वतके ऊपर एक वनमें रात्रिमें ध्यान धारण कर बैठी थी। उसी मार्गसे एक भीलोंका राजा अन्य बहुतसे भीलोंके साथ किसी पथिकका धन लूटनेके लिये जा रहा था। उन्होंने वह आर्जिका देखी और समझा कि यह कोई वनदेवी है। इसकी पूजा की, मानता करो। यदि इसकी पूजा करनेसे बहुत-सा धन मिलेगा तो हम बलिदान देकर तेरी पूजा करेंगे। ऐसी प्रतिज्ञा कर वे चले गये। दैवयोगसे उस दिन उनको बहुत-सा धन मिल गया। तब उन चोरोंने देवीका प्रत्यक्ष चमत्कार जानकर उसकी पूजा करनेका विचार किया। इधर उन भीलोंके चले जानेपर उस आर्जिकाके पास सिंह आ गया वह उस आर्जिकाका भक्षण कर चला गया। आर्जिका समाधिमरण कर स्वर्ग सिधारी। इसके बाद वे भील वहाँपर देवीकी पूजा करनेके लिए आये। परन्तु उन्हें वह वनदेवी (आर्जिका) न मिली वहाँपर केवल उसकी तीन उँगलियाँ पड़ी मिलीं। उन्होंने उन्हींको खड़ा कर लिया और त्रिशूल मानकर उसकी पूजा करने लगे। वनके अरणा, भैंसा और बकरे आदिको मारकर उससे झरते हुए मस्तकके रुधिरसे उस त्रिशूलकी पूजा करने लगे। इस प्रकार बलिदान देकर देवीकी स्थापना की और उसका नाम विन्ध्यवासिनी देवी रक्खा। तबसे ही भील आदि नीच, पापी लोग परम्परासे ऐसा करते चले आ रहे हैं। वह महापापस्थान आज तक मिरजापुरके निकट विन्ध्याचल पर्वतपर है। वहाँपर अब भी भैंसे, बकरे आदि पशुओंका वध होता है। बड़े-बड़े नामधारी

पढ़े-लिखे पण्डित लोग भी वहां जाकर पूजा करते हैं। सो यह सब महापापका कारण है। सो ही हरिवंशपुराण-में लिखा है—

प्राप्ता विंध्याटवीं मार्गवशाल्लानाद्रुमांचिताम्। बहुभिल्लगणाकीर्णां भीरूणां भयदायिनीम्॥
तत्र सा निशि निःशंका निषण्णप्रतिमास्थिता। भिल्लैरदर्शि मुष्णातु सार्ववाहान् समागतैः॥
ज्ञात्वैतां वनदेवीं ते सप्रणामा निजे हृदि। भिल्लाश्च प्रार्थयन्तेति ..... ॥७१॥
..... ॥७२॥
..... अर्चयिष्याम आदरात् ॥७३॥
कृत्वेति प्रार्थनां यातास्ते भिल्ला विधियोगतः। धनवस्त्रादिसंपूर्णान् सार्थवाहान् महाध्वनि॥
प्राप्य हत्वा च तानेव दुकूलकनकादिकम्। नीत्वा हृष्टाशया राजन् देविपार्श्वे समागताः॥
तत्र सा संयता भिल्लैः तथैव प्रतिमा स्थिता। अदर्शि प्रणतैश्चित्ते मनोरथविधायिनी॥
तत्कालमेव सा प्राप्य समाधिमरणं ययौ। प्रतिमाप्रभृतिः स्वर्गं विधिना नशने कृते॥
ततो विचारमुक्तास्ते तत्रारोप्यातिदैवतम्। निपात्य विषमारण्यहिषं तत्पुरोऽवधुः ॥७८॥
रुधिररक्तमांसस्य बलिं विचिकिरुर्मुदा। विनत्समक्षिकाकीर्णं जयदेवीति वादिनः ॥७९॥
तदाप्रभृति लोकोयं देवमूढोऽविवेकवान्। महिषादीन् पशून् हत्वा पूजयेद्विंध्यवासिनीम्॥
तदा तैः शवरैः पापैः स्थापितं तदघप्रदम्। लोके विस्तारेऽगमद्देवी विप्रपूजनमीदृशम् ॥८१

तदनन्तर अनेक लोगोंने पुर, नगर, गाँव, वन, उपवन, पर्वत, तीर्थ आदि स्थानोंमें चण्डी, मुंडी, दुर्गा, भवानी, कात्यायनी, बीजासणी, शीतला, भैरव, क्षेत्रपाल आदि अनेक नामधारी देवी-देवताओंकी स्थापना की और वे अनेक जीवोंका वध कर उनकी पूजा करने लगे। इस प्रकार मांसभक्षी भील और शूद्र जातियोंने इन कुदेवोंकी स्थापना की है। तथा कितने ही लोभी ब्राह्मण भी ऐसा ही करने लगे हैं। सो यह विपरीत मिथ्यात्व अब तक चला आता है। यह सब विपरीतता श्रीअरिष्ट नेमिनाथ तीर्थंकरके समयसे हुई है।

इसी प्रकार श्रीमहावीर स्वामीके तीर्थमें एक मुनि और एक ज्येष्ठा नामकी अर्जिकाने अपनी दीक्षा भंग कर परस्पर सम्भोग किया। उससे ज्येष्ठाके गर्भ रह गया। वह ज्येष्ठा अर्जिका राजा श्रेणिककी पटरानी चेलनाकी बहिन थी। इसीलिये चेलनाने धर्मकी हँसी मिटानेके लिए उस ज्येष्ठाको अपने घरमें लाकर रक्खा। समय पूरा होने पर उसके पुत्र हुआ। सो अर्जिका तो छेदोपस्थापना प्रायश्चित्त लेकर तपोवनको चली गई तथा वे मुनि भी छेदोपस्थापना प्रायश्चित्त लेकर घरमें चले गये। तथा पुत्र चेलनाके यहाँ पलने लगा और बढ़ने लगा। परंतु पापकर्मके उदयसे खेलता हुआ भी वह सब बालकोंसे विरुद्ध रहता था। चेलनाके पास उसके बहुतसे झगड़े आने लगे। तब किसी एक दिन चेलनाने कहा कि किससे तो उत्पन्न हुआ और किसको दुःख देता है। अपनी यह बात सुनकर उस बालकने चेलनासे पूछा कि मेरे माता-पिता कौन हैं। तब चेलनाने उसे पहला सब वृत्तांत सुनाया। उसे सुनकर वह बालक अपने पिता मुनिके पास गया और उसने उससे जिनदीक्षा ले ली। उस पुत्रका नाम सत्यकी था सो मुनि होनेपर भी उसका नाम सात्यकी ही रहा। क्रम-क्रमसे वह पढ़ने लगा सो ग्यारह अंग और चौदसवें विद्यानुवाद नामके अंग तक पढ़ गया। उस समय अनेक विद्याएँ आकर कहने लगीं कि हमें आज्ञा दीजिये। जो काम हो सो करें। तब वह सात्यकी मुनि ग्यारहवीं रुद्र उन विद्याओं-की रूप संपदा देखकर तथा मुनिपनेसे शिथिल होकर कहने लगा कि जब हम स्मरण करें तब आकर हमारी आज्ञामें रहना।

किसी एक प्रसंग पाकर भगवान महावीर स्वामीने अपनी दिव्यध्वनिमें कहा कि "यह सात्यकी मुनि-दीक्षासे च्युत हो जायगा, भगवानकी यह वाणी सुनकर वह सात्यकी मुनि पर्वतोंके एकांत स्थानोंमें रहने लगा। किसी एक दिन वहाँपर किसी जलाशयमें कोई राजकन्या स्नान करने आई थी उससे सात्यकी रुद्रने कहा तू मुझसे विवाह कर ले। तब कन्याने कहा विवाहकी बात हमारे माता पिता जानें। यह सुनकर रुद्रने कहा कि अच्छा यह बात अपने माता पितासे कहना। कन्याने कहा अच्छा कहेंगे। तदनंतर कन्याने घर जाकर अपने माता पितासे सब बात कही। इधर उस रुद्रने भी जाकर वह कन्या माँगी। माता पिताने वह कन्या उस रुद्रको विवाह दी। परंतु उस रुद्रके कामसेवनसे वह कन्या मर गई। इस प्रकार कितनी ही कन्यायें मरणको प्राप्त हुईं। अंतमें उसने एक पर्वत राजाकी कन्या पार्वतीके साथ विवाह किया वह इसके कामसेवनसे मरी नहीं सो वह सात्यकी रुद्र अत्यंत कामी होकर तथा अत्यंत निर्लज्ज होकर उससे कामसेवन करने लगा। उस

रुद्रने राजा पर्वतको भी बहुत दुःखी किया। इससे चिढ़कर राजा पर्वतने इसके मारनेका उपाय सोचा। परन्तु रुद्रके पास बहुत-सी विद्याएँ थीं इसलिये यह मार न सका। तब राजा पर्वतने अपनी कन्या पार्वतीसे पूछा कि ये विद्यायें किसी समय इससे दूर भी रहती हैं या सदा इसके पास रहती हैं। पार्वतीने यह बात रुद्रसे पूछी। रुद्रने कहा कि ये विद्याएँ संभोगके समय तो दूर रहती हैं और किसी भी समय दूर नहीं रहतीं सदा पास रहती हैं। पार्वतीने यह बात जानकर राजा पर्वतसे कह दी। तदनंतर किसी एक दिन राजाने उस रुद्रको संभोग करते समय नग्न अवस्थामें ही मार डाला।

अपने स्वामीका मरना देखकर उन विद्याओंने अनेक उपद्रव करना प्रारंभ किया और वे सबको पीड़ा देने लगीं। तब सब लोगोंने प्रार्थना की कि हे देवियाँ अब शांत हो जाओ। अब क्षमा करो। तब उन सब देवियोंने कहा कि "इस राजाने जिस अवस्थामें सात्यकीको मारा है, उसी आकार की उसकी मूर्ति बनाकर स्थापना करो और फिर उसको पूजो तब शांति होगी। अर्थात् योनिमें मैथुनाकार स्तंभित लिंगकी मूर्ति बनाकर पूजो तब सुख मिलेगा अन्यथा दुःख ही पाते रहोगे। देवियोंकी यह बात सुनकर राजा प्रजा सबने ऐसा ही किया। उनको देखकर भेडियाधसानके समान और लोगोंने भी ऐसे ही रूपकी मूर्ति बनाकर स्थापना की और लोग उसे पूजने लगे। तबसे शिवकी स्थापना प्रारंभ होने लगी। यह सब कथन उत्तरपुराण आदि अनेक जैनशास्त्रोंमें लिखा है। विशेष वहाँसे जान लेना। यहाँ अत्यंत संक्षेपसे लिखा है।

रुद्र ग्यारह होते हैं सो इस कालमें भी ग्यारह हुए हैं परन्तु यह शिवकी स्थापना अंतके रुद्रसे हुई है। यह सब कालदोष है। इसी कालदोषसे कितने ही स्वार्थी ब्राह्मणोंने अपनी आजीविकाके लिये अनेक प्रकारके स्वरूप बनाकर कितने ही निंद्य देवताओंकी स्थापना की है तथा लोगोंको ठगनेके साधन बनाकर कितनी ही विपरीत बातें फैलाई हैं सो सब प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। वे सब सम्यग्दृष्टियोंकेलिये श्रद्धान, ज्ञान या आचरण करनेके योग्य नहीं हैं। सर्वथा हेय हैं।

आगे थोड़ेसे कुशास्त्रोंकी उत्पत्ति लिखते हैं।

श्रीऋषभदेवके पुत्र महाराज भरत थे तथा भरतका पुत्र मारीच था। उसने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे मुनिपदसे भ्रष्ट होकर सांख्य शास्त्र बनाया। उसने पृथ्वी आदि पच्चीस तत्त्वोंसे आत्मा बनता है ऐसा

बतलाया। जिसप्रकार बेर, जड़ी, गुड़ और मधुके फूल जुदे-जुदे हैं परंतु उन सबके मिलनेसे मद्य बन जाता है। पहले उन सबमें मद्य बनने की शक्ति थी वही शक्ति अब मिलनेसे प्रगट हो गई और मद्य बन गया उसी-प्रकार पच्चीस तत्त्वोंमें आत्मा बननेकी शक्ति है उन सबके मिलनेसे आत्मा बन जाता है। इसप्रकार अनेक-प्रकारके विपरीत कथनको कहनेवाले सांख्यमतके शास्त्र बनाये। उसीने पातंजलि मतके शास्त्र बनाये। उसमें हठयोग, पवनका साधन और शुद्ध ध्यानादिकका निरूपण किया। तदनंतर श्रीशीतलनाथ तीर्थंकरके समयमें शालि ब्राह्मणने दश प्रकारके कुदानोंकी स्थापना की और उनकी परिपाटी चलानेके लिये ऐसे दान देनेका विधान करने वाले ग्रंथ बनाये। उनमें अपना स्वार्थ सिद्ध करने और आजीविकाकी परंपरा चलानेकेलिये ब्राह्मणोंको गोदान, सुवर्णदान आदि अनेक प्रकारके दान देना बतलाया। सबका फल स्वर्ग मोक्ष बतलाकर उन दानोंकी पुष्टि की। तथा इसप्रकार लोगोंको ठगनेका उपाय बनाकर उसकी परंपरा चलाई। इसप्रकार उसने जैनधर्मके अत्यन्त विरुद्ध कथन निरूपण किया और लोगोंको खूब ही भुलावा दिया।

एक धारणयुगल नामका नगर था उसमें अयोध नामका राजा राज्य करता था उसकी वसो नामकी रानीसे सुलसा नामकी अत्यंत रूपवती पुत्री हुई थी। राजाने उसका विवाह करनेके लिये स्वयंवर रचा था और अनेक राजा बुलाये थे। उसमें सगर आदि अनेक राजा आये थे। उनमें एक मधुपिंगल नामका राजा भी आया था। राजा मधुपिंगलने सुलसाके पास अपनी भूआ (फफी) भेजी और कहलाया कि तू मधुपिंगलके कंठमें वरमाला डालना। उस फूफीने मधुपिंगलका बहुत यश गाया। सुलसाने उसका भारी यश सुनकर उस फूफी-की बात स्वीकार कर ली।

इधर सब राजाओंमें मुख्य राजा सगरने भी सुलसाकी रूप संपदा देखकर उसके साथ विवाह करने-की इच्छा की। तथा उसने ऊपर लिखा हुआ मधुपिंगल और सुलसाका विचार भी सुना। तब राजा सगरने अपने मंत्रियोंसे विचार किया। उस राजाके एक विश्वभूति नामका पुरोहित था। जो सामुद्रिक शास्त्रके जानकारोंमें मुख्य था। उन मंत्रियोंकी सलाहसे उसने एकांतमें बैठकर एक नवीन सामुद्रिक शास्त्र बनाया। उसमें मधुपिंगलके मांजार नेत्रोंको देखकर उसको ठगनेके लिये उसके बहुत दोष दिखलाये। तथा राजा सगरके चिह्नोंके बहुत गुण बतलाये। ऐसा नवीन जाली ग्रन्थ बनाकर उसे धूएँमें धूसरित कर पुराने वस्त्रमें बांधकर एक

लोहेके संदूकमें रक्खा और उसे स्वयंवर भूमिके निकटका पृथ्विीमें एक गढा खोदकर संदूक समेत गाड़ दिया। ऊपरसे वह गढा मिट्टीसे भरकर एकसा कर दिया। यह सब काम उसने इस प्रकार किया जो किसीको मालूम नहीं होने दिया तदनंतर जब सब राजा इकट्ठे हुए तब किसी अपरिचित पुरुषसे वह ग्रन्थ मंगवाया और उस पुरोहितने सब राजाओंके सामने उस ग्रन्थका व्याख्यान किया। उसमें सगरके चिह्नोंका बहुत कुछ शुभ निरूपण किया और मधुपिंगलके बिल्लीकेसे नेत्रोंका वर्णन करते हुए बहुतसे दोष दिखलाये।

यह सब कथन वहां बैठे हुए सब राजाओंने सुना, राजा मधुपिंगलने सुना। राजा मधुपिंगल अपने बुरे चिह्नोंको सुनकर तथा अपने शरीरमें भाग्यहीन दरिद्रियोंके लक्षण जानकर उदास होकर वहांसे उठ गया। उसने सुलसाके साथ विवाह करनेकी इच्छा छोड़ दी और विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण कर ली। वह प्रतिदिन घोर तप करने लगा। जिससे उसका शरीर बहुत ही कृश हो गया। किसी एक दिन विहार करते-करते वह एक स्थानपर पहुँचा वहांपर अनेक सामुद्रिक शास्त्रको जाननेवाले विद्वान् बैठे थे। एक सामुद्रिक शास्त्रीने इसके लक्षण देखकर कहा कि इस सामुद्रिकशास्त्रको भी धिक्कार है। क्योंकि देखो इसके शरीरमें कैसे पुण्याधिकारियोंके लक्षण हैं परंतु यह कैसा कष्ट सह रहा है। उस शास्त्रीकी यह बात सुनकर दूसरा शास्त्री कहने लगा कि क्या तुझे मालूम नहीं है कि सुलसाके स्वयंवरमें इस मधुपिंगलको ठगनेकेलिये एक नया सामुद्रिक शास्त्र बनाया गया था और राजा सगरने यह सब प्रपंच रचकर सुलसाके साथ विवाह किया था। इसके बिल्लीके नेत्रोंमें बहुतसे दोष निकाले थे। परंतु यह भोला है उस समय इसने कुछ समझा नहीं, बिना ही समझे वहांसे निकलकर उदास होकर दीक्षा ग्रहण कर ली। उन दोनों शास्त्रियों की बात मधुपिंगलने भी सुनी और सुनते ही क्रोधको प्राप्त हुआ। अंतमें दुःखसे मरकर असुर जातिके देवोंमें महाकाल नामका असुर हुआ। उसने अपने कुअवधिज्ञानसे राजा सगरके पहलेके सब समाचार जान लिये उसने जो ठगाई की थी सो भी सब जान ली। तथा उससे शत्रुता धारण कर वह उसके नाश करनेका उपाय सोचने लगा।

पहले क्षीरकदंब ब्राह्मणके पुत्र पर्वतका वर्णन कर चुके हैं पर्वतका नारदसे विवाद हुआ था राजा वसुको साक्षी बनाया था। राजा वसु झूठ बोलनेके कारण सिंहासन सहित पृथ्वीमें धंसकर नरक पहुँच चुका था और उस सूक्तिमति नामके नगरसे लोगोंने उस पर्वतको निकाल दिया था वहांसे निकाल कर पर्वत ब्राह्मण

देशांतरोंमें फिरता हुआ बहुत दुखी हो रहा था कि इतनेमें ही दैवयोगसे उसको यह महाकाल नामका असुर मिल गया। महाकालने पर्वतसे कहा कि अब तू दुःख मत कर अब मैं तेरी सहायता करूँगा। पर्वतने कहा कि "क्या करूं तू कहे सो करूं" तब महाकाल नामके असुरने कहा कि तू किसी उपायसे राजा सगर और सुलसा-को अग्निमें होम दे। इसके लिये चमत्कार सब मैं बतलाता रहूँगा। महाकालकी यह बात सुनकर पर्वतने होमके सब शास्त्र बनाये। उनमें अनेक प्रकारके यज्ञ करनेका विधान लिखा। पशुमेध, नरमेध आदि कितने ही प्रकारके यज्ञ लिखे। उन सबका फल स्वर्ग बतलाया। अनेक प्रकारके पापोंका प्रायश्चित्त भी यज्ञ करना बतलाया। और बतलाया कि इसी यज्ञसे सब पाप दूर हो जाते हैं और करने-करानेवाले सब स्वर्गमें जाते हैं। यज्ञका करनेवाला आचार्य, करानेवाला यजमान और यज्ञमें जो बकरे, भैंसे, घोड़े, मनुष्य आदि होमे जाते हैं वे सब मरकर स्वर्ग जाते हैं। उसने उन शास्त्रोंमें यह भी लिखा कि "यज्ञमें वा होममें जो जीव घात होता है उससे आचार्य वा करानेवाले यजमानको उनको हिंसाका पाप नहीं लगता। क्योंकि यज्ञमें मरे हुए सब जीव स्वर्ग जाते हैं।" मंत्रसे मरना वा मारना पाप नहीं है। इसप्रकार पापोंका निरूपण करनेवाले अनेक शास्त्र बनाये। उन सब शास्त्रोंका नाम वेद रक्खा। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वणवेद ऐसे अलग-अलग चार वेद बनाये। इन सब शास्त्रोंको बनाकर और वह पर्वत स्वयं ब्राह्मण बनकर उस महाकालासुरकी सहायतासे संसारमें उन वेद शास्त्रोंका प्रचार करने लगा। उसने लोगोंको समझाया कि यह वेद आर्षवेद है, यह स्वयं सिद्ध है यह किसीने बनाया नहीं है। यह अपने आप प्रगट हुआ है। इसप्रकार कह-कह कर वह पर्वत लोगों-को ठगने लगा। क्योंकि उसका अभिप्राय तो और ही कुछ था।

उस पर्वत और कालासुरने यह उपाय सोचा कि वह कालासुर तो पहले किसी देशमें महामारी आदि अनेक प्रकारके उपद्रव करता था जिससे सब लोग बहुत ही दुखी होते थे। तब पर्वत वेदिया ब्राह्मण बनकर उसकी शांतिके लिये लोगोंको अनेक प्रकारके यज्ञ करनेका उपदेश देता था। जब वे लोग यज्ञ करते थे और अनेक पशुओंका होम करते थे तब वह कालासुर शांति कर देता था। उपद्रव करना बंद कर देता था। अनेक देशोंमें इस प्रकार करता हुआ वह पर्वत कालासुरके साथ राजा सगरके देशमें पहुँचा। असुरने जाकर वहाँ बहुतसा उपद्रव फैलाया। तब पर्वतने राजासे कहा कि तू शांति करना चाहता है तो यज्ञ कर। तब राजाने

यज्ञ कराया। यज्ञ हो चुकने पर राजाके यहाँ शांति हो गई यह देखकर अनेक जीव मरनेके डरसे पर्वतके शरण-में आये तथा पर्वतके कहे अनुसार श्रद्धान करने लगे।

तदनन्तर उस पर्वतने राजा सगरसे बहुतसे पशु मँगा कर यज्ञमें होमे। उसे पशुमेध यज्ञ बतलाया। फिर घोड़े होमे उसको अश्वमेध यज्ञ बतलाया। इसी प्रकार उसने गोमेध यज्ञ तथा नरमेध यज्ञ किये। फिर उस पर्वतने राजा सगरसे कहा कि हे राजन्! देख; ये पशु जो इस यज्ञमें होमे गये हैं वे सब मर कर स्वर्गलोक गये हैं सो तू देख। यह कहकर कालासुरकी मायासे स्वर्ग जाते हुए दिखलाया। उसको देख-देखकर सब लोग उसकी सराहा करने लगे।

तदनन्तर राजासे पर्वतने कहा कि अब तू राजसूय यज्ञ कर। बहुतसे राजाओंको बुलाकर यज्ञ करना राजसूय यज्ञ कहलाता है। सगरने पर्वतके कहे अनुसार अनेक राजाओंको बुलाया। उन राजाओंमें कितने ही राजा कालासुरके (मधुपिंगलके) शत्रु थे सो वे सब अपनेको स्वर्गमें जानेकी इच्छासे उस होमकुण्डमें पड़कर मर गये, कालासुरने अपनी मायासे उन सबको स्वर्ग जाते हुए दिखलाया तदनंतर राजा सगर भी अपनी वल्लभा रानी सुलसाके साथ यज्ञमें पड़कर मर गया और मरकर अधोगतिमें पहुँचा।

इस प्रकार कालासुर अपना कार्य कर अपने स्थानको चला गया। तथा पर्वतने संसारमें वेद शास्त्रों-की परिपाटी चलानेके लिए उसके तीन कांड बनाये। पहला कर्मकांड बनाया जिसमें यज्ञ आदि करनेका विधान किया। दूसरा उपासनाकांड बनाया जिसमें स्नान, सन्ध्या, आचमन, तर्पण, श्राद्ध, पूजन, जप, ध्यान, स्तोत्र, पाठ, तीर्थयात्रा, दान आदिके द्वारा देवोंके आराधना करनेकी विधि बतलाई। उसने तीसरा कांड ज्ञान बनाया। जिसमें वेदांत मार्ग, अध्यात्म स्वरूप, परमब्रह्म मय योगाभ्यास आदिकी विधिका निरूपण किया और बतलाया कि कर्मकांड और उपासनाकांडसे यह जीव शरीर और भोगादिकसे रहित मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उसने अनेक प्रकारकी विधियोंका निरूपण किया और उसकी परम्परा चलाई। अन्तमें मरण कर वह अधोगतिको प्राप्त हुआ। इस प्रकार नवीन सामुद्रिक शास्त्रकी तथा वेद-शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई। सो सम्यग्-ज्ञानियोंके श्रद्धान, ज्ञान वा आचरण करनेके योग्य नहीं है।

पांचवें श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुके एक गुरुभाई थे। जिसका नाम वराहमिहर था। वे वराहमिहर

ब्राह्मण थे उन्होंने अपने नामसे बारह हजार प्रमाण एक वराहसंहिता बनाई। उसमें बहुत-सा गणित लिखा है और बहुत-सी जन्मपत्रियोंका स्वरूप लिखा है। यह सब मिथ्यारूप लिखा है। इनके सिवाय अनेक लोगोंने अपनी आजीविकाके लिए अनेक पुराण तथा अनेक कथाओंके शास्त्र लिखे हैं। उनमें अनेक प्रकारके विपरीत कथन लिखे हैं। वे केवल अपने पालन-पोषण करनेके लिए लिखे हैं और अपनी आजीविका बनाये रखनेके लिए उनको प्रसिद्ध किया है। इस प्रकार खोटे शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है सो सब हुंडावसर्पिणीकाल दोषसे हुई है। इस प्रकार ऊपर लिखे हुए एकांत, संशय, विनय, अज्ञान और विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। इनके उत्तर, भेद तीनसौ तिरेसठ हैं ये तीनसौ तिरेसठ भेद अनादिकालसे चले आ रहे हैं। तथा नवीन रूपसे जो इनकी उत्पत्ति होती है इसलिये उनको सादि कहते हैं। इन्हींका नाम अगृहीत और गृहीत है। इन दोनों-मेंसे अगृहीतसे गृहीतका फल बहुत बुरा होता है। जिस प्रकार किसी पुरुषके पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे किसीका ऋण चला आ रहा है वह इतना दुःख नहीं देता जितना कि नवीन हालका लिया हुआ ऋण दुःख देता है। इसी प्रकार अनादि मिथ्यात्व अगृहीत है। वह अनादिकालसे इस जीवके साथ लगा हुआ है तथा फिर भी यह जीव नवीन सादि मिथ्यात्वको या गृहीत मिथ्यात्वको धारण करता है वह इसे अत्यन्त दुःख देता है। ऐसा जानकर पहले कहे हुए समस्त मिथ्यात्वोंको छोड़कर भगवान अरहन्त देवके कहे हुए मोक्षमार्गका यथार्थ श्रद्धान करना चाहिये इसीका ज्ञान और आचरण करना चाहिये। यही इस जीवके उद्धार करनेको समर्थ है। इसके सिवाय अन्य कोई धर्म जीवका उद्धार नहीं कर सकता।

यह सामुद्रिक वेदकी उत्पत्तिका कथन बृहद् हरिवंश तथा बृहत्पद्मपुराण तथा द्वितीय बृहत्पद्मपुराणसे लेकर संक्षेपसे लिखा है। इनके सिवाय इस संसारमें और भी अनेक लोभी जीवोंने अपना द्रव्य उपार्जन करने-के लिए अनेक कुशास्त्रोंकी रचना की है। ज्योतिष्क, वैद्यक, मंत्र, तंत्र, यंत्र, शृंगार, युद्ध, कोक आदि अनेक कुशास्त्रोंकी रचना की। तथा अनेक देवी-देवताओंकी मूर्ति बनाकर स्थापन की है उनके प्रसादको खाते हैं और अपनी आजीविका चलाते हैं यह सब उनका लोभ समझना चाहिये। वे लोग इसको धर्म बतलाते हैं सो सब मिथ्या है। [५

इनके सिवाय लोगोंने अनेक व्रत, उपवास, उत्सव आदिके विन स्थापन कर रक्खे हैं उनसे ही अपनी

आजीविका चला रहे हैं। द्वीपावली, यमद्वितीया, अक्षय नोमा पूर्णिमा, मकर संक्रांति, कर्क संक्रांति, माघकृष्णा चतुर्दशी, माघशुक्ला पंचमी, होली, गौरी, धोलोत्सव, नवदुर्गा, रावणवध, दशमी (चैतसुदी दशमी) अक्षय तृतीया, पारक्षिक बंधन, गोवत्सार्चन, श्राद्ध और वर्ष दिनकी छब्बीस एकावशी आदि अनेक रूपसे धर्मकी रचना कर डाली है। इसी प्रकार मुसलमान, ईसाई आदि यवन लोगोंने भी अनेक कुशास्त्रोंकी रचना कर अपने-अपने परम्परा स्थापन करनेके लिए अनेक कुशास्त्रोंकी रचना कर डाली है। सो सब मिथ्यात्व है, ऐसा जानना।

२३०-चर्चा दोसौ तीसवीं

ज्योतिष्काः सूर्याचंद्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च॥ १२ ॥
मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥ —तत्त्वार्थसूत्र अ० ४ सूत्र १२

अर्थ—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और चारों ओर फैले हुए तारे ये पांच प्रकारके ज्योतिषी देव हैं। सो ये सब ज्योतिषी देव ढाई द्वीपमें मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा दिया करते हैं।

तत्कृतः कालविभागः। —तत्त्वार्थसूत्र अ० ४ सूत्र १४

प्रश्न—इन्हीं घूमते हुए ज्योतिषी देवोंसे कालका विभाग होता है। ऐसा सूत्रोंमें कहा है। सो ये ज्योतिषी देव जो मेरुकी प्रदक्षिणा देते रहते हैं सो कुछ अन्तरसे देते हैं या मेरुसे लगकर ही घूमते हैं।

समाधान—मेरु पर्वतसे ग्यारहसौ इकईस योजन हटकर साधारण तारे तथा ग्रह, नक्षत्र घूमते हैं। सूर्य, चन्द्रमा मेरु पर्वतसे बहुत हटकर जम्बूद्वीपकी परिधिके समीप जाकर घूमते हैं। उसमें भी उत्तरायण, दक्षिणायन होते रहते हैं सो उत्तरायणके समय कम अन्तर रहता है और दक्षिणायनके समय अधिक अन्तर रहता है। ऐसा त्रिलोकसारमें लिखा है। यथा—

इगवीसेयारसयं विहाय मेरुं चरंति जोइगणा।
चंदतियं वज्जित्ता सेसा हु चरंति एक्कपहे ॥ ३४५ ॥

तीसरे वर्षमें एक अधिक मास (लौंदका महीना) होता है। जो संसारमें भी प्रसिद्ध है और ज्योतिष-के गणितशास्त्रमें भी लिखा है। सिद्धांतशिरोमणिमें लिखा है—

द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिने षोडशमेव च। चतुर्थघटिकानां च यतितोधिकमासकः॥

अर्थ—बत्तीस महीना सोलह दिन और चार घड़ी बीत जानेपर एक अधिक मास होता है। ऐसा ज्योतिषशास्त्रोंमें लिखा है। तथा पंचांग आदिमें भी लिखा जाता है और व्यवहारमें भी ऐसा ही बर्ताव किया जाता है। सो जैनमतमें इसका वर्णन किया है या नहीं?

समाधान—लघु हरिवंशपुराण, बृहद्हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण आदि ग्रंथोंमें लिखा है कि यादव लोग जब द्वारिकासे निकल गये थे और फिर वापिस आये थे तब वे अधिक मासको भूल गये थे। इसीलिए द्वारिकाके भस्म होते समय सब जल गये थे, ऐसा वर्णन है। तथा त्रिलोकसारमें लिखा है कि एक महीनेके साथ एक दिन बढ़ता है। इस हिसाबसे तीस महीनेमें तीस दिन बढ़ जाते हैं अर्थात् ढाई वर्षमें एक महीना बढ़ जाता है। अथवा पांच वर्षमें दो महीने बढ़ जाते हैं। यथा—

इगमासे दिणवड्ढी वस्से बारह दुवस्सगे सदले।
अहिओ मासो पंचयवासप्पजगे दुमासहिया॥ ४१०॥

प्रश्न—हीनमास किस प्रकार होता है?

उत्तर—मुहूर्तचिंतामणिमें लिखा है कि—

इष्टार्कसंक्रांतिविहीनयुक्तो, मासोधिमासः क्षयमासकस्तु।

अर्थात्—यदि एक अमावस्यासे लेकर दूसरी अमावस्या तक एक महीनेमें यदि दो संक्रांति पड़ जांय तो वह क्षयमास गिना जाता है। ऐसा परमतके ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है। जैनमतके शास्त्रोंमें इसका विशेष वर्णन देखनेमें नहीं आया।

प्रश्न—अधिक मासमें कार्य-अकार्यकी विधि किस प्रकार करनी चाहिये?

उत्तर—जो महीना अधिक हो उसके व्रत-विधान आदि दूसरे महीनेमें करने चाहिये, पहिलेमें नहीं। सो ही लिखा है—

यस्मिन् संवत्सरे स्यातां द्वौमासावधिकौ यदा। उत्तरे व्रतकार्याणि प्रथमे न कदाचन्॥

अभिप्राय यह है कि कृष्णपक्षके व्रत पहले महीनेमें कर लेने चाहिये और शुक्लपक्षके व्रत दूसरे महीनेमें करने चाहिये। (पहले महीनेका शुक्लपक्ष और दूसरे महीनेका कृष्णपक्ष अधिक मास गिना जाता है)

२३२—चर्चा दोसौ बत्तीसवीं

प्रश्न—तीर्थङ्करोंके कल्याणकोंमें इन्द्रादिक चतुर्णिकायके देव मध्यलोकमें आते हैं। उनमें इन्द्रके हाथियोंकी सेनामें ऐरावत हाथी मुख्य बतलाया है और उसे एक लाख योजनका बतलाया है। सो वह एक लाख योजन ऊँचा है या एक लाख योजनका उसका विस्तार है।

समाधान—ऐरावत हाथीका विस्तार एक लाख योजन है। उसकी ऊँचाई पचचोस हजार योजन है। सो ही आदिपुराणमें भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समय बाईसवें पर्वके ५२वें श्लोकमें लिखा है। यथा—

इति व्यावर्णितारोहपरिणाहचतुर्गुणम्। गजानीकेश्वरश्चक्रे महैरावतदन्तिनम्॥

प्रश्न—भाषा मंगलमें उस हाथीके सौ मुँह बतलाये हैं। यथा—'योजन लक्ष गयन्द बदन सौ निरमये' सो क्या ठीक है—

उत्तर—किसी आर्ष ग्रन्थमें तो सौ मुख बतलाये नहीं हैं केवल भाषाकारके वचन हैं तथा काष्ठसंघ आम्नायके वचन हैं। शास्त्रोंमें इस ऐरावत हाथीके बत्तीस मुख तो लिखे हैं। सो ही आदिपुराण बाईसवें पर्वमें पचासवें श्लोकमें भगवानके केवलज्ञानकी उत्पत्तिके समय लिखा है—

तमैरावतमारूढः सहस्राक्षोद्युतत्तराम्। पद्माकर इवोत्फुल्लपंकजो गिरिमस्तके॥५३॥
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य प्रत्यास्यं च रदाष्टकम्। सरः प्रतिरदं तस्मिन्नब्जिन्येका सरः प्रति॥५३॥
द्वात्रिंशत्प्रसवास्तस्यां तावत्प्रमितपत्रकाः। तेषु पत्रेषु देवानां नर्तक्यस्तत्प्रभाः पृथक्॥५४॥

लघु आदिपुराणमें भी बारहवें सर्गमें लिखा है—

द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य दन्तां अष्टौ मुखं प्रति। प्रतिदन्तं सरश्चेकमब्जिन्यैका सरः प्रति॥१७

हरिवंशपुराणमें अट्ठाईसवें सर्गमें ऐसा ही लिखा है—

अनेकवर्णनोपेतं दिव्यरूपं गतोपमम्। नागदत्ताभियोग्येशो नागमैरावतं व्यधात् ॥ ५० ॥
तमैरावणमारूढः सहस्राक्षः तरां बभौ। उदयाचलमारूढो यथा भानुः स्वतेजसा ॥ ५१ ॥
द्वात्रिंशद्ददनान्यस्य सदक्षाणि भवन्ति हि।

सिद्धान्तसार प्रदीपकके छठे अधिकारमें लिखा है—

अथेन्द्रस्यैरावतदन्तिनः किंचिद्वर्णनं करोमि। जम्बूद्वीपप्रमाणगं वृत्ताकारं शंखेन्दु-कुन्दधवलं नानाभरणघंटाकिंकिणीतारिकाहेमकक्षादिभूषितं कामगं कामरूपधारिणं महोन्नतमैरावतगजेन्द्रं नागदत्ताभियोग्येशो वाहनामरो विकरोति। तस्य दंतिनः बहुवर्णविचित्रतानि रम्याणि द्वात्रिंशद्वदनानि संति।

श्रीपार्श्वपुराणके अठारहवें सर्गमें लिखा है—

तमैरावतमारूढः सहस्राक्षो व्यभात्तराम्। उदयाचलमारूढो यथा भानुः स्वतेजसा ॥१६॥
द्वात्रिंशद्ददनान्यस्य सद्दन्तानि भवन्ति च।

इन सब प्रमाणोंसे बत्तीस मुख सिद्ध होते हैं।

प्रश्न—रूपचन्द भाषा पंच मंगलको तुम काष्ठसंघका किस प्रमाणसे बतलाते हो।

उत्तर—इसी पंच मंगलमें आगे चौथे मंगलमें समवशरणका वर्णन करते समय तीन गंधकुटी बतलाई उसके ऊपर भगवानके विराजमान होनेका सिंहासन बतलाया। तदनन्तर फिर उसके ऊपर एक कमल बतलाया। और फिर उसके ऊपर अन्तरिक्ष (अधर) भगवान् अरहन्तदेवका विराजमान बतलाया। जैसा कि उसमें लिखा है। यथा—

मध्यप्रदेश तीन मणिपीठ तहां बनो। गन्धकुटी सिंहासन कमल सुहावनी ॥
तीन छत्र सिर शोभित त्रिभुवन मोहिये। अन्तरिक्ष कमलासन प्रभुतन सोहिये ॥

इस कथनसे काष्ठसंघका सिद्ध होता है। क्योंकि यह कथन मूलसंघका नहीं है। मूलसंघमें श्रीऋषभ-

देवके समवशरणकी रचनाका वर्णन करते समय भगवज्जिनसेनाचार्यने सिंहासनके ऊपर कमलका वर्णन नहीं किया है। केवल सिंहासन पर ही चार अँगुल ऊँचे भगवानका विराजना लिखा है। सो ही आदिपुराणके तेईसवें पर्वमें लिखा है—

मेखलायां तृतीयस्यामथैक्षिष्ट जगद्गुरुम्। वृषभं.....श्रीमद्गंधकुटीस्थिते ॥
तद्गर्भरत्नसन्दर्भरुचिरे हरिविष्टरे। मेरुशृंग इवोत्तुंगः सुनिविष्टमहातनुः ॥

अर्थात्—भगवान ऋषभदेव तीसरी मेखलाकी गंधकुटी पर रक्खे हुए सिंहासन पर विराजमान थे।

प्रश्न—सिंहासन पर कमलका वर्णन कई जगह आया है। देखो—

तिह विच सिंहासन वन्यो जगसार हो, ऊपर कमल अनूप।
अन्तरिक्ष जापर रहे जगसार हो, अतिशय श्री जिनभूप ॥

इसके सिवाय समवसरणके पूजनके पाठमें तथा और भी ग्रन्थोंमें कमलका वर्णन लिखा है। सो इसका निषेध क्यों करना चाहिये। शास्त्रोंमें लिखा है इसलिये हम कमल बनाते है।

उत्तर—आदिपुराणके २३ पर्वमें तथा इस प्रकरणके अन्यपर्वोंमें देखनेपर भी ये श्लोक मिले नहीं इससे मालूम होता है कि ये श्लोक लघु आदिपुराणके होंगे। आदिपुराणमें लिखा है—

विष्टरं तदलंचक्रे भगवानादितीर्थकृत्। चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्नाऽस्पृष्टतत्तलः ॥

—पर्व २३ श्लोक २९।

अर्थात् भगवान ऋषभदेव उस सिंहासनपर अपने अगुलोंसे चार अंगुल ऊंचे अधर विराजमान थे।

ये वचन मूलसंघके नहीं हैं। यदि मूलसंघके होते तो जिनसेनाचार्य कैसे भूलते। यदि कदाचित् ऐसा मान भी लिया जाय तो फिर आठ प्रातिहार्यके बदले नौ प्रातिहार्य मानने पड़ेंगे। सो होते नहीं। प्रातिहार्य आठ ही होते हैं। जैसा कि लिखा है—

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टी दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामंडलं दुंदुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥

इसप्रकार प्रातिहार्य आठ ही होते हैं। यदि सिंहासनके ऊपर एक कमल और मान लिया जायगा तो नौ प्रातिहार्य मानने पड़ेंगे सो है नहीं इसलिये भगवान सिंहासनपर ही विराजमान हैं, कमल पैर नहीं।

२३३–चर्चा दोसौ तेतीसवीं

प्रश्न—एक दिनके दीक्षित मुनिराजको भी सौ वर्षकी दीक्षित अर्जिका नमस्कार करे या नहीं ?

समाधान—एक दिनके दीक्षित मुनिराजको सौ वर्षकी दीक्षित अर्जिका अथवा अर्जिकाओंकी गुरानी गणिनी अर्जिका भी नमस्कार करती है इसका कारण यह है कि एक दिनके दीक्षित मुनिराज महाव्रती हैं और अर्जिका महाव्रती नहीं हैं उसके उपचारसे महाव्रत हैं, साक्षात् नहीं है। इसलिये तुरंत दीक्षित मुनिको अधिक दिनोंकी दीक्षित अर्जिका भी आकर नमस्कार करती है। सो ही नीतिसारमें लिखा है—

महत्तराप्यर्यिकाभिवंदते भक्तिभाविता। अद्यदीक्षितमप्याशुव्रतिनं शान्तमानसम् ॥१॥

२३४–चर्चा दोसौ चौतीसवीं

प्रश्न—गृहस्थ वा मिथ्यादृष्टी वा स्पृश्य शूद्र वा अस्पृश्य शूद्र जो मुनिराजको वंदना करते हैं सो मुनिराज सबको एकसो धर्मवृद्धि देते हैं अथवा और भी कुछ कहते हैं।

समाधान—यदि सम्यग्दृष्टी व्रती गृहस्थ मुनिराजको नमस्कार करें तो मुनिराज उनको धर्मवृद्धि कहते हैं। यदि उच्च वर्णका मिथ्यादृष्टि नमस्कार करता है तो उससे 'धर्मबुद्धि हो' ऐसा कहते हैं। यदि भील वा म्लेच्छ आदि शूद्रादिक नमस्कार करते हैं तो उनको 'धर्मलाभ' कहकर संतुष्ट करते हैं। अथवा 'सम्यग्दर्शनकी शुद्धि हो' ऐसा कहते हैं। यदि चांडाल आदि अस्पृश्य शूद्र नमस्कार करते हैं तो उनके लिये 'पापक्षयोस्तु' 'तेरे पापक्षय हों' ऐसा कहते हैं। इसप्रकार मुनिराज वंदनाके बदले कहते हैं सो ही नीतिसारमें लिखा है—

धर्मरसिक शास्त्रमें भी लिखा है—

धर्मवृद्धिर्गृहस्थस्य व्रतिनः शुद्धचेतसः। मिथ्यादृष्टेः सुवर्णस्य धर्मबुद्धिरुदाहृता ॥

१. पांडुक शिलापर जो सिंहासन है उसपर भी कमल नहीं है। अकृत्रिम चैत्यालयोंमें भी भगवान सिंहासन पर विराजमान हैं कमल पर नहीं।

किरातान् म्लेच्छकान् सर्वान् धर्मलाभेन तोषयेत् । सम्यग्दर्शनशुद्धस्य मातंगस्य वदेन्मुनिः ॥
पापक्षय इति स्पष्टं न तस्यास्ति परो विधिः ।

धर्मरसिक शास्त्रमें भी लिखा है--

श्रावकाणां मुनीन्द्रा ये धर्मवृद्धिं ददत्यहो । अन्येषां प्राकृतानां च धर्मलाभमतःपरम् ॥

इस प्रकार शास्त्रोंकी आम्नाय है ।

२३५-चर्चा दोसौ पैंतीसवीं

प्रश्न--श्रावक पुरुषोंको मुनियोंसे वा अर्जिकाओंसे नमोऽस्तु किस प्रकार करना चाहिये ।

समाधान--मुनिराज गुरुको तो नमोस्तु करना चाहिये । ब्रह्मचारियोंको वंदना करनी चाहिये । अर्जिकाओंको भी वंदामि करनी चाहिये । श्रावकोंको परस्पर इच्छामि वा इच्छाकार कहना चाहिये तथा लोकमें जुहार कहना चाहिये । अपने सज्जनोंको नमस्कार करना चाहिये तथा योग्य-अयोग्य मनुष्योंको देखकर यथायोग्य उनका विनय करना चाहिये । जो विद्या तप और गुण आदिसे श्रेष्ठ हों और अपनेसे आयुमें छोटे हों तो भी उनको बड़ा मानना चाहिये । यदि कोई जैनधर्मको धारण करनेवाला मनुष्य धर्मात्मा हो परंतु वह रोगी वा दुःखी हो तो मीठे वचन कहकर उसका समाधान करना चाहिये और उसे संतुष्ट करना चाहिये । जो मूर्ख अभिमानी जिनधर्मरहित कुवाची पुरुष हों उनको देखकर मौन धारण करना चाहिये । जो जैनधर्मकी प्रभावना करनेवाले हैं उनसे नम्रीभूत होकर भक्तिके साथ मस्तक नवाकर मनोहर और मिष्ट वचन कहने चाहिये । गृहस्थ श्रावकोंको इस प्रकार करनेका अधिकार है । सो ही धर्मरसिक ग्रन्थमें लिखा है--

नमोस्तु गुरवे कुर्याद्वन्दना ब्रह्मचारिणे । इच्छाकारं सधर्मिभ्यो वन्दामि स्वार्यकादिषु ॥१॥
श्राद्धाः परस्परं कुर्युरिच्छाकारं स्वभावतः । जुहारुरिति लोकेस्मिन् नमस्कारं स्वसज्जनाः ॥
योग्यायोग्यं नरं दृष्ट्वा कुर्वन्ति विनयादिकम् । विद्यातपोगुणैः श्रेष्ठो लघुश्चापि गुरुर्मतः ॥
रोगिणो दुःखितान् जीवान् जैनधर्मसमाश्रितान् ।
संभाष्य वचनैर्मिष्टैः समाधानं समाचरेत् ॥ ४ ॥

मूर्खान् मूढांश्च गर्विष्ठान् जिनधर्मविवर्जितान् । कुवादवादिनेऽस्यर्थं त्यजेन्मौनपरायणः ॥
नम्रीभूताः परं भक्त्या जैनधर्मप्रभावकाः । तेषामुद्वर्त्य मूर्द्धानं ब्रूयाद्वाचं मनोहराम् ॥६॥

नीतिशतकमें भी इसीप्रकार लिखा है—

निर्ग्रन्थानां नमोस्तु स्यादर्जिकानां च वंदना । तस्मै दानं च दातव्यं यः सन्मार्गे प्रवर्तते ॥
पाषंडिभ्यो ददद्दानं तन्मिथ्यात्वप्रवर्द्धकम् । श्रावकस्योच्चैरिच्छाकारोऽभिधीयते ॥ २ ॥

प्रश्न—आपमोंको इच्छाकार करना बतलाया सो पहले चतुर्थकालमें किसीने किसीको किया भी है ?

समाधान—रत्नद्वीपमें एक अमितगति नामका विद्याधर मुनि हो गया था । उसके पास सिंहग्रीव और वराहग्रीव नामके उसके पुत्र आये थे उसी समय सेठ चारुदत्त वहाँ पहुँचा था । तब उन मुनिने अपने दोनों पुत्रोंसे कहा था कि यह चारुदत्त मेरा मित्र है तुम इसे इच्छाकार करो । तब उन दोनों पुत्रोंने उठकर चारुदत्तसे इच्छाकार किया । ऐसा कथन सप्तव्यसन चरित्रमें लिखा है । यथा—

तदा तु मुनिना प्रोक्तं पुत्रौ मित्रं ममैव हि । चारुदत्ताभिधानोयमिच्छाकारं कुरु द्रुतम् ॥

यही कथन पुण्यास्रवपुराणमें आया है । रामचन्द्रविरचित पुण्यास्रवमें लिखा है—

तत्पुत्रौ सिंहग्रीववराहग्रीवौ सविमानौ तं वंदितुमागतौ । वंदित्वोपवेशने क्रियमाणे सति तेनोक्तं चारुदत्तस्येच्छाकारं कुरुतमिति कृते तस्मिन् ।

इसप्रकार लिखा है—

लोगोंमें जो परस्पर जुहारु करनेके लिये कहा है उसकी कथा इसप्रकार है ।

जिणवरधम्मं गहियं हणेइ दुट्ठट्ठकम्माणं । रुंधइ आसवदारं जुहारु जिणवरो भणियं ॥

अर्थात्—ज से जिनवर धर्मको ग्रहण करनेवाला, हकारसे दुष्ट कर्मोंको हनन करनेवाला, और रु से आस्रवरूपी द्वारको रोधन वा बंद करनेवाला जो हो उसको जुहारु कहते हैं । [५२१

दूसरी जगह भी लिखा है—

युगादिऋषभं देवं हारिणं सर्वसंकटम् । रक्षन्ति सर्वजीवानां तस्माज्जुहारुमुच्यते ॥

अर्थात्—जु से युगकी आदिमें होनेवाले वृषभदेवका ग्रहण है। हा शब्दसे समस्त संकटोंसे दूर करनेवालेका ग्रहण है और र से समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवालेका ग्रहण है। ऐसा यह जुहारु शब्द है।

२३६–चर्चा दोसौ छत्तीसवीं

प्रश्न—श्वेतांबरोंके साधुओंके मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे जीवन पर्यंत छहों कायकी हिंसाका त्याग होता है। वे सब मुहपट्टी न लगावें तो बोलने पर या सिद्धांतादिकका पाठ करते समय वा धर्मोपदेश देते समय वायुकायिक जीवोंकी हिंसा हो तथा वायुकायिक जीवोंकी हिंसा होनेपर उनके अहिंसा महाव्रत नहीं पल सकता इसलिये श्वेतांबरी लोग जो मुहपट्टी रखते हैं सो दयाके लिये ही रखते हैं। ऐसा मानना चाहिये।

समाधान—मुहपर पट्टी रखना दिगम्बर जैनधर्मके विरुद्ध है। महाव्रती होकर वस्त्र रखना श्वेताम्बरियोंमें ही बतलाया है। दिगम्बर साधु तो चार अंगुल वस्त्र तो क्या तिल तुषमात्र भी परिग्रह वा वस्त्र नहीं रखते। क्योंकि वस्त्र रखनेवाले अनेक प्रकारके स्वांग बनाते हैं। नीतिसारमें लिखा है—

दिगम्बरमते नैव नैव पटो दिगम्बरः। चतुरंगुलमानस्तु शस्यते वदनेष्वपि॥

जो वस्त्र रखते हैं सो निगोदके पात्र हैं। सो ही षट्पाहुडमें लिखा है—

जहि जाइरूवसरिसा तिलतुसमत्तं सुजेह अत्थेसु। जहि लेहि अप्प बहुगं तत्तो पुण जाइ णिगोयं॥

यदि उस मुँहपट्टीको दयाके लिये कहोगे सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि जब मुनियोंके हिंसा आदिका सर्वथा त्याग है तब अपने आप होनेवाली हिंसाके स्वामी वे मुनि नहीं होते जो हिंसा, मन, वचन, कायसे वा कृत, कारित, अनुमोदनासे की जाती है उसीसे व्रत भंग होता है। जो हिंसा स्वतः होती है उससे व्रत भंग नहीं होता। यदि एक मुँहको बन्द करनेके लिए पट्टी बांध ली तो फिर नाक आदि बाकीके नव द्वारोंको रोकनेका क्यों प्रबन्ध नहीं किया। उनके द्वारा जीवोंकी हिंसा क्यों होने दी। उसका भी प्रबन्ध करना चाहिये। [५२

इसके सिवाय सबसे बड़ी बात यह है कि उस पट्टीपर मुँहके उच्छाससे तथा मुँहकी लार व थूक आदिके सम्बन्धसे, पसीनासे अनेक प्रकारके त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं तथा मरते रहते हैं सो महाव्रती ऐसो

साक्षात् त्रस जीवोंकी संकल्पी हिंसा किस प्रकार कर सकता है। अर्थात् कभी नहीं। इसलिए मुंह पर पट्टी बांधना मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या आचरण है। इसीलिए दिगम्बर आम्नायमें इसका त्याग करना लिखा है।

२३७–चर्चा दोसौ सैंतीसवीं

प्रश्न—श्वेताम्बरी महासती साधुओंको अठारह कुलोंका आहार लेना निर्दोष बतलाया है। यदि किसी दातारका कुल शूद्र हो तो इनको क्या दोष आता है ?

समाधान—यह उत्तम कुल, उत्तम जाति तथा उत्तम धर्मका मार्ग नहीं है। यह तो शूद्रोंका भ्रष्टाचारमय, मद्य, मांस भक्षियोंका धर्म है। परन्तु ये श्वेताम्बरी इसको भी ग्रहण कर लेते हैं।

ये श्वेताम्बर साधु जिन अठारह घरोंका भोजन ग्रहण कर लेते हैं उनके नाम ये हैं। जैसा कि नीतिशतकमें लिखा है—

गायकस्य तरालस्य नीचकर्मोपजीविनः। मालिकस्य विलिंगस्य वेश्यायाः तैलिकस्य च॥
दीनस्य वतिकायाश्च छिंपकस्य विशेषतः। मद्यविक्रयिणो मद्यपायिसंसर्गिणश्चन॥
क्रियते भोजनं गेहे यतिना भोगमिच्छता। एवमादिकमप्यन्यत् चिन्तनीयं स्वचेतसा॥

जो गा-बजाकर उपजीविका करें ऐसे कमला मत डोली आदिको गायक कहते हैं। जो नाच कर या नाटक कर पेट भरते हैं। उनको नृत्यकार कहते हैं। ये दोनों ही नीच कर्म कहलाते हैं। माली, नपुंसक, वेश्या, तेली, दीन-भिखारी, खाली, कलाल, मद्य पीनेवाले आदि शब्दसे मांस-भक्षी, शहद खानेवाले, हिंसक, यवन, म्लेच्छ, भील, जाट, गूजर, तम्बोली, कायस्थ, काछी, दर्जी, नाई, कुम्हार, कुलमी, धाकड़, मीना आदि शूद्रोंके घर यतियोंको आहार नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंके सिवाय अन्य घरका भोजन जो मुनि ग्रहण करते हैं उनके मद्य, मांस, मधुके भक्षणका मिथ्यात्वका तथा हिंसादिक महापापोंका दोष आता है, अन्तराय, भ्रष्टाचार, निर्दयपना आदि अनेक दोष प्राप्त होते हैं तथा अनेक दोषोंके लगनेसे मुनिपदका नाश हो जाता है। मुनिपदका नाश होनेसे दीक्षा भंग हो जाती है और दीक्षा भंग होनेसे नरकादिक कुगतियोंमें जाना

पड़ता है। इसलिये मुनियोंको ऊपर लिखे शूद्रोंके घर कभी भोजन नहीं करना चाहिये। जो साधु ऐसे शूद्रोंके घर आहार लेते हैं वे साधु नहीं हैं। क्योंकि ऊपर लिखे हुए सब शूद्रोंके ही समान हैं।

प्रश्न—मुनि ऊपर लिखे शूद्रोंके यहाँ तो आहार ले नहीं तथा ब्राह्मणादिकके घर भोजनको विधि मिले नहीं तो फिर क्या करना चाहिये ?

उत्तर—मुनियोंका धर्म ही अनेक परीषहोंका सहन करना है। इसलिए निर्दोष विधिके मिलने पर ही उन्हें आहार करना चाहिये। ऊपर लिखे शूद्रोंके घर कभी भोजन नहीं करना चाहिये। क्योंकि अपने हाथसे चूल्हा जलाकर रसोई बनाकर भोजन कर लेना अच्छा है परन्तु मिथ्यादृष्टि ऊपर लिखे हुए जातिवालोंके घर भोजन करना अच्छा नहीं। इसका भी कारण यह है कि ऊपर लिखे हुए मिथ्यादृष्टि शूद्रोंके यहाँ जो भोजन तैयार होता है वह समस्त पापोंके समागमसे उत्पन्न होता है। इसलिए उनके घरका भोजन नहीं करना चाहिये। यद्यपि मुनियोंको अपने हाथसे भोजन बनाना महापापका कारण और दीक्षा भंग करनेका कारण है महाव्रती ऐसा कभी नहीं करते तो भी शूद्रोंके घरकी अपेक्षा उसे उत्तम और योग्य बतलाया है। शूद्रोंके घरका आहार इतना निन्द्य और अयोग्य है। सो ही नीतिशतकमें लिखा है—

वरं कार्यं स्वहस्तेन पाको नान्यत्र दुर्दृशाम्। दुर्दृशां मंदिरे यस्मात् सर्वसावद्यसंगमः॥

२३८—चर्चा दोसौ अड़तीसवीं

प्रश्न—इस चतुर्थकालमें जो धर्मका विच्छेद हुआ था। मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका नहीं रहे थे सो कौनसे समयमें किन तीर्थङ्करोंके समयमें और कितने काल तक विच्छेद रहा था ?

१. वर्तमान समयमें कितने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंमें वा कितने ही कुल-कलङ्क जैनियोंमें धरेजा चलने लगा है तथा कितने ही लोग मुसलमान वा म्लेच्छोंके साथ खाने लगे हैं परंतु सदाचारको वा शुद्धाचारकी स्थिरता जाति और कुलकी शुद्धता पर तथा भोजन-पानकी शुद्धता पर ही निर्भर करता है। धरेजा करनेवालोंकी जाति वा कुल कभी शुद्ध नहीं हो सकता और शूद्रोंके साथ खाने-पीने वालोंका आचरण कभी शुद्ध नहीं हो सकता। धरेजासे जो सन्तान वा शरीर पिंड उत्पन्न होता है वह भी अशुद्ध ही होता है। इसलिये धरेजा करनेवालोंको, उसकी सन्तानको, शूद्रोंके साथ खानेवालोंको वा उनके साथ रहनेवाले उनकी सन्तानोंको मुनियोंके लिये आहार देनेका अधिकार नहीं है और न जिनपूजन आदि करनेका अधिकार है। मुनियोंको भी ऐसे घरोंका भोजन नहीं लेना चाहिये। जो लेते हैं वे मुनिपदसे भ्रष्ट हैं क्योंकि धरेजा करनेवाले भी शूद्रोंके समान हैं और यवन, म्लेच्छ आदिके साथ खाने-पीनेवाले भी शूद्रोंके समान हैं।

समाधान—इस चौथे कालमें हुंडावसर्पिणी कालके दोषसे श्रीपुष्पदन्त तीर्थङ्करके समयसे लेकर श्री शांतिनाथ तीर्थङ्करके समय तक क्रमसे बढ़ता हुआ और घटता हुआ विच्छेद रहा था। सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है—

पल्लतुरियादि चय पल्लंतचउत्थूण पादपरकालं।
ण हि सद्धम्मो सुविधीदु सांतअन्ते सगंतरए ॥ ८१४ ॥

अर्थ—श्रीपुष्पदन्त और शीतलनाथके बीचमें पाव पल्यका विच्छेद रहा। शीतलनाथ और श्रेयांसनाथके बीचमें आधा पल्यका विच्छेद रहा। श्रेयांसनाथ और वासुपूज्यके मध्यमें पौन पल्य तक धर्मका विच्छेद रहा। श्रीवासुपूज्य और विमलनाथके मध्यमें एक पल्यका विच्छेद रहा। श्रीविमलनाथ और अनन्तनाथके मध्यमें पौन पल्य तक धर्मका विच्छेद रहा। अनन्तनाथ और धर्मनाथके मध्यमें आधे पल्य तक धर्मका विच्छेद रहा। तथा धर्मनाथ और शान्तिनाथके मध्यमें पाव पल्य तक धर्मका विच्छेद रहा। इस प्रकार विच्छेदका काल पावपल्यसे लेकर एक पल्य तक बढ़ता गया और फिर घटता हुआ पावपल्य तक रहा उसका यन्त्र इस प्रकार है—

जिन तीर्थङ्करोंके समयमें धर्मका विच्छेद रहा	जितने समय तक विच्छेद रहा
पुष्पदन्त	पावपल्य
शीतलनाथ	आधापल्य
श्रेयांसनाथ	पौनपल्य
वासुपूज्य	एकपल्य
विमलनाथ	पौनपल्य
अनंतनाथ	आधा पल्य
धर्मनाथ	पावपल्य

२३६—चर्चा दोसौ उन्तालीसवीं

प्रश्न—तीर्थङ्कर भगवान गृहस्थाश्रममें जन्मदिनसे लेकर दीक्षा समय तक जो वस्त्राभरण पहनते हैं सो देवोपनीत (देवोंके यहांसे आये हुए) पहनते हैं। सो वे वस्त्राभरण कहांसे आते हैं और उन्हें कौन लाता है?

समाधान—सौधर्म और ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्गोंके युगलोंमें जो मानस्तम्भ हैं उसपर कावड़के आकारके संकलसे लटकते हुए दो-दो पिटारे हैं। उन पिटारोंमें तीर्थङ्करोंके पहननेके वस्त्राभरण रहते हैं। वहाँसे वे वस्त्र, आभरण भगवानके पास पहुँचाये जाते हैं और वे भगवान उनको धारण करते हैं।

उसमें भी इतना विशेष है कि सौधर्म स्वर्गके मानस्तम्भके पिटारेके वस्त्राभरण तो पाँचों मेरुसम्बन्धी पाँचों भरतक्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए तीर्थङ्करोंको पहुँचाये जाते हैं। ईशान स्वर्गके मानस्तम्भके पिटारेके वस्त्राभरण पाँचों मेरुसम्बन्धी ऐरावत क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंको पहुँचाये जाते हैं। सनत्कुमार स्वर्गके मानस्तम्भके पिटारेके वस्त्राभरण पूर्वविदेहोंमें उत्पन्न हुए तीर्थङ्करोंको पहुँचाये जाते हैं। माहेन्द्र स्वर्गके मानस्तम्भके पिटारेके वस्त्राभरण पश्चिम विदेहोंमें उत्पन्न हुए तीर्थङ्करोंके यहाँ पहुँचाये जाते हैं। उन पिटारोंकी रक्षा देवियाँ करती हैं और वे ही उन वस्त्राभरणोंको पहुंचाती हैं। उनकी ऊँचाई आदिका वर्णन अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये। यहाँ संक्षेपसे कहा है सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है—

चिट्ठंति तत्थ गोरुदचउत्थवित्थार कोसदीहजुदा।
तित्थयराभरणचिदा करंडया रयणसिक्कधिया ॥ ५२० ॥
तुरियजुदविजुदछज्जोयणाणि उवरिं अधोवि ण करंडा।
सोहम्मदुगे भरहेरावदतित्थयरपडिबद्धा ॥ ५२१ ॥
साणक्कुमारजुगले पुव्ववरविदेहतित्थयरभूसा। टविदच्चिदा सुरेहिं कोडीपरिणाहि बारंसो ॥

२४०–चर्चा दोसौ चालीसवीं

प्रश्न—इस समयके जिनाम्नायी भोजनके समय वस्त्रोंको उतारकर नग्न होकर भोजनपान करते हैं सो इसका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—षट्पाहुड़में लिखा है—

णिचेलपाणिपत्तं उवइट्ठपरमजिणवरिंदेहिं। इक्कोवि मोक्खमग्गो सेसाय अणग्गया सव्वे ॥

अर्थ—भगवान अरहंतदेवने उत्कृष्ट मोक्षमार्ग वस्त्ररहित नग्नरूप ही बतलाया है। इससे सिद्ध होता

है कि मोक्षमार्ग नग्नरूप है। जो जिनाश्रमी व्रती होकर भी नग्न नहीं रह सकते वे भोजनके समय नग्न होकर भोजन करते हैं और पाणिपात्रमें भोजन करते हैं। यही अभिप्राय है।

२४१–चर्चा दोसौ इकतालीसवीं

प्रश्न—ज्ञान पांच हैं–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इनमेंसे किसी एक जीवके एक ही समयमें अधिकसे अधिक कितने ज्ञान हो सकते हैं। सब हो सकते हैं या नहीं।

समाधान—किसी एक जीवके एक ही समयमें अधिकसे अधिक चार ज्ञान तक होते हैं, पाँचों ज्ञान एक साथ नहीं होते। यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा। केवलज्ञानके साथ और कोई ज्ञान नहीं होता। इसका भी कारण यह है कि केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है। ज्ञानावरणका अत्यंत क्षय हो जानेपर क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं हो सकते क्योंकि क्षायोपशमिक चारों ज्ञानोंमें देशघाती कर्मोंके उदयकी अपेक्षा रहती है। केवलज्ञान समस्त ज्ञानावरण कर्मके नाश होनेसे होता है। इसीलिये वह अकेला होता है। यदि दो ज्ञान होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान होंगे। यदि तीन होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्ययज्ञान ये तीन ज्ञान होंगे। यदि चार होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान होंगे सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः। –अ० २ सूत्र ४३

२४२–चर्चा दोसौ बियालीसवीं

प्रश्न—चतुर्णिकाय देवोंके मैथुन किस प्रकार होता है। किसके समान होता है। सबके समानरूपसे होता है या अलग-अलग रूप से।

समाधान—मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

कायप्रवीचारा आ ऐशानात्। –अ० ४ सूत्र ७

१. साधुओंकी दीक्षा लेकर भी जो नग्न नहीं रहते वे वास्तवमें साधु नहीं हैं। ऐसे लोगोंको भोजनके समय भी नग्न होना व्यर्थ है। उन्हें चाहिये कि वे सातवीं या सातवीं प्रतिमासे ऊपरकी दीक्षा लेवें जिससे उन्हें यह मायाचारी न करनी पड़े।

अर्थात् भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ऐशान स्वर्गोंके देवोंके मनुष्योंके समान शरीरसे प्रवीचार होता है। स्त्री पुरुषोंके परस्पर मैथुन सेवनको प्रवीचार कहते हैं। सो ऊपर लिखे देवोंके तो मनुष्यों-के समान शरीरसे प्रवीचार होता है। तथा आगेके स्वर्गोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे प्रवीचार होता है। जैसा कि मोक्षशास्त्रमें लिखा है---

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः। —अ० ४ सूत्र ८

अर्थात् बाकीके स्वर्गोंमें स्पर्श, रूप, शब्द और मनसे प्रवीचार होता है। इसका भी अभिप्राय यह है कि सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके देव अपनी-अपनी देवांगनाओंके शरीरका स्पर्श वा आलिंगन आदि करनेमात्रसे ही संतुष्ट हो जाते हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट स्वर्गके देव अपनी-अपनी देवांगनाओंका रूप देखकर ही संतुष्ट हो जाते हैं। शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार स्वर्गोंके देव अपनी-अपनी देवांगनाओंके शब्द वा उनके आभूषणादिकोंके शब्द सुनकर ही संतोषको प्राप्त हो जाते हैं। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत स्वर्गके देव अपनी-अपनी देवांगनाओंको चिंतवन करने मात्रसे संतुष्ट हो जाते हैं। जिसप्रकार देव संतुष्ट होते हैं उसी प्रकार देवियां भी अपने-अपने स्वामीको देखने, उनके शब्द सुनने वा उनको चिंतवन करने मात्रसे संतुष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार सोलह स्वर्गोंका प्रवीचार बतलाया। आगे सोलह स्वर्गोंसे ऊपर प्रवीचार किस प्रकार है सो मोक्ष-शास्त्रमें इसप्रकार लिखा है—

परेऽप्रवीचाराः। —अ० ४ सूत्र ९

अर्थात् सोलह स्वर्गोंसे ऊपर नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांचों पंचोत्तरोंके देव प्रवीचार रहित हैं उनके तज्जन्य वेदना नहीं होती इसलिये वे देव सबसे अधिक सुखी गिने जाते हैं ऐसा नियम है।

२४३—चर्चा दोसौ तैंतालीसवीं

प्रश्न—यदि किसी मुनिके फोड़ा वा घाव हो जाय तो भक्त श्रावकजन उसको अच्छा करनेके लिए किसी शस्त्रके द्वारा उसको चीर-फाड़ कर सकते हैं या नहीं। चीर-फाड़ करनेसे उनको अधिक वेदना होगी सो करनी चाहिये या नहीं।

समाधान—किसी फोड़े वा घावको किसी शस्त्रसे चीरा देनेमें निर्दय भाव नहीं होते किन्तु उसको

अच्छा करनेके दयारूप परिणाम होते हैं इसलिए उसमें पापबंध नहीं है किन्तु पुण्यबन्ध ही होता है। क्योंकि करनेवालेके दयारूप परिणाम हैं, कोमलभाव हैं और उस घाव, फोड़ेको अच्छा करनेका उपाय मात्र करता है। उसके हृदयमें दुःख देनेका किंचित् भाव भी नहीं है। इसलिए किसी घाव या फोड़ेको अच्छा करनेके लिये शस्त्रसे चीर-फाड़ करना भी योग्य ही है। उसमें पापका बंध नहीं होता। सो ही मोक्ष-शास्त्रकी श्रुतसागरी टीकामें लिखा है—

न दुःखं न सुखं यद्वच्छेतुरिष्टचिकित्सते। चिकित्सारं तु रुजस्य स्याद्दुःखमथवा सुखम्॥

अर्थात्—चिकित्सा वा उपाय (इलाज) करनेसे सुख देने अथवा दुःख देनेका अभिप्राय नहीं होता किन्तु उस व्याधिको दूर करनेका अभिप्राय रहता है। फिर चिकित्सा करते समय उस रोगीको चाहे सुख हो वा दुःख हो।

प्रश्न—यदि उपाय करते हुए उसकी वेदनासे मुनिका मरण हो जाय तब तो पापका बंध होगा ?

उत्तर—नहीं, तब भी पापका बंध नहीं हो सकता क्योंकि उस उपायसे उस व्याधिको दूर करनेका अभिप्राय है उनको दुःख देने वा मारनेका अभिप्राय नहीं है। जहां मारने वा दुःख देनेका अभिप्राय होता है वहां हिंसा न होने पर भी पापका बंध होता है। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है—

हिंसाफलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे। इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसाफलं नान्यत्॥

अर्थात् कोई अहिंसा हिंसाका फल देती है और कोई हिंसाका फल देती है।

२४४–चर्चा दोसौ चवालीसवीं

चार्वाकमतवाला कहता है कि आत्मा कोई पदार्थ नहीं है। यदि आत्मा होता तो दिखाई पड़ता परंतु आत्मा कोई पदार्थ है नहीं, इसलिए दिखाई भी नहीं पड़ता। यदि कहा जाय कि जन्म-मरण होनेसे आत्मा मानना पड़ता है सो ठीक नहीं है। क्योंकि जन्म-मरण करने पर भी आज तक आत्मा किसीको दिखाई नहीं पड़ा है इसलिये मोक्ष मानना और मोक्षका उपाय करना व्यर्थ है।

प्रश्न—सांख्यमतवाला कहता है कि आत्मा तो है पर वह सदा मुक्त है। जो सदा मुक्त है उसके फिर मोक्षकी प्राप्ति मानना वा मुक्त होनेका उपाय करना सब व्यर्थ है। इस प्रकार लोग मानते हैं सो क्या ठीक है ?

समाधान—ये ऊपर लिखे हुए दोनों ही श्रद्धान ठीक नहीं हैं। यदि आत्मा कोई पदार्थ न होता तो जाति-स्मरण ज्ञानके द्वारा पहले जन्मकी पर्यायको तथा उसकी समस्त दशाको यह जीव किस प्रकार जान लेता है अथवा किस प्रकार देख लेता है। यदि आत्मा कोई पदार्थ न होता तो भूत-प्रेत आदिक नीच देव अपने पूर्व जन्मकी सब बातें किस प्रकार बतला देते हैं। ये दोनों ही बातें संसारमें देखी जाती हैं और उससे लोग पूर्व जन्मका विश्वास करते हैं इसलिए चार्वाकका कहना सब व्यर्थ और भ्रमरूप है। क्योंकि यह आत्मा अनादिकालसे कर्मबंधसे बँधा हुआ चला आ रहा है। उस कर्मबंधसे ही नवीन कर्मोंका आस्रव करता है। वह आस्रव इसके क्रोधादिक कषायोंसे होता है। क्रोधादिक कषाय प्रमादसे उत्पन्न होते हैं। प्रमाद हिंसादिक महापापोंसे होता है। हिंसादिक अव्रतरूप महापाप मिथ्यात्वसे पुष्ट होते हैं और मिथ्यात्वसे यह आत्मा सदा मलिन रहता है। वह मलिन आत्मा काललब्धि पाकर एक मनुष्यभवमें सम्यग्दर्शन व्रत स्वपर विवेक और निष्कषायताके योगसे कर्मोंका नाश करता हुआ मुक्त होता है। यदि आत्मा न होता तो अहङ्कार वा ममत्व आदि किसको होता? इससे सिद्ध होता है कि आत्मा है इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। 'आत्मा नहीं है' यह कहना सर्वथा व्यर्थ है।

यदि तू आत्माका अभाव मानता है सो यह मानना भी आत्माके बिना जड़ पदार्थके कैसे हो सकता है। यह मानना वा समझना आत्माका ही लक्षण है। क्योंकि ऐसा ज्ञान चैतन्यरूप आत्माके बिना जड़ पदार्थमें कभी नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि तू आत्माका अभाव कहनेवाला कौन है। जड़ है या चैतन्य है। यदि तू चैतन्य है तो आत्मा स्वतः सिद्ध हो गया, और यदि तू जड़ है तो जड़को ऐसा ज्ञान हो नहीं सकता। इसलिये आत्माका अभाव कहना सरासर मिथ्या है। तथा इस प्रकार मिथ्या भाषण करनेसे आत्माका कभी कल्याण नहीं हो सकता।

सांख्य आत्माको सदा मुक्त मानता है। यदि यह आत्मा सदा मुक्त होता तो चारों गतियोंकी चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण क्यों करता? वहांके दुःख वा सुख क्यों भोगता? और ऊँच-नीच अवस्था किस प्रकार धारण करता? इससे मानना पड़ता है कि सम्यग्दर्शनके बिना आत्मा सदा अशुद्ध है। सम्यग्दर्शनके होने पर इसकी शुद्धता होती है। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। आत्माको सदा मुक्त मानना सर्वथा मिथ्या है। सो ही आत्मानुशासनमें लिखा है—

अस्त्यात्मास्तमितादिबंधनगतस्तद्बंधनान्यास्रवै-
स्तेक्रोधादिकृताः प्रमादजनिताः क्रोधादयस्तेऽव्रतात् ।
मिथ्यात्वोपचितात् स एव समलः कालादिलब्धौ क्वचित्,
सम्यक्त्वव्रतदक्षता कलुषता योगैः क्रमान्मुच्यते ॥ २४१ ॥

२४५–चर्चा दोसौ पैंतालीसवीं

प्रश्न—मोक्षशास्त्रमें लिखा है–'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' तत्त्वोंके द्वारा निश्चय किये हुए पदार्थोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । फिर लिखा है–'तन्निसर्गादधिगमाद्वा" वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है । इस प्रकार मोक्षशास्त्रमें लिखा है । सो क्या सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके कारण ये दो ही हैं या इसके उत्पन्न होनेके और भी कोई कारण हैं ।

समाधान—सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके लिये ऊपर लिखे दो कारण तो हैं ही परन्तु इनके सिवाय शास्त्रोंमें सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके लिए दस कारण और बतलाये हैं । आगे उन्हींको बतलाते हैं ।

आज्ञा १, मार्ग २, उपदेश ३, सूत्र ४, बीज ५, संक्षेप ६, विस्तार ७, अर्थ ८, गाढ़ ९, परमावगाढ़ १० । इस प्रकार अलग-अलग कारणोंसे उत्पन्न होनेसे सम्यग्दर्शनके दस भेद हो जाते हैं । जो शास्त्रोंके बिना पढ़े ही वीतरागकी वाणी सुनकर श्रद्धान करना सो आज्ञा सम्यग्दर्शन है ॥ १ ॥ ग्रन्थोंको विस्तारपूर्वक सुने बिना ही चौबीस प्रकारके परिग्रहको त्याग कर मोक्षमार्गका निर्ग्रन्थ पद धारण करना मार्ग सम्यग्दर्शन है ॥ २ ॥ त्रेसठ शलाकाके पुरुषोंके चरित्रोंको सुनकर सम्यग्दर्शन धारण करना उपदेश सम्यग्दर्शन है ॥ ३ ॥ मुनियोंके आचरणोंको प्रतिपादन करनेवाले चरणानुयोगको सुनकर सम्यग्दर्शन धारण करना सूत्र सम्यग्दर्शन है ॥ ४ ॥ करणानुयोगके द्वारा गणितके ज्ञानके कारण बीजोंसे पदार्थोंका श्रद्धान होना सो बीज सम्यग्दर्शन है ॥ ५ ॥ पदार्थोंका स्वरूप संक्षेपसे जानकर श्रद्धान करना सो संक्षेप सम्यग्दर्शन है ॥ ६ ॥ द्वादशांगको सुनकर रुचि वा श्रद्धान करना सो विस्तार सम्यग्दर्शन है ॥ ७ ॥ जो जिनागमके वचनके बिना ही किसी अर्थके निमित्तसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न होना सो अर्थ सम्यग्दर्शन है ॥ ८ ॥ अंग वा अंगबाह्य सहित जिनागमको जानकर

गाढ़रूप श्रद्धान होना गाढ़ सम्यग्दर्शन है ॥ ९ ॥ वही सम्यग्दर्शन जो अत्यन्त गाढ़ श्रद्धानरूप हो उसको परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन कहते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार कारण भेदसे सम्यग्दर्शनके दस भेद और हो जाते हैं। तथा ऊपर लिखे हुए निसर्गज और अधिगमज ये सम्यग्दर्शनके दो भेद भी इसीमें शामिल हो जाते हैं। सो ही श्री गुणभद्राचार्य विरचित आत्मानुशासनमें लिखा है—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्। विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढे च ॥

इन दसोंका विशेष वर्णन आत्मानुशासनसे जान लेना चाहिये। यहाँ बहुत संक्षेपसे लिखा है ।

२१६--चर्चा दोसौ छियालीसवीं

प्रश्न—धर्मध्यानके चार भेद हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। इनके सिवाय धर्मध्यानके और भी भेद कहे जाते हैं सो कौन-कौन हैं ?

समाधान—इस धर्मध्यानके दस भेद बतलाये हैं उनमें ऊपर लिखे चार भेद भी शामिल हैं अर्थात् ऊपर लिखे चार भेदों सहित दस भेद हैं उनके नाम ये हैं। अपायविचय १, उपायविचय २, जीवविचय ३, अजीवविचय ४, विपाकविचय ५, वैराग्यविचय ६, भवविचय ७, संस्थानविचय ८, आज्ञाविचय ९ और हेतुविचय १० ये दस भेद हैं।

कर्मोंके नाश होनेके कौन-कौन कारण हैं, किस-किस उपायसे कर्म नष्ट होते हैं। इस प्रकार चिंतवन करना तथा कर्मबंधके कारण रागादिक भावोंसे अरुचि करना और मेरे वीतराग भावोंकी प्राप्ति कब हो इस प्रकार वीतराग भावोंका चिंतवन करना अपायविचय है ॥ १ ॥ राग-द्वेषसे रहित वीतरागमय पवित्र भाव या ज्ञान, वैराग्य आदि जो-जो मोक्षके कारण हैं वे मेरे कब प्राप्त होंगे। किस प्रकार प्राप्त होंगे इस प्रकार निरन्तर चिंतवन करना उपायविचय है ॥ २ ॥ यह जीव द्रव्यार्थिक नयसे अनादिनिधन तथा ध्रुवरूप है और पर्यायार्थिक नयसे उत्पादव्ययरूप है, वा उपयोगरूप है इस प्रकार जीवके स्वरूपका चिंतवन करना सो जीवविचय है ॥ ३ ॥ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पाँच द्रव्य अजीव हैं। इनके स्वरूपका चिंतवन करना अजीवविचय है ॥ ४ ॥ शुभ-अशुभ कर्मोंके उदयका वा उनके सुख-दुःखरूप फलोंका चिंतवन सो विपाकविचय है ॥ ५ ॥ संसार शरीर इन्द्रिय भोग आदिसे उदास वा विरक्त होना, इनको दुःखका कारण

चिंतवन करना वैराग्यविचय है ॥ ६ ॥ चारों गतियोंमें होनेवाले दुःखोंका चिंतवन करना तथा इस संसारको त्याग करनेका चिंतवन करना संसारसे भयभीत होना भवविचय है ॥ ७ ॥ लोक और अलोकके स्वरूपका चिंतवन करना संस्थानविचय है ॥ ८ ॥ सर्वज्ञदेवकी आज्ञाकी प्रमाणताका चिंतवन करना आज्ञाविचय है ॥ ९ ॥ स्याद्वादका आश्रय लेकर युक्तिके अनुसार नित्य-अनित्य, अस्तित्व-नास्तित्व आदिका विचार करना सो हेतु-विचय है ॥ १० ॥ इस प्रकार दस प्रकारके धर्मध्यानोंका स्वरूप है । सो ही सारचतुर्विंशतिकामें लिखा है—

भ्रमतां च भवेऽनादौ स्वात्मनां वान्यदेहिनाम् । कर्मशृंखलबद्धानां कदापायो भविष्यति ॥
कर्मणां तपसा दृग्ज्ञानव्रतादिकदम्बकैः । इति यश्चिंत्यते भव्यैरपायविचयं हि तत् ॥६॥
मनोवाक्काययोगाः स्युः केनोपायेन मे शुभाः । कर्माश्रवनिरोधो निर्जरा मुक्तिश्च जायते ॥७॥
ध्यानेन तपसा वात्र दृग्विशुद्ध्यादिनेति यः । सङ्कल्पः क्रियते दक्षैः ध्यानं तस्यादृद्वितीयकम् ॥
उपयोगमयो जीवोऽनाद्यनन्तो गुणी महान् । असंख्यातप्रदेशो निश्चयाच्च व्यवहारतः ॥८॥
शुभाशुभविधेर्भोक्ता कर्ता कायसमोऽसुखी । अनादिकर्मबद्धो हि मोक्षगामी हि तत्क्षयात् ॥
इत्यादिचिंतनं यत्र जीवस्य क्रियते बुधैः । गुणस्थानभवात्सिद्ध्यै सजीवविचयं खु तत् ॥११
अजीवपंचद्रव्याणां चिन्तनं यद्विधीयते । गुणपर्यायकर्माद्यैरजीवविचयं हि तत् ॥१२॥
अष्टधाकर्मणां यत्र विपाकः चिंत्यते पृथक् । सुखदुःखकरो नित्यं प्रतिक्षणसमुद्गतः ॥१३॥
अनंतभेदभिन्नो हि तत्क्षयाय मुमुक्षुभिः । तीव्रमंदस्वभावादिर्विपाकविचयो हि सः ॥१४॥
स्वदेहभोगभवादि सर्ववस्तुषु शर्मसु । विधीयते विरक्तिर्या विरागविचयोऽत्र सः ॥१५॥
चतुरशीतिलक्षेषु जीवयोनिषु देहिनाम् । अनादिभ्रमणं दुःखं पूर्णयत् कर्मणां शुभम् ॥१६॥
जन्ममृत्युजरालीनं पराधीनं विचिन्त्यते । प्रत्यहं तत्तु भवं ध्यानं भवादिविचयान्तिकम् ॥१७
याः समस्ता अनुप्रेक्षाः चिंत्यते हृदि संयतैः । एकचित्तेन तद् ध्यानं संस्थानविचयाह्वयम् ॥
प्रमाणीकृत्य तीर्थेशवाक्याज्ञा सरलागमे । सर्वज्ञगोचरे सूक्ष्मपदार्थादौ च निश्चयः ॥१९॥
क्रियते द्रव्ययाथात्म्यं योजनाद्भिर्महद्घनम् । तदाज्ञाविचयं ध्यानं प्रणीतं सर्वदर्शिभिः ॥२०

पूर्वापराविरोधेन प्रमाणनयवेदिभिः। स्याद्वादेन परीक्षानुचिन्तनं क्रियते बुधैः ॥२१॥
जिनसूत्रगुणानां च तर्कशास्त्रमतान्वितैः। मिथ्यात्वदोषवर्गाणां यद्धेतुविचयं हि तत्॥२२॥

इस प्रकार इनका स्वरूप है। ऐसा ही कथन ज्ञानार्णव तथा बृहद्हरिवंशपुराण आदि ग्रन्थोंमें लिखा है वहाँसे जान लेना चाहिये।

२४७–चर्चा दोसौ सैंतालीसवीं

प्रश्न—धर्मध्यानके ऊपर लिखे दस भेद तो जाने परन्तु पिंडस्थ पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ये ध्यानके चार भेद और हैं सो कौनसे ध्यानके हैं।

समाधान—ये चारों ही धर्मध्यानके भेद हैं। तथा धर्मध्यानके संस्थानविचय नामके चौथे भेदमें अंतर्भूत हैं ऐसा ज्ञानार्णवकी टीकामें लिखा है।

अपने शरीरका तथा लोकका चिंतवन करना पिंडस्थ ध्यान है। पंच नमस्कार मन्त्र वा एक, दो, चार आदि अक्षरोंके मन्त्रोंको वाचिक, उपांशु वा मानसिकके भेदोंसे जप करना पदस्थ ध्यान है। अपनी आत्माको शरीरके समान अथवा समुद्घातके द्वारा लोकाकाशके समान चिंतवन करना अथवा छयालीस गुणोंसे सुशोभित केवली भगवानके स्वरूपके समान चिंतवन करना सो रूपस्थ ध्यान है तथा शुद्ध आत्माका स्वरूप, कर्मकलंकरहित, रूपादिक रहित, शुद्ध ज्ञान, दर्शनमय सिद्धोंके समान चिंतवन करना रूपातीत ध्यान है। इस प्रकार ये सब धर्मध्यानके भेद हैं।

२४८–चर्चा दोसौ अड़तालीसवीं

प्रश्न—ऊपर जो धर्मध्यानोंके भेद लिखे हैं वे किस-किस गुणस्थानमें होते हैं।

समाधान—यह सब प्रकारका धर्म्यध्यान मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, और सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व इन तीनों दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियोंको तथा अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकृतियोंका इस प्रकार सम्यग्दर्शनको घात करनेवाली सातों प्रकृतियोंको नाश करनेवाला है। तथा मोहनीयकी शेष बची हुई इक्कीस प्रकृतियोंको उपशम करनेका कारण है यह धर्म्यध्यान असंयत नामके चौथे गुणस्थानसे लेकर प्रमत्त-

संयत नामके छठे गुणस्थान तक तीन लेश्याओंके बलसे होता है। छठे गुणस्थानमें रहनेवाले मुनियोंके उत्कृष्ट धर्म्यध्यान होता है। चौथे गुणस्थानमें रहनेवाले अविरत सम्यग्दृष्टिके जघन्य होता है। तथा दूसरी प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक क्रमसे बढ़ता हुआ मध्यम होता है। सो ही सारचतुर्विंशतिकामें लिखा है—

सप्तप्रकृतिनिःशेषक्षयहेतुमिदं स्मृतम्। एकविंशतिमोहप्रकृतिनाशनकारणम् ॥२९॥
चतुर्थाद्यप्रमत्तान्त गुणस्थानेषु जायते। लेश्यात्रयबलाधानं धर्म्यध्यानं सुधीमताम् ॥३०॥
सर्वोत्कृष्टमिदं ध्यायेदप्रमत्तो मुनीश्वरः। सद्दृष्टिश्च जघन्यं वै मध्यमं बहुधा व्रती ॥३१॥

इस प्रकार इनका स्वरूप है।

२५९—चर्चा दोसौ उनचासवीं

प्रश्न—जो शुद्ध आत्मध्यानके वा शुद्धोपयोगके कारण हैं ऐसे अध्यात्मरूप जैनसिद्धांतोंके पढ़ने वा सुननेका अधिकार गृहस्थोंको है वा नहीं।

समाधान—ग्यारहवीं प्रतिमाको धारण करनेवाले उत्कृष्ट श्रावकको भी (क्षुल्लक वा ऐलकको भी) नीचे लिखी बातोंका अधिकार नहीं है। दिनमें प्रतिमायोग धारण करना, वीरचर्या धारण करना, त्रिकाल योगका नियम तथा सिद्धांतके रहस्यका पठन-पाठन इन सब बातोंका अधिकार देशव्रती श्रावकको नहीं है।

भावार्थ—मुनियोंके समान नग्न होकर दिनमें प्रतिमायोग धारण करना, मुनियोंके समान अकेला रहकर वीरचर्या धारण करना, नियम लेकर योग धारण करना अर्थात् मुनियोंके समान शीतकालमें नदी वा सरोवरके किनारे, वर्षा ऋतुमें वृक्षके नीचे और उष्णकालमें पर्वतके शिखर पर नियमपूर्वक योग धारण करना तथा सिद्धांत ग्रन्थोंके रहस्यका पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना आदिका अधिकार पांचवें गुणस्थानमें रहनेवाले देवव्रती श्रावकको नहीं है। सो ही श्रीवसुनन्दिसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

१. सातवें गुणस्थानके दो भेद हैं एक सातिशय दूसर निरतिशय। जहाँसे श्रेणी चढ़ता है, वहाँसे सातिशय अप्रमत्त कहलाता है। और श्रेणी चढ़नेसे पहले निरतिशय अप्रमत्त कहलाता है। जहाँसे श्रेणी चढ़ता है वहाँसे शुक्लध्यान आरम्भ हो जाता है। तथा श्रेणी चढ़नेसे पहिले सातवें गुणस्थानमें उत्कृष्ट धर्म्यध्यान है।

दिणपडिमवीरचरियातियालजोगे णियमेण ।
सिद्धांतरहस्साधयणं अहियारो णत्थि देसविरियाणं ॥

दूसरे श्रावकाचारमें लिखा है—

वीरचर्या च सूर्यप्रतिमात्रिकालयोगधारणं नियमश्च ।
सिद्धान्तरहस्यादिष्वध्ययनं नास्ति देशविरतानां ॥

धर्मामृतश्रावकाचारमें लिखा है—

श्रावको वीरचर्याहः प्रतिमातापनादिषु । स्यान्नाधिकारी सिद्धांतरहस्याध्ययनेऽपि वा ॥

धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकरश्रावकाचारमें भी लिखा है—

कृतकारितं परित्यज्य श्रावकाणां गृहे सुधीः । उदम्बुभिक्षया भुक्तिं चैकवारं समुक्तितः ॥१॥
त्रिकालयोगनियमो वीरचर्या च सर्वथा । सिद्धांताध्ययनं सूर्यप्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥२॥

प्रश्न—गृहस्थोंको सिद्धांत ग्रन्थोंके अध्ययन करनेका निषेध लिखा है । उसके सुनने वा वाचनेका निषेध नहीं लिखा है—

समाधान—सुनना वा वाचना अध्ययनसे जुदा नहीं है । सबका एक ही अर्थ है । कोई सामान्य है कोई विशेष है । परन्तु हैं सब समान । यदि सुननेको, वाचनेको अध्ययनसे जुदा माना जाय तो भी इन्द्रनन्दि सिद्धांतीने नीतिसारमें लिखा है—

आर्यिकाणां गृहस्थानां शिष्याणामल्पमेधसाम् । न वाचनीयं पुरतः सिद्धांताचारपुस्तकम् ॥

अर्थ—अर्जिकाओंके सामने, गृहस्थोंके सामने और अल्पबुद्धिको धारण करनेवाले शैक्ष्य मुनियोंके सामने सिद्धांताचारके शास्त्र नहीं वाचने चाहिए । इस प्रकार लिखा है । इसलिए इस समय गृहस्थोंको सिद्धांत ग्रन्थोंका स्वाध्याय नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न—श्रावकोंको सिद्धांत ग्रन्थोंके पठन-पाठनका निषेध किया वीरचर्या प्रतिमायोग आदिका निषेध किया तो फिर श्रावकोंको करना क्या चाहिए ?

समाधान—सत्पात्रोंको दान देना और श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना ये दो ही धर्म श्रावकोंको मुख्य धर्म बतलाए हैं। इसका भी अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन पूर्वक अहिंसादिक पाँचों अणुव्रतोंको तथा गुणव्रत शिक्षाव्रतोंको धारण करनेवाले पाँचवें गुणस्थानवर्ती गृहस्थोंको श्रावक कहते हैं। तथा दर्शनप्रतिमाको पालन-करनेवाले चौथे गुणस्थानोंमें रहनेवाले गृहस्थोंको अश्रावक (ईषत् श्रावक-श्रावकोंके समान) कहते हैं। श्रावक-अश्रावक दोनोंका मुख्य धर्म सत्पात्रोंके लिये दान देना तथा देव-शास्त्र-गुरुकी पूजा करना है। इन्हीं श्रावक वा अश्रावकोंके लिये वीर्यचर्या प्रतिमायोग और सिद्धान्तके पठन-पाठनका निषेध किया है। इसीप्रकार ध्यान धारण करना और सिद्धान्तके रहस्योंका अध्ययन करना मुनियोंका मुख्य धर्म है। पूजा और दानके बिना गृहस्थोंका धर्म नहीं है और ध्यान अध्ययनके बिना मुनियोंका धर्म नहीं है। यही इसका तात्पर्य है सो ही श्री कुन्दकुन्द आचार्यने लिखा है—

दाणंपूआ मुक्खं सावयधम्मं असावगो तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं जइधम्मं तं विणा तहा सोवि॥

कितने ही लोग सिद्धान्तशास्त्रोंका पठन-पाठन करते हैं। उनको कालशुद्धि तथा अक्षर मात्रा स्वरसंधि आदिका भी ज्ञान नहीं होता तथा योग्य-अयोग्यका भी विचार नहीं होता। परन्तु केवल बड़े बननेके लिये, महन्त बननेके लिये उसका अध्ययन करते हैं। सो वे शास्त्रोंके वचनोंसे विरुद्ध चलते हैं। अपनी पद्धति पद और योग्यताके अनुसार चलना योग्य है। केवल झूठी प्रतिष्ठा बढ़ानेमें कुछ सिद्धि नहीं होती।

प्रश्न—इस समयमें जो सिद्धान्त ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनके पठन-पाठनका निषेध नहीं है। गृहस्थोंके न बाचने योग्य सिद्धान्तग्रन्थ तो और ही हैं। जो इस समय उपलब्ध नहीं हैं। वे मुनियोंके ही पढ़ने योग्य हैं और इनसे जुदे हैं। जैसे एक अक्षरके संयोगी, दो अक्षरके संयोगी, तीन अक्षरोंके संयोगी इसी प्रकार चौसठ अक्षर तकके संयोगी अक्षरोंके जो पद हैं उनका निषेध किया है?

समाधान—ऊपर लिखे प्रश्नमें जो एक, दो, चार आदि चौसठ अक्षरोंके संयोगी अक्षरोंके बने हुए पदोंको सिद्धान्त ग्रन्थ बतलाया है सो उनका उच्चारण तो ऋद्धिधारी मुनि ही कर सकते हैं बिना ऋद्धिधारी मुनियोंके अन्य साधारण मुनियोंसे भी उनका उच्चारण नहीं हो सकता। फिर गृहस्थकी तो बात ही क्या है।

जो आचारांगादिक द्वादशांगके पाठी हैं वे ही उसके उच्चारण करनेमें समर्थ हैं उनके उच्चारण करनेकी शक्ति और किसीमें नहीं है। ऐसे सिद्धान्त ग्रन्थ तो चौथे कालमें थे (वा भद्रबाहु श्रुतकेवली तक रहे) इस समयमें पंचमकालमें उनका अभाव हो है इस समयमें जो सिद्धान्त ग्रन्थ मिलते हैं उन्हींका बहुतपर निषेध किया है।

२५०–चर्चा दोसौ पचासवीं

प्रश्न—यदि गृहस्थ सिद्धान्त शास्त्रोंका अध्ययन न करे तो उसको आत्मध्यानकी सिद्धि और अनेक गुणोंकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। इसलिये यह बात कुछ समझमें नहीं आती। यदि सिद्धान्त ग्रंथोंका अध्ययन न किया जायगा तो शुद्धोपयोगमय आत्मज्ञान तथा ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती। गृहस्थका धर्म शुद्ध सुवर्णके समान शुद्धोपयोगमय है। यही मोक्षका कारण है। जो स्वर्गका कारण हो वह तो बन्धरूप है इसलिये वह कार्यकारी नहीं हो सकता। हम तो अध्यात्ममार्ग पर चलनेवाले हैं इसलिये हमें व्यवहार धर्म प्रिय नहीं है। हम तो आत्मज्ञानी हैं इसलिये एक शुद्धोपयोग मय चर्चा ग्रन्थोंको प्रमाण मानते हैं। व्यवहार रूप पुराणादिकके वचनोंकी श्रद्धा गौणरूपसे करते हैं। सो इसमें क्या हानि है ?

समाधान—इस प्रकार कहना जैनमार्गके विरुद्ध है। क्योंकि सिद्धांतशास्त्रोंको मुख्य मानना और पुराणादिकोंको गौण मानना यथार्थ श्रद्धानसे बाहर है क्योंकि सिद्धान्त ग्रंथ किसी अन्य आम्नायके अनुसार हो और पुराण ग्रन्थ किसी अन्य आम्नायके अनुसार हों सो तो है ही नहीं। सिद्धान्त और पुराण सब जिनागम है। भगवान अरहंतदेवकी दिव्यध्वनिके अनुसार ही गणधरादिक ऋद्धिधारी श्रुतकेवलियोंने तथा अंग पूर्वके पाठी आचार्योंकी रचना है। सो इसमें संदेह करना वा आचार्योंके वचनोंको उल्लंघन करना महादोष है सो ही पद्मनंदिपंचविंशतिकामें लिखा है।

संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्यचूड़ामणिः,
तद्वाचः परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिकाः।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तासां समालंबनं,
तत्पूजा जिनवाचि पूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः ॥६८॥

अर्थात्—इस पंचमकालमें साक्षात् केवली नहीं हैं। परन्तु उनकी वाणीको जाननेवाले और रत्नत्रय-को धारण करनेवाले आचार्य हैं सो उनकी पूजा करनी चाहिये। आचार्य वा उनकी वाणीकी पूजा करना साक्षात् केवलीकी पूजा करना है। इस प्रकार इसका अर्थ है जब आचार्योंकी पूजा साक्षात् केवलीकी पूजा कहलाती है तब आचार्योंके वचनोंका उल्लंघन करना साक्षात् केवली भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन करना है तथा केवली भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन करना सबसे बड़ा अविनय है। ऐसे लोगोंके लिये पद्मनन्दि पंच-विंशतिकामें विशेष रीतिसे लिखा है। यथा—

यः कल्पयेत् किमपि सर्वविदोपि वाचि संदिह्य तत्त्वमसमंजसमात्म्यबुद्ध्या।
खे पत्रिणां विचरतां सुदृशेक्षितानां संख्यां प्रति प्रविदधाति स वादमन्धः॥

अर्थ—जो मनुष्य सर्वज्ञके वचनोंमें संदेह कर केवल अपनी बुद्धिके बलसे तत्त्वोंका स्वरूप अन्यथा कल्पना करता है अर्थात् प्राचीन आचरणोंका लोपकर नवीन-नवीन कल्पना करता है वह पुरुष मानों अंधा होकर भी आकाशमें उड़ते हुये पक्षियोंके समूहकी गिनती करना चाहता है। भावार्थ—वह पुरुष समस्त कार्यों-को मिथ्या करता है।

प्रश्न—हमलोग केवलीके वचनोंमें संदेह नहीं करते उनमें तो हमारी गाढी श्रद्धा है।

उत्तर—यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आचार्योंके वचनोंमें संदेह होना अपने आप सिद्ध हो जाता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

प्रश्न—वर्तमान समयके बनाये हुये शास्त्रोंमें जो कथन है सो कहीं संदेह सहित है। इसलिये वह पूर्णरूपसे प्रमाण नहीं कहा जा सकता।

उत्तर—मालूम होता है कि आप लोगोंके पास चतुर्थकालके बने हुये ग्रन्थ भी होंगे तभी इस प्रकार कह रहे हो। परंतु चतुर्थ कालके ग्रन्थ दिखाई नहीं पड़ते। वर्तमानमें जो ग्रन्थ हैं सो सब मूलरूप इस पंचम-कालमें होनेवाले आचार्योंके बनाये हुये हैं और उनकी भाषा वचनिकायें आप लोगोंने की हैं सो आप लोगोंकी की हुई वचनिका तो प्रमाण और सत्य हैं परंतु आचार्योंके किये हुये मूल शास्त्रोंका श्रद्धान प्रमाणमें नहीं आता? णमोकार मंत्रके ध्यानको व्यवहारमयी मानकर उसमें गौणता धारण करना तथा अध्यात्मभाषोंको

शुद्धनयके द्वारा आत्मभावनायुक्त शुद्धोपयोगमय अवस्थाको "सोहं सोहं" इस प्रकारके जप और आत्मध्यान-को मुख्य मानना, शुद्धोपयोग रूप अवस्थाको कार्यकारी मानना और बाकी सब कार्योंको व्यवहार मानकर छोड़ते जाना इस प्रकार शुद्ध निश्चयरूप अवस्था मानना और परिग्रह भी रखना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है क्योंकि ज्ञानार्णवमें लिखा है कि गृहस्थोंके ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती। यथा

न प्रमादजयं कर्तुं धीधनैरपि पार्यते। महादुःखेन संकीर्णे गृहवासेऽतिनिंदिते॥
शक्यते न वशीकर्तुं गृहिभिश्चपलं मनः। अतश्चित्तप्रशांत्यर्थं सद्भिस्त्यक्तगृहस्थितिः॥

अर्थात्——यह गृहजाल अनेक संकटोंसे भरा हुआ है तथा अत्यंत निंदनीय है। इसमें रहते हुए भव्य-जीव बिना आत्मशुद्धिके प्राप्त हुए प्रमादको जीत नहीं सकते। तथा जबतक प्रमाद जीते नहीं जाते तबतक शुद्धोपयोग रूप भाव नहीं हो सकते। और जब शुद्धोपयोग रूप भाव नहीं हो सकते तबतक ध्यानकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है। इसके सिवाय गृहस्थ लोग अपने चंचल मनको वश नहीं कर सकते। इसलिये चित्तको शांत करनेके लिये वश करनेके लिये सबसे पहले गृहवास छोड़ देना चाहिये। गृहवासके छोड़ देनेसे ही ध्यानकी सिद्धि हो सकती है। सो ही लिखा है——

प्रतिक्षणं द्वन्द्वशतार्तचेतसां, नृणां दुराशाग्रहपीडितात्मनाम्।
नितंविनीनां लोचनचारुसंकटे, गृहाश्रमे नश्यति स्वात्मनो हितम्॥ ४॥

अर्थ——इस गृहस्थाश्रममें रहनेवाले लोगोंका हृदय क्षण-क्षणमें होनेवाले सैकड़ों आर्त्त वा दुःखोंसे वा उपद्रवोंसे भरा हुआ रहता है तथा उनका आत्मा खोटी आशारूपी पिशाचिनीसे पीड़ित रहता है। इसके सिवाय वह गृहस्थ स्त्रियोंके नेत्रोंकी चंचलता रूपी संकटमें सदा पड़ा रहता है इसलिये ऐसे गृहस्थके आत्माका हित कभी नहीं हो सकता। और भी लिखा है——

निरन्तरार्तानलदाहदुर्गमे, कुवासनाध्वान्तविलुप्तलोचने।
अनेकचिन्ताज्वरजीर्णितात्मनां, नृणां गृहे नात्महितं प्रसिद्ध्यति॥

अर्थ——गृहस्थमें रहनेवाले लोग आर्त्त, रौद्र ध्यानरूपी दुर्गम अग्निसे सदा जलते रहते हैं तथा बुरी

वासनारूपी महा अंधकारसे उनके नेत्र सदा बंद रहते है और अनेक चिंता रूपी ज्वरसे जिनका आत्मा सदा संतप्त रहता है ऐसे घरमें रहनेवाले गृहस्थोंके आत्महितकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है अर्थात् कभी नहीं हो सकती ।

यदि किसीके घरमें अग्नि लग जाती है तो वह अपने धन आदिको लेकर वहांसे निकलनेका विचार करता है । परंतु प्रथम तो वहांसे उसका निकलना कठिन हो जाता है । यद्यपि दैवके अत्यंत अनुकूल होनेपर निकलना कुछ कठिन और आश्चर्य करनेवाला नहीं है तथापि यदि चारों ओर दुर्गम अग्नि लग रही हो तथा निकलनेका कोई मार्ग न हो, निकलनेवाला अंधा हो और ज्वरसे अत्यंत पीड़ित हो तो वह अपना धन किस प्रकार उठा सकता है और किस प्रकार वहांसे निकल सकता है । अर्थात् ऐसा पुरुष वहांसे न तो निकल सकता है और न अपने धनकी रक्षा कर सकता है उसी प्रकार गृहस्थ भी आर्त्त, रौद्र, चिंता आदिसे अत्यंत दुखी रहता है इसलिये वह अपना हित कभी नहीं कर सकता । न शुद्ध ध्यान वा शुद्ध आत्माकी प्राप्ति कर सकता है । जो लोग अपने मनमें जबर्दस्ती मान लेते हैं वे केवल कहनेके लिये ही मान लेते हैं उनके शुद्ध ध्यान वा शुद्ध आत्माकी सिद्धि कभी नहीं होती । ऐसे गृहस्थोंके लिये आगे और भी लिखा है--

विपन्महापंकनिमग्नबुद्धयः, प्ररूढरागज्वरयंत्रपीडिताः ।
परिग्रहव्यालविषाग्निमूर्च्छिताः, विवेकवीथ्यां गृहिणः स्खलत्यमी ॥

अर्थ—इन गृहस्थोंकी बुद्धि अनेक प्रकारकी विपत्तिरूपी महा कीचड़में डूबी रहती है । वे गृहस्थ राग-द्वेषरूपी ज्वरके यन्त्रसे सदा पीड़ित रहते हैं और परिग्रहरूपी सर्पोंके विषरूपी अग्निसे सदा मूर्च्छित रहते हैं इसीलिये वे गृहस्थ विवेकरूपी गलीमें चलते हुए सदा ठोकर खाकर गिरते रहते हैं । ठीक-ठीक तरहसे चल नहीं सकते । ऐसे गृहस्थोंके लिये और भी लिखा है—

हिताहितं विमूढात्मा स्वं शश्वद्वेष्टयेत्तराम्। अनेकारम्भजैः पापैः कोशकारकृमी यथा ॥६॥

अर्थ—जिस प्रकार रेशमका कीड़ा अपने आप जाल बनाकर उसमें घिर कर मर जाता है उसी प्रकार अपने हित और अहितको नहीं जाननेवाले गृहस्थ अनेक आरम्भोंसे उत्पन्न हुए पापोंसे अपने आप ही सदा घिर जाते हैं अर्थात् गृहस्थोंका आत्मा पापोंसे सदा लिप्त रहता है । भावार्थ—जिस प्रकार रेशमका कीड़ा अपने

आप जाल बाँधता है और उसमें फँसकर मर जाता है तथा जिस प्रकार मकड़ी जाल फैलाकर उसमें अपने आप मर जाती है। उसी प्रकार यह गृहस्थोंका आत्मा अनेक प्रकारके पापरूप आरम्भोंको करता हुआ कर्म-बंध करता रहता है। इसलिये उसके शुद्ध ध्यानकी सिद्धि कभी नहीं हो सकती।

यैर्जन्मशतेनापि रागाद्यरिपताकिनी। विना संयमशस्त्रेण न सद्भिरपि शक्यते॥

गृहस्थ लोग चाहे जितने बुद्धिमान् हों तथापि उनसे बिना संयमरूपी शस्त्रके सैकड़ों जन्मोंमें भी राग-द्वेषरूपी शत्रुओंकी सेना नहीं जीती जा सकती। भावार्थ—गृहस्थ अवस्थामें राग-द्वेषादिक जीते नहीं जा सकते। तथा बिना रागद्वेषोंको जीते आत्माका हित करनेवाला शुद्धोपयोगरूप ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती।

प्रचंडपवनैः प्रायश्चलन्तेऽचलभूभृतः। तत्रांगलादिभिः स्वान्तं निसर्गतरलं न किम्॥

अर्थ—जब कि प्रचंड पवनके द्वारा अचल पर्वत भी चलायमान हो जाते हैं तो फिर स्वभावसे ही चंचल मन स्त्रियोंके द्वारा क्यों नहीं चलायमान हो सकता अर्थात् गृहस्थोंका मन स्वभावसे ही चंचल होता है फिर उसको और चलायमान करनेके लिये स्त्रियाँ कारण हो जाती हैं इसलिये गृहस्थोंका मन निश्चल होना अत्यन्त कठिन है तथा जबतक मन निश्चल वा एकाग्र नहीं होता तबतक ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती।

खपुष्पमथवा शृंगं खरस्यापि प्रतीयते। न पुनः देशकालेऽपि ध्यानसिद्धिर्गृहाश्रमे॥ ६॥

अर्थ—यद्यपि आकाशपुष्प होता नहीं, गधेके सींग होते नहीं तथापि यदि इन दोनोंकी कल्पना की जाय तो हो सकती है परन्तु गृहस्थके किसी भी देशमें तथा किसी भी कालमें ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती। यदि कोई पुरुष जबर्दस्ती गृहस्थावस्थामें ध्यानकी सिद्धि मानता है तो उसके लिए श्रीशुभचन्द्राचार्यने ज्ञानार्णवमें ऊपर लिखा श्लोक लिखा है। इसके सिवाय इसी अभिप्रायको लिये हुए श्रीगुणभद्राचार्यने आत्मानुशासनमें लिखा है। यथा—

सर्वं धर्ममयं क्वचित्क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकं,
क्वाप्येतद्द्वयवत्करोति चरितं प्रज्ञाधनानामपि।
तस्मादेष तदन्धरज्जुवलनं स्नान गजस्याथवा,
मत्तोन्मत्तविचेष्टितं न हितो गेहाश्रमः सर्वथा॥ ४१॥

अर्थ—इस गृहस्थाश्रममें यह जीव कभी तो सामायिक, प्रतिक्रमण, व्रत, उपवास, यम, नियम आदि धर्ममयी क्रिया हो करता है। कभी स्त्रीसेवन आदि पाँचों पापोंका सेवन करता है। तथा कभी-कभी पूजा-प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा आदि पुण्य पाप रूप मिली हुई क्रियाएँ करता है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम बुद्धिमान लोगोंके लिये भी अन्धेकी रस्सीके समान है अथवा हाथीके स्नानके समान है अर्थात् जिस प्रकार अन्धा पुरुष रस्सी बटता जाता है और पीछे से गाय उसे खाती जाती है अथवा हाथी स्नान करनेके बाद भी मार्गकी धूलको वा कूड़े, कर्कटको सूड़से ले लेकर अपने सब शरीर पर डालकर शरीरको मैला कर लेता है उसी प्रकार यह गृहस्थाश्रम मद्योन्मत्त वा पागल पुरुषोंकी चेष्टाओंके समान है। इसमें आत्माका हित कभी नहीं हो सकता। यह जीवको कल्याणकारी नहीं हो सकता। इस प्रकार जो लोग गृहस्थाश्रममें भी शुद्धोपयोग अध्यात्मभाव तथा आत्मध्यानकी सिद्धि मानते हैं उनका समाधान किया।

यदि विचार किया जाय तो शुद्धोपयोगकी सिद्धि मुनिराजके भी आठवें गुणस्थानसे लेकर बारहवें गुणस्थान तक क्रमसे बढ़ती हुई होती है। तथा बारहवें गुणस्थानके अन्तमें पूर्ण होती है। छठे गुणस्थानमें भी शुभोपयोग है। छठे सातवेंमें यथासाध्य शुद्धोपयोग है। आत्मध्यानकी प्राप्ति नहीं है। जब छठे गुणस्थानमें भी यह हाल है तो फिर जिसके चौथे गुणस्थानका भी निश्चय नहीं है और अपनेको अध्यात्मी, आत्मध्यानी शुद्धोपयोगरूप मानता है उसके शुभोपयोग तो छूट जाता है और शुद्धोपयोगकी प्राप्ति नहीं होती इस प्रकार वह दोनोंसे च्युत हो जाता है। भावार्थ—ऐसा पुरुष देवपूजा आदि शुभोपयोगसे अपना भाव हटा लेता है और शुद्धोपयोगकी प्राप्ति होती नहीं। इस प्रकार वह शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनोंसे छूटकर अशुभोपयोगमें आ जाता है तथा अशुभोपयोग होनेसे उसके पाप बंध ही होता है इसलिये गृहस्थोंको शुद्धोपयोग बननेका अधिकार नहीं है। गृहस्थोंको तो अशुभोपयोगका त्याग कर देना चाहिये और शुभोपयोगरूप रहना चाहिये। यदि ऐसा न माना जायगा तो अणुव्रत, महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएँ, चतुर्विध संघ, पूजा, प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, व्रत, उपवास, सत्पात्रोंको दान देना, करुणा दान, जप, तप, यम, नियम आदि शुभोपयोगमय व्यवहार धर्म सब व्यर्थ हो जायगा। तथा इन सबके व्यर्थ होनेसे फिर शास्त्रोंका स्वाध्याय किस काममें आवेगा। परंतु ये सब क्रियाएँ व्यर्थ नहीं है सार्थक हैं सो ही तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें लिखा है—

याता यान्ति च यास्यंति ये भव्याः मुक्तिसंपदम् ।
आलंब्य व्यवहारं ते पूर्वं पश्चाच्च निश्चयम् ॥ १६ ॥
कारणेन विना कार्यं न स्यात्तेन विना नयम् ।
व्यवहारं कदोत्पत्तिर्निश्चयस्य न जायते ॥ १७ ॥
जिनागमे प्रतीतिः स्याज्जिनस्याचरणेऽपि च ।
निश्चयं व्यवहारं तन्नयं भज यथाविधि ॥ १८ ॥
व्यवहारं विना केचिन्नष्टाः केवलनिश्चयात् ।
निश्चयेन विना केचित् केवलव्यवहारतः ॥ १९ ॥
द्वाभ्यां हृग्भ्यां विना न स्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनम् ।
यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं चे स्याद्वादिभिः ॥ २० ॥
निश्चयं क्वचिदालम्ब्य व्यवहारं क्वचिन्नयम् ।
विधिना वर्तते प्राणी जिनवाणीविभूषितः ॥ २१ ॥

अर्थ—जो भव्य जीव पहले व्यवहार धर्मका आलंबन करते हैं तदनंतर निश्चयको ग्रहण करते हैं वे ही जीव मोक्ष जाते हैं ऐसे ही जीव मोक्ष गये हैं और ऐसे ही जायंगे । यह नियम है कि बिना कारणके कार्य-की उत्पत्ति नहीं होती । उसी प्रकार बिना व्यवहार धर्मके निश्चय धर्मकी उत्पत्ति नहीं होती । इसलिये भव्य जीवोंको जिनागमका श्रद्धान और जिनाचरणका पालन करना विधिपूर्वक निश्चय और व्यवहार दोनों नयोंसे होना चाहिये । केवल एकके सेवन करनेसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती । कहीं पर तो व्यवहारके बिना केवल निश्चय नयका एकांत पक्ष लेनेसे केवल निश्चय नयका पालन करनेसे कितने ही जीव नष्ट हो जाते हैं । कितने ही लोग बिना निश्चयके केवल व्यवहार नयके आश्रयसे नष्ट हो जाते हैं । तथा कितने ही लोग दोनों नयोंसे तथा सम्यग्दर्शनसे रहित होकर द्रव्योंके यथार्थ स्वरूपके श्रद्धानसे वंचित रह जाते हैं । इसलिये स्याद्वादियोंने पदार्थोंका स्वरूप जिस नयसे बतलाया है उसको उसी रूपसे ग्रहण करना चाहिये । जहाँ निश्चय नयसे बतलाया

है वहाँ निश्चयसे ग्रहण करना चाहिये और जहाँ व्यवहारसे बतलाया है वहाँ व्यवहारसे ग्रहण करना चाहिये। व्यर्थका हट नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—निश्चय धर्मको माने बिना सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति किस प्रकार होगी।

उत्तर—आत्मज्ञानको धारण करनेवाले सम्यग्दृष्टी जीव इस पंचमकालमें बहुत थोड़े बतलाये हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टियोंकी संख्या दो तीन ही बतलाई है। अथवा दुर्लभतासे चार पांच होना बतलाया है। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीकामें लिखा है—

विद्यन्ते कति नात्मबोधविमुखा संदेहिनो देहिनः प्राप्यन्ते
कतिचित् कदाचित् पुनर्जिज्ञासमानाः क्वचित्॥
आत्मज्ञाः परमप्रमोदसुखिनः प्रोन्मीलद्वन्तर्दृशो।
द्वित्राः स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पंचषट् दुर्लभाः॥

तत्त्वज्ञानतरंगिणी नामके शास्त्रमें लिखा है—

गणिकचिकित्सिकतार्किकपौराणिकवास्तुशब्दशास्त्रज्ञाः।
संगीतादिषु निपुणाः सुलभा न हि तत्त्ववेत्तारः॥

अर्थ—ज्योतिष, वैद्यक, न्याय, पुराण, शिल्प, व्याकरण, संगीत, शृंगार, मंत्र, तंत्र आदि शास्त्रोंमें निपुण विद्वान् तो इस संसारमें बहुत हैं परंतु आत्मतत्त्वको जाननेवाले विद्वान् इस संसारमें हैं ही नहीं, हैं तो बहुत दुर्लभ हैं एक दो होंगे वा दो चार होंगे अधिक नहीं है।

प्रश्न—इस समय जो हजारों लाखों जैनी जैनधर्म पालन करते हैं सो क्या बिना सम्यग्दर्शनके पालन करते हैं। यदि वे बिना सम्यग्दर्शनके धर्म पालन करते हैं तो उनका पालन करना व्यर्थ है। भूसोको कूटनेके समान उनका परिश्रम करना व्यर्थ है।

उत्तर—जो लोग व्यवहार धर्मको छोड़कर शुद्धोपयोग अध्यात्म भावों सहित अपनेको आत्मज्ञानी सम्यक्त्वी मानते हैं वे दोनोंसे रहित होनेपर सम्यग्दर्शन रहित हो सकते हैं परंतु जो देवपूजा आदि व्यवहार-

रूप जैनधर्मका श्रद्धान ज्ञान आचरण करते हैं वे सर्वज्ञप्रणीत आज्ञाके पालन करनेवाले होनेके कारण योग्य और व्यवहार सम्यग्दृष्टी हैं। उनका धर्म पालन करना अपने-अपने भावोंके अनुसार सब सफल है। ऐसा समझना चाहिये।

२५१-चर्चा दोसौ इक्यावनवीं

प्रश्न—जिन प्रतिमाके जंगम और स्थावर ऐसे दो भेद सुने हैं सो इसका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—यह कथन श्रीकुन्दकुन्दाचार्यने अपने पाहुड़ ग्रन्थोंमें मुनियोंके धर्म क्रिया और आचरणोंको अपेक्षासे किया है। यह कथन सद्भूत निश्चय नयका विषय है। अनादिकालसे चले आये इस दिगम्बर आम्नायसे श्वेताम्बर धर्म निकला। उसने आयतन आदि वस्तुओंका स्वरूप विपरीतरूपसे पुष्ट किया। उनको समझानेके लिए आचार्योंने उनका यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन किया है। आयतन १, चैत्यगृह २, जिनप्रतिमा ३, दर्शन ४, जिनबिम्ब ५, जिनमुद्रा ६, ज्ञान ७, देव ८, तीर्थ ९, अरहन्त १०, शुद्धप्रव्रज्या ११ इन वस्तुओंका स्वरूप बतलाया है। उसमें जिन प्रतिमाको चेतना लक्षण सहित भी बतलाया है और उसके जंगम और स्थावर ऐसे दो भेद बतलाये हैं। सो ही बोधपाहुड़में लिखा है—

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं। णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा॥१०

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानके द्वारा जिसके चरित्र अत्यन्त निर्मल हैं ऐसा अपना वा दूसरेका चलता हुआ जो शरीर है उसको जिनमार्गमें निर्ग्रन्थ वीतरागमयी, चलती प्रतिमा अथवा जंगम प्रतिमा कहते हैं।

जं चरीद सुद्ध चरणं जाणइ पिच्छेद सुद्ध सम्मत्तं।
सो होइ वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा ॥ १ ॥

अर्थ—जो मुनि शुद्ध आचरणोंको धारण करते हैं। अपने शुद्ध ज्ञानके द्वारा पदार्थोंके स्वरूपको यथार्थ जानते हैं और जो सम्यग्दर्शनके द्वारा अपने आत्माको देखते हैं ऐसे शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र गुण जिनके विद्यमान हों ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूपी प्रतिमा सदा वंदना करने योग्य है। अन्य श्वेताम्बर आदिके द्वारा कल्पना की हुई प्रतिमा वा श्वेताम्बरोंके द्वारा कल्पना किये हुए अरहन्त वा साधु वन्दना करने योग्य नहीं है। इस प्रकार जंगम प्रतिमाका स्वरूप है।

दंसण अणंतणाणं अणंत वीरिय अणंत सुक्खाय। सासयसुक्ख अदेहा मुक्काकम्मट्ठबंधेय॥
णिरुवममचलमखोहा णिमाविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मिया वो सर पडिमा माधुवा सिद्धा॥

अर्थ—जो अनन्तदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य और अनंतसुख इन अनंत चतुष्टयोंसे सुशोभित हैं, जो शाश्वत, अविनाशीक, सुख सहित हैं, जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके बंधसे रहित हैं, जो सब तरहकी उपमाओंसे रहित हैं, अचलप्रदेशी हैं, क्षोभरहित हैं, जंगमरूपसे बनी हुई है और एकाग्र सिद्धस्थानमें ध्रुवरूप वा निश्चलरूपसे विराजमान हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठी स्थावर प्रतिमा हैं।

ऊपर दो गाथाओंमें जंगम प्रतिमा वा चलती हुई प्रतिमाका स्वरूप बतलाया है और फिर दो गाथाओंमें स्थावर प्रतिमाका स्वरूप बतलाया है इन्हीं स्थावर और जंगम भेदसे दो प्रकारकी जिनप्रतिमाका पूजन, वन्दन, स्तवन, दर्शन आदि भक्तिके लिये उन्हींकी धातुपाषाणमयी प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठापूर्वक जिनालयमें विराजमान करते हैं। वह भी महापुण्यका कारण है। असद्भूतव्यवहारनयका विषय है। इनके सिवाय मेरु पर्वत पर नन्दीश्वर आदि द्वीपोंमें कुलाचल, गजदंत, विजयार्ध पर जो अनादि, अनिधन, शाश्वती अरहन्त परमेष्ठीकी जिनप्रतिमा विराजमान है जहां पर इन्द्रादिक, चतुर्णिकायके देव तथा ढाई द्वीपोंके विद्याधर और ऋद्धिधारी मुनि उनकी पूजा, वंदना आदि करके महापुण्योपार्जन करते हैं सो सब धर्मानुरागके लिए करते हैं तथा वे विद्याधरादिक उनकी वन्दनासे प्राप्त हुए पुण्योपार्जनसे इन्द्रादिकके सर्वोत्तम पद पाकर क्रमसे थोड़ेसे उत्तम भव धारण कर मोक्षपद प्राप्त करते हैं। इस प्रकार धातुपाषाणकी बनी हुई कृत्रिम वा अकृत्रिम जिनप्रतिमाकी भक्ति करनेका फल है। इनके विशेष-विशेष फलोंका स्वरूप अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये।

प्रश्न—ऊपर जो कथन बतलाया गया है वह मूल गाथाओंमें नहीं है टीकामें लिखा है। इसलिये वह पूर्णरूपसे प्रमाण नहीं हैं इसलिये हम तो ऊपर लिखी हुई जंगम और स्थावर प्रतिमाकी (अरहंत सिद्धकी) वंदना करते हैं। इनके सिवाय अन्य जो धातु पाषाणकी कल्पना की हुई प्रतिमाएँ हैं वे निश्चयनयसे मोक्षमार्गके स्वरूपमें कारण नहीं है। केवल व्यवहारसे कारण हैं सो व्यवहारसे कोई सिद्धि होती नहीं। यह धातु पाषाणमयी प्रतिमा तो अल्पज्ञानियोंके लिये असमझ लोगोंके लिए बनाई है आत्मज्ञानियोंके लिए नहीं है। सो ही योगीन्द्रदेवकृत योगसारमें लिखा है—

तामकु तित्थयत्तरीभमधुत्तिमतांम करे। गुरु वयसा राजामणि विदेह हदेह मुणेय ॥४१॥
तित्थह देहणवि इमि सुइ केवलि वत्त। देही देवल देउ जिण ए उजाणि णिभंतु ॥४२॥
देहा देवल देव जिणु देवल होणी एदोइ। सामइ पडिहा इदहु सिघोभी स्वयमेइ ॥४३॥
मूढा देवलि देवणिविण विसला लिपइ चित्त। देहा देवल देव जिणु सो बुझझइ समचित्त॥४४॥
तीरथई देव जिण सव्वुवि कोइ थणेइ। देहा देवलि जो भुणइ सो वहु कोवि हवेइ ॥४५॥

इससे सिद्ध होता है कि अपने शरीररूपी मंदिरमें अपना आत्मा ही यथार्थ देव है। तीर्थ और मंदिरोंमें कोई देव नहीं है। जो मानते हैं सो अज्ञानी हैं अन्य मतमें भी इस प्रतिमापूजनका निषेध किया है और बतलाया है कि यह तो लौकिक रूढ़ि है। गृहस्थोंके लिये है परमार्थ रूप नहीं है, बंधरूप है। सो ही चाणिक्यमें लिखा है—

अग्निहोत्रेषु विप्राणां हृदि देवो मनीषिणाम्। प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम्॥

अर्थात्—ब्राह्मण लोग अग्निहोत्रमें देव मानते हैं, अल्पबुद्धिवाले गृहस्थ प्रतिमामें ही देव मानते हैं और आत्माको जाननेवाले सब जगह देव मानते हैं। इसीलिये प्रतिमा माननेमें हमारी अरुचि है। जिस प्रकार धातु, पाषाण, मिट्टी, काठ आदिका बनाया हुआ हाथी, घोड़ा, मनुष्य को सच्चा समझकर बालक खेला करता है परंतु जब वह समझ लेता है तब उनको झूठा समझकर उनसे क्रीडा करना छोड़ देता है और अन्य कार्योंमें लग जाता है उसी प्रकार अल्प बुद्धिवालोंको धर्मसेवनके लिये जिनप्रतिमा है। वह परमार्थरूप नहीं है केवल खेद उत्पन्न करनेवाली है। वह प्रतिमा अचेतन है, जड़ है इसलिये उससे इच्छानुसार फल नहीं मिल सकता, इसके सिवाय अचेतन प्रतिमाकी पूजन करने आदिमें अनेक प्रकार से पृथ्वीकाय आदि छहों कायके जीवोंकी महा हिंसा होती है तथा हिंसासे पापकर्मका बंध होता है और पापकर्मोंके बंधसे नरकादिक दुर्गतियोंकी प्राप्ति होती है इसलिये प्रतिमापूजन करना सर्वथा अयोग्य है।

धर्म तो एक दयारूप है। दया ही सब धर्मोंमें मुख्य है सो ही लिखा है "हिंसारहिये धम्मे" अर्थात् जिसमें हिंसा नहीं है वही धर्म है फिर लिखा है—"आरंभे णत्थियदया" अर्थात्—आरंभमें दया नहीं पल

सकती। और भी लिखा है "अहिंसालक्षणो धर्मः" अर्थात् धर्मका लक्षण अहिंसा ही है। इन सब प्रमाणोंसे प्रतिमापूजनका श्रद्धान करना योग्य नहीं मालूम होता। यदि किसी स्त्रीका पति मर जाय और वह स्त्री उसकी धातु वा पाषाणकी मूर्ति बनाकर उसकी सदा भक्ति करती रहे तो भी उससे उसके संतान नहीं हो सकती। इसी प्रकार धातु पाषाणकी प्रतिमासे भी कोई फल नहीं मिल सकता। इस प्रकार कितने ही लोग कुयुक्तियोंके द्वारा मूर्तिपूजाका खंडन करते हैं। कितने ही अध्यात्मी, समैया, श्वेताम्बर मतसे निकले लोकगच्छके ढूंढिया साधु भीखमपंथी, अन्य मतके वेदान्ती आदि बहुतसे मतवाले अपनी बुद्धिके बलसे मूर्तिपूजामें दोष कल्पना करते हैं तथा उनकी वंदना, पूजा, तीर्थयात्रा, दर्शन, स्तोत्र, स्तुति आदिमें अरुचि उत्पन्न करते हैं निषेध करते हैं सो सब मिथ्या है। इन सबका यहांपर परिहार करते हैं सबका उत्तर देते हैं।

सबसे पहले अध्यात्मी, शुद्धोपयोगी, आत्मज्ञानी आदि समैया मतके लिये कहते हैं। जैनधर्मके जितने सिद्धांत ग्रन्थ हैं, पुराण चरित्र हैं उन सबमें जिनमंदिर तथा प्रतिमाओंके अनेक भेद वर्णन किये हैं सबमें तीर्थ-यात्रा, दर्शन, वंदना, पूजन, स्तवन आदि अनेक प्रकार की भक्तिका वर्णन किया है। मुनि-अर्जिका श्रावक-श्राविकाओंको भगवान अरहंत देवकी भक्ति करना महा पुण्यका कारण बतलाया है। तथा परंपरासे मोक्षका कारण बतलाया है। रत्नत्रयरूप धर्मका हेतु बतलाया है। भगवान अरहंत देवकी प्रतिमाकी भक्ति करनेसे अनेक जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति हो रही है, हुई है और आगे होगी ऐसा अनेक शास्त्रोंमें वर्णन किया है।

इनके सिवाय मेरु पर्वतपर वा कुलाचल विजयार्ध आदि पर्वतोंपर अनादिकालसे अकृत्रिम जिन चैत्यालय और जिन प्रतिमाजी चली आ रही हैं तीनों लोकोंमें अकृत्रिम जिन चैत्यालय विराजमान हैं जिनका वर्णन समस्त शास्त्रोंमें है। अनेक भव्य जीव उनकी सेवा पूजाकर परमानंद पद प्राप्त करते हैं तथा अनेक प्रकारके महा दुःख देनेवाले नरकादिक दुर्गतियोंका नाश करते हैं और जन्म-जन्मांतरके पापोंको नष्ट कर महान् आत्मधर्मको प्राप्त होते हैं। यह कथन और यह रीति अनादिकालसे परंपरासे चली आ रही है। इनका वर्णन समस्त जैन शास्त्रोंमें है। ऐसा कोई शास्त्र नहीं है जिसमें इसका निषेध हो। केवल थोड़ेसे समैया लोग ही ऐसा कहते हैं सो उसकी श्रद्धा ज्ञान आचरण किस प्रकार किया जाय। तुम्हारा यह कहना और उसका श्रद्धान करना सब सर्वज्ञ देवके वचनों के विरुद्ध है महा अविनयरूप है। अनंत संसारको बढ़ानेवाला है मिथ्यात्वका

कारण है, सम्यग्दर्शनका घातक है शुद्धोपयोग और शुभोपयोगका विरोधी है सदा अशुभोपयोगको बढ़ानेवाला है। नरकादिक अधोगतिसे ले जानेवाला है। आत्माके गुणोंका घातक है। शुद्धज्ञान और आचरणका लोप करनेवाला है। रत्नत्रयका बाधक है, मोक्षमार्गका नाश करनेवाला है। सन्मार्गका नाश करनेवाला है। उन्मार्गको वा कुमार्गका पुष्ट करनेवाला है तथा स्वच्छंदताको प्रवृत्ति करनेवाला है। कहाँ तक कहा जाय अनेक विपरीतताका कारण है। तुम्हारा इस प्रकारका (प्रतिमाजीका पूजा न करनेका) जो श्रद्धान, ज्ञान वा आचरण है सो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग आदि समस्त द्वादशांगमय जिनागमरूप सिद्धांतके विरुद्ध है। कथा, पुराण, चरित्र आदिको लोप करनेवाला है समस्त शास्त्रोंकी आज्ञाको भंग करनेवाला और अविनयकी प्रवृत्ति करनेवाला है।

सिद्धांत ग्रन्थोंमें जो शुद्धोपयोगका कथन किया है तत्त्वोंके स्वरूपका निर्णय बतलाया है और उसमें पुण्य पदार्थको गौण बतलाया है। मोक्ष तत्त्वको मुख्यता बतलाई है तथा मोक्षतत्त्वकी मुख्यताका वर्णन करते समय जीव तत्त्वमें आप ही को परमात्मा बतलाया है अन्य सबको व्यवहार बतलाकर सबका त्याग कराया है सो यह सब कथन एकविहारी जिनकल्पी मुनियोंके लिये है यह सब उपदेश सातवें-आठवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंकी अपेक्षासे दिया गया है। सो इन ऊपरके गुणस्थानोंमें व्यवहारका त्याग हो हो जाता है। ये सब गुणस्थान तो शुद्ध ध्यान अवस्थाके हैं इनमें व्यवहारका क्या काम है। इसीलिये ऐसा कहा गया है।

यदि ऐसा न माना जाय और इस शुद्ध निश्चयनयसे कहे हुए कथनको चतुर्थगुणस्थानवर्ती गृहस्थोंके लिये ही मान लिया जाय तो फिर श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएँ तथा छठे गुणस्थानमें रहनेवाले मुनियोंके पालन करने योग्य अट्ठाईस मूलगुण आदि समस्त व्यवहारधर्मका लोप करना पड़ेगा। परन्तु इन सब व्यवहार धर्मोंका लोप हो नहीं सकता।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि समस्त व्यवहारधर्म निश्चयधर्मकी प्राप्तिका कारण है। इसलिये वह सम्यग्दर्शन पूर्वक गृहस्थ और मुनियोंको ग्रहण करने योग्य है। यदि इस व्यवहार धर्मके बिना स्वच्छंद होकर आत्मज्ञानी बनना और विषय कषायोंमें तृप्त रहना है सो आत्माको ठगना है, क्योंकि अणुव्रत, महाव्रत आदिका पालना, तीर्थयात्रा करना, यथायोग्य दर्शन, पूजन आदि करना, धर्मोपदेश देना, ध्यान, अध्ययनका सिद्ध

करना, तप और स्वाध्याय करना आदि सब समस्त कर्तव्य एक चैतन्य स्वरूप शुद्ध आत्माकी प्राप्तिके लिये हैं। जिस प्रकार दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता आदि सोलहकारण भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृतिके आस्रवके कारण हैं उसी प्रकार व्यवहारधर्म निश्चयधर्मका कारण है, जिस प्रकार तीर्थंकर प्रकृतिके लिये सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन करते हैं उसी प्रकार आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये भगवान अरहन्तदेवकी प्रतिमाकी पूजा सत्पात्र दान आदि समस्त व्यवहारधर्म करना चाहिये। इसलिये पूजा, नुति, जप, ध्यान, भक्ति, विनय आदि किये जाते हैं। सो ही जैनगीतामें लिखा है—

जिनेशिनः स्नानात्स्तुतियजनजयान्मंदिरार्चाविधानात्,
चतुर्थादानाद्ध्ययनरव·····जयतो ध्यानतः संयमाच्च।
व्रताच्छीलात्तीर्थादिकगमनविधेः क्षांतिमुख्यप्रधर्मात्,
क्रमाच्चिद्रूपाप्तिं भवति जगति ये तत्कलकास्तस्य तेषाम्।
देवं श्रुतं गुरुं तीर्थं भदंतं च तदाकृतिम्। शुद्धचिद्रूपसद्ध्यान हेतुत्वाद्भजने सुधीः।

अर्थ—जो जीव शुद्ध चिद्रूप शुद्ध आत्माको प्राप्ति करना चाहते हैं उनके भगवानका अभिषेक करनेसे, भगवानकी स्तुति करनेसे, जप करनेसे, मंदिर प्रतिमा आदिकी प्रतिष्ठा, पूजा आदि करनेसे, चार प्रकारका दान देनेसे, शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे, इन्द्रियोंको जीतनेसे, ध्यान और संयम पालन करनेसे, व्रत तथा शीलके पालन करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे और उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंके पालन करनेसे अनुक्रमसे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार अरहंत देवकी निरग्रन्थ गुरुकी द्वादशांगरूप श्रुतज्ञानकी, जिनका सहारा लेकर यह जीव पार हो ऐसे कैलाश, सम्मेदशिखर, गिरनार, चंपापुर, पावापुर वा और भी निर्वाणक्षेत्र आदि तीर्थकी तथा भदंत आदि भट्टारक तीर्थंकर परमदेवकी और उनकी प्रतिमाकी जो बुद्धिमान सेवा भक्ति करते हैं उनका दर्शन, पूजन, नमस्कार आदिके द्वारा अनेक प्रकारकी भक्ति करते हैं, उनका ध्यान जप स्तुति करते हैं सो सब चिद्रूप सिद्धस्वरूप आत्माके ध्यानके लिये ही करते हैं। अर्थात् इन सबके करनेसे शुद्ध आत्माके ध्यानकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार जैनगीताके तीसरे अध्यायमें लिखा है सो सब यथार्थ है।

पहले जो जिन प्रतिमाके स्थावर और जंगम ऐसे दो भेद बतलाये थे सो शास्त्रोंमें उनकी पूजा, वंदना,

भक्ति आदि छह प्रकारसे बतलाई हैं। उन छहोंके नाम ये हैं—नाम १ स्थापना, २ द्रव्य, ३ क्षेत्र, ४ काल, ५ और भाव ६। भगवान अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधू आदि परमेष्ठियोंके एकसौ आठ अथवा एक-हजार आठ नामोंसे पूजा वंदना करना नामपूजा है। स्थापनाके दो भेद हैं तदाकार और अतदाकार—जो तीर्थंकरोंकी तदाकार प्रतिमा बनाकर तथा उनकी प्रतिष्ठा कर जो पूजा भक्ति की जाती है वह तदाकार स्थापना पूजा है। तथा तदाकार प्रतिमाके बिना अक्षत सुपारी पुष्प आदिमें अरहंत आदिकी कल्पनाकर पूजा करना सो अतदाकार स्थापना पूजा है ये सब पूजाएँ आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण पूर्वक करनी चाहिये। द्रव्य पूजाके

---

१. पूजाके पहिले जो आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण किया जाता है वह स्थापना निक्षेप नहीं है किंतु पूजाका एक-एक अंग है। जिस प्रकार अपने यहाँ कोई बड़ा पुरुष आता है तो उसको सामने लेनेके लिये उठकर खड़े होते हैं और कहते हैं कि आइये-आइये पधारिये यहाँ विराजिये, आप जो हमारे यहाँ पधारे सो आपने बड़ी कृपा की। इस प्रकार उन्हें संतुष्ट कर तथा भोजनादिकसे संतुष्ट कर जाते समय कुछ दूर तक जाकर शिष्ट वचनोंके साथ विदा करते हैं यह सब उनका आदर सत्कार है, यदि उसमें कुछ कमीकी जाय तो आदर सत्कारमें कमी समझी जाती है। तथा पूजा भी आदर सत्कार है। तीर्थंकर परमदेव वा पंचपरमेष्ठी सर्वोत्तम पुरुष हैं इसलिये उनका आदर सत्कार सर्वोत्तम रीतिसे किया जाता है इसीको पूजा कहते हैं। उस पूजाके ऊपर लिखे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण पूजा और विसर्जन ये पाँच अंग हैं। सो ही लिखा है—

आह्वानं स्थापनं च सन्निधिकरणं तथा, पूजा विसर्जनं चेवमुपचारस्तु पंचधा।

अर्थात् आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजा, विसर्जन इस प्रकार पूजा पाँच प्रकार है ऐसा अकलंक प्रतिष्ठापाठमें लिखा है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आह्वान, स्थापन आदि पूजाके आदर, सत्कारके अङ्ग हैं स्थापना निक्षेप नहीं है। इसका प्रबल कारण यह है कि स्थापना निक्षेपमें 'सोऽयम्', 'यह वही है' इस प्रकारका सङ्कल्प किया जाता है। लिखा भी है—

साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनम्। सोयमित्यभिधानेन स्थापना सा निगद्यते॥

अर्थात् तदाकार व अतदाकार काष्ठादिकमें 'यह वही है' इस प्रकार संकल्प करना, निवेश करना स्थापना निक्षेप है आह्वान, स्थापनमें 'यह वही है' ऐसा सङ्कल्प नहीं होता। इसलिये वह स्थापना निक्षेप कभी नहीं हो सकता।

जो लोग यह समझते हैं कि जहाँ प्रतिमा विराजमान हैं वहाँ स्थापना नहीं करनी चाहिये सो यह उनकी भारी भूल है। कोई-कोई लोग तो ऐसे हैं जो आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण करते ही नहीं हैं। उनका वह पूजन करना उसी प्रकार है जो आये हुए किसी बड़े आदमीके लिए आइये, पधारिये यहाँ विराजिये आपने पधारनेकी बड़ी कृपा की, इत्यादि वचनोंके कहे बिना ही उसका यथेष्ट आदर, सत्कार किये बिना ही उसके सामने भोजनका थाल लाकर रख देना है। जो लोग ऐसा करते हैं वे अशिष्ट कहलाते हैं और उनका वह आदर, सत्कार योग्य नहीं कहलाता, न उस आदरसे किसी कार्यकी सिद्धि होती है। उसी प्रकार जो पूजाके आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरणके बिना ही पूजन करते हैं उनकी वह पूर्ण पूजन नहीं कहलाती

तीन भेद हैं सचित्त, अचित्त और मिश्र। साक्षात् तीर्थंकुर केवली भगवानकी पूजा करना सचित्त द्रव्य पूजा है। उनके निर्वाण हो जाने पर उनको शरीरकी पूजा करना अचेतन द्रव्य पूजा है। तथा आचार्य, उपाध्याय, साधु और उनके पास रहनेवाले शास्त्रोंकी सम्मिलित (मिली हुई) पूजा करना मिश्र द्रव्यपूजा है। तीर्थकरों, पंचकल्याणकोंके क्षेत्रोंमें जाकर उन क्षेत्रोंकी पूजा करना सो क्षेत्रपूजा है। तीर्थंकुरोंके पंचकल्याणक जिस महीनेमें, जिस पक्षमें, जिस तिथिमें, जिस नक्षत्रमें और जिस समयमें हुए हैं उस समयमें उनकी पूजा करना कालपूजा है। तथा सामायिक करना णमोकार मंत्रका जप करना पिंडस्थ, रूपस्थ, रूपातीत आदिका चिंतवन करना जप व ध्यान करना भावपूजा है। इन सबका स्वरूप एकसौ बत्तीसवीं चर्चामें गाथा और श्लोकोंका प्रमाण देकर विस्तारके साथ लिखा है सो वहाँसे विचार लेना चाहिये।

यहाँ पर इतना विचार और कर लेना चाहिये कि ऊपर लिखे हुए छहों निक्षेप धातु वा पाषाणकी जिनप्रतिमामें ही हो सकते हैं। इसलिए इसका निषेध करना बड़े अनर्थका मूल है, सम्यग्दृष्टि पुरुष इसका निषेध कभी नहीं कर सकता।

प्रतिमाके जो ऊपर स्थावर जंगम ऐसे दो भेद बतलाये हैं उनको व माननेका ही हठ हो तो फिर श्रावकोंकी ग्यारह प्रतिमा भी बतलाई हैं। उन प्रतिमाओंको तो मानना ही पड़ेगा। प्रतिमा शब्दका अर्थ, आकार, चिह्न अथवा रूपकका है। सो मुनिमें जंगम प्रतिमा है केवलीमें स्थावर प्रतिमा है और श्रावकोंमें दर्शन आदि ग्यारह प्रतिमा हैं। सो सब व्रत, आचरण आदिकी अपेक्षासे है। तथा उनकी मूर्ति बनाकर पूजना सो रूपक प्रतिमा है ऐसा सिद्धांत है।

प्रश्न—यहाँ पर लुंकामती, ढूंढ़िया प्रश्न करता है कि हमारे सूत्रोंमें प्रतिमा तथा मन्दिर पूजाका

किन्तु पाँच अंगोंमेंसे एक अंग कहलाता है। क्योंकि आह्वान, स्थापनके बिना विसर्जन भी नहीं किया जा सकता। केवल पूजा रह जाती है। तथा पूजामें आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरण और विसर्जन ये विशेष अंग हैं उनके न करनेसे पूजाका विशेष फल नहीं मिल सकता। जैसे आया हुआ भद्रपुरुष 'आइये पधारिये' आदि मिष्ट वचनोंके बिना प्रसन्न नहीं होता उसी प्रकार बिना आह्वान, स्थापनके पूजाका यथेष्ट फल नहीं मिलता। इसलिये बिना आह्वान, स्थापन, सन्निधिकरणके तथा विसर्जनके कभी पूजा नहीं करनी चाहिये। पूजा में आह्वानादिकका होना अत्यन्त आवश्यक है।

निषेध किया है। जो लोग प्रतिमाजीकी पूजा करते हैं उसमें हिंसादिक महापाप होता है सो ही श्वेताम्बरोंके यहाँ लिखा है।

धम्मस कारणे मूढो जो जीवं परिहिंसई। दहिऊण चंणनं तरुं करेइ अंगार वाणिज्जं॥

अर्थ—जो जीव धर्मके लिए जीवोंकी हिंसा करते हैं वे मूर्ख हैं। वे लोग कोयला बेचनेके लिए चंदनके वृक्ष जलाते हैं। भावार्थ—कोयला बेचनेके लिये चंदनको जलाना बड़ी मूर्खता है। संसारमें और अनेक वृक्ष हैं अन्य वृक्षोंका अभाव नहीं है इसलिए केवल कोयले बेचनेके लिये चंदन जलाना भारी मूर्खता है इसी प्रकार प्रतिमाकी पूजा करना और उसमें हिंसा करना भारी भूल है इसको हम लोग (ढूँढ़िया) कभी नहीं मानते हैं।

उत्तर—प्रथम जिस गाथाका प्रमाण दिया है वह प्राचीन नहीं है तुम्हारी बनाई हुई नवीन है इसलिए वह प्रमाण नहीं हो सकती। दूसरे यह गाथा छन्दशास्त्रके विरुद्ध है। क्योंकि इसमें जितनी मात्राएं होनी चाहिये उतनी नहीं हैं, कम हैं। गाथाओंमें, मात्राओंकी संख्या बारह, अठारह, बारह, पन्द्रह होती हैं। पहले चरणमें बारह, दूसरेमें अठारह, तीसरेमें बारह और चौथे चरणमें पन्द्रह मात्राएं होती हैं। इस प्रकार सब सत्तावन मात्राएं होती हैं, सत्तावन मात्राओंकी गाथा कहलाती है। सो ही भाषा छन्द शास्त्रमें लिखा है—

आदं द्वादश करिए। अठारह बार फिर धरिये॥
संख्या शेष बताई। गाथा छन्दक हो भाई॥

सो इस गाथामें सत्तावन मात्राएँ नहीं हैं दूसरे चरणमें कम मात्राएँ हैं इसलिये यह गाथा अप्रमाण है।

दूसरी बात यह है कि यह गाथा प्राचीन नहीं है श्वेताम्बरोंके यहाँ ही यह गाथा प्राचीन इस प्रकार है।

हरिऊण परं दव्वं पूजं जो करेइ जिणवरिंदाणं। दहिऊण चंदणतरुं करेइ अंगारवाणिज्जं॥

अर्थ—जो मनुष्य दूसरेका द्रव्य हरण कर, चोरी कर उस धनसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह मानों कोयलेके व्यापारके लिए चंदन वृक्षको जलाता है। यह प्राचीन गाथा है सो प्रमाण है। इसलिए तुम्हारी बनाई हुई नवीन गाथा प्रमाण नहीं है।

यदि हटकर इसी गाथाको प्रमाण मानोगे तो देखो तुम्हारे महान् सीत नामके सूत्रमें लिखा है—

देवधरमगुरुकज्जे चूरीज्जइ चक्कवट्टि सेणंपि। जोण विचूरइ साहू तहु अणंत संसारिओ होई॥
संघस्स कारणेणं चूरिज्जइ चक्कवट्टि सेणंपि। जउ णउ चूरीज्जइ सो अणंत संसारिओ होई॥

अर्थ—यदि देव, धर्म, गुरुका काम आ पड़े तो उसके लिए चक्रवर्तीकी सेनाको भी चूर्ण कर देना चाहिये अर्थात् मार देना चाहिये। जो साधु उसमें हिंसा समझकर नहीं मारता वह अनंतसंसारी होता है॥ १॥ इसी प्रकार किसी चतुर्विधसंघके कामके लिए भी काम पड़ने पर चक्रवर्तीकी सेनाको मार देना चाहिये। जो साधु उसमें पाप समझकर नहीं मारता है वह अनंतसंसारी होता है। ऐसी भगवानकी आज्ञा है। ऐसा तुम्हारे यहाँ लिखा है। सो यहाँ बताना चाहिये कि अहिंसारूप धर्मके लिये हिंसाका त्याग कहाँ रहा। तुम तो अपने सूत्रोंको भगवानके कहे हुए मानते हो सो झूठे हो नहीं सकते। परन्तु यहाँ आकर सब झूठे हो जाते हैं।

और देखो—गोशाल्याने भगवान महावीर स्वामीके ऊपर समवशरणमें तेजो लेश्या छोड़ी थी तथा उस समवशरणमें ही उसने भगवानके लिए गाली आदि अनेक दुर्वचन कहे थे उसको सुनकर दो साधुओंको बड़ा क्रोध हुआ था और उस गोशाल्याको मारनेके लिए भी उठे थे ऐसा तुम्हारे यहाँ लिखा है तथा यह भी लिखा है कि उन साधुओंने धर्मके लिए ही क्रोध किया था और धर्मके लिए ही उसे मारनेको उठे थे। सो फिर यह कौन-सी अहिंसा रही। धर्मके लिए यह हिंसा कैसी ? कहाँ तो पूजामें हिंसा मानना और कहाँ मारनेसे भी हिंसा न मानना इस पक्षपातका इस झूठका कुछ ठिकाना नहीं।

इसके एक बात यह भी है "कि जिनप्रतिमाकी पूजा नहीं करना चाहिये जो कोई जिनप्रतिमाकी पूजा करता है वह मिथ्यादृष्टि है। जिनप्रतिमाकी पूजा करनेवाला अमुक मनुष्य अनन्तसंसारी हुआ और नरकादिक दुर्गतियोंमें गया" इत्यादि वचन तुम्हारे किस सूत्रमें लिखे हैं। यदि कहीं लिखे हैं तो बतलाओ।

कदाचित् कोई लुंकामतका यह कहे कि हमारे किसी शास्त्रमें प्रतिमा पूजनका विधान भी तो नहीं है। इसलिए हम लोग नहीं मानते हैं। तो इसका उत्तर यह है कि श्वेताम्बर सूत्रोंमें लिखा है—

जो पुज्जइ तीसंधं चिणंदरायं तहा विगयदोसं।
सो तईय भवे सिज्झइ अहवा सत्तठ्ठभवे णाणी॥

अर्थ—जो भव्यजीव जल, फलादिक द्रव्योंसे समस्त दोषोंसे रहित वीतराग सर्वज्ञदेवकी तीन समय पूजा करता है वह ज्ञानी पुरुष तीसरे भवमें अथवा सातवें, आठवें भवमें मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार तुम्हारे ही शास्त्रोंमें पूजाका विधान है इसलिए तुम जो जिनपूजाका निषेध करते हो तो सब मिथ्या है। तुम्हारे यहाँ भी नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव ये चार निक्षेप कहे हैं सो स्थापना निक्षेप बिना प्रतिमाके बन ही नहीं सकता 'यह वही है' इस संकल्पको स्थापना कहते हैं और जिसमें यह सङ्कल्प किया जाता है वही प्रतिमा कहलाती है। इसलिये तुम्हारे मतसे ही प्रतिमा पूजनका निषेध नहीं हो सकता।

इसके महान् सीतसूत्रमें लिखा है। किसी श्रावकने पूछा है कि पुण्यबंध किस प्रकार होता है तब इसके उत्तरमें कहा है कि नवीन जिनमंदिर बनवाना, उसमें जिनप्रतिमा बनवाकर, प्रतिष्ठा कर, स्थापन करना महापुण्यबंधका कारण है। इससे जीव बारहवें स्वर्गमें जाता है। भक्तपक्त नामके सूत्रमें लिखा है जिनमंदिर, जिनबिम्ब, जिनसूत्र, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इन सात क्षेत्रोंमें धनका खर्चना तथा जिनप्रतिमाकी पूजा करना श्रावकका सबसे बड़ा धर्म है। इसके बिना और कोई बड़ा धर्म नहीं है। ज्ञातृधर्मकथा नामके सूत्रके सोलहवें अधिकारमें लिखा है कि अर्जुनकी रानी द्रोपदी नामकी सतीने सूर्याभ नामके देवके समान सत्तरभेदी श्रीजिनप्रतिमाकी पूजा की। उसीसे कर्मोंको नाश कर मोक्ष गई। यदि तुम्हारे यहाँ जिनप्रतिमाकी पूजा करना नहीं लिखा है तो यह कथन कैसे लिखा है। प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखा है कि पाटलीपुत्र नगरमें जीवन स्वामी श्रीमहावीरस्वामीको यति, श्रावक वन्दना करते हैं अर्थात् पटना नगरमें श्रीमन्दिरमें जो श्रीमहावीर स्वामीकी प्रतिमा विराजमान हैं उनकी वंदना करते हैं। दशवैकालिक सूत्रमें चैत्यवंदनाका अधिकार करना लिखा है। इसके सिवाय एक कथा लिखी है कि एकसेन माली नित्य नवांगपूजा करता था। अर्थात् अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और इनको पालन करनेवालोंकी नव पुष्पोंसे प्रतिदिन पूजा करता था सो उसके फलसे वह नौ भव तक अनेक प्रकारकी सम्पदाका उपभोग करता रहा और मोक्ष गया सो यह कथा तुम्हारे यहाँ है या नहीं ?

इसके सिवाय तुम्हारे शास्त्रोंमें तीन लोकसंबंधी जिनमंदिर और जिनप्रतिमाओंका सदा निश्चलरूपसे रहनेका विधान लिखा है। तथा लिखा है—ऋद्धिधारी मुनि और देव विद्याधर आदि आठवें नंदीश्वर द्वीपमें

चैत्यवंदना करते हैं और उसमें "णमोत्थाणु अरिहंताणं भगवंताणं" आदि पाठ पढ़ते हैं तथा "तित्थेवं वंदामि चइएवं वंदामि" पढ़ते हैं अर्थात् "भगवान अरहंत देवको मैं नमस्कार करता हूं, मैं तीर्थोंको नमस्कार करता हूं और जिनप्रतिमाओंको नमस्कार करता हूं।" इस प्रकार पाठ पढ़नेका विधान है। इससे भी प्रतिमाकी पूजा करना सिद्ध होता है।

यहांपर चैत्यका अर्थ प्रतिमा होता है परंतु कोई-कोई लोग चैत्यका अर्थ प्रतिमा न करके ज्ञान अर्थ करते हैं तथा चैत्यका ज्ञान अर्थ करके प्रतिमापूजनका निषेध करते हैं सो उनका इस प्रकार निषेध करना व्यर्थ है क्योंकि ज्ञान तो सदा अपने पास रहता है फिर उसकी वंदना करनेके लिये नंदीश्वर द्वीपमें वा मेरु पर्वतपर जानेकी क्या आवश्यकता है। नंदीश्वर वा मेरु पर्वतपर जाकर तो प्रतिमाकी ही पूजा हो सकती है। ज्ञानकी पूजा चाहे जहाँ हो सकती है वह तो सदा पास रहता है। उसकी पूजा करनेके लिये अन्य देशमें वा अन्य क्षेत्रमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। दूसरी बात यह है कि ज्ञानकी वंदना करनेमें "णमो थुणं" इस पाठकी क्या आवश्यकता है? परंतु यह पाठ भगवतीसूत्रमें लिखा है।

भगवान तीर्थंकरके मोक्ष जानेके अनंतर इन्द्रादिक देव आकर उनकी पूजा करते हैं तथा मुंहसे दाढ निकालकर स्वर्गमें ले जाते हैं और उसकी पूजा करते हैं। सो वह दाढ भी अचेतन है। उसकी पूजा क्यों की जाती है। उपासकाध्ययन नामके सूत्रमें श्रावकके बारह यतनोंमें जिनप्रतिमा और उसकी पूजा करनेका वर्णन है और लिखा है कि आनंद नामके श्रावकने उनकी कथा कही थी। सो यह कथन भी किस प्रकार आया? इसके सिवाय ज्ञातृस्वरूप, आवश्यकसूत्र और समयश्रेणीसूत्र आदि कितने ही सूत्रोंमें रत्न, सुवर्ण, चांदी, पाषाण आदिकी जिनप्रतिमा बनानेका विधान लिखा है। फिर उसका निषेध क्यों करते हो? महावीरचरित्रमें जिनप्रतिमाके प्रतिष्ठाके अक्षर लिखे हैं। तथा कपिल नामके किसी केवलीकी प्रतिष्ठा करना लिखा है। फिर प्रतिमापूजनका निषेध कैसे करते हो? समवाय सूत्रमें चौंतीस अतिशयोंके निर्णयमें लिखा है कि जिनप्रतिमाकी पूजा करनेके लिये जलमें उत्पन्न हुए कमल आदिक तथा स्थलमें उत्पन्न हुए बेला, चमेली, गुलाब आदिके फूल चढ़ाने चाहिये। जीवाभगवतीमें लिखा है कि जिनप्रतिमाकी पूजा दीपक जलाकर, धूप लेकर तथा जल गंधाक्षतादि आठों द्रव्योंसे करनी चाहिये। इस प्रकार सब जगह प्रतिमा पूजनका विधान है फिर प्रतिमापूजनका निषेध किस प्रकार किया जा सकता है?

इसके सिवाय सामायिककी पाटोमें एक लोगस्सकी पाटी है उसमें पाठ पूर्ण होते समय लिखा है।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगुत्तमा जिणा सिद्धा।

सो यहांपर महियाका अर्थ क्या है ? महियाका अर्थ पूजा करना ही तो है। फिर प्रतिमापूजनका निषेध क्यों करते हो ? आवश्यक सूत्रमें लिखा है कि भरत चक्रवर्तीने चौबीसों तीर्थङ्करोंके जिनबिम्ब बनवाकर कैलाश पर्वतपर विराजमान किये। फिर भी प्रतिमापूजनका निषेध करते हो। जंबूद्वीप पण्णत्तीनामके सूत्रमें लिखा है कि पूजा करनेके लिये पूजा करनेवालेको तो अचित्त जलसे स्नान करना चाहिये और जिनप्रतिमाका अभिषेका छने हुये सचित्त जलसे करना चाहिये। वहांपर एक करोड़ कलशोंके सचित्त जलसे तीर्थङ्करका अभिषेक करना लिखा है। इसके सिवाय सूर्याभदेव अभयकुमार अंबड नामका श्रावक और जंघाचारी साधुने नंदीश्वर द्वीपमें जाकर जिन-प्रतिमाकी वन्दना की। इस प्रकार अधिकारमें जिनप्रतिमाकी पूजाका वर्णन लिखा है। कहां तक कहा जाय तुम्हारे ही सूत्रोंमें प्रसंगानुसार स्थान-स्थानपर जिनप्रतिमापूजनका विधान लिखा है फिर भला इसका निषेध किस प्रकार किया जा सकता है। शास्त्रोंके इतने प्रमाण मिलनेपर भी जो जिनप्रतिमाकी पूजाका निषेध करते हैं वे सूत्रबाह्य हैं। ऐसे सूत्रबाह्य मिथ्यात्वी लोग ही जिनप्रतिमापूजनमें हिंसाविक पाप बतलाकर भोले जीवोंको भुलाते हैं सो अत्यन्त अज्ञानी जीव ही इनके वचनरूपी विषसे ठगे जाकर इस अपार संसारमें परिभ्रमण करते हैं। इस प्रकार लुंकामत तथा ढूंढिया मतके सूत्रोंके अनुसार ही प्रतिमापूजनका निर्णय किया।

कुछ वेदान्ती भी मूर्तिपूजाको नहीं मानते सो आगे उनके लिये लिखते हैं। लौकिकमें चार वेद हैं, अठारह पुराण हैं उनमें जो कथन है सो क्या सब व्यर्थ है। परंतु इन सबका कथन तेरे मतसे भी व्यर्थ नहीं हो सकता। इसलिये तेरा वेदांत तेरे ही पास रहेगा, विशेषज्ञानी ऐसे वेदांतको कभी स्वीकार नहीं कर सकते। यदि मूर्तिपूजन न मानी जाय तो मंदिर, मूर्ति, तीर्थयात्रा, दान, व्रत, उपवास, श्राद्ध, पिंड, ब्राह्मणभोजन, जप, तप, यम, नियम, जागरण, भक्ति भाव, यज्ञकथा, कीर्तन, उसका श्रवण आदि सब मिथ्या मानना पड़ेगा। यदि वेदांतमत एक मोक्ष-रूप ही है तो फिर ऊपर लिखे पुण्यकार्योंके करनेकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु सो हो नहीं सकता क्योंकि ऊपर लिखे पुण्यकर्मोंसे अनेक जीवोंका उद्धार हुआ है और अनेक जीव मुक्त हुए हैं ऐसा भागवत आदि पुराणोंमें लिखा है उसको व्यर्थ किस प्रकार कह सकोगे ? इसलिये केवल एकांतवाद मानना वैष्णव, शैव और पौराणिक

मतको दूषित करना है। इसलिये द्वैताद्वैत ब्रह्मपक्षका कहना शैव और वैष्णव दोनों मतोंका बाधक है और स्वच्छन्द उन्मत्त पुरुषके समान है इसलिए प्रमाणरूप नहीं माना जा सकता। सब शास्त्रोंसे मिले हुए वचन ही प्रमाण हो सकते हैं विरुद्ध वा विरोधी वचन प्रमाणरूप नहीं कहे जा सकते। प्रतिमाको जड़ और अचेतन मानकर निष्फल मानना वेद और पुराणके सर्वथा विरुद्ध है। इसलिये सर्वथा प्रमाण नहीं है।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे लघुचाणक्यमें ऐसा लिखा है—

न देवो काष्ठपाषाणे न देवो धातुमृण्मये। भावेषु विद्यते देवो तस्माद् भावो हि कारणम्॥

और जगह भी लिखा है—

न देवो विद्यते काष्ठे पाषाणे न च मृण्मये। भावेषु विद्यते देवो तस्माद् भावो हि कारणम्॥

अर्थ—देव न तो काठमें है, न पाषाणमें है, न धातुमें है, न मिट्टीमें है किन्तु भावोंमें देव है इसलिये भाव ही मोक्षके कारण हैं दूसरे श्लोकका भी यही अर्थ है। अभिप्राय यह है कि काष्ठ, पाषाण, धातु, मिट्टी आदिकी मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठाकर उसकी पूजा करते हैं सो उसमें परमेश्वर वा देव नहीं है वह तो धातु पाषाणकी जड़ रूप है, देव तो केवल अपने भावोंमें है इसलिए केवल भाव ही कारण हैं, मूर्ति कारण नहीं हैं। इस प्रकार कोई वेदान्ती कहता है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा माननेसे अनेक दोष आते हैं और ऊपर लिखे हुए यम-नियमादिक समस्त धर्मोंका लोप हो जाता है। इसलिये ऊपर लिखा कथन ठीक नहीं है। क्योंकि उसी लघुचाणक्यमें आगे ऐसा लिखा है—

काष्ठपाषाणधातूनां भावं निवेदयेद् यथा। तथा भक्तिस्तथा सिद्धिः तस्य देवो प्रसीदति॥

अर्थ—जो मनुष्य काठ, पाषाण वा धातुकी प्रतिमामें अपने भाव जैसे लगाता है इस प्रतिमामें अमुक देव विराजमान है इस प्रकार अपने भाव लगाकर जैसी उसकी भक्ति करता है वैसी ही उसको सिद्धि होती है। तथा उसी प्रकार वह देव उस पर प्रसन्न होता है उससे वह इच्छानुसार फल प्राप्त करता है। भावार्थ—जो पुरुष उस मूर्तिमें परमेश्वरादिक किसी देवकी स्थापना कर अच्छे भावोंसे उसकी पूजा करता है सो अपना मनचाहा फल पाता है। इस वचनसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो मनुष्य उस मूर्तिको देखकर उसमें अपने

परिणाम बुरे करता है। बुरे परिणामोंसे उसे पत्थर अचेतन जड़ आदि मानकर उसकी भक्ति वा पूजाका लोप करता है वह नरकगतिको प्राप्त करता है। सो ही लिखा है—

मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे देवज्ञे भेषजे गुरो। यादृशी भावना तस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

अर्थ—मन्त्र, तीर्थ, द्विज, देव, ज्योतिषशास्त्र, औषधि और गुरुमें पुरुषोंको जैसी भावना होती है वैसी ही उनकी सिद्धि होती है। भावार्थ—यदि मनमें इनमें आस्तिकरूप, श्रद्धारूप परिणाम हों तो उनको उससे ही सब कामोंकी सिद्धि हो जाती है। यदि मनमें विश्वासरहित नास्तिक भाव हों अश्रद्धासे सेवन करे तो उसके कार्यकी सिद्धि नहीं होती। उसका सेवन करना पूजादिक करना भी निष्फल हो जाता है क्योंकि ऐसा पुरुष उसको निष्फल व्यर्थ समझता है इसलिए उसका फल भी व्यर्थ और विपरीत होता है।

यदि प्रतिमाको अचेतन व जड़रूप मानकर उससे कार्यकी सिद्धिका अभाव मानोगे तो फिर कल्पवृक्ष, चित्रावेलि, चिन्तामणि रत्न, पारस पत्थर, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, औषधि तथा केवल परमात्माका शब्दोंके द्वारा नाम उच्चारण करना आदि सब अचेतन और जड़रूप हैं और इन सबसे कार्यकी सिद्धि होती है। इसलिये अचेतन मूर्तिसे ही समस्त कार्योंकी सिद्धिका होना अवश्य मानना पड़ेगा। सूत्र, सिद्धान्त, वेद, पुराण आदि सब मतोंके शास्त्र भी जड़ और अचेतन हैं परन्तु उन सबसे ज्ञानकी सिद्धि होती है इस बातको भला कौन नहीं मान सकता? अर्थात् सबको मानना पड़ता है।

यह जो ऊपर कहा गया था कि पतिहीन, स्त्री, पुत्र प्राप्ति के लिये यदि पतिकी मूर्तिकी भक्ति वा सेवा करे उससे पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती उसकी वह भक्ति वा सेवा व्यर्थ है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि अन्य किसी पतिहीन स्त्रीने अपने पतिकी मूर्ति तो बनाई नहीं वह केवल उसका ध्यान करती रहो, माला लेकर उसके नामका जप करती रही तो भी तो उसके पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती। भावार्थ—यदि प्रतिमाकी पूजा

१. पुत्रकी उत्पत्ति पतिके वीर्यसे होती है और वीर्य शरीरका एक धातु है पतिके मरनेपर या विदेश रहनेपर उसके शरीरसे उत्पन्न हुए वीर्यका ग्रहण होता नहीं इसलिए उसकी मूर्तिसे वा जप, ध्यान आदिसे पुत्रकी उत्पत्ति नहीं होती। परन्तु कर्मोंका क्षय वा शुभास्रव भावोंसे होता है इसलिये मूर्तिमें यदि परमात्माके भाव हों तो उससे अवश्य कर्मक्षय होते हैं। वा शुभास्रव होता है। जप, ध्यान आदिसे भी यही बात होती है।

करनेसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती तो केवल नामका उच्चारण कर जप करनेसे वा उसका ध्यान करनेसे तो भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। क्योंकि जैसी मूर्ति जड़ है वैसा शब्द भी जड़ है।

इसलिये मानना चाहिये कि मोक्षकी प्राप्ति कर्मोंके क्षय होनेसे ही होती है। कर्मोंके क्षय करनेके दो उपाय हैं एक सरागमार्ग और दूसरा वीतराग मार्ग। जिनप्रतिमाकी पूजा करना, दान देना आदि तो सरागमार्ग है। महाव्रत धारण करना, इन्द्रिय तथा कषायोंको जीतना, ध्यान करना, तप करना, व्रत करना, उपवास करना, उपशम श्रेणीका चढ़ना, यथाख्यातचारित्रका धारण करना आदि वीतराग मार्ग है। इनमेंसे सरागमार्ग एक देश कर्मोंको क्षय करनेवाला है इसलिये परंपरासे मोक्षका कारण है और वीतराग मार्ग पूर्ण कर्मोंको नाश करनेवाला है इसलिये वह साक्षात् मोक्षका कारण है। इस प्रकार दोनों ही मोक्षके कारण हैं। इसलिये अपनी जैसी पदवी हो उसीके अनुसार चलना चाहिये। तथा उच्च पदवीकी भावना सदा रखनी चाहिये। भावार्थ—गृहस्थोंका धर्म देवपूजा और दान देना मुख्य है तथा मुनिधर्म धारण करनेकी आकांक्षारूप है और मुनियोंका धर्म महाव्रतादि रूप वीतराग मय है और केवलज्ञान प्राप्त करनेकी आकांक्षारूप है ऐसा अभिप्राय समझना चाहिये। इस प्रकार जिनप्रतिमापूजनका निषेध करनेवालोंका निराकरण किया।

२५२–चर्चा दोसौ बावनवीं

कितने ही भागवती वैष्णव तथा स्मार्तिक मतके शैवलोग वा अन्य धर्मके कितने ही लोग कहते हैं कि जैनमत तो नास्तिक मत है इसलिये प्रशंसा करने योग्य नहीं है मलिन धर्म है। वे लोग यह भी कहते हैं कि शैव और वैष्णवोंको जिनमंदिरोंमें नहीं जाना चाहिये। जो जाते हैं उनकी बुद्धि छह महीने तक ही रहती है। अर्थात् जैन मंदिरमें जानेवाला पुरुष छह महीनेमें ही बुद्धिहीन हो जाता है। इसलिये जैन मंदिरमें कभी नहीं जाना चाहिये। लिखा भी है—

अजां हत्वा सुरां पीत्वा गत्वा गणिकमंदिरम्। हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्॥

अर्थ—बकरा मारना, शराब पीना और वेश्यागमन करना ये सब अयोग्याचरण हैं सो तो भले ही कर लेना चाहिये परंतु सामनेसे आते हुए हाथीके द्वारा प्राण नष्ट होनेपर भी अपने प्राण बचानेके अभिप्रायसे भी जैन मंदिरमें नहीं जाना चाहिये। भावार्थ—प्राण नष्ट होते हों तो हो जाने देना चाहिये। किंतु उसी स्थानपर

कोई जैन मंदिर हो और उसमें जाकर शरण लेनेसे उसमें जाने मात्रसे प्राण बचते हों तो भी उस जैन मंदिरमें नहीं जाना चाहिये। ऐसा ब्राह्मणादिक लोग कहते हैं सो इसका क्या उत्तर है।

समाधान—इसका पहला उत्तर तो यह है कि यह वचन किसी ऋषिका नहीं है किसी मूर्खने ईर्ष्याके कारण गढ़ लिया है। तथा उसका प्रचार करनेके लिये शंकराचार्यका नाम रख दिया है अर्थात् उसे शंकराचार्यके वचन बतला दिये हैं सो प्रामाणिक नहीं हैं। केवल अंध परंपरासे चला आ रहा है।

यदि कदाचित् इस श्लोकको मान ही लिया जाय तो उसका वास्तविक अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये। उसका वास्तविक अभिप्राय यह है—भेड़, बकरे आदि जीवोंको मारकर अथवा शराब पीकर अथवा वेश्याके घर जाकर कोई पुरुष जैन मंदिरके समीपसे आ रहा हो और वहीं पर सामनेसे आते हुये किसी हाथीसे उसके प्राण नष्ट होते हों तो उसे अपने प्राण तो दे देने चाहिये किंतु उस महा अपवित्र अवस्थामें अपने प्राण बचानेके लिये उस पवित्र जैन मंदिरमें नहीं जाना चाहिये। क्योंकि जो पुरुष जीवोंका हिंसक है, शराब पीता है, और वेश्यागमन करता है वह महा पापी, महापातकी, महा अधर्मी और महा अपवित्र है। ऐसे पुरुषको जैनमंदिरमें पैर रखना भी योग्य नहीं है मंदिरमें जानेका उसे कोई अधिकार नहीं है। ऐसे पुरुषको तो जैन मंदिरसे बहुत दूर होकर निकलना चाहिये। वह तो अस्पृश्य शूद्रके समान है।

जैन मंदिरमें तो धर्मात्मा पुरुषोंको ही जानेका अधिकार है। हत्या करनेवाले शराबी आदि लोगोंको जैन मंदिरमें जानेका कोई अधिकार नहीं है। लोकमें बालगोपाल सब यह कहावत कहा करते हैं कि "गधोको गंगा नहीं हैं उसी प्रकार श्रीजिन मंदिर गंगारूप है, श्रीजिनमूर्तिका दर्शन ही उसका निर्मल जल है वह ऊपर लिखे महापापोको प्राप्त नहीं हो सकता। यह उस श्लोकका अभिप्राय है।

इस समयमें भी कितने ही लोग ब्राह्मणोंके कहनेसे जिनमंदिरमें न जानेका नियम करते हैं सो कहनेवाले और न जानेका नियम लेनेवाले दोनों ही ऊपर लिखे जीवोंके समान हिंसक और शराबियोंके समान महापापी समझना चाहिये। यही उस श्लोकका अभिप्राय है।

जो लोग यह कहते हैं कि जो कोई जैन मंदिरमें जाता है उसकी बुद्धि छह महीनेमें नष्ट हो जाती है सो जिसकी बुद्धि जन्मसे ही भ्रष्ट हो गई है ऐसे ही पुरुष पागल पुरुषोंके समान उन्मत्त होकर प्रलाप करते हैं।

उनकी बुद्धि जन्मसे ही भ्रष्ट है जन्मसे ही अंधे पुरुषके समान उन्हें किसी भी पदार्थका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। ऐसे लोग अपनी इच्छानुसार पदार्थोंके स्वरूपको मानते हैं किसी दूसरेको नहीं सुनते। न मानते हैं। जो अपने मनमें आता है सो ही मानते हैं और वही करते हैं। उसी प्रकार अंधेकी लकड़ीके समान ब्राह्मणोंका कहना है। तथा दूसरे लोग भी अन्धोंके समान हैं। ऐसे ही लोगोंके लिये यहांपर एक प्रसिद्ध लौकिक उदाहरण दिखलाते हैं।

किसी राजाने किसी एकदिन सबेरे उठकर ही किसी सूमका मुँह देखा। जब भोजनका समय हुआ तब राजा भोजनके लिए बैठने ही जा रहा था कि सेवकोंने आकर समाचार दिये कि "महाराज सिंह घिर गया है" तब राजा अपने क्षत्रिय धर्मका स्मरण कर उसको मारनेके लिये चल दिया, उसने परोसा हुआ भोजन छोड़ दिया और भूखा ही चला गया। वह राजा उस दिन सब दिन वनमें रहा उसने बहुतसे उपाय किये परन्तु वह सिंह वशमें नहीं आया। उस सिंहने अनेक लोग घायल किये और संध्या होते-होते वह भाग गया। तब राजा लाचार और उदास होकर भूखसे सताया हुआ ही अपने नगरमें आया। राजाने समझा कि उस सूमका मुख देखनेसे ही आज मुझे भोजन नहीं मिला है। तब वह उस सूमपर क्रोध करने लगा, उसको बुलाया और सेवकोंको आज्ञा दी कि इसको मार डालो। दूसरे दिन सबेरे ही राजा सब लोगोंके साथ बैठा था उस समय उस सूमने आकर पूछा कि महाराज! ऐसा मेरा क्या अपराध है जिससे मेरे प्राण लिये जाते हैं। तब राजाने कहा कि तेरा मुख देखनेसे आज हमें अन्न नहीं मिला है आज हमें सब दिन भूखा मरना पड़ा, इसीलिये तुझे मारनेकी आज्ञा दी है। राजाकी यह बात सुनकर सूमने कहा कि मेरा मुँह देखनेसे आपको एक दिन भूखा रहना पड़ा परन्तु शामको भोजन मिल गया। मेरे मुँह देखनेका इतना ही फल हुआ परन्तु महाराज आपका मुँह मैंने देखा था सो उसके फलसे तो मेरे प्राण ही जा रहे हैं अब आप ही कहिये इन दोनोंमें किसका मुँह दुख देनेवाला और पापी है इससे तो राजाका ही मुख अधिक बुरा हुआ। क्योंकि उसके उसके देखनेसे सूमके प्राण गये। इसी प्रकार वह मनुष्य है जो यह कहता है कि जिनमंदिरमें जानेसे छह महीनेमें बुद्धि नष्ट हो जाती है ऐसे लोगोंको पीछेसे बुद्धि आती है। तथा कहनेवालेकी बुद्धि जन्मसे ही नष्ट-भ्रष्ट समझनी चाहिये। ऐसे लोग जन्म-जन्मान्तर तक ही हीनबुद्धि रहते हैं और इसीलिये वे जिनप्रतिमाके

दर्शन करनेमें दोष बतलाते हैं तथा मूर्ख लोगोंको भुलाकर रोकते हैं। इस प्रकार कहनेवाले और माननेवाले दोनों ही मूर्ख राजाके समान हैं, इसीलिये वे ऐसा मानते हैं।

और देखो इस प्रकार कहनेवाले महा मिथ्याभाषी हैं 'जिनप्रतिमाके दर्शन करनेसे महापुण्य होता है और स्वर्ग मोक्षके फलकी प्राप्ति होती है" ऐसा कथन इनके अनेक पुराण और शास्त्रोंमें लिखा है परंतु अपनी आजीविकाके नष्ट होनेके डरसे ये लोग कहते नहीं हैं। तथा अपने मतके पक्षके अभिमानसे अनेक प्रकारके द्वेषरूप अन्यथा (मिथ्या) वचन कहते हैं और झूठी निंदा करते हैं।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे पुराण वा शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाके दर्शन करना कहाँ लिखा है तो उसके लिये कहते हैं कि देखो शिवपुराणमें लिखा है—

कैलाशे विमले रम्ये वृषभोयं जिनेश्वरः। चकारास्तेवतारो यः सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥

अर्थ—कैलाश पर्वतके शिखरपर श्रीवृषभदेव नामके जिनेश्वर भगवान अवतरित हुये हैं पधारे हैं सो वे ही सर्वज्ञ हैं वे ही ज्ञानके द्वारा सर्वव्यापी हैं और वे ही कल्याण करनेवाले शिव हैं। अर्थात् इनके सिवाय न कोई सर्वज्ञ है, न कोई सर्व व्यापक है, न कोई विष्णु और न कोई शिव है। सर्वज्ञ सर्वव्यापक विष्णु और शिव ये ही वृषभदेव हैं। प्रभासपुराणमें लिखा है—

महापुण्यादर्शरूपा दृश्यते द्वारिका पुरी। अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासशशिभूषणः॥ १॥
रैवताद्रौ जिनो नेमियुगादिविमलाचले। ऋषीणामादिदेवश्च मुक्तिमार्गस्य कारणम्॥ २॥
पद्मासनासमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः। नेमिनाथः शिवेत्याख्यां चकारास्य च वामनः॥

अर्थ—दक्षिण देशमें एक वामन हुआ है उसने गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथ भगवानके दर्शन किये थे। नेमिनाथ महापुण्यरूप और आदर्शस्वरूप द्वारिका नगरीमें जन्मे थे जहाँ कि चंद्रमाके समान कांतिको धारण करनेवाले नौवें नारायण कृष्णने अवतार लिया था। जिस प्रकार युगके प्रारंभमें श्रीवृषभदेव कैलाश पर्वतपर विराजमान हुये थे और अनेक ऋषियोंको मोक्षके कारण हुये थे उसी प्रकार श्रीनेमिनाथ भगवान गिरनार पर्वतपर विराजमान हुये थे। उस समय वे पद्मासनसे सुशोभित थे, श्याममूर्ति थे और दिगम्बर थे। इस प्रकार नेमिनाथके दर्शन करनेपर वामनने उनकी स्तुति की और उनका शिव ऐसा नाम रक्खा और स्पष्ट शब्दोंमें

कहा कि हे नेमिनाथ ! तुम्हीं साक्षात् शिव हो, अन्य कोई शिव नहीं है ।

इसी प्रकार प्रभासपुराणमें उमादेवीके संवादमें शिवके वचन लिखे हैं--

कलिकालमहाघोरसर्वकल्मषनाशनम् । दर्शनात्स्पर्शनाद्देवी कोटियज्ञफलप्रदः ॥
ऊर्जयंतगिरौ रम्ये माघकृष्णा चतुर्दशी । तस्यां जागरणं कृत्वा स जातो निमलो हरिः ॥

अर्थ—पार्वतीसे महादेव कह रहे हैं कि हे देवि ! अत्यंत मनोहर ऐसे गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथजी विराजे हैं । उनके दर्शनसे तथा उस पर्वतके स्पर्श करनेसे कलिकालके महा घोर पाप नष्ट हो जाते हैं तथा करोड़ों यज्ञोंका फल होता है । जो कोई पुरुष माघकृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिको वहाँ जाकर जागरण करता है वह निर्मल विष्णुपदको प्राप्त होता है । इस प्रकार श्रीनेमिनाथके दर्शन करनेका तथा गिरनारके दर्शन करनेका और वहाँ जाकर जागरण करनेका फल बतलाया है इसलिये शैव लोगोंको विचार करना चाहिये कि दोनोंमें कौन उत्तम है ।

भर्तृहरिकाव्यमें सरागियोंमें मुख्य शिवको बतलाया है और वीतरागियोंमें मुख्य श्रीजिनेन्द्रदेवको बतलाया है । यथा—

एको रागिषु राजते प्रियतमा देहार्द्धधारी हरो,
नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासंगो न यस्मात्परः ॥
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः ।
शेषः कामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न भोक्तुं क्षमः ॥

रागियोंमें सबसे मुख्य महादेव है जिसने अपनी प्रियतमाको आधे शरीरमें धारण कर रक्खा है तथा वीतरागियोंमें जिनेन्द्र भगवान हैं कि जिनसे बढ़कर स्त्री और परिग्रहका त्यागी और कोई नहीं है । कामके द्वारा विडंबना किये हुये बाकीके मूर्ख लोग जबर्दस्त कामके बाणरूपी सर्पके विषसे मूर्छित हो रहे हैं जो न तो विषयोंको छोड़ सकते हैं और न भोग सकते हैं । इससे भगवान जिनेन्द्रदेवकी उत्तमता ही सिद्ध होती है ।

दक्षिणमूर्ति सहस्रनाममें शिवके वचन लिखे हैं—

जिनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः ।

यहांपर लिखने भी श्रीजिनेन्द्रदेवको उत्तम और क्रोध, रोग आदि दोषोंसे रहित बतलाया है तथा जिनेन्द्रदेवकी स्तुति की है।

व्यासकृत महिम्नस्तोत्रमें लिखा है—

तत्र दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी।
कर्ताहंन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्तं गुरुः॥

यहांपर अन्य नामोंमें अरहंत नाम भी कहा है सो अरहंत नाम श्रीजिनेन्द्रदेवका ही है। इस प्रकार संक्षेपसे शैवमतका निराकरण समझना चाहिये।

कदाचित् कोई राजस गुणवाला वैष्णवमत माननेवाला यह कहे कि शैव धर्ममें कहा है सो तो ठीक है। परन्तु भागवत आदि पुराणोंमें तो नहीं लिखा है। तो इसका उत्तर यह है कि भागवतके पंचम स्कंधमें श्रीवृषभदेवका वर्णन किया है सो प्रसिद्ध ही है।

श्रीमद्भागवतमहापुराणकी टीकामें भी लिखा है—

नाभेः सुतः स ऋषभो मरुदेविसुनुः मुनियोगचर्याम्।
ऋषयः पदमामनन्ति स्वस्थाः समाहितधिया जयतां हिताश्च।

अर्थ—राजा नाभिराय और श्रीमरुदेवीके पुत्र श्री ऋषभदेव हुये थे जिन्होंने मुनियोंके लिए योगमार्ग दिखलाया था। इस प्रकार संसारका हित करनेवाले ऋषि लोग कहते हैं।

नगरखंडमें लिखा है—

स्पृष्ट्वा शत्रुंजयं तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम्। स्नात्वा गजपथःकुंडे पुनर्जन्मो न विद्यते।

अर्थ—जो मनुष्य शत्रुंजय तीर्थका स्पर्श करता है। गिरनार पर्वतकी वंदना करता है और गजपंथ नामके कुण्डमें स्नान करता है उसको फिर दुबारा जन्म नहीं लेना पड़ता। यहां भी जैनधर्मको उत्तमता बतलाई है। सो ठीक ही है।

२५३–चर्चा दोसौ तिरेपनवीं

प्रश्न—जैनशास्त्रोंमें सात परमस्थान बतलाये हैं सो कौन-कौन हैं?

समाधान—पहला परमस्थान सज्जाति है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको शुद्ध जाति और शुद्ध कुलमें जन्म लेना सज्जाति है। दूसरा परमस्थान सद्गृहस्थपना है, सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावकोंके व्रत और आचरणोंका पालन करना सद्गृहस्थपना है। तीसरा परमस्थान परिव्राजकपना है। रत्नत्रयसे सुशोभित अट्ठाईस मूलगुणों-को पालनकर मुनियोंके व्रत पालन करना परिव्राजकपना है। चौथा परमस्थान सुरेन्द्रता है। उस महाव्रतके फलसे इंद्रपदका प्राप्त होना सुरेन्द्रता है। पाँचवाँ परमस्थान साम्राज्य है। इंद्रका शरीर छोड़कर चरम शरीर धारणकर चक्रवर्ती वा तीर्थङ्करपद पाकर साम्राज्यसे विभूषित होना साम्राज्य परमस्थान है। छठा परमस्थान अरहंतपद है। उस साम्राज्यका त्याग कर, दीक्षा लेकर तथा घातिया कर्मोंको नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर अरहंतपद प्राप्त करना छठा परमस्थान है। सातवाँ परमस्थान निर्वाण है अरहंतपद प्राप्त होनेके अनन्तर बाकीके अघातिया कर्मोंका नाश कर निर्वाणपद प्राप्त करना सातवाँ परमस्थान है। इस प्रकार ये सात परम-स्थान हैं सो जीवोंको बड़े पुण्योदयसे प्राप्त होते हैं। सो ही महापुराणमें लिखा है—

सज्जातिः सद्गृहस्थत्वंपारिव्राज्यं सुरेन्द्रता। साम्राज्यं परमार्हन्त्यं निर्वाणं चेति सप्तधा॥

ये सातों परमस्थान हमारे भी हों ऐसी हमारी प्रार्थना है इसके सिवाय हमारी और कुछ इच्छा नहीं है। सो भी महापुराणमें दूसरी जगह लिखा है—

सज्जातिभागी भव, सद्गृहस्थत्वभागी भव, मुनीन्द्रत्वभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, साम्राज्यभागीभव, अर्हद्भागी भव, निर्वाणभागी भव।

इस प्रकार श्रीमज्जिनसेनाचार्यने आदिपुराणके चालीसवें पर्वमें आराधनादि क्रियाओंके मंत्रोंमें लिखा है। इस प्रकार सप्त परमस्थान बतलाये।

२५४—चर्चा दोसौ चौवनवीं

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरिआणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥
चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगल, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि।

प्रश्न—इस प्रकार यह णमोकारमंत्रपूर्वक मंत्र है। सो णमोकारमंत्रमें तो अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांचों परमेष्ठियोंका वर्णन आया है और उन पांचों परमेष्ठियोंको नमस्कार किया है परंतु चत्तारि मंगलं आदि मंत्रमें पहले तो अरहंत, सिद्ध दो परमेष्ठी कहे फिर साधु परमेष्ठीको स्मरण किया और फिर केवली प्रणीत धर्मको कहा। तथा इन्हीं चारोंको मंगल लोकोत्तम और शरणभूत बतलाया। सो यहां आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठीको क्यों छोड़ दिया? तीन परमेष्ठियोंको ही क्यों स्मरण किया इसका क्या कारण है?

समाधान—यह कहना ठीक है परंतु साधुके कहनेसे आचार्य और उपाध्याय भी आ जाते हैं। क्योंकि जिस प्रकार साधुओंको अट्ठाईस मूलगुण पालन करने पड़ते हैं उसी प्रकार आचार्य और उपाध्यायोंको भी अट्ठाईस मूलगुण पालन करने पड़ते हैं। इनमें विशेषता इतनी ही है कि जो साधु होकर भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य इन पांचों आचारोंको विशेषताके साथ स्वीकार करें, पालन करें तथा औरोंसे पालन करावें और छत्तीस गुणोंको विशेषताके साथ पालन करें ऐसे साधुओंको आचार्य कहते हैं अथवा ऐसे साधुओंको आचार्य पद प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य भी साधु ही हैं। तथा अट्ठाईस मूलगुणोंके साथ-साथ ग्यारह अंग, चौदह पूर्वोंको अंतर्मुहूर्तमें अर्थसहित शुद्ध पाठ करनेकी जिनमें शक्ति हो ऐसी ऋद्धि जिनको प्राप्त हो जो स्वयं पढ़ें, अन्यको पढ़ावें ऐसे साधुओंको उपाध्याय पद प्राप्त होता है। इसलिये उपाध्याय भी साधु ही हैं। इस प्रकार गुणोंकी अधिकताकी मुख्यतासे ही साधुओंमें आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु ऐसे तीन भेद हैं। वास्तवमें देखा जाय तो तीनों ही साधु हैं। क्योंकि सभी अट्ठाईस मूलगुणोंको पालन करते हैं। अभिप्राय यह है कि आचार्य और उपाध्याय पद भी साधुओंको ही प्राप्त होता है अतएव तीनों होके लिये साधु कह दिया है। साधु कहनेसे आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनोंका ही ग्रहण कर लेना चाहिये। एक साधुका ही नहीं लिखा भी है—

महापुरुषाणां एकवचनोपि बहुवचनोस्ति।

अर्थात् महापुरुषोंके द्वारा कहा हुआ एक वचन भी बहुवचन कहलाता है। अर्थात् महापुरुषोंके द्वारा कहा हुआ साधु शब्द भी आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनोंका ही वाचक समझना चाहिये। इस प्रकार ऊपर लिखे प्रश्नका समाधान है।

आगे इन मंत्रोंका अर्थ विस्तारके साथ लिखते हैं। 'चत्तारि मंगलं' अर्थात् मंगल चार हैं। 'अरहंत मंगलं' पहला मंगल अरहंत भगवान है। 'सिद्ध मंगलं' दूसरा मंगल सिद्ध परमेष्ठी है। 'साहू मंगलं' तीसरा मंगल साधु परमेष्ठी है अथवा आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनों परमेष्ठी मंगलमय हैं। 'केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं'। अर्थात् चौथा मंगल केवली भगवानका कहा हुआ अहिंसामय दयामय धर्म ही मंगल है। इस प्रकार अरहंत, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों मंगलमय हैं। मंग सुखको कहते हैं तथा ल का अर्थ देना है जो मंग अर्थात् सुखको ल अर्थात् देवे उसको मंगल कहते हैं (मंगं सुखं लाति ददातीति मंगलम्) अथवा मं शब्दका अर्थ पाप है और गल शब्दका अर्थ गलाना वा नाश करना है। जो मं अर्थात् पापको गल अर्थात् गला देवे, नाश कर देवे उसको मंगल कहते हैं (मं पापं गालयति नाशयतीति मंगलम्) इस प्रकार निरुक्तिपूर्वक मंगल शब्दके दो अर्थ बनते हैं।

अन्यमती गणेश आदिको मंगलरूप कहते हैं सो ठीक नहीं है ऊपर कहे हुए अरहंत, सिद्ध आदिक ही मंगलरूप समझने चाहिये।

'चत्तारि लोगुत्तमा' अर्थात् संसारमें चार ही लोग उत्तम हैं। 'अरहंत लोगुत्तमा' प्रथम तो अरहंत भगवान उत्तम हैं। 'सिद्ध लोगुत्तमा' दूसरे सिद्ध लोग उत्तम हैं। 'साहू लोगुत्तमा' आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु रूप साधु परमेष्ठी उत्तम हैं। 'केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा' केवली भगवानका कहा हुआ अहिंसामय दयामय धर्म ही उत्तम है।

संसारमें ब्राह्मण लोग अपनेको उत्तम बतलाते हैं सो नहीं है। उनके वंशमें पहले जो ऋषि हुये हैं जिनकी संतान ये ब्राह्मण कहलाते हैं वे हीन थे, शूद्र कुलके थे, पशु आदिसे उत्पन्न हुए थे। ये ब्राह्मण लोग अपनेको उन्हींकी सन्तान बतलाते हैं जैसा कि भारतके शान्तिपर्वमें लिखा है तथा पहले इसी ग्रन्थमें लिख चुके हैं।

इससे सिद्ध होता है कि ये ब्राह्मणादिक उत्तम नहीं है किन्तु तीनों लोकोंमें अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों ही उत्तम हैं।

अरहंत, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों ही मंगलमय हैं और चारों ही लोकोत्तम हैं। क्योंकि इनके सिवाय अन्य कोई भी इष्ट पदार्थ नहीं है ऐसा जानकर—

'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि' अर्थात् मैं चारोंके ही शरण प्राप्त होता हूँ। 'अरहन्त सरणं पव्वज्जामि' दूसरे सिद्ध परमेष्ठीके शरण जाता हूँ। 'साहू सरणं पव्वज्जामि' तीसरे आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधुओंके शरण जाता हूँ। तथा 'केवलिपण्णत्तो धम्मो शरणं पव्वज्जामि' केवलीप्रणीत दयामय धर्मकी तथा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्यरूप दशलक्षण धर्मको शरण जाता हूँ अथवा निश्चय वा व्यवहार लक्षणोंसे सुशोभित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्मको शरण जाता हूँ। इस प्रकार अरहन्त, सिद्ध साहू, और केवलीप्रणीत धर्मको शरणमें ही मैं प्राप्त होता हूँ।

इस संसारमें इन्द्र, चन्द्र, धरणेन्द्र, अन्नो, राजाधिराज, देव, दानव, भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस, पिशाच, कुलदेवी, भैरव, क्षेत्रपाल, चंडी, मुण्डी, काली, शीतला, बीजासणी अकृत, पितर, सूर्य, सती, मणि, मंत्र, यंत्र, तंत्र, आदित्यादिक नवग्रह, औषधि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा और भी कितने ही प्रकारके देवी, देवताओंको शरण मानते हैं और कहते हैं कि इनसे मरण आदिका भय दूर होता है सो सब मिथ्या है। क्योंकि ये सब देवी, देवता अपनेको कालसे नहीं बचा सके। जब वे कालसे अपनेको ही नहीं बचा सके तो फिर वे औरोंकी रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं। इसलिये जन्म, मरणके भयसे रहित, स्वर्गमोक्ष देनेवाले और समस्त जीवोंका कल्याण करनेवाले श्रीअरहन्त, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ही परम पदार्थ है और ये ही शरण लेने योग्य हैं। इनके सिवाय अन्य सब देवी, देवता कालके ग्रास बन चुके हैं सो ही कालज्ञानमें लिखा है—

काले देवा विनश्यन्ति काले चासुरपन्नगाः। नरेन्द्रादिसुरेन्द्राश्च कालेन कवलीकृताः॥

अर्थ—इस कालमें सब देव नष्ट हो चुके हैं इस कालमें ही राक्षसादिक असुर और नागकुमारादिक पन्नग नष्ट हो चुके हैं। तथा नरेन्द्रादिक समस्त मनुष्य और सुरेन्द्रादिक समस्त देव सब इस कालके ग्रास बन चुके हैं। भावार्थ—इन सबको कालने खा डाला है इसीलिये कालको सर्वभक्षी कहते हैं।

इस कालसे वीतराग परमदेव, अरहन्त परमेष्ठी, सिद्धपरमेष्ठी, आचार्यादिक साधुपरमेष्ठी और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों ही बचे हैं। इसलिये ये ही मंगलरूप हैं, ये ही लोकोत्तम हैं और ये ही शरण ग्रहण करने योग्य हैं।

इस प्रकार अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधुमय साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों ही हमको मंगल करनेवाले हों। *ये चारों ही हमारे सब प्रकारके जालोंको (विघ्नोंको) हरण करें। तीनों लोकोंमें ये ही* चार उत्तम पदार्थ हैं और भव-भवमें हमें इन चारोंकी शरण प्राप्त हो यही हमारी प्रार्थना है।

मेरे समस्त दुःखोंका क्षय हो, समस्त आठों कर्मोंका नाश हो, मुझे आत्मबोधि (आत्मज्ञान वा रत्नत्रय) की प्राप्ति हो, मुझे सद्गति प्राप्त हो, समाधिमरण प्राप्त हो और जिनेन्द्रदेवके गुणरूपी संपदाकी प्राप्ति हो। यही हमारी श्रीसर्वज्ञ, वीतराग, अरहंत, परमात्मा, परमेष्ठी आदि अनेक नामोंसे सुशोभित तीनों लोकोंके स्वामी श्रीकेवली भगवानसे प्रार्थना है। सो हमारी यह प्रार्थना पूर्ण हो।

इस प्रकार यह चर्चासागर ग्रन्थ समाप्त हुआ। इसमें दो सौ चौवन चर्चायें हैं उनमेंसे यह अन्तकी चर्चा शिखररूप है इसलिये इसमें मंगलभूत सर्वोत्तम और शरणभूत परमेष्ठियोंका नाम उच्चारण कर अन्तिम मंगल किया है।

आगे इस शास्त्रमें जो-जो चर्चायें आई हैं उनकी पूर्ण सूची लिखते हैं।

प्रश्न—सूची तो पहले लिखनी चाहिये अन्तमें क्यों लिखी ?

समाधान—कथा पुराण आदि प्रबन्ध शास्त्रोंकी सूची तो पहिले ही लिखी जाती है परम्परासे आम्नाय भी यही है। परन्तु यहाँ पर तो प्रश्नोत्तरोंका तरंगमय शास्त्र बना है सो ज्यों-ज्यों तरंग आती गई त्यों-त्यों शास्त्र बनता गया। पहलेसे कुछ प्रमाण निश्चित था नहीं। इसीलिये प्रमाणके बिना पहले नहीं लिखी गई। इसी कारण अब आगे लिखी जाती है। ऐसा समझ लेना चाहिये।

यह चर्चासागर किन-किन ग्रन्थोंसे लेकर बनाया है उनकी सूची शास्त्रका विस्तार होनेके भयसे नहीं लिखी है उन सब शास्त्रोंकी संख्या १९१ (एकसौ इक्यानवे) है। इनके सिवाय उक्तं च श्लोक हैं, गाथा हैं। अन्यमतके श्लोक हैं इस प्रकार इस चर्चासागरमें अनेक शास्त्रोंका मत प्रगट किया है।

१. इस ग्रन्थमें सूची इसके आगे है परन्तु सबके सुभीतेके लिये हमने विस्तारके साथ लिखकर पहले लगा दी है।

प्रश्न—इस शास्त्रमें अनेक ग्रन्थोंका प्रमाण देकर गाथा-श्लोक रखकर इस शास्त्रको क्यों बढ़ाया और क्यों इतना परिश्रम किया केवल उनके नाम ही लिख देने थे। अधिक विस्तारसे क्या लाभ केवल नाम-मात्र ही लिखना था।

समाधान—इतना परिश्रम करनेपर भी आजकलके कितने ही हठग्राही जीवोंके फिर भी यथार्थ श्रद्धान नहीं होता फिर भला केवल ग्रन्थोंका नाम ले देने मात्रसे वे लोग कैसे मानते ? इसलिये स्पष्ट अर्थ दिखलाने-के लिये तथा भ्रम और संदेहको दूर करनेके लिये इतना बढ़ाकर लिखा है।

लौकिक शिक्षामें गुरु शिष्यका संवाद है उसमें एक प्रश्नोत्तर यह है। गुरुजीका प्रश्न—

लांबो बड फैल्यो नहीं, मरू मालवे जाय ॥
लिखिया खत झूठा पडै, कहो चेला कुण राय ॥

शिष्यका उत्तर—'गुरुजी शाख नहीं' अर्थात् बिना शाख शाखा वा डालियोंके बड़का वृक्ष फैलता नहीं। बिना शाखाके अर्थात् कातिक वा वैसाखकी फसल—धान हुए बिना मारवाड़के लोग प्रायः सब ही गुजारा करनेके लिए मालवेमें भंग जाते हैं। तथा बिना शाख के, बिना विश्वास वा प्रमाणके लिखा हुआ खत अर्थात् पत्र भी तमस्सुक (दलील) झूठा पड़ जाता है इसलिये गृहस्थ लोगोंके द्वारा बनाये हुये नवीन-नवीन शास्त्र यद्यपि पहलेके आचार्योंके बनाये हुए शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार ही हैं तथापि उनमें शाख वा प्रमाणरूप शास्त्रोंके वचन अवश्य रख देना चाहिये। प्रमाणरूप शास्त्रोंके वचन रखनेसे फिर किसीके हृदयमें भी जिन-वाणीमें संदेह नहीं रहता।

प्रश्न—यदि किसीके हृदयमें प्रमाणरूप शास्त्रोंके वचनोंको देखकर भी सन्देह दूर न हो तो क्या करना चाहिये।

समाधान—ऐसे मनुष्योंके सामने मौन धारण करना अच्छा है। क्योंकि मूर्खोंके समझानेका संसारमें कोई उपाय नहीं है। संसारमें उनके स्वभावकी औषधि ही नहीं है। भर्तृशतकमें लिखा है—

१. मालवा ऊँची जगह पर है इसलिये वहाँ प्रायः पानी बरसता ही है दुष्काल नहीं पड़ता इसीलिये लोग दुष्काल पड़ने पर वहां चले जाते हैं।

"मूर्खस्य नास्त्यौषधम्"

अर्थात् मूर्खकी कोई औषधि नहीं है।

प्रश्न—यदि कोई समझदार पढ़े लिखे विद्वान लोग भी प्रमाणरूप कथनको देखकर भी श्रद्धान न करें तो फिर उनके लिये भी प्रमाणोंका लिखना व्यर्थ ही हुआ।

उत्तर—जो प्रमाणरूप वचनोंको देखकर भी श्रद्धान न करें तो फिर उनको भी मूर्ख समझना चाहिये। क्योंकि क्रोध करना, हठ पकड़ना, दुर्वचन कहना, अपनी कथा कहते ही जाना और दूसरोंकी मानना ही नहीं, ये पाँच मूर्खोंके चिन्ह है। लिखा भी है—

मूर्खस्य पंच चिह्नानि क्रोधी दुर्वचनी तथा। हठी च दृढवादी च परोक्तं नैव मन्यते।

इसलिये ऐसे लोगोंके सामने भी मौन धारण करना ही श्रेष्ठ है। लिखा भी है—

'दोषवादे च मौनम्' अर्थात् जहाँ दोषवाद हो, जहाँ किसीको बुरा कहना पड़े वहाँपर भी मौन धारण करना श्रेष्ठ है। यह न्याय सब जगह लगा लेना चाहिये। मूर्ख लोगोंको उपदेश देनेमें बड़े-बड़े दोष उत्पन्न होते हैं। लिखा भी है—

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभाषणेन च। पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनं॥

अर्थ—मूर्ख शिष्यको उपदेश देनेसे, दुष्ट स्त्रीके साथ बातचीत करनेसे और साँपको दूध पिलानेसे केवल विष ही बढ़ता है। इसलिये मूर्खोंके लिये वा दुष्ट पुरुषोंके लिये यह ग्रन्थ नहीं है। यह चर्चासागर ग्रन्थ तो सम्यग्दृष्टी सज्जन संत जिनाज्ञाको प्रतिपालन करनेवाले भव्य जीवोंके लिये है। इसके सुनने-सुनानेसे, पढ़ने-पढ़ानेसे, लिखने-लिखानेसे केवल धर्मामृतकी ही वृद्धि होती है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है। ऐसा यह शास्त्र सदा जय शील हो।

इस प्रकार ऊपर लिखे हुए बोसौ चौअन प्रश्नोत्तरोंसे सुशोभित यह चर्चासागर ग्रन्थ पूर्वाचार्योंके किए हुए सिद्धांत पुराण चरित्र आदिके अनुसार अपनी बुद्धिसे पूर्ण किया है। धर्मात्मा भव्य पुरुषोंको स्वाध्यायके पाँचों भेदोंसे इसकी प्रवृत्ति करनी चाहिये।

यदि इस ग्रन्थमें मेरी मंद बुद्धिके द्वारा कुछ विपरीत अर्थ लिख गया हो अथवा विरुद्ध श्रद्धान ज्ञान आचरण आदि लिख गया हो तो विशेष जाननेवाले सम्यग्दृष्टी साधर्मी सज्जनोंको हमपर क्षमाभाव धारण

कर इसको शुद्ध कर लेना चाहिये। मेरी मंद बुद्धिपर हँसना नहीं चाहिये इसी प्रकार हठग्राही वृद्धवादी दुर्जन पुरुषों को भी हमपर क्षमा करनी चाहिये। यदि इस शास्त्रमें आप लोगोंको अपने श्रद्धान, ज्ञान, आचरणके योग्य कथन न मिले तो मूल शास्त्रोंके गाथा श्लोक आदिको मिलाकर श्रद्धान कर लेना चाहिये। यदि हमने मूल शास्त्रोंके विरुद्ध लिखा हो तो उन ग्रन्थोंकी टीकाओंसे तथा अन्य मूल ग्रन्थोंसे शुद्धकर हमपर क्षमाभाव धारण करना चाहिये। इस प्रकार हमारी ये दो प्रार्थनाएँ हैं। राग-द्वेषको छोड़कर श्री वीतरागके वचनोंके अनुसार कहनेवाले गणधरोंके वचनों पर तथा गणधरादिकोंके वचनोंके अनुसार कहनेवाले आचार्योंके वचनोंपर श्रद्धान, ज्ञान, आचरण कर अपना आत्मधर्म प्रतिपालन करना चाहिये।

यह चर्चासागर ग्रंथ हमने अनेक शास्त्रोंको देखकर लिखा है सो इसका पठनपाठन विचार आदि करना चाहिये। इसमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। यह ग्रन्थ हमने अपने और दूसरोंके उपकारके लिए लिखा है। जैनवचन अगाध हैं गणधरादिक देव भी इसका पार नहीं पाते। फिर भला हमारे समान अत्यन्त तुच्छ बुद्धिको धारण करनेवाले इसको कैसे कह सकते हैं। इसलिए हमारी जितनी बुद्धि थी उतना ही हमने लिखा है। यह जिनवाणी अपार है इसलिये ऐसे जिन वचनोंको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं। जो कोई मनुष्य कोई शुभकार्य करता है और अपने शुभकार्यकी सिद्धि हो जानेपर भी उसके पार तक नहीं पहुँच सकता तो वह अपने कार्यकी सिद्धि होने तक उस कार्यकी सिद्धि कर लेता है। और शेषको नमस्कार कर लेता है इसी प्रकार हमने भी अपने कार्यकी सिद्धि कर शेष गुणोंसे सुशोभित अपने इष्टदेवको नमस्कार किया है। इस प्रकार यह चर्चासागर ग्रन्थ समाप्त हुआ।

आगे इस शास्त्रके बनानेका कारण लिखते हैं।

श्री जिनवर श्री सिद्ध मुझ देहउ जिनगुण रिद्ध। सूरी पाठक साधु सब देह सिद्धि फुनि ऋद्धि ॥ १ ॥
चर्चासागर शास्त्रवर कीनो सो सुनि भ्रात। समाचार ताके कहूँ संशयनाशक बात ॥ २ ॥

स्वस्तीश्री गर्गा सुदेश जांहि, शुभ झालावाड वसै ता मांहि।
तहाँ झल्लरपत्तन पुरि अनूप, तहं पृथ्वीराज शुभ जानि भूप ॥ ३ ॥
तहाँ शांतिनाथ फुनि पार्श्वनाथ, श्रीऋषभदेवके बिम्ब साथ।
जिन चौबीसी युत भवन तीन, शोभा लिखते ह्वै पापछीन ॥ ४ ॥

नर नारी भव्य अनेक आय, बंदें पूजें मन वचन काय।
फुनि श्रवण करें जिनवाणि नित्त, श्रावक सुश्राविका एक चित्त ॥ ५ ॥
जहाँ अहँ नमः कैं धरम धार, तामें जैनी जन धर्मकार।
तामें दिगंबर शुभवेश सार, ताकरि आए हूमड विचार ॥ ६ ॥
जातीय बागड्या श्रउक साहु, लघुशाखा गोत्र बघाणु ताहु।
है बालसो सुत गोज बास, ताको सुत वर्जितभ्रमरपास ॥ ७ ॥
शुभ सुमंन तामें अरुण अंत, ताने बहु शास्त्र सु देखि तंत।
फुनि प्रश्नोत्तर सूं और पास, निर्णय करि शास्त्रनिमें खुलास ॥ ८ ॥
निजपर निज अनुज सूनु काज[2], मुर अरी[3] अरुण[4] युत अंतराज।
कौमार लाल कुम नाम छाज, समझन हित कीनो यह समाज ॥ ९ ॥
बहुसंशयनाशक गुण प्रकाश, भव्यनिको श्रद्धन रूप खास।
हठग्राही टेकी अद्ध क्षीन, लखि दुर्वच बोले बुद्धि हीन ॥१०॥
यह स्व स्व धर्मनि करत त्याग, सहकार पलांडू[6] पिकँ[7] कुकार्ग।
जिम जाणो याको जाति भाव, नहिं होय गर्बभी[9] रूप गाव ॥११॥
संवत्सर विक्रम अर्क राज्य, समयेतें दिग[10] हरि चन्द्र[11] छाज।
माघमास शशि पक्ष शुद्ध, पंचम गुरुवार अनंग[12] बुद्ध ॥१२॥

---

१. सुमन शब्दका अर्थ फूल है फूलोंमें सबमें उत्तम फूल चंपाका है और अन्तमें अरुण अर्थात् लाल है इस प्रकार चंपालाल नाम निकलता है। २. छोटे भाईके पुत्रके लिए, ३. मुरारी, ४. लाल (३ + ४ = मुरारीलाल)

५. आम, ६. प्याज, ७. कोयल, ८. कौआ। वे लोग धर्मको इस प्रकार छोड़ते हैं जैसे कोयल आमको छोड़ती हो और कौआ प्याजको छोड़ता हो अर्थात् कोयल आमको छोड़ती नहीं यदि छोड़े तो वह मूर्ख है तथा प्याजको छोड़नेवाला कौआ मूर्ख है उसी प्रकार धर्मको छोड़नेवाले महामूर्ख हैं। ९. गधी कभी गाय नहीं बन सकती, १०. दिशाएँ दश हैं।

११. चंद्र एकको कहते हैं। इन सबके मिलानेसे तथा अंकानां वामतो गतिः अर्थात् अंकोंकी गति बांई ओर होती है इस न्यायसे १८१० है। अर्थात् विक्रम सम्वत् १८१० में यह ग्रन्थ बना। १२. बसंत पंचमी।

तिस दिन शुभ वेला पूर्ण कीन, चर्चा सिंधू बहु कथन पीन ।
नंदो वृद्धो जयवंत होउ, यावत रवि शशि छिति[1] वार्द्धि लोउ ॥१३॥

छप्पय

मंगल श्री अरहंत सिद्ध मम करो सुमंगल । मंगल करो सुसाधु उक्त केवलि वृषमंगल ॥
मंगल यह चत्वारि और न विनायक मंगल । मंगलमें वरदाय श्रेष्ठ मंगलमें मंगल ॥
यह ही चउ लोगोत्तमा यह चउ शरण सुमानिये ।
अरहंत सिद्ध फुनि साधु वृष श्रीजिनकथित सु जानिये ॥१४॥

सोरठा

विघ्नव्यूह विलाय शाकिनी भूत सुसर्प सब । विष अमृत ह्वै जाय श्रीजिन तेरे स्मरणतें ॥१५॥

दोहा

चं—द्रप्रभु चंद्राभ तनु,
पा—र्श्वप्रभु छवि नील ।
ला—भ करत श्रीशिवतनो
ल—गि ध्यावें तजि ढील ॥ १६ ॥
चउ पदके धुर वर्ण चउ क्रमकरि पंक्ति अनूप ।
चर्चासागर ग्रंथको कर्ता नाम स्वरूप ॥ १७ ॥

इस प्रकार पंडित-प्रवर चंपालालकृत चर्चासागर ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

१. जबतक छिति अर्थात् आकाशमें सूर्य है और वार्द्धि अर्थात् समुद्रमें चंद्रमा है ११ पहले अक्षर। सोलहवें दोहेके चारों पदोंके